आचार्य आदिसागर (अंकलीकर)
अभिनन्दन ग्रन्थ

(ग्रन्थ स. २०)

सानिध्य

प पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती तपस्वी सम्राट
108 आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज
एव
प पूज्य प्रथम गणिनी, विदुषीरत्न, सम्यग्ज्ञान
शिरोमणी, सिद्धान्त विशारदा, धर्म प्रभाविका, ज्ञान चिन्तामणि
श्री 105 आर्यिका विजयमती माताजी

प्रबन्ध सम्पादक
नाथूलाल जैन ''टोकवाला''

सम्पादक
महेन्द्र कुमार जैन ''बडजात्या''
कामा वाला

ब्र मणिलाल जैन, भीमपुर
सकलन सहयोगी

प्रकाशक
श्री दिगम्बर जैन विजयाग्रन्थ प्रकाशन समिति

कार्यालय
जैन भगवती भवन, 114, शिल्प कालोनी, झोटवाडा जयपुर – 302 012

प्रथम सस्करण 1001 प्रतिया

परम् पूज्य युग प्रधान सन्मार्ग दिवाकर वात्सल्यमूर्ति करुणासागर तेजोमूर्नि
श्री 108 आचार्य विमल सागरजी महाराज के 79वे
जन्म जयन्ती पर सम्मेदशिखरजी मे आयोजित
''सन्मार्ग दिवाकर महोत्सव दिनाक 22-9-94 से 28-9-94''
के शुभ अवसर पर प्रकाशित

मूल्य स्वाध्याय / रु 51/- (आर्थिक सहयोग)

प्राप्ति स्थान
महेन्द्र कुमार जैन (बडजात्या)
श्री दिगम्बर जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति
जैन भगवती भवन, 114-शिल्प कालोनी,
कालवाड रोड, झोटवाडा, जयपुर-302 012

मुद्रक प्रिंटिग सेन्टर
चुरुको का रास्ता, चौडा रास्ता, जयपुर फोन 319721



परम पूज्य युगप्रधान सन्मार्ग दिवाकर वात्सल्यरत्नाकर करुणासागर आचार्य श्री 108 विमलसागरजी महाराज से 'सन्मार्ग दिवाकर महोत्सव' दिनांक 27-9-1994 को सिद्धक्षेत्र श्री सम्मेदशिखरजी मे 'आचार्य आदिसागर (अकलीकर) महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ' का विमोचन कराते हुए समिति के सम्पादक महेन्द्रकुमार जैन। माइक पर प. श्री धर्मचन्दजी शास्त्री उद्घोषणा करते हुए दिखाई दे रहे है।



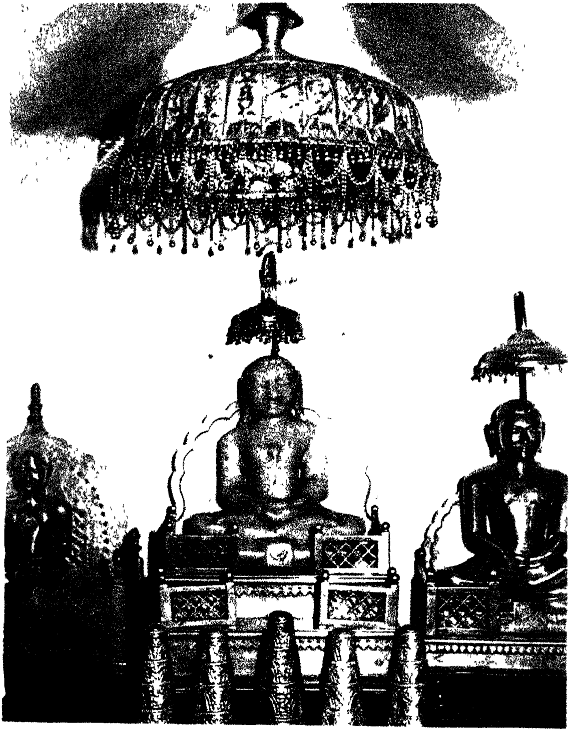
प्रात स्मरणीय तेजोमूर्ति वात्सल्यरत्नाकर निमित्त ज्ञान शिरोमणि १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज को 'आचार्य आदिसागर (अकलीकर) महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ' का श्री मनीष जैन एवं श्री विनय जैन अवलोकन कराते हुए।



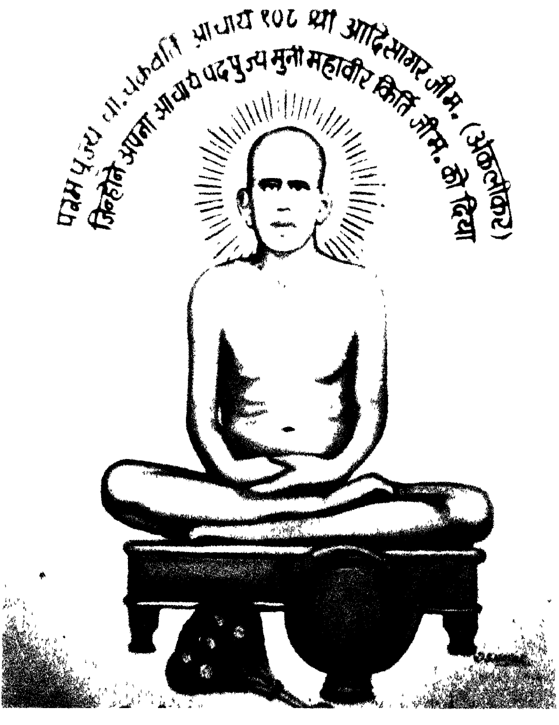
परम पूज्य युगप्रधान निमित्त ज्ञान शिरोमणि 108 आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज की 79वीं जन्म-जयन्ती पर आयोजित 'सन्मार्ग दिवाकर महोत्सव' मे विशाल जन समुदाय को विमोचित ग्रन्थ 'आचार्य आदिसागर (अकलीकर) अभिनन्दन ग्रन्थ' को दिखाते हुए श्री, मनीष जैन।

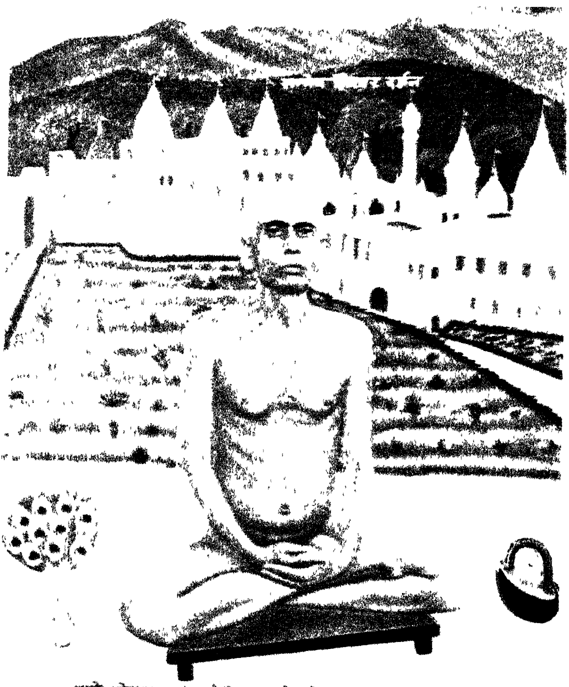


परम पूज्य तपस्वी सम्राट सिद्धान्त चक्रवर्ती 108 आचार्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज की प्रेरणा से श्री रिखबचन्दजी जैन (सेलम प्रवासी) परम पूज्य सन्मार्ग दिवाकर '108 आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज' का फोटो कलेन्डर उन्हीं के कर-कमलो से विमोचन कराते हुए। दिनाक 27-9 1994 श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र।



श्री दिगम्बर जैन मन्दिर [illegible] में विराजमान १०८ श्री पद्म प्रभु भगवान
१००८ श्री चन्द्र प्रभु भगवान (मूलनायक) १००८ श्री महावीर भगवान


परम पूज्य आचार्य १०८ श्री आदिसागर जी म. (अंकलीकर)
जिन्होंने अपना आचार्य पद पूज्य मुनी महावीर कीर्ति जी म. को दिया



गुरुर्मे भवेन्माता गुरुरेव भवेत्पिता, गुरुरेव भवेद् भ्राता गुरुरेव भवेत्सुहृत्।
गुरुः स्वामी गुरुर्भर्ता गुरुर्विद्या गुरुर्गुरुः, स्वर्गो गुरु गुरुर्मोक्षो गुरुरेव गुरुः सदा॥

[illegible] परमपूज्याचार्य [illegible] भगवान् श्री महावीरकीर्तिजी
महाराज साहब

[illegible]



परम पूज्य निमित्त ज्ञान शिरोमणि तपस्वी सम्राट १०८ आचार्य
श्री निर्मल सागरजी महाराज

श्री वीतरागाय नम

परम पूज्य निमित्त ज्ञान शिरोमणी आचार्य श्री 108

विमलसागर जी महाराज का आदेश

समस्त दिगम्बर जैन समाज को धर्मबृद्धि आशीर्वाद



सम्पूर्ण समाज को सूचित किया जाता है कि हमारी आचार्य परम्परा म प्रथम मे मुनि कुञ्जर सम्राट श्री आदिसागरजी (अकलीकर) थे, आप आचार्य श्री 108 महावीरकीर्तिजी के दीक्षा गुरू थे । मुनि सम्राट कुञ्जर का अर्थ आचार्य से होता है । अत आचार्य श्री 108 आदिसागरजी (अकलीकर) आचार्य थे, उन्होने अपना आचार्य पद, आचार्य श्री 108 महावीर कीर्तिजी को दिया था ।

अत जैन समाज मे आचार्य श्री 108 आदिसागर जी (अकलीकर) की परम्परा और आचार्य श्री 108 शान्तिसागरजी की परम्परा इस युग में निर्बाध चली आ रही है । समस्त समाज का कर्त्तव्य है कि आपस मे किसी प्रकार का विवाद न करके दोनो आचार्य परम्पराओ को आगम सम्मत मानकर वात्सल्य से धर्म प्रभावना करें ।

आचार्य विमल सागर
दि. 23/10/93

दिनाक - 23-10-93

आचार्य विमल सागर



मुख्य मंत्री
राजस्थान

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि श्री दिगम्बर जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति, झोटवाडा द्वारा आचार्य श्री आदिसागर अकलीकर की स्मृति मे "अभिनन्दन ग्रन्थ" का प्रकाशन किया जा रहा है ।

भारतीय षड्दर्शन में जैन दर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा आचार्य आदिसागरजी जैसे मुनिजन ने इस दर्शन की अवधारणा को निरन्तर आगे बढाया है । आज आवश्यकता इस बात की है कि अध्यात्म ज्ञान को व्यापक बनाया जाय, इस दृष्टि से प्रकाश्य ग्रन्थ का स्वागत है ।

मुझे विश्वास है कि सद्य प्रकाशन जैन दर्शन, साहित्य ज्योतिष, सम्यक दर्शन, ज्ञान एव चारित्र की महत्ता पर उपयोगी एव उद्देश्यपूर्ण सामग्रीयुक्त होगा ।

मेरी शुभकामनाए,

भैरों सिंह शेखावत

एस. पी. रातावाल
मत्री समाज कल्याण एव
अनुसूचित जाति तथा
अनुसूचित जनजाति कल्याण विभाग

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार
GOVT OF NATIONAL CAPITAL TERRITORY OF DELHI
पुराना सचिवालय, दिल्ली-110 054
OLD SECRETARIAT, DELHI-110 054
TEL NO 2525476
दिनाक 20-5-1994



संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आचार्य श्री 108 आदिसागरजी महाराज अकलीकर का 81वा दीक्षा दिवस आनन्दपुर-कालू (राजस्थान) मे मनाया गया है और इस अवसर पर "आचार्य आदिसागर अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित किया जा रहा है, जो एक अति शुभ कार्य है ।

मैं इस स्मारिका (ग्रन्थ) के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ ।

(सुरेन्द्र पाल रातावाल)

साहिब सिंह वर्मा
विकास एव शिक्षा मत्री

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार
पुराना सचिवालय, दिल्ली-110 054
दूरभाष 2933260
दिनाक 12-5-94

सन्देश

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता है कि भगवान महावीर स्वामी के अनुगामी आचार्य श्री कुन्द-कुन्द स्वामी की परम्परा मे आचाय श्री 108 आदिसागर जी महाराज अकलीकर हुए है और उनका 81वा दीक्षा दिवस आनन्दपुर (राजस्थान) मे मनाया गया है ।

इस अवसर पर ''आचार्य आदिसागरजी अभिनन्दन ग्रन्थ'' स्मारिका का प्रकाशन नि सदेह एक पुनीत कार्य है । इस स्मारिका मे स्वामीजी के आदर्श तथा उनसे सबधित अन्य उपयोगी लेख तथा रचनाए होगी जिनसे पाठक निश्चित रूप मे लाभान्वित होगे ।

पत्रिका प्रकाशन के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनाये ।

(साहिब सिह वर्मा)

डा. हर्षवर्धन
मत्री चिकित्सा जन स्वास्थ्य
परिवार कल्याण, विधि, न्याय
एव विधायी कार्य विभाग

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार
पुराना सचिवालय, दिल्ली-110 054
दिनाक 20-5-94



सन्देश

यह बडी प्रसन्नता की बात है कि भगवान महावीर स्वामी जी के अनुयायी आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी की परम्परा मे आचार्य श्री 108 आदिसागर जी महाराज जी का 81वा दीक्षा दिवस आनन्दपुर कालू (राजस्थान) मे आचार्य श्री 108 सन्मति सागरजी महाराज एवं परमपूज्य श्री 105 प्रथम गणिनी आर्यिका श्री विजयमती माताजी के सानिध्य मे मनाया जा चुका है तथा इस सुअवसर पर "आचार्य आदिसागरजी अभिनन्दन ग्रन्थ" स्मारिका नामक ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है । आचार्य आदिसागरजी का भारतीय सस्कृति के उच्च आदर्शों को स्थापित करने मे बहुमूल्य योगदान रहा है तथा उन्होने भारतीय परिवेश मे समाज की श्रेष्ठ परम्पराओ को परिमार्जित किया है । मैं समझता हूँ कि उनके द्वारा प्रशस्त किए गए मार्ग से कोटि कोटि जनो के हृदय मे उनकी पैठ और मजबूत होगी । हम आचार्य जी के दिखाए मार्ग पर चलने का सकल्प ले और विश्व कल्याण कार्यो मे जुट जाए, यही हमारी उनके प्रति सर्वोत्तम श्रद्धाजलि होगी ।

(डा हर्ष वर्धन)

भंवरलाल शर्मा
मन्त्री, स्वायत्त शासन, नगरीय विकास एव आवासन,
जन स्वास्थ्य अभियान्त्रिकी, भू-जल एव
खेलकूल विभाग ।

जयपुर, राजस्थान
दिनाक 16-8-94

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री दिगम्बर जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति, झोटवाडा, जयपुर द्वारा परम् पूज्य आचार्य श्री आदिसागर अकलीकर की स्मृति मे "आचार्य आदि सागर अकलीकर अभिनन्दन ग्रन्थ" का प्रकाशन किया जा रहा है ।

मुझे आशा है इस ग्रन्थ मे प्रकाशित किये जा रहे समाजोपयोगी लेखो से समाज की युवा पीढी को स्वस्ति सस्कार प्राप्त होगे । स्वस्थ समाज के निर्माण के लिये ऐसे सस्कार आवश्यक हैं । यदि मनुष्य सस्कार सम्मत आचरण करे तो यह अवश्यम्भावी है कि समाज मे व्याप्त अनेको सामाजिक समस्याऐ स्वत ही समाप्त हो जावे ।

ग्रन्थ के प्रकाशन की सफलता के लिये शुभकामनायें ।

भवनिष्ठ

(भँवरलाल शर्मा)

महावीर प्रसाद जैन

दूरभाष .
(का) 48350
(नि) 365205
दिनाक 1-8-94



सन्देश

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुन्जर समाधि सम्राट 108 आचार्य श्री आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) के दीक्षा स्मृति मे "आचार्य आदिसागर (अकलीकर) अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित किया जा रहा है ।

आचार्य श्री के दीक्षा स्मृति मे जो यह ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, वह आज के इस आर्थिक युग मे जहाँ व्यक्ति अपने धर्म को भूलता जा रहा है, और केवल अर्थ के संचय को ही सब प्रकार का सुख मानने लगा है । इस समय में यह ग्रन्थ समाज के लिए ही नहीं, राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को दिशा निर्देश देगा, जिससे कि जन-जन का कल्याण होगा और व्यक्ति धर्म के मार्ग पर चलने को अग्रसर होगा ।

आचार्य श्री अकलीकर जी के तृतीय पट्टाधीश तपस्वी सम्राट् सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज के जयपुर चातुर्मास के दौरान ये ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है । इसके लिए मेरी अन्तर्मन से शुभकामनाये है ।

सद्भावी

(महावीर प्रसाद जैन)

देवी सिंह भाटी
सिचाई मत्री

निवास · 48,
सिविल लाईन्स, जयपुर
दिनाक 17-8-94

सन्देश

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि परम् पूज्य 108 चा च आचार्य श्री आदिसागर (अकलीकर) की स्मृति मे "आचार्य आदिसागर अकलीकर अभिनन्दन ग्रन्थ" का प्रकाशन आपकी संस्था द्वारा किया जा रहा है, जिसमे जैन धर्म की परम्पराओं और सिद्धान्तो पर विद्वानो के लेख प्रकाशित किये जायेंगे। धर्म हमारे देश का प्राण है, जो वर्षों से हमारी परम्पराओ और सिद्धान्तो को सुरक्षित रखे हुए है, धर्म राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण मे भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

आशा है आपका यह प्रकाशन जैन धर्म की महान् परम्पराओ को आगे ले जाने का कार्य करेगा।

शुभकामनाओ सहित,

आपका
(देवीसिह भाटी)

सुजान सिंह यादव
सहकारिता मत्री

जयपुर
राजस्थान
दिनाक 26-8-94

सन्देश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि श्री दिगम्बर जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति झोटवाडा द्वारा परम्पूज्य 108 चा च आचार्य श्री आदिसागर अकलीकर की पुण्य स्मृति मे "आचार्य आदि सागर अभिनदन ग्रन्थ" का प्रकाशन कराया जा रहा है । जैसा कि आपने सूचित किया है इस ग्रन्थ मे जैन सिद्धान्त, जैनसाहित्य एव आध्यात्मिक जैन शास्त्रो मे ज्योतिष सम्यक् दर्शन ज्ञान एवम् चारित्र महात्मय के अनेक समाज उपयोगी विषयो पर विद्वान् एव पूज्य साधुओं के लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं तथा ग्रन्थ अहिसावादी, चरित्रवान् समाज के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा ।

मुझे विश्वास है कि आज के इस हिसावादी युग मे, जब विभिन्न राष्ट्रो मे विनाशकारी हथियार बनाने की होड लगी है, समाज का हर वर्ग असतुष्ट है एव आपसी सामजस्य का अभाव है, यह ग्रन्थ बढती हुई हिसावादी प्रवृति को रोकने मे सहायक होगा ।

मेरी ओर से ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशन हेतु शुभ कामनाये प्रेषित हैं ।

भवनिष्ठ
सुजान सिंह यादव

जसवन्तसिंह विश्नोई
राज्य मन्त्री
अल्प बचत एवं राज्य लाटरीज्
राज्य बीमा तथा जन स्वास्थ्य
अभियान्त्रिकी विभाग

जयपुर
दिनाक 6-8-94

सन्देश

मुझे यह जानकर अति हर्ष हुआ कि बीसवीं शताब्दी के शुद्ध मुनि परम्परा के प्रणेता परम पूज्य 108 चा च आचार्य श्री आदिसागर (अकलीकर) की स्मृति मे ''आचार्य आदिसागर (अकलीकर) अभिनन्दन ग्रन्थ'' का प्रकाशन आपकी सस्था द्वारा किया जा रहा है।

आज के इस भौतिकवादी सस्कृति में इस ग्रन्थ के प्रकाशन से अपने राष्ट्रवासियो को ही नहीं सम्पूर्ण मानव जाति को त्रिरत्न व पच महाव्रत सिद्धान्त के पथ पर चलने की प्रेरणा मिलेगी।

इससे हमे सम्पूर्ण सृष्टि का कल्याण सभव है।

सद्भावी

(जसवंतसिंह विश्नोई)

प्रो. साँवरलाल
राज्य मंत्री
सहायता एवं पुनर्वास विभाग

जयपुर
दिनांक . 17-8-94

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष है कि "आचार्य श्री आदिसागर अकलीकर अभिनन्दन ग्रन्थ" का प्रकाशन किया जा रहा है । इस ग्रन्थ मे विद्वानजन, मनिषियो, साधुओं एवं आचार्यों के समाजोपयोगी लेख सम्मिलित होंगे जो समाज को नई दिशा प्रदान करेंगे । साधुओ एवं आचार्यों के उपदेश अच्छे समाज के निर्माण में योगदान तो करते ही हैं लेकिन साथ ही साथ एक अहिंसावादी एव चरित्रवान समाज के निर्माण में भी सहायक होते हैं ।

मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ समाज के सभी वर्गों को सद्मार्ग दिखाऐगा । इन्हीं शुभकामनाओं के साथ मैं इसके सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ ।

धन्यवाद,

सद्भावी
(प्रो. सांवरलाल)

ज्ञानसिंह चौधरी,
राज्य मत्री, कृषि एव सिचित क्षेत्रीय विकास

जयपुर
राजस्थान
दिनाक 6-9-94

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त ही खुशी हुई कि परम पूज्य 108 चा च आचार्य श्री आदिसागर अकलीकर की स्मृति मे "आचार्य आदिसागर अभिनन्दन ग्रन्थ" का आपकी सस्था द्वारा प्रकाशन किया जा रहा है । निश्चय ही इस ग्रन्थ से जैन समाज को काफी लाभ होगा और अहिसावादी, चरित्रवान समाज के निर्माण मे अत्यन्त ही सहायक सिद्ध होगा ।

मेरी इस प्रकाशन मे आपको बहुत-बहुत शुभ-कामनाऐ प्रेषित कर रहा हूँ ।

सद्‌भावनाओ सहित,

आपका
(ज्ञानसिह चौधरी)

शुभ कामना

भगवान महावीर राम व बुद्ध के इस देश में ऐसे महान् चारित्रधारी आचार्य 108 श्री आदिसागरजी ''अंकलीकर'' महाराज की स्मृति में ''आचार्य आदिसागर अंकलीकर अभिनन्दन ग्रन्थ'' का प्रकाशन हो रहा है, इस ग्रन्थ से देश व समाज के नागरिको को एक नई दिशा मिलेगी।

आचार्य आदिसागरजी महाराज व महावीर कीर्तिजी महाराज को मेरा सत्-सत् वन्दन।

खगार सिह चौधरी (भा ज पा)
विधायक (खारची)
जिला-पाली (राजस्थान)

बडी प्रसन्नता की बात है कि परम् पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री आदिसागरजी (अकलीकर) की स्मृति मे स्मारिका ''आचार्य आदिसागर अभिनन्दन ग्रन्थ'' का प्रकाशन हो रहा है। त्याग तपस्या मे आप महान थे। आपने सयम का मार्ग अपनाकर आत्म कल्याण के मार्ग को अपनाया, आपकी ही परम्परा के तृतीय पट्टाधीश आज वीर भूमि राजस्थान प्रान्त मे अपनी वाणी द्वारा धर्म प्रभावना कर रहे हैं।

प्रकाशित होने वाली स्मारिका के लिए मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ है।

अचलाराम (भा ज पा)
विधायक ''देसूरी''
जिला-पाली (राजस्थान)

शुभ कामना

सात सात उपवास करके आहार लेने वाले महाव्रती तपस्वी सम्राट् आचार्य 108 श्री आदिसागरजी ''अकलीकर'' महाराज बिरले योगी थे । आपने अपना आचार्य पद महावीर कीर्तिजी महाराज को दिया था, आचार्य शान्तिसागरजी व आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के गुरु को मेरा सत्-सत् नमन । आपकी स्मृति मे प्रकाशित ''आचार्य श्री आदिसागर अभिनन्दन ग्रन्थ'' की सफलता के लिए मेरी शुभ कामना है ।

भीमराज भाटी (विधायक)
पाली (राजस्थान)

परम श्रद्धेय आचार्य 108 श्री आदिसागरजी ''अकलीकर'' कठोर तपस्वी व समाज के पथ प्रदर्शक थे, उनकी स्मृति मे प्रकाशित होने वाली स्मारिका ''आचार्य आदिसागर अकलीकर अभिन्दन ग्रन्थ'' के लिए मेरी हार्दिक शुभ कामनाए भेजता हूँ ।

श्री माधव सिह दीवान (काग्रेस आई)
विधायक (सोजत)
जिला-पाली (राजस्थान)

अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि तपस्वी सम्राट् आचार्य 108 श्री आदिसागर पहाराज ''अकलीकर'' की स्मृति में एक स्मारिका ''आचार्य आदिसागर अकलीकर अभिनन्दन ग्रन्थ'' का प्रकाशन हो रहा है आचार्य श्री जी की स्मारिका को मेरी हार्दिक शुभ कामना है ।

श्रीमती बीना काक (काग्रेस आई)
विधायक (सुमेरपुर)
जिला-पाली (राजस्थान)

विषय-सूची

चतुर्थ खण्ड

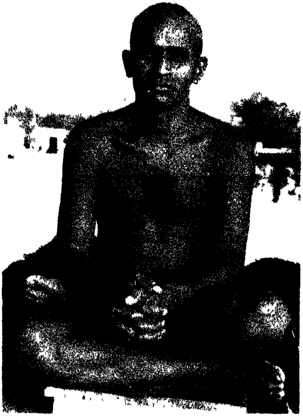
पंचम खण्ड–व्याख्यान माला

****

प पूज्य चा च १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज
के तृतीय पट्टाधीश



तपस्वी सम्राट सिद्धान्त चक्रवर्ती शिरोमणी
१०८ आचार्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज
जन्म माघ शुक्ला ७ स १९९५
क्षु दीक्षा श्रावण शुक्ला ८ स २०१८
मुनि दीक्षा कार्तिक सुदी १० स २०१९
दीक्षा गुरु : आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज



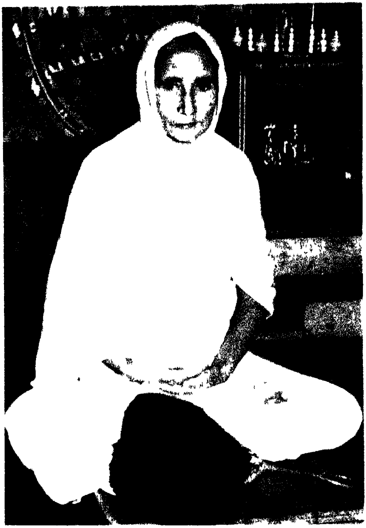
[illegible]

१०८ गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज

जन्म ज्येष्ठ शुक्ला १३ स २००३

मुनि दीक्षा आषाढ शुक्ला २ स २०२५

दीक्षा गुरु आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज



[illegible]

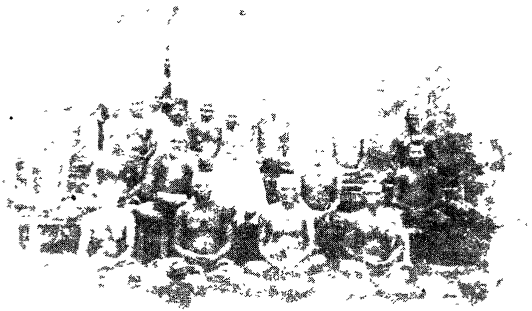
[illegible]

जन्म बैशाख शुक्ला १२ म १९८५, कामा (भरतपुर) राज

आर्यिका दीक्षा म २०१९, आगरा

दीक्षा गुर १०८ आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज

गणिनी पद १०८ आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज द्वारा म २०२८ मे महसाना मे



चारित्र चक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज [illegible] संघ

अरुण जैन
(इन्जीनियर)
मत्री, दिल्ली प्रदेश (भा ज पा)

प्रकाश भवन, 4 दरियागज,
नई दिल्ली-110 002

शुभ सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि दिगम्बर जैन चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री 108 आदिसागरजी महाराज का इक्यासी वा दीक्षा दिवस, उनके तृतीय पट्टाधीश आचार्य सन्त शिरोमणी परम् तपस्वी सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य तपस्वी सम्राट श्री 108 सन्मति सागरजी महाराज व प्र ग आ 105 श्री विजयमती माताजी के सान्निध्य मे मनाया है व इस उपलक्ष्य मे एक पुस्तक ''आचार्य आदिसागर अकलीकर अभिनन्दन ग्रन्थ'' भी निकाल रहे हैं ।

आचार्य आदिसागर जी महाराज के 81वे दीक्षा दिवस के उपलक्ष्य मे जो पुस्तक निकाल रहे है उसके लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाये एव गुरुचरणारविन्द मे कोटिश नमन ।

आदर सहित

आपका

(अरुण जैन)

परम पूज्य प्रातः स्मर्णीय निमित्त ज्ञान शिरोमणी करुणा सागर 108 आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज का मंगलमय शुभाशीर्वाद

परमपूज्य प्रथम चारित्र चक्रवर्ती समाधि सम्राट मुनि कुजर श्री 108 आचार्य आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) का अभिनन्दन का प्रकाशन श्री दिगम्बर जैन विजयाग्रथ प्रकाशन समिति झोटवाडा, जयपुर (राजस्थान) द्वारा हो रहा है ।

यह जानकर परम हर्ष हुआ । गुरु भक्ति ही ससार तारक है । यह ग्रथ भी गुरुभक्ति को प्रकट करने में सहयोगी होगा । इसके भिन्न-भिन्न भागों में विविध-विषयो का सग्रह किया गया है जिससे जीवन मे विशेष उपयोगी होगा । सभी भव्यात्माओं को इसका अध्ययन मनन करने से सम्यक् दर्शन ज्ञान, चारित्र का आवसर प्राप्त होगा ।

अत· ग्रंथ पठनीय एव मननीय है ।

समिति के कार्यकर्ता एव द्रव्य दातारो को हमारा शुभाशीर्वाद है कि आप इसी प्रकार आगमोक्त ग्रथों का प्रकाशन करते रहें ।

आचार्य विमल सागर
८/१/९४

आचार्य विमल सागर

८/१/१९९४

आचार्यरत्न सिद्धान्त चक्रवर्ती श्री 108 सन्मति सागरजी महाराज का आशीर्वाद

चारित्र चक्रवर्ती हुए आदिसागर मुनिराज
आचार्य शिरोमणि जो बने मुनिकुञ्जर सम्राट् ॥
महोपकर्त्ता गुरु, बन्दू बारबार
परम्परागत सर्वगुरु, नमो नमो सुखकार ॥
उन ही से है प्रार्थना, ऐसा दे वरदान
सफल होय मम कामना, पाऊँ अविचल थान ॥

प्रेषिका–ग आ विजयमती माताजी

परम हर्ष की बात है कि परम पूज्य आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज के परमाराध्य गुरुदेव, आचार्य शान्तिसागरजी महाराज द्वारा वंदित दक्षिण भारत के वयोवृद्ध दिगम्बर सन्त आदर्श तपस्वी अप्रतिम उपसर्ग विजेता महामुनि आचार्य आदिसागरजी अकलीकर (देखो-सम्यग्ज्ञान वर्ष १४/८७) की स्मृति मे ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है । जिस प्रकार कर्मभूमि के प्रारम्भ में चन्द्र सूर्य आदि वस्तुएँ नवीन आश्चर्यकारी एव विरोधी मालूम पडती है परन्तु वे यथार्थ होती हैं । इतिहास के अवलोकन से अनेक वस्तुएँ छिपी हुई बाहर जब आ जाती हैं तो वे अनेक प्राणियो को रुचती नही, वे सोचते है कि हमको नीचा दिखाया जा रहा है, इत्यादि विचारों मे डूब जाता है । यह ज्ञान की विपरीतता का परिणाम है । कहा भी है-

''सदसतोर विशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरून्मत्तवत्''

अर्थाथ् सत्यासत्य के अन्तर के बिना जब जैसा रूप आया उसी रूप को ग्रहण कर लेने के कारण पागल की तरह ज्ञान भी अज्ञान रूप बन जाता है । रचयिताओ ने ग्रन्थ रच दिये उनकी समाधि हो गई और स्वर्ग मोक्ष चले गये शोध करने पर जब उनके साहित्य प्राप्त हुए, उनको प्रकाशित कराया गया तो विघ्नानन्दी अपने कुसस्कारो के कारण विरोध प्रदर्शित किये बिना रहते नहीं । इसमे कोई आश्चर्यवाली बात भी नहीं । श्री आदिनाथ भगवान् का विरोध मरीचिकुमार ने किया श्री महावीर प्रभु का विरोध मस्करीपूर्ण ने किया । कहा है-''विरुद्ध किं किं न जल्पति'' अर्थात् विरोधी क्या-क्या नही बोलता है । आि तीर्थकर आदिनाथ और अंतिम तीर्थंकर महावीर तथा आदि गणधर वृषभसेन और अंतिम गणधर प्रभास हुए । आज वर्तमान काल में आचार्य श्री कुन्द-कुन्द स्वामी ने विदेह क्षेत्रस्थ सीमधर स्वामी की वाणी का साक्षात् पानकर समयसार मूलाचार रयणसार आदि ग्रन्थो को लिपिबद्ध किया । कारणवशात् बीच मे निर्दोष जिनलिंग का

लोप सा हो गया । आज जो पीछी कमण्डलु धारियो के दर्शन हो रहे है, वह प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुञ्जर समाधि सम्राट् महातपस्वी आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) (देखो श्रेयोमार्ग अगस्त/६२) की देन है । उन्होने फाल्गुन बदी १३ गुरुवार सन् १८६६ को जन्म लिया, शिवगौडा नाम था, इनके पिता सिद्धगोडा थे, माता अक्काबाई थी, जो जागीरदार थे, बलशाली दयालु धर्मात्मा थे । आयु वृद्धिपूर्वक युवावस्था प्राप्त की, विवाह हो गया, सतान हुई । माता-पिता का स्वर्गवास हो गया, पश्चात् स्त्री का भी स्वर्गवास हो गया, फलत उदासीनता बढती गई, सम्पूर्ण तीर्थों की वन्दना करके सम्यग्दर्शन को दृढ किया । समय पाकर मुनि जिन्नप्पा स्वामी से क्षुल्लक दीक्षा ली । आपको क्षुल्लक आदिसागरजी कहने लगे । आपने तीन महीने बाद ऐलक दीक्षा ले ली । मंगसीर शुक्ला 2 सन् १९१३ में श्री कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र पर कुलभूषण देशभूषण केवली की साक्षी में मुनि दीक्षा स्वय ले ली नामत आपको मुनि श्री १०८ आदिसागरजी कहने लगे । निर्दोष आराधना और दिव्योपदेश के कारण अनेक भव्यजीवो ने आपसे दीक्षाये ली । 2 वर्ष बाद श्रुतपचमी को चतुर्विध सघ ने आपको आचार्य पद पर आसीन किया । एक वर्ष के बाद जन्मस्थली अकलीग्राम मे आपके द्वारा, नवनिर्मित श्री आदिनाथ भगवान के जिनालय की पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा हुई । उसमे आपको चारित्र चक्रवर्ती पद से सुशोभित किया । आपके उपदेशो से अनेक मुनि, आर्यिका, ऐलक क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी व ब्रह्माचारिणी की दीक्षाये हुई । इन सभी दीक्षाओ मे दो प्रमुख दीक्षाये हुई प्रथम मे आचार्य महावीर कीर्तिजी की मुनिदीक्षा एव द्वितीय आचार्य शान्तिसागरजी (दक्षिण) की ऐलक दीक्षा हुई (देखो-आचार्यरत्न श्री देशभूषण महाराज का पावन चरित्र-लेखक बलभद्र-दिव्यध्वनि मासिक) वे समाज, देश राष्ट्र व चतुर्विध सघ के हित चिन्तक रहे । उन्होंने हिसा के ताण्डव नृत्य को हटाकर शाकाहार का प्रचार प्रसार किया, मिथ्यात्व को जड मूल से उखाडा । अपनी अल्पायु जानकर आपने समाधि से पूर्व अपना आचार्य पद अपने सुयोग्य शिष्य मुनि श्री महावीरकीर्ति जी को दिया । सरकार कृत आत्मघात के आरोप को दूर कर फाल्गुन बदी १३ गुरुवार ४ मार्च सन् १९४३ को ऊदगाँव (कुञ्जवन) मे सातिशय समाधि सिद्ध की । उस समय आकाश मे दिव्य वाद्य घोष हुआ था । सल्लेखनाकाल मे आपकी वैयावृत्ति करने के लिये आचार्य शान्तिसागरजी, आचार्य महावीर कीर्तिजी मुनिराज, श्री मुनि नेमिसागरजी आदि अनेक अन्य साधु ऐलक क्षुल्लक व लगभग 2 हजार श्रावक भी पहुँच गये थे । (देखो-हुकमचन्द अभिनन्दन ग्रन्थ)

अमूल्य वचनो से गुथित यह ग्रन्थ परमोपयोगी है जो श्री दिगम्बर जैन विजयाग्रन्थ प्रकाशन समिति, जयपुर से प्रकाशित किया जा रहा है । इसके अध्ययन से उनके पूर्व आदर्शों की भाँति भव्य प्राणी नि.शक भाव से मोक्षमार्ग मे प्रवृत्त होते रहेंगे । इसी आशा से इस ग्रन्थ के प्रकाशन में परोक्ष प्रत्यक्ष सभी सहयोगी कार्यकर्त्ताओ को मेरा शुभ आशीर्वाद है ।

प्रेषक–ताराचन्दजी पाटनी
1132, मनिहारो का रास्ता
महावीर पार्क के सामने, जयपुर

प्रथम गणिनी ज्ञान चिन्तामणी 105 आर्यिका श्री विजयमती माताजी के आशीर्वचन

ससार अथाह सागर है । सन्ताप रूपी ज्वार-भाटो से व्याकीर्ण है । इसे पार करने में गुरुभक्ति सुदृढ और सुरम्य नौका है । भक्ति प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार से साध्य है । प्रत्यक्ष की अपेक्षा परोक्ष गुणानुराग विशेष महत्वपूर्ण है । गुरु स्मृति और उनके सद्‌गुणों से निर्मित साहित्य भक्तो के अन्त करण की शुद्धभक्ति का प्रकाशन तो है ही साथ ही पाठकों के अन्तर्जगत में भी पवित्र भावो का जाग्रत करने मे सक्षम होता है । विजयपताका के रूप में यह भव्यो को आह्वान कर चारित्र निर्माण का सन्देश देती है । मुझे यह ज्ञात कर कि ''दि जैन विजयाग्रन्थ प्रकाशन समिति'' द्वारा विश्ववंद्य, महान ऋषिराज, श्री दिगम्बराचार्य, चारित्रचक्रवर्ती, मुनिकुञ्जर समाधि सम्राट् आचार्य श्री 108 आदिसागर जी (अकलीकर) महाराज की पावन स्मृति में ''अभिनन्दन ग्रन्थ'' प्रकाशन होने जा रहा है । यह ग्रन्थ आचार्य श्री के जीवन की महत्ता, गरिमा और महानता का ज्ञान तो करायेगा ही साथ ही विविध, आगमोक्त, सैद्धान्तिक, तात्विक एव सामाजिक विषयोंका परिज्ञान कराने में भी सक्षम रहेगा । विशेषत: हमारे जीवन को सात्विक भाव, विचारो से युक्त कर सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र की दिशा प्रदान करेगा । महान् महापुरुषो का जीवन स्व पर प्रकाशक होता है । आपका यह कार्य सस्था का गौरव बढायेगा ऐसा हमे विश्वास है ।

समिति के कार्यकर्ताओ ने यह अत्यन्त प्रशसनीय, सराहनीय एव अभूतपूर्व कार्य किया है । नि सन्देह १२९ वर्ष पूर्व का सजीव चित्रण वैज्ञानिक अन्वेषण है जो आश्चर्यान्वित करने वाला है । परन्तु सत्य और समीचीन होने से चमत्कारिक एव शिक्षाप्रद है । अत प्रबन्ध सम्पादक श्री नाथूलाल जैन, सम्पादक श्री महेन्द्र कुमारजी जैन एवं अन्य सभी सहयोगियों एव द्रव्य दाताओ को हमारा पूर्णत: आशीर्वाद धर्मवृद्धि है कि वे सतत् इसी प्रकार आर्ष परम्परा के पोषक साहित्य का निर्माण कर देव शास्त्र गुरु के सच्चे भक्त बनें और सम्यग्ज्ञान प्राप्त करें ।

प्र ग १०५ आ विजयमती माताजी

सन्देश

परम हर्ष हुआ यह ज्ञात करके कि वर्तमान सदी के प्रथमाचार्य मुनिकुञ्जर चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) की स्मृति में ''अभिनन्दन ग्रन्थ'' प्रकाशित होने जा रहा है। तप पूत महानात्माओ का स्मरण अशुभकर्मों के प्रणाश मे सहज, असफल साधक होता है। आचार्यों मे भी प्रधान, प्रमुख जो होता है, उसे ''कुञ्जर'' या मुनिकुञ्जर कहा जाता है। अत आचार्य, चारित्रचक्रवर्ती श्री आदिसागरजी मुनिराज नि सन्देह विशुद्ध दिगम्बरत्व के प्रस्थापक, पोषक और वर्द्धक रहे होगे। ऐसे निर्दोष आर्ष परम्परा के प्रवर्तक व प्रकाशक प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुञ्जर मुनीन्द्र के पावन चरणो मे अपनी श्रद्धा, भक्ति, विनय पूर्वक आत्मकल्याण की भावना से श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

श्री निर्मल छाबडा बी कॉम एल एल बी

कोषाध्यक्ष-

श्री आदिनाथ तेरापथ पचायत मंदिर, मदनगज-किशनगढ

शुभ कामना

चारित्रचक्रवर्ती मुनि कुञ्जर परम पूज्य आचार्य 108 श्री आदिसागरजी ''अकलीकर'' महाराज ने सत्य अहिसा और अपरिग्रह का समाज को सन्देश दिया है। ऐसे सन्देश को आत्मसात कर हम देश में समतायुक्त समाज की रचना की दिशा मे प्रगति कर सकते हैं।

108 आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज का 81वा दीक्षा दिवस समारोह जो कि आनन्दपुर कालू (राज) मे उनके तृतीट पट्टाधीश आचार्य शिरोमणी सिद्धान्त चक्रवर्ती श्री १०८ सन्मति सागरजी महाराज व आ प्र ग १०५ श्री विजयमति माताजी के सानिध्य में मनाया गया है। इसी के उपलक्ष मे प्रकाशित होने वाली पुस्तक ''आचार्य आदिसागर अभिनन्दन ग्रन्थ'' के लिए मेरी शुभ कामनाये है। परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती, मुनिकुञ्जर सम्राट् श्री आदिसागर जी के पावन चरणकमलद्वय मे हमारा कोटि-कोटि नमस्कार।

सुभाष चन्द जैन, मन्त्री

श्री दिगम्बर जैन पंचायत (पंजी)

पहाडी धीरज, दिल्ली-110 006



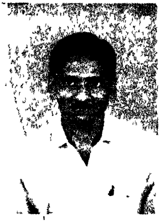
श्रद्धांजलि

समाधि सम्राट परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती बीसवीं सदी के प्रथम आचार्य श्री आदिसागर जी अंकलीकर ने आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी महाराज को निर्ग्रंथ दीक्षा एवम् प्रथम आचार्य पद देकर हमारे उत्तर भारत में चार चाँद लगा दिये। आपही के शिष्य आचार्य श्री गुरुवर विमल सागर जी महाराज के धर्मध्वज को दसों दिशाओं में फहरा रहे हैं। आज इस संसार में मिथ्यात्व को हटाकर अहिंसा में प्रवृत्ति कराने वाले हमारे परमाराध्य आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज हैं। यह सब आज वर्तमान में निर्ग्रन्थ मुद्रा के दर्शनों का एवम् आत्मशांति का लाभ हो रहा है इसका श्रेय परम पूज्य आचार्य श्री आदिसागर जी महाराज अंकलीकर को है। मैं भी उन जैसा आत्म कल्याण करने की भावना को भाऊँ, उनके चरणों में श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ। नमोस्तु। नमोस्तु॥ नमोस्तु॥

उषा . जैन?

सम्पादकीय

श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्राय नमः



परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर), समाधि सम्राट तीर्थभक्त शिरोमणी 108 परम्पराचार्य परमेष्ठी श्री महावीर कीर्तिजी महाराज, सन्मार्ग दिवाकर वात्सल्यमूर्ति करुणासागर श्री 108 आचार्य विमलसागर जी महाराज, सिद्धान्त चक्रवर्ती आध्यात्म बालयोगी तपस्वी सम्राट श्री 108 आचार्य सन्मति सागर जी महाराज, बालब्रह्मचारी 108 गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज एव प्रथम गणिनी आर्यिका 105 श्री विजयमती माताजी एव समस्त दिगम्बर जैन साधुओ, साध्वियो के चरण कमलो मे त्रिवार नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु एवं वन्दामि ।

श्री दिगम्बर जेन विजयाग्रन्थ प्रकाशन समिति झोटवाडा की स्थापना परम् पूज्य प्र ग आर्यिका श्री 105 विजयमती माताजी के आशीर्वाद से ब्रह्मचारी स्व श्री मोतीलाल जी बडजात्या कामां निवासी द्वारा सन् 1984 में की गई थी । यह सस्था तब से अब तक निरन्तर जैन ग्रन्थो का प्रकाशन करती रही है । पूज्य आचार्यों साधुओं एवं विद्वानो की जो प्रतिक्रियाये हमे प्राप्त होती हैं उन्हीं का परिणाम है कि यह सस्था प्रत्येक ग्रन्थ को एक नये उत्साह के साथ प्रकाशित कर रही है ।

इस सस्था का 20वा ग्रन्थ ''आचार्य श्री आदिसागर (अकलीकर) अभिनन्दन ग्रन्थ'' आपके कर कमलों मे प्रस्तुत है । इस ग्रन्थ में 5 खण्ड दिये है प्रथम खण्ड में परम् पूज्य समाधि कला के प्रणेता चा च आचार्य श्री 108 आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) को श्रद्धांजलियाँ, द्वितीय खण्ड मे आचार्य श्री का जीवन परिचय एवं चित्रादि दिये गये हैं जिससे आपको इतिहास के गर्भ से अनेक प्रमाणिक तथ्यों की जानकारी मिलेगी । इसी खण्ड मे परम् पूज्य समाधि सम्राट् 108 आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी महाराज की स्व लिखित डायरी के कुछ पन्नो की फोटो कापिया ज्यों की त्यो दी गई हैं जिनमें उन्होंने मुनिकुञ्जर समाधि सम्राट आदिसागर महाराज (अकलीकर) को ''आचार्य'' शब्द का प्रयोग किया है जिससे स्पष्ट होता है कि परम् पूज्य आचार्य आदिसागर ''आचार्य'' थे । तृतीय खण्ड में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के महात्म्य पर प्रकाश डालते

समिति के संस्थापक



स्व० श्री मोती लाल जी बडजात्या



[illegible]



परम पूज्य [illegible] ब्रह्मचारी [illegible]
[illegible] आशीर्वाद लेते [illegible] ।

हुए बताया है कि ये ही चिरस्थायी सुख (मोक्ष) के साधन हैं । चतुर्थ खण्ड महान् विद्वानों के विभिन्न विषयों पर समाजोपयोगी लेखो का संग्रह है । पाँचवें खण्ड मे परम् पूज्य समाधि सम्राट् 108 आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज के समाधि दिवस समारोह पर अजमेर में आयोजित विद्वद्सम्मेलन मे विद्वानो द्वारा व्यक्त किये गये विचारो का संकलन है (जो कि केसिटो के आधार पर हैं) ।

पाँच खण्डो का वृहद् ग्रन्थ तैयार कराने मे उन सभी विद्वानो का मै आभारी हू जिन्होने अपने लेख समय पर हमे भिजवाये । मुझे आशा है कि यह वृहद् ग्रन्थ जिसमे महत्वपूर्ण जानकारी के साथ ज्ञानवर्धक लेख हैं आप सबको अवश्य पसन्द आयेगा ।

श्री दिगम्बर जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति पाठको को ग्रन्थ नि शुल्क अथवा पोस्टेज व्यय पर अथवा न्यूनतम मूल्य पर गत 10 वर्षो से समय-समय पर उपलब्ध करा रही है, इस सबके लिये उन द्रव्य दातारो का आभारी हूँ जो निरन्तर इस सस्था को आर्थिक सहयोग देकर इस उद्देश्य को सफल बनाने मे महयोग तो कर ही रहे है साथ ही जिनवाणी माता के प्रचार एव प्रसार से पुण्यार्जन कर रहे हैं ।

ग्रन्थ मे सग्रहीत लेख पूज्य आचार्यो उपाध्यायो, मुनियो, आर्यिका माताजी प्रतिष्ठित विद्वानो के लिखे हुए है । मैंने इनके प्रूफ सशोधन मे पूर्ण सवधानी रखी है परन्तु विषय सामग्री मेरे अल्प ज्ञान से कही ऊची है, त्रुटि रह जाना सम्भव है । आपसे सविनय निवेदन करना चाहूँगा कि आप उन त्रुटियो को शुद्ध कर ही अध्ययन करें तथा मुझ अल्पज्ञानी के भक्तिमय भाव मात्र से किये इस प्रयास को ध्यान मे रखते हुए क्षमा करेगे/सुधार सूचना देगे ।

ग्रन्थ प्रकाशन एव व्यवस्था मे नाथूलाल जैन प्रबन्ध सम्पादक तथा अन्य सदस्यो का जो सहयोग रहा उसके लिए मै उनका आभारी हूँ । ग्रन्थ छापने एव समय पर तैयार कराने मे प्रिंटिंग सेन्टर जयपुर के व्यवस्थापक श्री नन्द किशोर शर्मा का पूर्ण सहयोग रहा है, मै उन्हे हार्दिक धन्यवाद करता हूँ ।

अन्त मे ग्रन्थ विमोचनकर्त्ता परम् पूंज्य निमित्त ज्ञान शिरोमणी 108 आचार्य श्री विमल सागरजी महाराज, गुरुवर्य 108 सि च आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज एव प्रथम गणिनी आर्यिका श्री विजयमती माताजी के चरणार्विन्दो मे पुन बारम्बरा नमोस्तू करता हुआ आशीर्वाद की अभिलाषा लिए हुए-

गुरुभक्त

महेन्द्र कुमार जैन (बडजात्या)

निमित्त ज्ञान शिरोमणि कलिकाल सर्वज्ञ
श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी महाराज

विमलाष्टक

तुभ्यं नम· सकल साधु गणाधिपाय ।
तुभ्य नम. सकल शिष्य सुबोधनाय ॥
तुभ्यं नम· सदुपदेश विबोधनाय ।
तुभ्य नम विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥ १ ॥

तुभ्य नम त्रिजगदार्तिहराय ।
तुभ्यं नम सकल शान्ति कराय नाथ ॥
तुभ्यं नम· सकल दु ख विशोषणाय ।
तुभ्य नम विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥ २ ॥

सूरि प्रधान करुणा मृतसागराय ।
तुभ्यं नम सकल मगल पोषकाय ॥
तुभ्य नम सकल दुख हराय नाथ ।
तुभ्यं नम. विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥ ३ ॥

तुभ्य नम चरण चक्रधराय धीमन् ।
तुभ्यं नम· परम मार्ग सुमोक्ष गामिन् ॥
तुभ्यं नम· ध्यान तपो विराजन् ।
तुभ्यं नम विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥ ४ ॥

तुभ्यं नमः परम शान्ति प्रदायकाय।
तुभ्यं नमः निमित वरबोध विशारदाय ॥
तुभ्यं नमः जिनप भक्ति परायणाय।
तुभ्यं नमः विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥ ५ ॥

तुभ्यं नमः सकल चित्तह्याय नाथ।
तुभ्यं नमः प्रबल बुद्धि विकासकाय ॥
तुभ्यं नमः परमयोग तपोधनाय।
तुभ्यं नम· विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥ ६ ॥

तुभ्यं नम· परम धर्म प्रभावकाय।
तुभ्यं नमः परम तीर्थ सुवन्दकाय ॥
'स्याद्वाद' सूक्ति सरणि प्रतिबोधकाय।
तुभ्यं नम· विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥ ७ ॥

आचार्य वर्य मानधं सुखृन्द वन्द्यं।
वात्सल्य मूर्ति मतुलं विनिवृत दोषं ॥
आदित्य रश्मि समकान्ति वपु:प्रदीप्त।
वन्दे गुरु विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥ ८ ॥

ग्रन्थ प्रकाशन समिति को द्रव्य दातारों का नाम

1	Sh Mahendra Kumar Pandya 73, Beeba Street, Staten island, New Yark-10301	51,000/-
2	श्री मदनलाल जी चूडीवाल एव अन्य कलकत्ता	51,000/-
3	श्री रविकुमार जी घानकरी जालना	30,000/-
4	स्व श्रीमती फूटर बाई धर्मपत्नि स्व पुखराज जी पाटनी की स्मृति में श्री दयाचन्द गोधा आनन्दपुर कालू	25,000/-
5	श्री मन्नालाल जी, अशोका आयल इण्डस्ट्रीज निवाई	11,000/-
6	श्री रिखब चन्दजी अजित कुमारजी कासलीवाल निवासी बलून्दा (पाली) प्रवासी सेलम	11,000/-
7	श्री सुबोध कुमारजी जैन, इटावा	11,000/-
8	कु सविता बाई जैन द्वारा भागचन्द जी कासलीवाल बलून्दा	10,000/-
9	श्री रामअवतार राणा पुत्र श्री प्रभुलाल जी राणा जयपुर	10,000/-
10	श्रीमती मुन्नी देवी धर्मपत्नि श्री लक्ष्मीनारायण जी फतेहपुरिया, जयपुर	5,101/-
11	श्री जोरावर सम्पत लाल बाकलीवाल, मेडतासिटी	5,000/-
12	श्री श्री निवास राजकुमार जी जैन, मद्रास	5,000/-
13	धर्मश्रेष्ठी गुरुभक्त श्री सरदारमल जी खण्डाका, जयपुर	5,000/-
14	श्री सोहनलाल एव श्रीमती पद्मा देवी पहाडिया, नागौर वाले, कलकत्ता	2,500/-
15	सौ कमल श्री जैन, जयपुर	2,100/-
16	श्रीमती अलका पाटनी, भीलवाडा	2,000/-
17	श्री भवरलालजी काला, जयपुर	2,000/-
18	श्री प्रीतम कुमार जी जैन गोधा, जयपुर	2,000/-
19	श्री कनक मल जी जैन सिविल लाइन, जयपुर	1,100/-
20	श्री पन्नालाल सेठी धर्मपत्नि कमला देवी लाडनू वाले रामगज मडी	1,100/-
21	श्रीमती कमला देवी धर्मपत्नि श्री राजकुमार गगवाल, ब्यावर	1,100/-
22	ब्र बहिन गुलकन्दी बाई मदनगज, किशनगढ	1,000/-
23	सुश्री दीपिका राणा पुत्री श्री रामअवतार जी राणा, सेठी कॉलोनी, जयपुर पेन्टिंग प्रतियोगिता में विजयी होने के उपलक्ष में	1,000/-
24	श्रीमती जयमाला धर्मपत्नि श्री अशोक कुमार बाकलीवाल, मेडतासिटी	1,000/-
25	चि आभा एव निधि के तेला उपलक्ष में श्री निर्मल कुमारजी छाबडा, मदनगंज किशनगढ	1,000/-
26	श्री छोटेलाल जी गिरीश चन्द जी जैन एतमादपुर (आगरा)	501/-
27	श्रीमती कचन बाई काला धर्मपत्नि स्व श्री शीतल प्रसाद जी जयपुर	501/-
28	श्री पारसमल जी पाटनी, मेडतासिटी	500/-
29	ब्र बहिन मैना बाई जैन आनन्दपुर कालू	500/-
30	श्री प्रीतम कुमार जी एव मित्र, जयपुर	333/-

सहयोग के लिए समिति की ओर से साधुवाद,

नाथूलाल जैन "टोंकवाला"
प्रबन्ध सम्पादक एवं अध्यक्ष
श्री दि जैन मन्दिर झोटवाडा
प्रबन्ध समिति, झोटवाडा जयपुर

समिति के आर्थिक सहयोगी



दानवीर ब्र श्री मदन लाल जी चूडीवाल
कलकत्ता



श्री अजय कुमार चूडीवाल
कलकत्ता



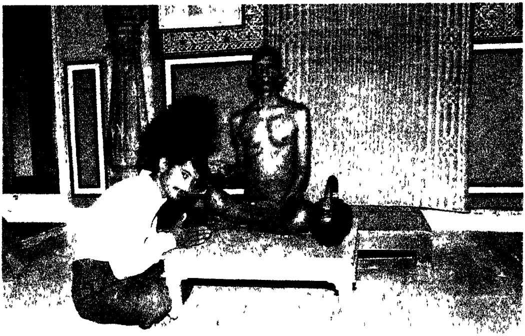
श्री अरविन्द कुमार चूडीवाल
कलकत्ता



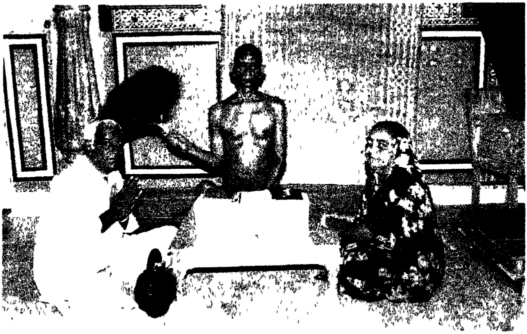
दानवीर धर्म श्रेष्ठी संघपति गुरुभक्त श्री सरदारमलजी खंडाका, जयपुर



श्रीमती ग्यारसी देवी धर्मपत्नी श्री सरदारमलजी खंडाका, जयपुर



[illegible] किशनगढ़
[illegible] आचार्य [illegible] सन्मति सागरजी [illegible] से आशीर्वाद लेते हुए



दानश्रेष्ठी श्री रिखव चन्दजी एव श्रीमती कवरी देवी कासलीवाल
प० पूज्य सि च १०८ आचार्य सन्मति सागरजी महाराज से आशीर्वाद ग्रहण करते हुए



परम पूज्य [illegible]



परम् पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती तपस्वी सम्राट १०८ आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज एव आचार्य श्री सुधर्म सागरजी महाराज की सेवा मे खडे हैं श्री राम अवतार राणा एव उनकी धर्मपत्नी।



[illegible]

[illegible]



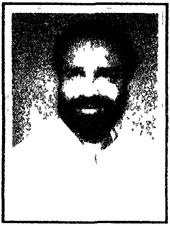
[illegible]



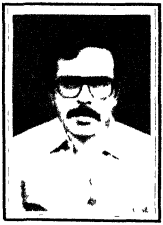
श्रा सत कुमार



श्रा मा त मृति



श्री [illegible]



श्रा एम के सग्टाना



श्रा रघुवश सिघल



श्री मनाज गगवाल

आचार्य आदिसागर (अंकलीकर)
अभिनन्दन ग्रन्थ

प्रथम खण्ड

प. पू. चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुंजर समाधि सम्राट
२० आचार्य श्री आदिसागर (अंकलीकर) महाराज
को
आचार्य, उपाध्याय, मुनिगण, आर्यिका, ऐलक,
क्षुल्लक, क्षुल्लिका ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, विद्वान्
पण्डित एवं समाजसेवकों द्वारा

श्रद्धांजलियाँ

श्रद्धांजलि

वन तपस्वी, विलक्षण तपस्या प्रभावी, अद्‌भुत चमत्कारी
संत सप्तदिवस उपवासी, एकान्तप्रिय, प्रतिष्ठा निर्मोही परम पूज्य
मुनिकुंजर समाधि सम्राट चारित्र चक्रवर्ती 108 आचार्य

श्री आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर)

के

चरणारविन्दों मे इस भावना के साथ कि
"हम भी उनके द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर चले"
भाव श्रद्धा भक्ति पूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं ।

नाथूलाल जैन
प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कुमार जैन "बडजात्या"
सम्पादक

श्री दिगम्बर जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति झोटवाडा,
जयपुर – 302 012



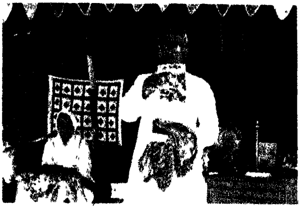
मर्गासिर शुक्ला २ बुधवार ता १५/१२/९३ को आनन्दपुर कालू मे चारित्र चक्रवर्ती १०८ श्री आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) के ८१वे दीक्षा समारोह एव प पू तृतीय पट्टाधीश तपस्वी सम्राट वात्सल्यरत्नाकर श्री १०८ आचार्य सन्मति सागर जी महाराज के ससघ केश लोच के शुभ अवसर पर समिति द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'दिव्य देशना' का विमोचन करते हुए श्री धर्म चन्दजी गादी ब्यावर (अजमेर)



[illegible] रत्नाकर [illegible] सागर [illegible]



'[illegible] शिक्षा' ग्रन्थ का विमोचन करते हुए परम पूज्य १०८ गणधराचार्य श्री कुन्थु सागरजी महाराज पचकल्याण चौतरी



ग्रन्थ विमोचन

परम पूज्य प्रथम गणिनी आर्यिका १०५ श्री विजयमती माताजी के सानिध्य मे श्री कमल कुमार जी जैन कोटा द्वारा 'शील की महिमा' ग्रन्थ का विमोचन, देरोल

"तीर्थंकर [illegible]





[illegible]

[illegible]

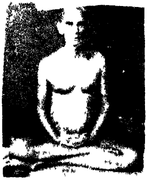






आचार्य मुनि कुंजर समाधि सम्राट १८ च. च. श्री आदिसागर जी (अंकलीकर) १०५ ज्ञा. चि. श्री विजयमती माता जी के ६६वे जन्मोत्सव पर गुमानमल जी लोढा सासद के द्वारा विमोचित "आइये सच को जाने"

गुरू पदपंकज में श्रद्धा सुमन



आ सन्मति सागर

पूज्यपाद परमाराध्य गुरूदेव श्री १०८ चारित्र-चक्रवर्ती मुनिकुजर समाधि सम्राट् आचार्यवर्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) को जिन्होंने अपने जीवन काल में परखा और अपनाया उन्होंने मानव जीवन को सफल कर लिया है । आपकी परम्परा मे शिष्यत्व स्वीकार करने मे वैराग्य के अतिरिक्त आपका परमोच्च और महानतम व्यक्तित्व भी मेरे लिये कारण था । मैंने, आपको आपके पट्टाधीश परम पूज्य आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज एव आपके प्रथम शिष्य आचार्य विमलसागरजी महाराज के माध्यम से अतिनिकट से जाना। आपके बराबर अन्य महापुरुष अपनी आयु मे दृष्टिगोचर नहीं हुआ । मुझे जो कुछ उपलब्ध हुआ है यह समस्त देन आपकी परम्परा की है । मुझे सबसे बडी व्यथा है कि आपकी सल्लेखना के समय वैयावृत्ति करने का अवसर न मिल सका, यही नहीं जीवन में प्रत्यक्ष दर्शन भी प्राप्त न हो सके ।

इस स्वेच्छाचारी युग मे गुरुओ का अस्तित्व मिटाने मे जनता पीछे नही है पर खोज करने पर बहुत जानकारी आपके विषय मे प्राप्त हुई । सिद्ध परमेष्ठी की जानकारी देने वाले अरहत होते हैं उसी प्रकार गुरू की जानकारी वाले उनके शिष्य होते हैं ।

वर्तमान मे साहस गति जैसे उन विद्याधरो की कमी नहीं है, जो विद्याबल से सुग्रीव की पत्नी सुतारा का पति बनना चाहता था परन्तु ध्यान रहे रामचन्द्र जैसे न्यायाधीशो का भी अभाव नहीं है, जिन्होंने सत्य प्रगट कर ही दिया ।

भगवती आराधना मे बताया है कि निर्णय, आगम युक्ति और प्रमाण से होता है । इन तीनो के माध्यम से मुझे आचार्य श्री शातिसागरजी महाराज द्वारा वदित दक्षिण भारत के वयोवृद्ध दिगम्बर सत आदर्श तपस्वी अप्रतिम उपसर्ग विजेता महामुनि चारित्र-चक्रवर्ती मुनि कुञ्जर सम्राट् महान् तपस्वी आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) की अद्वितीय जानकारी प्राप्त हुई । उन महापुरुष महात्मा का पदानुगामी बनकर मैं परम दुर्लभ मानव जीवन को सफल कर सकूँ इसी भावना से परम निर्बाध कल्याणकारी नि श्रेयस परपरा के उद्घाटक गुरूदेव के चरणो मे मेरी मन वचन काय से श्रद्धाञ्जलि है ।

प्रेषक

एस. जयकुमार कोठारी

आनन्दपुर कालू



श्रद्धांजलि

जिनशासन मे आत्म कल्याण के लिए अगर मोक्षमार्ग है तो रत्नत्रय मार्ग है, इसको छोडकर दूसरा आत्मशाति का कोई मार्ग ही नही हे। तीर्थकरो से लेकर महामुनियो ने भी इस रत्नत्रय मार्ग ५। अपनाकर अपना आत्मकल्याण कर लिया, यही मार्ग अनादिकाल से चलता आ रहा है, भगवान महावीर के मोक्ष जाने के बाद श्रुत केवली, अगधर, श्रुतधर, तपस्वी कुद कुदादि महा-मुनीश्वर हुए जिन्होंने उसी रत्ननत्रय मार्ग को अपनाया जिससे वीरसेन जिनसेन भी हुए, कलियुग के उतार-चढाव ने रत्नत्रय मार्ग में परिवर्तन ला दिया, उसके प्रभाव से रत्नत्रयधारियों की चर्या मे भी बहुत परिवर्तन आ गया, एक तरफ से शकराचार्य ने एक तरफ से रामानुजाचार्य ने तो एक तरफ से मुसलिम (इसलामी) काल ने बडा परिवर्तन ला दिया, इने-गिने रत्नत्रयधारी रह गये, चारित्र भी शिथिल हो गया, रत्नत्रयधारियो ने भी दिगम्बर मुद्रा छोड़ दी, लगोटी स्वीकार कर ली, मठाधीश बने, परिग्रह का आडबर बढा और हुई भट्टारक मार्ग की स्थापना। जो आज तक दक्षिण प्रदेश में चल रही हे, यह एक दिगम्बर गु.ा का ही बिगडा हुआ रूप है। बीसवीं शताब्दी में एक फिर परिवर्तन आया, उसके पहले भी भट्टारक मार्ग को छोडकर दक्षिण मे यदा-कदा दिगम्बर साधु होते रहे किन्तु स्वय दीक्षित होते थे, अज्ञानता के कारण मन माना चारित्र रहता था, ग्रामादिको मे आहार के लिए आना हो तो वस्त्र लपेटकर आना आदि-आदि।

ये सब शिथिल चर्या आदिसागर भोसेकर और बोरगाँवकर व शातिसागरजी के गुरुओ मे थी जिसका इतिहास साक्षी है। बीसवीं शताब्दि के एक मुनि कुजर जो मुनियो में श्रेष्ठ, तपस्वी आचार्य आदिसागर (अकलीकर) हुए वे अकलीकर के नाम से प्रसिद्ध हुए, और ऊदगाँव के नजदीक कुंजवन मे घोर तपस्या करते थे, जो हमारे आचार्य महावीर कीर्ती जी के गुरु थे, मुनि कुजर आचार्य श्री आदिसागर जी (अकलीकर) अपने शिष्य आचार्य महावीर कीर्तिजीको निर्यापकाचार्य में १४ दिन की समाधि

धारण कर समाधि प्र हुए, उनकी समाधि के समय मुनि श्री शातिसागरजी मुनि देशभूषणजी भी विद्यमान थे जो वाद मे आचार्य शान्तिसागरजी आचार्य देश भूषणजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। आचार्य शातिसागरजी के शिखर जी की यात्रा के बाद पुन दक्षिण मे पहुँचे तब आचार्य आदिसागर जी अकलीकर की समाधि हुई, और उनकी समाधि के समय देशभूषण, शांतिसागर महावीर कीर्तीजी मौजूद थे, यह बात परम सत्य है। आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) एक महान तपस्वी, चारित्र श्रेष्ठ भव्य महामुनिराज चारित्र चक्रवर्ती थे। बहुधा कुजवन मे तपस्या की यदाकदा अन्यत्र भी विहार किया, किन्तु सागली जिला, काल्हापुर जिला, बेलगाँव जिला, आदि में विहार किया। आचार्य आदिसागर अकलीकर ने दीक्षा धारण करने के बाद अपने शरीर पर न तो कभी भी कोई लगोटी ही धारण की न कोई परिग्रह ही अपनाया।

ऐसे चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) को मेरा शत-शत बार नमोस्तु हो। आपको शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त हो ऐसी कामना करता हूँ। आज वर्तमान मे आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) की परम्परा मे बडे-बडे विद्वान व तपस्वी साधु विद्यमान है, सब अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार जिनशासन की प्रभावना कर रहे हैं। ऐसे महाचार्य मुनिकुंजर आदिसागरजी (अकलीकर) परमगुरू के चरणो मे मेरी श्रद्धा [illegible] है।

कुगवड — गणधराचार्य कुंथुसागर

१ १२ ९३

श्रद्धांजलि

प्राय दक्षिण भारत में धर्म रहेगा, ऐसी एक कहावत है। ''न धर्मो धार्मिकैर्बिना'' वह धर्म धर्मात्मा पर निर्भर है। एक-दूसरे का सबध है, इसीलिए इस शदी मे सर्वप्रथम प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) ने दक्षिण मे जन्मलिया दीक्षा ली। शिक्षा-दीक्षा देने के कारण उनको आचार्य पद भी प्राप्त हुआ, कठिन तपस्या करते थे, निर्दोष चारित्र का पालन करते थे, स्वात्मा मे विचरण करते थे।

आचार्य शातिसागर जी (दक्षिण) ने उनसे ऐलक पद धारणकिया था। प पू आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) की समाधि फाल्गुन वदी १३ गुरूवार ४ मार्च, सन् १९४३ को ऊदगाव (कुजवन) मे हुई थी। यह समाधि आश्चर्यजनक थी, १४ दिनो के बाद हुई थी। सरकार ने आने-जाने के लिए फ्री रेल छोड दी थी। श्रावक, श्राविकाएँ और पीछी कमडल वाले साधु बहुत इकट्ठे हो गये थे, वहा अपार मेला सा लग गया था। आचार्य शातिसागरजी (दक्षिण), आचार्य देशभूषण जी महाराज ने भी उनकी समाधि मे पहुँचकर वैयावृत्ति की थी। अपनी समाधि से पूर्व अपना आचार्य पद अपने योग्य शिष्य मुनि भी महावीरकीर्तीजी महाराज को दिया था, जिसका उत्सव शेडवाल मे राजा महाराजा ब्रिटिश सरकार की उपस्थिति एव लगभग एक लाख जन समुदाय तथा अनेक पीछीधारी साधुओ के समक्ष मनाया गया था। उन प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य श्री आदिसागरजी (अंकलीकर) के चरणो मे श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

उदयपुर **वर्षायोग** **''आचार्य श्री सीमंधरसागर''**



श्रद्धांजलि

परम्पराचार्य

प पू आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी (अंकलीकर) महाराज समाधिसम्राट् चारित्र चक्रवर्ती युग प्रवर्तक इस युग के सबसे प्रथम आचार्यमहान् तपस्वी महीने मे सिर्फ चार दिन आहार लेने वाले चारित्र शिरोमणी अंकलीकर का जीवन महान् था और उन्होंने अपने जीवन में ३२ मुनि दीक्षा दी, जिनमें अंतिम दीक्षा १०८ आचार्य महावीर कीर्तिजी की है, जो कि १८ भाषाओ के जानकार थे। घोर तपस्वी थे। तीन घंटे खड़े होकर सामायिक करते थे। इनकी विद्वता देखकर उनकी तपस्या देखकर के सबसे छोटे होते हुए भी आचार्य पद अतिम समय पर इन्हीं को दिया।

एक बार कुए मे पानी नहीं था तो उन्होने मत्र पढकर कमडल, का जल डालने से पानी भर गया, आज तक भी पानी कम नहीं हुआ। जहा पर तपस्या करते थे उस जगह की मिट्टी लेने से या उस जगह पर नमस्कार करने से बडे से बड़े असाध्य रोग खत्म हो जाते थे। जब केशलोच करते थे तब देव दुदुभि बाजे बजाते थे बाजो की आवाज सुनकर आसपास के लोग एकत्रित हो जाते थे कि आज क्षेत्र पर कौनसा उत्सव हो रहा है। ऐसे ही चमत्कारी आचार्य आदिसागर महाराज(अकलीकर) थे। उन महान् तपस्वी का उत्तर भारत मे विहार न होने के कारण प्रसिद्धि नहीं हुई।

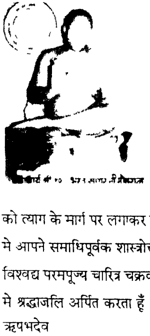
आचार्य शातिसागर जी महाराज को गृहस्थ अवस्था मे जब उनको वैराग्य हुआ तो वे उनसे दीक्षा लेने गये आचार्य श्री ने उनसे कहा कि मैं दीक्षा जगल मे यहाँ दे सकता हूँ। उन्होंने कहा कि पच कल्याणक हो रहा है वहा पर चलें वहा दीक्षा लेने से प्रभावना ज्यादा होगी। आचार्यश्री ने उत्तर दिया कि मैं आत्मध्यान छोडकर वहिरग प्रभावना का ज्यादा महत्व नहीं समझता हूँ। साधु की साधना आत्म ध्यान से अनेक प्रकार की सिद्धियां होती हैं यह सुनकर के आचार्य शातिसागर जी महाराज ने भट्टारक जी से क्षुल्लक दीक्षा ली फिर ऐलक दीक्षा आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर से ली।

आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) महाराज प्रसिद्धि में नहीं आए परन्तु इस समय उनकी परम्परा में आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज आचार्य विमलसागरजी महाराज आ सन्मतिसागरजी महाराज आ प्रवर्तक पार्श्व सागर महाराज गणधराचार्य कुंथुसागरजी महाराज आ सभवसागरजी

महाराज गणिनिआर्यिका वियतमतिमाताजी आदि महान् तपस्वी चमत्कारी विशाल सघ को लिए विहार कर रहे है। उनकी परम्परा के साधु अभी आचार्यो की सख्या मे ज्यादा हैं। एक बार उन आचार्य महाराज ने 20 मुनि क्षुल्लक ऐलक और अर्जिका झुल्लिका सहित विशाल सघ को लेकर सम्मेद शिखर जी की यात्रा की। उस समय नागपुर मे कहा कि एकान्त मत का प्रचार छोडो अगर तुममें विद्वत्ता है तो हमसे शास्त्रार्थ करो। ऐसे निर्भीक वक्ता थे। आगम के अनुसार बोलते थे। विधवा विवाह विजातीय विवाह करने वालो से आहार नहीं लेते थे। आगम का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। उन बीसवीं सदी के सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) को सिद्धभक्ति श्रुत भक्ति आचार्यभक्तिपूर्वक मन वचन काय से बारम्बार नमोस्तु करते हुए अपनी शक्ति प्रगट हो, इसलिए में उनको श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

सोनागिर **आचार्य पार्श्वसागर**

१३-११-९३



श्रद्धांजलि

जैन धर्म अनादिकालीनधर्म है "प्रधान सर्व धर्माणा" जेन धर्म मे रत्नत्रयधारी को प्रमाण माना गया है, उन्हीं रत्नत्रय धर्म के पालन करने वालो मे महान् एव प्रमुख आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) हुए हैं। जेसा कि ज्ञात होता है कि आप एक महान् तपस्वी वीतरागी एव निस्पृही आचार्य थे। आपने-अपने उपदेशो से दक्षिण भारत मे जैन धर्म की महती प्रभावना की थी, एव श्रावको को त्याग के मार्ग पर लगाकर इस ससार में डूबते लोगो को धर्मरूपी पतवार बनकर तिराया है, अत मे आपने समाधिपूर्वक शास्त्रोक्त ढग से अपने नश्वर शरीर का विसर्जन किया। उन प्रात· स्मरणीय विश्वद्य परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) के चरणो मे श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

ऋषभदेव **एलाचार्य १०८ भरतसागर**

१८-११-९३ (शिष्य आचार्य सुमतिसागरजी)

श्रद्धांजलि

परमपूज्य आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) का जन्म अकलीग्राम महाराष्ट्र मे फागुन बदी १३ गुरूवार सन् १८६६ मे हुआ था । धार्मिक जीवन रहा । आप महाशक्तिशाली थे जिनालय की शिखर पर शिलाऐ अकेले ही चढा देते थे । आप बडे दयालु थे भूखों को अनाज स्वय का दिया और दूसरो का भी दिलवाया । समय पाकर वैराग्य हो गया । सन् १९१३ मगशिर शुक्ला २ मंगलवार को निर्ग्रंथ दीक्षा स्वय जिनेद्रदेव की साक्षी मे कुथलगिरि सिद्धक्षेत्र पर ली थी तथा मुनिमार्ग को पुनर्जीवित किया। कठोर तपस्या करते थे । उन्हे एक प्रकार की ऋद्धि प्राप्त हो गई थी जिसके कारण उनकी तपोभूमि की मिट्टी से लोगो के रोग चले जाते थे । आपको जेठ सुदी ५ गुरूवार सन् १९१५ में आचार्य पद दिया गया था । बहुत बडा सघ था आपकी समाधि ऊदगाँव कुजवन मे फागुन बदी १३ गुरूवार ४ मार्च सन् १९४३ को हुई थी, समाधि के समय अपना आचार्य पद अपने शिष्य मुनि श्रीमहावीर कीर्तीजी को दिया था । आचार्य शातिसागरजी (दक्षिण) ने आपसे ऐलक दीक्षा धारण कर आपको अपना गुरू बनाया था तथा समाधि के समय पर भी पहुँच गये थे और अन्य इतने साधु वहा मौजूद थे कि वहा साधु ही साधु चारो ओर दिखाई देते थे । मैं उन बीसवीं सदी के सर्वप्रथम प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) के चरणो मे मैं नमोस्तु करता हुआ श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

आचार्यकल्प हेमसागर

1 मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि २० वीं सदी के प्रथममुनिकुञ्जर सम्राट् दिगम्बर जैन आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) का स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन होने जा रहा है, इस स्तुत्य कार्य के लिए बधाई । नि स्सन्देह यह ग्रन्थ बहुत पहले ही प्रकाशित हो जाना चाहिए था क्योकि यह ग्रन्थ भविष्य को आलोकित मोक्षमार्ग को प्रशस्त करेगा ।

2 २० वीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैन आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) पर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन की योजना को मूर्त रूप देने सम्बन्धी मिली जानकारी से बेहद प्रसन्नता हुई । वास्तव में आचार्य श्री ने अपनेजीवन काल को बिन्दू-2 से सिन्धु की भाति आत्मज्योति से आलोकित कर समग्र समाज का पथ प्रदर्शन किया । उनके उपदेश आज भी प्रासांगिक व अकाट्य हैं । मैं उन लोकोत्तर महानसत के चरणो मे अनेकश नमस्कार करता हूँ ।

3 वर्तमान सन्दर्भ में प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज पर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित करने का विचार बहुत ही सामयिक है, मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई। लगता हे उनके विराट व्यक्तित्व व दर्शन पर सामग्री जुटाना दुष्कर कार्य है फिर भी समाज के प्रबुद्ध वर्ग का यह किचित प्रयास प्रसशा योग्य है।उन सभी सत्कर्माओ को मेरा पूर्ण आशीर्वाद हे जिन्होने तन, मन, धन समय लगाकर अकाट्यगुरुभक्ति का परिचय दिया है। ग्रन्थ प्रकाशन समिति के सभी सदस्यो को धर्मवृद्धि।

एलाचार्य मुनि श्री वीरनन्दीजी

श्रद्धांजलि

परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) बडे तपस्वी थे, शक्तिशाली थे, ज्ञानी ध्यानी थे, आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज ने उनसे मुनीदीक्षा लेकर अपना गुरू बनाया उनसे प्रायश्चित लेते थे। बहुत बडा सघ था उनकी समाधि ४ मार्च सन् १९४३ गुरूवार को ऊदगाँव कुजवन मे हुई थी उस समय आचार्य शातिसागरजी आचार्य देशभूषणजी आचार्य विद्यानदजी आदि ७०-८० साधु और हजारो जन समुदाय था। एक तरह मेला लग गया था उन २० वीं सदी के सर्व प्रथम चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) के चरणों में मैं नमोस्तु करता हूआ श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

आचार्यकल्प शीतलसागर



श्रद्धांजलि

इस कलिकाल पचम काल मे एक महापुरुष का जन्म हुआ जिसने इस भीषण युग मे अपनी निर्दोषचर्या का पालन करके भव्यजीवो को सजग कर दिया । प पू आचार्य महावीर कीर्तीजी महारज को इस उत्तर भारत मे किसी मे गुरू बनने की योग्यता नही मिली तब दक्षिण भारत मे जाकर उन महान् आत्मा इस २० वीं सदी के सर्वप्रथम परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) को गुरू बनाया । उनका आचार्य पट्ट भी उन्हीं के द्वारा प्राप्त हुआ । वे मुनिदीक्षा से सन् १९१३ मगशिर शुक्ला को दीक्षित हुए थे और आचार्य जेठ सुदी ५ सन् १९१५ को मिला था और उनकी समाधि फागुन बदी १३ गुरूवार ४ मार्च सन् १९४३ को हुई थी । उस समय आचार्य शातिसागरजी आदि अनेक साधु मौजूद थे । उनके चरणो मे मैं नमोस्तु करता हुआ श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

मुनिसुविधि सागर



श्रद्धा सुमन

अकलीकर मे उदय होने वाला सूर्य शिवगोडा पाटिल बचपन से ही बडे प्रतापी और होनहार बालक थे बाल्य काल मे ही उनमे आलौकिक शक्ति के दर्शन होते थे। अपने ही मित्रों ने एक बार इन्हे एक कमरे मे बन्द कर दिया तो इन्होंने मुक्के मार-मारकर दरवाजा तोडदिया व बाहर आ गये ।अपने बाग मे लगे बडे-बडे कद्दुओ को घूसे मार कर क्षण मे फोड दिया करते थे और भी अनेक शारीरिक व बौद्धिक चमत्कारिक घटनाओं को देखकर लोगो के मुख से अनायास ही "होनहार बिरवान के होत चिकने पात"कहावत प्रस्फुटित हो जाती थी, शिवगोडा पाटिल अभी युवा भी न हो पाये थे कि अकस्मात उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया । तत्पश्चात् अपने छोटे भाई बहनो के पालन-पोषण का भार उनपर आ पडा, फलस्वरूप जीवन सघर्ष कर उनके प्रति अपना पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह किया, मगर जिन महामानव के समाज देश एव विश्व के उद्धार का हिमालय जैसा ऊँचा लक्ष्य हो वह केवल पारिवारिक कर्त्तव्यो का निर्वाह कर कैसे सन्तुष्ट रह सकता है । अनुकूल समय पाकर वे महामानव आत्म कल्याण एव विश्व कल्याणार्थ घर से निकल गये, और भट्टारक जिणप्पा स्वामी से छुल्लक दीक्षा ग्रहण की ।

"REAL BEAUTY IS BEAUTY OF SOUL"

"आत्मा की सुन्दरता ही वास्तविक सुन्दरता है" की विचारधारा तथा आत्मोन्नति की प्रबल इच्छा जिसके हृदय में हिलोरे ले रही थी, वे केवल अणुव्रतो से कैसे संतुष्ट रह सकते थे अत· इस २०वीं सदी के वे प्रथम, सच्चे व कोमल हृदयी महाव्रतो का पालन करने के लिए निर्वाण भूमि कुन्थलगिरी की ओर चल पडे तथा वहाँ जाकर पहाड पर स्थित महामुनि कुलभूषण व देशभूषण वीतराग प्रभु के समक्ष मुनिदीक्षा धारण की उनकी मुनिचर्या ज्ञान एव श्रद्धा गगा की धारा के समान

अत्यन्त निर्मल व पवित्र थी वे मुनि कुन्जर जगलो पहाडो एव नदियो के तटो पर घोर तपश्चरण करने लगे। सच ही कहा हे,

''शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकम् न गजे-गजे ।
माधुवों न ही सर्वत्र, चन्दनम् न वने-वने ।''

वे आचार्य आदिसागर(अकलीकर) प्राय सात-सात दिन तक उपवास करते थे और आहार मे केवल एक ही वस्तु लिया करते थे । मुस्लिम शासन काल मे जब नग्न दिगम्बर मुद्राधारी मुनि नगर मे प्रवेश नहीं कर सकते थे ऐसे घोर सकट काल में वे गावों व नगरो मे धर्म प्रचारार्थ पदार्पण किया करते थे, आचार्य श्री ने कई श्रावक श्राविकाओ को दीक्षा प्रदान कर आत्म कल्याण की ओर अग्रसर किया, व भारत देश में वास्तविक मुनिमार्ग को प्रशस्त किया । ऐसे मुनि कुजर, धर्म प्रवर्तक, अहिसा के पुजारी, दिगम्बराचार्य श्री आदिसागरजी महाराज के पावन चरण कमलो मे श्रद्धावश में गुलाब, चपा, चमेली इत्यादि भावरूपी सुगन्धित सुमनो से सादर श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

''धन्य है भारत भूमि जिस पर तुमने जन्म लिया ।
सन्मार्ग दिखाकर भव्यो को आत्मानुभूति करा दिया ।
धन्य आपका जीवन है जो सबका अनुग्रह करते है,
आदि सिन्धु के चरणो मे हमश्रद्धा सुमन समर्पित करते है ।

मुनि श्री कुमुद नन्दी
सोनीपत

श्रद्धांजलि



इस बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बराचार्य मुनि कुजर परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) ने धर्म के स्वरूप को समझा और उसमे ही रमण कर आनन्द का अनुभव किया। अनेको भूले भटके प्राणियो को भी उसका स्वरूप समझाकर अपने समान किया । उनमे से एक परमपूज्य तीर्थवदना भक्त शिरोमणी आचार्य प्रवर महावीर कीर्तिजी भी थे, जिन्होंने अपने गुरु से मार्ग दर्शन पाकर अनेकानेक जीवो को मोक्ष मार्गी बनाया जो आज भी उस मार्ग पर चल रहे हैं और आगे भी चलती रहेगी । मैं इस सदी के मुनि मार्ग के प्रवर्तक मुनिकुजर, सम्यग्ज्ञान शिरोमणी, सप्तमोपवासी आचार्य श्री आदिसागर जी (अकलीकर) को कोटि सहस्र, सिद्ध-श्रुत आचार्य भक्ति पूर्वक वन्दना करता हुआ श्रद्धाजलि अर्पण करता हूँ ।

मुनि श्री सिद्धान्त सागर

श्रद्धांजलि

परम पूज्य श्री १०८ स्वर्गीय चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) का जन्म अकली ग्राम मे सन् १८६६ फागुन बदी १३ को हुआ था । उन्होंने अपने जीवन को मगशिर शुक्ला २ मंगलवार को त्यागमय बनाकर पूर्णरूप से सयम पालन करते हुए धर्मोपदेश पूर्वक जीवन यापन किया । उन्होंने सयमरूपी पौधा श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज को अपना आचार्य पद दिया । उनके फलस्वरूप आज कई आचार्य उपाध्याय मुनिराज आर्यिका ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका आदि त्यागी गण अपने आत्म कल्याण के मार्ग पर चल रहे हैं और चलते रहेगे । ऐसे महान् परमपूज्य श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) को मैं अपना नमोस्तु करता हुआ अपनी भावभक्तिपूर्वक श्रद्धाजलि अर्पण करता हूँ ।

फलटन
९-११-९३

मुनिदेवसागर
(शिष्य श्री १०८ गुरुवर्य आचार्य
श्री विमल सागरजी)

श्रद्धांजलि

बीसवीं सदी सर्वप्रथम परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुंजर आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अंकलीकर) का जन्म अकली ग्राम में हुआ था। आपने सन् १९१३ मगशिर शुक्ला २ को मुनि दीक्षा कुथलगिरि मे स्वयं जिनेद्र देव की साक्षी मे ली थी। आपकी देशना से अनेक भव्य जीवो नेदीक्षा शिक्षा लेकर अपनी आत्मा का कल्याण किया, आचार्य महावीर कीर्तीजी को मुनि दीक्षा दी और अपना आचार्य पद दिया तथा आचार्य शातिसागरजी को ऐलक दीक्षा दी वे आपसे प्रायश्चित लेते थे। आपकी तपस्या से वे प्रभावित थे। आपको श्रुतपचमी सन् १९१५ को आचार्य पद दिया गया था। चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त हुई थी। ऊदगाँव (कुंजवन) मे आपकी समाधि ४ मार्च सन् १९४३ को हुई थी। आपके चरणो में नमोस्तु करता हुआ मैं श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

मुनि जयसागर

श्रद्धांजलि

परम पूजनीय मुनि कुञ्जर सम्राट् चारित्र चक्रवर्ती श्री आचार्य श्री १०८ श्री आदिसागर जी (अकलीकर) महाराज के विराट स्वरूप पर स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन देश के वर्तमान दौर मे अद्वितीय प्रयास होगा। उनका कदम-कदम पर कोई न कोई चमत्कार अवश्य प्रकाश मे आता था कोन्नूर की गुफा मे एक चट्टान मे अडिग खडे होकर तपस्यारत रहने के दौरान प्रस्फुटित पसीने से सुवासित वातावरण से मृतजीवित हो उठा, ऐसी स्थिति मे उनके प्रति अधिक संख्या मे लोगो की अनन्य भक्ति का उपजना स्वाभाविक व सामयिक ही था, "सबके भले मे अपना भला चाहने वाला मनोमालिन्य से कोसों दूर रहता है" यह उनका कथन आज भी प्रासगिक है, यही वजह है कि वे जहाँ कहीं भी तपस्या में लीन होते, उस स्थल की रज ही कई प्रकार से सन्तोष व आनन्द की अनुभूति कराती थी।

ममता मे समता का भाव उनमे अगाध था, उनकी शैली मे समरसता व जिव्हा पर वाग्वादिनी माता का आसन दिखता था, अलौकिक शक्ति से तारतम्य स्थापित होने के कारण उनकी इस असार संसार मे कोई रुचि नहीं थी। इसी कारण 7-7 दिन तक आहार के बिना भी वे प्रशान्त मुद्रा में तपस्यारत रह जाते थे।

आचार्य श्री पर स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन निस्सन्देह हिसा, असत्यता, चोरी, परस्त्री गमन की भावना, भौतिक सुखो की लालसा पर नियत्रण की दृष्टि समाज को प्रेरित करेगा, अस्तु-

श्री १०८ विजयी नंदी महाराज

श्रद्धांजलि

-स देश की माटी को रत्नगर्भा कहा जाता है। ज्योतिर्मय यह देश पूरे ससार को सम्यक् दिशा बोध कराता है। इसकी अक्षुण्ण सस्कृति मे अनेक ऋषियो, मुनियो व सन्तो का योगदान यथार्थ झलकता है। उस यथार्थता ने आज देश को ऐसा उत्कृष्ट साहित्य दिया जिसकी वजह मे विश्व के अनेक देश विज्ञान के क्षेत्र मे अप्रतिम प्रगति की ओर बढ रहे है।

जैन साहित्य की अपनी अलग ही पहचान है। विश्व मे ऐसा कोई देश नही है जिसमे मा-बाप, भाई, बन्धु रिश्तेदार एव परिजन के प्रति सवेदनात्मक रिश्ते हो। यदि यह विशेषता किसी देश मे है तो वह है हमारा अपना भारत देश जो भौतिकता व आधुनिकता के अविरल प्रवाह के बावजूद भी सवेदन शून्य नहीं बन सका। इस सवेदनात्मक परम्परा के निर्वाह को प्रेरित करने का काम आज भी हमारे गुरुवर ही कर रहे हैं।

गुरु बिना ज्ञान कहा ज्ञान की गगोत्री बहाने का समय-समय पर हमारे आचार्यो, महन्तो, सतो ने अपनी जीवन पद्धति के निष्कर्ष पर आधारित अनेक सामयिक उपदेश दिये। माता-पिता घर-परिवार के सस्कार से साक्षात्कार कराते हैं तो गुरुवर इस असार ससार मे सत्य की उपासना को प्रेरित करते हैं। बीसवीं सदी के प्रथम जैनाचार्य आचार्य श्री १०८ श्री आदिसागरजी महाराज अकलीकर इस परम्परा मे अद्वितीय स्थान रखते हैं। अभी आपकी पावन स्मृति मे स्मृतिग्रन्थ प्रकाशन गुरु भक्ति व अर्हद् भक्ति को वृद्धिगत करने वाली कल्पलता-सी लाभान्वित करेगी ऐसी आशा है। मैं उन अप्रतिम प्रतिभा सम्पन्न समस्त कार्यकर्त्ताओ को आशीर्वाद देता हूँ।

मुनि श्री निश्चयनंदी

श्रद्धांजलि

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी (अकलीकर) की तत्कालीन समय की तप, साधना आज के परिवेश मे अकल्पनीय व अद्‌भुत थी। उनकी साधना सहिष्णुता, समभाव, सत्यनिष्ठा सयमी थी। उनकी स्मृति में ग्रंथ का प्रकाशन इस असार ससार को शाश्वत सुखपथ को दैदीप्यमान करेगा।

देश जिस समय विदेशी आक्रान्ताओ के आघातो से त्रस्त था उस समय आपने स्वय जिनेश्वरी दीक्षा लेकर सम्पूर्ण देश मे तहलका मचा दिया। यहा तक कि विदेशी शासन के आदम अधिकारी भी उनके अद्‌भुत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अविरल मिलने आया करते थे। उनकी कठोर तपस्या व अनुशीला ने चौथे काल का मुनि दीक्षा का वरण सिद्ध साबित किया।

20वीं सदी के आचार्य श्री १०८ श्री आदिसागरजी की गुफा मे वन्य जीवो का रहना और नतमस्तक हो नमन करना आत्म साक्षात् पर ही सभव है। ऐसे विरले मुनि पर जो कुछ लिखा जाएगा, वह वास्तव में सूरज का दिया दिखाने के समान होगा। किन्तु फिर भी यह किंचित प्रयास वर्तमान व भविष्य के समागम मे आत्ममन्थन का कार्य करेगा। इसलिए कार्यकर्त्ताओ को बधाई एव कोटिश शुभकामनाएँ।

१०८ श्री काम विजयनन्दी मुनि

दिगम्बर आर्ष परम्परा के पुनस्थापक एव बीसवी सदी के युगधर दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ श्री आदिसागरजी (अकलीकर) ने पचम काल में स्वय दीक्षा लेकर अपनी कठोर तप साधना के जरिये जो सिद्धियाँ अर्जित की और अपने दिव्य व्यक्तित्व से जो ख्याति अर्जित की, उसी का परिणाम था कि उनकी सल्लेखना के समय कुञ्जवन मे चहुँ ओर पिच्छीधारी साधु ही साधु दिखाई देने लगे।

उनका समस्त जीवो को अपनी निच्छल भाव से विचरण करने की छूट देना, पाचो इन्द्रियो को अपने वशीभूत करना, मिथ्यात्व, अज्ञान व मिथ्या चारित्र रूप से दूर रहना प्रायोगिक धरातल पर अपनाया हुआ अनुभव है। तभी उन्होंने कुन्थलगिरी गुफा मे अभय होकर ऐसी कठोर साधना करने मे कामयाबी हासिल की जिसमे शेर, लोमडी, गीदड सभी एक साथ आवास करते थे और आचार्य श्री के दर्शन से अभिभूत रहते थे। ऐसे परमज्ञानी सिद्ध सन्त को कोटि-कोटि नमन करते हुए उन पर प्रकाशित स्मृति ग्रन्थ के लिए हार्दिक शुभकामनाए व कार्यकर्ताओ को शुभाशीर्वाद।

श्री १०८ मुनि नेमीनन्दीजी

श्रद्धांजलि

बीसवी सदी के सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बर जैनाचार्य गुरूवर श्री १०८ श्री आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) की अमर स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के किंचित प्रयास स्वरूप एक स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। बहुत हर्ष व सन्तोष की अनुभूति हुई। उन पर प्रकाशित इस ग्रन्थ से "भक्ति की शक्ति" की गगोत्री बहेगी और गोताखोर उनकी तपस्या व साधना को जीवन मे थोडा बहुत भी अपने मे समाहित कर पाये तो बहुत ही सार्थक कदम होगा।

उनके उपदेश, उनकी साधना, उनका कर्मयोग, उनकी सिद्धि के इतने सटीक उदाहरण हैं कि ग्रन्थ मे भी सम्भवत पूरा वर्णन नही किया जा सकेगा। ग्रन्थ के प्रकाशन से धार्मिक चेतना का जो आविर्भाव होगा, वह देश व समाज मे आर्थिक सामाजिक, धार्मिक व चारित्रिक मूल्यो की पुनर्स्थापना के प्रयासो को सम्बल प्रदान करेगा।

लगता है वह वस्तुत मनुष्य नहीं थे, वे तो देवता थे जो मनुष्य जीवन का यथार्थ बताकर इस धरा को वसुन्धरा बनाने हेतु अवतरित हुए थे। अन्यथा सात-सात दिन तक निराहार रहना और तत्पश्चात् एक ही वस्तु का सूक्ष्म आहार लेकर भी सतोष से उदात्तमन ध्यानाध्ययन मे लीन रहते थे। सुन्दर स्त्री के शृगारमयी लावण्य पर भी सम्मोहित नहीं होकर अपने को अविचल भाव से तपस्या मे रत रखना व स्त्री को पश्चाताप करने को विवश होना पडे, ऐसा प्रसग किसी सत या महामना से भी ऊपर उठे हुए व्यक्तित्व का ही हो सकता है। स्मृति ग्रन्थ के आयोजको को ऐसे अलौकिक महापुरुष पर स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई व शुभाशीर्वाद।

१०८ श्री मुनि उदयकीर्तिजी महाराज



जीवन मे मृत्यु महोत्सव बडा होता है। २०वी सदी मे सर्वप्रथम परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुंजर आचार्य श्री आदिसागर (अकलीकर) ने अकलीग्राम मे फाल्गुन कृष्णा १३ गुरूवार सन् १८६६ मे जन्म लिया था, बडे शक्तिशाली थे। ४७ वर्ष की आयु मे मगशीर शुक्ला २ मगलवार को मुनिपद कुथलगिरी मे जिनेन्द्र देव की साक्षी मे ग्रहण किया। २ वर्ष बाद जयसिगपुर मे श्रुतपचमी को आचार्य पद दिया एव सन् १९१६ मे चारित्र चक्रवर्ती पद दिया। आचार्य श्री शातिसागरजी दक्षिण ने आहार दिया, कमण्डलु मे पानी भरा कधे पर बिठाकर नदी पार कराई तथा ऐलक पद आप से धारण किया था। आचार्य श्री महावीर कीर्तीजी महाराज को मुनि दीक्षा दी और अपना आचार्य पद दिया। फागुन बदी १३ गुरुवार ४ मार्च सन् १९४३ कोऊदगाव कुजवन मे समाधि धीर वीरता के साथ की, उनके चरणो मे मैं श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

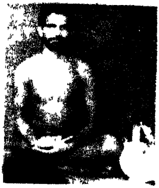
मुनि सर्वज्ञसागरजी



श्रद्धांजलि

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज तपस्वी साधु थे। ७-७ उपवास करके आहार लेते थे। आहार में एक वस्तु लेते थे। उनके चरणों में मैं श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

मुनिसिद्धसागरजी



परमपूज्य चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) का जन्म महाशिवरात्री सन् १८६६ मे हुआ था। बहुत बलशाली थे, उन्होंने दीक्षा तिथि मगसिर शुक्ला २ सन् १९१३ में ली थी ७-७ उपवास करते थे। उनको आचार्य पद श्रुतपचमी सन् १९१५ को मिला था। उ होंने समाधि से पहले आचार्य पद अपने शिष्य मुनि महावीर कीर्तिजी महाराज को दी। फाल्गुन कृष्णा १३ सन् १९४३ में समाधि हुई थी।

उनके पदों में मैं अपनी श्रद्धाजलि सर्मापित करता हूँ।

मुनि श्रुतसागरजी



मुनिमार्ग के २०वीं सदी के सर्वप्रथम प्रवर्तक परम् पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुञ्जर आचार्य श्री आदिसागर जी (अकलीकर) ने अपना आचार्य पद और मुनि दीक्षा आचार्य श्री महावीरकीर्तीजी कोदिया था। उनकी समाधि फागुन कृष्णा १३ सन् १९४३ गुरुवार को ऊदगाँव कुंजवन में रात्रि २ बजे हुई थी उस समय आचार्य श्री शांतिसागरजी, आचार्य श्री देशभूषणजी, आचार्य श्री विद्यानन्दजी भी मौजूद थे। वाद्यघोष देवों द्वारा हुआ था। सरकार द्वारा समाधि पर रोकलगाई तब आपने समाधान किया जिससे सरकार ने दर्शनार्थ नि:शुल्क (फ्री) रेलगाडी छोडी थी। उस समय इतने साधु थे कि चारों ओर साधु ही साधु नजर आते थे ऐसे आचार्य के चरणों में मैं श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

मुनि शुभसागरजी



श्रद्धांजलि

संसार जन्म-मरण रूप है इसमें रहट की तरह भ्रमण करता रहता है, परन्तु जिसने तपस्या की उसका जन्म सफल हुआ और जिसने सल्लेखना की उसका [illegible] हुआ । परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुंजर आचार्य श्री [illegible] (अंकलीकर) आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी के गुरु थे । वे महान् तपस्या करते थे उनकी तपोभूमि की मिट्टी से रोग शोक आधि-व्याधि संकट दूर होते थे । उन्होंने मुनिपद धारण कर मुनि[illegible] पुनर्जीवित किया । उनका जन्म फाल्गुन बदी १३ सन् १८६६ मुनि पद मगसिर शुक्ला २ सन् १९१३ आचार्य पद श्रुतपचमी सन् १९१५ समाधि फाल्गुन बदी १३ गुरुवार ४ मार्च १९४३ मे ऊदगाँव कुजवन में हुई थी । अकली गाँव मे जन्म लिया था वहाँ रहते थे इसलिए आपको अंकलीकर कहते हैं । आपको मुनिकुंजर कहते थे । मैं उनके चरणो मे श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

मुनि संवेगसागरजी

प पू आचार्य आदिसागरजी ने कुथलगिरी मे स्वयं मुनि पद लेकर निर्दोष आचरण कर मुनिमार्ग को पुनर्जीवित किया । ये चारित्र-चक्रवर्ती मुनिकुजर कहलाते थे । अंकली गाँव में जन्म लेने के कारण अकलीकर से जाने जाते हैं । उन्होने आचार्य शातिसागरजी को ऐलक दीक्षा और आचार्य महावीर कीर्तिजी को मुनिदीक्षा एवं आचार्य पद दिया था । उन महान् आचार्य के चरणो मे श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

मुनि [illegible]पार्श्वसागर

प पू आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के परमाराध्य गुरुदे[illegible] सदी के स[illegible] चारित्र-चक्रवर्ती मुनिकुंजर आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) ब[illegible] करते थे, आत्मध्यान अधिक प्रिय था । आचार्य शातिसागरजी आपने [illegible] से प्रभावित होकर उनकी सेवा वैयावृत्ति करते थे, आहारदान देते थे, उनके [illegible] थे, नदी पार कराते थे और उन्होने उनसे 'ऐलक' पद धारण कर अ[illegible] आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) के चरणों मे श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

मुनि शिवसागरजी

॥ श्री ॥

॥ श्री पार्श्वनाथाय नमः ॥

श्रद्धांजलि

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥

अत्यति, जगत्पूज्य आचार्यगण अपने ज्ञानचक्षु के द्वारा अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं। जिन गुरुवर्यो के द्वारा ज्ञानचक्षु विकसित होता है ऐसे परम पवित्र आचार्यवर्यों के चरण सरोरूह में अपनी वन्दना सदा सर्वदा बनी रहे।

इसी दृष्टि से हम देखते हैं कि जगत्पूज्य महान् आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज घोर तपस्वी थे। अपनी कठिन तपश्चर्या के साथ-साथ चारित्राराधना करते रहते थे। उनके कारण जैन धर्म की बड़ी प्रभावना होती रहती थी।

ऐसे महान् आचार्य की परम्परा मे उग्रतपस्वी आचार्यवर्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज हुए। वे जैन सिद्धान्त के पारंगत एवं महाविद्वान् थे। उनकी तपश्चर्या भी सर्वोत्कृष्ट रहा करती थी।

उनके बाद उनके पट्टशिष्य आचार्य प्रवर श्री १०८ सन्मतिसागरजी महाराज अब विराजमान हैं। वे भी वीर तपस्वी हैं। आसानी से वे दस-दस उपवास करने वाले निरतिचार चारित्रवान हैं।

इन सभी त्यागी वृन्दो के कारण जैन धर्म की महती प्रभावना होती रहती थी, होती रहती है और आगे भी होती रहती रहेगी। इसमे कोई शक नहीं है।

अन्त मे हम परमपूज्य आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अंकलीकर) महाराज के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए विराम लेते हैं। भद्रं भूयात्।

—स्वास्ती श्री लक्ष्मीसैनजी

भट्टारक पट्टाचार्य स्वामीगल
जिनकांची जैन मठ,
मेलसीथामूर-604206
MELSITHAMUR-604206
तमिलनाडु

10-11-1993

"पावन श्रद्धाभावसुमनाञ्जलि"

पावन धरा पर पावन जीवन अवतरित होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की निर्मलता मानव जीवन को अनुप्राणित कर पुनीत बना देती है। पाटल पुष्प की कलिकाएँ बिखर कर मिट्टी को भी सुवासित कर देती हैं। यो तो भारत भूमि अनादि से सस्य-श्यामल, धर्मांकुरो से अभिव्याप्त रहती चली आ रही है। वर्तमान शदी में "अंकली" ग्राम (महाराष्ट्र) उदीयमान धर्मभूमिसिद्ध हुई है। दिगम्बर परम्परा जिस समय अस्ताचल की ओर प्रयाण करने वाली थी कि अकली गाव के क्षितिज पर उदीयमान "शिवगौडा पाटील" ने अपनी प्रखर ज्ञानकिरणों से दिगम्बरत्व को प्रकाशित किया। प्रज्ञापुञ्ज प्रकाश से जिनागम का मथन किया। आर्प परम्परा को अभिसिचित कर दिगम्बर मुनि मार्ग को प्रवाह प्रदान किया। विकृति का प्रक्षालन कर उसे शुद्ध और निर्दोष बनाया।

पारिवारिक जीवन को सुसस्कृत कर त्यागमय जीवन में उतरे। स्वयं की प्रतिभा से जैन सिद्धान्तों का मर्म अवगत किया। कञ्चन,कामिनी का व्यामोह त्याग शुद्धात्मतत्त्व से स्नेह जोडा। सम्यक्त्व की निर्दोष किरणों से सम्यग्ज्ञान मे अवगाहन कर, आगमोक्त चारित्र का जामा पहन जीवन को समृद्ध बनाया। आत्म कल्याण के साथ देश, समाज, धर्म और राष्ट्र को भी अपने धर्मोपदेशामृत से अभिसिचित कर सुगठित, पुष्ट और कल्याणकारी बनाया। अनेको भव्यपुण्डरीको को धर्मांशुओ से विकसित कर मोक्षमार्गारूढ किया। आप करुणा और वात्सल्य के रत्नाकर थे। जिनशासन के प्राण स्वरूप थे। उभयलोक सिद्धि के निर्देशक थे। ऐसे महान् ऋषियों का स्मरण मात्र पुण्यवर्द्धक, पाप प्रणाशक होता है। उनके गुण चिन्तन से आत्म विशुद्धि होती है। चारित्र निर्मल होता है। वस्तुत ये ऋषिगण अपने उच्चतम आदर्शों की छाप अङ्कित कर भावी पीढी के सतत् मार्ग दर्शक बने रहते हैं। जीवनकाल में कतिपय भव्यो का उद्धार करते हैं, किन्तु स्वय समाधिसिद्धकर अनेको भव्यात्माओ का जीवन निर्माण करने मे युग-युग तक सहकारी होते हैं। मैं श्री जिनदेव के चरणो में यह प्रार्थना करती हूँ कि एक अपूर्व पञ्चाचार परायण, महान विभूति, मेरे परम पूज्य दीक्षा-गुरुवर्य श्री १०८ विमलसागर जी आचार्य परमेष्ठी के गुरू एव अपने आचार्य पद से अलकृत मेरे दादा गुरु आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज के गुरुवर्य श्री प पूज्य वर्तमान शदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आ १०८ श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज के पावन चरणो में अनन्तशः श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनकी भक्ति बनी रहे और उनके समान सम्यक् समाधि सिद्ध कर सकूं।

श्रद्धावनता
१०५ प्र ग. आ. विजयमती



श्रद्धांजलि

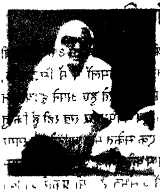
प पू चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्यरत्न आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) के पावन चरण कमलों में मैं सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति आचार्यभक्ति पढ़कर नमस्कार करते हुए अपने हृदयोद्यान में प्रफुल्लित श्रद्धा सुमन को वचन सूत्र में पिरोकर रख रही हूँ किन्तु आप उन विचारों को बीज के रूप एक संकेत मात्र जानियेगा। सागर की गहराई, आकाश के विस्तार, पुष्प की सुगंधि, शक्कर की मिठास की अभिव्यक्ति तथा रूप शब्दों में असंभव है उसी प्रकार आपका गुणानुवाद शब्दों से अशक्य है। साक्षात् सरस्वती भी उनगुणों का पूर्ण वर्णन नहीं कर सकती फिर हम जैसे बाल बुद्धि वाले भला कैसे कर सकते हैं। हमारा प्रयत्न चन्द्रमा को पकडने का प्रयास करने वाले बालक के समान यद्यपि विफल है फिर भी पुण्यार्जन के लिये श्रद्धांजलि प्रस्तुत करने के लिये उपस्थित हुई हूँ। आपके पवित्र जीवन पर दृष्टि डालते ही अन्तस्थल से यह ध्वनि निकलती है-

''कितना गौरव कितनी गरिमा, साँचे में ढला हो जीवन जैसे।
चाहे जितनी सीख लो, अध्यात्म की खुली किताब हो तुम ॥''

आप २०वीं शदी के प्रथमाचार्य, उच्चकोटि के विद्वान्, आगम के रहस्य को जानने वाले तद्नुसार निर्दोष आचरण करने वाले, उग्र तपस्वी एवं अनोखे सन्त थे। आपने सहस्रो व्यक्तियों को जैन धर्म का श्रद्धालु बनाया तथा धर्मामृत की वर्षा कर धर्म की सूखी खेती को सस्यश्यामल बना दिया। आपकी देशना के द्वारा अंकुरित धर्म रूपी पौधा आज पूरे भारतवर्ष में लहरा रहा है। आचार्यरत्न चा च शान्तिसागरजी महाराज, आचार्यरत्न समाधिसम्राट् महावीर कीर्तिजी महाराज, आचार्यरत्न श्री विमलसागरजी महाराज, पट्टशिष्य आचार्य रत्न तपस्वी सम्राट् सन्मति सागरजी महाराज, इत्यादि अनेक साधुरत्न प्र ग आ १०५ विजयमती माताजी को प्रमुखकर अनेक साध्वी समूह उसी परम्परा के अमोल रत्न हैं, धर्मरूपी वाटिका को सुरभित अलंकृत करने वाले अनोखे पुष्प हैं। मैं उनके चरण कमलों में शत-शत नमनकर ''वन्दे तद्गुणलब्धये'' की भावना पूर्वक अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए विराम लेती हूँ।

श्रद्धावनत,
-आर्यिका १०५ विमलप्रभा
संघस्थ प्र. ग आ १०५ विजयमती माताजी

श्रद्धांजलि



आ. श्री आदिसागरजी (अंकलीकर) महाराज का जन्म अंकली ग्राम महाराष्ट्र मे सन् १८६६ को फागुन बदी १३ महाशिवरात्रि को हुआ। कुन्थलगिरि क्षेत्र पर देशभूषण कुलभूषण की साक्षी में अपने मन से दिगम्बर मुनिदीक्षा ली। सन् १९१३ मगसिर सुदी २ को आपको आचार्य पद जयसिंगपुर में सन् १९१५ में जेठसुदी ५ श्रुत पचमी को समाज ने साधुओं की साक्षी में दिया। उनकी समाधि ऊदगाव मे सन् १९४३ फागुन बदी १३ को हुई।

उनके चरणो मे श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ।

आर्यिका सूर्यमती



परमदयालु परम तपस्वी सम्राट् चतुर्थ काल सम तपस्वी चारित्र चक्रवर्ती समाधि सम्राट् मुनिकुंजर प. पू. १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी (अंकलीकर) महाराज के चरणो में सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, आचार्य भक्ति करती हुई त्रिकाल नमोस्तु करती हूँ।

आपकी तपस्या बेजोड़ थी। आप ज्ञानी ध्यानी एवं महान् तपस्वी थे। मुनि दीक्षा के बाद आठदिन मे एक दिन आहार को उठते थे समाधि के चौदह दिन पूर्व तक यही क्रम रहा। १४ दिन के उपवास पूर्वक यम सल्लेखना के साथ श्रेष्ठ समाधि को प्राप्त हुए। लोग रंग गुलाल उड़ाकर होली जलाते है उसी प्रकार आपने फाल्गुण कृष्णा १३ शिवरात्रि को कर्ममल को जलाकर श्रेष्ठ समाधि की। समाधि के समय स्वयमेव मधुर ध्वनि के साथ बाजे बजने लगे, जयध्वनि से आकाश गूंज उठा, इसे देखकर उपस्थित जनता बहुत प्रभावित हुई आपमें रत्नत्रय, व्रत, समिति, गुप्ति आदि का जैसा निर्दोष आचरण देखा गया वैसा भारतभूमि पर उस समय कोई नहीं था और उसी परम्परा में पट्टशिष्य के रूप में उपस्थित प. पू. आ. तपस्वी सम्राट् श्री १०८ सन्मति सागरजी की तपोसाधना भी वर्तमान युग मे अनोखी है, अद्वितीय है, आपके समान तपस्वी, निस्पृह साधना में निष्ठ इस युग मे कोई नहीं।

ऐसे महान सत के चरणो मे मैं अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करती हुई यह भावना करती हूँ कि मुझे भी शीघ्र श्रेष्ठ बोधि और समाधि की प्राप्ति हो।

श्रद्धावनता

–आर्यिका १०५ सुबुद्धिमती माताजी

संघस्थ श्री १०८ आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज

श्रद्धांजलि

पू. आचार्य शातिसागरजी (दक्षिण) के ऐलक दीक्षा गुरु प. पू. चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदि सागर जी का जन्म महाराष्ट्र प्रात मे हुआ था। वे महान् शा[illegible] दयालु और धर्मात्मा थे। आपने मुनिदीक्षा कुथलगिरि मे ली थी। कठोर तपस्या करते थे [illegible] उपदेश देकर दीक्षाएं देकर कल्याण किया। उदगाँव कुजवन में समाधि की थी। उन[illegible] में श्रद्धांजलि समर्पित करती हूँ।

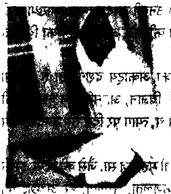
आर्यिका नेमिमति जी

प. पू. आ. आदिसागर जी (अंकलीकर) ने महावीरकीर्तिजी को मुनि दीक्षा दी थी और अपना आचार्य पद समाधि से १४ दिन पहले दिया था।

जीवन भर ७-७ उपवास करते थे। वन, उपवन व गुफा मे रहते थे। अकली ग्राम में जन्म हुआ था, इसलिये अकलीकर कहलाते थे।

उनके चरणो मे श्रद्धांजलि अर्पण करती हूँ।

आ. सुपार्श्वमती माताजी



प. पू. आचार्य श्री आदिसागरजी का जन्म फागुन बदी १४ सन् १८६६ को अंकली ग्राम में हुआ (महाराष्ट्र में) दीक्षा मगसिर सुदी २ सन् १९१३ मंगलवार को कुंथलगिरी में दिन के १० बजे जिनेन्द्र भगवान की साक्षी मे अपने मन से दीक्षा ली और नाम आदिसागर ही रखा। आचार्यपद श्रुतपचमी सन् १९१५ जयसिंगपुर मे प्राप्त हुआ। समाधि शिवरात्री फागुन वदी १३ सन् १९४३ को रात्रि में २ बजे हुई, तब अनेक साधु साक्षी थे। वे जगल की गुफाओं में रहते थे। एक बार विहार करते समय नदी के किनारे ध्यान कर रहे थे तब अकस्मात बहुत जोरों का पानी बर्षा, तो नदी मे पूर आ गई पर आचार्य श्री बैठे थे वहाँ पर एक बूंद भी पानी नहीं था, यह अतिशय सभी लोगों ने देखा। उनके तप के प्रभाव से उस स्थान की मिट्टी लोग ले जाते थे उससे उनकी बीमारी दूर हो जाती थी।

मैं भी उनके समान बनू इस भावना के साथ उनके चरणों मे श्रद्धांजलि अर्पण करती हूँ।

आर्यिका सरलमती माताजी

श्रद्धांजलि



प पू चारित्र चक्रवर्ती आ आदिसागरजी का जन्म अकली ग्राम मे फागुन बदी १३ सन् १८६६ गुरुवार को हुआ था। आप बलशाली थे। अशक्तो पर दया करते थे। एक बार अकाल पडा तब भूखे लोगो को अपना अनाज देकर दूसरे लोगो का भी अनाज गोदामो मे से निकाल कर बाट दिया। अदालत में इन्हें ले गये और पूछा कि आपने ऐसा क्यो किया तो कहा कि भूखो की वेदना नहीं देखी जाती थी वे मर जाते ? तो उन्हे छोड दिया गया। ऐसे दयालु महात्मा साधू के चरणो मे मैं अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करती हूँ।

आर्यिका दर्शनमति

परम पूजनीय चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ श्री आदिसागर महाराज (अकलीकर) ने हिसा, असत्यता, दुराचारिता, चोरी व परिग्रह के परित्याग को महाव्रत का साकार रूप देकर, तथा स्वय आधारभूत बनकर जनसामान्य को उत्कृष्ट कार्यो की ओर प्रेरित करने का बीड़ा उठाया। उसी प्रकार सच्चे श्रावक कहलाने का भी अधिकारी कौन है यह समझाया। उनकी उपदेशात्मक व्याख्या बडी सरल व सटीक रही है उनका यह कथन कि दीक्षा, ज्ञान, मोक्ष की ओर अग्रसर होने का किंचित प्रयास तीर्थकर रूपी कल्याण का काम करते हैं-

आपका प्रवचन गूढ समस्या और उसके समाधान का अकाट्य दर्शन रहा है, मिथ्या मनोरजन, पतन का कारण, आद्य बिन्दु, हिसा, अभय, शुद्धात्मा, विज्ञान, आत्मचिन्तन पुरुषार्थ की पहचान, सम्यक दृष्टि, भ्रामक प्रसार, जिनदेव पूजा उत्तम तप, सत्य, त्याग पर दिये गये उपदेश जन्म जन्मातर तक प्रासंगिक बने रहेगे।

आपने अपना आचार्य पद मुनि श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज सा जैसे को दिया, इससे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनमे कितनी बौद्धिक कुशलता, सरलता, हर अच्छाई का आत्मसात करने की चातुर्यता, गुण ग्राह्यता विद्यमान थी। इसे सहज ही समझ पाना अत्यन्त कठिन व दुरुह है। उनकी इस विराट छवि को स्मृति ग्रन्थ के रूप में साकार करने की कोशिश निस्सन्देह सराहनीय हे। मैं अनन्त नमस्कार कर उन गुणो को पाने की प्रार्थना करती हूँ।

आर्यिका १०५ क्षेम श्री माताजी

श्रद्धांजलि

बीसवी सदी के दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ श्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) ने जितनी सरल भाषा में उपदेश दिये, वे कदाचित् ही कोई दे सकता है। वचन बोलने से वक्ता, पुण्य करने से पुण्यात्मा, महान् कार्य मे रत रहने वाला महात्मा, स्वय के कल्याण के प्रति चिन्तन करने वाला आत्म चिन्तक, सत्य बोलने वाला सत्यवादी सुख-दु ख का वेदन करने वाला वेदक कहलाता है। परन्तु आत्मा के भावस्वरूप को जीवत्व के रूप में संसार को देकर सहज ही ग्राह्य करने वाला इन सभी गुणों से युक्त हो समाज मे अद्वितीय कौर्य करता है। यह गुण था आचार्य परमेष्ठी श्री आदिसागर जी (अंकलीकर) महाराज मे।

उन्होंने उत्तम ब्रह्मचर्य, उत्तम क्षमा, उत्तम श्रावक, संयमी पर जिस प्रकार धारा प्रवाह उद्‌बोधन दिये, वह वर्तमान प्रेक्ष्य मे अति अनिवार्य और अनुरूप हैं। धर्मोपदेश के कई बिन्दू एक-दूसरे के पूरक हैं किन्तु उनकी विलक्षण बुद्धि ने इन बिन्दुओं को अपनी-अपनी जगह सार्थक सिद्ध किया है और बहुत ही अन्तर होने का अहसास कराया है। उनकी अद्वितीय प्रतिभा का ही परिणाम है कि उन्होंने अपना आचार्य पद श्री महावीर कीर्तिजी जैसे महान् संत को दिया जिन्होंने दिगम्बर जेन आर्ष परम्परा को तीव्र गति प्रदान की उनकी स्मृति में ग्रन्थ का प्रकाशन आत्मावलोकन का कार्य करेगा।

१०५ आर्यिका चन्दनश्री
सघस्था-ग आ कुन्थुसागरजी महाराज

विनयांजली एवं शुभकामना

चा च आ आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) एक महान तपस्वी दि जैन आचार्य हुए हैं उन्होंने सर्वप्रथम सिद्धो के समक्ष मुनिदीक्षा ग्रहणकी एव लुप्त प्राय: मुनिमार्ग को प्रशस्त किया। उनके द्वारा अपने आचार्यत्व मे कई भव्य आत्माओं का कल्याण किया है। इन भव्य आत्माओं में समाधि सम्राट आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज को अपने संघ में सबसे योग्य समझ कर अपनी समाधि से पूर्व अपना आचार्य पद सौंप दिया था। आचार्य महावीर कीर्तिजी ने समाधि से पूर्व अपने संघ के सबसे योग्य तपस्वी सम्राट् आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज को अपना आचार्य पद प्रदान किया। जिनके नेतृत्व मे सम्पूर्ण भारत में धर्म की महती प्रभावना हो रही है। चा च श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) को इस अवसर पर मेरी हार्दिक विनयांजली अर्पण करती हूँ।

आर्यिका कीर्ति श्री माताजी
शिष्या गणधराचार्य कुंथुसागर जी महाराज

श्रद्धांजलि

परम पूज्य गुरुदेव आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के परमराध्य गुरुदेव प पू २०वीं सदी के सर्वप्रथमचारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी (अकलीकर) का जन्म आज से १२८ वर्ष पूर्व फागुन वदी १३ गुरुवार को हुआ था । मुनि दीक्षा मगशिर शुक्ल २ सन् १९१३ को ली थी । इनका सघ बडा था । आप सदा देश राष्ट्र के हित चिन्तक रहे थे । अहिसा धर्म का प्रचार प्रसार किया था । मिथ्यात्व को दूर किया था । उस समय वहा अज्ञान छाया हुआ था उनको अपनी वाणी सुनाकर अज्ञान को दूर किया था । जेठ सुदी ५ सन् १९१५ मे आचार्य पद मिला था । आपने आचार्य शातिसागरजी (दक्षिण) को ऐलक दीक्षा दी थी तथा पू आचार्य महावीरकीर्तिजी को मुनि दीक्षा एव अपना आचार्य पद दिया था । उनकी समाधि फागुन बदी १३ गुरुवार ४ मार्च सन् १९४३ को ऊदगाँव कुजवन में हुई थी । उनके चरणो मे मैं नमोस्तु करती हुई श्रद्धाजलि समर्पित करती हूँ ।

आर्यिका मुनिसुव्रतमती



श्रीमद कुदकुदाचार्य की परम्परा में होने वाले परमपूज्य आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) का जीवन एक अलौकिक जीवन रहा । आपका जन्म सन् १८६६ मे हुआ और मुनि दीक्षा मगसर शुक्ला २ मंगलवार सन् १९१३ को हुई तथा समाधि ऊदगाँव (कुजवन) मे फागुन कृष्णा १३ गुरुवार महाशिवरात्रि ४ मार्च १९४३ को हुई आप आचार्य श्री महावीर कीर्ती जी महाराज के दीक्षा गुरु थे और उन्हीं को इस युग के सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी महाराज ने अपना आचार्य पद प्रदान किया था और वर्तमान में परम तपस्वी सम्राट् आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज आचार्य महावीर कीर्तीजी महाराज के आचार्य पद पर विराजमान है, ऐसे तीनों आचार्यों की पवित्र परम्परा सुचारू रूप से चल रही है देखिये जैन धर्म अनादि कालीन प्राचीन धर्म है इस प्राचीन और प्रधान धर्म मे रत्नत्रयधारियो को प्रमाण माना गया है उन्हीं रत्नत्रय धारियो मे सर्वप्रथम आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) जो कि महाराष्ट्र प्रान्त मे अंकलीग्राम के निवासी थे अपने समय के महान् तपस्वी थे वीतरागी निस्पृही साधु

थे ग्रथो में उल्लेख मिलता है कि पूज्य आचार्य आदिसागरजी महाराज सात-सात दिन से आहार ग्रहण करते थे जहाँ-जहाँ उनका गमन होता था वहा-वहाँ केसर के पदचिन्ह हो जाते थे वे कंदर गुफा मे तपश्चरण करते थे अनेकों उपसर्ग आने पर भी सहन करते थे, चलायमान नहीं होते थे, दया आपके रोम-रोम में समाई रहती थी इसलिए आप करुणा सागर कहलाते थे, आप विशेषकर कुजवन में रहते थे। आपको मुनि कुजर कहते थे परम पूज्य आचार्य विमलसागरजी महाराज ने कुजर मुनि का अर्थ महासम्राट व आचार्य से भी बढ़कर होता है ऐसा बताया। आपकी त्याग तपस्या साधना अलौकिक रही पर एकमात्र महाराष्ट्र व दक्षिण प्रान्त के भव्य जीवो को लाभ प्राप्त हुआ। उत्तर प्रदेश में आपका गमनागमन नहीं हुआ अत इधर की समाज आपसे अपरिचित रही आपसे लाभ प्राप्त नही हो पाया यह एक दुर्भाग्य ही रहा। वास्तव मे आचार्य श्री के अद्भुत त्याग एव गौरवपूर्ण व्यक्तित्व के विषय मे जितना वर्णन किया जाय उतना कम है, ऐसे गुरु के गुणों को कहने में कौन समर्थ है आचार्य श्री का जहाँ-जहां विहार होता था वहाँ-वहाँ तीर्थ स्थली बन जाती और उस नगरी के आस-पास का वातावरण विशुद्ध बन जाता, रोगशोक आधि-व्याधि स्वत: ही दूर भाग जाते। ऐसे परम पूज्य आचार्य आदिसागरजी महाराज ने संयम मार्ग को अपनाकर आत्म कल्याण के मार्ग को अपनाया। आपने जो कल्याणकारी मार्ग अपनाया इसी मार्ग की धर्मदेशना देकर भव्य आत्माओं को कल्याणकारी मार्ग पर लगाया यह आप की ही देन है जो आपके शिष्य परम्परा से श्री आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज भी आपका अनुकरण करते हुए निज-पर कल्याण में लीन मोक्षमार्ग की ओर बढ रहे है। पू आचार्य शातिसागरजी ने उनकी तपस्या से प्रभावित होकर उनसे ऐलक पद धारण कर उनको गुरु बनाया था। ऐसे महान तपोनिधि घोर तपस्वी स्व. आचार्य आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) के पावन चरणो में विनयपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करती हुई भगवानमहावीर से प्रार्थना करती हूँ कि आपकी आत्मा शीघ्र मोक्ष पद को प्राप्त करे इति शत-शत वदन।

ब्र. मैनाबाई जैन
-आनंदपुर कालु

श्रद्धांजलि



श्रद्धा आत्मा का पवित्र गुण है, गुणानुराग का प्रतीक है। अपने पवित्र आत्म गुणो की पुष्टि एवं अभिवृद्धि के लिये, रत्नत्रयादि विशिष्ट गुणो से अलकृत गुरु चरणों में श्रद्धाजलियाँ अर्पित की जाती हैं, यह आर्ष परंपरा अविरल गति से चली आ रही है तदनुसार मैं भी दिगम्बरत्व के संरक्षक निर्ग्रन्थमार्ग के पुनरुद्धारक प. पू २०वीं शदी के प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) महाराज के चरण कमलों में सुगठित शब्द पंक्तियो में पुष्पराशि अर्पित करना चाहती हूँ।

आचार्यरत्न मुनि कुञ्जर श्री आदिसागरजी (अकलीकर) का जीवन बहुत ही सरल, स्वाभाविक और आडम्बर विहीन था। आप धर्म के मूर्तिमान रूप थे। त्याग, तप, दया, परोपकार, सत्य, स्पष्टवादिता आदि अनेक गुणो का सद्‌भाव जन्म से ही आपमे झलकते थे। स्वभाव से ही आपकी सम्पूर्ण प्रवृत्ति आगमानुसार रही। आपसे यति धर्म को प्राण मिला। भक्तो की टोलियाँ समन्वित होने लगीं आपने अनेकों को दीक्षा देकर आत्म कल्याण का मार्ग दिखाया। तत्वार्थपान के रसिक नाना शकाओं का समाधान पाकर हर्षोत्फुल्ल होने लगे।

आप कुशल जौहरी थे तभी तो आपने अमूल्य अनेकान्त सिद्धान्त की कठिन गुत्थियों को सुलझाकर जिनशासन को जनजन के कण्ठ का हार बना दिया। आपके भक्तों मे प्रमुख थे, भोज के पाटील सातगौडा जो आगे चलकर आचार्य शान्तिसागर जी के नाम से विख्यात हुए। आपके सर्वोत्तम शिष्य थे मुनि श्री १०८ महावीर कीर्ति जी महाराज। अपनी समाधि के समय इनको अपना आचार्य पद सौंपकर आपने हम भव्य जनो का महान् उपकार किया है। आज वह, कल्पवृक्ष की भाँति सर्वत्र धर्मोपदेश की वर्षा कर जन-जन का कल्याण कर रहा है। मैं अपने आत्मगुणो के समुचित विकास की भावना लेकर आचार्य श्री के चरणो मे कोटिश· श्रद्धाजलि अर्पित करती हूँ और अन्ते समाहिमरण आप जैसी श्रेष्ठ समाधि मुझे प्राप्त हो, बस यही इच्छा रखती हूँ। इत्यलं।

श्रद्धावनता-

ब्रह्मचारिणी गुलकन्दीबाई

सघस्थ-प्र ग आ १०५ विजयमती माताजी

अनुरंजित श्रद्धांजलि

हे श्रमण संस्कृति के साधक, हे मोक्षमार्ग के निर्देशक ।
हे रत्नत्रय पद के धारक, आचार्य आदिसागर तुम्हे नमन ।

परम सन्मार्ग दिवाकर चारित्र चक्रवर्ती श्रमणोंत्तम निमित्त ज्ञानभूषण कलिकाल सर्वज्ञ नीरक्षीर विवेकी २०वीं शताब्दी के प्रथम रत्न कठोरसाधना के आराधक जिनकी तपस्या वज्र से भी कठोर और जिनका ह्रदय मकडी के जाल से भी कोमल था और जिन्होंने शिथिल हो रही श्रमण परम्परा को नया आयाम दिया, जिन्होंने आचार्य महावीर कीर्ति जैसे को दीक्षित किया, ऐसे उन परमज्ञानी आचार्य श्री आदिसागर जी (अकलीकर) ने दक्षिण भारत के अंकलीग्राम मे फागुन बदी १३ सन् १८६६ में जन्म लेकर इस पावन धरा को पवित्र किया । आचार्य श्री का ग्रहस्थ अवस्था का नाम शिवगौडा पाटील था । उन्होंने जीवन की नश्वरता का क्षण भंगुरता का अनुभव किया । जिससे उनके चरण वैराग्य के पथपर अग्रसर हो चले । सन् १९०६ में आपने अपने वैराग्य को नया आयाम देते हुए क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की । कुछ समय की आराधना में ही उनका मन शनै. शनै. पवित्रता की ओर अग्रसर होता गया और आपने कुंथलगिरि सिद्ध क्षेत्र मे मगशिर शुक्ला २ सन् १९१३ मगलवार की पावन बेला मे अपने शेप वस्त्रो को त्यागकर निर्ग्रथ दीक्षा ग्रहण की । और तब प्रारम्भ हुआ उनकी साधना का विस्तृत कार्यक्षेत्र । आप ७-७ दिन के उपवास के बाद एक ही भोज्य वस्तु का आहार लेते थे । स्वय पचाचार का पालन करते अन्य को कराते हुए अपने जीवन में ३२ मुनि ४० आर्यका ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिकाओ तथा अनेको त्यागी व्रतियो के जीवन को निर्देशन देते हुए उनका जीवन पवित्रता की ओर प्रेरित किया । श्रुतपचमी गुरूवार सन् १९१५ को चतुर्विध सघ ने आपको आचार्य पद प्रदान किया । आपके रत्नत्रय की प्रखरता, साधना की चरमोत्तमता से ही अंकलीग्राम मे आपके द्वारा निर्मित श्री आदिनाथ जिनालय मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा की पावन बेला में आपको चारित्र चक्रवर्ती पद से अलंकृत किया । ४ मार्च फागुन कृष्णा १३ महाशिवरात्रि सन् १९४३ गुरूवार रात्रि २ बजे ऊदगाँव (महाराष्ट्र) मे आचार्य श्री की समाधि हुई ।

पू. आचार्य आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) इस युग के आदि प्रवर्तक हुए हैं जिनके कारण ही आज हम अनेक साधुगणों के सानिध्य मे अपने जीवन को भी कृतार्थ करने का प्रयास कर रहे हैं । वर्तमान में आपकी परम्परा में आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज अपनी कठोर साधना से जैन समाज में अनवरत धर्म पताका फहरा रहे हैं। ऐसे इस सदी के परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर प्रथमाचार्य श्री आदिसागरजी महाराज की स्मृति क्षणों में आचार्य श्री के चरणों में, अपने जीवन में चारित्रवृद्धि की कामना करते हुए भावों से अनुरंजित श्रद्धाजलि अर्पण करता हूँ।

चरण चंचरीक
ब्र. सुमन कुमार जैन
विजयनगर कॉलोनी, एटा

श्रद्धांजलि

महापुरुषो में से एक महान् साधना के साधक आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) हुए महाराष्ट्र प्रांत के अकली ग्राम मे रहने के कारण आप अकलीकर के नाम से पुकारे जाते थे, आपके पिता सिद्ध गौडा पाटिल थे अपने काल मे वे बहुत ही राजमान्य और प्रभावक व्यक्ति हुए माताश्री का नाम अक्काबाई था। सिद्ध गोडा पाटील के २ पुत्र शिवगौडा एव वाबगौडा पाटील थे तथा एक पुत्री आऊबाई थी, उनमे से एक पुत्र शिवगौडा पाटील आगे चलकर परम सयम साधक उग्र तपस्वी चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अंकलीकर) के नाम से प्रसिद्ध हुए। आपका पावन जन्म फागुन बदी १३ सन् १८६६ गुरूवार को हुआ था। एक बार इनके साथियो ने इन्हे बन्द कर दिया तो बालक शिवगौडा मे अपने बाहुबल से दरवाजा तोड दिया और हसते-हसते बाहर निकल आया। एक कद्दू को हाथ की मुट्ठी से फोडकर और देखते ही देखते सारा कद्दू खा गये फिर भी कुछविकृति नहीं हुई ऐसे पराक्रमी थे। पानी में १५-१५, २०-२० हाथ तक नीचे गोते लगाना आपका एक आसान काम था। अकाल के समय गाँव में लोगों के पास कुछ खाने तक के लिए नहीं रहा, गरीब लोग भूखों मरने लगे यह करुणामय दृश्य देखकर आपका हृदय भीग गया और उसी समय घर का सारा अनाज गरीबो को बांट दिया तथा और अधिक आवश्यकता देख बड़े-बडे व्यापारियो को प्रेरित कर उनसे भी अनाज बटवाया। कितनी भयंकर बीमारी होने पर भी शिवगौडा ने किसी से कुछ नही कहा, चर्चा रहती थी कि अवश्य ही आगे चलकर ये महान् तपस्वी साधु बनेगा। कालतर मे वे बाते सभी को प्रत्यक्ष हुई, यह था उनका भेद विज्ञान।

आप नादनी गाँव पहुँचकर वहाँ मुनि जिनप्पा स्वामी से प्रार्थना कर सन् १९०६ स्वातिनक्षत्र मे क्षुल्लक दीक्षा लेली अवसर पाते ही उन्होने जिनेन्द्र देव की साक्षी मे चादर का भार छोड़ दिया अर्थात् ऐलक दीक्षा ले ली। अब आप ज्ञान ध्यान की कठोर साधना के साथ-साथ तीन् उपवास के बाद आहार के लिए उठने लगे यह क्रम उन्होने ऐलक पद में रखा। जब मुनि के अभ्यास में पूर्णत निष्णात हो चुके तब सिद्ध क्षेत्र कुंथलगिरि पर भगवान कुलभूषण देशभूषण की साक्षी मे सन् १९१३ में मगसिर शुक्ला २ मगलवार को प्रात १० बजे मूल नक्षत्र में परम दिगम्बर दीक्षा लेकर सारे प्रांत मे तहलका मचा दिया, आपने अपनी कठोर तपस्या एवं आत्म साधना से साक्षात चतुर्थ काल का परिचय दे दिया। मुनियों की मात्र चर्चा ही सुनने में आई थी उनके प्रत्यक्ष दर्शन करा दिये। सन् १९१५ में जैठ शुक्ला ५ जयसिगपुर में आचार्य पद दिया गया। सन् १९१६ में अकली ग्राम के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय परम पूज्य श्री आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर को चारित्र चक्रवर्ती

की पदवी दी गई। आप की तपस्या से प्रभावित होकर आचार्य शातिसागरजी (दक्षिण) ने आपसे ऐलक दीक्षा धारण की।

मुनिदीक्षा लेने के बाद ७-७ दिन के बाद एक ही वस्तु का आहार लेते थे जैसे गन्ने का रस लिया तो गन्ने का रस ही लेते थे आमकी ऋतु में आम ही लेते थे। ऐसा क्रम समाधि तक चला। सन् १९४३ फागुन बदी १३ गुरूवार को समाधि ऊदगांव (कुंजवन) में हुई। अत· त्रिकाल नमोस्तु करते हुए परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री आदिसागर जी (अंकलोकर) के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

ब्र मणीलाल जैन, भीमपुर (राज)

श्रद्धांजलि

शत शत बार प्रणाम

गुरू की महिमा वरणी न जाय, गुरू नाम जपो मन वचन काय

पंडित द्यानतराय जी ने इस श्लोक में यह बताया कि गुरू के गुण इतनी गम्भीरता और विशालता का लिये हुए हैं कि उन्हे शब्दो के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। गुरू के समान न कोई महान् हुआ और न आगे होगा। गुरू की गरिमा का मापन करने के लिये वैज्ञानिको के द्वारा कोई माप यन्त्र भी आविष्कृत नहीं हुआ अत· उनके गुण अपरिमित है।

श्लोक – **अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांञ्जन शलाकया।**
चक्षु रून्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नम· ॥

अर्थ – जो अज्ञान रूपी अंधकार को नाश करके सम्यक ज्ञान को प्रकाशित करता है, वह गुरू है। ऐसे गुरुओं को नमस्कार हो वे गुरुजन तप त्याग संयम की एक अजब एवं अद्भुत मूर्ति होते है।

२०वीं शताब्दी में अनेक लोग आये और चले गये। कुछ लोग जाकर भी अपनी स्मृति छोड जाते हैं। वे अपना नाम इस दुनिया मे अमर कर गये उन्हीं महान् पुरुषो में परम पूज्य सम्यक शिरोमणी प्रात· स्मरणीय चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री आदिसागर जी महाराज का स्थान सर्वोपरि ही है, जिन्होंने अपने मनुष्य भव को अमूल्य समय तप त्याग स्वरूप मुक्ति मार्ग में लगा दिया था।

ब्रह्मचारिणी राजकुमारी,
संघस्था – प्र ग. आ. १०५ विजयामती माताजी

श्रद्धांजलि

आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज तपोनिष्ठ एव ज्ञानाराधक थे । वे अपने आत्माराधना के साथ-साथ जिनेन्द्र भगवान से उपदिष्ट दिगम्बर जैन धर्म के प्रचारक भी थे ।

उनके पट्ट शिष्य श्री १०८ महावीर कीर्तीजी महाराज प्रभावशाली साधु महात्मा थे । उनकी परम्परा में, वर्तमान में आचार्यवर्य श्री १०८ सन्मति सागर जी धुरधर तपस्वी हैं । ऐसी साधु आचार्य परम्परा के कारण जैन धर्म की प्रभावना निरन्तर होती रहती है । ये ही जेन धर्म के स्तभ हैं ।

ऐसी साधु परम्परा के मूलनायक चारित्र चक्रवर्ती आचार्यवर्य श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज के चरणो मे श्रद्धाभक्ति के साथ अपनी श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

साधु सतो के चरणसेवी

मल्लिनाथ जैन शास्त्री, मद्रास

जन-जन के श्रद्धास्पद आचार्य श्री १०८ श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) की पुण्य तिथिपर स्मृति ग्रथ का प्रकाशन हो रहा है प्रसन्नता की बात हे । बीसवीं शदी की श्रमणपरम्परा मे होने वाले सन्तो मे आचार्य श्री आदिसागरजी अकलीकर का जीवन अलौकिक रहा है । उनकी त्याग तपस्या का आदर्श हम सबके लिये प्रेरणाप्रद रहा है । स्व पर तारक इस युग के प्रथम आचार्य श्री आदिसागरजी अकलीकर के चरणो मे मेरे श्रद्धा सुमन समर्पित हैं।

प्रतिष्ठाचार्य

पडित चन्दनलाल सा रत्न शास्त्री

मत्री श्री भट्टारक यशकीर्ति दि जैन गुरुकुल ऋषभदेव (राजस्थान)

परम प्रसन्नता हुई कि पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री आदिसागरजी की स्मारिका प्रकाशित करने का विचार हुआ है यह उत्तमकार्य है । परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी ने अपने ज्ञान और तप के द्वारा जन-जन मे अपना प्रभाव प्रगट किया है । यह आपकी महानता है । इस हुडावसर्पिणी में इस मुद्रा के दर्शन बहुत पुण्य के उदय से ही प्राप्त हो रहे हैं । उनके चरणों में मेरा बार-बार नमन ।

हे मोक्षमार्ग के महापथिक, करता हूँ मैं तुझे नमन ।
हे सम्यक् रत्नत्रय आराधक, करता हूँ मैं तुझे नमन ॥
हे आचार्य परम्परा के सचालक, करता हूँ मै तुझे नमन ।
हे पचम काल के आदि सिधु, करता हूँ मैं तुम्हें नमन ॥

पं अमरचंद जी शास्त्री शायपुर

श्रद्धा सुमन

॥ श्री ऋषभदेवाय नम ॥

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती १०८ श्री आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) के ८१ इक्यासी वें दीक्षा दिवस के अवसर पर विनयाजली समर्पित करता हूँ कि उनके द्वारा बताया गया मार्ग दिगम्बर मुनि परम्परा इस भू-मण्डल पर सूर्य के समान प्रकाशित होती रहे एवं भव्य जीव उस मार्ग पर चलकर अपने आत्मकल्याण मे लगे रहे और ससार समुद्र से पार होने की भावना भाते रहे पुनश्च इस दीक्षा दिवस मे आचार्य श्री के प्रति नतमस्तक होकर अपने स्वय के कल्याण की भावना भाता हूँ।

प मागीलाल जैन शास्त्री,

कृण (राजस्थान)

सन्मति को ममनमन हो मम मति सन्मति होय,
सुर नर पशुगति सवमिटें मम गति पचम होय।
कुद-कुद को नितनमू हृदय कुद खिल जाय,
परम सुगधित महक मे मम जीवन घुल जाय॥

परम पूज्य विश्ववदनीय चारित्र चक्रवर्ती समाधि सम्राट् सन्त शिरोमणी आचार्य श्री १०८ श्री आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) ने सर्वप्रथम जबकि भारत मे दिगम्बर साधु सन्तो का बिल्कुल प्रादुर्भाव नहीं था। सिर्फ स्तुतियों के माध्यम से मुनिराजो के स्वरूप को जान पाते थे, भूधरदास द्यानतराय आदि के समय मे मुनियो का दर्शन भी नहीं होता था। श्री सिद्ध गौडा पाटील तथा श्रीमती माता अक्काबाई की कुक्षी से अकली महाराष्ट्र में शिवगौडा पाटील ने जन्म लिया जो कि आदि सागर महाराज (अकलीकर) के नाम से प्रख्यात हुए आचार्य शातिसागर के पहले आपने दिगम्बर दीक्षा स्वीकार की और मुनिमार्ग प्रशस्त किया तथा अपना आचार्य पद श्री १०८ परम तपस्वी श्री महावीर कीर्ती महाराज को दिया। श्री महावीर कीर्ती महाराज ने अपना आचार्य पद परम पूज्य आचार्य श्री १०८ सन्मति सागर महाराज को समर्पित किया जो कि वर्तमान समय मे हम भव्य जीवो को धर्मोपदेश अमृत पान कराकर हम ससारी प्राणियों को धर्म का पान करा रहे हैं। यह अक्षरश. सत्य है कि आचार्य आदिसागरजी अकलीकर के बाद प पू आचार्य शातिसागर जी महाराज ने मुनिमार्ग प्रशस्त किया जिनकी कृपा से हमे दिगम्बर साधु यत्र-तत्र विहार कर धर्मोपदेश देने की कृपाकर हम सब लोगो को धर्म के मार्ग पर लगा रहे हैं।

"आग लगी आकाश मे जर-जर पर अगार।"
"सन्त न होते जगत में तो जल जाता ससार।"

सारे ससार मे प्राणी अज्ञानमिथ्यात्व असयम की अग्नि मे झुलस रहे होते यदि इस भारत मे दिगम्बर साधु सन्तो का विहार नही होता। वह अज्ञानी प्राणियो को धर्मोपदेश न देते तो मोक्ष मार्ग अविरुद्ध हो जाता क्योकि "काले कलौचलेचित्ते देहे चन्नादि कीटके ।" इदमेव महच्चित्र जिनलिग धरानरा ॥" यह कलिकाल पचम काल है। यह मानवप्राणी अन्न का कीडा बना हुआ है। बडा आश्चर्य हे इस कलिकाल पचम काल मे दिगम्बर जिनलिग को धारण करने वाले दिगम्बर सत यत्र-तत्र विहार कर हम सब भव्य जीवो को सन्मार्ग पर लगाने का उपदेश देकर मोक्षमार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। कई लोग तो एकात की पुष्टि कर नय विवक्षा न जानकर अपने सिद्धान्त की पुष्टि कर रहे हैं जबकि श्री महावीर भगवान ने अनेकात से वस्तु तत्व का विवेचन अपनी दिव्यध्वनि द्वारा धर्म का स्वरूप बतलाया है। क्योकि वस्तु (आत्मा) मे किसी भी धर्म का विरोध न करते हुए सब धर्म एक साथ रह सकते हैं।

वस्तु अनेकातात्मक है क्याकि विद्या सागर आचार्य ने लिखा हे "वहती रहती कषाय नाली शाति सुधा भी झरती हे। भवपीडा भी यही प्यार कर मुक्ति रमा मन हरती हे ॥" "आलोकित है तीन लोक भी अतिशय चिन्मय लीला है। अद्‌भुत से अद्‌भुत तम महिमा आगम की जयशिला हे ।" इस ही आत्मा मे कषाय की नाली बह रही है, इसी ही आत्मा मे शाति का झरना झर रहा है, इस ही आत्मा मे केवल ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति हे, यही आत्मा चारो गतियो मे भ्रमण कर चौरासी लाख योनियो मे जन्म मरण का चक्कर लगा रही है। यदि यही आत्मा अपने उपादान का शुद्धोपयोग मे लगाती है तो इसका ससार भ्रमण छूट जाता हे शुभ उपयोग मे यदि आत्मा परिणत हो तो स्वर्गादिक सपत्ति आदि चक्रवर्ती नारायण बलभद्र आदि पद को प्राप्त कर ससार बधन से परम्परा मुनिव्रत धारण कर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्-चारित्र रत्नत्रय धारण कर शुक्ल ध्यान से अष्ट प्रकार के द्रव्यकर्मो को तथा राग द्वेषादि भाव कर्मो को व शरीरादि नो कर्मो का सम्पूर्ण तथा क्षयकर जो अव्याबाध अनत सुख प्राप्त कर लेता हे और शुद्धोपयोग साक्षात् कर्मबधन से रहित हो जाता हे। अशुभोपयोग से नरक तिर्यचादिगतियो मे भ्रमण कर जन्म मरण के दुख उठाता हे इसलिए अपने परिणामो का साधन निरतर करना चाहिए। आज के युग मे जैन धर्म की बहुत आवश्यकता है क्योंकि जेनियो ने इस धर्म को सकुचित कर रखा है इस धर्म का प्रचार तथा प्रसार जन-जन मे पहुचाने की अति आवश्यकता है। यदि प्रत्येक मानव के हृदय मे इस जैन धर्म की एक अहिसा रूपी किरण जागृत हो जाय तो इस भारत में शाति हो जाय। शाति तो यह मानव पर पदार्थो मे खोज करता हे, लेकिन पर पदार्थो से कहीं कभी शाति न मिली है न मिल सकती हे। शाति तो अपने पास है जिसकी खोज करता है उन विषयो से कभी भी तृप्ति न मिली है न मिल सकती है। यदि ऐसा विचार मानव के हृदय मे प्रवेश कर जाय तो रामराज कायम हो जाय इन शब्दो के साथ पूज्य आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) तथा शिष्य परम्परा को शत-शत नमन करता हुआ अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ। और यह भावना करता हूँ कि मेरे पाप कर्मों का क्षय हो, यही भावना करते हुए अनुभव से कर जोर, हरी-भरी दिखती रहे धरती चारो ओर। इत्यलम्।

प लक्ष्मण प्रसादजी जैन शास्त्री,

सरायपुरा, ललितपुर (उ प्र) १४-१०-९३

श्रद्धांजलि

भारतवर्ष आर्यखण्ड साधुसन्तो का क्षेत्र रहा है । उनकी चरण रज से पवित्र होता रहा है । इसी पवित्र क्षेत्र के अतर्गत अकलीग्राम मे शिवगौडा पाटिल ने जन्म सन् १८६६ को लिया था । उनका हृदय दया से आर्द्र था । धर्म मे रुचि थी । अपने दैनिक कार्यों को नियमित रूप से करते थे । 'जे कम्मेसूरा ते धम्मे सूरा' जिनकी वीरता कर्म करने मे रहती है, उनकी धर्म मे भी सूरवीरता रहती है । यह उनके रगग्ग मे भरी हुई थी। उन्होंने अपनी शक्ति धर्म मे लगाई । सन् १९१३ मगसर शुक्ला २ मगलवार को सपूर्ण परिग्रह को छोडकर स्वय जिनेन्द्र देव की साक्षी में मुनिदीक्षा ग्रहण की । आपके धर्मोपदेश से प्रभावित होकर अनेको भव्य श्रावक श्राविका बने । आपको श्रुतपचमी सन् १९१५ मे आचार्य पद से शोभित किया गया, और सन् १९१६ मे चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया। उनका आत्मबल बहुत था । वे ७-७ दिन उपवासपूर्वक ध्यान मे व्यतीत करते थे । बाद मे आहार ग्रहण करते थे । वह भी एक ही वस्तु लेते थे । आपकी तपस्या से प्रभावित होकर उनसे आचार्य शातिसागर जी ने स १९७३ मे कुभोज बाहुबलि पहाडी के निकट ऐलक पद ग्रहण किया था । उन्होंने अपना आचार्य पद अपने शिष्य मुनि श्री महावीर कीर्ति जी महाराज को दिया था । बाद में फागुण कृष्णा १३ गुरुवार सन् १९४३ को ऊदगाँव (कुजवन) मे सातिशय समाधि सिद्ध की थी । उन शुद्धात्मा के प्रतीक प पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी महाराज अकलीकर के चरणो मे श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

प बदामीलाल मुगाना

वर्तमान काल मे मुनि परम्परा का इतिहास महान आचार्य मुनिकुजर आदिसागर जी (अकलीकर) के जमाने से ही मिलता है । समझने की बात यह है कि दक्षिण में करीब दस त्यागी आदिसागर जी के नाम के हुए हैं । उनमें आचार्य मुनि कुंजर चारित्र चक्रवर्ती नाम से एक ही हैं जो अकलीकर हैं । बाकी के पदाधिकारी नहीं रहे । उन्होंने क्षुल्लक दीक्षा मुनि जिन्नप्पा स्वामी से ली थी । मुनि दीक्षा स्वय कुलभूषण देशभूषण की साक्षी में ली थी । सात-सात उपवास करते थे । गुफाओ मे ध्यान करते थे । उनकी तपोभूमि की मिट्टी से रोगशोक आधि-व्याधि नष्ट होते थे । आचार्य शातिसागर जी उनको आहार देते थे, प्रभावित थे, ऐलक दीक्षा लेकर गुरु बनाया था । अपना आचार्य पद अपने शिष्य मुनि महावीर कीर्तिजी को देकर ४ मार्च सन् १९४३ को ऊदगाँव कुजवन मे समाधि सिद्ध की थी । उनके चरणो मे श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ ।

पं. जिनचंद्र शास्त्री
अंकली

॥ श्री ॥

॥ अर्वाचीन गुरू ॥

पूर्व इतिहास से विदित होता है कि परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) जैसा कि सर्व विदित है इस २०वीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बराचार्य हुए हैं । आचार्य शान्तिसागरजी महाराज गृहस्थ अवस्था में चा च आचार्य आदिसागरजी महाराज की काफी वैयावृत्ति करते थे । आहार दान देते थे कमण्डलु मे पानी भरते थे एव उन्हे दूध-गगा व वेद गगा नामक नदी में अपने कन्धे पर बैठाकर पार करवाते थे । ऐलक दीक्षा लेकर उनको गुरु बनाया । आपने स्वय सिद्धो के समक्ष सम्वत् १९१३ मंगसिर शुक्ला २ मूल नक्षत्र मे कुथलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर स्वय मुनि दीक्षा ग्रहण कर मुनि मार्ग जो प्राय॰ लुप्त सा हो रहा था उसे पुन जीवित किया आपको आचार्य पद १६ जून १९१५ को दिया गया था । एव उनकी समाधि कुजवन मे फाल्गुन कृष्णा १३ सन् १९४३ को हुई थी । आपने अपने आचार्यत्व मे कई मुनि दीक्षा एव आर्यिका दीक्षा दी थी उनके प्रमुख शिष्यो मे समाधि सम्राट आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज प्रमुख थे जिन्होने अपनी समाधि से पूर्व आचार्य पद तपस्वी सम्राट, वात्सल्य रत्नाकर, परमपूज्य आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज को देकर अपना पट्टाधीश नियुक्त किया। परम पूज्य आचार्य सन्मति सागरजी महाराज परम पूज्य आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) महाराज की परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए महती धर्म प्रभावना कर रहे हैं ।

३०-९-९३

पण्डित सिहचन्द जैन शास्त्री,
काव्यतीर्थ सा रत्न प्रतिष्ठाचार्य, न २३, पाचवी स्ट्रीट,
न्यु कॉलोनी आदम्बाकय, मद्रास-६०००८८

श्रद्धांजलि

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य श्री आदिसागर जी (अकलीकर) महाराज ने अकलीग्राम महाराष्ट्र मे जन्म फाल्गुण बदी १३ गुरुवार सन् १८६६ में लिया था । श्रावकोचित कार्य करते थे । ४६ वर्ष की आयु में मुनि दीक्षा मगशिर शुक्ला २ को कुंथलगिरि में स्वयं जिनेन्द्र देव की साक्षी मे ली थी । कठोर तपस्या करते थे । ज्ञान दान देते थे, उनकी देशना से भव्यो ने दीक्षाऐं ली बहुत बडा सघ था । आचार्य शान्तिसागरजी ग्रहस्थावस्था मे उनको आहार देते थे, कमण्डलु मे पानी भरते थे । वैय्यावृत्ति करते थे अपने कधे पर बैठाकर दूध-गगा वैदगगा नदी पार कराते थे । उनसे ऐलक दीक्षा लेकर उनकी महानता स्पष्ट किया । श्रुत पचमी गुरूवार सन् १९१५ मे आपको जयसिहपुर मे चतुर्विध सघ ने आचार्य बना दिया । एक वर्ष बाद जन्म स्थल अकलीग्राम मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा आपके सानिध्य मे हुई थी उस समय आपको चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया

था। आपने चारित्राचरण के अवरोधक नेत्र ज्योति मद हो जाने के कारण सल्लेखना ग्रहण की उस समय आचार्य शान्तिसागरजी आचार्यमहावीर कीर्तीजी मुनिराज नेमिसागरजी महाराज अन्य साधु गण ऐलक क्षुल्लक हजारो श्रावक वैयावृत्ति के लिए पहुँच गये थे। १४ दिन के बाद बड़ी शान्ति और सावधानी से सल्लेखना पूर्वक समाधि फाल्गुण बदी १३ गुरुवार ४ मार्च सन् १९४३ को ऊदगाँव (कुजवन) मे की थी। उनके चरणो मे श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

माणक चन्द पालीवाल
उपाध्यक्ष श्री अ भा दि जैन महासभा
मु कोटा (राजस्थान) १/११/१९९३

महान आत्मा

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी (अंकलीकर) श्रमण सम्कृति के आदर्श और निर्ग्रथ परम्परा को प्रगति प्रदान करने वाले विद्वान साधु थे। आचार्य शातिसागरजी (दक्षिण) के पहले हुए हैं। वे बडे तपस्वी साधु थे वे पचमहाव्रत अहिसा, सत्य, औचर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग। पच समिति ईर्या, भाषा, एषणा, आदाणनिक्षेपण, प्रतिष्ठापन। पचइन्द्रिय निरोध स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोया षट् आवश्यक समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग/ सप्तविशेषगुण केशलुचन, अचेलक्य, अस्नान, भूमिशयन, अदतधावन, स्थिति भोजन, एक बार दिन मे भोजन। आठ गुण आचारवान्, आधारवान, व्यवहार वान, कर्त्ता अपायोपाय विदर्शी उत्पीलक, अपरिस्रावी, निर्वापक इन गुणों का पालन करने मे चतुर थे।अपने धर्मोपदेश से अगणित भव्य प्राणियो का उपकार किया अपनी समाधि से पूर्व अपना आचार्य पद अपने शिष्य मुनि श्री महावीर कीर्तिजी महाराज को दिया था। तथा समाधि महाशिवरात्रि ४ मार्च सन् १९४३ को ऊदगाँव कुंजवन में हुई थी। ऐसी महान् आत्मा उनकी थी। उनको सविनय श्रद्धांजलि समर्पित है।

सासनी
६ ११ ९३

भवदीय
प्रकाशचन्द्र जैन अध्यक्ष
दिगम्बर जैन महासमिति उत्तरांचल
सासनी

श्रद्धांजलि

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती १०८श्री आचार्य आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) महाशिवरात्री ४ मार्च फाल्गुण कृष्णा १३ सन् १९४३ को ऊदगाँव (कुजवन) मे अपनी समाधि की। उनके शिष्यो में २ प्रमुख शिष्य हुए। एक आचार्य श्री शान्तिसागर जी (दक्षिण) जिनको ऐलक दीक्षा दी, दूसरे आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी महाराज जिनको मुनि दीक्षा एव अपना आचार्य पद दिया।

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) का जन्म अकली ग्राम में फागुन बदी-१३ सन् १८६६ को हुआ था। जनता एव समाज का उपकार किया। मगसर शुक्ला २ सन् १९१३ को मुनिपद कुथलगिरी पर स्वय ग्रहण किया। २ वर्ष बाद श्रुत पचमी को आचार्य पद मिला और सन् १९१६ में अंकली में भगवान आदिनाथ स्वामी के पच कल्याणक हुए उस समय चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया था। मुनिकुजर थे। आचार्य श्री शान्ति सागरजी महाराज उनसे प्रायश्चित लेते थे। यह परमपूज्य गुरुदेव आचार्य १०८ श्री महावीर कीर्तिजी ने बताया है। वे प्रमाण हैं। कहा भी है।

॥ वक्त प्रामाण्याद्वचन प्रमाण्यम् ॥

वक्ता की प्रमाणता से वचन मे प्रमाणता आती है। उनके चरण में श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

रा सोहन लाल जैन
(सोहनलाल कोठारी, जैन)
आनन्दपुर कालू (राज)

चमत्कारी गुरु

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज की तपस्या बहुत कठोर थी। ध्यान में अपना अधिक समय व्यतीत करते थे। उनका ज्ञान भी बड़ा अद्भुत था। परमपूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज उनके गुणो की प्रशंसा करते थे और उनसे ऐलक पद धारण किया था। परम पूज्य आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज ने उनसे मुनि पद धारण किया था। दक्षिण मे उनकी देशना से अनेक मुनि आर्यिका ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, श्रावक श्राविका बने। उनका जन्म १२८ वर्ष पूर्व अकली मे हुआ था, ४७ वर्ष की उम्र मे मुनि पद लिया था, २ वर्ष बाद आचार्य पद मिला और फाल्गुण कृष्णा १३ गुरुवारसन् १९४३ को समाधि ऊदगाँव मे हुई थी। वे चमत्कारी गुरु थे।

कवरीलाल बोहरा, अध्यक्ष

श्री दिगम्बर जैन मुनि सघ कमेटी, आनन्दपुर कालू (पाली) राजस्थान

वर्तमान के युगन्धर

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) जो कि २०वीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बराचार्य हुए हैं। आपने सन् १९०६ मे मुनि जिनप्पा स्वामी से दीक्षा ली एव तीन माह के पश्चात् ऐलक दीक्षा ग्रहण की एव वैराग्य भावना बढ़ती चली गयी। आखिर सन् १९१३ मे मगलवार मगसिर शुक्ला २ मूलनक्षत्र मे स्वयं सिद्धो के समक्ष कुंथलगिरी सिद्ध क्षेत्र पर दिगम्बर मुनि दीक्षा ग्रहण की। आपने इस शताब्दी मे सर्व प्रथम मुनि दीक्षा ग्रहण कर लुप्त प्राय दिगम्बर मुनियो के स्वरूप को पुन जीवित किया। आज उन्हीं की देन है कि भारतवर्ष मे हमें जगह-जगह निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनियो के दर्शन हो पा रहे हैं। आपको सर्वप्रथम आचार्य पद जयसिहपुर में सन् १९१५ श्रुत पचमी को दिया गया, जो कि आपमे मुनि अवस्था में चारित्राचार एव पंचाचार के दृढ़ता पूर्वक पालन को देखते हुए सघ एव समाज ने मिलकर दिया एव सन् १९१६ मे भगवान आदिनाथ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय अकली ग्राम में चारित्रिक दृढता को देखते हुए "चारित्र-चक्रवर्ती" पद से अलंकृत किया। जैसाकि ज्ञात होता है आपने अपने आचार्यत्व में कई मुनि दीक्षा व आर्यिका दीक्षा दीं थीं उनके प्रमुख शिष्यो मे आचार्य शान्तिसागरजी हैं जिन्होंने ऐलक पद धारण कर गुरु बनाया और समाधि सम्राट आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज थे जिनको अपनी समाधि से पूर्व अपना आचार्य पद देकर पट्टाधीश नियुक्त किया जिनके आचार्यत्व चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) महाराज की परम्परा निर्बाध रूप से चल रही है।

पण्डित जयकुमार जैन शास्त्री

३०-९-९३ विजयनगर

श्रद्धांजलि

चारित्र चक्रवर्ती हुए, आदि सिंधु मुनिराज ।
आचार्य पद शोभित किया, मुनि मारग दर्शाय ।।
फैला शिथिलाचार जो, किया उसे परिहार ।
कलियुग मे सतयुग किया, जिनशासन प्रकटाय ।।



२०वीं सदी के सर्वप्रथम परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) का जन्म अकलीग्राम (महाराष्ट्र) मे हुआ था । आपके पिता सिद्धगोडा व माता अक्काबाई की कुक्षी से फाल्गुण कृष्णा १३ सन् १८६६ को हुआ था । आपका जन्म नाम शिवगौडा रखा गया । आप बालपन से ही बडे चतुर व पराक्रमी थे, व स्वाभिमान से रहते थे । १५ वर्ष की आयु मे आपके पिता का स्वर्गवास व ३७ वर्ष की आयु में आपकी माता का स्वर्गवास हो गया था । कुछ समय बाद आपकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया था । उसके बाद आपका मन वैराग्य की ओर लग गया था । आप घर मे व्रत उपवास बहुत करते थे । धीरे-धीरे आपके दीक्षा लेने के भाव हो गये तब आप नान्दनी गाँव में मुनि जिनप्पा स्वामी से 40 वर्ष की उम्र मे सन् १९०६ मे क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर थोडे समय बाद ऐलक पद को धारण किया उस समय मुनि धर्म का अभाव सा था । आपने कुन्थल गिरी क्षेत्र पर कुलभूषण देशभूषम की साक्षी मे मगसर शुक्ला २ सन् १९१३ को मुनि दीक्षा ग्रहण की और मुनि धर्म का निर्दोष पालन करने लगे । उसके बाद आपने बहुत कठोर तपस्या की व गुफा मे ध्यान करते थे व सात दिन बाद एक बार आहार लेते थे, बाकी के शेष दिन उपवास करते थे वे आहार में एक ही वस्तु लेते थे आपकी तपस्या से सभी लोग बहुत प्रभावित थे । जर्यासगपुर समाज और साधुओ ने जेष्ठ शुक्ला पचमी सन् १९१५ को आचार्य पद से सुशोभित किया । आपने अनेक भव्य जीवो को व्रत एवं दीक्षाएँ दी ऊदगाँव कुजवन मे चातुर्मास मे समाधि का निर्णय कर अपने शिष्य मुनि श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज को अपना आचार्य पद देकर १४ दिन की सल्लेखना लेकर फाल्गुण कृष्णा १३ महाशिवरात्री सन् १९४३ को सल्लेखना से समाधिमरण किया । युग-युग तक आपकी यशपताका फैलती रहे इन्हीं शब्दो के साथ आपके चरणो मे श्रद्धाजलि अर्पित करती हूँ ।

ब्रह्मचारिणी सुशीला कुलथाना (राज.)

श्रद्धांजलि



आदि तीर्थकर आदिनाथ से लेकर अतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का तीर्थ प्रवर्त रहा है उसके बाद गणधर प्रति गणधर आदि मुनि पुगव हो गये उसी शृंखला मे परम पूज्य इस शताब्दी मे सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज हुए जिनके निर्दोष तपस्या का प्रभाव परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज पर भी पडा और उनसे ऐलक दीक्षा धारण की । परम पूज्य आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज ने मुनि दीक्षा ली और उनका आचार्य पद भी प्राप्त किया वे एक आदर्श गुरु थे । मैं उनके चरणो मे नमोस्तु करता हुआ श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

महावीर प्रसाद बोहरा, अध्यक्ष
श्री दिगम्बर जैन युवा सगठन, आनन्दपुर कालू (राजस्थान)

ससार पापमय है फिर भी उसमे धर्म के नेता गुरू हैं वे भी निर्ग्रन्थ हैं जो स्वयं और दूसरो को भी पाप से दूर करते हैं, उन्हीं महान् गुरुओ मे परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुंजर आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) हुए जिनको परम पूज्य आचार्य महावीर कीर्तिजी ने अपना गुरु बनाया उनके तप से प्रभावित होकर परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज ने भी ऐलक दीक्षा ग्रहण की थी उनका रत्नत्रय भेदाभेद रूप था । उन महान गुरू के चरणो मे मैं श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

जिनेश कुमार कोठारी जैन, अध्यक्ष
सगीत मण्डल, आनन्दपुर कालू (राज)

प्रथमाचार्य श्री प. पू. विश्वंद्य १०८ चारित्र चक्रवर्ती आ. आदिसागरजी अंकलीकर को श्रद्धांजलि

आचार्य श्री आदिसागरजी का जीवन बहुत ही सरल स्वाभाविक और आडम्बर विहीन था, वे एकान्त स्थान मे रहते थे, जहाँ कि पुरष स्त्रियो का आवास नही था जिससे कि ध्यान साधना मे बाधा नही आवे । आप मोन प्रिय थे । आपका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त के अन्तर्गत सगलीजिला, अकलोग्राम मे हुआ था । आपने दीक्षा लेकर उत्तर भारत मे विहार नहीं किया, आपने ऊदगाँव के कुजवन मे रहकर तपश्चरण करके अपनी आत्मा को तपाया, कर्म मलो का प्रक्षालन किया, आप धर्म के मूर्तमान रूप थे दिगम्बर परम्परा के अवधूत के रूप मे अवतरित हुए । त्याग, सत्य, स्पष्टवादिता, जीवदया, परोपकार, आदि गुण उनके पार्थिव शरीर के साथ ही जन्मे थे । आत्मीय गुणो के प्रताप पुन्ज के साथ शरीर बल भी अपने ही ढग का था ।'' पूत के पाँव पालने मे ही दिखते हैं'' कहावत सत्यार्थ कर दी थी । पाँच-पाँच मन की बोरियो को उठा फेकना, खेत मे पानी पटाने की मोट स्वय हाथो से खींचना आदि कार्य आश्चर्यजनक थे । आपके गाँव मे मदिर नहीं था तो आपने अपनी जमीन देकर जिनालय का निर्माण कराया, आपकी जिनभक्ति अद्वितीय थी, दया भी रोम-रोम मे भरी हुई थी, दीन दु खी दरिद्री जीवो को अन्नादि देकर उनको सन्तुष्ट करते थे ।

गृहस्थावस्था मे आपकी देव शास्त्र, और गुरुओ मे भक्ति अपार थी गृहस्थावस्था मे आप जलतैं भिन्न कमल की भाँति रहते थे । तत्वचर्चा वैराग्यवर्द्धक कथा कलाप करना आपकी दिनचर्या के प्रमुख अग बन गये थे, इस तरह जीवन मे वैराग्य को वर्द्धन करते हुए आत्म स्वरूप की प्राप्ति हेतु स्वय त्यागी साधु बनना उचित समझा 'अवसर पाते ही नादणी मे मुनि श्री जिन्नप्पा स्वामीजी के समीप छुल्लक दीक्षा धारण की, फिर उन्होने तीन महीने बाद ऐलक दीक्षा दई गाव में स्वय ने ली । उसके कुछ दिनो बाद मे सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरि पर कुलभूषण, जी देशभूषणजी भगवान के (समक्ष) साक्षी मे स्वय जैनेश्वरी दीक्षा धारण की । अति दुर्लभ और दुर्धर्ष दिगम्बर परम्परा को पुन जीवन प्रदान किया । उस समय मे साधु की आहार विहारादि की क्रियाओं को भी श्रावक जानते नहीं थे तो भी आप अपने व्रत नियमादि से तनिक भी विचलित नहीं हुए । आपके जीवन मे निम्न श्लोक साकार उतरता है-

सम्यग्दर्शन मूल ज्ञान स्कन्ध चारित्र शाखाढ्य ।
मुनिगण विहगा कीर्णं आचार्य महाद्रुम वन्दे ॥

अर्थात् आचार्य महान विशाल विस्तृत वृक्ष के समान हैं, जिनकी मूल जड़ सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान स्कध तना है चारित्र रूपी शाखाएँ (डालियाँ) हैं अनेको मुनिराज रूपी पक्षियों की आश्रय दाता है ऐसे आचार्य रूपी इस वृहद वृक्ष की मैं वदना करता हूँ ।

आचार्य श्री की तपस्या से प्रभावित महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त

एक बार आप एक गाँव मे गये, वहाँ पर गाँव के बाहर कटीली झाडियो के बीच में आसन लगाकर बैठ गये, आपके आगमन की चर्चा गाँव में फैल गयी, उसी दिन एक ग्रामीण के लड़के को किसी सर्प ने काट लिया, जिससे वह बेहोश हो गया था, उसका सारा शरीर हरा नीला पड गया था, सभी ने उसके बचने की आस छोड दी थी । इकलौती सन्तान होने के कारण उसकी माता अधिक दुखी थी, तब किसी सज्जन पुरुष ने उसे कहा अरे अम्मा घबराओ नहीं आज अपने गाँव मे एक महान् तपस्वी साधु महात्मा पधारे हैं, उनकी तपस्या के प्रभाव से एव आशीर्वाद से आपका पुत्र ठीक हो जायेगा, शीघ्र जाओ देखो वह उन झाडियो में बैठे हैं यह बात सुनकर वह महिला शीघ्र ही अपने पुत्र को लेकर बडी श्रद्धा के साथ वहाँ पहुँची, जहाँ पर आचार्य श्री ध्यानस्थ विराजमान थे वहीं पास मे अपने पुत्र को सुला दिया और स्वय भी बैठ गई, उसी समय पानी बरसा जिससे महाराज के शरीर का जल बहता हुआ बालक तक पहुँचा और जल स्पर्शमात्र से ही बालक ठीक हो गया । देखिये इनकी तपस्या का चमत्कार जो औपधि का काम करता है । इस तरह एक नही अनेको रोगियों के रोग शात हो गये, आपके चरण तल की मिट्टी लगाने मात्र से ।

अधिक क्या कहे और भी आपने ऐन केन प्रकार से जो अनिवार्य था वह सर्व ही प्रचार कर जेन धर्म और जैन समाज को समुन्नत बनाने का प्रयत्न किया । अत ऐसे परोपकारी गुरुवर्य के गुणो का गान मेरे जेसी अल्पज्ञको को कहाँ सभव हो सकता है । मैं उन पुण्यात्मा के श्रीचरणों मे अनन्तश नमोऽस्तु नमन के साथ अपनी श्रद्धाजलि समर्पित करती हूँ, मुझे उन जैसी समाधि की प्राप्ति हो ।

जय बोलिये प्रथम आचार्य श्री १०८ आ आदिसागरजी अकलीकर महाराज श्री की जय ॥

श्रद्धावनता बा ब्र पद्मप्रभा

श्रद्धांजलि

परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बर जैनाचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) की पुण्यस्मृति मे स्मारिका का प्रकाशन वस्तुत एक महान् अनुष्ठान है । आचार्य आदिसागर जी महाराज के पट्टाधीश परम पूज्य समाधि सम्राट आचार्य शिरोमणी १०८ श्री महावीर कीर्ती जी महाराज के पट्टाधीश प्रात स्मरणीय परम पूज्य आचार्य १०८ श्री सन्मति सागरजी महाराज के श्री चरणो मे बैठकर मैंने सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्चारित्र का जो वचनामृत पान किया उसमे आचार्य प्रवर श्री आदिसागर जी (अकलीकर) महाराज की अमृतवाणी ही प्रतिध्वनित होती हुई प्रतीत होती है । प्रकाश्य स्मारिका

ग्रथ मे परमपूज्य आचार्य परमेष्ठी की कठिन तपश्चर्या से प्रकट अनुभूति ज्ञान गगा प्रवाहित होगी- यह कल्पना ही मुझे परम आनद का अनुभव करा रही हे। निश्चय ही यह ग्रथ अज्ञानाधकार मे निमग्न समाज के लिए एक अद्‌भुत प्रकाश स्तभ बनेगा।

आज के वर्तमान अति भौतिक युग मे विश्व अज्ञान, हिसा, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और दम्भ जैसे अमानवीय दुर्गुणो से ग्रस्त हे। मैत्री, ज्ञान, सद्‌भाव और अहिसा वृत्ति का सर्वत्र अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। उक्त दुगुणों के मूल मे सम्यग्ज्ञान के अभाव के कारण उत्पन्न समाज का अतिभोतिकतावाटी हो जाना ही है। इस अति परिग्रही समाज मे प्रेम, मैत्री एवं सद्‌भाव मात्र वाणी का विलास बनकर रह गये हे। सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्‌ चारित्र के अभाव से उत्पन्न जीवन के अस्तित्व को ही चुनौती दे रहा हे। ऐसे विषम अधकार मे डूबे विश्व को जैनाचार्यो की कठोर तपस्या से अनुभूत ज्ञानकिरण ही आलाक देकर सम्यक्‌ मार्ग निर्देश कर सकती है।

अत परम पृज्य आचार्य प्रवर आदि सागरजी (अकलीकर) महाराज के प्रति हमारी सर्वश्रेष्ठ विनम्र श्रद्धाजलि यही हो सकती है कि हम अपने जीवन को प्रत्येक क्षेत्र मे उनके द्वारा प्रदत प्रकाश मे अग्रसर होने की क्षमता प्रदान करे। हम अपनी न केवल वाणी से अपितु चिन्तन और चरित्र से भी आत्मज्ञान के आलोक मे अग्रसर होने का आदर्श उपस्थित करे। आओ। आज हम सब मिलकर यह व्रत लेते हुए आचार्य श्री आदिसागर जी महाराच (अकलीकर) को श्रद्धाजलि अर्पित करे कि आज से उनके एव अन्य आचार्यो द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्‌ चारित्र से हम सब भावी पीढी के लिए अनुकरणीय उदाहरण बने। इन्हीं भावनाओ के साथ श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

अवागढ
१५-११-९३

डा धन्य कुमार जैन
अध्यक्ष-नगर क्षेत्र समिति अवागढ
सदस्य-जिला कांग्रेस कमेटी एटा

शाब्दिक श्रद्धांजलियाँ

पर्वत मे ऊँचाई होती है, गहराई नहीं, सागर मे गहराई होती हे, ऊँचाई नहीं। गहराई और ऊँचाई यदि एक साथ देखनी हो तो हमे दिगम्बर जैन आचार्यो की सुधी और सधी चर्या को देखना होगा। इसी परम्परा के बीसवीं शदी के प्रथमाचार्य परमवद्य, ज्ञानार्णव, चारित्र चक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज के विरल व्यक्तित्व मे ज्ञान की गहराई और चारित्र की ऊँचाई एक साथ मुखरित हो उठी थी।

आचार्य श्री अकलीकर जेन दर्शन और सस्कृति की प्रयोगशाला थे। उनमे दर्शन, ज्ञान और चारित्रय की अनुपम अन्विति चारितार्थ थी। वे प्रभावत प्रज्ञा पुरुष थे। उनकी परम्परा उनके आदर्शो का उत्तम उदाहरण है। ऐसे दिव्य रत्नत्रयी विश्वकाश को मेरी शत-शत नमोस्तु पूर्वक हार्दिक शाब्दिक श्रद्धाजलियाँ सादर समर्पित हैं।

मगल कलश
३९४, सर्वोदय नगर
आगरा रोड, अलीगढ-२०२ ००१

विद्यावारिधि डॉ महेन्द्र सागर प्रचंडिया
एम ए, पीएच डी, डी लिट
(निदेशक जैन शोध अकादमी)

ॐ नमः

परम पूज्य महान समर्थ आध्यात्मिक वीतराग-तपस्वी आचार्य शिरोमणि समाधि सम्राट् १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) के पादारविन्द मे मेरी श्रद्धाजलि शुभकामना पूर्वक नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।

पुण्यभूमि भारत क्षेत्र महाराष्ट्र राज्य सागली जिला (तहसील) मे अकली ग्राम मे शुभ दिव्य १८६६ ई स मे, जैन धर्म परायण, धर्मानुरागी श्रावक पाटील घराने के सिद्धगौडा कीधर्मपत्नी श्री अक्काबाई के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम शिवगौडा पाटील रखा गया। यह बालक बहुत बलवान, सामर्थ्ययुक्त, साहसी और आत्मबली होने से अपनी मित्रमण्डली मे प्रमुख हुआ। एकदिन खेत से वापिस लौटा उस समय प्यास तेज लगी थी । रसोई घर मे एक मटके मे चूना का पानी रखा था, छाछ समझकर उसे पी लिया । चूना की चडचडाहट से इनके उदर से मुख के द्वार से एक सर्प बाहर निकला । घर क्या गाँव के लोग भी आश्चर्यचकित हो गये । ग्रहस्थावस्था मे अनेको साहसिक कार्य किये । सोलह वर्ष की अवस्था मे पिता का स्वर्गवास हो गया । इनका विवाह आउ बाई के साथ हुआ । एक पुत्र और एक पुत्री हुयी ।

शिवगौडा की २७ साल की उम्र मे माता का स्वर्गवास हुआ और कुछ वर्षो बाद पत्नी भी स्वर्ग सिधार गई । इससे इनका जन्मजात वैराग्य बढ गया । दोनों बच्चों को अपनी बहिन की देख-रेख मे छोडकर आपने नादणी गाँव मे मुनि जिनप्पा स्वामी के पास क्षुल्लक दीक्षा धारण की । तीन महीने बाद स्वय साहस कर जिनेन्द्र भगवान के सामने ऐलक दीक्षा ले ली । उस समय ३१ वर्ष की आयु थी । शास्त्र अध्ययन से निष्णात आपने ई स १९१३ में मागसिर शुक्ला द्वितीया के दिन कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र मे १००८ श्री कुलभूषण देशभूषण भगवान की साक्षी मे स्वय निर्ग्रन्थ-दिगम्बर दीक्षा धारण की । दिगम्बर दीक्षा लेकर महाराष्ट्र, कर्णाटक मे विहार करके जैन धर्म की प्रभावना करते हुए तीर्थंकर और साधुओ का स्वरूप समझाया । जयसिंगपुर मे चातुर्मास काल मे आपको आचार्य पद समाज ने १९१६ में प्रदान किया । आप शिक्षा और दीक्षा देने योग्य बने ।

आपने ३२ मुनियो और ४० आर्यिका क्षुल्लिकादि दीक्षा दीं । आप सात दिन में एक बार चर्या करते थे, उसमे भी कोई एक ही वस्तु ग्रहण करते थे । गन्ने का रस लिया तो मात्र वही लेते थे । आम का रस मिला तो वही लेते । अभिप्राय यह है कि किसी एक ही रस या दाल से सात उपवास का पारणा करते थे ।

ई स १९४३ मे ऊदगाँव मे कुञ्जवन में फाल्गुण कृष्णा त्रयोदशी के दिन १४ दिन की सल्लेखना कर समाधि मरण किया । उस समय ४८ त्यागी थे । उनके अलावा जैन जैनेतर भी बहुत थे । ऐसे कठिन तपस्वी १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज मुनिराज के चरणारविन्द मे मेरा भक्तिभाव पूर्वक नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु करके श्रद्धाजलि एव शुभकामनाएँ समर्पित करता हूँ । परम तपस्वी सम्राट् सिद्धान्त चक्रवर्ती शिरोमणि १०८ आचार्य परमेष्ठी श्री सन्मतिसागरजी महाराज और परमपूज्या ज्ञानचिन्तामणि गणिनी आर्यिका विदुषी सम्यग्ज्ञान शिरोमणि, धर्म प्रभाविका श्री-श्री-श्री विजयमती माताजी की प्रेरणा से प्रथमाचार्य परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) के चरणो मे मेरी श्रद्धाजलि एवं शुभकामनाएँ लिखकर भेजने का अवसर मिला । आचार्य महाराज, मुनिराजो व माताजियो को मेरा भक्तिपूर्वक नमोऽस्तु ।

समाजभूषण अण्णप्पा चन्दप्पा
नेलेविगी, हुबली
कर्णाटक - ५८० ०२४

[illegible]

[illegible]
[illegible] 108 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] 1966 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible] 27 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] 1008 [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] Date [illegible]

[illegible] 1916 [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] 40 [illegible]

[illegible]

[illegible] 7 [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] (1943) [illegible]

[illegible] 140 [illegible]

[illegible]

[illegible] 48 [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]
HUBLI 580024

[illegible]
[illegible]
([illegible])

श्रद्धांजलि

प पू चा चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी महाराज २०वीं शदी के अद्वितीय अनोखे तपस्वी थे। आदि शब्द अनेक गूढ़ अर्थों से समन्वित है, सभी प्रकार से आप सार्थक नाम को धारण करने वाले हैं। यदि आदि शब्द का प्रारम्भ अर्थ करें तो सर्वप्रथम मुनि दीक्षा लेकर आपने निर्दोष मुनिचर्या को अभिव्यक्त किया, अत• आपका श्री आदिसागर नामसार्थक ठहरता है, यदि आदि शब्द का अर्थ मूल, मुख्य, प्रधान अर्थ ले तो आप अपने युग के अनोखे अद्वितीय तपस्वी, आत्मध्यानी, आत्मज्ञानी थे, आगमानुसार सर्वप्रथम उत्तम समाधि को धारण करने वाले आपका आदर्शमय जीवन नामानुकूल दृष्टिगत होता है। आप इस युग के आदि ब्रह्मा, आदि धर्म प्रवर्तक, सूरि शिरोमणि आदि पुरुष थे। वन्दे तद्गुणलब्धयं की भावना से मैं आपके चरणो मे शत-शत विनयाञ्जलि प्रस्तुत करता हूँ।

१५-१२-९३

भागचन्द दगड़ा
सदस्य
श्री आदिनाथ तैरापंथ पंचायत मंदिर, मदनगज-किशनगढ

भारत धर्म प्रधान देश सदा से रहा है, जिसमें निर्ग्रंथ मुद्रा की महान् पूज्यता रही है। समय-समय पर इसका आतकवादियों के कारण विच्छेद भी रहा। इस बीसवीं सदी मे सर्वप्रथम प पृ चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) ने निर्ग्रंथ मुद्रा को धारण कर पवित्र जैन धर्म का उपदेश देकर भव्य जीवो को इस दुखमय ससार से छुडाया, उनके प्रति समाज ऋणी है। उसी परम्परागत प पू प्रथम गणिनी आर्यिका श्री १०५ विजयमती माताजी ने हमारे यहाँ चातुर्मास कर जिन धर्म का वास्तविकता से परिज्ञान कराया है। मैं उन परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) के चरणों मे नतमस्तक होकर श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

कंवरीलाल कासलीवाल
अध्यक्ष, चा क बलुंदा (पाली)

परम पूज्य आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज की मुनिदीक्षा सवत् १९९९ मे ऊदगाँव में इस बीसवीं सदी के सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य मुनि कुंजर आदिसागर जी (अंकलीकर) से ली थी। ये महान् तपस्वी साधु थे शक्तिशाली थे। आचार्य शांतिसागरजी भी गृहस्थ अवस्था में आहार देते थे। वैयावृत्ति करते थे। वेद गगा, दूध गंगा, नदी पार कराते थे। ऐलक पद उनसे ही धारण किया था। उन्होंने बहुत दीक्षाएँ दी थीं। अंत में अपना आचार्य पद, मुनि महावीरकीर्तिजी को देकर ऊदगांव कुंजवन में ४ मार्च सन् १९४३ को समाधि की। बडा ही अतिशय हुआ था। उस समय पर वहाँ आचार्य शांति सागरजी आदि जहुत से साधु पहुंच गये थे। उनके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

भागचन्द कासलीवाल
इंचलकरणजी

श्रद्धांजलि

परम पूज्य गणिनी आर्यिका श्री १०५ विजयामती माताजी ने दक्षिण उत्तर पूर्व मे तो धर्म का प्रचार किया ही, अब पश्चिम मे भी धर्म-प्रचार कर रही हैं। बहुत आग्रह पर उन्होंने हमारे यहां चातुर्मास कर हमारा कल्याण किया है। वे पूज्य १०८आचार्य विमलसागरजी महाराज की शिष्या है और परम पूज्य आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज की संघस्था हैं।

प्रात सर्म्णीय विश्ववद्य मुनि कुजर चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) की परम्परा मे हैं। ये पूज्य गुरुदेव दक्षिण भारत मे जन्मे, वहीं दीक्षा ग्रहण कर दिगम्बरत्व को जीवन प्रदान किया। धर्म स्वरूप समझाया, धर्म प्रचार करते रहे। ये महान साधु आचार्य शातिसागर (दक्षिण) के पूर्ववर्ती आचार्य हुए है। उनके चरणो मे मैं अपनी अनेकानेक श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ। आप यवच्चन्द्र दिवाकर जयवन्त हो हमेआत्म कल्याण रूप मोक्षमार्ग परोक्ष रूप मे प्रदर्शित करते रहे।

अजित कुमार कासलीवाल,
सेलम

परम पूज्य आचार्य विमल सागरजी महाराज निमित्त ज्ञान शिरोमणी हैं। उनके दादा गुरू इस शताब्दी के सर्वाधिक प्रभावशाली चारित्र चक्रवर्ती १०८ आचार्य आदिसागर (अंकलीकर) महराज थे। जिन्होने दक्षिण मे जैन धर्म की महान् प्रभावना की है। मिथ्यात्व को हटाया। मोक्ष मार्ग की प्रथम सीढी सम्यग्दर्शन को प्राप्त कराया। बहुत सी दीक्षाएँ दी हैं, जिनमें १०८ आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज को मुनि दीक्षा दी, और अपनी समाधि से पूर्व अपना आचार्य पद देकर, ऊदगॉव कुजवन मे समाधि सिद्ध की। जो भव्य जैन धर्म को नहीं समझते वे इनके प्रभाव को सहन नही कर सकने के कारण यद्वा-तद्वा बोलते हैं। लिखते हैं। परन्तु आपकी कठोर तपस्या एव निर्दोष चारित्र अपूर्व रहा था।

आचार्य शातिसागरजी भी उनकी प्रशसा करते थे। प्रभावित थे। आहार दान देते थे वैयावृत्ति करते थे। उनके चरणो मे मैं अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

रिखबचन्द कासलीवाल
संघपति बलून्द

आदरांजलि

मैं जब १७ साल की उम्र मे श्री १०८ आचार्य शातिसागर जी महाराज (दक्षिण) के संघ मे था, तब मुझे कोल्हापुर जिले के ऊदगाँव कुजवन मे श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) के प्रथम दर्शन का लाभ हुआ, तब मुझे धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं था, किन्तु आचार्य शातिसागरजी के सान्निध्य मे प्रवचन सुनते सुनते थोडा-थोडा धर्म ज्ञान करते हुए जब-जब मैं आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी के सानिध्य में आता तब मुझे आचार्य श्री का ज्ञान प्रसार का इतना असर पड़ता था कि अभी भी मुझे सब याद आता है तो उस समय का उनका उपदेश आज भी मेरी स्मृति मे है, उनके उपदेश मे मिठास और गहराई थी वे गागर मे सागर जैसे मितभाषी मृदुभाषी थे। आज मुझे जो धर्म का ज्ञान है वह श्री आचार्य श्री की ही देन है, ऐसा कहना उचित है जब वे सन् १९४३ में ऊदगाँव कुजवन मे अतिम समय मे समाधि से पूर्व अपने सघ के योग्य मुनि समाधिसम्राट् श्री १०८ महावीर कीर्ति महाराज को अपना आचार्य पद प्रदान करके सल्लेखना पूर्वक समाधि मरण किये थे, उस वक्त का चित्र हृदयपटल मे चित्रित है, परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) के प्रति मेरी भक्तिपूर्वक आदरांजलि अर्पण करता हूँ।

सवधरणीकागज करूँ, लेखनी सब वनराय बनाय।
सदा समुद्र स्याही करूं गुरुगुण लिखो न जाय॥
सोऽहं तथापि तव भक्ति वशान्मुनीश, कुर्तुं तवविगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्यमृगीमृगेन्द्रं, नाभ्येति किं निजशिशोपरिपालनार्थं॥

९-११-१९९३

के एल. सप्तसागर
तेरदाल

श्रद्धांजलि

त्याग और सयम की मूल धरोहर इस बीसवी सदी के कुल दीपक बात्सल्यनिधि प्रथम आचार्य श्री १०८ आदिसागर (अकलीकर) से आज तक यह परम पुनीत पवित्र मुनि परम्परा निरन्तर चली आ रही है। वह जो आज विशाल वटवृक्ष के रूप मे परिणत हो भव्य जनो को शीतलता प्रदान करती हुई उनका अतुल कल्याण कर रही है, और यत्र-तत्र-सर्वत्र वटवृक्ष की भाति विकसित और पल्लवित शाखाओ की भाति इस भारत भूमि पर विद्यमान है और निरन्तर प्रगति पथ पर है। यह चतुर्विध सघ सर्वत्र विचरण कर सत्मार्ग को प्रदर्शित कर अनेक भव्यजीवो का कल्याण करा रहा है, और धर्मामृत पान करा रहा है। जीवन का सार और मनुष्य भव की सार्थकता जिन्होंने समझी और उस दिगम्बर निर्ग्रंथ जिनदीक्षा को अगीकार करके स्वय पर कल्याण की भावना से निर्दोष पालन किया। दया से द्रवित महान् विभूति द्वितीय पट्ट शिष्य आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी उसके उदाहरण थे। उन्होंने इस मुनि परम्परा की भी वृद्धि की और इस का श्रेय ऐसे दिग्गज आचार्य श्री को ही जाता है।

उन्होंने जो प्राणियो को दीक्षा दी वह उस समय के लिए असाधारण थी। उनकी वाणी मे अमृत था। ससारी जनो को निवृत्तिमार्ग दिखाकर अनेको भव्यजीवो का उपकार किया, यह सारा श्रेय इस बीसवी सदी के प्रथमाचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) को ही है। यह दिग्म्बर मार्ग कठिन होते हुए भी उन्होंने उपयोगात्मक रूप से अगीकार कर इस नश्वर सारहीन ससार से परमात्मा की ओर स्वय उन्मुख हुए और उनकी अनुभूति से अनेकों को दिशा दी। धर्म का ह्रास और अधर्म की वृद्धि मे ऐसे ही महान् आत्माओ का अवतरण होता है और होता भी रहेगा। उनकी पुण्यदेशना जिसने सुना उसने हृदय से अगीकार कर आत्म कल्याण किया।

उनकी परम्परा मे परम पूज्य आचार्य १०८ श्री महावीर कीर्ती जी आचार्य सन्मतिसागर जी इस समय मे ज्ञानरूप प्रकाशित हुए। ज्ञानकी समीचीनता समझते हुए भव्यजीव स्व पर कल्याणी इस जिनेश्वरी दीक्षा को अगीकार करके आत्म कल्याण कर सकते हैं। ऐसी भव्यदेशना का शखनाद आचार्य श्री जैसे ही कर सकते हैं। ऐसी भव नासनी दिगम्बर जिनदीक्षा के धारी समाधि सम्राट् आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) के पुनीत चरणों में शत्-शत् नमन करते हुए यही भावना करते हुए कि वह दिन हमारे जीवन मे कब आए कि हम भी उस मार्ग पर चलकर इस मनुष्य भव को सार्थक कर सकें तथा यही सच्ची श्रद्धाजलि प पू आचार्य के पुनीत पवित्र चरणो मे अर्पित करता हूँ।

व्रती कुसुम कुमार जैन
मुनि व्यवस्था समिति एटा (उ प्र)

श्रद्धांजलि

परम पूज्य निमित्त ज्ञान शिरोमणि आचार्य श्री १०८ श्री विमलसागरजी महाराज की शिष्या परम पूजनिया श्री १०५ प्र गणिनि आर्यिका श्री विजयमती माताजी ने दक्षिण में विहार कर अद्वितीय धर्म की प्रभावना की है। उनके माध्यम से मुझे उधर के धर्मायतनो का दर्शन हुआ तथा विशेषता यह रही कि परमपूज्य समाधि सम्राट् आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज केपरमाराध्य गुरुदेव २०वीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य आदिसागर महाराज (अकलीकर) की जीवन कथा भी सुनी। वे बडे भाग्यशाली थे, उन्होंने अपने गृहस्थ जीवन मे अपनी शक्ति धर्म कार्यों में लगाई श्रावक धर्म का उचित पालन करते थे। भूखे, गरीबो पर दया करते थे, अपने पिता, माता एव स्त्री के स्वर्गवास हो जाने के बाद वैराग्य हो गया। ४० वर्ष की आयु में क्षुल्लक दीक्षा सन् १९०६ में मुनि जिनप्पा स्वामी से ली थी, ३ माह बाद ऐलक दीक्षा जिनेन्द्र देव की साक्षी में ग्रहण की और मगशिर शुक्ला २ सन् १९१३ मे मुनि दीक्षा कुन्थलगिरी क्षेत्र पर कुलभूषण देशभूषण की साक्षी में स्वय ग्रहण की थी, आहार करने के बाद ७-७ दिन तक ध्यानपूर्वक उपवास की कठिन तपस्या करते थे। आहार मे एक ही वस्तु लेते थे, उनके धर्मोपदेश से बहुत से नर नारी दीक्षित हुए थे।

श्रुतपचमी गुरुवार सन् १९१५ मे आपको आचार्य पद घोषित किया था। बहुत बडा संघ था। उन्होंने अपना आचार्य पद अपने शिष्य मुनि श्री महावीर कीर्तिजी को देकर फाल्गुन कृष्णा १३ गुरुवार सन् १९४३ मे ऊदगाँव मे (कुजवन) समाधि की थी। उस समय पर पू आचार्य शान्ति सागरजी नेमिसागरजी आदि बहुत से साधू और हजारो श्रावक श्राविकाए उनकी वैयावृत्ति के लिए पहुँच गए थे। आ श्री शान्तीसागरजी (दक्षिण) उनकी तपस्या से प्रभावित थे गृहस्थावस्था मे उनको आहार देते थे उनके कमण्डलु मे पानी भरते थे और उन्होंने उनसे एलक पद प्राप्त किया था, प्रायश्चित लेते थे। समाधि के समय दर्शनार्थ सरकार ने रेले फ्री की थी। आकाश मे देवो द्वारा आधे घण्टे तक वाद्य घोष हुआ था, वहा पर इतने साधू थे कि चारों तरफ साधू ही साधू नजर आते थे। वर्तमान में इस परम्परा के आचार्य श्री १०८ सन्मति सागर जी महाराज हैं जिनके द्वारा महती धर्म प्रभावना हो रही है। उन महापुरुष प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुंजर आचार्य १०८ आदिसागरजी (अंकलीकर) के चरणो में श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

वीरचंद जैन
वीर कुटीर
करोल बाग, दिल्ली

श्रद्धांजलि

दक्षिण मे परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) का जन्म सन् १८६६ अकलीग्राम मे हुआ था। वे बहुत बलशाली थे। ७-७ उपवास करते थे। बहुधा उनका कोनूर की गुफाओ मे निवास रहता था। मुनि दीक्षा मगसिर शुक्ला २ सन् १९१३ में ली थी आप बहुत बडे तपस्वी थे। निर्दोष रत्नत्रय का पालन करते थे। अपनी शक्ति को छिपाते नहीं थे। जब भोज मे आते और आचार्य शांतिसागरजी (गृहस्थावस्था मे) के घर आहार हो जाता तो रात्रि वहीं व्यतीत करते थे, वे आहार देते थे कमण्डलु में पानी भरते थे, आपके ध्यान के समय शेर आता था, दर्शन करके चला जाता था। मैं आपके चरणों मे श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

भवदीय
श्री अमोलक चन्द जी चूनावाले
अ भा महासभा, कोटा

परम पूज्य आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज से सब अच्छी तरह परिचित हैं परन्तु उनके गुरु महापुरुष प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य श्री आदिसागर जी (अंकलीकर) अपने समय के इस क्षेत्र मे एक अद्भुत साधु थे। उनका जन्म आज से १२८ वर्ष पहले अकलीग्राम मे हुआ था। आपकी धार्मिक प्रवृत्ति आगमानुसार थी। आप श्रावक धर्म का निर्दोष पालन करते थे। विवाह हुआ सतान हुई। काललब्धि से आपको वैराग्य हो गया। आपने ४७ वर्ष की आयु में मुनिदीक्षा मगशिर शुक्ला २ सन् १९१३ मे स्वयं ली थी, और दो वर्ष बाद आचार्य पद मिला था। आप के धर्मोपदेश और तपस्या के प्रभाव से बहुत से भव्यों ने दीक्षा ले ली थी। उनमे मुख्य रूप से पू आाचार्य शांतिसागरजी (दक्षिण) ने ऐलक पद धारण किया था, और वे आपसे प्रायश्चित भी लेते थे। आपने पू आचार्य महावीर कीर्तीजी को मुनिदीक्षा और अपना आचार्य पद दिया था। उनको चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आदि अनेक उपाधिया प्राप्त थी। आपकी समाधि फागुन बदी १३ गुरूवार ४ मार्च सन् १९४३ को ऊदगाँव (कुजवन) मे हुई थी। उस समय इतने साधु थे कि चारों ओर साधु नजर आते थे। उन २०वीं सदी के सर्वप्रथम प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर आचार्य आदि सागरजी (अंकलीकर) के चरणो मे मैं नमोऽस्तु करता हुआ श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

आपका
सुरेशचंद लवली,
मुनि व्यवस्था समिति, फिरोजाबाद

श्रद्धांजलि

दक्षिण भारत मे धर्म की प्रधानता रही। कुछ समय दिगम्बरत्व का विच्छेद रहा। पश्चात् २०वीं सदी के प्रथम चरण में मंगसिर शुक्ला २ मंगलवार सन् १९१३ को कुंथलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर भगवान कुलभूषण, देशभूषणकी साक्षी मे अंकलीकर निवासी शिवगौडा पाटील ने मुनि दीक्षा ली।

निर्दोष चारित्र की आराधना की। पंचाचार का पालन करते थे। इसलिए उनको आचार्य पद प्राप्त हुआ तथा वे निश्चय रत्नत्रय का आचरण करते थे। आत्म ध्यान की श्रेष्ठता थी। इसलिए उनको मुनिकुजर कहने लगे। उनकी समाधि ऊदगाव कुजवन में फाल्गुन बदी १३ सन् १९४३ को हुई थी। उन्होने अपना आचार्य पद स्व आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज को अपनी समाधि से पहले दे दिया था। उनके चरणो मे श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

अशोक कुमार सर्राफ, इंदौर

परम पूज्य स्वर्गीय आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के गुरु प्रात· स्मरणीय विश्ववद्य प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर आचार्य १०८ आदिसागर जी अंकलीकर शात स्वभावी, कठिन तपस्वी, निरतिचार चारित्राराधक, निस्पृही, आत्मचिंतक एवं गुणग्राही थे। वे भक्ति के वशीभूत होकर स्तोत्रपाठो को गा-गाकर भक्तो को भी भक्ति मार्ग में लगाते थे। उनका जन्म महाशिवरात्रि सन् १८६६ मे हुआ था। क्षुल्लकदीक्षा सन् १९०६ मे ली। ऐलक बनकर सन् १९१३ मगसिर शुक्ला २ को मुनि बने थे। सर्व जैन धर्म का क्रियात्मक रूप से प्रचार प्रसार किया। समाज को मिथ्यात्व से बचाया था। सन् १९१५ श्रुतपचमी के दिन उनको आचार्य घोषित किया था और सन् १९१६ मे यहा पचकल्याणक हुया था, उसमे चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया था। उन्होंने अपना आचार्य पद अपने शिष्य मुनि १०८ महावीरकीर्तिजी को देकर ४ मार्च,सन् १९४३ मे समाधि की थी। आचार्य शातिसागरजी ने उनसे ऐलक पद धारण किया था।

अकली **तबनगौडा पाटील**

गुरुदेव प पू आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के गुरु प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) थे वे अकली के रहने वाले थे, बलशाली थे, धर्मात्मा थे। मुनि दीक्षा कुथलगिरी मे स्वय ली थी। उग्र तपस्या करते थे। आचार्य शातिसागरजी उनकी तपस्या से प्रभावित थे। गृहस्थ अवस्था मे आहार देते थे। उनके कमण्डल में पानी भरते थे। उनसे ऐलक दीक्षा ली थी। प पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) को जयसिंगपुर मे आचार्य पद मिला। इनका बहुत बड़ा सघ था। उनकी समाधि ऊदगाँव (कुंजवन) में हुई थी। उनके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

समडोली **भूपाल नाना, उपाध्याय**

श्रद्धांजलि

वीतरागी दिगम्बराचार्य आदिसागरजी महाराज अकली के रहने वाले थे । उनमे बहुत शक्ति थी, उन्होंने अपनी शक्ति का सदुपयोग करने के लिए गरीबों एव भूखो की मदद की थी । परम्परा से ही परिवार धर्मात्मा था । गृहस्थाचार के पश्चात् उनको संसार से उदासीनता आ गई, काललब्धि पाकर उन्होंने मुनि श्री जिनप्पास्वामी से छुल्लक दीक्षा ले ली । वैराग्य वृद्धि के साथ-साथ आत्मबल बढा । उन्होंने ४७ वर्ष की आयु मे मुनिदीक्षा कुलभूषण देशभूषण की साक्षी में कुथलगिरी सिद्धक्षेत्र पर मगसर शुक्ला २ सन् १९१३ मे ग्रहण की । जैन धर्म का उपदेश देकर समाज मे, राज्य मे, राष्ट्र मे एक नई जागृति पैदा कर दी । लोगो ने अपनी शक्ति के अनुसार मुनि के व्रत आर्यिका के व्रत, छुल्लक के व्रत छुल्लिका के व्रत, ऐलक के व्रत, ब्रह्मचारी के व्रत, श्रावक के व्रतो को ग्रहण किया । आपकी चर्या अपूर्व थी । हमारी माताजी ने भी उनको आहार दिया है । वे आहार मे एक ही वस्तु लेते थे । चतुर्विध सघ ने श्रुतपचमी सन् १९१५ को आपके लिए आचार्य पद घोषित किया था। जन्म स्थान अकली मे पचकल्याणक हुआ था । उस समय उनको चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया था ।पू आचार्य शातिसागरजी (दक्षिण) उनकी तपस्या से प्रभावित थे ।उनको आहार देते थे, कमण्डल मे पानी भरते थे, वेदगगा दूध गगा नदी पार कराते थे। स १८७३ मे ऐलक दीक्षा आपसे ही ली थी । वास्तव मे उनकी भक्ति कर अपनी आत्मा को महान बना लिया । उन्होंने अपना आचार्य पद अपने शिष्य मुनि श्री महावीर कीर्तीजी को देकर अपनी समाधि ऊदगाँव (कुजवन मे) ४ मार्च सन् १९४३ को दी । उनके चरणो मे मै श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ ।

पत्रकार महेन्द्रकुमार सडावत
उदयपुर

प पू आचार्य मुनि कुजर आदिसागर (अंकलीकर) बड़ी कठिन तपस्या करते थे अत्यधिक समय स्वात्मध्यान मे व्यतीत करते थे । उनका एक महान प्रकाण्ड विद्वान शिष्य आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज थे,जिनको अपनी समाधि से पहले अपना आचार्य पद दिया था । उनकी समाधि ऊदगाँव (कुजवन) मे ४ मार्च सन् १९४३ को हुई थी। हमारी श्रद्धांजलि उनके चरणो मे समर्पित है ।

सागली
१५-११-९३

पाटिल परिवार

निरन्तर निर्ग्रंथ संत, सूर्यवतशाति से ज्योतित होते हैं ।
वह आध्यात्मिक ओजस्विति के पुज बन जाते है ॥

बीसवीं सदी के आचार्य अकलीकर आदिसागर महाराज चतुर्थकाल जैसे परमसंत पचमकाल के सर्वज्ञ थे । सर्वत्र जो दक्षिण केशरी के नाम से चर्चित और अर्चित रहे । वे अब से १२८ वर्ष पूर्व सन् १८६६ फागुन कृष्णा १३ शिवरात्रि को अंकलीग्राम (महाराष्ट्र) मे अवतरित हुए थे, एवं दौज

के चन्द्रमा के जैसे प्रगति करते रहे। श्रावक धर्म रूप देवशास्त्र गुरु आदि की पूजन में अष्ट द्रव्य चढाते समय जल (जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय), चंदन (संसार ताप विनाशनाय) अक्षत (अक्षय पद प्राप्ताय), पुष्प (कामवाणविध्वंशनाय), नैवैद्य (क्षुधारोगविनाशनाय), दीप (मोहांधकार विनाशनाय) धूप (अष्टकर्मदहनाय), फल (मोक्षफल प्राप्ताय) सभी शाश्वत शुद्धात्मानद का भाव रखते हैं। इसका फल हम इस प्रकार लगा सकते हैं कि अकलीकर आदिसागर जी को ये सुयोग प्राप्त हुए कि-

१ जन्यसमय-शिवरात्रि के शिव से (मोक्ष)

२ पिता-जागीरदार सिद्ध गौडा मे सिद्ध से (सिद्धत्व)।

३ माता-श्री अक्काबाई मे अक्का से (आत्मीय सुख)।

४ छुल्लक दीक्षा गुरु-स्वाति नक्षत्र सन् १९०६ नांदनी ग्राम जिन्नप्पा स्वामी से (जिनत्व)।

५ मुनिदीक्षा-सन् १९१३ मगशिर सुदी २ मगलवार मूल नक्षत्र प्रात. १० बजे देशभूषण कुलभूषण निर्वाण क्षेत्र कुथलगिरि मे दीक्षा, जिनसाक्षी मे निर्वाण शब्द से (मुक्ति)।

६ आचार्य पद से अलकृत-जयसिगपुर सन् १९१५ श्रुत पचमी दिवस मे श्रुत से (शास्त्र, जिनवाणी रत्नत्रय परिशुद्धि)।

७ गृहस्थावस्था का नाम-शिवगौडा पाटील के शिव से (अभ्युदय)

८ समाधि-ऊदगाँव (कुजवन) ४ मार्च सन् १९४३ समाधि से (आत्मस्थता)।

उक्त आठो ही परिकल्याण के प्रतीक सूत्र हैं।

''आत्मन्येव आत्मना तु पाठ के स्रोत हैं। सबंधित कुछ सस्मरण बडो के मुख से-

एक समय वर्षा नहीं होने से अकाल पड गया। गरीब भूखो मरने लगे। गृहस्थ अवस्था में शिवगौडा पाटील (आचार्य आदिसागर) अकलीकर ने सग्रहीत अपने गृह का सम्पूर्ण अनाज दुखियों को बाट दिया। साथ ही बडे-बडे अन्य व्यापारियो से प्रेरणा कर गरीबो को सहायता दिलाई। आचार्य विरागसागर जी पृ-१५ पढो और बढो (पुस्तक से साभार)।

प्रवर तपस्वी,

पू आचार्य आदिसागरजी अकलीकर की महिमा सुनकर अत्यंत व्याकुल (व्यथित) एक महिला ने सर्प के डसने से, हरे नीले हो गये, शरीर मे जहर फैलने से अचेत अपने इकलौते लड़के को जहाँ यह महाराज झाडियों के मध्य आसन लगाये ध्यानस्थ थे, वहां जाकर गुरुवर्य के आगे रख दिया। अनायास ही उसी समय पानी वर्षा तथा महर्षि देह से स्पर्शित पानी उक्त मां के उस पुत्र की तरफ बहकर आया और उससे स्पर्श होते ही पुत्र निर्विष हो गया। धन्य है सच्ची साधना। मुनि दीक्षा गुरु (आचार्य महावीर कीर्ति) के दीक्षागुरु (गुरु के गुरु) के अनन्य भक्त श्री वात्सल्य मूर्ति निमित्त ज्ञान शिरोमणि आचार्य विमल सागरजी के शब्द हैं। यही भाव है उन जैसी समीचीन साधना अपनाकर अपनी समाधि सफल करूँ। (विमल धर्म आख्याय से)

महीयता

भारत मे मुनि धर्म के महारथी आचार्य शातिसागर जी भोजपुर (दक्षिण) से सभी परिचित हैं। अकलीकर आदिसागर आचार्य के अपनी गृहस्थ अवस्था मे परम भक्त थे। सातगौडा अपने घर पर इन्हे आहार कराते थे तथा वेद गगा, दूध गगा नदी अपने कधो पर आचार्य प्रवर को विठाल कर पार कराते थे। उस समय आचार्य महाराज की देह के भार का पता ही नहीं चलता था। सातगौडा ने कहा था हमने आपको नदी पार करा दी अब आप हमको ससार समुद्र पार करा दो। श्री आदिसागरजी अकलीकर आचार्य ७ दिन के उपवास के अनंतर आठवे दिन आहार लेते थे, वह भी एक ही वस्तु गृहण करते थे। उस दिन जैसे गन्ना का रस आया तो मात्र वही लेते थे, यह थी महतचर्या। यह उनका क्रम जीवन पर्यंत रहा था। (''दिगम्बर मुनि'' पृष्ठ २५७ लेखिका परम विदुषी १०५ आर्यका रत्न श्री ज्ञानमति माताजी)।

तेजस्वी जीवन का उत्कर्ष

म्हेसवड गाव मे आकर सातगौडा (आचार्य शातिसागर दक्षिण गृहस्थ अवस्था) ने आचार्य अंकलीकर महाराज से व्रतों को ग्रहण कर साधना का अभ्यास बढाया था। (जैन गजट वीर स २४७८ आचार्य शातिसागरजी के ८१ वर्ष मे प्रवेश पर महामत्री परसादी लाल पाटनी महासभा पृष्ठ ७५ हीरक जयन्ती विशेषाक (१३ जून १९५२)।

निर्भयता

दक्षिण बेलगाँव जिला मे गोकाक स्टेशन से डेढ मील कोनूर की गुफाओ मे ध्यान करते समय कई बार शेर सामने आ गया पर आचार्य आदिसागर जी रचमात्र भी ध्यान से विचलित नही हुए, पूर्ण साधना करते रहे। शेर बिना किसी उपद्रव किये वापस हो जाता था।

आचार्य पद

उत्तर से दक्षिण तक सर्वाधिक प्रभावक श्री आचार्य अकलीकर आदिसागरजी महाराज ने अत समय मे वि स १९९९ मे स्वय के ही मुनि दीक्षित प्रवर शिष्य श्री महावीर कीर्ती महाराज जो अठारह भाषाओ के धनी, विशिष्ट उपदेशक थे, को अपना आचार्य पद दिया। आपका ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र, तत्र, विद्या पर अधिकार था। आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) की ऊदगाँव कुंजवन में समाधि के उपरान्त शेडवाल (बेलगाँव) मे करीब एक लाख जन समुदाय के मध्य अनेकानेक दिगम्बर मुनि, आर्यका, ऐलक, क्षुल्लक क्षुल्लिका ब्रह्मचारी, चतुर्विध सघ के समक्ष गुरुभक्ति पुरस्सर आचार्यपद समारोहपूर्वक श्री आचार्य महावीर कीर्ति आचार्य के आचार्य पद की प्रभावनी की। आचार्य महावीर कीर्ती महाराज की समाधि महसाना (गुजरात) मे माघ कृष्णा ६ सन् १९७२ वि सं २०२८ को हुई। इन्होने पचाचार प्रवीण सन्मति सागर जी (फफोतू) को अंत समय में अपना पट्टाचार्य घोषित किया। श्री परम पूज्य १०८ सन्मति सागर आचार्य (फफोतू) गुरूभक्ति में समर्पित आचार्य हैं। इन्होंने कटिबद्ध होकर महती जैनाचार्य परम्परा मे प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) की महत्ता को सतत सर्वत्र प्रचारित किया जो साहित्य के पृष्ठों पर ऐतिहासिक है।

अपने आचार्य पद प्रदाता श्री आचार्य महावीर कीर्तिजी का तीर्थभक्ति की अनन्यता का संस्मरण हमने आचार्य सन्मति सागरजी से सुना था कि दूर से ही तीर्थों के शिखर देखते ही विनम्र से हाथ जोड़ लेते थे। उन्हे तीर्थों से अपार आत्मीयता थी। श्री शान्तिसागर महाराज ने कोल्हापुर स्टेशन में अब से ७७ वर्ष पूर्व बंबई प्रांत के हातकलंगड़ा स्टेशन से ४ मील दूर कुंभोज में बाहुबलि नामक पहाडी पर क्षुल्लक से ऐलक दीक्षा मुनि अवस्था के पूर्व में १०८ आचार्य आदि सागर अंकलीकर से गृहण की थी।

(आचार्य शांतिसागर स्तुति पन्नालाल
वांकलीवाल सुजानगढ़ निवासी जिनवाणी)

गुरुव: पातु नो नित्य ज्ञान दर्शण नायक: ।
चारित्रार्णवगंभीर: मोक्षमार्गोपदेशक· ॥

हम गुरु परम्परा के उपकारो से उऋण नहीं हो सकते भावना यही है। आत्मसाधना की क्षमता बृद्धिगत हो ऐसी भातना के साथ प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) महाराज के पादपद्मो मे सविनय श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ।

खनियाधाना
दीपावली १९९३

पं. छक्कीलाल जैन शास्त्री

श्रद्धांजलि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुयी कि प पू आचार्य चा च आदिसागर जी महाराज की दीक्षा-दिवस स्मृति मे स्मारिका प्रकाशित की जा रही है।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी के बारे में प पू तपस्वी आचार्य १०८ श्री सन्मति सागरजी महाराज द्वारा उनके जीवन-चरित्र पर प्रकाश व उनकी श्रमण-परम्परा को अक्षुब्ध बनाये रखने में जो उनका योगदान रहा, उसे आज का श्रावक भूलकर कर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहा है, हमें उनके आदर्शो पर चलकर श्रमण-परम्परा को बनाये रखना चाहिये। ऐसा जानकर वास्तव में एक दिल मे जिज्ञासा जगी और आचार्य चा. च आदिसागर महाराज के बारे मे जानने की कोशिश की। मैं गुरु भक्ति के वशीभूत होकर परमपूज्य आचार्य चा च आदिसागर महाराज को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। हम जीवन में आचार्य श्री के आदर्शों को अपनायें, ऐसी भावना करता हूँ।

कमल कुमार रॉवका
एम. फिल , प्राकृत एवं जैन विद्या
(सुखाडिया यूनिवर्सिटी, उदयपुर)

आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज की स्तुति

बदू दिगम्बर शातिसागर, सूरिवर मुनिराज ।
शातिप्रदायक सुखविधायक, चरन जिनके आज ।
तिन चरन सरन बिना न कटि हैं अष्टकर्म जजीर ।
वे शातिसागर मन बसहु, मम हरहु पातकपीर ।१।
जिन तन अपावन अथिर लखि, ससार सिधु अपार ।
अरु भोग विष पकवान सम लखि विरक्ति चित धार ।
तपधरन की इच्छासु चितधर, तजी परिजन भीर । वे शाति ।२।
इम विरचि गृहतै ग्राम तजि निज गये उत्तर ग्राम ।
तहँ स्वामि श्री देवेन्द्रकीर्ती, रहहि चारित धाम ।
निर्ग्रन्थ मुनि की कठिन दीक्षा चही तिन पद तीर । वेशाति ।३।
यह वचन सुनि तब स्वामिने, निज वचन उचरे सार ।
मुनि की जु दीक्षा कठिन है, तू क्षुल्लकी व्रत धार ।
तब भये क्षुल्लक ऐकलीव्रत, चरत हैं नित धीर । वे शाति ।४।
हम धार क्षुल्लक पद त्रिवत्सर विहरिकर निज देश।
बोधे अनेकन भव्यजन करके जु वृष-उपदेश ।
पुनि गये पुर कुभोज ढिग-बाहुबली-गिरि-तीर । वे शांति ।५।
तहँ मुनि विराजहिं आदिसागर,तिन चरन ढिग सार ।
धारे जु ऐलक के सुव्रत, पुनि वदि श्री गिरनार ।
आये तहातैं गिरि जु कुडल, बदि श्री जिनवीर । वे शाति ।६।
फिर ग्राम नसलापुर गये तहँ कियो चातुरमास ।
तहँते विहरि बाबानगर के वदि कर जिनपास ।
फिर गये ऐनापुर तहा पर मुनि विराजैं धीर । वे शाति ।७।
तहँते चले मुनि साथही, यरनाल है इक ग्राम ।
तहँ पचकल्याणक महोत्सव हो रहा सुखधाम ।
तहँपायसागर भी विराजे, स्वामी-गुण गभीर । वे शाति ।८।
तब आपने मुनिकी जु दीक्षा ग्रहण के सुविचार ।
कीने प्रगट मुनिचरन ढिग तिन कह्यो कठिन अपार ।
तौ भी जु मुनिव्रत गहे रुचिसो जान सुचल शरीर । वे शाति ।९।
तुमसातगोडा नामधारी, शातिसागर सोय ।
कीनी तपस्या घोर परिषह, सहन करशुचि होय ।
फिर विहरि तहतैं कोगनोली ग्राम आये धीर । वे शाति ।१०।



चारित्र चक्रवर्ती आचार्य १०८ श्री शान्ति सागरजी महाराज –

आर्थिक सहयोगी





स्व० श्री श्यामकरण दासजी एवं स्व० श्रीमती किस्तूरी देवी बड़जात्या की स्मृति में श्री वीरचन्द अजयकुमार जैन कामा वाला ने Rs. 11,000/- का आर्थिक सहयोग प्रदान किया।



श्री श्रीनिवास जी एवं श्रीमती इन्द्रमणी देवी बड़जात्या मद्रास Rs. 10,000/-

श्री शिखरचन्द दीपक कुमार चूड़ीवाल मद्रास Rs. 10,000/-

कियो कोगनोली ग्राम मे ही चतुरमासा सार ।
तहँ पर सही अति घोर परिषह, तनममत परिहार ।
पुनि विहरि कर समडोलि आये फिर नसलपुरतीर । वे शान्ति ।११।
इम तप करत परि सह सहत, उपदेश दे सविवेक ।
कोन्नूरपुर आये जहा, गिरिगुफा है जु अनेक ।
तहँ तचुरमासा किया जबही भविनकीभई भीर । वे शांति ।१२।
तिन चरनढिंग पा शांति भविजन तजा गृहका भार ।
प्रतिमा धरी जु अनेक भवि गुरुवचन चितमें धार ।
जब ध्यान धर तिष्ठे गुफा मे फणि चढ्या जुशरीर । वे शान्ति ।१३।
फणि देखि तुम तनपर भविकजन कियो सोच विचार ।
किह विध जु यह उपसर्ग टरिहै, किये बहु उपचार ।
तौभी न फणिका मन भरा तजता न तुमतन तीर । वे शान्ति ।१४।
जब ध्यान पूरनका समय आया तबहि तज दर्प ।
स्वयमेव मन मे धार मुनितन तज गया वह सर्प ।
यह लखि महातम भविकजनसब शानिपा चितधीर । वे शांति ।१५।
पुनि जाय नादणि ग्राम मे शुभ चतुरमासा थाप ।
मुनि वीरसागर चद्रसागर, आदि जुत श्रीआप ।
तहँ भव्यजन आये बहुत व्रत धरे तुम पद तीर । वे शांति ।१६।
पुनिकर विहार प्रचार जिन वृष आठ मास-मझार ।
कुभोज ढिग गिरि बाहूबलि पर चतुरमासा धार ।
चहुँसघ ने उपदेश पाकर निकट की भवतीर । वे शांति ।१७।
तहँ सेठ घासीलाल पूनमचन्द नयकर माथ ।
सम्मेदगिरि को सघ लेकर चलहु श्रीमुनिनाथ ।
यह प्रार्थना सुनि सघसह चाले तहांतैं धीर । वे शांति ।१८।
तहँतै चले चउसघ सहित जु करत वृष उपदेश ।
तुम चरन रजसो किये पावन सबहि उत्तर देश ।
सम्मेदगिरि पर लक्ष भविजन पाय दर्शन वीर । वे शांति ।१९।
फाल्गुन सुदी तृतीय दिवस चौबीस चौपन शाल ।
तुम चरन दर्शन पाय पावन भयो 'पन्नालाल' ।
नित मिलो तुम-पद-सेव ये ही चाह चित में धीर । वे शांति ।२०।

रचयिता स्व पं पन्नालालजी बाकलीवाल, सुजानगढ़ निवासी साभार –
वृहज्जिनवाणी संग्रह (पृष्ठ स १६१ से १६५) मुद्रित सन् १९७४



ऊदगाँव कुन्जवन का तपस्वी सन्तश्रद्धा का सुमन

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि प पू चा च १०८ श्री आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) का अखिल भारतीय स्तर पर पुण्य तिथि मनाई जा रही है और उनके चरणो मे श्रद्धा प्रकट करने के लिए एक स्मृति ग्रन्थ का भी प्रकाशन किया जा रहा है।

मैने जहाँ तक चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी महाराज का जीवन परिचय पढा है उससे ज्ञात होता है कि वे तपस्वी, आदर्श सन्त थे। परम पूज्य आचार्य १०८ श्री महावीर कीर्तिजी महाराज और आपके प्रथम शिष्य आचार्य श्री विमल सागरजी महाराज कहते हैं कि, ये मुनि कुन्जर थे, जिसका अर्थ आचार्य और चक्रवर्ती से भी उच्च होता है। प पू चा च आचार्य श्री १०८ आदिसागर (अकलीकर) ने अपने सुयोग्य शिष्य मुनि श्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराज को आगमनानुकूल चारित्र देखकर उनका अपना आचार्य पद दे दिया।

श्री महावीर कीर्तिजी महाराज ने अपना आचार्य पद महसाना (गुजरात) नगरी मे आचार्य १०८ सिद्धान्त चक्रवर्ती ज्ञान दिवाकर श्री सन्मति सागरजी महाराज को दिया, जो वर्तमान मे भारतवर्ष के कोने-कोने मे जैन धर्म का प्रचार करते हुए स्व मे ज्ञान-ध्यान व अद्‌भुत तपस्या में लीन रहते हुए गुरु परम्परा को सुचारु रूप से संघ का सचालन कर रहे हैं। ऐसी शुद्ध आम्नाय व परम्परा के आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) के परम पुनीत पावन चरणों मे शत्-शत् नमोस्तु।

ताराचन्द पाटनी कार्याध्यक्ष
श्री १०८ सन्मति सागर महाराज चातुर्मास व्यवस्था समिति

श्रद्धांजलि

मुनि कुजर सम्राट् चारित्र चक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज बहुत ही बलिष्ठ थे। इसी तरह वे आत्मबली भी थे। उनकी तपस्या बहुत कठोर उच्चकोटि की थी। आपने सबसे प्रथम दिगम्बर मुनि परम्परा को पुन: प्रारम्भ किया था। ये सात-सात दिन के उपवास करते थे। आहार मे एक ही वस्तु लेते थे। सातगौडा पाटील इनकी बहुत भक्ति करते थे, आहार देते थे आपने इन्हीं से ऐलक दीक्षा ली थी। वे प्राय: जंगल में गुफा में निवास करते थे। प्रतिदिन शेर आकर उन्हें नमस्कार करता था। वे निर्भय थे। लक्ष्मण आरबाडे उनकी आहार व्यवस्था करवाते थे। सरस्वती बाई आरबाडे कुजवन (ऊदगाँव) में आकर आहार देती थी। आप महाराष्ट्र की अद्‌भुत विभूति थे, कर्णाटक में भी धर्म प्रचार कर हमे धर्मोपदेश दिया। सर्वप्रथम उत्कृष्ट समाधि कर स्वर्ग द्वार खोला। आपके चरणो मे मैं कोटि-कोटि नमस्कार करता हुआ अपनी भक्ति श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ।

सिवगौडा बाल गौडा पाटील
सदलगा

श्री १०८ आचार्य आदिसागर महाराज कुजवन होण्यास कारणीभूत सातदिवसाला एकदा आहारधेत सागलीचे सरबत्ती बाइ आखडे सात दिवसाला आहार करत होते सांगलीहन येऊन करत होती सां तपचर्याचा ताकत इतकी होती त्याजा गेची माती घेऊन कसल्याही सकट आल्यास त्याचे निवारण होत होते रोग रहित असलेतरी त्याजागेची माती लावलेस त्याचे सकट निवारण होते।

सवगौडा मलगौडा पाटील [illegible]

शिवगौडा आण्णा कुमठोळकर [illegible] ता. अथणी
जि. बेळगांव कर्नाटक राज्य

भूपाल भिमाण्णा कुचनूर मणेरावाडी

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

आचार्य आदिसागर (अंकलीकर)
अभिनन्दन ग्रन्थ

द्वितीय खण्ड

प. पू. चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुञ्जर
समाधि सम्राट् १०८ आचार्य
श्री आदिसागर महाराज
(अंकलीकर) का
जीवन परिचय एवं
महत्वपूर्ण तथ्य

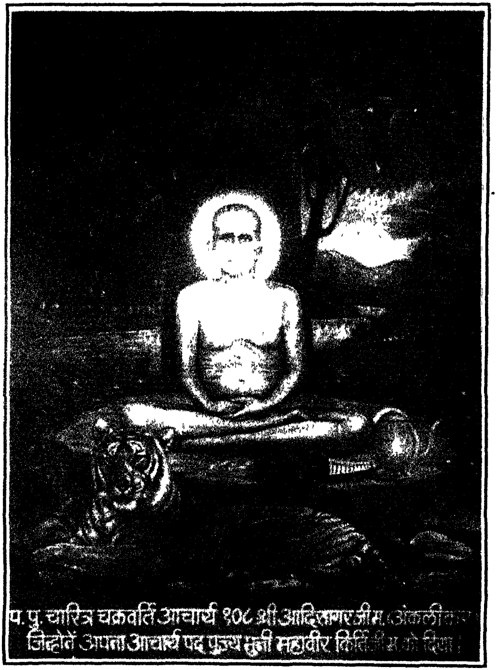
चयन—सुमन

१ मानव जीवन का शृगार शील है । शील का तात्पर्य जीवनिर्माण के, वे साधन जिनसे आत्मा परमात्मा की दशा प्राप्त करती है ।

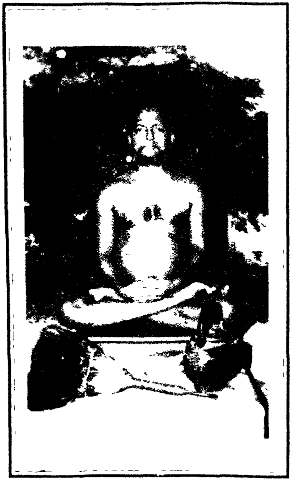
२ शरीर झोपडी है, आत्मा किरायेदार । घर की रक्षा मालिक [illegible] जिस प्रकार अपनी सुख सुविधा व कार्यसिद्धि के अनुसार [illegible] करता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि अपनी आत्मसिद्धि के हिसाब से देख-भाल व रक्षा करता है ।

३ जिस प्रकार काष्ठ मे अग्नि दुग्ध मे घृत एव तिल मे तेल है उसी प्रकार शरीर मे आत्मा स्थित है । यथायोग्य उपाय-प्रयोग करने पर पृथक्करण हो जाता है उसी प्रकार सम्यक् तप ध्यान आचरण द्वारा आत्मा भी शरीर से सर्वथा भिन्न, शुद्ध प्राप्त हो जाता है ।

४ मोह व क्षोभ से भिन्न आत्मस्वभाव "समभाव" कहलाता है । विपरीत परिणति मोह है । क्षोभ का अर्थ है चञ्चलता । यथा स्थिर जल भरे सरोवर मे एक ककडी फेकी तो पूरा जल तरगित हो जाता है उसी प्रकार प्रशान्त आत्मस्वभाव मे तनिक राग रूप ककडी पडने पर जो स्वभाव विकृति है वही क्षोभ है । इस मोह क्षोभ से रहित आत्म-स्वभाव ही 'सम' कहलाता है । राग से बचना चाहिए ।



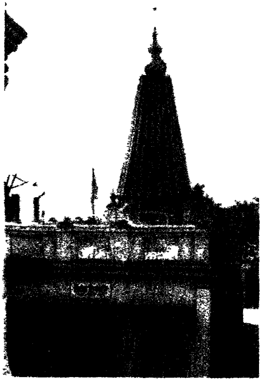
परम् पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुञ्जर समाधि सम्राट १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) जिनके पास शेर दर्शनार्थ आता था।



स्थविराचार्य श्री १०८ [illegible] महाराज



उपाध्याय श्री भरतसागरजी महाराज



प पूज्य १०८ आचार्य आदिसागर महाराज (अकलूँकर) की प्रेरणा से निर्मित अकलूी ग्राम का मूल मंदिर

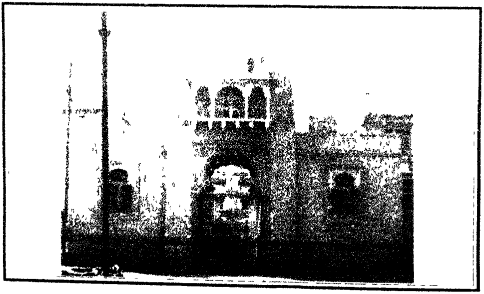


मानस्तम्भ-ग्राम अकलूी (सांगली) महाराष्ट्र



ग्राम अकली [illegible]

[illegible]



भव्य जिनालय नगारखाना ग्राम अकली (सांगली) महाराष्ट्र

श्री जिनाय नमः

जैन सिद्धान्त एवं अध्यात्म का अर्थ यही है कि सिद्ध या आत्मा के आठ गुणों को समझकर सब स्त्री-पुरुष जरूर अध्यात्म को प्राप्त करना अपना कर्त्तव्य समझें । यही सिद्धान्त का रहस्य है और आध्यात्म का भंडार है ।

जै—न सिद्धान्त को कोई नहीं जीत सका वह अकाट्य प्रमाणित है ।
न—हीं जीतने का कारण है, वह नय प्रमाण से स्वयं सिद्ध हुआ है ॥ १ ॥
सि—द्धान्त उसको कहते हैं, जो पूर्वापर विरोधो से मुक्त होता है ।
द्धा—म वह पुनीत स्थान है, अविनाशी जहाँ सुख राशि है ॥ २ ॥
न्त—का है अर्थ अन्तक का विनाश कर होता जहाँ अविनाश है ।
ए—क ही स्थिर जगत में ''धर्म'' जो शर्म का दातार है ॥ ३ ॥
व—चन गुरु का मंत्र है, जिससे सभी होते भवोदधि पार हैं ।
म—कार त्रय को छोड़ना, श्रावक धर्म का सार व सिद्धान्त है ॥ ४ ॥
अ—ध्यात्म का सब सार चाहें, परमात्म पद के गुणो का आधार है ।
ध्या—न कर योगीश होते हैं, सतत् सर्वोच्च गुण भण्डार हैं ॥ ५ ॥
त्—व गुणों का भाव है, जिसको समझ पाता तो मिलता सार है ।
म—अर्थ कहता लक्ष्मी का, वाह्याभ्यन्तर भेद से जो आत्मा का सार है ॥ ६ ॥
का—म, क्रोध, मद, लोभ त्यागकर आतम ज्योति जगाना है ।
अ—क्षर है निज रूप इसे पाने का सच्चा मार्ग प्राप्त करना है ॥ ७ ॥
र्थ—का अर्थ पदार्थ करें तो नव संख्या के बीच आत्मा न्यारा है ।
य—ही खोजकर प्यारे भाई, आत्मगुणों को या भव सागर तरना है ॥ ८ ॥
ही—न कभी मत समझो निज को, निर्णय करना आगे बढ़ना है ।
है—वस सार जगत में, स्याद्वाद सिद्धान्त हमारा एक मात्र यह प्यारा है ॥ ९ ॥

कि—न्तु जानो समझो सप्तभंग की कथनी जगत् निराली है ।
सि—द्धान्त सार का रहस भरा है, इसके बिन नहीं पाना है ॥ १० ॥
द्ध—कार उच्च स्थान है जहाँ से पुन आना किसी का नहीं होता है ।
या—पन करो जीवन सतत् उस ओर पावन लक्ष्य तेरा धाम है ॥ ११ ॥
आ—त्मा के आठ गुण होते प्रकट फिर कभी नाश नहीं होते हैं ।
त—स्कर नहीं हर सके इनको, अजर-अमर हो रहते हैं ॥ १२ ॥
मा—तृ भूमि की महिमा न्यारी, इसे कभी नहीं भूल जाना है ।
के—वल ज्ञानी बनकर सुख पाते, जो घाती चार नशाते हैं ॥ १३ ॥
आ—ठ गुणों को पाने वाले भव वन मे फिर कभी नहीं आते हैं ।
ठ—कुराई को छोड सयाने पूजा यश जो जग मे पाना है ॥ १४ ॥
गु—ण गरिमा पाने का जग मे लक्ष्य जिन्हो का होता है ।
णों—का अर्थ करो नौका तो भवसागर से तिर कर मुक्ति पाना है ॥ १५ ॥
को—मल उर मे दया भरो जो सर्वोत्तम गुण यह कहलाता है ।
स—मझ-बूझकर चारित्र पालन करने वाला मुक्ति पद को पाता है ॥ १६ ॥
म—कार त्रयों का त्याग करे वह सच्चा श्रावक कहलाता है ।
झ—ट-पट हिसा पाप त्याग दो धर्म का मर्म हृदय में आता है ॥ १७॥
क—र युगल जोडकर भव्यो जिनवर नमन कहाता है ।
र—त्न त्रय धारण कर प्राणी मुक्ति पथ यह सच्चा है ॥ १८ ॥
स—र्व पुरुष व महिलाएँ मिलकर शिव पथ को अपनाना है ।
ब—तलाना है सुलभ मगर करनी करना कठिन कहाता है ॥ १९ ॥
स्त्री—पर्याय यदि तजना है मायाचार अवश्य तजना ही है ।
पु—रुषार्थी हो पुरुष पराक्रम करके आतम सुख को पाना है ॥ २० ॥
रु—लाना है नहीं अच्छा, जगत जन को सन्तोष बढाना उत्तम है ।
ष—ट् कर्मों को पालन करना यति श्रावक का परम धर्म है ॥ २१ ॥
ज—मा जमाकर पाप धरा अब उसे त्यागना उत्तम काज है ।
रू—पियो को देख-देख मोहित मत होना जीवन का संहार है ॥ २२ ॥
र—टने से णमोकार मंत्र को पुरुष मुक्ति पद पा सकता है ।

अ—ध्यात्म क्षेत्र में रमने वाला, दुःख पाकर भी हँसता है ॥ २३ ॥
ध्या—न करो अरु धर्म करो यह आत्म कल्याण कराता है ।
त—प कर कर्म निर्जरा होवे तव मुक्ति को पा लेता है ॥ २४ ॥
म—नालो गुणी जनो का मान तुम्हारा भी गुण बढ़ता है ।
को—र कसर मन मे मत रखना धर्म ध्यान का नारा है ॥ २५ ॥
प्रा—प्त करना तप कठिन है, पर आतम शुद्धि का यही सार है ।
प्त—का अर्थ है सतप्त होना, शान्ति का यह नाश है ॥ २६ ॥
क—रना सफल जीवन प्रभु का दर्शन भक्ति पूजन कर ।
र—वि किरणो से बढकर होती आत्म ज्योति निश्चल रहती है ॥ २७ ॥
ना—म जपो भगवान का रटो पञ्च णमोकार यही बस सार हे ।
अ—पना कर्त्तव्य पालना करते रहना वीरो का यह काम है ॥ २८ ॥
प—द प्राप्त करना श्रेष्ठ है पर यह होना चाहिए अविनाशी ।
ना—म कमाना सबको इष्ट है पर क म शुभ करने की बात नही ॥ २९ ॥
क—र्त्तव्य निभाने वालो के सत्कार्य सिद्ध हो जाते हैं ।
र्त—का अर्थ है आर्त तजो, शुभगति का कारण होता है ॥ ३० ॥
व्य—य करना सत कर्मों मे उससे सवों को लाभ होता है ।
स—त् कर्मों को समझ करो यह जीवन का आधार है ॥ ३१ ॥
म—मता को छोड देना यह श्रेष्ठ मानव का कर्त्तव्य है ।
झ—ट से त्यागो कोप आपके सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ ३२ ॥
ना—म रखना है बड़ों, भक्ति, श्रद्धा से सदा गुण गाना है ।
चा—मर ढुलावे जो प्रभु को कल्याण उसका होता है ॥ ३३ ॥
हि—म्मत कभी मत छोड़ना, बिगडे भी काज सुधरते हैं ।
ये—देखो जगत झमेला है, मायामय जान छोड़ना है ॥ ३४ ॥
य—ही एक आत्म साधक है सब कल्याणों का दाता है ।
ही—रा, मोती, पन्ना, सोना-चाँदी ये सब आशा बढाने वाले हैं ।
सि—द्ध गुणो को पाना है तो आशा-तृष्णा नाश करानी है ॥ ३५ ॥

द्धा—म हमारा एक वही है मुक्तिपुरी जो कहलाता है ।
नृ—मस्कार कर उन प्रभुवर को जो प्रभु बनाने वाला है ॥ ३६ ॥
त—प करना वाह्याभ्यन्तर जो आतम को चमकाता है ।
का—र्य वही सार्थक होता है जो निष्काम बना देता है ॥ ३७ ॥
र—वि सम दीप्त ज्योति हो हमरी आतम तेज जगाती है ।
ह—म अपना निज ध्येय बनाकर निश्चलता पा लेना है ॥ ३८ ॥
स्य—न्दन संयम का पाना है शिवपुर ले जो जाने वाला है ॥ ३९ ॥
है—लक्ष्य हमारा एक मात्र, बस आतम से आतम पाना है ।
औ—रत स्वभाव माया को तज पुरुषार्थ सही अपनाना है ॥ ४० ॥
र—मते हैं मुनिराज सदा निज में फिर निज स्वरूप पा लेते हैं ॥ ४१ ॥
अ—मर बनाकर आतम को परमात्म दशा दर्शाना है ।
ध्या—न प्राण है मुनियों का यह नित्यनिरंजन बनवाता है ॥ ४२ ॥
त्मा—का अर्थ है लक्ष्य बिन्दु निर्धारण करना है ॥ ४३ ॥
का—र्य करो वैसा ही भव्यो सम्यक्त्व रत्न निर्मल होता है ।
भं—डार आत्मा का परिपूरण तिलतुष मात्र न घटता है ॥ ४४ ॥
डा—लो सर्व विकारों को बाहर जो ख़्वारी करने वाले हैं ।
र—क्षा कर लो निज सम्पत्ति की रत्नत्रयनिधि कहलाती है ॥ ४५ ॥
है—धर्म हमारा प्यारा उसकी जय-जय कार करो ।
प्रभु शक्ति में लीन हुए जिनवर जी का गुणगान करो ॥ ४६ ॥
''श्रेयांस कुमार'' करता इच्छा जग स्याद्वाद सिद्धान्त पढ़े ।
अनेकान्त की छाया में संसार सदा आनन्द भरे ॥ ४७ ॥

ता २-६-९४

रचयिता—पं श्रेयांशकुमार शास्त्री, पेरामंडूर (मद्रास)

प्रथमाचार्य श्री आदिसागर जी को कोटि नमन है

(कविवर–हजारीलाल जैन 'काका' सकरार)

जिनके तप से महक उठा था दक्षिण का कानन है ।
प्रथमाचार्य श्री आदिसागर को कोटि नमन है ॥ १ ॥
सदी बीसवीं में जब श्रावक मुनि विन भटक रहे थे ।
गुरुओं के उपदेश बिना मिथ्यात्व में अटक रहे थे ॥
स्वयं दीक्षा ले तब जिनने दिया मार्ग दर्शन है ।
प्रथमाचार्य श्री आदिसागर को कोटि नमन है ॥ २ ॥
पूज्याचार्य शान्तिसागर पर इनकी छाप पड़ी थी ।
इनका त्याग और तप लखकर भक्ति हृदय उमड़ी थी ॥
ले जाते आहार को घर पर धन्य किया जीवन है ।
प्रथमाचार्य श्री आदिसागर को कोटि नमन है ॥ ३ ॥
अंकलीग्राम में जन्मे अंकलीकर कहलाये ।
कठिन तपस्या करके मुनिव्रत के आदर्श निभाये ॥
मोहपाश में बाध न पाया इन्हें जगत बंधन है ।
प्रथमाचार्य श्री आदिसागर को कोटि नमन है ॥ ४ ॥
लेकिन कुछ स्वार्थी जन इनमें त्रुटि निकाल रहे हैं ।
ऐसे त्यागी व्रतियों पर भी पंक उछाल रहे हैं ॥
काका ऐसों की बुद्धि का बार-बार नन्दन है ।
प्रथमाचार्य श्री आदिसागर को कोटि नमन है ॥ ५ ॥

प. पू. २०वीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती 108 आचार्य परमेष्ठी श्री आदिसागर जी (अंकलीकर) की पूजा

॥ अथाष्टक आह्वाननम् ॥

गुरु भक्ति है संजीविनि, व्याधि विनाशन हार,
सद्गुरु के आधार से, होय भवोदधि पार ॥ १ ॥
आचार्य शिरोमणि जो भजे, संकट जाय पलाय ॥
निर्मल हो चारित्र गुण, रागद्वेष मिट जाय ॥ २ ॥
आदि सिंधु आचार्य है, इस युग के अवतार।
आह्वानन उनका करूँ, मन वच काय सम्हार ॥ ३ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदि सागरजी (अकलीकर) अत्रावतर अवतर सर्वोषट्।

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ ।

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदि सागर जी (अंकलीकर) अत्र मम सन्निहितो भवभव वषट्इति सन्निधि करणम्।

गंगा नदी का नीर, निर्मल कनक झारी में भरूँ।
धार दे गुरु चरण मे मैं, कर्ममल को दलगलू ॥
श्री आदिसूरि अकलीकर, को जजै जो भाव सों।
सारे अमगल दूर हों, सुख शान्ति पावै चाँवसों ॥ १ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदिसागर गुरु चरणेभ्यो जन्म जरा विनाशनाय जलं निर्वाणमीति स्वाहा।

कुकुम कटोरी भर लिया, मलयागिरि चंदन लिया।
गुरुचरण पंकज में चढाकर, ताप भव का हर लिया ॥
श्री आदिसूरि अंकलीकर, को जजैं जो भाव सों।
सारे अमंगल दूर हों, सुख शान्ति पावै चाव सों ॥ २ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदिसागर गुरु चरणेभ्यो भवताप निवारणाय चंदनं नि ॥

शुभ्र अक्षत खण्ड वर्जित, थाल भर कर ले लिया ।
पुंजधर गुरु चरण आगे, अक्षयनिधि को लिया ॥
श्री आदिसूरि अंकलीकर, को जजै जो भाव सो ।
सारे अमंगल दूर हों, सुख शान्ति पावै चाव सो ॥ ३ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदि सागर गुरु चरणेभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षत ।

चंपाचमेली मोगरा, पाटल सु सुरभित थाल भर ।
गुरु चरण मे अर्पित किये, मम मदन सकट टल गये ॥
श्री आदि सूरि अंकलीकर, को जजै जो भाव सो ।
सारे अमगल दूर हों, सुखशान्ति पावै चाव सो ॥ ४ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदि सागर गुरु चरणेभ्यो काम वाण विध्वंशनाय पुष्प ॥

क्षुधा डाइन कष्टकारी, युगो से पीड़ित किया ।
भक्ष्य नाना मधुर उत्तम, थाल भर अर्पण किया ॥
श्री आदिसूरि अकलीकर, को जजैं जो भाव सो ।
सारे अमगल दूर हो, सुख शान्ति पावै चाव सों ॥ ५ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदिसागर गुरु चरणेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय चरूँ ॥

दीपक अनोखे आपगुरुवर, ज्ञान ज्योति दो मुहा ।
रत्न दीपक ज्योति जगमग, चरण मे अर्पित किया ।
श्री आदिसूरि अकलीकर, को जजैं जो भाव सो ।
सारे अमंगल दूर हो, सुख शान्ति पावै चाव सों ॥ ६ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदि सागर गुरु चरणेभ्यो मोहाधकार विनाशनाय दीपं ॥

धूप दशविधि की बनाकर, अग्नि में खेऊँ मुदा ।
वसु कर्म बंधन ज्वालने को, भक्ति से अर्चन किया ॥
श्री आदिसूरि अंकलीकर को जजै जो भाव सों ।
सारे अमंगल दूर हों, सुख शान्ति पावै चाव सों ॥ ७ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदि सागर गुरु चरणेभ्यो अष्टकर्म विध्वंशनाय धूपं ॥

आम्रकेला जाम श्रीफल, रत्नथाली में भरे ।
मोक्षफल के पावने को, चरण में अर्पित किये ॥
श्री आदिसूरि अकलीकर को जजैं जो भाव सों ।
सारे अमंगल दूर हों, सुख शान्ति पावै चाव सों ॥ ८ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदिसागर गुरु चरणेभ्यो महामोक्षफल प्राप्ताय फल ॥

जल गध तंदुल पुष्प, चरुवर दीप धूप सुहावने ।
नाना रसीले फल मनोहर, अर्घ्य कीने पावने ॥
श्री आदि सूरि अंकलीकर, को जजै जो भाव सों ।
सारे अमगल दूर हों, सुख शान्ति पावै चाव सो ॥ ९ ॥

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदि सागर गुरु चरणेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं ॥

नानाविध के सुमन बहु, अंजुलि भर उमगाय ।
गुरु चरणांबुज पूजने, पुष्पांजलि चढाय ॥

॥ इति पुष्पांजलि· ॥

अथ जयमाला

जय आदि सूरि गुणरतनखान, जय करुणासागर गुरु दयाल ।
जय ग्राम अंकली के मँझार, तुम जन्म लिया हे गुण निधान ॥ १ ॥
जय अक्कावाई मात धन्य, अरु तात सिद्धगौड़ा प्रसिद्ध ।
उनके सुत तुम उपजे महान्, सन् एक आठ छ छ सुजान ॥ २ ॥
जय हर्षित सब थे सुजन भ्रात, नर नारी कर मंगल सुगान ।
जय शिव गौड़ा शुभ नाम पाय, मानो शिवपुर का पथ बताय ॥ ३ ॥
बचपन से भोग विषय कषाय, नहीं रुचे धर्म प्रीति अपार ।
बनवाया जिनमंदिर विशाल, है आज नगर में सुभग सार ॥ ४ ॥
थे कनक कामिनी से विरक्त, भोगों से रहते गुरू अलिप्त ।
है धन्य उन्नीस सौ छ संवत्, क्षुल्लक व्रतधारे अति पवित्र ॥ ५ ॥
कुछ दिन में ऐलक रूप धार, आगम का ज्ञान किया अपार ।
फिर पहुँचे कुंथल गिरि मंझार, जिनलिंग धरा वहां स्वयं आप ॥ ६ ॥
मगसिरशुक्ला द्वितीया कहाय, सन् तेरह मंगलवार-जान ।
कुलभूषण जिन को गुरु बनाय, निर्ग्रंथ बने ममतानिवार ॥ ७ ॥
बल भद्र पांचवे जिस प्रकार, जिनकल्पी वन विचरे महान् ।
निर्दोष दिगम्बर शुद्ध मार्ग, प्रकट्यो गुरुवर तुमरे प्रसाद ॥ ८ ॥
श्री आदि सागरजी मुनि कहाय, दरशायो शिव मारग हे दयाल ।
कर कठिन साधना आगमोक्त, उपसर्ग परीषह सहे घोर ॥ ९ ॥
दीक्षाशिक्षा दे भव्य जीव, आतम हित मे तुम किये विभोर ।
है ज्येष्ठ सुदी पंचम सुपंद्रह, आचार्य हुए उस दिन पवित्र ॥ १० ॥
जीवन में कितने चमत्कार, प्रकटाये कैसे हो बखान ।
नितसिंहराज करता प्रणाम्, थे घोर तपस्वी सूरिराज ॥ ११ ॥
चारित्रचक्रवर्ती कहाय, अंकली को गौरव दिया नाथ ।
महाराष्ट्र प्रान्त में ऊदगाँव, वहाँ गुफा मध्य करना निवास ॥ १२ ॥
सप्तोपवास कर लें अहार, जीवन भर का यह क्रम बखान ।
घट सर्प रोग दुर्जय अपार, सहते गुरुवर तन ममत त्याग ॥ १३ ॥

यमरूप समाधि का विचार, चौदह दिन त्यागा अन्नपान ।
गुण गरिमा धारी मुनिविशेष, महावीर कीर्ति समझा विशेष ॥ १४ ॥
शिष्यों में जाना योग्य एक, निजपद आचार्य दिया सुआप ।
उस समय सभी अनभिज्ञ लोग, यह नहीं समाधि मचा शोर ॥ १५ ॥
आ गई पुलिस हो सावधान, समझाया तव आगम प्रमान ।
नत मस्तक हो तव शान्त भाव, करते जिन मत का गुण बखान॥ १६ ॥
मोटर गाड़ी भर ट्रेन साथ, सब फ्री चली लख चमत्कार ।
आते नरनारी तब अनेक, दर्शन करते शिरटेक टेक । । १७ ॥
शिवरात्रि की शुभ निशा माहि, मुनिकुंजर खोली स्वर्ग राह ।
अनहोने बाजे बजे खूब, आकाश शब्दमय बजेतूर ॥ १८ ॥
फागुन कृष्णा तेरस का दिवस जान, अरू चारमार्च सन्तेतालीस मान ।
जय धन्य गुरु तुमरे प्रसाद, हम समझ सके निज आत्म ज्ञान । । १९ ॥
भव भव मे होवे बोधि लाभ, गुरुवर तेरे चरण प्रसाद ।
महावीर कीर्ती तुम पट्ट शिष्य, आगम प्रवाह पोषक प्रसिद्ध ॥ २० ॥
जिन धर्म प्रकाशन कर पवित्र, फैलाया तेरा यश गम्भीर ।
आचार्य स्वय का पद महान्, सन्मतिसिंधु को कर प्रदान ॥ २१ ॥
लेकर समाधि तन को विसार, यश अमर बनाया दिव्य आज ।
सन्मति सिन्धु आचार्यवर, हैं आज श्रेष्ठ सब में प्रधान ॥ २२ ॥

परम्परा यह चल रही, आगम के अनुसार ।
मोक्ष मार्ग के पथिक थे, करते धर्म प्रचार

ॐ ह्रूँ प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य आदि सागर गुरु चरणेभ्यो जयमाला पूर्ण अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नाना सुगधित सुमन ले, पुष्पाजलि चढाय ।
मदन शूल जड से नशै, मुक्ति द्वार खुल जाय ॥
॥ इत्यादि आशीर्वाद ॥

लेखिका–
प. पू विदुषी सम्यग्ज्ञान शिरोमणि
जिन धर्म प्रभाविका प्रथम गणिनि
१०५ आर्यिकारत्न श्री विजयमती माताजी ॥

आरती

मणिमय दीप सजाकर, मैं तो आरती करू आचार्य की ।
आदि सागर श्री अकलीकर, चारित्र चक्रवर्ती पदधारी की ॥
छत्तीस मूल गुण पालन कर, जिन वीतरागतादर्शायी ।
ऊदगाँव में धरी समाधि, स्वर्गराह दिखलाई थी ॥
अपना पद आचार्य दिया, महावीर कीर्ती गुणधारी की,
चारित्र चक्रवर्ती पदधारी की ॥ मणिमय ॥
महावीर कीर्ती आचार्य हुए, जिनधर्म का डका बजवाया '
दक्षिण उत्तर भरतखण्ड में, स्याद्वाद ध्वज फहराया ॥
सिंहनाद निर्भय जिनफूका, वाल ब्रह्मव्रतधारी की ।
महसाना मे धार समाधि, आत्म ध्यान लगाया था ॥
पट्टाधीश किया घोषित, श्री सन्मति सिन्धुमहान था ॥
बालयति यति नायक गुरुवर, सूरिशिरोमणि राजकी ॥
कुंदकुद की परम्परा के, तीनों रत्न महान् हैं ।
जिनशासन में महाविभूति, मानो ये अवतार हैं ॥
मुक्ति पथ दर्शक ये, तीनों परम्परा हितकार की ॥
मणिमय दीप सजाकर मैं तो आरती करूँ आचार्य की ।
आदि सागर जी अकलीकर, चारित्रचक्रवर्ती पदधारी की ॥

रचियता–प. पू. प्र. गणिनि आर्यका १०५ श्री विजयमती माताजी ।

महान तपस्वी अङ्कलीकर, 20वीं सदी के सर्वप्रथम 108 आचार्य श्री आदिसागरजी गुरुदेव को शत–शत नमोऽस्तु.......!!!

ससार विषय कषायो से सर्वत्र व्याप्त है । खचाखच भरा है । ऐसी परिस्थिति में भी इस धर्म प्राण भारतवर्ष में सदाकाल आत्मसाधना के अग्रदूत ऋषि, महर्षि, साधु, सन्त श्रमणो ने जन्म लिया और समय-समय पर आध्यात्म भावनाओ को जीवनदान दिया है । यह सनातन परम्परा बराबर चली आ रही है । यहाँ अनन्तो तीर्थङ्कर एवं अनन्तानन्त अन्य दिगम्बर श्रमण महापुरुषो ने सर्वज्ञ प्रणीत वीतराग मार्ग का अनुसरण कर शिवत्व (मुक्ति) को प्राप्त किया है । तीर्थङ्कर जिन प्रणीत वीतराग जिन धर्म की छत्र-छाया मे अपनी आत्मसाधना को पुष्ट करते आ रहे है । उसी अक्षुण्ण प्रवाहित श्रमण परम्परा में अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर के बाद उनकी दिव्यवाणी का अनुशरण करने वाले अनेक आरातीय आचार्य, श्रमण हुए हैं । यही श्रमण सस्कृति अबाध आर्ष परम्परा आज भी अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है । यह हमारे परम सौभाग्य, सातिशय पुण्य की बात है ।

गौतमस्वामी आदि गणधर, सुधर्माचार्य, जम्बू स्वामी अनुबद्ध केवली, भद्रबाहुस्वामी पर्यन्त पाँच श्रुतकेवली हुए, तदनन्तर गुणधराचार्य, धरसेनाचार्य, पुष्पदन्त, भूतवली, कुन्द-कुन्ददेव देवाचार्य, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलङ्कदेव, विद्यानन्दस्वामी, वीरसेनाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, जयसेनाचार्य, आदि अनेक श्रमणाचार्य, ऋषिराज हुए हैं । जिन्होने अपनी ज्ञान, वैराग्य शक्ति व्यक्त कर शान्ति प्रदाता मोक्षमार्ग मे पदार्पण किया । अपनी ज्ञान गरिमा, क्षायोपशमिकज्ञान वैभव द्वारा अनेको समीचीन ग्रन्थों की रचना कर आष परम्परा को सुदृढ बनाकर प्रवाहित किया है । वीर शासन को ज्योतिर्मय बनाया । कालचक्र भी अपना चक्र भ्रमण करता ही रहता है । कुछ समय बाद श्रमण सस्कृति में दिगम्बर परम्परा में शिथिलाचार ने कदम बढाया और धीरे-धीरे उसे लुप्तप्राय बना दिया । समय ने करवट बदली, उस मुरझायी, शुष्कप्राय श्रमण-परम्परा को अमियदान करने वाले परम पूज्य विश्ववद्य चारित्र चक्रवर्ती वीतरागी आचार्य परमेष्ठी श्री आदिसागर जी ''अकलीकर'' हुए हैं । फाल्गुण कृष्णा १३ शिवरात्रि गुरुवार सन् १८६६ को आप जैसे कुलवर्द्धक पुत्र रत्न को पाकर माँ जिनवाणी एवं भारत वसुन्धरा निहाल हो गई ।

जिनके सातिशय पुण्य प्रताप से आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में शुद्ध मुनिधर्म व्याप्त हुआ है । यत्र,तत्र, सर्वत्र दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनिराज पू आर्यिका माताओ, श्री क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं के दर्शन व उनके आध्यात्म्य जीवन के पोषक धर्मोपदेश का लाभ प्राप्त हो रहा है । इससे धर्मपरायण समाज

आत्म कल्याण पथ पर अग्रसर हो रहा है । इस प्रकार उदित बालरवि सदृश आपके जीवन प्रकाश व प्रताप से भारत धरा पर प्रसरित मोह एवं अज्ञानतम नष्ट हुआ । मानव जीवन को एक नया आदर्श व त्राण मिला ।

पूर्वभव सम्बन्धी पावन संस्कारों और गृहस्थाश्रम के धार्मिक वातावरण, एवं माता अक्काबाई एवं पिता सिद्धगौड़ा के धार्मिक शुभ, सदाचारी वातावरण से प्राप्त संस्कारों ने शिवगौडा को साक्षात् धर्मावतार बना दिया । स्वभाव से ही आप शुभ कर्म प्रिय थे । सत्य, अहिंसा, सदाचार, प्रियवादन, मैत्रीभाव, दयालुता, शुद्धाहार-पान रुचि, आदि गुण मानों जन्म के साथ ही उत्पन्न हुए थे । फिर घरेलू वातावरण भी इनका पोषक था तो क्यों न ये गुण वृद्धिंगत होते ? शरीरवृद्धि के साथ आत्मगुण, सरल सौजन्य, जिनभक्ति, आगमानुराग, जीवानुकम्पा भी बढ़ने लगी ।

इनकी शारीरिक शक्ति भी बेजोड़ थी । वीर सुभट की भाँति इनकी क्रीड़ायें थीं । कहावत है "होनहार विरवान के होत चिकने पात ।" किवाड़ों को मुक्को से तोड़ देना, कच्चे कद्दू को हाथो से तोडकर खा लेना और बिना बाधा के पचा लेना, चार मन की बोरियों को हाथ से ही उठाकर गाडियो में लादना इत्यादि कार्य इस कहावत के पोषक हैं । ये कार्य आपके, तेज, बल, प्रताप, संहनन और स्वाभिमान के प्रतीक हैं । परिवार आपकी चेष्टाओं से आश्चर्यान्वित रहता था । आपने अपने पराक्रम का उपयोग कर्मों के साथ युद्ध करने में पूर्णत· प्रयुक्त किया । आपने ज्ञात कर लिया था कि इसी से अनन्तसुख का स्थान सिद्धालय प्राप्त होना सम्भव है । वही शाश्वत स्थान है । मानवजीवन का यही सार है । आत्माधीन चिरन्तन सुख की प्राप्ति करना ।

आप विवाहित होकर भी मोहजाल में नहीं फँसे तथा सिद्धालय के शासन की प्राप्ति हेतु अपने बल-पौरुष का निरन्तर उपयोग करते रहे । आपके उदर में घटसर्प था, जिसकी असीम वेदना आप शान्तिपूर्वक सहते रहे । कभी भी अनुचित या अभक्ष्य औषधियों का प्रयोग नहीं किया । कर्मजन्य भोग समझकर बिना किसी विषाद के सहन किया । भाग्यवश १५ वर्ष की अवस्था में पिता का और २७ वर्ष की वय में माता का स्वर्गवास हो गया । इस कारण आपके वैराग्य को उभाड़ मिला । ससार की क्षणभंगुरता का ज्ञान कराया । आप एकान्तर और अष्टमी, चतुर्दशी का उपवास करते थे । इस तरह आप गृहस्थ होते हुए भी जल में भिन्न कमल की भाँति स्वाधीन और धर्म में लवलीन रहते थे ।

वैराग्य सूर्य का उदय होने पर प्रकाश के फैलाव को कौन रोक सकता है । अस्तु ४० वर्ष की वय में ई सन् १९०६ में स्वामी जिनप्पा से नांदणीगाँव में क्षुल्लक दीक्षा धारण की । उस दिन स्वाति नक्षत्र था । आपका शुभ नाम १०५ क्षु श्री आदिसागर जी प्रसिद्ध हुआ । संसार, शरीर भोगों की क्षणभंगुरता का अब सम्यक् ज्ञान दृढ़ हुआ । अत· वैराग्य शक्ति का उत्तरोत्तर विकास होने लगा । वैराग्य के बढ़ते कदम के साथ आत्म साधना, मनोबल और दृढ़ जिनभक्ति, संयम के प्रति आस्था बढ़ती गई । ३ माह बाद ही संयम ज्योति स्वय ऐलक रूप धारण कर प्रकाशित की । श्री

जिनेन्द्र की साक्षी में स्वय रत्नत्रय को प्रकट किया । उस समय पूर्णत निर्ग्रन्थ, निर्दोष दिगम्बर मुनियों का अभाव था । आपने अपनी अधूरी साधना और सयम को पूर्ण करने के लिए विचार किया । परन्तु दीक्षा किससे ली जाये ? सच है "गुरु कीजै जान कै पानी पीजै छान कै" कहावत है । उन्होंने अपने आगम चक्षुओ से निर्णय लिया कि मुझे वीतरागी से ही वीतरागता प्राप्त करनी है । अत तीन-तीन उपवासो के अनन्तर आहार करना प्रारम्भ किया, रस परित्याग कर आत्म साधना का परिपक्व अभ्यास कर लिया । भावना भवनाशिनी । दृढ निश्चय कर ४७ वर्ष की अवस्था में मंगसिर शुक्ला २ मगलवार सन् १९१३ मे श्री सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरि मे भगवान जिनेन्द्रदेव व श्री भगवान कुलभूषण देशभूषण की साक्षी में स्वय निर्वाण दीक्षा अर्थात् दिगम्बर दीक्षा धारण की, और निर्दोष दिगम्बर परम्परा का पुनरुद्धार किया । मुनिमार्ग चलाया । शिथिलाचार मिटाया । यह एक महान आश्चर्य की बात हुई । क्योंकि कहा है-

कलौ काले चले चित्ते देहे च अन्नादि कीटके ।

एतच्चित्र यदद्याऽपि जिनरूपधरा नरा ॥

आज इस पापमय समय मे मनुष्य के मन बहुत चलायमान है । शरीर अन्न का कीडा बना हुआ है ऐसे इस भयकर कलिकाल मे इस प्रकार के दिगम्बर सन्तो का होना महान् आश्चर्यकारक है । हमारे परम पूज्य आदिसागर जी इस काल मे भी सात-सात दिन के बाद आहार करते थे, उसमे भी एक ही अन्न या एक ही वस्तु ग्रहण करते थे । ध्यान का उन्हे व्यसन था । एकान्त निवास प्रिय था । इसी से जगलो मे, गुफाओ मे, ही रहा करते थे । भारतीय सस्कृति मे आध्यात्मिकता की प्रधानता रही है । तीर्थंकरो ने इसी परम्परा को संबद्धित और सम्मार्गित किया है तथा इसी का भव्यो को उपदेश दिया है । आचार्य श्री ने इसका अनुशरण किया । आपको श्रुतपचमी सन् १९१५ को आचार्यपद प्राप्त हुआ ।

श्रमण सस्कृति का परिवर्द्धन, पुरातत्व तीर्थों का विकास, सत् साहित्य निर्माण इत्यादि की बहुत कुछ पूर्ति आपके द्वारा हुई । राष्ट्र की सुख सम्पन्नता संबधी कार्य भी आपके प्रशसनीय रहे ।

आपकी समाधि ४ मार्च, १९४३ मे हुई उस समय सरकार की ओर से दर्शको के आवागमन के लिए ट्रेन (रेल गाड़ियाँ) नि शुल्क छोडी गई । समाधि के समय कुछ क्षण पूर्व गुफा मे ज्योर्तिमय प्रकाश आया और विलीन हो गया । आचार्य श्री के स्वर्गारोहण के साथ तद्नन्तर उसी समय लगभग आधा घंटे तक अनेक प्रकार के वाद्य आकाश मे बजते रहे । जिसे उपस्थित लाखो जनता ने सुना ।

१०८ आचार्य श्री सम्भव सागरजी

जीवन का स्वर्ण अवसर



बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य आध्यात्मिक, सन्त आलौकिक तपस्वी, प्रथम चारित्र चक्रवर्ती, धर्म प्रवर्तक दिगम्बराचार्य अप्रतिम ज्ञान के धनी विश्व वंद्य, श्रमण सस्कृति के महामानव मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करने वाले परम पूज्य आदि सागर (अकलीकर) हैं जिन्होंने जीवन के सम्पूर्ण कर्म क्षेत्र को धर्मक्षेत्र में परिवर्तन कर दिया था।

अहिसा के पुजारी जिनके जीवन का एक-एक शब्द क्या सुबह क्या शाम सर्वथा अपने आराध्य देव की अराधना मे मन निमग्न रहता था।

वीतराग मूर्ति जिनकी प्रत्येक गति विधि सरस्वती जिन वाणी माँ से अनुप्रेरित होकर हृदय मे समायी हुई थी।

सत् पथ प्रदर्शक ऐसे श्रेष्ठ सत जिनकी बाल्यकाल से ही सात्विक प्रवृति, धार्मिक विचार, असाधारण प्रतिभा से प्रभावित होकर उस अल्प आयु मे ही तपस्या साधना रोम-रोम में समाई हुई थी।

''सर्वे भवन्तु सुखिन·'' की भावना से आचार्य श्री आदिसागर जी का सारा व्यक्तित्व अनुप्राणित था।

जिनवाणी के उपदेशो का बीजारोपण बाल्य काल मे ही प्रखर रहा था। आचार्य श्री के हृदय में तपस्या की अपूर्व भावना थी तदनुकूल उन्होंने घोर जगलो मे रहकर तपस्या मे सारा जीवन समर्पित कर दिया जो कि उनका चरमादर्श था।

आचार्य श्री एक सच्चे धर्माधिकारी नेता ही नही आध्यात्मिक मूल्यो के प्रतिष्ठाधिकारी नेता भी थे।

आचार्य श्री साधारण मानव के लिए ही नहीं, समग्र साधु सन्तो तथा साधकों-अराधको के लिए प्रेरणा एव प्रोत्साहन थे तपस्या के लिए एक महान् आदर्श महात्मा थे। खुद आचार्य श्री शान्तिसागर जी ने आचार्य श्री आदिसागर (अंकलीकर) की सेवा सुश्रूषा की नदी पार कन्धे पर बैठाकर कराते थे।

अहो! कैसी उत्कृष्ट गुरुभक्ति थी जिसके प्रताप से भविष्य में स्वयं ने जैनेश्वरी दीक्षा धारण की और महान् आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए।

परम पूज्य आचार्य श्री आदि सागर के पट्टाचार्य श्री महावीर कीर्तिजी थे जिन्होंने गम्भीर स्वाध्याय के बल पर विभिन्न गुजराती, मराठी, कन्नड़, प्राकृत, संस्कृत इत्यादि अठारह (१८) भाषाओं पर उनका असाधारण अधिकार था । उन्हें हरियाणवी और उड़िया भाषा का भी विशद ज्ञान था । यहाँ तक की पशु-पक्षियो की भाषा का भी उन्हे ज्ञान था इनके अतिरिक्त असमिया, बुन्देलखण्डी गुरुमुखी में भी आचार्य श्री का साधिकार प्रवेश था ।

उनकी कथनी करनी एक थी कथनी व करनी की एकता ने ही त्यागी जनो को सेवाओं के लिए आदर्श एवं अनुकरण की मूर्ति बना दिया था । परम पूज्य आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी ने अपना आचार्य पद परम पूज्य वात्सल्य रत्नाकर, परम तपस्वी, बाल ब्रह्मचारी, सन्मति सागर जी महाराज को प्रदान किया है ।

आचार्य श्री नगर-नगर में मगल पद विहार करके धर्म प्रभावना कर रहे हैं अपनी महान् तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध कर रहे हैं ।

मेरे जीवन का यह स्वर्ण अवसर है कि मुझे बीसवी सदी के चारित्र चक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री आदिसागर जी (अकलीकर) की गुण गौरव गाथा रूप मे श्रद्धा सुमन समर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । आचार्य श्री के चरण कमलो मे सिद्धश्रुताचार्य भक्ति पूर्वक त्रिकाल, त्रिबार नमोस्तु स्वीकृत हो ।

चरण सेवक
मुनि श्री कुमुद नन्दीजी
सोनीपत

इस युग के प्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री 108 आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर)

(लेखक बालयोगी धर्मप्रवर्तक मुनि श्री १०८ निश्चय-सागर)

वर्तमान काल में भी भगवान महावीर के सम्यक पथानुगामी संत जयवन्त हैं । यद्यपि चारित्र चक्रवर्ती महान तपस्वी श्री १०८ आचार्य आदिसागर जी एव आचार्य श्री १०८ महान संत तपस्वी सम्राट् सन्मतिसागर जी तक की सारिणी मे अनेको ऐसे लोकोत्तर सत हुए हैं और वर्तमान में भी हैं जिन्होंने ज्ञान ध्यान तप मुक्त जीवन से आत्मा की चरमोत्कर्षता को बढाने में तथा अर्हंत रूप प्रस्तुत करने मे अपना वदनीय जीवन आदर्श ससार के भव्य जीवों के समक्ष रखा है । और भी ज्ञान ध्यान तपमय जीवन की साधना में बहुत आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी जयवत हैं । आज कई लोग दयामूर्ति दिगम्बर साधुओ के विषय मे यह कहते हुए नहीं चूकते हैं कि इस पचम काल में निर्ग्रन्थ साधु नहीं हो सकते और जो साधु दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे सब द्रव्यलिंगी हैं, परन्तु उन्हे आगम के रहस्य को जानना चाहिए कि सर्वज्ञ भगवान की वाणी है कि इस पंचम काल के अन्त तक सम्यग्दृष्टि भावलिगी साधुओ का सद्भाव रहेगा, फिर भला वे लोग किस आधार से ऐसी निराधार बाते करते हैं । उनको सोचना चाहिए कि इस पचम काल में बड़े-बडे आचार्य हो गये जिनके नाम स्मरण से अनेक जन्मो के पाप नष्ट हो जाते हैं इसी पचम काल मे आचार्य कुदकुद, समन्तभद्र, वीरनन्दि, पूज्यपाद, गुणभद्र सोमदेव आदि ने जन्म लिया है और जैन धर्म की पताका संसार मे फहराई है । इस स्वर्ण युग के सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती महान तपस्वी आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी महाराज (अकलीकर), आचार्य शान्ति सागर जी महाराज, आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज, वीर सागर जी महाराज, चद्र सागर जी महाराज, शिवसागर जी महाराज, देशभूषणजी महाराज आदि अनेक साधु भी इसी पंचम काल में हुए हैं ।

वर्तमान मे आचार्य विमल सागरजी महाराज, आचार्य सन्मतिसागर जी महाराज, आचार्य कुंथुसागर जी महाराज, आचार्य सभव सागर जी महाराज, आचार्य सुधर्म सागर जी महाराज, बालाचार्य योगीन्द्रसागर जी महाराज, आदि अनेक महान साधुसत भारत के कोने कोने में जैन धर्म का डका बजा रहे हैं । फिर भी वे लोग कहते हैं इस पचम काल मे साधु नहीं होते । यह हठ पूर्ण आज्ञान ही है, उनके पाप का उदय समझना चाहिए । अगम मे इस बात को आचार्यों ने स्पष्ट लिखा है कि जो प्राणी देवशास्त्रगुरु को देखकर उनका विनय आदि नहीं करता है तो समझ लो कि वह मिथ्यादृष्टि है या वह अभव्य है या तो वह अनन्तानुबंधी कषाय से ग्रसित है अन्यथा सवाल ही नहीं उठता कि जैन कुल धर्म में उत्पन्न होकर देव शास्त्र और गुरुओं की निन्दा करे । जिन्होंने

अपने हृदय से निकली सच्ची भक्ति के वशीभूत एवं स्वात्यानुभूति से प्राप्त मार्गदर्शन हमें दिखाया है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि हम एक ऐसे युग में पैदा हुए जहाँ हमारे लिए परम वीतरागी तपस्वी दिगम्बर साधुओं (गुरुओं) का समागम मिलने के साथ-साथ जीवन को सार्थक बनाने के लिए आहार दान आदि का सुअवसर मिल रहा है। इन सबकी दैन या स्रोत अथवा उदय परम पूज्य महान तपस्वी चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदि सागर जी महाराज (अंकलीकर) थे। जिनके द्वारा विकसित आज परम्परागत करीब २०० मुनिराजो और ३०० अर्यिकाओ के माध्यम से उपदेशामृत पानकर धर्मरूपी वृक्ष फल फूल रहा है जिसके माध्यम से हम सच्चा मार्गदर्शन पाकर आत्म कल्याण कर इस युग की सार्थकता कर सकते हैं।

जन्म-अंकलीग्राम (महाराष्ट्र) सन् १८६६

क्षुल्लक दीक्षा-नादनीग्राम सन् १९०६ क्षु आदिसागरजी

मुनिदीक्षा-कुथलगिरि सन् १९१३ मगशिर शुक्ला २

आचार्यपद-जयसिंगपुर सन् १९१५ श्रुतपचमी

चारित्रचक्रवर्ती पद-अंकली ग्राम मे सन् १९१६

समाधि-अतिशय क्षेत्र ऊदगाँव कुजवन सन् १९४३ फागुन वदी १३

परम पूज्य आचार्य महावीर कीर्तीजी महाराज का जीवन परिचय –

पिता का नाम-श्री रतनलाल

माता का नाम-श्रीमति बूदा देवी

जन्म स्थान-फिरोजाबाद (उ प्र)

गृहस्थ नाम-महेन्द्र कुमार

जन्म समय-वि सं १९६७ बैसाख वदी ९

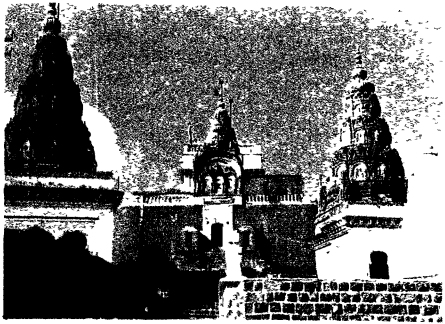
मुनि दीक्षा-वि स १९९९

मुनि दीक्षा स्थान-कुंजवन अतिशयक्षेत्र ऊदगाँव

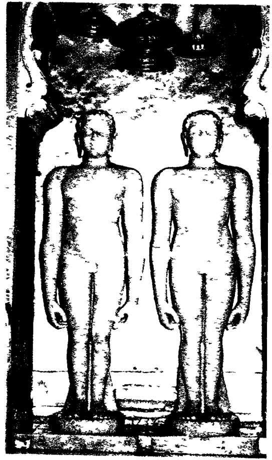
आचार्य पद समारोह-शेडवाल श्री वीरनिर्वाण सं २४७४

समाधि-महसाना (गुजरात) माघ कृष्णा ६ वि स २०२८

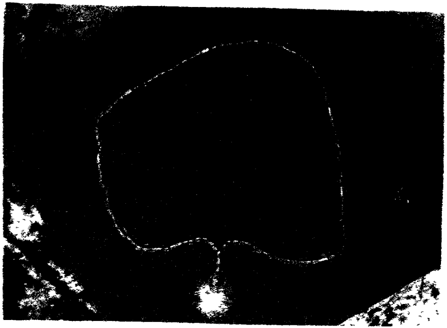
प पू आचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) का इस सदी का प्रथम आचार्य होना तथ्यात्मक सत्य है। इतिहास इसका साक्षी है अनेको ग्रन्थो, विद्वानो एव सन्तो ने इस बात को प्रामाणिक बताया है कि वे इस सदी के सर्वप्रथमाचार्य हैं। फिर क्या ?



सिद्धक्षेत्र कुन्थल गिरी यहा परम् पूज्य चा च
मुनि कुञ्जर समाधि सम्राट आचार्य १०८
श्री आदि सागरजी (अकलीकर) ने
मुनि दीक्षा ली थी।



श्री १००८ भगवान कुलभूषण देशभूषण स्वामी
जिनकी साक्षी मे प पू मुनि कुञ्जर समाधि
सम्राट आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) ने
भगउती जैनेन्द्री निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा ली।



प० पू० चा० च० मु० कु० स म [illegible]
(अकलीकर) की माता [illegible]



[illegible] की निषिद्या
[illegible]

कुछ लोगों के भ्रामक प्रचार से यह सत्य असत्य हो सकता है क्या ? बादलों से सूर्य की प्रचण्डता को छिपाया जा सकता है ? यदि कोई ऐसा सोचता हो तो वह अज्ञानी है उसे आत्म चिन्तन करना चाहिए । आचार्य आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) का इस सदी का प्रथम आचार्य होना उतना ही सत्य है जैसे सूर्य पूर्व में उगता है और पश्चिम में अस्त होता है । परम पूज्य आचार्य सन्मति सागर जी महाराज द्वारा परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी (अंकलीकर) का जो प्रचार किया जा रहा है वह ठीक किया जा रहा है । बात सत्य है । आगमानुसार हमारी ज्ञान दृष्टि मे तीन साधुरत्न विक्रम की ८वीं शताब्दी में हुए जिनके नाम हैं- वीरसेनाचार्य (धवला टीकाकार) इनके शिष्य श्री जिनसेनाचार्य (आदि पुराण के रचयिता) एवं जिन सेनाचार्य के शिष्य श्री गुणभद्राचार्य (उत्तरपुराण के रचयिता) ये तीनो ही आचार्य, रत्नत्रय के समान ससार का हित करने वाले हुए हैं इनके द्वारा महान् ग्रन्थराजो की रचना की गई । जिसका स्वाध्याय समस्त जैन ससार आज भी बडी श्रद्धा और शान्ति के साथ करता है । समाज को उक्त साधुरत्नत्रय पर गर्व है ।

इस स्वर्ण युग की बीसवीं शताब्दी की यह महान् उपलब्धि है कि महाराष्ट्र के सर्व प्रथम प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) ने इस भू पर जन्म लेकर त्याग मार्ग मे एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी और जिस मूलाचार ग्रन्थ को साधुओ की सहिता के लिए आचार्य श्री कुदकुंद स्वामी ने दो हजार वर्ष पूर्व लिखा था । उसी मूलाचार ग्रन्थ का बार-बार स्वाध्याय करके प पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) ने अपने जीवन को सर्वप्रथम मूलाचारमय बनाया था । परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) ने उत्कृष्ट समाधि ग्रहण कर अतिशय क्षेत्र ऊदगाँव कुजवन मे ४ मार्च फागुन वदी १३ सन् १९४३ मे सल्लेखना पूर्वक वीरमरण को प्राप्त किया था और अपने समाधि मरण से पूर्व ही आचार्य श्री ने वरिष्ठ शिष्य धरमपूज्य समाधि सम्राट् दिगम्बराचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज को अपना आचार्यपद प्रदान किया था । जिस समय परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) की समाधि अतिशय क्षेत्र ऊदगॉव (कुजवन) मे हुई थी उस समय उनके परम भक्त आचार्य श्री १०८ शातिसागरजी महाराज एव देशभूषणजी महाराज एवं मुनि श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज भी मौजूद थे ।

अत उन्होने अपने सुयोग्य शिष्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज को अपना आचार्यपद प्रदान किया था और कहा था कि मैं अपने शिष्य मुनि श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज को इस संघ का आचार्य घोषित करता हूँ । आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) के इस प्रकरण के समय प्रमाणित श्रावक देवगौडा पाटिल, जिनगौड़ा पाटिल, बापू जिन्नप्पा चौगुले, श्रीपाल परमू चौगुले, श्रीपाल मगदुम, देवगौड़ा पाटिल, अप्पासाहेब देवगौडा पाटिल, बापू उपाध्याय, भूपाल उपाध्याय, ए पी चौगुले, नाना मादनायक, बाल जिन्नप्पा चौगुले, जय कुमार अण्णा पाटिल, जयपाल कर्वे, सागली, के आरवाडे कुवेर चौगुले आदि है ये वहाँ

उपस्थित थे जहाँ पर मुनि श्री महावीर कीर्तिजी महाराज को अपना आचार्य पद प्रदान किया था और स्वयं चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) ने आचार्य पद से मुक्त होकर अपने को क्षपक मुनि मानकर अपनी मौजूदगी में ही श्री मुनि महावीर कीर्तिजी महाराज को आचार्य बना दिया । गुरु के स्वर्गारोहण के पश्चात् शेडवाल कर्नाटक में लगभग हजारों जन-समुदाय जिसमे दक्षिण भारत के तत्कालीन ब्रिटिश गवर्मेन्ट द्वारा मान्य अनेक राजा, महाराजा, जागीरदार एवं अनेक नागरिक गण चतुर्विध सघ के समक्ष मुनि श्री महावीर कीर्तिजी महाराज का आचार्यपद समारोह किया गया था । आप प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) के पट्ट शिष्य थे ।

20वीं सदी में सर्वप्रथम दिगम्बरत्व के प्रतीक

आज मुझे जानकर प्रसन्नता हुई कि आचार्य आदिसागर स्मारिका निकाली जा रही है । दक्षिण भारत में परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य मुनि कुंजर १०८ आदि सागर (अकलीकर) का जन्म हुआ । आपके द्वारा महती प्रभावना हुई है । निर्दोष रत्नत्रय का पालन करते हुए आपने अनेक दीक्षाए दी । उनमें से आपने आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज को मुनि दीक्षा एव अपना आचार्य पद दिया । तथा आचार्य शान्ति सागर जी को एलक दीक्षा दी । प पू आचार्य आदि सागर जी (अंकलीकर) ने जैन धर्म का प्रचार-प्रसार किया । जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार किया । जिससे समस्त श्रावक मानव धर्म को समझकर अपने आत्म कल्याण के मार्ग मे आरूढ हुए । आपके माध्यम से आज दिगम्बर मुनियों की महिमा, परिचय लोगो को प्राप्त हो रहा है । संसार में सर्वत्र त्याग व सयम की महत्ता है । इसके परिपालन से जीवात्मा में सुख शान्ति होती है ।

परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी (अकलीकर) ने भारत मे पदयात्रा करके जैनधर्म तथा दिगम्बरत्व का प्रचार-प्रसार किया था । वह कीर्ति-पताका चिर काल तक फहराती रहेगी ।

मुनि कल्प श्रुतनन्दी

आचार्य आदिसागर और उनका पंचाचार

लेखक—प पू प्र. गणिनी आर्यिका श्री १०५ विजयमती माताजी

भारतीय सुरम्य वनस्थली पर अनेको पुण्य पुरुष रूप सुरभित सुमन विहंसते रहे हैं । अनादि से समयानुसार इनकी सौरभ से आकृष्ट भव्य-भ्रमरो ने अपने आत्मतत्त्व का पोषण किया है ; इनके परागरूपी साम्य रस से अभिसिंचित कर निज जीवन को पनपाया है । लोक से लोकोत्तर दशा प्राप्त कराने मे ये मनीषी सतत कटिबद्ध रहते आये हैं । ससार ताप से सन्तप्त प्राणियों के शुष्क जीवन में नवजीवन का सचार करते हैं । निज जीवन को तिल-तिलकर तपा संसारी प्राणियों को आध्यात्म्य ज्योति प्रदान करते रहे हैं । अनेको उद्भट आचार्यों ने इस आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा है । आर्ष परम्परा के ये सुदृढ-अचल स्तम्भ दिगम्बरत्व की आन और शान को चमकाते रहे । उनकी महती अनुकम्पा के फल स्वरूप आज हमे जिन धर्म और जिनागम की उपलब्धि हो रही है । भगवान महावीर स्वामी के अनन्तर अनेको ऋषि, महर्षि, आचार्य, मुनिकुञ्जर हुए हैं । इन्हीं की शृखला मे महान्, प्रखर प्रतिभा सम्पन्न, अनुकम्पाधारी, जैन सिद्धान्त निष्णात परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य पुङ्गव १०८ श्री आदिसागर जी अंकलीकर हुए । इन्होंने विच्छिन्न दिगम्बर धारा को वेग प्रदान किया । एक नया प्रवाह दिया, उसमें आगत मलीनता को दूर कर स्वास्थ्य प्रदान किया । फलत आज हमारे समक्ष शुद्ध दिगम्बरत्व के दर्शक आचार्य, मुनिराज, आर्यिका माताएँ, क्षुल्लक व क्षुल्लिकाएँ एव ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणीगण दिगम्बर जैनधर्म का प्रचार व प्रसार कर जैन सिद्धान्तो का रक्षण कर रहे हैं । आचार्य परमेष्ठी के छत्तीस (३६) मूल गुण हैं । इस लघु कृति में मुझे मात्र पञ्चाचारो का निरूपण करना है । जिनका लगाव प पू चा च आ १०८ श्री आदिसागरजी अंकलीकर से रहा है । यद्यपि मुझे उनका प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला । गुरु परम्परा से कुछ ज्ञात हुआ उसी का आधार है ।

सर्वप्रथम दर्शनाचार है । इसमें दर्शन और आचार दो शब्दों का योग है । दर्शन से अभिप्राय सम्यग्दर्शन से है । और आचार से तद्रूप क्रियाओं से । अपनी शक्ति के अनुसार निर्मल किये गये सम्यग्दर्शनादि मे जो यत्न किया जाता है उसे आचार कहते हैं । यह आचार-१ सम्यग्दर्शनाचार, २ सम्यग्ज्ञानाचार, ३ सम्यक्चारित्राचार, ४ सम्यक्तपाचार और ५ वीर्याचार ।

दर्शनाचार की निर्मलता अष्ट प्रकार से होती है । निशंकित निष्कांक्षित निर्विचिकित्सा, अमूढ़ दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना । इन गुणों सहित सप्ततत्त्वों और आत्मतत्त्व का दृढ़ अचल श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है और इनका आचरण करना दर्शनाचार है ।

निश्चय से आत्म तत्त्व का अकाट्य विश्वास कर उसी में रमण करना ही दर्शनाचार है । चिदानन्द रूप शुद्धात्म तत्त्व ही सर्व प्रकार आराध्य है । अन्य सब पर वस्तुएँ त्याज्य हैं । ऐसी दृढ प्रतीति, चञ्चलता रहित, निर्मल अवगाढ परम श्रद्धा सम्यक्त्व है और उसका जो आचरण है अर्थात् उस रूप परिणमन है वही दर्शनाचार है । "पूत के पाँव पालने मे ही दिखते हैं" कहावत के अनुसार आचार्य श्री ने अपनी गृहस्थावस्था मे श्री १००८ आदिनाथ जि लय का निर्माण व प्रतिष्ठा करवा कर अपने शुद्ध सम्यग्दर्शन का परिचय दिया । स्वय जिनेन्द्रसाक्षी मे दिगम्बर दीक्षा धारण कर सम्यक्त्व को आचरण रूपता प्रदान की । आप वास्तव मे दर्शनाचार की साक्षात् मूर्ति स्वरूप रहे होगे । तभी तो निर्भय, नि शङ्क एकाकी गुहाओ, जङ्गलो मे निवास करते थे । सिहादि वन्य पशु भी आपकी दृढ भक्ति मे तत्पर रहा करते थे । इस प्रकार आप दर्शनाचार मे पूर्ण दक्ष व दृढता से पालन करते थे और अन्य भी भव्यात्माओं को सम्यक्त्व और दर्शनाचार मे प्रवृत्त करते थे । भूतार्थनिश्चयनय से "शुद्ध समयसार" जो भाव कर्म, द्रव्य कर्म, नोकर्म से भिन्नभूत, परम चैतन्य का विलास रूप आत्म तत्त्व ही एक मात्र उपादेय है, इस प्रकार की रूचि सम्यग्दर्शन है यह उनकी अकाट्य धारणा थी और उसमे ही आचरण कर दर्शनाचार का निर्दोष पालन करते थे ।

अपनी शुद्धात्मा का उपाधि रहित स्वसवेदन रूप भेदज्ञान द्वारा मिथ्यात्व रागादि विभावो से भिन्न जानना सम्यग्ज्ञान है उसमे ही आचरण करना ज्ञानाचार है । व्यवहारनय से ज्ञानाचार के आठ भेद बतलाये हैं-

काले विणये उवहाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे ।

वजण अत्थ तदुभय णाणाचारो दु अट्ठविहो ॥ २६९ ॥ मू चा. ॥

स्वाध्याय का काल, मन-वचन-काय से शास्त्र का विनय करना, पूजा-सत्कारादि से पाठ करना, अपने पढाने वाले गुरु का तथा पढे हुए शास्त्र का नाम नहीं छिपाना, वर्ण-पद-वाक्य को शुद्धिपूर्वक पढना, अनेकान्त स्वरूप अर्थ की शुद्धि पूर्वक समझना-समझाना, इस प्रकार ये आठ ज्ञानाचार के भेद हैं । सशय, विमोह, विभ्रम रहित स्वसंवेदन ज्ञान रूप ग्राहक बुद्धि सम्यग्ज्ञान है । इसमे आचरण निश्चयनय से ज्ञानाचार कहा है । भेद-विज्ञानी नरपुङ्गव ही अपनी प्रज्ञा बल व शक्ति से निर्दोष दिगम्बर मुनिचर्या का पालन करने में समर्थ होता है । आचार्य श्री ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि व समीचीन आगम ज्ञान द्वारा शिथिलाचार का उन्मूलन किया और यथार्थ आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण बनाने का प्रयत्न किया ।

हिसादि पाँच पापो से विरत होना, पाँचो इन्द्रियो का निरोध करना, षट्काय के जीवो का नव कोटि से सरक्षण करना सम्यक् चारित्र हैं । इसी प्रकार, राग-द्वेषादि विभावों से आत्मा का रक्षण करना सम्यक् चारित्र है और उसी आत्म स्वरूप में रमण करना चारित्राचार है । आचार्य श्री का अकाट्य सिद्धान्त था कि "परजनो से जितना सम्पर्क होगा उतना ही चित्त विभ्रम होगा और चारित्राचार मे शिथिलता आयेगी । इसी से वे ग्राम व नगरो से दूर वन खण्डों, गुहाओं में ही निवास

कर अपने चारित्राचार को परम निर्मल बनाते थे । आपका यह अपूर्व गुण आपके पट्ट शिष्य श्री १०८ प पू गुरुवर्य आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के जीवन में साकार दर्शित होता था । आपकी करुणा व ममता गृहस्थाश्रम में अकाल पड़ने पर सारा अनाज वितरण करने से बीज रूप में परिलक्षित होता है । पाँच समिति, तीन गुप्ति रूप चारित्राचार आपके सयमित जीवन में सुगठित था । मोक्ष मार्ग दर्शक चारित्राचार के आप अप्रतिम धनी और कर्मठ साधुरत्न रहे । इसी से आपको भव्यभक्त जन "मुनिकुञ्जर" शब्द से सम्बोधित कर आपकी श्रेष्ठता और ज्येष्ठता का परिचय देते थे ।

वाह्याभ्यन्तर तपों के छ-छ भेद हैं । इन बारह प्रकार के तपों को तपना सम्यक् तप है और इन्ही मे आचरण करना तपाचार है । इच्छाओ के निरोध से तप होता है और तप में अतिशय प्रकट होना अर्थात् आत्मशक्ति का प्रद्योतन तपाचार है । कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा है "बेण्डुम बेण्डाम" अर्थात् "चाहिए" यह शब्द ही नही चाहिए । यह भावना यथार्थ तप है । समस्त पर द्रव्यों की इच्छाओ से वे विहीन थे । ख्याति, पूजा, लाभ की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे । इसी से सात गौडा पाटिल को दीक्षा देने पञ्चकल्याणक महोत्सव में नहीं गये । वे आत्मशुद्धि का सतत् प्रयत्न करते थे । सुवर्ण को शुद्ध करना है तो उसे योग्य अनुपात रूप ताप देना ही होगा । सात-सात उपवास के बाद पारणा करना आपके तपाचार का ज्वलन्त उदाहरण है । उसमे मात्र कोई एक ही वस्तु यथा, दूध या दाल या रोटी ही लेते थे । क्या यह चतुर्थ काल की स्मृति नहीं ?

आहार से उत्पन्न शक्ति बल कहलाती है और परिणामविशुद्धि से उत्पन्न आत्मबल वीर्य कहा जाता है । बल और वीर्य का यथोचित प्रयोग कर १७ प्रकार के सयम का धारण, पालन व निर्वहन करना वीर्याचार है । वीर्याचार साक्षात मोक्ष का कारण है । अन्य सभी आचार वीर्याचार की धूरी पर घूमते हैं । दिगम्बरत्व का यथार्थ फल आत्मोत्थसुख इसी पर निर्भर है । ज्ञान, ध्यान, तप की सिद्धि बल-वीर्य से ही सभव है । इसी से उत्तम संहनन (वज्रवृषभ नाराच) ही मुक्ति का कारण कहा है । एकाग्रचिन्तानिरोध ध्यान भी अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त इसी से सभव है । यही सर्व कर्म विप्रमोक्ष को देने वाला है । वर्तमान काल मे यह सहनन नहीं है तो भी विशिष्ट नर कुञ्जरों मे विशेष २ प्रकार की शक्तियाँ रहती हैं । आचार्य श्री के बाल जीवन की घटनाएँ-मुक्को से दरवाजा तोडना, हथेलियो से दबाकर कद्दू (कुम्हड़ा) फोडकर कच्चा ही खाकर पचा लेना, कोहनी के बीच रखकर नारियल फोड़ देना, चरश की मोठ स्वय खींचना, ४-४ मन की बोरियाँ गाड़ियो में लादना व उतारना आदि से अनुमित होता है कि आपकी शारीरिक शक्ति विचित्र थी जिसका उपयोग आपने अपने सद्ज्ञान द्वारा सम्यक् प्रयुक्त किया । यही वीर्याचार मे परिणत हो, सल्लेखना काल में एक साथ चौदह दिवस का अन्नजल त्याग कर प्रकट हुआ ।

आप निर्भय सिंहवृत्ति के पालक थे । आर्ष परम्परानुसार क्रियाकलाप होने से आप सतत् प्रसन्न चित्त रहते थे । अनेको सातिशय चमत्कार होने पर भी सरल, देवशास्त्र, गुरुभक्त व विनम्र

शिष्यवत् जिनदेव आराधना मे तल्लीन रहते थे । कहा जाता है समाधि के समय सरकार की ओर से फ्री ट्रेनें दर्शकों की आती-जाती थीं । स्वर्गारोहण के समय गुफा में अकस्मात् एक प्रकाशपुञ्ज आया और आपकी जीवन ज्योति को अपने मे समाहित कर विलीन हो गया । पश्चात् अनेक सुमधुर ध्वनियाँ (वाद्य) आकाश मे लगभग आधे घटे तक गूँजती रहीं जिनका श्रवण वहाँ उपस्थित हजारो जनता और सैकडो साधु-त्यागी व्रतियो ने श्रवण की । यह सब उनके निर्दोष पञ्चाचारो की परिपालना का ही फल है । उनके जीवन की सच्ची झाकी तो गुरुवर्य आ श्री १०८ महावीर कीर्तिजी के जीवन मे प्राप्त हुयी ।

२०वी शदी के प्रथमाचार्य, पञ्चाचार परायण गुरुवर चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आदिसागरजी महाराज के चरणो मे अनन्तों नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।

॥ श्री चा च १०८ आ आदिसागरजी अकलीकर की जय ॥

आचार्य विद्यासागर से मेरी बात

श्री पालीवाल जी कोटा वाले मुझे ईसरी पारसनाथ मे मिले उन्होने मुझे बताया कि आचार्य आदिसागर (अकलीकर) और आचार्य शान्तिसागर महाराज मे पहले कौन आचार्य हुए उस बावत विवाद चल रहा है । उस बावत मेरी पूज्य आचार्य १०८ विद्यासागर जी से कोनी जी जबलपुर मे बात हुई थी सो उन महाराज का भी यही कहना था कि आचार्य आदिसागर (अकलीकर) पहले हुए । उसके पीछे आचार्य शान्तिसागर हुए । आचार्य शान्ति सागर उत्तर भारत में यात्रा करने आये इससे उनके विषय में सब लोगो को मालूम है । आचार्य (अकलीकर) आदिसागर दक्षिण में ही रहे उत्तर भारत मे विहार नहीं हुआ इससे उनका इतना नाम नहीं हुआ वैसे वे उनके पहले हुए हैं ।

दि 25-10-93

आपका सेवक
सि कोमलचंद जैन संरक्षक
पिसनहारी माढिया दि जैन गुरुकुल व
अध्यक्ष श्री विद्यासागर मुनि व्यवस्था समिति जबलपुर
मेरी उम्र करीब ७२ वर्ष की है ।

मुनिकुञ्जर कौन ?

प्र गणिनी आ. १०५ श्री विजयमती माताजी



श्रेष्ठत्व और ज्येष्ठत्व पाने की आकाक्षा मानव को प्रकृति से उपलब्ध है । यों तो प्रत्येक सज्ञी स्वाभिमान और महत्त्वाकाक्षाओ का आश्रय रहता ही है । मनुष्य पर्याय में यह गुण विशेष रूप से स्पष्ट पाया जाता है । यह मानसिक प्रवृत्ति है । परन्तु सभी न श्रेष्ठ होते है और न ज्येष्ठ । कारण ये गुण कहीं वाह्य पदार्थों मे उपलब्ध नहीं होते । किसी से याचना कर प्राप्य नही है और न किसी मृल्य पर खरीदे ही जा सकते है । मानव स्वय अपने सत्पुरुषार्थ से इन्हे अर्जित करता है या यों कहे कि उसके सद्गुणों के प्रकट होने पर स्वयमेव उसे महान्, पूज्य, श्रेष्ठ और ज्येष्ठ घोषित कर दिया जाता है । प्राय उपाधियाँ गुणाश्रित ही हुआ करती हैं । मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी योग्यता ही उसे ख्याति, पूजा, लाभ, प्रतिष्ठा, यशादि प्राप्त कराती है । धार्मिक क्षेत्र में भी यही स्थिति है । गृहस्थ धर्म हो या यति धर्म सर्वत्र मान्यता गुणो पर ही निर्भर होती है । यहाँ हमे संयम के क्षेत्र मे प्राप्त ''कुञ्जर'' शब्द का महत्त्व विचारणीय है । इस विवेचना मे आगम व लौकिक शास्त्रो का आधार अति आवश्यक है । सर्वप्रथम हम अपने जिनागम को देखें । वर्तमान सदी के प्रथम शुद्ध निर्ग्रन्थ परम्परा का आविर्भाव करने वाले चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अंकलीकर) को समाधिसम्राट् मुनिकुञ्जर नाम से सम्बुद्ध किया जाता था । इस विवेचन से उनका महत्त्व अनायास हमारे समक्ष स्पष्ट प्रमाणित और यथातथ्य रूप में प्रकट हो जायेगा ।

सर्वमान्य प्रमाणित आचार्य श्री जिनसेन स्वामी ने आदिपुराण (महापुराण) के १८वें पर्व श्लोक १०१ में ''मुनिकुञ्जर'' की व्याख्या निम्न प्रकार की है-

महोदयमुदग्रांग सुवंशं मुनिकुञ्जरम् ।

रुद्धं तपोमहालान स्तम्भेसद्व्रतरज्जुभि· ॥ १०१ ॥ म. पू. प. १८ ॥

अर्थात् वे मुनिराज एक कुञ्जर हाथी के समान मालूम होते थे । क्योंकि जिस प्रकार हाथी महोदय अर्थात् भाग्यशाली होता है, उसी प्रकार वे भी महोदय-भाग्यशाली-पुण्यरूप-सम्यग्दर्शन ऐश्वर्य सम्पन्न थे । गजराज का शरीर जिस प्रकार ऊँचा होता है उसी प्रकार उनका अङ्ग-शरीर सम्यग्ज्ञान बहुत ऊँचा था । हाथी जिस प्रकार सुवश अर्थात् पीठ-उत्तम रीढ़ वाला होता है उसी भाँति वे उत्तम, उन्नत चारित्रधारी थे । चारित्रवानों-चतुर्विध सघ के उन्नायक उत्तम

चारित्र पालक थे। हाथी जिस प्रकार रस्सियो द्वारा विशाल, सुदृढ आलान खम्भे से बधा रहता है उसी प्रकार वे भी कठोर, सम्यक् सयम रूपी रस्सी से महोग्र तपरूपी खम्भे से बंधे थे। जिस प्रकार गज रस्सियों से बाधा जाता है उसी प्रकार वे भी वीर्य-आत्मशक्ति और शरीर बल से सम्पन्न थे, अचल, अटल रूप मे व्रतो के पालक थे। तात्पर्य यह है कि वे वास्तव में यथार्थ पञ्चाचार का पालन करते थे। अभिप्राय यह है कि जो महानुभाव मुनिराज, स्वाभिमान का रक्षण करते हुए रत्नत्रय से मण्डित, श्रेष्ठतम तपोधन, घोरोपसर्ग परीषहजयी, चतुर्विध सघ के आदर्श पथ प्रदर्शक-नेता, अनिगुह्य बल वीर्य से उद्यत हो तपपूत होते हैं वे "मुनिकुञ्जर" गणनायक कहलाते हैं। अर्थात आचार्यों मे भी ज्येष्ठ और श्रेष्ठ होते हैं। वन्दनीय और मान्य होते हैं। वे ही मुनि कुञ्जर कहलाते है। महामनीषी, आध्यात्म्यरसावगाही आचार्य श्री अमृतचन्द्र स्वामी "कुञ्जर" शब्द की महत्ता प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं-

ततो बधनिमित्तान्येवैतानि समस्तान्यध्यवसायनानि, येषामैवेतानि न विद्यन्ते त एव मुनिकुञ्जरा, केचन सदहेतुकज्ञप्त्यैक क्रियं सदहेतुक ज्ञायकैक भाव सदहेतुकज्ञानैकरूप च विविक्तात्मान जानन्त· मम्यक् पश्यन्तोऽनुचरन्तश्च स्वच्छन्दोऽद्यदमदातर्ज्योतिषोऽत्यन्तमज्ञानादि रूपत्वाभावात् शुभेनाशुभेन वा कर्मणा खलु न लिप्येरन्।

स सा, बंध·अ. पृ ३६१ गा न २७० आ ख्या टी

प्रवाह रूप से चले आये ये समस्त अध्यवसाय बन्ध के निमित्त हैं। जिन मुनिपुङ्गवो के ये अध्यवसान नहीं होते वे ही मुनियो मे प्रधान मुनिकुञ्जर कहे जाते हैं। ये विरले ही होते हैं। वे परिपूर्ण भेदविज्ञानी होते हैं। वे जानते हैं-अनुभवते हैं कि आत्मा अन्य द्रव्य, भावो से भिन्न, सत्ता रूप स्वत सिद्ध है, अन्य से उत्पन्न नहीं हुआ है। अत· अहेतुक है। आत्मा एक मात्र ज्ञप्ति रूप-ज्ञानधन स्वरूप है, ऐसा जानते हैं, उसी को सम्यक् प्रकार देखते हैं (श्रद्धान करते हैं) और उसी रूप आचरण करते हैं (सम्यक् चारित्र पालते है) वे मुनिराज स्वच्छन्द-स्वाधीन प्रवृत्ति रूप उदय को प्राप्त होते हैं। अन्तरङ्ग मे अमन्द-सतत् प्रकाशित आत्म तेज ज्योति पुञ्ज के धारक होते हैं। वे अज्ञान भाव से रहित हो, शुभाशुभ कर्मों से लिप्त नहीं होते हैं। इस विवेचना की कसौटी पर परखने से स्पष्ट होता है कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य परमेष्ठी श्री १०८ आदिसागरजी (अंकलीकर) रत्नत्रयपूत, उद्भट विज्ञानी और परम तपस्वी थे। भेद विज्ञान के बल पर उत्तरोत्तर उपसर्ग-परीषह जेता आगमानुकूल आत्मसाधनारत रहते थे। तभी तो उन्हें चतुर्विध संघ अपना नायक मान "मुनिकुञ्जर" नाम से अलकृत कर गौरवान्वित होते थे। वस्तुत आप एक अपूर्व सन्त थे।

पण्डित प्रवर आशाधरजी ने श्री जिनेन्द्र भगवान की सहस्र नामों से स्तुति करते हुए भगवान को जिनकुञ्जर नाम भी दिया है। यथा-

जिनचन्द्रोजिनादित्यो जिनार्क जिनकुञ्जर. ।

जिनेन्दुर्जिनधौरेयो जिनधुर्यो जिनोत्तर ॥ १० ॥

इसके टीकाकार श्री श्रुतसागर जी ने "जिनकुञ्जर " का अर्थ "जिनाना कुञ्जर· प्रधान " किया है । अर्थात् "कुञ्जर" का अर्थ प्रधान-नेता या मुखिया किया है । जिनों के नेता "जिन कुञ्जर " इसी प्रकार मुनियो के अधिपति-प्रधान-आचार्यवर्य "मुनिकुञ्जर " यह स्पष्ट सार्थक अर्थ प्राप्त होता है । अत श्री १०८ आ आदिसागरजी अकलीकर अपने समय के चतुर्विध संघ के प्रधान (आचार्य) प्रवर्तक धर्म नेता थे यह नि·सन्देह स्वत· सिद्ध हो जाता है ।

पद्मचन्द्र कोष मे भी लिखा है "मुनीना कुञ्जर· प्रधान·" अर्थात् कुञ्जर नाम गजराज का है । जिस प्रकार पशुओ मे गजराज सबसे बड़ा होता है उसी प्रकार आप भी मुनियों में सबसे प्रधान थे । अत मुनिकुञ्जर मुनियो के अधिपति थे ।

विश्वलोचनकोश मे कुञ्जर शब्द का अर्थ इन्द्र कहा है । अत जिस प्रकार सुरो का नेता, प्रमुख इन्द्र होता है उसी प्रकार मुनियो का इन्द्र-मुखिया "मुनिकुञ्जर" कहलाता है । श्री वृहद् सिद्धचक्रविधान सस्कृत मे लिखा है-

जिन कुञ्जरमीशान, प्रशान्ताशेष कल्मषम् ।

नीर चन्दन पुष्पाद्यैश्चायेऽहं तद गुणाप्तये ॥ ३५ ॥ सि च वि

अर्थात् हे जिनदेव ! आप सर्वोपरि इन्द्र हैं, इसलिए जिनकुञ्जर कहलाते हैं क्योंकि आपने समस्त दोषो का शमन-नाश कर दिया है-कषायो को निकाल दिया है अत आप महान हैं । जो साधु रागादि दोषो का विशेष रूप से परिहार करते है, ज्ञानादिगुणो की वृद्धि करते हैं, आत्मचिन्तन मे लीन रहते है । स्व स्वभावोपलब्धि का प्रयत्न करते हैं वे महामुनीश्वर "कुञ्जर" विशेषण से विशिष्ट होते हैं अर्थात् मुनिकुञ्जर कहलाते हैं । जहाँ विशेष गुणो का प्रादुर्भाव होता है, उपाधियाँ स्वयमेव चली आती हैं जैसे गमनशील मानव के आगे-पीछे छाया-परछाईं दौडती चलती है । पवन के वेगानुसार पताकाए भी वेग के साथ गगनाङ्गण मे फहराती हैं, उसी प्रकार मानव-श्रावक हो या साधु उसकी यशोपताका, भी गुणानुसार विश्व विख्यात होती जाती है । इसी कथन को हिन्दी सिद्धचक्रविधान मे पं श्री सन्तलाल जी ने लिखा है-

जैसे कुञ्जर चक्र के, जाने दल को साज ।

चार सघ नायक प्रभु, बन्दू सिद्ध समाज ॥ ३५ ॥

अर्थात् जिस प्रकार गजराज अपने यूथ-चक्र या समूह का अधिपति होता है, नायक कहलाता है उसी प्रकार जो साधुराज अपने चतुर्विध-ऋषि, मुनि, यति व अनगार समूह के अधिपति-प्रधान होते है वे "मुनिकुञ्जर" कहलाते हैं । आचार्य श्री आदिसागरजी (अंकलीकर)

को समस्त भव्य भक्त "मुनिकुञ्जर" कहकर नमन करते थे, "समाधि सम्राट" से विख्यात थे, वे आचार्य पदालकृत न हो यह असम्भव है । वे तो स्वत. सिद्ध 'आचार्य' पद विभूषित थे ही । नि:सन्देह वे विश्ववद्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शिरोमणी थे । हमने स्वय ऊदगाँव (कुञ्जवन) में पच्चीस दिवस का वास्तव्य कर वहाँ के वयोवृद्ध जनो से इस विषय की चर्चा की और यथार्थ तथ्य प्राप्त किया । "वे सर्वश्रेष्ठ और ज्येष्ठ सन्त थे । आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी (दक्षिण) यहाँ आये थे और आचार्य १०८ श्री आदिसागर जी से ही उन्होने प्रायश्चित्त लिया था । वे उनका बहुमान करते थे, बड़ा मानते थे और विनम्र शिष्य की भाँति वैयावृत्ति करते थे ।" इस प्रकार स्पष्ट और यथार्थ सत्य का अवर्णवाद करना, विपरीत भ्रान्ति फैलाकर समाज को गुरुभक्ति से चलायमान करना अनुचित है । गुरुभक्ति परायण भव्यो को अपनी श्रद्धा भक्ति को सुदृढ़ व पूर्ण निश्चल बनाये रखना चाहिए ।

प्रसून कलिका जिस समय विकासोन्मुख होती है उसकी सौरभ अनायास स्वयमेव चतुर्दिक व्याप्त हो जाती है । मृग की नाभि मे उत्पन्न कस्तूरी की सुगन्ध को वाह्य वातावरण मे कौन फैलाता है ? इसी प्रकार गुणीजनो की गुण गरिमा स्वयमेव ही सर्वत्र विख्यात हो जाती है । सूर्योदय होने पर सर्वत्र उल्लास, प्रफुल्लता छा जाती है । सभी धर्मबन्धु प्रसन्नचित्त अपने-अपने आराध्यो की आराधना कर आत्मकल्याणरत हो जाते हैं । ध्यान, चिन्तन, मनन, स्वाध्याय, जपादि के लिए ब्रह्म मुहूर्त श्रेष्ठतम माना जाता है । परन्तु मान्ध-उल्लू को ये सब क्रियाए नहीं भाती उसे प्रकाश ही नहीं सुहाता सूर्य का । वस, यही स्वभाव कतिपय मिथ्यात्व ग्रस्त मानवों का होता है, वे साधु-सन्त-महन्तो की गुण गरिमा का स्तवन करना तो दूर रहा उनकी निन्दा करना ही कर्त्तव्य मान बैठते हैं । हमे सम्यक्त्व प्राप्त करना है । सुखी बनना है, सतुष्ट रहना है तो इस प्रवृत्ति का उन्मूलन कर गुरुओ का गुणानुवाद करे, उनकी भक्ति करे, उनके प्रति दृढ आस्था रखें और उनके चरण सान्निध्य मे रहकर, धर्मामृत पान कर ससार ताप शान्त करें ।

लोक प्रसिद्ध बात है कुञ्जर का अर्थ सर्व प्रमुख । देखा जाता है जो मनुष्य प्रखरतम प्रतिभाशाली होता है उसे "नर कुञ्जर" कहा जाता है । देवो मे प्रधान हो तो सुरकुञ्जर कहलाता है । पशुओ मे प्रधान है तो गजकुञ्जरादि कहा जाता है । इस सबसे स्पष्ट होता है कि "कुञ्जर" शब्द का प्रयोग अपने-अपने क्षेत्र मे प्रधान, प्रमुख, सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ व सर्वज्येष्ठ रहने वालो के साथ ही जोडा जाता है । परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज का यह विशेषण उनके काल के समस्त साधु-आचार्य वर्गों में सबसे प्रथम-अग्रणीय होने को स्पष्ट प्रमाणित सिद्ध कर रहा है ।

20वीं शदी के प्रथमाचार्य परमपूज्य विश्ववंद्य चारित्र-चक्रवर्ती-मुनिकुञ्जर आचार्य श्री 108 आदिसागरजी महाराज और उनकी गुत्थियाँ

श्रमण संस्कृति अनोद्यनन्त है । क्योंकि आत्मा संसार मुक्ति मोक्ष मार्ग ये सब अनादि हैं और अन्त विहीन भी । ससार चक्र है, सिद्धचक्र भी उसी प्रकार समूह है, द्रव्य का स्वरूप उत्पादव्यय ध्रौत्यात्मक है जो सत है । वह सब उत्पादव्यय ध्रौत्यात्मक ही है । परिणमनरूप है । सत् का कभी विनाश नहीं होता श्रमण संस्कृति भी अनादि कालीन होते हुए भी कालानुसार इसमे परिणमन होता है यदा-कदा विच्छेद हो जाता है । पुन· उत्थान होता है । अर्थात् आविर्भाव तिरोभाव होता है-सर्वथा अभाव नही । भगवान महावीर प्रभु की श्रमण परम्परा अवच्छिन्न चलती आ रही थी । किन्तु काल क्रमानुसार ह्रास भी होता रहा है । नाना प्रकार के विकार उत्पन्न हो गये । अर्थात् दिगम्बर अवस्था अपने शुद्ध रूप से च्युत होकर विकारी बन गयी । कोई आहार के समय कपडे खोलकर दिगम्बर बनकर आहार करते पुन लंगोट लगा लेते । कोई-कोई पैसे आदि भी लेने लगे । आश्रमादि के समान एक स्थान पर ही रहने लगे । मन्दिर का पुजारी पहले ही किसी श्रावक के घर आहार तैयार करा लेता और वहीं महाराज को ले जाकर आहार करवा देता-जो कि निमत्रण जैसा होता । इसका दिगम्बर परम्परा मे निषेध है । शुद्ध वीतराग मे नवकोटि से अनुद्दिष्ट आहार ही शास्त्रोक्त है । आगम विरुद्ध यह परम्परा असह्य हो उठी । क्योंकि श्रावक और साधु दोनों ही कर्त्तव्य विमुख हो गये । उन्हें अपना यथार्थ मार्ग ज्ञात नहीं रहा । किसी भी परम्परा की चरम सीमा पर होने पर उसकी प्रतिक्रिया स्वाभाविक है । परम्परा, रूढियाँ या लोकोक्तियाँ जब सुदृढ़ रूप धारण कर लेती हैं तो उनका सुधार करना महा कठिन हो जाता है, साधारण जन के शक्ति के बाहर हो जाता है । उसके परिणमाने को सुधार करने कोई महापुरुष विशिष्ट ज्ञानी, उग्रतपस्वी, साहसी, होना चाहिए । लोक स्थिति का ज्ञाता होना चाहिए । विविध मनोभावों पर शासन करने की योग्यता युक्त होना चाहिए । वह ऐसा नेता होगा जो जन-जन के हृदय को टटोल सके । उन्हें तदनुरूप मार्ग दर्शन देकर कर्त्तव्य परायण बना सके । आर्ष मार्ग पर आरूढ़ कर

वीतराग परम्परा का सही मार्ग द्योतन करने की क्षमता से युक्त हो । अस्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे इस विकृति मार्ग की प्रतिक्रिया हुई । उस क्रान्ति के प्रथम नेता बने श्री १०८ आचार्य रत्न आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) ये शरीर मन ज्ञान तीनो से ही बलिष्ठ थे, बेजोड थे । इनकी युक्ति, विचार, तर्क और आगम के गूढ तत्त्वो का निचोड पाने की अद्भुत कला थी । इनका वैराग्य भी नैसर्गिक था वे उदार और दयालु थे ।

दीक्षा लेने के बाद आचार्य श्री ने दक्षिण भारत के अनेको गाँवो मे पद विहार कर अपने उपदेशामृत से उस धरा को अभिसिचित किया । आपके तप, त्यागमय जीवन से आबाल वृद्ध को एक नया जीवन शान्तिपथ आर्ष परम्परा का सही मोड प्राप्त हुआ जहाँ-जहा विहार किया वहाँ-वहाँ की जनता अपने को धन्य मान इनकी परम भक्ति करने लगती थी । आपके व्यक्तित्व से प्रभावित जन स्वय नाना प्रकार के व्रत नियम धारण करते थे । वस्तुत "साधूना दर्शन पुण्यम्" युक्ति चरितार्थ हो गई आप अधिकतर मौनप्रिय और ख्याति पूजा लाभ से अति दूर थे ।

आप जिस समय कोन्नूर की गुफा मे एक ही आसन से तीन दिन तक तप मे लीन रहे । आत्म तत्त्व चिन्तन मे मग्न थे । उस समय सिहराज प्रतिदिन आकर आपके दर्शन करता । घण्टो बैठकर मौनमुद्रा से उपदेश लेता । सर्प, नेवला, भेडिया आदि अनेको क्रूर प्राणी इनकी पावन छवि का निरीक्षण कर अपूर्व शान्ति पाते, क्रूरता रहित हो प्रेम और सौहार्द्र से एक साथ प्रसन्न मुद्रा मे बैठे रहते ।

इस प्रकार से जो मुनिराज तपश्चरण करते हैं । उन्हीं को ऋद्धि-सिद्धि और गुप्ति की प्र होती है । यहाँ पर विचार करना है कि गुप्ति किसे कहते हैं ।

निश्चय नय से गुप्ति का लक्षण

यत॰ ससार कारणायात्मनो गोपन सा गुप्ति -जिसके बल से ससार के कारणो मे आत्मा का गोपन अर्थात् रक्षा होती है वह गुप्ति है निश्चय नय से शुद्ध सहज शुद्ध आत्मा की भावना रूप गुप्त स्थान में ससार के कारणभूत रागादि के भय से अपने आत्मा का जो छिपाना प्रच्छादन झपन प्रवेशन या रक्षण है । सो गुप्ति है ।

व्यवहार नय से गुप्ति का स्वरूप-(मन, वचन, काय) इन तीनो योगो का सम्यक् प्रकार निग्रह करना गुप्ति है ।

परिमित काल विषयो हि सर्व योगनिग्रहो गुप्ति -परिमित काल पर्यन्त सर्व योगो का निग्रह करना गुप्ति है ।

सा त्रितयी कायगुप्तिर्वाग्गुप्तिर्मनोगुप्तिरीति ।

गुप्ति तीन प्रकार की होती है-मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति-

प्र.—मनोगुप्ति किसे कहते हैं ?

उ.—विहाय सर्व सकल्पात् रागद्वेषावलम्बितान् । स्वाधीनं कुरुते चेत. समत्वे सुप्रतिष्ठितम्-सिद्धान्त सूत्र विन्यासे शश्वत्प्रेरयतोऽथवा । भवत्यविकला नाम मनोगुप्तिर्मनीषिण: ।

अर्थ—राग द्वेष से अवलम्बित समस्त संकल्पो को छोडकर जो मुनि अपने मन को स्वाधीन करता है और समता भाव मे स्थिर करता है तथा सिद्धान्त के सूत्र की रचना मे निरन्तर प्रेरणारूप करता है उस बुद्धिमान मुनि के सम्पूर्ण मनोगुप्ति होती है ।

प्र.—वचन गुप्ति किसे कहते हैं ?

उ.—साधु सवृत वाग्वृत्तै मौनारुढ़स्य वा मुने·-भले प्रकार वश करी है । वचनों की प्रवृत्ति जिसने ऐसे मुनि के तथा समस्यादि का त्याग कर मौनारूढ़ होने वाले महामुनि के वचन गुप्ति होती है अथवा पाप के हेतुभूत असत्य भाषा का परिहार तथा स्त्रीकथा, चोरकथा, भक्तकथा, अवनिपालकथा-इत्यादि रूप वचनो का परिहार तथा मौनव्रत सो वचनगुप्ति है ।

प्र.—कायगुप्ति किसे कहते हैं ?

उ.—स्थिरीकृत शरीरस्य पर्यकसंम्स्थितस्य वा । परीषह प्रपातेऽपि कायगुप्तिर्मता मुने । स्थिर किया है, शरीर जिसने तथा परिषह आ जाने पर भी अपने पर्यकासन से ही स्थिर रहे । किन्तु डिगे नहीं उसके ही कायगुप्ति मानी गयी है । इस प्रकार गे गुप्तियो का स्वरूप कहा गया है । इस प्रकार से आचार्य आदिसागर महाराज सभी गुप्तियों का पालन करते थे । उनके चरणो मे कोटिश· नमोऽस्तु करते हुये, हम यही भावना भाते हैं कि हमको भी गुरुदेव ऐसी शक्ति देवे । हम भी ऐसी गुप्तियो का पालन कर सकें ।

आ श्री १०५ विजयप्रभा

संघस्थ-प्र ग आ श्री १०५ विजयमती माताजी

सत्संगति का फल कथा के रूप में
सत्संगती

"चन्दन शीतल लोके चन्दनादपि चन्द्रमा
चन्द्र चन्दनयो मध्ये शीतला साधुसंगति ॥

साधु की सगति चन्दन और चन्द्रमा से भी अधिक शीतलता प्रदान करती है । उज्जैन नगरी में नागदत्त नाम का एक सेठ रहता था । नागदत्त ने अपने परिश्रम से अपार धन राशि सचित की थी । एक दिन उसने विचारा कि धन की सार्थकता तभी हो सकती है जबकि मेरे पास एक आलीशान अट्टालिका हो । अत उसने चतुर कारीगरो को बुलाकर आदेश दिया कि एक सप्तखण्ड महल बनाना चाहिए यह महल इतना सुन्दर होना चाहिए कि जिससे इसकी समता इस नगरी के अन्य भवनो से न की जा सके और मेरी कीर्ति मूर्तिमान होकर सदा इस ससार मे विद्यमान रहे ।

कारीगरो ने कई वर्षों मे सुन्दर भवन तैयार किया । वह सात मजिल का था । नगर मे सबसे ऊँचा और मध्य मे था । इसे देखने के लिए नगर निवासियो की भीड एकत्रित रहती थी । सेठ नागदत्त का यश सारे नगर मे व्याप्त हो गया । एक दिन उसने सोचा कि महल मे चित्रकारी भी होनी चाहिए, अत अच्छे-अच्छे चित्रकारो को बुलाकर चित्र बनाने की आज्ञा दी । सैकडो अच्छे कलाकार उस विशाल भवन मे चित्रकारी करने मे सलग्न हो गये । देश-विदेश के कलाकार यहाँ आकर अपनी कूचि की करामात दिखलाने लगे ।

एक ओर सेठ नागदत्त अपने भोग-विलास मे अपार धनराशि खर्च करते थे तो दूसरी ओर दान, धर्म करने मे कजूस । कोई भी याचक उनसे एक भी पैसा नहीं पा सकता था । पैसे की जगह वह याचको को झिडकियाँ ही देते रहते । देना तो दूर रहा, मागने वालो से बातचीत भी नही करते । उनके इस व्यवहार को सब जानते थे । इतना ही नही बल्कि कहीं दान देना पड़े इस लोभ से वे धर्म सभा मे भी नही जाते ।

उनकी धर्मपत्नी यशोमति स्वभाव मे अच्छी थी । उसकी इच्छा, दान पुण्य करने की रहती थी, पर पति का भय और आतक उसे कुछ नही करने देता था । उसने कई बार यह प्रयास किया कि पतिदेव दान पुण्य के कार्यो मे कुछ भाग ले, पर उसका श्रम व्यर्थ गया । मित्रों ने भी नागदत्त को समझाने की चेष्टा की पर वह हिमालय चट्टान के समान अडिग रहा ।

एक दिन नागदत्त अपने भवन की चित्रकारी का अवलोकन कर रहा था तथा विदेश से आये हुए चित्रकारों को नाना प्रकार के सुझाव दे रहा था । प्रात· का समय था तथा सूर्योदय हुए बहुत ही कम समय हुआ था । बाल रवि की किरणे भूखण्ड को सुवर्णमय बना रहीं थीं । प्रात की इस सुन्दर बेला में भित्ति चित्रों की शोभा कई गुनी दिखलाई पड रही थी । जिन चित्रों में अभी तक रग नहीं भरा गया था, वे खाका चित्र भी सूर्य की रश्मियों के कारण अपनी चमक-दमक से दर्शको का मन मोहित करते थे । सेठ अपने इस वैभव को देख-देखकर प्रसन्न हो रहा था ।

इसी समय एक मुनिराज उसी मार्ग से निकले और जब वे उस सेठ के भवन के पास आये तो उसे देखकर मुस्कुराये । मुनिराज का मुस्कराना नागदत्त को खटका । वह सोचने लगा कि साधु अकारण नहीं मुस्कुराते, कोई बात होनी चाहिए । मुझे देखकर मुस्कुराये हैं । अत. अवश्य ही मेरे सम्बन्ध मे कोई बात है । आज मध्याह्न जाकर पूछूँगा । इस प्रकार थोड़ी देर तक वह सेठ ऊहापोह करता रहा, पर मुनिराज के पास जाकर इस तथ्य को जान लेने की विचारधारा से उसे सान्त्वना मिली और पूर्ववत् काम मे लग गया ।

मध्यान्ह के पूर्व जब चर्या का समय हुआ तो वह साधु उधर ही नागदत्त सेठ के भवन की ओर चर्या के लिए आये । उस समय सेठ अपने पुत्र को गोद में बैठाकर प्यार कर रहे थे । पुत्र ने गोद मे पेशाब कर दिया जिससे सारे कपडे गीले हो गये । मुनिराज इस दृश्य को देखकर मुस्कुराये ।

नागदत्त की पत्नी ने मुनिराज को पडिगाहन किया और उन्हे निर्दोष आहार कराया । आहार कर मुनिराज चैत्यालय मे चले गये ।

नागदत्त को मुनिराज के मुस्कुराने से इस समय भी चिन्ता हुई । उसने अपनी पत्नी से कहा कि इस बात का पता लगाना चाहिए कि मुनिराज मुझे देखकर प्रात भी मुस्कराये थे और अब भी ।

मध्याह्न काल मे नागदत्त की दुकान पर एक बकरा भाग आया और बें बें करता हुआ नागदत्त के चारो ओर चक्कर काटने लगा जो कसाई उस बकरे को लिए जा रहा था उसने कहा कि सेठ इसकी कीमत तुम दे दो, तो मैं बकरे को तुम्हे दे सकता हूँ । यह बकरा तुमसे बहुत प्रेम कर रहा है और यह दुकान से जाना नहीं चाहता है ।

सेठ ने समझा कसाई मुझे फसा रहा है और बकरे की कीमत लेकर यो ही जाना चाहता है । इन लोगो का कोई भरोसा नही इस बकरे को भी देखो, यह मेरे चारो ओर चक्कर मार रहा है । कसाई इसे पकड़ना चाहता है पर बे बे करता हुआ दुकान से बाहर नहीं निकल रहा है । कभी इधर घुस जाता है और कभी उधर मालूम पड़ता है कि यह अब डण्डा खाकर ही यहाँ से भागेगा । अत: सेठ ने डण्डा लेकर बकरे को दो-तीन जमा दिये । बकरा बें बें करता हुआ कसाई के साथ चलने लगा ।

इसी समय सामायिक क्रिया से निवृत्त हो मुनिराज भी मंदिरो के दर्शनार्थ जा रहे थे । संयोगवश वे भी नागदत्त की दुकान के सामने से उसी समय निकले जब कसाई बलपूर्वक उस बकरे को पकडकर ले जाना चाहता था । इस दृश्य को देखकर भी मुनिराज को हँसी आई । उनका यह हँसना भी नागदत्त को खटका । सोचने लगा कि क्या बात है जो कि आज मुनिराज मुझे देखकर तीन बार हँसे हैं ? कोई कारण होना चाहिए । अत मै इनसे हँसने का कारण पूछता हूँ ।

नागदत्त मुनिश्री के पास गया और नमोऽस्तु करने के पश्चात् धर्म लाभ का आशीर्वाद पाकर पूछने लगा-"प्रभो । आज आप मुझे देखकर तीन बार क्यो हँसे है ? हसने का क्या रहस्य था ?

मुनिराज-प्रात काल जब तुम अपनी चित्रशाला मे अनेक प्रकार के चित्र देख रहे थे तब मैं यह सोचकर हँसा था कि इन चित्रो के पूर्ण होने के पहले ही तुम इस पर्याय से चले जाओगे । मोही जीव संसार मे कितना आसक्त रहता है, वह ससार की वास्तविक स्थिति को नहीं समझता ।

नागदत्त-प्रभो । मेरी आयु कितनी है ?

मुनिराज-अब तुम्हारी आयु मात्र सात दिन की है, आज से सातवे दिन तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी । पाँचवे दिन तुम्हारे सिर मे अपार वेदना उठेगी, जिसे बर्दास्त न करने के कारण तुम्हारे हृदय की गति रुक जायेगी और इस पर्याय को तुम छोड दोगे ।

नागदत्त-प्रभो । जब आप चर्या के लिये गये थे तब मुझे देखकर क्यो हँस रहे थे ?

मुनिराज-मैं यह देखकर हँसा था कि जिस पुत्र को तुम इतना प्यार कर रहे थे, जिसके पेशाब करने पर तुम्हारे कपडे भी पेशाब से भर गये थे, फिर भी तुम उसे गोद मे लिये दुलार करते जा रहे थे जब कि यह पुत्र तुम्हारा पूर्व जन्म का शत्रु है और आयुपूर्ण होने पर तुम्हारी सारी सम्पत्ति को नष्ट कर देगा, बडा व्यसनी और जुआरी होगा ।

नागदत्त-प्रभो । मध्याह्न काल में मदिरों के दर्शनार्थ जाते समय क्यों हँस रहे थे ?

मुनिराज-कसाई जिस बकरे को बलपूर्वक ले जा रहा था और जो बकरा तुम्हारे चारों ओर चक्कर काट रहा था और तुम्हारे पास से जाना नहीं चाहता था वह तुम्हारे पिता का जीव था । जब वह तुम्हारी दूकान के बाहर से निकला तो उसने तुमको पहचान लिया और इसीलिए तुम्हारे चारों ओर चक्कर लगाने लगा था । वह अपने प्राण बचाना चाहता था पर आप उसके भाव को नहीं समझ सके ।

मुनिराज के वचनो को सुनकर नागदत्त उस कसाई के घर दौडा-दौडा गया । उसने कसाई को कहा-भाई । मूल्य लेकर उस बकरे को मुझे दे दो ।"कसाई-मैने उसकी अभी थोडी देर पहले

हत्या कर दी है । अब वह इस दुनिया में नहीं है ।" कसाई के इन वचनों को सुनकर नागदत्त को बहुत दुःख हुआ ।

वह मुनिराज के पास आया और कहने लगा-

विभो ! उद्धार का क्या कोई उपाय नहीं है ? सात दिन की आयु शेष रह गई है ।

मुनिराज-"सयम ही आत्म कल्याण में सहायक है । अत· सयम धारण करो । इससे आत्मोद्धार अवश्य होगा ।" सात दिन तो बहुत है । अन्तर्मुहूर्त भी पर्याप्त है ।

नागदत्त ने संयम धारण कर लिया । मुनि बनकर तपश्चरण में संलग्न हो गया । पाँचवें दिन उसके मस्तक मे भयंकर वेदना हुई पर समताभावपूर्वक उसे सहता गया । सातवें दिन वह समाधि में स्थित था, कि उसके हृदय की गति रुक गई और इस पर्याय को छोड़कर उसकी आत्मा चल बसी ।

समाधि और समताभाव के कारण उसने वैमानिक देवों मे जन्म लिया ।

देखिये क्षण भर के लिए साधु की सगति किया तो नागदत्त का जीव स्वर्ग मे गया । इसलिए कहा भी है कि-

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में भी आध ।
मिले साधु की सगति कटे कोटि अपराध ॥

इसलिए इस जीव को अपना हित करना है तो सत्पुरुषों की संगति करनी चाहिए । जिस प्रकार चन्द्र किरणो के सम्पर्क से समुद्र बढ़ता है उसी प्रकार सदाचारी पुरुषो की सगति से मनुष्य का प्रज्ञारूपी समुद्र बढ़ता है । उत्तम जनों की संगति से यह मनुष्य गौरव को प्राप्त होता है ।

संगति बुद्धि की जड़ता को दूर करती है । वचनों में सत्य का सिंचन करती है, सन्मान बढ़ाती है और पाप को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दिशाओं में कीर्ति बढाती है । इतना ही नहीं अपने आत्मा को परमात्मा भी बनाने में सहायक होती है इसलिए जीव को निरन्तर सत्सगति रहना चाहिए ।

१०५ आ. कीर्तिश्री माताजी
शिष्या . श्री १०८ ग आ कुन्थु सागरजी महाराज

अभिनन्दन
आदिसागरजी अंकलीकर स्मारिका

२९-६-८९ को उदगाँव मे श्री चारित्रचक्रवर्ती आचार्य मुनिकुञ्जर सम्राट् श्री आदिसागरजी अकलीकर के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त की-

उनके चरणो मे निम्न प्रकार लिखाना चाहिए-

२०वीं शताब्दी के सर्वप्रथम निर्ग्रन्थ दिगम्बर मार्ग प्रवर्तक श्री परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुञ्जर सम्राट् आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी महाराज अङ्कलीकर के चरण कमल ।

जी के पाटील प्राचार्य

दि जैन बोर्डिंग, हाईस्कूल रोड, सागली

पुन -

देवगौडा बालगौडा पाटील, जिनकी उम्र लगभग ८० वर्ष है, ने बताया कि आदिसागर जी अकलीकर आहार मे एक ही चीज लेते थे । ६ माह तक उन्होने केवल दाल ही ली थी । उन्होने बहुत से लोगो को मुनि, क्षुल्लक आर्यिका दीक्षा दी थी । महावीर कीर्तिजी को तो बहुत पीछे दीक्षा दी थी । कर्णाटक मे ही नहीं पूरे भारत मे वे ही पहले-पहल दिगम्बर साधु थे । उनकी समाधि के समय यहाँ बहुत साधु थे- चारो ओर साधु ही साधु नजर आते थे । ६०-७० से भी अधिक होगे । आचार्य शान्तिसागरजी भी थे । उस समय आचार्य पद कैसे दिया जाय यह प्रचार नही था, परन्तु सभी साधुओ ने उन्हे बडा मानकर आचार्य पद दिया था । जिसे समाधि के समय उन्होने स्वय अपने श्रेष्ठनम शिष्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी को प्रदान किया था । क्योंकि उनके समान ज्ञानी, ध्यानी अन्य उनका शिष्य नही था । वे सभी कार्य शास्त्र पद्धति के अनुसार ही करते थे ।

उनके आहार की व्यवस्था लक्ष्मणराव भरमप्पा आरवाडे सागली करते थे । ट्रेन से आते-जाते थे । उनकी अपनी भी गाडी थी ।

सरस्वती बाई आरवाडे सागली आहार तैयार किया करती थीं । वे पुरुषो से ही आहार लेते थे । उस समय महावीर कीर्तिजी भी पुरुषो से ही आहार लेते थे ।

उन्होंने १३ दिन की सल्लेखना ली थी । १४ दिन समाधि हुई । उनके पेट में भस्मक रोग था । जो खाते भस्म हो जाता था, तो भी मुनिचर्या में पूर्ण दृढ़ रहे, तनिक भी नहीं डिगे ।

उस समय (समाधि धारण करने पर) पुलिस भी आई । यह आत्म हत्या है, हम नहीं करने देंगे । परन्तु उन्होने स्वयं उनको सल्लेखना का मर्म समझाया । सल्लेखना और आत्महत्या में किस प्रकार अन्तर है स्पष्ट बताया । उस समय कोल्हापुर के भट्टारक स्वामी श्री लक्ष्मीसेन जी भी पधारे और समाधि के विषय को स्पष्ट समझाया । उपदेश दिया । सब शान्त और चकित हुए । इन्होंने ही समाधि का मार्ग खोला ।

आपने कहा उस समय आ आदिसागरजी अंकलीकर ही प्रथम पूर्ण दिगम्बर थे । वे ही प्रथम आचार्य हुए और सबसे पहले पहल समाधि मार्ग खोला । स्वर्ग का द्वार खोला । आचार्य शान्तिसागर जी उनकी विशेष भक्ति करते थे । इनकी समाधि काल मे हजारो, लाखो लोग आते-जाते थे । लाखो रुपये दान मे बोले थे । परन्तु यहाँ कोई कर्मठ व्यवस्थापक उस समय नहीं था । इसलिए न तो वसूली हुयी और न ही कोई स्थायी स्मारक ही बन सका । उस समय की बोलिया और दान राशि यदि वसूल हो जाती और कोई अच्छा कार्यकर्त्ता होता तो आज यह स्थान और ही रूप मे चमन बन जाता । उस समय यहाँ केवल एक गुफा थी । एक क्षेत्रपालजी की गुडी थी और एक कोठरी आरवाडे ने चौका लगाने को बनवाई थी । उनके दाह सस्कार के समय एक प्रकार के बाजो की ध्वनि स्वयमेव हुयी थी ।

सरसोबाई आरवाडे (सरस्वती बाई) ने बताया कि-

आचार्य आदिसागर जी ही सर्वप्रथम शुद्ध दिगम्बर हुए थे । उनसे पहले के साधुओ में आहार-विहार आदि मे बहुत शिथलाचार था । वे शरीर से जैसे हृष्ट-पुष्ट थे वैसे ही आत्मबल में भी बलिष्ट थे और वरिष्ठ थे । जिस दिन उन्होने समाधि की घोषणा की उस दिन ढाई किलो मावा मैंने स्वय बनाकर आहार मे दिलाया । मैंने कहा, महाराज, अभी तो आपका इतना अच्छा आहार है फिर सल्लेखना क्यो ले रहे है ? आपने प्रसन्न मुद्रा मे उत्तर दिया "अब स्थिति शरीर त्याग की है, पुष्टि की नही ।" हमे समाधि लेने मे बड़ा भारी आनन्द हो रहा है । वस्तुत. उनकी समाधि चमत्कारी और आश्चर्यजनक हुई । आधे घण्टे पर्यन्त आकाश मे मनोहार ध्वनि के बाजे बजे जिन्हें सभी ने अच्छी तरह सुने । वे सबसे बडे थे । आचार्य शान्तिसागरजी भी उनसे प्रायश्चित लेते थे । निसन्देह वे उनकी भक्ति करते थे ।

आचार्य श्री आदिसागरजी के पूर्व पर्याय के पोता हैं उनका नाम सात गौडा-तोडगौडा पाटील है उन्होने बताया-

मैं अपने पिता के साथ उनके दर्शनो को आता था । वे गुफा मे रहते थे । यहाँ पूरा जंगल था, उनके साथ बहुत से साधु थे । गिनती तो मै नहीं कह सकता । इनकी माता-अर्थात् आ

आदिसागरजी की पुत्रबधू-वृद्धा है-उनका नाम मरुदेवी है उनसे पूछा तो बताया कि आचार्य शान्तिसागरजी को ऐलक दीक्षा दी थी । समाधि के समय ७२ दिगम्बर मुनि थे । अन्य बहुत से पिच्छीधारी थे । समाधि के समय सांगली से मिरज से यहाँ तक आने को फ्री ट्रेन छोड़ दी गई थीं । रोज हजारों भक्त आते थे ।

यहाँ ऊदगाँव निवासी श्रीमान् भरमू चौगले और श्रीपाल दादा मगदूम आये थे । उनसे पूछने पर उन्होंने बताया-यहाँ इतने दिगम्बर साधु थे कि चारो ओर साधु ही साधु दृष्टिगत होते थे ।

(१) पता - देवगौडा, बालगौड़ा पाटील
मु पो ऊदगाँव, ता शिरोल, जि कोल्हापुर ।

(२) ए पी चौगले ऊदगाँव, ट्रष्टी अक्कीवाड़, जयसिहपुरा ।

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य
श्री आदिसागर अंकलीकर

भारत भूमि ऋषियो, मुनियो साधुओं एव महात्माओ की जन्म स्थली ही नहीं बल्कि कर्म स्थली रही है और यहाँ से ही समूचे विश्व को मानव जीवन ही नहीं बल्कि आध्यात्म का सन्देश भी समय-समय पर मिलता रहा । इसी भारत भूमि पर इस सदी के प्रथम आचार्य श्री १०८ श्री आदिसागरजी अकलीकर का जन्म अकली ग्राम में हुआ आप जन्म से ही विलक्षण थे । आपने इस हुंडा सर्पिणी काल मे जब निर्ग्रन्थ गुरुओं की कमी ही क्या कहा जाये बल्कि दर्शन दुर्लभ थे तब ऐसे समय में आपने सिद्धो की साक्षी में निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर धर्म की प्रभावना की और आज जो हम निर्ग्रन्थ मुनियों की पात देखते हैं वह सभी इन्हीं की देन है और आपकी ही परम्परा में वर्तमान मे आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज उन्हीं के पद चिह्नों पर अग्रसर हैं ।

आचार्य श्री आदिसागरजी अकलीकर ने मानव को जहाँ जीने की कला बताई वहीं आप द्वारा सत्य यानि (मरने) की कला को भी बताया है । आज पूरा विश्व आचार्य श्री का ऋणी है । क्योकि जो भी साधु आज हम देखते हैं वह सभी इन्हीं की देन है । इसलिए आज जो धर्म प्रभावना हम करते हैं या मुनियों आचार्यों की सेवा दर्शन से लाभ कमाते हैं उससे हम सभी आभारी हैं उनके कृतज्ञ हैं । ऐसे आचार्य श्री को शत शत नमन है ।

गुरुसेवक :
विशुन कुमार चौधरी, पत्रकार
एम ए एल एल बी

मै सन्मति इन्टरप्राइजेज
51, शाहग्रान, इटावा

वर्तमान दिगम्बर मुनियों की परम्परा में परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री आदि-सागरजी (अंकलीकर) महाराज

सबसे प्रथम परम्परा

(संयम का महत्त्व)

धमप्रेमी बधुओ मनुष्य का मात्र अच्छे कुल में जन्म लेना ही पर्याप्त नही है, लेकिन जन्म लेकर सयम को नहीं अपनाना तो जीवन लेना व्यर्थ है, जिन्होंने अपने जीवन में संयम को अपना लिया उसी का ही जन्म सफल माना जाता है उसके बिना आत्मा का कल्याण कभी भी सभव नहीं है । सयम से मनुष्य कई सकटो से पार हो जाता है एवं सुख सम्पदा भी अपने आप प्राप्त हो जाती है ।

भारत वर्ष को इस बात का महान् गर्व है कि यहाँ प्राचीन समय से संयम एव धर्मोपदेश देने व धर्म का मार्ग बताने वाले सत हुए है । प्राणी मात्र उनका ऋणी है तथा हमेशा ऋणी रहेगा क्योंकि उनके द्वारा कई भव्य जीवो का कल्याण हुआ है और होता रहेगा । उनके द्वारा ही सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र का मार्ग बताया गया है जो कि मोक्ष का साधन है । जिन-जिन भव्य आत्माओं को उन महापुरुषो का उद्‌बोधन प्राप्त हुआ है उनको निश्चित रूप से लाभ प्राप्त हुआ है और उन्होने सयम का मार्ग अपनाया है । हम उन महापुरुषो को वदन किये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने प्राणी मात्र को धर्म का मार्ग बताया एव सयमपूर्वक कष्टो को सहन कर भी अपने सम्यक्त्व से विचलित न होकर स्व पर कल्याण का कार्य किया । जैन धर्म अनादि धर्म है । भगवान् महावीर के आदर्शों को लिए उन्हीं की परम्परा मे कई प्रमुख आचार्य हुए । आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी के पश्चात् इस धरा पर वर्तमान २०वीं शदी के महान् आचार्य श्री १०८ चा च आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) हो गये हैं । आपका जन्म महाराष्ट्र प्रान्त में अंकली ग्राम में हुआ था । माता-पिता का धार्मिक प्रवृत्ति का उन पर प्रारम्भ से प्रभाव रहा । २७ वर्ष की आयु में माता की मृत्यु व इसके पूर्व पिता की मृत्यु व कुछ समय पश्चात् पत्नी की मृत्यु ने उनको संयम का मार्ग खोल दिया । वे संयम के मार्ग पर बढते रहे और एक समय वह भी आया जब उन्होंने मोक्ष मार्ग की प्रथम सिद्धि के रूप में सन् १९०६ में घर बार छोडकर जिनप्पा स्वामी से क्षुल्लक दीक्षा

ग्रहण की कुछ समय पश्चात् स्वयं ऐलक दीक्षा जिनेन्द्र प्रभु के सामने ग्रहण की निरन्तर ध्यान में रहते हुए अपने आप में दृढ़ता से व्रतो का पालन करते हुए मोक्ष मार्ग की अंतिम सीढ़ी मुनि दीक्षा मगसिर शुक्ला २ मंगलवार, १९१३ को स्वय सिद्धो के समक्ष कुंथलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर ग्रहण की । उस समय यह दृश्य सबको आश्चर्य चकित कर देने वाला था क्योंकि उनसे पूर्व में यह दिगम्बर अवस्था प्राय॰ लुप्त सी हो गयी थी । आपने दिगम्बर मुनि दीक्षा ग्रहण कर बताया कि चतुर्थ काल में दिगम्बर मुनि कैसे होते हैं । आप कठोर तपस्वी थे सात दिन में एक बार आहार ग्रहण करना, एक ही वस्तु का आहार करना कोन्नूर की गुफाओं में घटो खडे रहकर तप करना उनका क्रम था ।

आचार्य आदिसागर जी अकलीकर की इस तपस्या से भोजग्राम वासी भीमगौडा पाटील (आ शान्तिसागरजी महाराज दक्षिण) बहुत ही प्रभावित थे वह उनकी काफी वैयावृत्ति करते थे । उनको आहार कराना, रास्ते में गिरने वाली दूध-गगा वैद गंगा नदी को पार करवाना प्रमुख था ।

आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) को आचार्य पद श्रुतपचमी १९१५ मे जयसिहपुर मे समस्त संघ व श्रावको की उपस्थिति मे दिया गया एव चारित्र चक्रवर्ती पद १९१६ मे अकली ग्राम मे दिया गया था ।

आपके आचार्यत्व मे कई दीक्षाएँ हुई जिन मे प्रमुख आचार्य शान्तिसागर जी महाराज दक्षिण ने ऐलक दीक्षा ग्रहण की । समाधि सम्राट आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज ने मुनि दीक्षा ग्रहण की । हम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) के ऋणी हैं । जिनके कारण से वर्तमान मे हमे दिगम्बर मुनियों के दर्शन हो पा रहे हैं । आपने समाधि से पूर्व अपना आचार्य पद समाधि सम्राट आचार्य महावीर किर्तीजी को प्रदान किया जिन्होंने भारतवर्ष में जैन धर्म का डका बजाया । उन्होने भी अपने आचार्यत्व मे कई दीक्षा दीं । उनके योग्य शिष्यों मे आचार्य सन्मतिसागरजी को समाधि से पूर्व अपना आचार्य पद दिया व पट्टाधीश नियुक्त किया । आज वर्तमान मे जगह-जगह जो साधु दिखाई दे रहे हैं उनकी देन आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर की हैं । २०वी शताब्दी के प्रथम व महान् चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) को हमारा बारम्बार त्रिकाल नमोऽस्तु ।

विनीत:—

प वारिषेण जैन "एडवोकेट" एम. ए. एल एल बी.

प्र प्र मत्री महासभा शाखा सूरजपोल दरवाजा

ऋषभदेव (राजस्थान)

प्रधान युगसन्त-मुनि कुञ्जर आचार्य अंकलीकर

इस पञ्चम काल में जहाँ चारो ओर हिसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है वहाँ दु·खद ससार परिभ्रमण से जीव को बचाने वाली सर्वोत्तम प्रक्रिया गुरुभक्ति है । वर्तमान में गुरुभक्ति रूपी नौका मे ससार रूपी विशाल समुद्र को पार कर हम अपने जीवन को सुरक्षित बना सकते हैं । गुरुभक्ति के फल को प्रत्यक्ष घटित दृष्टान्त से भी जान सकते हैं-

कालपी के एक साधु सुआ बाबा के नाम से प्रसिद्ध हैं जिन्होने अपना शरीर १९६२ मे यमुना के किनारे त्यागा था । जिनका आश्रम माउण्ट आबू के जगल मे है, जिसमे कई साधु रहते आये हैं । इसी आश्रम में एक गुरु ने प्रात तीन बजे उठकर देखा कि उनका शिष्य सर्दी से कप रहा है । सही ढग से सो नहीं पा रहा है । तब गुरु ने शिष्य को ओढने को एक कम्बल दिया । दूसरे दिन रात्रि मे शिष्य ने ओढने को कम्बल निकाला और खोला । अचानक ध्यान आया कि पता नहीं गुरुजी का सिर कम्बल मे किस तरफ था । अगर उस छोर को पैर की तरफ कर लिया तो अनर्थ होगा । इसी उधेड बुन मे सोचते-सोचते पूरी रात निकल गई और शिष्य निश्चय नहीं कर पाया कि गुरुजी का कम्बल मे सिर किस तरफ था । प्रात·काल होने पर गुरुजी ने शिष्य को पूछा रात्रि को सर्दी तो नहीं लगी तब शिष्य ने सकोचवश कुछ नहीं बोला । बहुत आग्रह करने पर कहा मैने कम्बल ओढा ही नहीं क्योंकि कम्बल मे आपका सिर किस तरफ रहा होगा, इसका निश्चय नहीं हो सका । यह है दृढ गुरु भक्ति जो संसार समुद्र से पार करने वाली सुदृढ़ नौका है । जब तक गुरु भक्ति की भावना जागृत नहीं होती तब तक शिष्य का उत्थान सभव नहीं है ।

हम, इसी शुद्ध गुरु भक्ति की परम्परा को आज परम पूज्य आचार्य सन्मति सागरजी महाराज में देखते हैं । आपने मात्र अपने दीक्षा शिक्षा गुरु का ही नहीं अपितु परदादा गुरु चा च आचार्य आदिसागर जी (अकलीकर) की पवित्र जीवन गाथा को जनसमूह के बीच प्रगट कर हम भव्यजीवो का चित्त भी गुरु भक्ति की ओर अग्रसर किया है । इसी गुरु परम्परा मे सन्मार्ग दिवाकर आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज, गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज, आचार्य एव स्थविर पद से विभूषित श्री सभवसागर जी महाराज, आचार्य विरागसागर जी महाराज, आचार्य पुष्पदन्त सागरजी महाराज, परम विदुषी प्र गणिनी आर्यिका १०५ विजयमती माताजी के रूप मे अनमोल रत्न समाज को प्राप्त है ।

॥ ॥

विगत कुछ माहों से देखने में आया है कि बीसवीं शदी के प्रथम आचार्य मुनि कुञ्जर श्री आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) एवं उनकी परम्परा को झूठा, चोर, मयाचारी मिथ्यादृष्टि आदि खोटे कुवचनो से तिरस्कृत करने का दु:साहस कर रहे हैं, लेख लिख रहे है । पम्पलेट लेख लिख रहे हैं उनसे सावधान हो जाना चाहिए । ऐसे जो महा तपस्वी साधु सघ का अवर्णवाद करते हैं । पापास्रव को प्रोत्साहन देते हैं, समाज इन मिथ्या बातो को कदापि सहन नहीं कर सकती ।

मैं अपने गुरुदेव आचार्य चा च मुनिकुञ्जर आदिसागरजी के पावन चरणकमलो मे अपनी श्रद्धाजलि अर्पित कर यह ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपका यश, गौरव गाथा एव परम्परा अक्षुण्ण रूप से भारत भूमि पर बनी रहे, अमिट रहे और युग युगान्तर तक भव्यजीवो का मार्ग प्रदर्शन करे । इत्यल ।

हेमन्त कुमार जैन
उपमत्री, इटावा (यू पी)

आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज को विनम्र विनयांजलि संवत् 2025 श्री कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र चातुर्मास में

रचियता–श्री प्रभुदयाल जैन कोविद,
बी ए., एल एल. बी.

पाये पाये दरश योगीराज के रे ।
छाया आनन्द अपार दिन आज रे । पाये–२ ॥ टेर ॥

बूंदा देवी रतनलाल सुत लाडले,
फीरोजावाद जन्मे महेन्दर भले ।
भाववचपन से ही थे विराग के रे । पाये-2 ॥ १ ॥

तत्त्वचिंतक थे स्वाभिमानी अति,
पढने लिखने में थी जिनकी तीव्र मति ।
ज्ञाता व्याकरण ज्योति न्याय के रे । पाये-2 ॥ २ ॥

व्याह प्रस्ताव आया था जब आपका,
दिया ठुकराय जग को असार लखा ।
मुक्ति रमणी को वरने की ठान के रे । पाये-2 ॥ ३ ॥

चन्द्र सिन्धु से सप्तम प्रतिमा धरी,
वीर सिन्धु से दीक्षा की विनती करी ।
लिया क्षुल्लक पद ऋषिराज से रे । पाये-2 ॥ ४ ॥

वर्ष बत्तीस जब है अवस्था हुई,
गाँव ऊदगाँव निर्ग्रन्थ दीक्षा लई ।
आदिसिन्धु आचार्य महाराज से रे । पाये-2 ॥ ५ ॥

जब समाधि गुरु ऊदगाँव हुई,
आपको तब उपाधि आचार्य दई ।
शेडवाल मे मुनि, नृप समाजने रे । पाये-2 ॥ ६ ॥

उपसर्गों का निर्भय किया सामना,
मारवाड में लाठी का वार सहा ।
क्षमा दुष्ट को दी ऋषिराज ने रे । पाये-2 ॥ ७ ॥

वडवानी में थे आप ध्यान मगन,
मधुमक्खियों ने किया छलनी बदन ।
रहे निश्चल दिन तीन ध्यान मे रे । पाये-2 ॥ ८ ॥

पुरलिया मे पत्थर औ लाठी पडे,
साथ में चादमल सेठ भी थे खडे,
सही पीडा औ रत हुए ध्यान में रे ॥ पाये-2 ॥ ९ ॥

गिरशिखर जलमदिर मिला वासना,
घोर मर्दी की रात दी वाहिर बिता
टोक गौतम पे खडे रह ध्यान में रे । पाये-2 ॥ १० ॥

ज्ञान भाषा अठारह का उर में धरे,
शंकाओ का समाधान पल मे करे ।
जहाँ पडते चरण दुख भाजते रे । पाये-2 ॥ ११ ॥

तीर्थ भक्ति भो जिन भक्ति मे अनुपम,
निष्ठ आगम मे हैं पालते यम नियम ।
करते पावन मही सु विहार रे । पाये-2 ॥ १२ ॥

मुख अरविन्द से आप वाणी को सुन,
होते हतप्रभ हैं ज्ञानी, विद्वत जन,
जाये वलि जैनधर्म के ताज के रे ॥ पाये-2 ॥ १३ ॥

शैर– विश्व की उत्कृष्ट और अध्यात्म निधि गुरु आप हैं,
धीर, वीर, महान् और तेजोमयी निष्पाप हैं ।
हैं सुशान्त छवि के धारक, वीतराग, तपोनिधि,
महावीर कीर्ति है प्रभु यश धवल धारक आप हैं ।
चर्ण वदैं गरीब निवाज के रे ॥ पाये-2 ॥ १४ ॥

दिनांक–८–१०–६८

श्री माणकचंदजी पालीवाल के उद्‌गार

मैं माणिकचंद पालीवाल दिगम्बर जैन महासभा का वाईस प्रेसिडेन्ट सकल खण्डेलवाल दिगम्बर जैन समाज या कहिये समस्त वर्ल्ड का अध्यक्ष कहिये सरक्षक और खण्डेलवाल समाज का इतिहास के लेखक हैं-डॉ कस्तुरचद जी कासलीवाल मेरा साथी है । ६३ साल से मुझे मुनियों की सेवा मे रहने का अवसर मिला है । मेरा पुण्य था, सौभाग्य था मेरी माता बडी धर्मात्मा थी और मैं मुनि महाराजो का कमण्डल लेकर चलता था । जिस जैन समाज के अन्दर विद्रोह फूट डालने का, समाज को खण्डित करने का लोगो की चाल थी । पहले महासभा के सामने एक झगडा था वह क्या ? सोनगढ कानजी पन्थ का उस झगड़े में मैं ऐरेस्ट हुआ जिसका बम्बई के अन्दर विवाद हुआ मेरे पास उसका वी डी ओ कैसेट तैयार हुआ है । जो ओरंगाबाद वाले पीउस जैन, ताराचद जैन, भरत काला मेरे साथ ऐरेस्ट हुए । कस्तूरचन्द वे भी ऐरेस्ट हुए इस तरह हम लोग ३३ आदमी ऐरेस्ट हुए । उसी शृखला के अन्दर जब आचार्य महाराज का नागपुर में उपसर्ग आये उसका भी निराकरण हुआ । दाहोद मे भी निराकरण हुआ जब हम कोटे में भी थे कोटे के इतिहास में महाराज के चरण सानिध्य में मीटिंग हुई वैसी मीटिंग आज तक नही हुई । सारा समाज दिगम्बर श्वेताम्बर तेरापथ बीसपन्थ एक जगह ७१ हजार समाज के व्यक्ति उस जगह पर थे और महाराज के सान्निध्य मे चरणों मे मैं उस वक्त उस काल मे बाबूलाल पाटोदी, अशोक साहू, रतनलाल गगवाल, निर्मल कुमार सेठी सबको हमने एक स्टेज पर हमने माला पहना कर मुनि निन्दा नहीं करने का नियम किया । मुनियो की सेवा करेगे भक्ति करेंगे । मुनियो को बिगाड़ने की बात कभी नहीं करेगे । पालीवाल कम्पाउण्ड मे भी हमने एक कमरे मे बैठकर यह निर्णय लिया था सारी इण्डिया के टीम स्तर पर क्योंकि निर्मल कुमारजी सेठी को हमने अध्यक्ष इसलिए बनाया कि महासभा सो गयी थी फिर जागृत किया । मगर कोटा में १२ साल के अन्दर ९७ नये मन्दिर बनाये १७ नये मन्दिर बनाकर यह नहीं कि उनमे नयी मूर्ति बने इसलिए नहीं कि मन्दिर मे मूर्तियाँ रखने की जगह नहीं मिलती । पूजा भी चालू की परिस्थिति आई । उसके बाद मेरे पास एक आगम सेवक की चिट्ठी आई और लिखा पालीवाल जी आप अपनी राय लिखे । मैंने कहा अरे यह तो गजब कर दिया । एक महासभा का आदमी होकर शान्तिलाल बड़जात्या ने मेरे पास यह चिट्ठी कैसे लिखी । वो महासभा का मालिक ही बन गया और इसके अलावा जब ये आदिसागर जी और शान्तिसागर जी के झगड़े का विवाद पैदा हुआ तो आल इण्डिया की सिद्धान्त संरक्षिणी सभा के पी यू. जैन के वहाँ शादी थी, वहाँ अध्यक्षता मेंहुई और यह बम्बई के अन्दर मिटींग हुई । उस मिटींग

के अन्दर मैं भी मौजूद था जहाँ लूहाडिया जी, माणिकचंद वीरचद भी था और भरतकाला, उम्मेद मल जी पाण्डीया निर्मल कुमार जी सेठी भी थे, त्रिलोक चदजी कोठारी भी थे और मैंने यह कहना निश्चय किया क्योंकि हम गुमराह हो गये थे । गलती पर हो गये थे । क्योंकि हमारे यहाँ एक आदमी था लाधू लाल सोगानी उनको अपनी कहने का किताब छपवाने का शौक था । इसके ऊपर विरोधी बन गये गाँव का आदमी । हमारे मोहल्ले का था, हम भी विरोधी थे । लेकिन हमने जब इसका एनालिसिस किया तब मैंने कहा इसकी खोज की जाय । खोज करने पर देखिये अकलीकर गाँव में ५०० घर जैनीयो के हैं और भी बाहुवली से इचलकरण जी होकर जो सागली जाते हैं जैसिंहपुर रोड से होते हुए मैनरोड से चार मील अन्दर मे जाकर के कुञ्जवन आता है । उस कुञ्जवन (ऊदगाँव के पास में अकली गाँव आता है वहाँ ५०० घर हैं ऊदगाँव के पास कुजवन में भगवान महावीर का काच का मन्दिर बना हुआ है उसके अन्दर आदिसागर अकलीकर महाराज की जो छत्री बनी है उस छत्री को हमने देखा उस पर जो लिखा है उस विषय मे उन्होने विवाद कहा उस पर कुछ लिखा न था पर उन्हे कुञ्जर मुनि कहते थे । मुनि कुञ्जर सम्राट कुञ्जर कहते थे-आचार्य आदिसागर जी को । आचार्य आदिसागर जी आठ दिन मे एक बार आहार को आते थे ५ किलो खाकर या एक ही चीज लेते थे जो उनका छिलका निकाल कर-गुठली निकाल कर पाँच किलो खारक घी भर का आहार करते थे । जब गन्ने का रस लेते तो वही लेते थे ये सब चीजें थी वहाँ जो हमने वहाँ के बिल्कुल पुराने आदमी थे जो जयसिहपुर के जो उनके दर्शन करने आते थे ८०-८५ साल के उन्होने बताया । मैं तो मराठी नहीं जानता मेरी लडकी का लडका था मैने उससे पूछा, उसने कहा उस समय कोई साधु बस्ती के अन्दर नहीं जा सकता था आदिसागर जी के समय टाइम मे सबको बस्ती मे जाने की बदिश थी । कर्नाटक मे दिगम्बर साधु गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया सरकार का प्रतिबन्ध था कि नगर व गाँवो मे कोई भी साधु रोड पर चल नहीं सकता था किन्तु कर्नाटक के चिक्कोडी जिले मे आ जा सकते थे इसलिए चिक्कोडी के आस पास के गाँव मे जाते-आते थे घूमते थे, अर्थात् वहीं आस-पास के जगल मे रहते थे । आठ दिन मे कभी एक बार आहार लेने आते थे ।

हम भोज गाँव मे गये वहा सिर्फ एक ही घर जैन का था जो कि श्री शान्तिसागरजी महाराज के समय मे वहाँ पञ्चकल्याणक करवाया था । उनसे हमने पूछा तो उन्होंने ''आचार्य शान्तिसागर जी जो आदिसागर जी 'अकलीकर' को यहाँ लाते थे और बड़ी श्रद्धापूर्वक उन्हे आहार देते थे-श्रद्धापूर्वक उनको मानते थे, उन्होंने बताया । उसके बाद जब हमने इनक्वारी की तो मालूम हुआ और हमने जब पूछा साहब कितने चौके थे, कौन-कौन ब्रह्मचारीणियाँ थीं तो बताया कि महाराज शिखरजी मे जो जो थे वे सब थे उनके नाम भी बताये पर नाम तो मैं भूल गया । पाँच छ चौके थे । यहाँ कोई चौके नहीं थे तो मैने पूछा आहार की व्यवस्था कौन करता था कैसे होती थी तो बताया सांगली की बाई सरस्वती आरवाडे व्यवस्था करती थी व उन्हें आहार देती थी । हम सरस्वती बाई के घर गये सांगली मे उसके घर का पता ढूंढने में 2 घण्टे लगे तो देखा ९६ साल की

एक बुढिया बहुत वृद्ध घर के अन्दर बैठी थी । उसने कहाँ आदिसागर जी जिस समय थे कोई साधु बस्ती में आ नहीं सकता था आचार्य महावीर कीर्तिजी को दीक्षा दिया । हमारे यहाँ ऐसा नियम है कि ३ दीक्षा जो साधु देता है । उसके बाद वे आटोमेटीक आचार्य हो जाते हैं, अभी हाल में १६ आचार्य वर्तमान में है ।

उसके बाद मे क्या हुआ ?

आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने चार-पाँच दिन का अनशन किया । अनशन करने के बाद नग्न साधुओं के आने पर से प्रतिबन्ध पाबन्दी सरकार ने हटा दी । पूनमचंद घासीराम उत्तर भारत में सघ लेकर आये और जब ब्यावर में चातुर्मास किया । ब्यावर मे उपसर्ग भी हुआ । ब्यावर मे उपसर्ग यह हुआ कि ब्यावर से कालू गये महाराज को हमारी ब्यावर समाज जाने नहीं दे रही थी और महाराज चले गये । ९ मील आगे । बर के पास जालीयाँ का चौक गये । उस दिन महाराज निमाज में लायें । फिर उस दिन नशिया में चोरी हो गयी । उस चोरी के अन्दर नाम था रामपाल का भाई नेमीचद का । भाई कुए में गिरकर मर गया । उस समय श्वेताम्बर साधुओं का जोर था और सारे दिगम्बरी श्वेताम्बरियो को मानते थे सारे दिगम्बरी भी इन महाराज नाना राज जी महाराज, जवाहर लाल जी महारज, चौथमलजी महाराज इनको मानते थे । फिर सघ आया अजमेर के अन्दर तो बडा भारी उपद्रव हुआ सेठ का पुतला भी जलाया व महाराज श्री को अपशब्द भी बोले ।

अब जो यह विवाद जो पैदा हुआ है आदि सागरजी को लेकर यह सब एक-दूसरे को भिड़ाने का आग लगाने की बात है । ब्यावर मे सघ पधारा तो उस समय गणेशलाल जी रानी वाले भी हमारे साथ थे । वे हमारे साथ आने वाले थे उनकी तबीयत खराब होने से वे आये नहीं । तो इन सब जानकारियो के लिए किसी को भी किसी प्रकार की शंका हो तो मेरे पास बैठकर मुझसे पूछें । मैं पूरी तरह से जबाव देने को तैयार हूँ और इस विवाद को किसी प्रकार से समाप्त करना है । आचार्य महावीर कीर्तीजी के शिष्य कनकनन्दी महाराज हैं कल उनको बीर मे हमने सुना और कुन्थुसागर जी महाराज के जितने शिष्य हैं और अभी नेमी सागर जी महाराज जिन्होने आ शान्तिसागर जी महाराज के साथ-साथ चातुर्मास किये थे वे लखनऊ में मौजूद हैं । कोई आदमी गहराई में जाता नहीं जो आया समाज में बोलते हैं । मैं यह चैलेंज करता हूँ जिन्हें इस विषय में जो भी शका है उनके समाधान चार आदमी मेरे पास आयें मेरे साथ चले मैं बम्बई से गाड़ी लेकर स्वयं की जिम्मेदारी और स्वयं के खर्च पर ले जाकर उनकी शंका समाधान कराऊँगा ।

इनके पास प्रमाण तो कुछ है नहीं दो चार आदमी प्रचार करने वाले प्रचारक हैं तो बहुत हैं और लगन से सच्चाई का प्रचार करने वाले बहुत कम हैं । समर्पण की भावना से कार्य करने वाले हमारे यहाँ कम हो गये । इस भावना की कमी होने से यह विवाद समाज में विवाद मचा है चारित्र चक्रवर्ती समाधि सम्राद् के विषय में मेरी बात हुई आचार्य विमल सागरजी से उन्होंने कहा

देखो पालीवाल जी मुझे दीक्षा दी आ महावीर कीर्तिजी ने और मैने दीक्षा दी है सन्मति सागर जी को । अब आ महावीर कीर्तिजी ने अपना आचार्य पद दिया है सन्मति सागर जी को । वह महान् परम तपस्वी हैं उनकी क्या बात करते हैं आप ? मैंने कहा बीच मे, महाराज आप लिखकर दीजिए । उन्होंने मुझे लिखकर आदेश दिया है । इसी तरह विमलसागरजी किसी की बात को मानते नहीं हैं किन्तु मेरे अनुरोध पर उन्होने लिखकर मुझे दिया है । उसी प्रकार मेरी आ विद्यासागर जी से बात हुई, कोमलचन्दजी तो सघ सचालक हैं । संघ की देखभाल करते हैं । उन्हें ७० लाख रुपये दिये । ५ हजार आदमियों के समक्ष रथोत्सव के समय स्टेटमेन्ट उन्होने लिखकर दिया कि आ आदिसागरजी के विषय मे चर्चा हुई तो उन्होने कहा आ आदिसागरजी पहले हुए हैं । आचार्य शान्तिसागरजी बाद में । दोनो परम्पराये चली आ रही हैं यही अभी कोई जानता नहीं । उत्तर भारत में आदिसागरजी आये नहीं । जो विचार धारणाए बन जाती हैं, वे मिटती नहीं उन्हें मिटाने में बहुत परिश्रम करना पडता है । एक तो जिद्दी हो जाते हैं कोई साथ चलने में तैयार होते नहीं, खोजबीन करते नही, इस प्रकार श्रम करने वाले हमारी दिगम्बर जैन समाज मे खण्डेलवाल हजारो समाज के विद्वान हैं पर इस विषय मे खोज करने वाले नहीं । ऐसे कर्मठ आदमी नही है ।

अजमेर मे सन् १९५० में ४५ वर्ष पूर्व ५०वी हीरक जयन्ती मनायी शान्ति सागरजी महाराज की उस वक्त जैन गजट का एक अंक निकला 'भला' उसके पेज न ७५ पर लिखा कि शान्तिसागरजी, आदिसागरजी अकलीकर को आहार देते थे । उनकी सेवा करते थे गृहस्थ अवस्था मे ।

मैं नाम लेना नहीं चाहता हमारे कुछ भाइयो के हाथ हैं हस्तिनापुर मे आपको मालूम नहीं ज्ञानमति माताजी के साथ क्या हुआ ? सन् ८५ के अन्दर ७० जैनी थे वर्द्धमान सागरजी विहार कर गये, यदि शिखरचदजी न होते तो विहार करना मुश्किल पड जाता । जो अपनी दूकानदारी चलाना चाहते है ये महान् पाप के भागी होगे । उमे सजा जरूर मिलेगी । यहीं स्वर्ग है और यहीं नरक है । आपको मालूम होना चाहिए २६ जनवरी, १९०७ में अब्राहिम लिकन अमेरिका का राष्ट्रपति को उसके सेक्रेट्री ने गोली मारी । यही स्वर्ग नरक है इसी तरह हमारी समाज पर भी होना है । जो हमारे साधुओ और गुरुओ को सतायेगे अपवाद करेगे तो समाज अपवाद करने वाले नष्ट हो जायेंगे इनका सगठन नष्ट हो जायेगा । ॰ पर ससार थूकेगा । बिल्कुल ठीक है । मैं इस चीज का विरोधी हूँ कि मैं खुद भुक्तभोगी हूँ । मैने बहुत उतार-चढाव देखे-मैं एक-एक पैसे का मोहताज हो गया था । आज चमत्कार को नमस्कार है । जो अच्छा करता है उसे अच्छा मिलता है । आज विमल सागरजी के पास क्यो दौडे जाते हैं ? उनकी बोलियाँ ३-३ लाख, २-२ लाख १-१ लाख में क्यों लगती है । ये दूकानदारियाँ यहाँ नहीं है । अपने युग में ये भी हैं और वे भी हैं अपने योगीन्द्रसागरजी हैं और सुधर्मसागर जी भी हैं ये अपने इनको अनुमान से समझ लीजिए इन्हे इनके गणधर समझ लीजिए । किसके ? इनके किनके ? नाम बोलिये । सन्मति सागर जी महाराज के । महाराज तो यह नहीं कहते कि तुम सम्मेलन करो, तुम इनको बुलाओ । ठीक है इनकी तपस्या मे इनको लेकर यदि

हम इन्हें किसी प्रकार की वेदना उत्पन्न करते हैं तो हम महापापी हैं । मैं समस्त समाज से अपील करता हूँ कि ये हमारे चलते फिरते तीर्थ हैं । ठीक है इनके विषय में किसी प्रकार का हम विवाद न करें । इतने शब्दो के साथ मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि इस विषय को समाप्त करें । मैं समर्पण की भावना से बोल रहा हूँ । किसी दबाव से नहीं । मैं भक्ति में इधर भटकता आ गया हूँ मैं किसी से चन्दा-चिट्ठा लेता नहीं ।

आचार्य आदिसागरजी की समाधि के समय संघ में कितने साधु थे ? होंगे कोई ४०-४५ आचार्य आदिसागर जी अंकलीकर के संघ में । जिनकी समाधि हुई उसके चार घंटे पहले आचार्य शान्तिसागरजी चले गये थे । क्योंकि यह मुझे बाहुबली सागरजी ने चितरी में बताया था । वहाँ पर जो बाजे बजे थे देखिये जो अपोजिट पार्टी होती है वह उसे विकृत कर देती है । इस दैविक चमत्कार को वे कहते हैं कि आदिसागरजी को दाह हो गयी थी वे वेदना से घबरा गये यह बात किसी को पता न चले इसके लिए बाजे बजवाये । पर यह सर्वथा असत्य है ।

यदि दैवी चमत्कार नहीं होता तो लालूप्रसाद यादव मुख्यमंत्री बिहार, सम्मेद शिखरजी कैसे जाता । इन्दिरा को वापस प्रधानमंत्री पद कैसे मिल जाता ? यह इन साधुओं के आशीर्वाद से ही, आज ये हमारे मोदीजी हैं मामले के अन्दर धर्मसागर जी को वहाँ ले गये । समाज आज इनके आगे क्यो पचडे में पडे हैं । अरे अभी क्या इस झगड़े में क्या पड़े हैं । मैं भी समाज का आदमी हूँ । मैं सभी से अपील करता हूँ, इस विवाद को छोड़कर सब साधुओं के आहार-विहार को सुन्दर व्यवस्थित करें और अपने पैरो मे अपने आप कुल्हाडी न मारें । क्योंकि यह जगह का करेन्ट फर्क पड़ता है । क्योंकि हमारी कोठी में अन्दर सनत्कुमार ले गया था, कन्धे पर माँ-बाप को और लोग कहने लगे मारने को । इसी अजमेर की धरती पर । पृथ्वीराज चौहान जयचंद का भाई था ? नहीं चचेरा भाई था, हाँ तो इसी अजमेर में उसे मरवाया धोखे से, यह धरती का दोष असर है महाराज । हमारा दोष नहीं सयोग की बात है । इस प्रकार का कलक हमारी समाज को नही लगे । महाराज आप तो अपनी तपस्या के अन्दर कोई बाधा नहीं लावे यही हमारी प्रार्थना है । मोदी जी भी आ गये हैं । बस ।

हाँ एक प्रश्न और है माणिकलाल जी साहब ? क्या ? आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर ने आचार्य शान्तिसागरजी को ऐलक दीक्षा दी थी ?

इस विषय मे हमने उस समय खोज की नहीं । लेकिन उनको दूध गंगा वेद गगा नदी पार शान्तिसागर जी ग्रहस्थ अवस्था में कराते थे । ये सब तो पूर्ण प्रमाण मिलते हैं तमाम सम्यग्ज्ञान से, पूजा की किताबों से उन्हें आदिसागर अंकलीकर ने ऐलक दीक्षा दी । वे उनको आहार दिया करते थे । यह तो पहले की बात है । इसके पहले कोई साधु ही नहीं था कौन देता ? उन्हीं ने दी होगी । क्यों उस समय के पूज्यनीय सबसे बड़े आचार्य आदिसागरजी 'अंकलीकर' ही थे ।

प्रश्न-महासभा में इस बात की चर्चा चल रही है ?

महासभा में इस बात की चर्चा चलाने वाले हमारे वे ही लोग हैं जो महासभा को पूरा रुपयों का हिसाब नहीं देते । महासभा क्या करे महासभा अजमेर में आकर सो गयी है । ये धर्मचंद जी मोदी भी थे इन सब लोगों ने चर्चा की थी ।

हमारा तो काम इतना ही है कि सेवा करना, आहार की व्यवस्था करना और धर्म की पताका की जय बोलना । सत्य सत्य है और सत्य सत्य ही रहेगा । सच्चाई बनने में देर लगती है । झूठ जल्दी पनप जाती है । यह बात विवाद की इसलिए बन गई कि उत्तर भारत मे उनका विहार-प्रचार नहीं हुआ ।

प्रश्न-विवाद क्यो है ?

विवाद तो है नहीं विवाद तो पैदा किया जाता है । आचार्य श्री आदिसागरजी ने महावीर कीर्तिजी महाराज को आचार्य पद दिया, महावीर कीर्तिजी ने सन्मति सागरजी को आचार्य पद दिया । यही बात आचार्य विमल सागरजी महाराज कहते है । उन्होंने लिखकर भी दिया है जो मैंने आचार्य सन्मति सागरजी को दिया है । उसे प्रसारित कर दीजिए ।

मोदीजी-आचार्य आदिसागरजी 'अकलीकर' को लेकर जो वाद-विवाद किया जा रहा है या हो रहा है उसका कारण लोगो को यह भ्रम फैला है कि इस प्रचार से आ शान्तिसागरजी की गरिमा व महता को कम किया जा रहा है पर दृष्टिकोण यह है नहीं । चा च आचार्य आदिसागरजी की परम्परा भी ठीक है आचार्य शान्तिसागरजी की भी ठीक हे और यह भी सत्य है कि आचार्य आदिसागर जी की परम्परा प्रथम है यह भी सत्य है । अब विवाद का कुछ विषय नहीं है, विवाद तो करने का लोगो का स्वभाव पड गया है ।

दिनांक ३-२-९४ को टेप रिकार्ड केसिट के आधार से ।

पदम कुमार कासलीवाल
आनन्दपुर कालू (राज)

परम पूज्य आचार्य आदि सागरजी महाराज के चरणों में-श्रद्धासुमन

व्याख्यान वाचस्पति–सत्यंधर कुमार सेठी उज्जैन
वाणीभूषण–प्रधान सचालक अखिल विश्व जैन मिशन एव
उपाध्यक्ष अ भा दिगम्बर जैन परिषद् ।

माननीय परमपूज्य सन्मति सागरजी महाराज के सघस्थ ब्रह्मचारी मणिलालजी के पत्र से ज्ञात हुआ कि परमपूज्य आचार्य १०८ श्री आदिसागरजी महाराज अकलीकर की पुण्य स्मृति में उनके प्रतिश्रद्धा प्रकट करने के लिए एक स्मारिका प्रकाशित की जा रही है । यह एक सत्य प्रयास है । क्योकि संत जीवन से मानव को दो प्रेरणाएँ मिलती हैं जिससे जीवन का निर्माण होता है । परम पूज्य आचार्य आदिसागर जी महाराज एक तपस्वी और महान् प्रभावक सत हुए हैं । जिनकी परम्परा आज भी जीवित है और उनकी परम्परा के शिष्य आचार्य सन्मति सागर जी महाराज द्वारा उत्तर भारत में काफी धर्म प्रचार हो रहा है । आचार्य आदि सागरजी एक दक्षिण भारत के संत थे । उनका उदय परम पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के पहिले हुआ है और उनके पीछे आचार्य शान्तिसागरजी महाराज संत जीवन में आये हैं । दोनों ही संतों के जीवन से जैन धर्म का प्रचार और प्रसार अपूर्व ढग से हुआ है । आज उन्हीं महान् संतों की देन है जिसके कारण उत्तर भारत मे जगह-जगह दिगम्बर जैन सतो के दर्शन हो रहे हैं और धर्म की बडी प्रभावना हो रही है । मैं पाठकों को इस विवाद में नहीं उलझाना चाहता कि कौन किसके शिष्य हैं । हमें तो यह मानना है कि दोनों ही सतों का आदर्श जीवन था और उनके द्वारा दिगम्बर जैन धर्म का अपूर्व चमत्कार हुआ है । छोटा-बड़ा व शिष्य प्रशिष्य का विवाद निरर्थक है । संत न छोटे होते हैं और न बडे । उनका जीवन तो साधनामय होता है और ज्ञान ध्यान तप ही उनके जीवन का लक्ष्य होता है । वर्तमान मे जो विवाद इन दोनो सतो को लेकर चल रहा है वह बड़ा निरर्थक है । मैं उन सबही संतो व समाज के नेताओ की सेवा में विनम्र निवेदन करता हूँ कि वे इस विवाद को इस पुण्य अवसर पर खत्म कर दें । इस विवाद से मानवता कुंठित होती है और विशाल जैन शासन में यह संदीर्णोत्तर उपेक्षणीय है । मैंने तो शास्त्रों में यह पढ़ा है कि हमारे यहाँ पूजा वीतरागता की ही होती है । हमारे यहाँ गुण पूजा है छोटे बड़े की नहीं । सतो का जीवन साधनामय होता है और हमें उन्हीं के पथ चिन्हो पर चल कर आत्म कल्याण करना है । परम पूज्य आचार्य आदिसागरजी महाराज इस युग के आदर्श तपस्वी एक मात्र सत थे । उन महान् आत्मा के चरणों मे श्रद्धा सुमन अर्पित करता हुआ मैं अपने आप को धन्य मानता हूँ ।

प. पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री 108 आदिसागरजी (अंकलीकर) महाराज

श्री १०८ आ महावीर कीर्तिजी महाराज के शब्दो मे महान तपस्वी सम्राट्

卐 मेरी स्मृति 卐

सयोग व समय की बात है कि आचार्य श्री १०८ वीरसागरजी महाराज को समाधि के दिवस पर मै जयपुर पहुँचा । श्री प इन्द्रलाल जी शास्त्री जी के घर पर ठहरने से उनके साथ ही खानिया पहुँच गया । शास्त्रीजी के सहयोग से साधु परिषद् के मध्य जाने का अवसर मिला । उस समय वहाँ तीर्थभक्त शिरोमणि प पूज्य श्री १०८ आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराजजी का सघ भी विद्यमान था । आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज स्वर्गस्थ हो गये अब उनके पद पर किसे आसीन किया जाय इस विषय की चर्चा चल रही थी ।

उपस्थित उभय संघ के समस्त साधु-साध्वियो की एक प्रबल आकाक्षा व मन्तव्य था कि प पू १०८ आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी को ही स्व श्री वीरसागरजी आचार्य का पट्टाधीश बनाया जाय । सभी श्रेष्ठीवर्ग और विद्वद्वर्ग की भी यही चाह थी । फलत श्री १०८ आ महावीर कीर्तिजी से चतुर्विध सघ ने प्रार्थना की । परन्तु पद लोलुपता से अति दूर निस्पृही, वीतरागी, ख्याति, पूजा, लाभ चाह विहीन आचार्य श्री ने स्पष्ट शब्दो मे कहा ''भई, मेरे पास तो आचार्य पद मेरे स्वर्गीय गुरुवर आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज का पहले से है जो कि दक्षिण के अंकलीकर महान् त्यागी, तपस्वी, दिगम्बरत्व की शुद्ध परम्परा के प्रचारक थे । गुरु का पद सम्हाले रहने पर दूसरा पद कैसे लिया जाय ? उचित यह है कि उनके सघस्थ अन्य योग्य साधु को उत्तराधिकारी बनाया जाय ।'' अच्छा हो कि मुनि श्री १०८ शिवसागर जी को उत्तराधिकारी बनाया जाय । तदनुसार आपने ही स्वयं मुनि श्री शिवसागरजी के आचार्यपद के संस्कार कर उन्हें पट्टाधीश बनाया ।

पूज्य आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज अपने आराध्य प पू गुरुवर्य का महान श्रद्धा, भक्ति व गौरव के साथ पद-पद पर स्मरण करते थे, उनकी जय ध्वनि के साथ ही प्रवचन, धर्मोपदेश करते थे । प्रसंगानुसार धर्मोपदेश में उनके आदर्शों व विशेषताओं का उल्लेख करते थे । उनके जीवन काल की घटनाओ का उल्लेख करते थे । उनके कठोर तप, व आदर्शों की प्रशंसा भी

किया करते थे । आचार्य श्री व सघ की वैयावृत्ति औषधि, उपचारार्थ मुझे फिरोजाबाद, महावीर जी, गजपन्था, मागीतुंगीजी, गिरनार, हम्मुजपद्मावती, आदि अनेक क्षेत्रों में जाने का अवसर मिला । आचार्य श्री के मुखारविन्द से उनके गुरुदेव आचार्य श्री के संस्मरण मैंने श्रवण किये हैं । अपने गुरुदेव के प्रति उनकी भक्ति व श्रद्धा बेजोड़ थी । १८ भाषा-भाषी, आर्ष परम्परा पोषक, आगम के कट्टर श्रद्धालु, अपनी गुरु-परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने की इच्छा से आपने अपनी समाधि के पूर्व ही अपने गुरुदेव के सदृश अपना पद मुनि श्री १०८ सन्मति सागर जी को प्रदान किया । ये आपके पद को अलकृत करते हुए अपने दादागुरु आ श्री आदिसागरजी (अंकलीकर) के त्याग, तप, संयम व साधना की घटनाओं का उल्लेख करते हैं । यह हमारा परम सौभाग्य है कि आपके तृतीय पट्टाधीश श्री १०८ आ सन्मतिसागरजी व आर्यिका प्रथम गणिनी १०५ विजयमतीजी माताजी के द्वारा उनके दादागुरु के जीवन की विशेषताओ का परिचय प्राप्त कर रहे हैं । आप प्रवचनों के सदर्भों व पुस्तको मे लिखित रूप मे उल्लेख कर तथा अकलीकर वाणी के माध्यम से साधु वर्ग व समाज को यथोचित, सत्य, यथार्थ जानकारी देते रहते हैं ।

वस्तुस्थिति पर विचार किया जाय, गुरु शिष्य परम्परा में वही शिष्य आदर्श है जो अपने दीक्षा, शिक्षा गुरु व दादागुरु के स्वर्गस्थ होने पर भी उनकी जीवन घटनाओ का संस्मरण करता कराता रहे । उनके पद चिन्हो पर चले और चलावे ।

प पू आचार्य परमेष्ठी श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) के जीवन व विशेषताओं, आदर्शो का वर्णन मुझे शक्य नही । मैं श्रद्धा, भक्ति व विनयपूर्वक उनके पावन चरणाम्बुजों में अपनी सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ । वे ससार सागर से पार करने मे समर्थ नौका हैं ।

ते गुरु मेरे उर वसो, जे भव जलधि जहाज

आप तिरें पर तारहिं, ऐसे श्री मुनि महाराज ॥

२०वीं शदी के प्रथमाचार्य श्री १०८ आ चा च आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) की

जय

卐 卐

डॉ. महावीर प्रसाद जैन
B A B L M S आयुर्वेदाचार्य
रजिस्टर्ड मेडिकल प्रेक्टिश
श्री महावीर फार्मेसी, सदर बाजार (निकटथाना) मेरठ-१

श्री 108 आचार्यवर्य महावीर कीर्तिजी का आचार्य पद समारम्भ

श्री १००८ अतिशय क्षेत्र रत्नपुरी शेडवाल में मगशिर सुदी दशमी स्थिरवार (शनिवार) ता ११ १२ ४८ को स्वस्ति श्री आचार्य मुनिकुञ्जर समाधि सम्राट् १०८ आदिसागरजी (ऊदगाँव) महाराज के परम श्रेयाग्रगण्य शिष्य स्वस्ति श्री प्रात स्मरणीय परम पूज्य चारित्र चूडामणि तपोनिधि विद्वद्वर्य यतीन्द्र न्यायाचार्य १०८ महावीर कीर्तिजी (ज्योतिष विज्ञान, वैद्यशास्त्री, निमित्त शास्त्रज्ञ, B A N A) महाराज को, स्वस्ति श्री वयोवृद्ध मुनि पुगव परम पूज्य तपोरत्न १०८ श्री मल्लिसागर जी महाराज, स्वस्ति श्री चारित्र चूडामणि प पूज्य १०८ जयसागरजी महाराज, स्वस्ति श्री परमपूज्या जिनमती आर्यिका, क्षु १०५ जयसेन जी, क्षु १०५ पुष्पदन्त जी, क्षु १०५ श्री आदिसागरजी बाल गौडाजी (आ श्री शां आ मत्री), ब्र जिनदासजी, श्रवण बेल गोला के पडित पौम्मय्या जी दे पा प, श्री प पार्श्वनाथजी, और यहाँ के दो प्रमुख पटेल-श्री आदि गौडा पटेल जै आ दि श्री अण्णा गौडा पटेल और दिग्देशस्थ समस्त श्रावक श्राविकाओ ने मिलकर आपको, आपके गुरु महाराज से प्राप्त आचार्य पद पर, बहिरङ्ग मे भव्य सुमनोहर साक्षात् समवशरण विभूति राजित रत्नत्रयी पुरी १००८ श्री त्रिकाल जिन मदिर भव्य मडप में, चतुर्विध संघ की उपस्थिति मे प्रात· ९ बजे धनुर्लग्न मे, आचार्य पद स्थापना मंत्र पूजा विधि के सात प्रतिष्ठित किया। उसी समय आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज को अधिकार पत्र और सि शा वा पा प पौमय्या जी रचित भक्ति रूप मालिका स्तुति सुमन अर्पित किया गया। इस समारम्भ में करीब दो हजार जैन जैनेतरों ने भाग लिया था जिससे समारम्भ को विशेष वैशिष्ट्य प्राप्त हुआ। अत मे आचार्य श्री के सदुपदेश होने के बाद श्री प्रसाद के साथ बड़ी धूमधाम के साथ समारोह समाप्त हुआ।

(जैन दर्शन ३१-१-४९)

युगों युगों तक पूजित-प्रथमाचार्य श्री आदिसागरजी (अंकलीकर)

बन्धुओ । ''सिह जैसी पराक्रमी आत्मा, जो पूर्ण शक्ति का प्रयोग कर कर्म बन्धनों को खोलने मे सलग्न है, जो न धन की चिन्ता करता है, न नाम की, वह व्यक्ति ही संसार को हिला डालने को पर्याप्त होगा।'' यह शब्द किसी विद्वान् ने कहा है और ऐसी ही पवित्रात्मा बीसवीं शदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) जी थे । आप भीष्म जैसे दृढ प्रतिज्ञ थे । गगा को पृथ्वी पर उतारने वाले राजा भागीरथ और समुद्र को पी जाने वाले अगस्त्य ऋषि से भी अधिक शक्तिशाली थे । आपने दिगम्बर मुनि परम्परा को चला कर आत्मा की अमरता, परम निर्भयता का सदेश सारे ससार को दिया । आज विशाल जैन समाज इनके द्वारा लगाये पौधे को वृक्ष के रूप मे देख रहा है । उसकी छाया आशीर्वाद के रूप में प्राप्त कर रहा है । महान् टीकाकार ने ठीक कहा है-''मूक करोति वाचालं'' अर्थात् जिसकी कृपा मूक को भी धारा प्रवाह प्रवचन करने वाला कुशल वक्ता बना देती है, उस प्रभु की जय हो, इनकी परम्परा को, सदेश को जिसने भारत भूमि पर सूर्य के प्रकाश के समान फैलाया वे पट्टाधीश प पू आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज भी परम अर्चनीय, प्रशसनीय हैं । आपने पृथ्वीतल को धर्म की जगमग ज्योति से आलोकित किया । आपके द्वारा दीक्षित महान् जैन सन्त परम पूज्य आचार्य विमल सागरजी महाराज, पट्ट शिष्य परम पू आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज इत्यादि आर्यिकाओं में प्रथम गणिनी आर्यिका श्री १०५ विजयामती माताजी इत्यादि समूह के माध्यम से गुरुदेव की उज्जवल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है । मैं महान सन्त आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अंकलीकर) के पावन चरण कमलो मे अपनी पवित्र श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ और अन्त में आप जैसी श्रेष्ठ समाधि की इच्छा रखता हूँ । ॥ इत्यलं ॥

श्रद्धावनत :

पत्रकार–अशोक बघेरावाला (मालपुरा)

आचार्य अंकलीकर की परम्परा

वर्तमान में जैन साधु जगत में तीन परम्परायें चल रही हैं -

1 आचार्य आदिसागरजी अकलीकर की, 2 आचार्य शान्तिसागरजी (दक्षिण) की तथा 3 आचार्य शान्तिसागरजी छाणी की । इन तीनो परम्पराओ से सम्बद्ध अनेक निर्ग्रन्थ साधु आज धर्म की महती प्रभावना कर रहे हैं । समाज उनके उपकारों से कभी उऋण नहीं हो सकता ।

इस बीसवीं सदी के सर्वाधिक प्रभावक साधु परम पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी (दक्षिण) माने जाते हैं, वह विद्वता और तपश्चरण में असाधारण थे । पिछली कई सदियों से उत्तर भारत में दिगम्बर जैन मुनियो के दर्शन नहीं हो रहे थे । उत्तर भारत मे सर्वप्रथम पद विहार कर उन्होंने साधु सस्था को नवजीवन प्रदान किया । जैन पत्रो और ग्रन्थों मे सर्वाधिक चर्चा भी उन्ही की हुआ करती थी ।

यद्यपि दक्षिण भारत में भी वही सर्वाधिक चर्चित रहे तथापि आचार्य श्री आदिसागरजी अकलीकर उनसे पूर्ववर्ती दीक्षित सन्त थे । उनकी चर्चा भी उत्कृष्ट थी । स्वय आचार्य शान्तिसागरजी ने अनेक बार श्रद्धा के साथ उनका स्मरण और उल्लेख किया है । उनके द्वारा दीक्षित एव उनके प्रथम पट्टधर आचार्य श्री महावीर कीर्ति महाराज भी अपने समय के सर्वाधिक प्रभावक साधु रहे हैं । उत्तर से दक्षिण तक उनकी कीर्ति का डका बजता था ।

आचार्य श्री आदिसागरजी अंकलीकर की परम्परा मे आज भी अनेक साधु अपनी निर्दोष चर्या, प्रशस्त विद्वता, उत्कृष्ट तपश्चरण आदि के बल पर सम्पूर्ण भारत मे धर्म की ध्वजा फहरा रहे हैं । इनमे सर्व श्री आचार्य श्री सन्मतिसागरजी, विमलसागरजी, कुन्थुसागरजी, आर्यिका विजयमती माताजी आदि के नाम गौरव के साथ उल्लेख करने योग्य हैं । यदि इनके भी शिष्य और प्रशिष्यो की गणना करें तो एक लम्बी तालिका सामने आती है । समाज पर इन सभी साधुओ का गहरा प्रभाव है तथा इनके द्वारा धर्म की उत्कृष्ट प्रभावना हो रही है ।

इस गौरवास्पद परम्परा के आदि गुरु आचार्य श्री आदिसागरजी अकलीकर का विस्तृत जीवन वृत्त प्रकाश मे नहीं आ सका । अब तक उनके किसी भी भक्त का ध्यान इस ओर नहीं गया । पिछले पाँच सात दशको मे उनके विषय मे न तो कोई पुस्तक ही प्रकाशित हुई और न समाचार पत्रो मे ही कहीं कोई चर्चा पढने या सुनने मे आई । उनके प्रथम पट्टधर महाप्रतापी स्व आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज के समय मे भी इस दिशा में कोई कार्य नहीं हुआ । उन्होंने उनसे सन् १९४२ में मुनि दीक्षा ग्रहण की थी । वर्तमान पट्टाचार्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज को

आचार्य पद सन् १९७२ में आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज से प्राप्त हुआ था । सोलह सत्रह वर्षों तक उनका भी ध्यान नहीं जा सका । इसका परिणाम यह हुआ कि लोग श्री आदिसागरजी अंकलीकर को भूलने लगे थे ।

प्रसन्नता है कि इधर के तीन चार वर्षों से पूज्य आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज का ध्यान अपनी परम्परा के आदि गुरु और इस सदी के आदि मुनि की कीर्ति रक्षा की ओर गया है । अपने परम्परा गुरु की कीर्ति को विस्मृति के गर्भ में विलीन होने से बचाने का उनका यह प्रयास अनुचित भी नहीं है । ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह न्याय संगत है कि जिसका जितना अवदान या अनुदान है, इतिहास में वह सुरक्षित तो रहना ही चाहिए । ''जब जागे तभी सवेरा'' की लोकोक्ति के अनुसार उनके ये प्रयास स्वागतयोग्य है ।

इधर पूज्य अंकलीकर जी के जीवन सन्दर्भ मे कुछ पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं । उनमें उनके व्यक्तित्व के कुछ ज्ञात और कुछ अज्ञात पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है । उससे यह ज्ञात होता है कि वह एक धीर, वीर, गम्भीर, उत्कृष्ट चर्या के धारक और पुरुषार्थी साधु थे । इन पुस्तिकाओ में बताया गया है कि उनका जन्म सन् १८६६ में, मुनि दीक्षा सन् १९१३ मे, आचार्य पद प्रतिष्ठा सन् १९१५ मे तथा समाधि सन् १९४३ में हुई थी । उनके सम्बन्ध में शोध कार्य अभी जारी है । ध्यान यह अवश्य रखना होगा कि उनके बारे में जो भी लिखा जाये, वह प्रमाणिक हो, किसी भी अन्य आचार्य की छवि को धूमिल करने या उनके ऊपर उन्हे प्रस्थापित करने की ध्वनि भी इस या ऐसे किन्हीं प्रयासो में से नहीं आनी चाहिए । इतिहास में किसका क्या स्थान हो, इतिहासकार इसका निर्धारण करने मे बडी सावधानी से काम लेते हैं ।

सभी साधु चाहे वे किसी भी परम्परा के हों, समाज के लिए आदर्श और अनुकरणीय है । किसी भी आचार्य या साधु की किसी दूसरे आचार्य या साधु के साथ तुलना नहीं की जा सकती और न करनी चाहिए । कोई किसी क्षेत्र मे अद्वितीय है तो कोई किसी क्षेत्र में अग्रणी । सबकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं । कोई तपश्चरण-शूर है तो कोई महान् वाग्मी । किसी का प्रभाव क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रहा है तो किसी ने सीमित क्षेत्र में रहते हुए भी धर्म का मार्ग प्रशस्त किया है । कोई अधिक चर्चित रहा हो या अचर्चित, हम छद्मस्थ श्रावकों के लिए तो सभी गुरुजन समान रूप से पूज्य हैं ।

आशा है कि परमपूज्य श्री १०८ आचार्य श्री आदिसागरजी अंकलीकर के व्यक्तित्व या कर्त्तव्य के बारे में जो भी नई जानकारियाँ समाज के सामने आयेगी, उनसे भव्यजनो को सन्मार्ग पर चलने और संयम-पालन की प्रशस्त प्रेरणा मिलेगी ।

दिनांक २० 3 ९२ **नरेन्द्र प्रकाश जैन**

(सम्पादक-जैन गजट), फिरोजाबाद

20वीं शताब्दी के मुनि मार्ग के जन्मदाता

डॉ भूपेन्द्र कुमार जैन
सपादक-अंकलीकर वाणी, इटावा (उत्तर-प्रदेश)

भारतवर्ष विश्व में सदाकाल से ऋषि महर्षियो की जन्म भूमि रहा है । यहाँ पर अनन्त तीर्थंकर महापुरुषो ने एव अनन्तानन्त दिगम्बर श्रमण महापुरुषो ने तीर्थंकर देव प्ररूपित वीतराग जिनधर्म की छत्रछाया मे अपनी आत्म साधना करके शाश्वत मुक्ति सुख को प्राप्त किया है । उसी अक्षुण्ण श्रमण परम्परा मे अतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के बाद उनकी वाणी का अनुगमन करने वाले अनेक ऋषि एव महान् आचार्य हुए हैं । श्रमण सस्कृति की वह अक्षुण्ण परम्परा आदि से बिना किसी बाधा के प्रवाहित हो रही है ।

गुणधराचार्य, धरसेनाचार्य, पुष्पदत, भूतवली, कुदकुद देवाचार्य, उमा स्वामी, समतभद्र, पूज्यपाद, अकलकदेव, विद्यानन्द स्वामी, वीर सेनाचार्य, भीमसेन स्वामी, अमृत चद्राचार्य, जयसेनाचार्य आदि अनेक श्रमण ऋषिराज हुये है । जिन्होंने अपनी ज्ञान वैराग्य शक्ति को व्यक्त कर मोक्ष मार्ग मे पदार्पण किया एवं क्षायोपशमिक ज्ञान वैभव से अनेक ग्रन्थो का प्रतिपादन करके ज्योतिर्मय वीर शासन की प्रभावना मे अपना योगदान दिया है ।

इसी परम्परा मे आज से १२८ वर्ष पूर्व ईस्वी सन् की २०वीं शताब्दी मे लुप्त प्राय श्रमण सस्कृति दिगम्बर मुनि धर्म के पुन जन्मदाता परम पूज्य विश्ववद्य चारित्र चक्रवर्ती वीतरागी आचार्य परमेष्ठी श्री आदिसागरजी (अकलीकर) हुये है । जिनके पुण्य प्रभाव से आज सपूर्ण भारतवर्ष मे मुनि धर्म प्रगट हुआ और यत्र-तत्र-सर्वत्र दिगम्बर मुनियो, आर्यिकाओ, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओ के दर्शन धर्मोपदेश श्रवण आदि का लाभ धर्म प्राण समाज को प्राप्त हो रहा है ।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

भारतवर्ष के अन्तर्गत महाराष्ट्र प्रान्त दक्षिण में सागली जिला, 'अकली' ग्राम रत्नों मे हीरा के समान शोभायमान हो रहा है । उसी जन-धन धर्म से सम्पन्न भूमि पर श्री सिद्ध गोडा एव उनकी धर्म पत्नी श्रीमती अक्काबाई वीतराग धर्म का अनुकरण करने मे संलग्न रहते थे । उनके एक पुत्र ने जन्म महाशिवरात्रि के दिन सन् १८६६ को लिया नाम शिव गौडा रखा गया । आपके पितामह का नाम (पिता के पिता) श्री शकर गौडा पाटिल था । आपके दो भाई और एक बहन थी, जिनका नाम श्री बाल गौडा एव श्री बाव गौडा तथा श्रीमती आदुबाई था । श्री तवन गौड़ा नाम का एक पुत्र था एवं श्रीमती हीराबाई नाम की एक पुत्री थी । आपके पिता जागीरदार थे, धर्मनिष्ठ थे अतएव धार्मिक सस्कारो का बीजारोपण बचपन मे ही हो चुका था । आपकी १५ वर्ष की आयु में पिता

का तथा २७ वर्ष की आयु में माता का स्वर्गवास हो गया था, यही उनके वैराग्य का कारण बन गया।

बाल्यकाल एवं शिक्षा

धार्मिक संस्कारो ने श्री शिव गौडा को बचपन में ही धर्मानुरागी बना दिया। आपके माता-पिता जागीरदार होते हुए भी देवपूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान इन गृहस्थ के षट्कर्मों का पालन करते थे। न्याय नीति से धनार्जन कर परिवार का पालन-पोषण करते थे। इस प्रकार बचपन से ही आपको आहार एवं शुद्ध संस्कारों की शिक्षा प्राप्त होने लगी। आयु की वृद्धि के साथ-साथ आपका तेजवल बढ़ने लगा। "होनहार विरवान के होत चीकने पात" की कहावत को चरितार्थ कर दिया था। किवाड़ों को मुट्ठी से तोड़ना तथा कच्चे कद्दू को तोडकर चबा जाना इत्यादि अनेक क्रीडाये उनके तेजवल का प्रतीक था। प्रारम्भ से ही पराक्रमी एवं स्वाभिमानी थे। आपने अपने पराक्रम का उपयोग कर्मों के साथ युद्ध करने में स्पष्ट रूप से प्रयोग किया अनन्त सुख को प्रदान करने वाली मुनि दीक्षा ग्रहण की।

विवाह एवं गृहस्थावस्था

युवावस्था प्रात श्री शिवगौडा के विवाह की चर्चा प्रारम्भ की गई और सफलता रूप "आऊ" नाम की कन्या के साथ विवाह हो गया। आप गृहस्थ होकर भी जल मे कमल के समान स्वाधीन एव धर्म मे लवलीन रहते थे। जिनवाणी सुनने का एक व्यसन था, सुनने के लिए दूसरे गाँव को भी जाते थे। इस कारण उनका ज्ञान बढ़ चुका था। आपने सिद्धान्तों को भली प्रकार जान लिया था।

दीक्षा

आपने ४० वर्ष की आयु मे स्वामी श्री जिन्नप्पा से सन् १९०६ में नादनी ग्राम मे स्वाति-नक्षत्र की शुभ घडी मे क्षुल्लक दीक्षा ली थी एवं आपका दीक्षोपरान्त आदि सागर नाम रखा गया। धीरे-धीरे साधना बढ़ती चली मनोबल तथा संयम को भी अपने आत्मबल से बढाकर ऐलकपद श्री जिनेन्द्र देव की साक्षी में ३ महीने के बाद धारण किया, दीक्षित हो गये। उस समय नग्न दिगम्बर साधुओं का अभाव सा था। फिर साधना की ओर आपने अपना चरण बढा दिया।

मुनि दीक्षा

सम्यग्दर्शन का क्षयोपशम बढ़ा साथ में ज्ञान की अभिवृद्धि हुई और आत्म साधना की अभिवृद्धि रूप तीन-तीन उपवास के बाद आहार करते थे। इनकी साधना का अभ्यास हो जाने पर ४७ वर्ष की आयु में सन् १९१३ मंगलवार मगशिर शुक्ला २ मूल नक्षत्र में १० बजे श्री कुंथल गिरि सिद्ध क्षेत्र पर श्री जिनेन्द्र देव की साक्षी में स्वात्मोपलब्धि के लिए मुनि दीक्षा ग्रहण की। संपूर्ण परिग्रह त्याग कर पूर्ण निर्ग्रन्थ हो गये। यथा जात रूप बन गया। नाम आदि सागर ही रहा। यह

मुनि श्री आदिसागरजी अंकली ग्राम मे जन्म होने के कारण अंकलीकर कहे जाते थे । जिनवाणी को चरितार्थ कर दिया । आपका उपदेश प्रभावशाली था एवं महत्त्वपूर्ण था । आप ७ दिन उपवास के बाद आहार करते थे, वह भी आहार में एक ही वस्तु लेते थे ।

धर्म प्रचार, विहार एवं मुनि परम्परा में वृद्धि

मुनि दीक्षा के पश्चात् मुनि श्री आदिसागर जी (अंकलीकर) ने दक्षिण भारत मे विहार करना प्रारभ किया जिनमे प्रमुख ग्रामों के नाम इस प्रकार हैं-एनापुर, जैनापुर, हातकलगड़ा, आष्टा, जयसिहपुर, सांगली, बड़गाव, उत्तूर, चिचवाड़, चिक्कोड़ी, कोल्हापुर, कुजवन, कोथली, अमलवाड़, कुभोज, नेत्र, मझले, आजणी, कवनूर, नादणी, इचलकरजी, आलते इगली, ऊदगाव, कवले विराज शेडवाल, अंकली, धाम कुप्पन बाड, नसलापुर, कोगनोली, गलतगा इत्यादि ग्रामों मे विहार कर धर्म की महती प्रभावना की । अपने जीवन काल मे गोम्टेश्वर बाहुबली (श्रमण वेलगोला) की विशेष प्रभावना पूर्वक यात्रा की । आपके ध्यान के समय मे शेर आया करता था ।

विहार एव उपदेश के कारण भव्य-जीवो के नियम व्रत आदि ग्रहण किये तथा शिष्य वर्ग एकत्र होने लगा । सघ विहार करते हुए जयसिहपुर नगर को पवित्र पावन प्रवचनो एव पचाचार, (दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार एव वीर्याचार) का आचरण करते हुए एव कराते हुए देखा तब प्रबुद्ध मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकाओ ने मिलकर १६ जून सन् १९१५ श्रुत पचमी गुरुवार को शुभ मुहूर्त मे "आचार्य पद" से विभूषित प्रभावना पूर्वक किया । अब से आचार्य आदि सागरजी (अंकलीकर) के नाम से कहे जाने लगे । प्रभावना बढ़ने लगी । समय पाकर सर्वात्म हितकारी समझते हुए वरिष्ठ आदिसागरजी (अकलीकर) के नाम से विख्यात हो गये । इसके साथ और भी अन्य पदो से शोभायमान किया गया जैसे सम्यकत्व शिरोमणि, तपस्वी सम्राट, सिद्धान्त् शास्त्र पारंगत इत्यादि ।

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री आदि सागरजी (अंकलीकर) ने अपने शिष्य मुनि श्री महावीर-कीर्तिजी महाराज को आचारग सूत्र के अनुसार चारित्र देखकर उनको अपना आचार्य पद दे दिया एव १४ दिन के बाद उन गुरुदेव की समाधि महाशिवरात्रि ४ मार्च १९४३ को ऊदगाव कुजवन मे हो गई ।

आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज ने अपना आचार्य पद तपस्वी सम्राट आचार्य शिरोमणि भारत गौरव सत शिरोमणि वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज को प्रदान किया ।

आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज का सारा जीवन चमत्कारिक घटनाओं से भरा पड़ा है । आपके दर्शन मात्र से सुख की प्राप्ति होती है । आपके चरणरज के स्पर्श से असाध्य बीमारियो से प्राणी छुटकारा पा लेता है । आज हमारे सामने आचार्य सन्मति सागरजी धर्म साम्राज्य की परम विभूति, वीतरागता निष्पृहता के प्रतीक मौजूद हैं । इनको प्रत्यक्ष पाकर हम उनका अनुसरण करें ।

मानवता का मसीहा-शिव गौड़ा
अकाल के वक्त शिवगौड़ा की भूमिका

डॉ किशोर कुमार जैन
मंत्री अ. भा दि जैन
युवा परिषद् (इटावा)

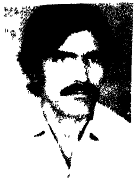
चारो ओर त्राहि-त्राहि मच गई थी । नदी, नाले, तालाब सब सूख गये थे । लोगो को पीने को पानी व खाने को अनाज नहीं था । भयकर दुष्काल पड़ा था, उस वर्ष । लोग भूख से तड़प-तड़प कर मरने लगे । मोम हृदय शिवगौडा जमींदार का हृदय अपने ग्रामवासी दीन-दुखियो की इस दयनीय दशा को देख पसीज उठा । उसने अपने अनाज के भण्डारो का मुआयना किया जो मात्र उसके परिवार पूर्ति मात्र था फिर भी उसने सोचा यदि उसका परिवार एक वक्त खाना खावे व एक वक्त का अनाज गरीबो व भूखो को बाँट दिया जाय तब उन्हें भी महीना बीस दिन एक वक्त की रोटी तो मुहैया हो सकेगी । कम से कम इतने दिन तो लोग नहीं मरेंगे । आगे की आगे सोची जायेगी और कोई उपाय करेगे । अपना अनाज अकाल से पीडित लोगों मे बाट दिया । कहीं फिर से मौत का सिलसिला शुरू न हो जाय यह सोचकर एक उपाय निकाला-इसके जैसे गाव में और भी कई लोग हैं जिनके पास अनाज होगा । क्यूँ न उनसे भी गाँव वालों के लिए थोडी-सी मदद माँगी जाय ।

वे एक-एक कर गाव के सभी सम्भ्रान्त व श्रीमन्त लोगों से मिले व अपने अनाज भण्डारो में से आधा हिस्सा गरीबों को बाँटने के लिए प्रोत्साहित किया । पहले तो लोगो ने सोचा क्या पत्ता इस वर्ष बारिश होती है या नहीं, अपने परिवार का भविष्य क्या होगा सोचकर ना नुकुर की । किन्तु जब शिवगौड़ा ने समझाया कि पूरा गाँव ही अपना परिवार है । गाँव के प्रत्येक व्यक्ति से अपना आत्मीय सम्बन्ध है । उसने सबसे एक ही प्रश्न पूछा कि जिस दिन भूख से गाँव का कोई व्यक्ति तड़प-तड़प कर मर जाता है उस दिन क्या वह खा-पी सकते हैं ? उस रात चैन से सो सकते हैं ? सबका एक ही जवाब था, नहीं । शिव गौड़ा को अपनी समस्या का हल मिल गया ।

इन्होंने सबको समझाया कि आज हमारे हृदय से करुणा बरसेगी । तब कल जरूर आकाश से बादल बरसेंगे । माँ वसुन्धरा को हम जितना अनाज देंगे उससे कई गुना हमे वापस लौटा देगी ।

किसी को इन्तजार किये बिना उन्होने दूसरे दिन ही दान का कार्य अपने घर से शुरू कर दिया । भूखे लोग अनाज पाकर उन्हें हजारो-हजार दुआएँ देते जाते थे । अब वे दीन दुखियों के मसीहा बन गये थे । चारो ओर उनकी वाहवाही हो रही थी । लोग उनके गुण गाते नहीं अघाते थे । धीरे-धीरे दान का सिलसिला शुरू हो गया । एक का अनाज भण्डार खत्म भी नहीं हो पाता कि दूसरे का खुल जाता । ना काला बाजारी न जमाखोरी न मुनाफाखोरी न भ्रष्टाचार । यहाँ तक कि अब देने वाले अधिक थे किन्तु लेने वाले कम ।

शिवगौडा की गरीबो के प्रति प्रेम, दया व करुणा देख इन्द्र देवता बडे खुश हुए । उस वर्ष इतनी बारिश हुई कि नदी-नाले, कुएँ-तालाब उफान पर आ गये । फसले खेतो मे न समा रही थीं । लोगो की पौबारह थी । कितने श्रेष्ठ सस्कार थे शिवगौडा के उन्होंने व्यथितो के रिसते घावो पर करुणा की मरहम पट्टी कर मानवता की पूजा का महान आदर्श उपस्थित किया । स्वय व अपने परिवार के लोगो ने एक वक्त भूखा रहकर, भूख से तड़प कर मरने वालो को रोटी दे अभयदान दिया । ऐसी आत्माओ से ही धरती का गौरव बढता है । धन्य है वह आत्मा । शुभ संस्कारों से सुसस्कारित युग की धरती पर बीज रूप उगने वाली परम पूज्य चारित्र चक्रवती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अंकलीकर) के रूप मे विख्यात हुए ।



परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य 108 श्री आदिसागरजी महाराज अंकलीकर पर लेख

द्वारा-महावीर कुमार सरावगी, प्रेस रिपोर्टर
नैनवा जिला बून्दी, राजस्थान-323801

महान पुरुषो में एक महान तपस्वी साधक आचार्य श्री १०८ आदिसागर महाराज हुए महाराष्ट्र प्रान्त के अंकली ग्राम मे आपका जन्म होने से आपको आदिसागरजी ''अकलीकर'' नाम से पुकारा जाने लगा । आपके पिता का नाम सिद्ध गौड़ा पाटिल एव माता श्री का नाम अक्काबाई था । इनके २ पुत्र शिवगोडा एव बाबा गोडा पाटिल थे तथा एक पुत्री आऊबाई थी उनमे से एक पुत्र शिवगोडा पाटिल आगे चलकर परम सयम साधक उग्र तपस्वी चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदि सागरजी के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

आपका पावन जन्म फागुन बुदी १३ सन् १८६६ को हुआ था । आपके बाहुबल के चर्चे आस-पास होने लगे पानी मे २० फिट गोता लगाना साधारण सी बात थी । गरीबो की मदद करना आपका प्रथम काम था गाँव मे एक बार भयकर अकाल पड़ा उस समय आपने-अपने घर का सारा अनाज गरीबो को बाँट दिया । आपने नादणी गाँव मे जिन्नप्पा स्वामी के पास सन् १९०६ मे क्षुल्लक दीक्षा ली । दीक्षा के कुछ समय पश्चात् जिनेन्द्र देव भगवान को साक्षी मानकर आपने चादर का भार छोड़ दिया । ऐलक दीक्षा ले ली । आप कठोर साधना करने लगे । तीन उपवास के बाद एक बार आहार लेते थे । जब आप मुनिव्रत के अभ्यास मे पूर्णत· हो चुके थे तब आपने सिहक्षेत्र कुथलगिरि पर भगवान कुलभूषण देशभूषणजी की साक्षी में सन् १९१३ मे मगसिर शुक्ला २ मंगलवार को प्रात दस बजे मूल नक्षत्र मे परम दिगम्बर दीक्षा लेकर सारे प्रान्त मे तहलका एव जय-जयकार का डका बजा दिया । श्रुत पचमी सन् १९१५ मे आपको आचार्य पद दिया गया आप मुनि दीक्षा लेने के बाद सात दिन में एक बार आहार लेने लगे आप आहार मे एक ही वस्तु लेते थे यह क्रम आपका जीवन पर्यन्त रहा । आप एक ही आसन में तीन घण्टे तक आत्मचिन्तन मे निमग्न रहते थे । आदिसागरजी अंकलीकर को ब्र चित्राबाई ने उनके प्रत्यक्ष दर्शन किये । उन्हे अपने हाथों से आहार दान भी दिया । अकलीकर सात रोज मे एक बार आहार मे एक ही वस्तु लेते थे । आहार में एक बार ढाई किलो छुवारा घी से भरे हुए आहार मे लिये आहार के बाद सात रोज

तक महाराज वैसे ही रहते थे जैसे आहार के समय दिखाई देते थे। वह एकान्त मे जंगल में काटों भरी झाडियो में तीन घण्टे तक काटो पर खड़े होकर साधना करते थे। उन्हें अपनी यश प्रतिष्ठा की कोई चाह नहीं थी। आप एक बार अचानक एक गाँव में पहुंचे वहाँ आप काटों भरी झाड़ियो मे बैठकर साधना कर रहे थे उसी गाँव मे एक बुढ़िया के लड़के को साँप के काटने से लड़के का पूरा शरीर जहर से नीला पड गया। बुढिया दौडती-दौडती आदिसागर अकलीकर की शरण मे जाकर रोने लगी। गिड़गिड़ाने लगी। महाराज श्री की तपस्या, तेजस्वी के कारण उसी समय तेज वर्षा होने लगी महाराज के शरीर से बहता पानी उस बालक पर जो ही गिरा लडके का जहर समाप्त हो गया वह मरा हुआ पुनर्जीवित हो गया। पूरे गाँव मे ही नहीं आस-पास के गाँवों में ज्यो ही अकलीकर की खबर पहुँची हजारों ग्रामीणो की भीड दर्शनो के लिए उमड पडी।

आदिसागरजी अकलीकर के बारे मे आचार्य शान्तिसागरजी तथा आचार्य महावीर कीर्तिजी ने बताया कि एक कोनूर की गुफा मे आपके पास एक शेर आया करता था और प्रदक्षिणा लगाकर वापस चला जाता था कितनी बार आपके पास बैठकर आपकी शान्त मुद्रा को देखता रहता था किन्तु आप कभी भी नहीं डरते थे।

दक्षिण भारत के एक ऊदगाँव मे ३२ वर्ष की अवस्था मे महान् तपस्वी आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) से अपने सम्पूर्ण परिग्रह त्याग कर पूर्ण दिगम्बर दीक्षा धारण की आचार्य महावीर कीर्ति महाराज ने अपने गुरु की असाधारण वैयावृत्ति और निरन्तर परिश्रम एवं सावधानी से आपने गुरु की सफल समाधि कराई थी। आचार्य आदि सागरजी (अंकलीकर) महाराज ने समाधि से पूर्व अपना आचार्य पद श्री महावीर कीर्तिजी महाराज को विद्वान तपस्वी व योग्य मुनि समझ कर दिया था। शिवगोडा पाटिल की १५ वर्ष की अवस्था मे पिता का स्वर्गवास हो गया २७ वर्ष की अवस्था मे माता का स्वर्गवास हो गया। कुछ समय बाद धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया। इस कारण आपको वैराग्य हो गया।

आपको चारित्र चक्रवर्ती पद जन्म स्थान १९१६ में दिया गया इसलिए कहा है कि महानता या पद मागने से नहीं मिलता न लादने से लादा जाता है। परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती २०वीं सदी मे प्रथम चक्रवर्ती हैं आज भी उनके उदाहरणो से ऐसा लगता है जैसे आज भी अकलीकर अपना सत उपदेश सम्पूर्ण भारत को प पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती १०८ आचार्य सन्मति सागर महाराज के द्वारा दे रहे हैं।

महोपकारी संत

१००८ आदिनाथ भगवान की जय

परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अंकलीकर) महाराज हमारे महोपकारी सन्त थे । उनकी पावन स्मृति मे "स्मृतिग्रन्थ" प्रकाशित हो रहा है जानकर अपार खुशी हुई । वे कितने आर्षमार्ग पोषक ज्ञानी, ध्यानी तपस्वी रहे होंगे, यह मुझे प्रत्यक्ष देखने का सौभाग्य नही मिला । किन्तु उनकी भव्य प्रतिकृति स्वरूप प पू ती भ शि १०८ आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज, जिन्होने अपनी अप्रतिम गुरु भक्ति से उनका आचार्य पद उन्हीं के द्वारा प्राप्त किया, मैंने उनके बहुत नजदीक से दर्शन किये हैं । वे आर्ष परम्परा के कट्टर पोषक थे । सज्जातित्व के रक्षक थे । उन्हीं के आशीर्वाद से महासभा को सज्जाति रक्षण व विधवा विवाह, विजातीय विवाह के विरोध का बल प्राप्त हुआ है । यह प पू आचार्य आदिसागरजी की ही दैन है, आज इस परम्परा मे अनेकों ऋषिराजो के दर्शन व धर्मोपदेश हमें प्राप्त हो रहे हैं । समाज उनका ऋणी है और रहेगा । हमारा कर्त्तव्य है उन दिगम्बरत्व के आद्य गुरु श्री १०८ आ आदिसागरजी अकलीकर के पावन चरणो मे अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें । यह तभी सफल होगी जब हम उनकी परम्परा के अनुसार आर्ष परम्परा को मानें । अनाद्यनन्त दिगम्बरत्व का रक्षण करें । वर्तमान मे आपके तृतीय पट्टाधीश परम तपस्वी सम्राट्, वात्सल्यरत्नाकर १०८ आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज इस परम्परा के पूर्णतः पालन कर रहे हैं और सघस्थ साधुवर्ग से करा रहे हैं । वस्तुत· इस परम्परा के सभी साधु, साध्वियाँ जिनागम के तलस्पर्शी ज्ञान कर ठोस और निर्मल चारित्रधारी हैं । मैं उन धर्म, कर्म के मर्म चारित्र चक्रवर्ती, १०८ गुरुवर्य, आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज के चरणो में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ ।

1० १२ ९३

बाबूलाल जैन, छावड़ा, सआदतगंज, लखनऊ–३
मन्त्री–श्री दिगम्बर जैन अयोध्या तीर्थ क्षेत्र कमेटी, अयोध्या ।

आदर्शक साधु

दीक्षार्थियो के लिए परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) की परम्परा आदर्श रूप हो रही है। आचार्य श्री आदिसागरजी अकलीकर के बारे मे जो अनेक वरिष्ठ आचार्यत्व अर्वाचीन है। जिसकी जानकारी बहुत समय से मिलती रही है। उनको श्रुतपचमी, गुरुवार, सन् १९१५ मे चतुर्विध संघ ने आचार्य पद दिया था और अकलीकर ग्राम मे पच कल्याणक के अवसर पर चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया था। मगशिर शुक्ला, २ सन् १९१५ मे मुनि दीक्षा स्वय कुलभूषण देशभूषण की साक्षी मे कुथलगिरि मे ग्रहण की थी तथा ४ मार्च, सन् १९४३ मे ऊदगाँव कुजवन में समाधि की थी। आज विदेशो मे भी जैन दर्शन पाने के लिए लोग लालाइत हैं। निर्ग्रन्थ साधु तो विदेशो मे जा नही सकते क्योकि साधुओ के सिर्फ पैदल विहार करने का ही जैनागम मे कहा है। आवश्यकता इस बात की है कि समाज आगम को अग्रेजी मे अनुवाद करवाकर विदेशो मे जैन धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार करे। विदेशी लोग साधुओ के दर्शन के लिए भारत मे आते है। जैनेश्वरी दीक्षा आत्मकल्याण के लिए होती है। आचार्य श्री की कृपा से यह वैराग्यमयी वातावरण बन रहा है। उनकी त्याग तपस्या सयम के प्रभाव से जगह-जगह आश्चर्य प्रगट हुए। यह जैनधर्म वीरो का धर्म है, प्रत्येक प्राणी अपनी अपनी मर्यादा पूर्वक पालन कर सकता है। साधुजन अहिसा का सन्देश पहुँचाते है आगम उनका नेत्र है उससे वस्तु के स्वभाव को देखते है और शिष्यो को दिखाते है। साधुओ का जहाँ विहार होता है वह धरती धन्य हो जाती है। वे ज्ञान ध्यान तप मे लीन रहते थे निरन्तर परम ब्रह्म परमात्मा मे लीन रहते थे।

प फतहसागर, उदयपुर (राज)

मेरी जानकारी

सन् १९८९ में मेरा इस बीसवी सदी को प्रथम गणिनि आर्यिका श्री १०५ विजयमती माताजी के सघ के साथ नादनी इचलकरंजी अकली ऊदगाँव आदि गाँवो में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । वहाँ पर भट्टारक जिनसेन स्वामी नादनी से परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ श्री आदिसागरजी (अकलीकर) के विषय मे जानकारी प्राप्त हुई जो समय-समय पर प्रकाशित श्री अकलीकर वाणी नामक मासिक पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित करवाया गया है । उनके उपदेश उन्ही के उत्तराधिकारी आचार्य महावीर कीर्तिजी द्वारा सग्रहीत किये गये थे ऐसी ही और भी सामग्री प्राप्त हुई है जो समय-समय पर प्रकाशित की जावेगी ।

प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) की जानकारी क्षुल्लक वीर भद्र महाराज बाहुबलि ने बताया कि उन सबने उन्हें श्रुत पचमी सन् १९१५ को आचार्य पद दिया था । देव गौडा वाल गौडा पाटिल ऊदगाँव ने बताया कि ६ माह तक दाल का आहार हुआ था । ६०-७० त्यागी थे शास्त्र पद्धति के अनुसार क्रिया काण्ड करते थे । ७-७ दिन मे आहार लेते थे । गजमति सरसो बाई (सरस्वती बाई) आरवाडे ने बताया कि समाधि के अन्तर दाह सस्कार के समय नाना प्रकार के बाजे बजे थे । मात गौडा तोड गौडा पाटिल पोता है । माँ का नाम मरू देवी ने बताया कि आ शान्ति सागरजी (दक्षिणा) को ऐलक दीक्षा आचार्य आदि सागर महाराज (अकलीकर) ने दी थी । समाधि के समय आचार्य शान्तिसागर (दक्षिण) भी थे । अपना आचार्य पद महावीर कीर्तिजी को दिया था । आचार्य विद्यानन्दजी महाराज ने बताया कि ६०-७० साधु थे । प्रथम ही कर्नाटक मे १४ दिन की समाधि हुई थी । कलेक्टर ने रोक लगाई थी । भिरज से फ्री रेल छोडी थी । बहुत दान दिया था । श्री पाल भरमू चौगुले श्री पाल दादा मगदुम ऊदगाँव ने कहा कि यहाँ इतने दिगम्बर साधु थे कि चारो ओर साधु ही साधु थे । इस ग्रन्थ के अध्ययन करने पर श्रद्धा ज्ञान और क्रियाओ पर दृढ़ता प्राप्त होगी और पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी (अकलीकर) के बारे में किये विरोध का परिहार होगा । ऐसा साहित्य अवश्य ही प्रकाशित होना चाहिए ।

गुरु चरण सेवक
श्री मदनलालजी चूड़ीवाल
संघस्थ प्र गणिनि आर्यिका श्री विजयमती माताजी

अजमेर में प. पू. सम्राट तीर्थभक्त शिरोमणी श्री 108 महावीर कीर्ति जी महाराज का समाधि दिवस समारोह

अजमेर (राज) बडा धडा नसियाँ मे माघ कृष्णा ६ दिनाक । १ फरवरी, ९४ को आचार्य १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज के समाधि दिवस पर प्रात स्कूटर आदि के द्वारा मयम रैली निकाली गई । पश्चात् आठ बजे श्री भँवरलालजी शर्मा स्वायत्त शासन मत्री ने ध्वजारोहण, दीप प्रज्ज्वलित एव आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज के चित्र का अनावरण किया तथा उन्होने बताया कि प्रत्येक घर मे एक-एक गाय के पालन करने से देश की हिसात्मक समस्या हल हो सकती है । गुरुदेव के त्यागमय जीवन से हमे त्याग की शिक्षा लेनी चाहिए । प्रोफेसर सुशील जी पाटनी ने काव्यमय श्रद्धाजलि समर्पित की । विशिष्ट अतिथियो का माल्यार्पण से स्वागत किया गया । अजमेर जिलाधीश ने बताया कि उनके मार्ग का अनुसरण करना चाहिए । स्वागत भाषण नगर काग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री माणकचन्द्र सोगानी ने दिया । श्री धर्मचन्दजी मोदी ब्यावर, श्री माणकचन्द जी पालीवाल कोटा, श्री सुदर्शनलालजी इन्दौर, प विद्याकुमार जी सेठी अजमेर, प हेमचन्द्रजी शास्त्री ने श्रद्धांजलि अर्पित की तथा आर्यिका श्री १०५ सुबुद्धिमतीजी, आर्यिका श्री १०५ श्री विमलप्रभाजी, आर्यिका श्री १०५ श्री विजयप्रभाजी, आर्यिका श्री १०५ विनयप्रभाजी ने गुरु के महत्त्वपूर्ण सस्मरण सुनाये । ब्यावर के विधायक श्री उगमराजजी मेहता ने कहा कि विधानसभा मे एक निजी विधेयक पेश कर बूचडखानो पर अकुश लगायेगे । आर्यिका श्री १०५ नगमती जी ने बताया कि उनके आदर्शो पर चलना चाहिए । प्रथम गणिनि आर्यिका श्री १०५ विजयमती जी ने बताया कि धार्मिक जीवन से सुसगति मिलती है । आचार्य श्री १०८ सुधर्मसागरजी ने कहा कि आज जो मुनि परम्परा चली आ रही है वह आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज के गुरु को श्रेय है । आचार्य श्री १०८ सन्मति सागरजी ने आशीर्वाद मे बताया कि आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज ने अपने गुरु परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य आदिसागर महाराज अंकलीकर से ज्ञान प्राप्त कर हमारे लिये महान आदर्श बने । शाम को श्री विमलकुमारजी सोगानी ने आचार्य महावीर

कीर्तिजी महाराज की चरण पादुका बड़े-धड़े की नशियाँ के मन्दिर मे विराजमान की । रात्रि मे श्री डी पी कौशिक का सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ ।

२ फरवरी को कुंदकुद की देन पर प्राचार्य शीतलचन्दजी जयपुर ने बताया कि कुंदकुदाचार्य ने सत्य और तथ्य, निश्चय और व्यवहार, आत्मज्ञ और सर्वज्ञ का प्रतिपादन करते हुए लोक कल्याण की भावना व्यक्त की । आर्यिका श्री १०५ विमलप्रभाजी ने बताया कि उन्होंने अपनी रचनाओ से हमें चारो अनुयोगो का सार प्रदान किया है । आर्यिका श्री १०५ नगमतिजी ने कहा कि आपने जैन सिद्धान्त हमको दिया जिससे जैन समाज जीवित रह सकता है । गणिनि आर्यिका श्री १०५ विजयमती जी ने बताया कि उनकी वाणी ने हमको सजगता प्रदान की है जिससे षड्यन्त्रियों से बचकर हम यथार्थ मोक्षमार्ग को प्राप्त कर सकते हैं । आचार्य श्री १०८ सुधर्मसागरजी ने कहा कि वास्तव मे वे राष्ट्र संत थे, सम्प्रदाय अपनी-अपनी जगह पर सही है आपने किसी को गलत कहने का अधिकार नहीं दिया है उनके सिद्धान्तो से राष्ट्र हिंसा, आतक, अत्याचार से बच सकता है । आचार्य श्री १०८ सन्मति सागरजी ने आशीर्वाद में बताया कि २०वी सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आदिसागरजी (अकलीकर) ने उनकी वाणी को साकार किया है । रात्रि को श्री डी पी कौशिक का सांस्कृनिक कार्यक्रम हुआ ।

३ फरवरी, को समाज रूढ़ि और कुरीतियो पर डॉ कस्तूरचन्द जी जयपुर ने बताया कि दहेज, जिनायतनो की उपेक्षा, रात्रि भोजन, रोड पर टिवस्ट नृत्य करना, व फूट प्रणाली इत्यादि यह सब समाज को दूषित करने के कारण हैं । मास, अण्डे, शराब से बिगडते जा रहे हैं । इनसे बचें । डॉ हरिशचन्द्रजी ने कहा कि कुरीतियो से बचाने मे दिगम्बर साधुओ का तप ही समर्थ है । आर्यिका १०५ विनयप्रभाजी ने बताया कि कुरीतियो से शील सयम को बचायें । असंयमता को छोडे । गणिनि आर्यिका श्री १०५ विजयमती जी माताजी ने कहा कि दहेज प्रथा के कारण कन्याये, माता पिता अपने जीवन का बलिदान दे रहे है । लोभ प्रवृत्ति इन्द्रीय असंयमता ने विजातीय अन्तर्जातीय एवम् विधवा विवाह जैसी घिनौनी कुरीतियो को जन्म दिया है । भ्रूण हत्याये हो रही हैं । यह नर मेघ यज्ञ का रूप है । आर्यिका श्री १०५ नंगमतीजी ने कहा कि दहेज आदि कुरीतियाँ समाज, देश राष्ट्र के लिए अभिशाप है ।

४ फरवरी को भारतीय सस्कृति और शाकाहार पर आकाल राहत सहायता व पुनर्वास राज्य मत्री प्रोफेसर सावरमल जाट ने कहा कि जैन दर्शन के सिद्धान्तो से विश्व में शान्ति और शारीरिक और मानसिक एवम् जीवन में स्वच्छता प्राप्त कर सकते हैं । अहिंसा की शक्ति से देश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति की । आचार्य श्री १०८ सन्मति सागरजी महाराज ने बताया कि भक्ष्याभक्ष्य के विचार से अहिसा की सत्यता प्रकट होती है । आचार्य श्री १०८ सुधर्म सागरजी ने कहा कि पवित्र सस्कृति की हत्या करने मे प्रशासक वर्ग ही जिम्मेदार है । इसकी अनुमति से ही दूरदर्शन से अण्डा का प्रचार हो रहा है । बूचड़खाने खुल रहे हैं । आर्यिका श्री १०५ विजयप्रभाजी ने बताया कि हमारी

सस्कृति का आधार अहिसा है । सौन्दर्य प्रसाधनो में रक्त व चमड़े का प्रयोग किया जाता है । वकील श्री पदम कुमार जी ने अयोग्य प्रवृत्तियो की निन्दा की । विनोदप्रिय लहरी बाबा ने कहा कि लकवा, हार्टफैल, पीलिया आदि भयंकर रोग, शाकाहार से दूर होते हैं । डॉ गोकुल प्रसादजी दिल्ली ने कहा कि अहिसा, शाकाहार भारतीय सस्कृति का मूल तत्त्व एवं आधार है । श्री धर्मचन्दजी मोदी ब्यावर ने कहा कि अहिंसा देश के सर्वांगीण विकास की कुन्जी है । रात्रि को सगीत मण्डल अजमेर द्वारा सास्कृतिक आयोजन एव कवि सम्मेलन हुआ ।

५ फरवरी को धर्म और राजनीति पर आर्यिका श्री १०५ विमलप्रभाजी ने बताया कि राजनीति धर्म को अकुरित पुष्पित करती है । कूटनीति से भिन्न है । धर्म स्व पर हितकारी है, रूढि, सम्प्रदाय और पथ से भिन्न है । इसके सुप्रयोग से देश और राष्ट्र सुउन्नत होता है । गणिनि आर्यिका श्री १०५ विजयमती जी ने बताया कि राजनीति ही सुनीति है । धर्म गुरुओ से जुडी है उन्नति के लिए सहयोगी है । आचार्य श्री १०८ सुधर्मसागरजी ने कहा कि धर्म राजनीति का ही प्राण है । सास है आत्मा है यह सम्प्रदाय कुरीतियो रूढियो को नष्ट करने के लिए अग्नि है, प्रलय है, इसके सुप्रयोग से पुन इस भूमि पर दूध की नदी प्रवाहित कर सकते हैं और देश विकास के चरम स्थल पर पहुँच सकता है । डॉ के बी लोखण्डे सोलापुर ने बताया कि यह अहिसा शक्ति अदृश्य होती है जैसे बिजली का करेन्ट । सत्ताध, मदाध, वनाध इनको छोडे तो हितकर सिद्ध होगी । महास्वामी भट्टारक लक्ष्मीसेनजी ने कहा कि धर्म जीवन का उपयोगी अग है प्रजा के हित सुरक्षा के लिए श्रेष्ठ पुरुषो द्वारा निर्मित नीतियो को राजनीति कहते हैं उसमे उत्पन्न बुराइयों को दूर करें । आचार्य श्री १०८ सन्मति सागरजी ने कहा कि राज्यनीति सुखकर होती है ।

६ फरवरी को वर्तमान आचार्य परम्परा पर प्रोफेसर श्री टीकमचन्द दिल्ली ने कहा कि आचार्य परम्परा पर प्रतिष्ठित सभी दिगम्बर मुनि हमारे लिए पूज्य हैं । वह स्तम्भ हैं, आधार हैं । णमो आइरियाण बोल कर पूजा करते है । २०वीं शताब्दी की अपेक्षा सर्वप्रथम दिगम्बर दीक्षा लेने वाले, आचार्य श्री आदिसागरजी अकलीकर का उपकार नहीं भूलना चाहिए । उन्हीं की कृपा से आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी, आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्तिजी को प्रमुखकर उनके शिष्य प्रशिष्य के रूप में उपस्थित साधुओ के वचन से बढकर कोई बडा प्रमाण नहीं है । यह भूमि आध रत्नो से अलकृत हो सकती है । मोदी धर्मचन्दजी ब्यावर ने कहा कि आचार्य आदिसागरजी अकलीकर से अभी तक जितने भी मुनि आचार्य पद पर प्रतिष्ठित है वह सभी मान्य हैं, पूज्य हैं । आचार्य आदिसागरजी अकलीकर का अवर्णवाद कर समाज में अशान्ति पैदा की जा रही है जिससे धर्म की हानि हो रही है । गणिनि आर्यिका श्री विजयमती ने कहा कि आचार्य परमेष्ठी का आदेश निर्देश के अनुसार चलने से देवत्व की प्राप्ति होती है तथा ऊहापोह का वातावरण विक्षात करने से समाज के प्राणघात के समान महान् अपराध होगा । चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुंजर आदि-सागरजी अकलीकर की परम्परा अक्षुण्य चलती आ रही है । जो गुरु प्राप्त है । आचार्य श्री १०८ सुधर्मसागरजी ने गम्भीर यथार्थ और वर्तमान समस्याओ का समाधान आगम की परिप्रेक्षा में बताया

विद्वान् समाज व गृहस्थ को किसी को आचार्य पद देने का अधिकार राजमार्ग नहीं है । आचार्यपद की प्रतिष्ठा गुरु के द्वारा होती है । आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी ने मुनि वीरसागरजी को आचार्य पद दिया । बाद में आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज की सम्मति से मुनि शिवसागरजी को दिया । समाधि के समय आचार्य श्री धर्मसागरजी ने कहा कि मुझको समाज ने आचार्य पद दिया है अत मैं समाज को उसे अर्पित करता हूँ उन्होंने अपना आचार्य पद किसी को भी नहीं दिया तब समाज ने मुनि श्री अजित सागरजी को आचार्य बनाया । आचार्य श्री १०८ अजितसागरजी की समाधि के बाद विवाद की खाई और अधिक गहरी हो गई । पचम पट्टाधीश के भी जीवित रहते ही षष्ठम् पट्टाधीश भी नियुक्ति कर दिये गये इन झगडों और विवादो की उत्पत्ति में समाज पूर्ण रूपेण दोषी है आचार्य परम्परा प्रदत्त से चलती है । आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी अकलीकर परम्परा शुद्ध निर्दोष चली आ रही है । आपने समाधि से पूर्व मुनि महावीर कीर्तिजी को अपना आचार्य पद दिया और आचार्य महावीर कीर्तिजी ने मुनि श्री सन्मति सागरजी को अपना आचार्य पद दिया जो वर्तमान में आपके सामने विराजमान हैं । महामहिम राज्यपाल श्री बलीराम भगत ने माल्यार्पण से श्रद्धाजलि देकर "अन्तिम दिव्य देशना" और "तीर्थंकर बनने का मन्त्र" नामक दो ग्रन्थो का विमोचन किया । २० वीं सदी के प्रथम आचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी अकलीकर के पट्टाधीश आचार्य १०८ श्री महावीरकीर्ति जी महाराज की २२वी पुण्य तिथि पर आपने कहा कि जैन विश्वविद्यालय की आवश्यकता है जिसमे जैन सिद्धान्तो की ही शिक्षा दी जावे । इसके पूर्व उनका अभिनन्दन पत्र आदि से सम्मानित किया तथा अहिसा मानव कल्याण केन्द्र से सम्बन्धित तथा विशिष्ट महानुभावो को प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया गया । समारोह की समाप्ति पर समस्त जैन समाज का प्रीतिभोज स्थानीय तथा आगत जैन समाज को देकर सम्मान किया गया ।

अमर चन्द पाटनी

अहिसा मानव कल्याण केन्द्र

"सम्यक्चारित्राराधना का अमोघ समर्थ साधक पुण्य महोत्सव अवश्य मनाइये ।।"

माघ कृष्णा ६ मंगलवार, ता १-२-९४ को प पू तीर्थ भक्त शिरोमणि आचार्य परमेष्ठी श्री महावीर कीर्तिजी महाराज का २२वा समाधि दिवस (पुण्यतिथि) सकल दिगम्बर गुरु भक्त समाज को विविध कार्यक्रम-आयोजनो द्वारा अवश्य मनाना चाहिए । आपने आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए समाज को जो निधियाँ प्रदान की हैं वे रवि रश्मियों की भाँति सर्व विदित है । आगमोक्त विधि के अनुसार हमारे जीवन को ठोस, और अनुपम शक्तिया प्रदान की हैं । आपने अपनी उद्भट विद्वत्ता और सुदृढ निर्दोष चारित्र एवं कठोर तप साधना से धर्म ध्वजा को सम्पूर्ण भारत मे फहराया । एकान्तवाद के घोर अधकार से निकाल अनेकान्त मार्तण्ड का प्रकाश किया । सर्वविदित है कि आप प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुञ्जर समाधि सम्राट् १०८ आ आदिसागरजी (अंकलीकर) के द्वितीय पट्टाधीश थे । अपनी गुरु परम्परानुसार आपने अपने जीवन के अव्सानकाल में अपना आचार्यपद श्री १०८ परम तपस्वी मुनि सन्मतिसागरजी को प्रदान कर आगमोक्त विधिवत् नि शल्य परम समाधि सिद्ध की । आपके त्याग, ध्यान, कठोर उपसर्ग-परीषह जय, आगम का तलस्पर्शी सम्यग्ज्ञान साधु समाज ही नहीं मानव समाज को युग-युग तक आदर्श मोक्ष मार्ग निर्देशक रहेगा । आपने माघ वदी ६ को मेहसाना (गुजरात) मे स्वर्गारोहण कर अपूर्व आदर्श उपस्थित किया । आपके पद पर आसीन प पू तपस्वी सम्राट्, वात्सल्य रत्नाकर श्री १०८ आ सन्मतिसागरजी महाराज भी आपके पदचिह्नो पर चलते हुए देव शास्त्र, गुरुभक्ति का सन्देश-धर्मोपदेश प्रदान कर जन-जन का आत्म कल्याण कर रहे हैं । ऐसे महान् गुरुवर्य के अमर गुणों का स्मरण कर हम अपना आत्म कल्याण करें । गुरुभक्ति ससार सागर पार करने को सुदृढ़ नौका है । आपका स्मरण ज्ञानी, ध्यानी, मौनी बनने का पावन उपदेश प्रदान करेगा ।

5-1-94

दौलत राम जैन, अध्यक्ष
दिगम्बर जैन समाज मेड़ता

केशलोंच समारोह

मेडता सीटी (राज) २७ दिसम्बर को प पू १०८ तपस्वी सम्राट् आ श्री सन्मतिसागरजी महाराज का ससंघ आगमन हुआ । प्रतिदिन आचार्य श्री का धर्मोपदेश होता है । २ जनवरी को बहुसंख्यक सभा में आ विनयप्रभा माताजी का केशलोंच हुआ । इसी अवसर पर समाज की ओर से, सघ लाने वाले श्री विमल कुमार जी पाटनी के माध्यम से कालू समाज का तथा बलूंदा निवासी श्री रिखभचन्द्रजी कासलीवाल का स्वागत किया गया । विद्वानों के भाषण हुए । प्रथम गणिनी आर्यिका विजयमतीमाताजी ने सबोधन देते हुए कहा कि आचार्य श्री की त्याग तपस्या बेजोड़ है । जिस प्रकार श्री आदिनाथ भगवान् ने धर्म तीर्थ का प्रवर्तन किया था उसी प्रकार वर्तमान २०वीं सदी की अपेक्षा श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज श्रमण सस्कृति के सरक्षक तथा निर्दोष मुनिचर्या के प्रवर्तक थे । आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज, आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज जैसे तपस्वी ने भी आपका शिष्यत्व स्वीकार किया था । सर्वप्रथम निर्दोष निर्ग्रन्थ वेश को धारण करने वाले आपको मुनिधर्म का प्रवर्तक कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं । आप सदा एकान्त निर्जन वन मे निवास करते थे, शेर भी परिक्रमा देकर नमस्कार कर चला जाता था । आपने १४ दिन की यम सल्लेखना पूर्वक समाधि धारण कर वीर मरण किया, जो अभूतपूर्व अनोखा आदर्शमय कार्य था । देवगण भी उस समाधि महोत्सव को मनाने के लिए पृथ्वी तल पर उतर आये । समाधि के समय अत्यन्त मधुर दुंदुभि बाजे बिना बजाये आकाश मे बजने लगे । आधे घंटे तक उस वाद्य ध्वनि को लोगो ने सुना । सम्पूर्ण जीवन चर्या बेजोड़ थी । हर शनिवार को आहार करते यदि शनिवार को आहार नहीं मिला तो भी पूर्ववत् क्रम रहता था । आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज ने आपके पास मुनि दीक्षा ग्रहण की । उत्तर और दक्षिण भारत को जोड़ने वाली यह धर्म की कड़ी दिगम्बर श्रमण सस्कृति को शक्तिशाली बनाने मे बड़ी सहकारी रही । श्रमण परम्परा को गति विधि प्रदान करने वाले आपके द्वारा भव्य जनों का जो उपकार हुआ है, वह सर्वोपरि है । इस अवसर पर व्रत, नियम, संयम धारण कर मनुष्य जीवन को सफल बनाना चाहिए । प पू आचार्य श्री ने सभा को सम्बोधन करते हुए सवेग वैराग्योत्पादक मगलमय आशीर्वाद देते हुए बताया है कि प्राणीमात्र का कल्याण अनेकान्तवाद से ही सम्भव है । सभी भव्य जीव सम्यक्त्व धारण करें । जुलूस मे श्री जिनेश्वर प्रभु का रथ भी विशेषोत्सव का हेतु रहा । प्रधान अतिथियो में श्री डी एन जोशी सेसन जज पधारे ।

भवदीय

दिलीप कासलीवाल, मेड़ता सिटी

// श्री महावीराय नमः //

मदनगज, किशनगढ (राज) १८ २ १९९४

जन्म जयन्ति मनाई गई

मदनगज-किशनगढ (राज) यहाँ पर आचार्य १०८ श्री सन्मति सागरजी महाराज की जन्म जयन्ती मनाई गई । जिसके उपलक्ष म १३ फरवरी से १७ फरवरी, १९९४ तक ५१ हजार माला णमोकार मत्र का जाप्य किया गया । दोपहर को मडल विधान पूजा की गई । इसी बीच राष्ट्र सन्त आचार्य १०८ श्री सुधर्म सागरजी ने उसका महत्त्व बताते हुए कहा कि यह परमात्मा का रूप है । गणिनि आर्यिका १०५ श्री विजयमती माताजी, आर्यिका १०५ श्री नगमती एवं ब्रह्मचारिणी मैना बाई सहयोगी रहे । सघस्थ साधुओ ने भी जाप्य किये । १८ फरवरी को प्रात. प्रभात फेरी निकाली गई तथा आचार्य श्री का सघ ने पाद प्रक्षालन पूजन पीच्छी परिवर्तन एव शास्त्र भेट किये । दोपहर को भव्य रथ यात्रा मुख्य मार्ग से होती रवीन्द्रमच के मैदान मे पहुँची जिसमे समस्त सघ के साथ हजारो की सख्या मे नर नारी सम्मिलित थे । वहाँ पर एक वृहद्ध सभा का आयोजन किया गया । इसके मुख्य अतिथि जिलाधीश अजमेर श्रीमान् सोहन लालजी थे, जिनका समाज ने स्वागत किया । जिलाधीश महोदय ने गुरुवाणी नामक ग्रन्थ का विमोचन किया एव आभा एण्ड क के द्वारा एकागी नाटक किया गया और अल्प वयस्क के सगीत सुनाया गया उनको पुरस्कार दिया तथा अपने वक्तव्य मे बताया कि उनके आदर्शों को हम हमारे जीवन मे उतारे । प्रो सुशील अजमेर ने मगलाचरण के साथ सभा का सचालन किया । सौ गुणमालाबाई ने सगीत प्रस्तुत किया । प विद्याकुमार जी अजमेर श्री धर्मचन्दजी ब्यावर ने अपनी विनयाजली प्रस्तुत की । आर्यिका विजय प्रभाजी, आर्यिका विनय प्रभाजी, आर्यिका विमल प्रभाजी ने उनके जीवन पर प्रकाश डाला । आर्यिका नगमति माताजी ने बताया वीतरागी साधु अपने ज्ञान चारित्र के बल से स्व पर कल्याण करते है उनकी जन्म-जयन्ती मनाई जाती है । इसी बीच समाज ने बोली के माध्यम से पीछी परिवर्तन श्री सुबोध कुमार जी ने कराया, शास्त्र भेट श्री निर्मल कुमार जी छाबडा मदनगज ने किया । कमण्डल श्री वीरचदजी दिल्ली ने दिया । पादप्रक्षालन श्री रवीन्द्र कुमार नागपुर ने किया । ब्र मैनाबाई का ओजस्वी भाषण हुआ । पथम गणिनि आर्यिका श्री विजयमती माताजी ने बताया कि आचार्य श्री ने ओमप्रकाश नाम को सार्थक किया अपने जीवन मे ही नहीं बल्कि अन्य भव्य आत्माओ के जीवन मे भी दर्शन ज्ञान चारित्र उतारा है । उनकी तपस्या भी प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्य १०८ श्री आदिसागरजी (अकलीकर) के पट्टाधीश आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज से कम नहीं है । राष्ट्रसत आचार्य १०८ श्री सुधर्म सागरजी ने बताया कि जन्म जयन्ती ओम प्रकाश की मनाई गई, आचार्य सन्मति सागर की नहीं क्योकि आचार्य सन्मति सागरजी तो अमर हो गये । नाम काम पहले से ही अकित है । युवा पीढी को प्रोत्साहन देते हुए कहा कि उनका यह अल्प समय का कार्य जिन धर्म की महा प्रभावना के लिए हो गया । वे अपने जीवन मे जिन धर्म प्रभावना करते

रहें । आचार्य श्री १०८ सन्मति सागरजी ने आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा कि यह जन्म जयन्ती की सार्थकता यह कि हम हमारी आत्मा में दर्शन ज्ञान चारित्र को जन्म देवें । अन्त मे ५६ दीपको से आरती हुई । जैन समाज, महेश्वरी समाज और अग्रवाल समाज, खण्डेलवाल समाज को प्रसादी दी गई ।

"पावन समाधि दिवस मनाइये"

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुञ्जर सम्राट् आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) इस शताब्दी के महान् तपस्वी थे । आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी को अपना पट्टाधीश बनाया था । आप आचार्य शान्तिसागरजी से पहले हुए थे । आपकी समाधि ५२ वर्ष पूर्व ४ मार्च फागुन वदी, १३ सन् १९४३ को ऊदगाँव (कुञ्जवन) मे सातिशय हुई थी । मुनिदीक्षा मार्गशिर शुक्ला २ सन् १९१३ मे कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र पर स्वय सिद्ध साक्षी पूर्वक ग्रहण की थी । अनेको भव्यजीवो को, मुनि, आर्यिका, ऐलक क्षुल्लक, क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की थी । उनका बहुत विशाल सघ था । आचार्य शान्तिसागरजी (दक्षिण) गृहस्थावस्था में उनको आहार देते थे, कमण्डलु मे पानी भरते थे । दूधगगा, वेदगगा नदी कंधे पर बैठाकर पार कराते थे । आचार्य आदिसागर सात-सात दिन के बाद आहार लेते थे । देश, राष्ट्र प्रजा का उद्धार किया । हिंसा और मिथ्यात्व के ताण्डव नृत्य का नाश किया । महाशिवरात्रि गुरुवार, सन् १८६६ को जन्म लिया था । आपका जन्म नाम शिवगौडा पाटील था । पिता का नाम सिद्धगौडा पाटील, माँ का नाम अक्काबाई । माता-पिता के धार्मिक संस्कारों का आपके हृदय मे अद्भुत प्रभाव पड़ा । आप परम दयालु थे । शारीरिक शक्ति भी बेजोड थी । इसका उपयोग आपने अपने नगर की भूख से पीडित जनता और जिनालय के नव निर्माण मे किया । आप अपने समय की अपूर्व विभूति थी । शिथिलाचार का प्रचार-प्रसार था । ऐसे कठिन समय में आपने निर्दोष रत्नत्रय का पालन कर हम लोगों को वीतराग जिन मुद्रा का आदर्श उपस्थित किया । आज उन्हीं के मार्ग का सब अनुकरण कर रहे हैं ।

उन २०वीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुञ्जर सम्राट् आदि सागरजी (अकलीकर) का ५२वाँ समाधि महामहोत्सव फागुण कृष्णा १३, दिनांक १० मार्च, सन् १९९४ गुरुवार को अपनी शक्ति, भक्ति श्रद्धानुसार रथोत्सव, शास्त्र सभा, पूजन विधान आदि के आयोजनो पूर्वक मनाकर सातिशय पुण्यार्जन करिये ।

भवदीय–ब्र. मणिलाल जैन, भीमपुर, जि बासवाड़ा (राज)
संघस्थ आचार्य १०८ श्री सन्मति सागरजी महाराज

चतुर्थ काल के मुनि

(लेखक—न्यायालंकार, पं मक्खनलाल जी शास्त्री, आचार्य मोरेना महाविद्यालय)

श्रीमंत कुदकुदाधा· आचार्य मुनिपुगव· ।
शान्ति सार पर्यन्त तान् बंदे भावतोऽधुना ॥

दक्षिण के वयोवृद्ध मुनिकुञ्जर आचार्य १०८ श्री आदिसागर जी की दृष्टि जब कम हो गयी थी और उन्हे आहार-विहार मे बहुत कम दिखने लगा तब उन्होने मुनिचर्या के पालने मे बाधा समझकर बिना किसी रोग के समाधिमरण का नियम ले लिया । चारो प्रकार के आहार का त्याग कर दिया । उस समय उनकी वैयावृत्ति करने के लिए आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज, मुनिराज नेमिसागरजी एव अन्य साधु ऐलक क्षुल्लक और हमारे श्रावक भी पहुँच गये थे । समाधिस्थ मुनिकुञ्जर आचार्य १०८ श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) ने बिना अन्न जल ग्रहण किये बडी शान्ति और सावधानी से १४ दिन व्यतीत कर ऊदगाँव के टेकरी (कुञ्जवन) पर शरीर त्याग किया । क्या यह आदर्श चतुर्थ काल के मुनियो से कम है ।

वर्तमान मुनिराज नेमीसागर जी, मुनिराज वीर सागरजी महाराज, मुनिराज आदिसागरजी आदि भी कितनी तपश्चर्या और परीषह सहन करते हैं यह बात उनके चरण सान्निध्य मे रहने वाले ही जान सकते हैं । वर्तमान तपस्वियो मे सर्व प्रथम सर्व प्रधान एव सर्व शिरोमणि वीतराग तपोमूर्ति योगीन्द्र चूडामणि श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज है । आचार्य महाराज ने तीन ऐसे असाधारण कार्य किये है जो दूसरे से साध नही हो सकते हैं । एक तो यह कि उन्होंने उत्तर हिन्दुस्तान मे बिहार कर धर्म देशना, दूसरे धवलादि शास्त्रो का ताम्र पत्र पर खुदा कर सुरक्षित करना, और तीसरे धर्मायतनो की रक्षा करने के लिए उपवासादि द्वारा जनता में जागृति उत्पन्न करना । उक्त तीनो ही असाधारण कार्य हैं जो सर्व विदित हैं ।

शास्त्रकारो ने मुनियो के दो भेद बताये है । (१) जिनकल्पी (२) स्थविर कल्पी । जिनकल्पी मुनि उन्हें कहा गया है जो उत्तम सहनन के धारण हो उसी भव से मोक्ष जाने की जिन की पात्रता हो और जो निराहार छह मास तक एक आसन से ध्यान लगाकर बैठे रह सकें, ऐसे

साधु नगर में न रहकर जंगल में उन सिंहादिक क्रूर जानवरों के मध्य में रहते हैं । उनके शरीर संहनन की सामर्थ्य बहुत प्रबल होती है । जितनी उनकी सामर्थ्य होती है उतना ही कठिन तपश्चरण और प्रभाव होता है जिससे हिसक जीव भी देखकर शान्ति लाभ करते हैं । परन्तु स्थविर कल्पी ऐसा करने में असमर्थ है । उनका हीन संहनन होता है । अत. सहनन से २८ मूल गुणों को पालते हैं परन्तु उनकी इतनी सामर्थ्य नहीं हो सकती है जो निर्जन वन मे रह सके और निर्विघ्न अपना आत्म साधन कर सके । ऐसे मुनियो के लिए नगर मे रहने का विधान है ।

यह अनुभव और निश्चय शास्त्र के आधार से प्रत्येक जैन को करना चाहिए कि जब तक जगत में मुनियों का प्रादुर्भाव और अस्तित्व रहता है तभी तक जैन धर्म का अस्तित्व अथवा मोक्ष मार्ग का पूर्ण रूप सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रहता है । मोक्ष मार्ग का एक देश तो चारों गतियों में रहता है परन्तु रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग मुनियों के प्रगट होने पर और उनके सद्भाव रहने तक ही रहता है । भोग भूमि समाप्त होने पर कर्म भूमि के प्रारम्भ मे मोक्ष मार्ग तभी प्रचलित हुआ जबकि आदि तीर्थंकर आदिनाथ भगवान ने मुनिव्रत धारण किया । इसी प्रकार जैन धर्म और मोक्ष मार्ग का सद्भाव पंचम काल मे तभी तक रहेगा जब तक कि मुनि अर्जिका का सद्भाव रहेगा उनके समाधि मरण करने पर ही धर्म का लोप हो जायेगा । इसी प्रकार यह बात भी निश्चित है कि जब तक मुनियो का अस्तित्व है तभी तक श्रावक धर्म भी रह सकता है । आदिनाथ भगवान के मुनि होने पर ही श्रावक धर्म प्रारम्भ हुआ और पचम काल में अन्त में मुनियो की समाप्ति में श्रावक धर्म भी समाप्त हो जाता है । श्रावकों का उद्धार एवं उनका सच्चा हित मुनि धर्म से ही हो सकता है । वही उनका परम आदर्श है । पुलाक व कुश आदि जो शास्त्रो में मुनियो के पाँच भेद बताये हैं वे चौथे काल मे भी पाये जाते हैं । उन भेदों पर दृष्टि डालने से वर्तमान मुनियो का स्वरूप और उनकी चर्या चतुर्थ काल के पुलाकादि मुनियो से किसी प्रकार कम नहीं है किन्तु समता एवं विशेषता भी रखती है । अन्त मे यही निवेदन है कि योगेन्द्र चूडामणि परम पूज्य आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज के दर्शन, स्तवन पूजन करने का सुअवसर एव सौभाग्य प्रत्येक जैन बंधु को प्राप्त करना चाहिए ।

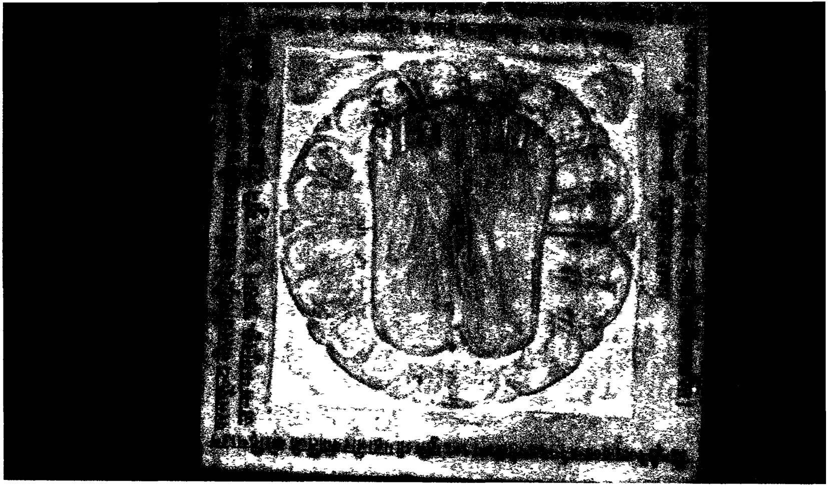
(साभार-हुकुमचंद अभिनन्दन ग्रन्थ)

प. पूज्य चा. च. आ. श्री 108 आदिसागर महाराज की चरण पादुका की स्थापना

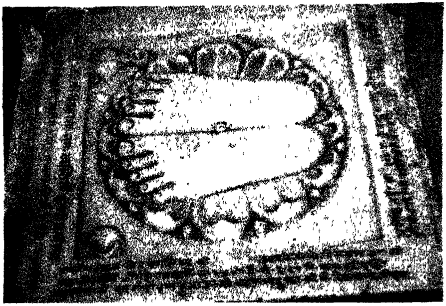
श्री प्रभुलाल राणा

मुरलीधरजी राणा की नशिया

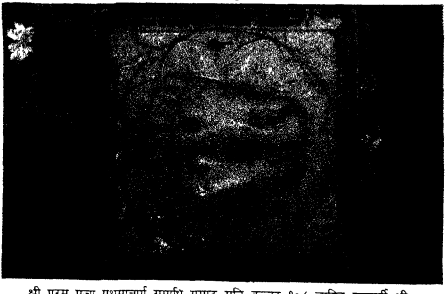
जयपुर (राज) खानिया (देशभूषण नगर) मे २० मार्च से ३० मार्च तक कल्पद्रुम महामण्डल विधान का आयोजन हुआ, जिसमे श्री गिरिराज जी राणा, श्री रामावतार जी राणा, श्री भागचन्दजी बाकलीवाल, श्रीपालजी जैन इन चक्रवर्तियो ने तथा स्थानीय बहुत लोगो ने भाग लेकर सातिशय पुण्यार्जन किया । नित्य प्रात पञ्चामृत अभिषेकपूर्वक विधान प्रारम्भ होता था । सायकाल आरती, ब्र मैना बाई, ब्र मजू बाई के प्रवचन एव सगीतज्ञ निराला शिरोटी के द्वारा सगीत के कार्यक्रम भी हुए । २९ मार्च को प्रात हवन हुआ तदनन्तर प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुञ्जर सम्राट् आदिसागर जी (अकलीकर) की चरण पादुका श्री प्रभुलाल जी राणा ने विराजमान की । प पू प्र गणिनी १०५ आर्यिका विजयमती माताजी की ३३ वे दीक्षा दिवस पर श्री रतनलाल जी राणा ने पीछी प्रदान की । श्री गिरिराज जी राणा ने वात्सल्य रत्नाकर ग्रन्थ प्रदान किया, सभा का समस्त कार्यक्रम श्री शीतलचन्दजी प्रोफेसर सस्कृत महाविद्यालय ने सम्पन्न कराया । इसी सदर्भ मे ३० मार्च को प्रात चूलगिरि पर भगवान् महावीर प्रभु का पञ्चामृत महामस्ताभिषेक हुआ । पश्चात् श्री रतनलाल जी राणा ने पूज्या माताजी के चित्र का अनावरण किया । श्री शीतलचन्द्र जी प्रोफेसर ने श्री दिगम्बर जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति झोटवाडा से प्रकाशित "उद्‌बोधन" ग्रन्थ का विमोचन किया और उन्होने बताया कि पू माताजी के साहित्य का अध्ययन सबको करना चाहिए, कृतित्व पक्ष से व्यक्तित्व पक्ष का परिचय भी स्वत हो जाता है । सघस्थ आर्यिकाओ ने तथा श्री मिलापचन्दजी शास्त्री ने विनयाजलि अर्पित कर गुरुभक्ति प्रगट की । समयाभाव से अन्य वक्ताओ को अवसर न मिल सका । ग आर्यिका श्री विजयमती माताजी ने महामण्डल विधान का महत्त्व बताते हुए कहा कि मेरे पास जो भी है वह सब उन महागुरुओ की देन है । विशिष्ट अतिथियो का ताम्रपत्र द्वारा सम्मान किया गया । राष्ट्रसत आचार्य सुधर्मसागरजी ने बताया कि त्याग, सयम का वरण और दीनता का क्षय करना ही दीक्षा है । इस अवसर पर आप सब नियम करें कि हम किसी सयमी, त्यागी, सच्चरित्री की निन्दा नहीं करेगे । आचार्यरत्न श्री सन्मति सागरजी महाराज ने आशीर्वाद देते हुए पूज्या माता जी को ज्ञान चिन्तामणि की उपाधि से अलकृत किया । रथ यात्रा निकाली गई तथा सभी साधर्मी बन्धुओ को भोजन दिया गया ।



२०वीं सदी के प्रथमाचार्य चा. च. मुनि कुंजर समाधि सम्राट १०८ आचार्य श्री आदिसागर (अंकलीकर) की चरणपादुका [illegible] की नसियां-खानियां जयपुर के मन्दिर में अन्दर स्थापित।



ॐ नम सिद्धेभ्य श्री वीतरागायनम स्वस्ति श्री मूलसघ श्री मदाचार्य कुन्दकुन्दाम्नाय सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री स स आ आदि सागरजी महाराज के प्रथम शिष्य आध्यात्म्य योगी सम्राट आ श्री महावीर कीर्तिजी महाराज का वि स १९५- वि स २०२८ ति माध बदी ६ को महसाना मे स्वर्गारोहण हुआ उनकी चरणपादुका श्री प रेवाचन्दजी द्वारा प्रतिष्ठित है, श्री १०८ गणधर कुन्थुसागरजी तथा आ श्री १०५ ग विजयमतीजी के उपदेश से रानिया मे विराजमान की मि का सु गुरुवार स २०१०



श्री परम् पूज्य प्रथमाचार्य समाधि सम्राट मुनि कुञ्जर १०८ चारित्र चक्रवर्ती श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज के पट्टाधीश श्री प पू समाधि सम्राट श्री १०८ आचार्य परमेष्ठी श्री महावीर कीर्तिजी गुरुदेव की चरणपादुका ।
प्रस्थापित तिथि १२९४ स्थान बडाधडे की नशिया अजमेर

स्मृति

卐 जय जिनेन्द्र 卐

परमपूज्य समाधि सम्राट आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज के परमाराध्य गुरु देव परमपूज्य विश्ववद्य चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बर जैनाचार्य वीतराग सत आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज की ४ मार्च, गुरुवार फाल्गुन वदी १३ सन् १९४३ को सातिशय समाधि हुई। उन्होने महाराष्ट्र के सागली जिले के अन्तर्गत अकली ग्राम मे महाशिवरात्रि गुरुवार सन् १८६६ मे जन्म लिया था। सन् १९०६ मे क्षुल्लक दीक्षा एव उसके ७ वर्ष बाद मगसर शुक्ला २ को मुनि दीक्षा कुथलगिरि सिद्धक्षेत्र मे भगवान कुलभूषण-देशभूषण की साक्षी मे ग्रहण की थी। इसके दो वर्ष बाद श्रुत पचमी गुरुवार को आचार्य पद और एक वर्ष के उपरान्त भगवान आदिनाथ पचकल्याणक महोत्सव में चारित्र चक्रवर्ती पद मिला था। "देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्यराज्ञ करोतु शान्ति भगवान जिनेन्द्र ।" इस चरण को चरितार्थ किया था। सत्य, अहिंसा धर्म का प्रचार प्रचुरता से किया था। मासाहार का निषेध और शाकाहार मे परिणमन कराया था। सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और सम्यग्तप की निर्दोष आराधना की थी। अनेकों श्रावक, श्राविकाओ को मुनि, आर्यिका दीक्षाएँ थी। आचार्य श्री शान्तिसागरजी (दक्षिण) ने स १९७३ मे ऐलक पद धारण कर आपको गुरु बनाया था। प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) का प पू श्री १०८ स्व आचार्य श्री शिवसागर स्मृतिग्रन्थ मे, प श्री तेजपाल काला साहित्य भूषण सह सपादक जैन दर्शन तथा सयुक्त मत्री भा शान्ति वीर सिद्धान्त सरक्षणी सभा नादगाँव (नासिक) ने, दि जैन साधु परिचय मे ब्र प धर्मचन्द शास्त्री ज्योतिषाचार्य सघस्थ आचार्य धर्मसागरजी महाराज ने, चारित्र चक्रवर्ती मे आचार्य शान्तिसागरजी (दक्षिण) ने, शीतल विलास मे क्षुल्लकमणी शीतलसागरजी ने, ज्योतिर्धर मे आचार्य देशभूषणजी ने, विद्वदभिनन्दन ग्रन्थ में डॉ लाल बहादुर शास्त्री दिल्ली ने, प विमल कुमारजी सौरया टीकमगढ़ ने, अनोखा तपस्वी मे ब्र सूरजमल जी निवाई ने, प्रवचन निर्देशिका मे गणिनी आर्यिका ज्ञानमतिजी ने, दिगम्बर मुनि में गणिनी आर्यिका ज्ञानमतिजी एव पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागरजी ने, मुक्तिदूत मे संतोषीलाल मेहता अध्यक्ष महासभा उदयपुर ने, दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि मे बाबू कामता प्रसादजी अलीगज (एटा) ने, भगवान महावीर और उनका तत्त्वदर्शन में आचार्य रत्न श्री १०८ देशभूषण महाराज विद्यालंकार ने, श्री वृहज्जिनवाणी सग्रह में स्व पन्नालाल बाकलीवाल सुजानगढ़ निवासी ने, जैन वीर में निर्मल कुमार सेठी अध्यक्ष महासभा, त्रिलोकचन्द कोठारी महामंत्री महासभा कोटा, नेमीचंद बाकलीवाल इन्दौर सं कार्याध्यक्ष महासभा ने, आद्य ज्योति में माणकचन्द पालीवाल कोटा उपाध्यक्ष महासभा कोटा,

पं राजकुमार शास्त्री निवाई, बालाचार्य योगीन्द्र सागरजी, राजकुमार बडजात्या कोटा, राजेन्द्र कुमार बज कोटा महासमिति ने, अनागार आवश्यक मे प्रेमचन्द सरवाडिया कोटा ने, रत्नचन्द्रिका में हीरालाल सेठी इन्दौर, प छोटेलाल वरैय्या उज्जैन ने, सागर के मोती में रतनलाल कोटा ने, सर्वोदय तीर्थ ग्रन्थ में आचार्य अभिनन्दन सागर ने, खडेलवाल जैन समाज का वृहद् इतिहास तथा जैन समाज का इतिहास में डॉ कस्तूरचन्द कासलीवाल जयपुर ने और स्मारिका श्रमणभारती मे डॉ श्रेयांश कुमार एव डॉ सुशील कुमार ने स्मरण करते हुए गुणगान गाया है ।

ऐसे महापुरुष, महात्मा, विश्ववद्य, दक्षिण केसरी परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री आदिसागरजी (अंकलीकर) का ५१वाँ समाधि दिवस (पूण्य तिथि) फाल्गुण कृष्णा १३ दिनांक १९ फरवरी, सन् १९९३ शुक्रवार को मण्डल विधान, शास्त्रसभा, शोभायात्रा इत्यादि आयोजनो द्वारा अवश्य मनाइये ।

पेषक–कुन्थीलाल बैद,
मत्री चातुर्मास व्यवस्था समिति,
मदनगज-किशनगढ (राज)
सुरेश चन्द्र जैन ''लवली'',
मत्री श्री दि जैन मन्दिर घेरखोखल एव
मुनिसेवा व्यवस्था समिति फीरोजाबाद

卐 श्री ॐ श्री 卐

समाधि दिवस सम्पन्न

जयपुर (राज) खानिया राणाजी की नसिया में ३ मार्च को आचार्य रत्न सिद्धान्त चक्रवर्ती सन्मतिसागरजी महाराज, आचार्य सुधर्मसागरजी महाराज, प्र ग आ विजयमती माताजी संघ सहित पधारे । नित्य दोपहर को भगवती आराधना पर प्रवचन होते हैं । प पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) का ५२वाँ समाधि दिवस का आयोजन फाल्गुन कृष्णा १३ गुरुवार, १० मार्च को हुआ । जिसके उपलक्ष में ८ मार्च को प्रात: णमोकार मत्र का पाठ २४ घंटे के लिये किया गया । ९ मार्च को प्रात: दोनों आचार्यों, ५ मुनिराजों, ४ आर्यिकाओं और १ क्षुल्लिका का केशलोंच सम्पन्न हुआ । उसी विशाल जन समुदाय में पधारे हुए राजस्थान शिक्षामंत्री ललित किशोर ने स्वागत कार्य के पश्चात् बताया कि मुनियों के दर्शन के बाद उन जैसे अपरिग्रही बनने का भाव आना चाहिए । प्रो शीतलचंदजी ने कहा कि अपरिग्रह का प्रतीक केशलोंच है । प पू प्र ग आ विजयमतीमाताजी ने कहा कि केशलोंच करने का अभिप्राय इन्द्रियो को अपने विषयो से हटाना है । राष्ट्र सत आचार्य सुधर्मसागरजी ने बताया कि केशों को निकालना कषायों का निर्मूलन है । मनुष्य को नारदीय कार्य छोडकर मनुष्य रूप से जीना चाहिए । आचार्य श्री सन्मतिसागरजी ने आशीर्वाद देते हुए बताया कि यह केशलोंच प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुंजर आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) के ५२वे समाधि दिवस के उपलक्ष में किया गया है । उनकी समाधि नेत्र ज्योति मंद हो जाने के बाद १४ दिन के उपवासपूर्वक श्रेष्ठ समाधि बडे शान्त परिणाम से हुई थी । उस समय आचार्य शान्तिसागरजी, आचार्य महावीर कीर्तिजी, मुनिराज नेमिसागरजी और भी अन्य साधु ऐलक, क्षुल्लक, श्रावक श्राविकायें बडी संख्या में वैय्यावृत्ति के लिए पहुँचे थे । इस प्रकार केशलोंच समारोह सम्पन्न हुआ ।

दोपहर को णमोकार मंत्र का विधान संघ सान्निध्य में हुआ । दूसरे दिन प्रात· प पू आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) की पादुका का अभिषेक पूजन किया गया । मध्याह्न प पू २०वीं शदी के प्रथमाचार्य-चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुञ्जर श्री तपस्वी सम्राट आ आदिसागरजी (अंकलीकर) की जयघोष के साथ सभा का प्रारम्भ करते हुए राष्ट्र संत आ सुधर्मसागरजी ने बताया कि वे आत्म साधना मौन पूर्वक करते थे अत: वे महान् थे । अरहंत और आचार्य के मध्य का पद मुनि कुंजर सम्राट् होता है जिसे निमित्त ज्ञान शिरोमणि वात्सल्य रत्नाकर आ विमलसागरजी महाराज के शब्दों में देखिये "अरहंत और आचार्य अर्थ का बोधक यह मुनिकुञ्जर

सम्राट् पद है अत आप आचार्य थे घोर तपस्वी भी थे ।" अधिक बोलने वाला महान् नहीं कहा जा सकता । निन्दा टीका टिप्पणी से बचना चाहिए और स्तुति स्तवन करके कर्मों की निर्जरा करनी चाहिए । हमने उनको नही देखा ऐसा बोलने वाले सत्य का खात्मा (सहार) करते हैं, अरहत सिद्ध को नकारते हैं, अपने बाप-दादो के अस्तित्व को नहीं मानते । आ श्री शान्तिसागरजी के विषय में हमे कोई विवाद नहीं है । आ धर्मसागरजी ने अपनी समाधि के समय कहा कि मेरे पास मेरे गुरु का पद नहीं है न उन्होंने दिया है । समाज ने मुझे आचार्य पद दिया अत मैं भी उस पद को समाज को ही सौंप देता हूँ । धर्म व सत्य आचरण ही साथ में जायेगा । विश्वासघात नहीं करना चाहिए । आज के दिन हम मिथ्यात्व का वमन करे, इन्द्रिय प्रवृत्तियों को सुधारें, सत्य को स्वीकारें । आर्यिका विजयप्रभा जी, आर्यिका सुबुद्धिमती जी ने उनके संस्मरण सुनाये । श्री मदनलालजी चांदवाड रामगंजमडी वालों ने बताया कि मुनि कुजर सम्राट् आ आदिसागरजी महाराज प्रमाणित हैं उनके विरुद्ध पर्चे निकालना इत्यादि कार्य तो लोग ईर्ष्यावश कर रहे हैं वे महान् तपस्वी थे, महान् योगी थे तथा आ महावीर कीर्तिजी के गुरु थे । वस्तुत आप सबको तो सघ की सेवा भक्ति करनी चाहिए । आहार दान देना चाहिए । जो विरोधी झूठा बोलते है, लिखते हैं, उनके झगडे टटे मे न पडे । पाप का मूल अभिमान है । सघ की हर प्रकार से सेवा करें । मैं उन प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुञ्जर सम्राट् (अकलीकर) के चरणो में श्रद्धाजलि समर्पित करता हूँ । प जिनचन्द्र शास्त्री ने बताया कि उनके द्वारा ही (उनकी प्रेरणा से) अकलीग्राम के आदिनाथ मदिर का निर्माण एव प्रतिष्ठा हुई उस समय आपको चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया था । उनकी समाधि कुंजवन मे हुई थी । उस भूमि की महिमा आ पायसागरजी आ सुधर्मसागरजी आदि ने गाई है । श्री गिरराज जी राणा ने कहा कि मुनियों की निन्दा नहीं करनी चाहिए । उनके उपदेश सुनकर आचरण को सुधारना चाहिए । श्री आ देशभूषण जी के आने के बाद यहाँ के लोगों मे विशेष धर्म भावना जागृत हुई ।

प्रो टीकमचन्द जी दिल्ली ने बताया कि उनको (आ आदिसागरजी को) लोकेषणा ख्याति पूजा की चाह नहीं थी इसलिए आत्म कल्याण के मार्ग मे अडिग बने रहे । समाधि करने से जब सरकार ने उनको रोका तो उसका विधिवत् समाधान किया और समाधि सिद्ध की । शरीर और आत्मा का तो साझा है । जब शरीर धोखा देता है तब तू तेरा मैं मेरा यह फैसलाकर विवेकी जन शरीर का संबंध छोड़ देते हैं । जन्म मे दु ख होता है पर मरण मे दु ख भाज्य है, होवे और नहीं भी होवे । मरने की कला सर्वप्रथम प पू चा च मुनि कुञ्जर सम्राट् आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) ने बताया । प्रलोभन का त्याग करने वाला अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है । विवादो को छोडकर भक्ति करनी चाहिए । प पू ग आ विजयमती माताजी ने कहा कि उन परम गुरुदेव आ महावीर कीर्तिजी महाराज के दीक्षा गुरु प पू चा च मुनिकुञ्जर सम्राट् आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) का जीवन परिचय जो बताया गया है वह प्रत्यक्ष उस समय संघ की सेवा में रत सांगली निवासी सरस्वती बाई आरवाडे भरमप्पा सांगली के आधार से बताया है । प्रो शीतलचन्दजी शास्त्री ने कहा कि आज प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुँजर सम्राट् आ

आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) ने आज से ५२ वर्ष पूर्व फाल्गुन कृष्णा, १३ गुरुवार, ४ मार्च, सन् १९४३ को ऊदगाँव कुंजवन में समाधि की थी और १२८ वर्ष पूर्व जन्म लिया था। मगशिर शुक्ला २, सन् १९१३ को मुनि दीक्षा ली थी। जीवन की दो तिथियाँ महत्त्वपूर्ण होती हैं जिसकी पुनरावृत्ति होनी चाहिए। (१) दीक्षा तिथि (२) समाधि दिवस। पुण्य तिथि शब्द का प्रयोग गृहस्थों में भी होने लगा है अतः विवेक को रखते हुए समाधि दिवस शब्द का प्रयोग करना चाहिए। समाधि सिद्धि के लिए ५ बातें सदा ध्यान में रखें-(१) तथ्य का मनन (२) मिथ्यात्व का वमन (३) कषाय का शमन (४) इन्द्रियों का दमन (५) आत्म रमण। इन पाँचों से नियमित रूप से समाधि होती है। आचार्य श्री ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि यह राणा जी की नशिया पवित्र स्थान है। यहीं पर सोनगढ़ का विवाद समाप्त हुआ था। सुख चाहने वाले को आगम पर दृढ़ आस्था रखते हुए उसे स्वीकार करना चाहिए।

प्रभुदयाल राणा, खानिया, जयपुर

चारित्र चक्रवर्ती आचार्यरत्नादिसागरः

विश्वेऽस्मिन् अयम् भारतवर्षो प्रारम्भत एव ऋषिमहर्षीणाम् जन्मभूमि. । तीर्थंकर प्ररूपित वीतराग जिनधर्मस्य छत्रछायायां अनेक श्रमणसाधुभि: स्वकीयात्मसाधना कृत्वा मोक्षलक्ष्मी: उपार्जिता । तस्यैव श्रमणपरम्पराया तीर्थंकरो भगवान् महावीरो जात तस्य परम्पराया एकादश-गणधरादय: समुत्पन्ना:, तै तस्य श्रुतपरम्परा संरक्षिता ।

गुणधर, धरसेन, भूतबली कुन्दकुन्द समंतभद्र-पूज्यपाद-अकलकदेव-विद्यानन्द वीर सेनामृतचन्द्रजयसेनप्रभृतय अनेका श्रुतधराचार्या· सजाता । यै· श्रुतधराचार्यै अनेका: महाग्रन्था: प्रणीता· तथा वीरशासन प्रभावनाया स्वकीययोगदानं प्रदत्तम् ।

विशतिशताब्दौ अस्मिन् पुनीत परम्पराया श्रमण संस्कृति· लुप्तप्राय सजाता । ऋषि मुनीना दर्शनर्मपि दुर्लभ जातम् । तदानीं मुनिधर्मोन्नायक चारित्र चक्रवर्ती वीतरागमार्गोपदेष्टा आचार्य प्रवर नाम्ना आदिसागराचार्य अंकलीकर निर्ग्रन्थाचार्य सजात । अधुना तस्य पुण्यप्रभावफल प्रतीका श्रमणसस्कृति-संरक्षिका ऋषिमुनिसस्था सम्पूर्णभारतभूमौ समुल्लसति फलति विकसति । यत्र तत्र सर्वत्र दिगम्बर ऋषि मुनीना आर्यिकाना क्षुल्लकक्षुल्लिकादीना निराबाध विहारो दरीदृश्यते । तेषा धर्मोपदेश धर्मप्राणजनै सर्वत्र श्रद्धाभक्तिर्पूक श्रयते च । तस्य परिवारिक पृष्ठभूमि· इत्थम्-

जन्मभूमि	-	महाराष्ट्रप्रान्तस्य अकलीग्रामम्
पितु नाम	-	सिद्धगौडा महाभाग: ।
मातु. नाम	-	अक्काबाई नाम नारीरत्न ।
जन्मतिथि·	-	ईस्वीसन् १८६६
गृहस्थनाम	-	शिवगौडा पाटील:

सतिशयबलवतीवैराग्यभावनाया अलंकृतो स शिवगौडा बाल्यादेव ससारशरीर भोगात् विरक्त: जिनधर्मानुरक्तश्च । तेन श्रावकोचित षट्कर्मानुपालन सततं सोत्साहेन कृतम् । षट्कर्माणि कानि ?

श्रावकाचारे-देवपूजागुरुपस्ति स्वाध्याय सयमस्तप ।

दानश्चेति गृहस्थाना षट्कर्माणि दिनेदिने''

श्लोकेऽस्मिन् षट्कर्माणि नामानि प्ररूपितानि । धर्मभावनायाभावित चित्तस्य श्रीशिवगौडा-महाभागस्य मातापितरौ च धर्मनिष्ठौ न्यायवतौ । न्यायोपात्त-धनेन ताभ्यां स्वपरिवारस्य षोषण कृतम् । तयो आरोपितसुसंस्कारेण शिवगौडाअपि धर्मनिष्ठ कर्त्तव्यशीलोऽभूत् । पुण्योदयेन तस्य शरीरबलेन सह मानसिकसकल्पशक्तिरपि अति सुदृढा परिपक्वाश्चासीत् । मुष्टिकया कपाटभङ्गन, काशीफलं

त्रोटयित्वा अपक्वमेव काशीफल-भक्षणं, उदरस्थजठराग्निा तस्य पाचनं च पुण्यवैशिष्ट्य द्योतकं अतुलबल परिचायकश्च ? स्वाभिमानपूर्वकेन तेन आत्मगुणरक्षितम् वर्धितम् । गृहस्थकालेऽपि स जलेकमलवत् संसारपंकात् अलिप्त· परिणामेन भोगाकांक्षा विरहितः । तस्य दुःखसहिष्णुता विलक्षण. पूर्वकृत-पापोदयात् तस्य उदरे यदा घटसर्परोगं संजातम् तदा सर्पकृतवेदना तेन वीतराग भावेन परिषोढितम्, स्वकीयात्म-बलेन असह्यवेदनापि तिरस्कृता । व्रतोपवासैश्चापि पुण्यात्माशिवगौडया शरीर वैराग्य दृढ़तर कृतं आत्मबलं वर्धितम् ।

एकदा सन्तानविहीनः एक विप्र· तस्य समीपमागत्य स्वकीयसंततिशून्यतायाः वेदनां निवेदितवान् तश्रुत्वा शिवगौडया जिनालयनिर्माणार्थं स विप्रः आदिष्ट· । विप्रेण जिनालयनिर्माणमपि कृ.न् । स जिनालय अद्यापि विद्यमान· । शिवगौडाया. लौकिक शिक्षा यद्यपि अल्पासीत् परन्तु अभोक्ष्णृज्ञानोपयोगिना तेन जिनप्रणीत तत्त्वस्य गहनाभ्यासं विशेष-ज्ञानं सम्प्राप्तम् । तस्य तत्त्वचर्चायां रुचि अतिप्रशसनीया श्लाघनीया । तस्य क्षुल्लक दीक्षाया. संक्षिप्त परिचयं इत्थम्-

क्षुल्लक दीक्षा प्रदायकगुरुः-भट्टारकस्वामीश्रीजिन्नप्पा । क्षुल्लकदीक्षास्थान समयञ्च-नादनीग्रामम्, स्वातिनक्षत्रे सन् १८०६ अब्दौ । नामकरण-क्षुल्लकादिसागर ।

मुनिदीक्षा-श्रीकुन्थलगिरिसिद्ध क्षेत्रे मार्गशीर्षशुक्ला द्वितीयायां १८१३ अब्दौ मगलवासरे पुण्यदिवसे श्री जिनेन्द्र देव साक्षी पूर्वकं तेन महाभागेन मुनिदीक्षा स्वीकृता, यथाजातमुद्रासधारिता । तदा स मुनि आदिसागर नाम्ना विभूषितश्च । तेन अंकलीग्रामं स्वजन्मना अलंकृतम् तस्मात् आदिसागर अकलीकर इति उपनाम्ना तस्य सर्वत्र ख्याति सजाता ।

स्वकर्त्तव्येन तेन सोमदेवसूरिवचन सार्थककृतम्

कालौकाले चले चित्ते देहे चान्नादि कीटके

एतद्चित्र यदद्यापि जिनरूपधर नर ॥

अस्मिन् श्लोके कलिकाले निर्ग्रन्थमुद्रापि परमं दुर्लभ इति प्रतिपादितम् श्रीसमन्तभद्राचार्येण-

विषयाशावशातीतो निरारभोऽपिग्रहः ।

ज्ञानध्यानतपोरक्त तपस्वी स प्रशस्यते ॥

अनेन श्लोकेन मुने लक्षण प्रतिपादितम् । मुनिरादिसागरेण तल्लक्षणं स्वजीवने-संघटितम् । मासोपवासी मुनिरिव तस्य स्वाभाविका चर्या अस्माभिः सुप्रशंसनीया अनुकरणीया च । धर्म प्रचारार्थ विहारोपक्रम·

कतिपय वर्षानन्तरं आचार्य पदासीनं भूत्वा तेन धर्मप्रभावनार्थं दक्षिण भारते विहारं कृतम् । विहारकाले समागतां स्थानाना संकलन अधोलिखित ज्ञातव्यम्-एनापुरं जैनपुरं हात-कलगड़ा, आष्टा, जयसिंहपुर, सागली, वड़गाम. उत्तर·, चिंचवाड़ा, चिक्कोड़ी कोल्हापुर, कुंजवनं, कोथली कुम्भोज , नादणी, इच्चलकरञ्जी, हिगौली ऊदग्रामं, शेडवालः, कुप्पनवाड़ी, कागवाड़ इतयादि । एषु विहारस्थलेषु तेन विशेषधर्मप्रभावना कृता । भवता गोम्मटेशबाहुबली क्षेत्रस्य यात्रापि प्रभावनापूर्वकं

कृता । तेन आत्मध्यानस्य सुदृढ़ाभ्यासं कृतम् । ध्यानमुद्रायामवस्थितस्य तस्य समीपे सिंहादिक्रूरप्राणीनामागमनं बहुबारमभूतम् । गृहस्थावस्थायां आचार्यशान्तिसागरेण तं सुविधिना सुभक्त्या आहारदानं कृतम्, स्वस्कन्धे आचार्यप्रवरं स्थापयित्वा तं दुग्धगंगावेदगंगायाः पारंकृतं उत्तारितम् च । निरन्तर वैय्यावृत्यकार्येण तेन सातिशय पुण्यार्जनं कृतम् सम्पादितम् । तेनैव सातिशयपुण्यफलेन स आचार्यपदे प्रतिष्ठितः । वैय्यावृत्यकाले तेन गुरुचरणाम्बुजे इदं भावितम् कथितम्-भगवन् ! मया त्वम् गंगाया· पारंनीतम् त्वम् माम् संसारसमुद्रस्यपारं कुरु ।"

सूर्यादिसागरेण विहारकाले दक्षिणप्रान्ते महतीधर्म प्रभावना कृता । सदुपदेशामृतै· अनेका· जीवा. संबोधिताः व्रतनियमादिकै समलंकृता ।

आचार्यपदप्रदानविधि-

१९१५ अब्दौ श्रुतपञ्चम्या पुण्यातिथौ चतुर्विधसघमध्ये विशेष धर्म प्रभावनापूर्वकं तस्मै गुरूवासरे आचार्यपदप्रदत्तम् ।

तस्मिन्नेव अकलीग्रामे पञ्चकल्याणप्रतिष्ठासमये १९१६ अब्दौ स "चारित्र चक्रवर्ती" उपाधिना अलंकृत । तेन महातपस्विना अनेकभव्यजीवा. संबोधिताः दीक्षिताश्च । मुनिश्रीभद्रसागरादय. द्वात्रिंशत्मुनिगणाः, स्वर्णमत्यादय चत्वारिंशदार्यिका , अनेकाः ऐलका. क्षुल्लक क्षुल्लिका अपि तेन सुदीक्षिता· ।

ग्रामावासिनै मिथ्याग्रस्तशिवलिंगादिना उपासनासंत्यक्ता· सम्यक्त्वभावनासुदृढ़ाकृता ।

भारतवर्षीय महासभामपि तेन जिनधर्म प्रचारणार्थ मङ्गलाशीर्वादं प्रदत्तम् । षड्धर्मायतन-सुरक्षाहेतु प्रोत्साहन अपि श्रावकसमूहेभ्यो सतत् प्रदत्तम् । स सूरि·सागर· साधुसमाजे तिलकभूत· ।

उक्तञ्च-

स जाते येन जातेन यातिवंश–समुन्नति·

परिवर्तिनिसंसारे मृतः को न जायते ॥

येन सत्कार्येण वंशसमुन्नति कृता स एव धन्य· । पवित्रश्रमण-परम्परा, आचार्य-प्रवरादिसागरेण पुनर्जीविता कृता । महातपस्वी मुनि श्री महावीर कीर्ति-सदृशशिष्यः तस्यैव कृतिः ज्ञातव्या । समाधिग्रहणकाले स्वश्रेष्ठ शिष्यमुनिमहावीर-कीर्तये स्वस्य आचार्य पदं दत्वा तेन शान्त्या सभाधि· कृता ।

श्री 108 श्री मुनिकुंजर महा तपस्वी समाधिसम्राट् आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र

(श्रेयोमार्ग पृष्ठ 188 से 194)

दिगम्बर जैनाचार्य श्री 108 महीवीर कीर्तिजी महाराज कृत

श्री मुनिकुजर महातपस्वी समाधिशिरोमणि श्री आदिसागरजी महाराज का गृहस्थावस्था मे शिवगौडा नाम था । इनका जन्म स्थान दक्षिण महाराष्ट्र स्थित अकली ग्राम है अकली ग्राम के उत्तर दिशा मे सागली सस्थान है । दक्षिण में जयसिगपुर । पूर्व मे मिरज सस्थान पश्चिम कुभोज बाहुबलि पहाड है ।

गज गौड स्वत गौडकी कहते थे उनके पुत्र सूर्यवशी शकर गौड और तत्पुत्र (उनके पुत्र) सिद्धगौड गौडकी करते थे । सिद्ध गौड के पुत्र श्री शिवगौडा का जन्म शक सं १७८८, ४ फरवरी को हुआ । जन्म नाम रेवत्रा ऐन्द्रपोण चतुर्थ जाति सूर्य वश है ।

यह क्षत्रिय वश मे उत्पन्न हुये थे । इनके पूर्वज प्राचीनकाल मे अकली में राज्य करते थे तथा अभी भी इनके वशज अकली के गौड (अर्थात् राजा के समान जागीरदार या ग्राम-स्वामी) है शिवगौड़ के पिता का नाम सिद्धगौड माता का नाम अक्काबाइ था ।

अक्काबाई का सदाचार

एक दिवस कुछ स्त्रियाँ अक्काबाई को सताने लगी तथा उसका उपहास करने लगी तब श्री भगवान् जिनेन्द्र का स्मरण कर अक्का बाई ने उत्तर उत्तम रीति से दिया था कि बहिनो । तुमको मेरे सदाचार पर शका नहीं करना चाहिए । मेरी परीक्षा करनी हो तो करो । अच्छा है, परीक्षा करो अनन्तर अग्नि की परीक्षा निश्चय की गई और अक्का बाई ने उन हंसी करने वाली स्त्रियो को कहा-अच्छा देखो-साहस धैर्य पूर्वक हाथ मे अतिशय उष्ण अग्नि भस्म रख कर तथा उसमें चना डाल कर भूज दिये और कहा कि-बहिनो ये चना अग्नि भस्म से तुम्हारी आँखो के सामने तैयार किये हे । पूर्ण रीति से भुज गये हैं खाओ । ये अग्नि परीक्षा देख सब स्त्रियों को बहुत आश्चर्य हुआ और उस दिन से अक्काबाई की चेष्टा (उपहास) करना सब ही भूल गईं ।

स्वाभिमानी पूर्वज महाराजा

अकली (शितोले) देशाई जैन महाराजा शिवगौंड़ के पूर्वज (वशज) थे । यह देशाई महाराजा किसी को भी नमन (नमस्कार) गर्दन झुकाना व असत्य भाषण नहीं करते थे । केवल श्री

जिनेन्द्रदेव स्याद्वाद सिद्धान्त और निर्ग्रन्थ गुरु को ही नमस्कार करते थे । न्याय नीति पूर्वक राज्य करते थे । दया धर्म प्रजा पालन पूर्ण रीति से करते थे । जब गवर्नमेन्ट अंग्रेज लोग दक्षिण महाराष्ट्र मे आये तो उन्होने देशाई जैन महाराजा का यश व व्रत सुना । उन्होंने कई बार (अग्रेजों ने) देशाई महाराजा के साथ युद्ध किया किन्तु वह इतना पराक्रमी शूरवीर था कि अंग्रेजों को हार कर हताश होना पडा । अन्त मे अग्रेजो के सत्ताधिकारी (गवर्नर आदि) लोगों ने देशाई महाराजा किसी भी समय गर्दन नीची नहीं करता है । ऐसा नियम सुना । तब अग्रेजों ने इस प्रकार सामने तलवार बाधी कि देशाइ महाराजा की गर्दन बिल्कुल कट जाय । चारो ओर महासैन्य था । देशाई महाराजा अग्रेजो के साथ महा युद्ध करते-करते वेग से इस स्थान पर आये जहाँ ये तलवारे बधी थी । पीछे हटना क्षत्री धर्म नही, गर्दन मै कभी भी झुकाता नही अत महाहर्ष और शूरवीरता पूर्वक गर्दन कट जाने पर भी अपना व्रत भग नहीं किया । अंग्रेज सत्ताधिकारी गवर्नर आदि मुह मे अगुली दबाकर आश्चर्य से कहने लगे-यह देशाई महाराजा महाशूर क्षत्री जैन धर्म परायण था जो अपने नियमव्रत आदि पालन करता वह मरा नही किन्तु उसका यश सदा जीवित है । हम लोग जैन महाराजा (देशाई) का पूज्य आदर दृष्टि से सदा सत्कार करते हैं ।

शिवगौंड गृहस्थावस्था मे महापराक्रमी शूरवीर दयालु और जिन धर्म पर अतिशय श्रद्धालु श्रीजिनेन्द्र पर अतिशय भक्ति रखता था । अकली मे श्री वृषभनाथ तीर्थकर भगवान् का मंदिर बनाने के समय बडी-बडी विशाल शिलाओ को अकेला ही उपर चढा देता था । यह काम देख लोगो को आश्चर्य होता था । ग्राम मे कोई विशेष विद्वान् न होने से तथा शास्त्र श्रवण का व्यसन होने से अकली से दक्षिण दिशा की ओर २ मील दूर ऊदगाँव ग्राम में पडित प्रवर अप्पाशास्त्री रहते थे और वे चतुर्मास मे प्रतिदिन शास्त्र पढते थे इसलिए शिवगौंड बड़े प्रेम और भक्ति से शास्त्र सुनने जाते थे । तथा अतिशय वृष्टि होने पर भी किसी न किसी प्रकार शास्त्र अवश्य सुनना चाहिए । इसलिए जाने का पूर्ण प्रयत्न करते थे ।

भोज्य भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरागना ।

विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपस फलम् ॥

इस नीति के अनुसार भोजन शक्ति (आहार) बहुत बडी थी । बडा कद्दू (कोमल काई) काशी फल को कच्चा खा जाते थे ।

एक दिन कुछ लोग मिल कर शिव गौड के साथ शर्त करने के लिए आये और एक ६ सेर पक्का काशीफल लेकर कहने लगे । इसे फोड़ कर कौन पूरा खाने वाला है देखे तो सही । शिव गौंड स्वल्प देर तक इतना बडा काशीफल देख विचार कर कहने लगा । अच्छा । तुममे से कोई खाता है ? अब वे एक दूसरे का मुख देखने लगे । और कहने लगे-शिवगौंड तुम खा सकते हो ? शिवगौड ने उत्तर दिया तुम लोग नही खा सकते और मेरे साथ शर्त करते हो तो लो शर्त, मैं शर्त से खा सकता हूँ । लोग शिवगौंड का मुख ताकने लगे इतनाबड़ा काशीफल कैसे खा जायेगा अच्छा । सब शर्त लगाने वाले शिवगौंड को कहने लगे खाओ । शिवगौंड ने खाना शुरू किया और ५ सेर पक्का खा गये और शान्तिपूर्वक खाते रहे यह देख लोग आश्चर्यचकित हुये और कहने लगे यह

इस छोटे से टुकडे को भी अभी खा जाता है । शर्त में शिवगौड की जीत हुई । अच्छा हुआ । शिवगौंड इस छोटे से टुकड़े को छोड़ दो । ऐसा शर्त कराने वाले भी आग्रह करने लगे तब भी शिवगौड खाता ही रहा तब आग्रह से प्रेम से सब लोगो ने छोटे से टुकडा को छुड़वाने का प्रयत्न बहुत किया और जबरदस्ती (हठात्) छुडवाया । शर्त मे तुम्हारी विजय हुई ।

प्रसग आने पर कृष्णा नदी के महापूर को तैर आने जाने वाले तथा १२ हाथ ऊँची उड्डी मारते थे एक या दो घूसे मे श्रीफल (नारियल) को फोड देते थे ।

हृदय मे कभी भी लडबड नही धीठ धैर्यशाली प्रसग आने पर जीवन की भी परवाह नही करने वाले थे, एक सेर पक्का सेगादाना (चीनी, बादाम) मूगफली और १ सेर गुड भोजन के बाद भी सहज खा जाते थे । हाथ से कपास के झाड से ११ बजे तक ३ घटे मे १ गाडी भर जड़मूल से उखाडते थे और बैलगाडी भर १ बजे घर आ जाते थे ।

नीची बात या लोगों की तुच्छ बाते हृदय मे बाण के समान भिद जाती थीं । गृहस्थावस्था मे सशक्त साहसी धैर्यवान् व प्रसग आने पर छाती अडाकर ताल ठोक कर काल से भी बाजी लेने को तैयार रहते थे और देखें काल क्या चीज है ? ऐसा पूर्ण साहस प्रथम से रखते थे ।

एक समय सर्वत्र भयकर दुर्भिक्ष पडा और त्राहि त्राहि की आवाज आने लगी । अन्न बिना लोगो के ऊपर प्राण संकट आ गया । महादु.खी मनुष्य गण हताश होकर सब लोगों से प्रार्थना करने लगे किन्तु उनका कार्य सिद्ध नहीं हुआ । तब वे निर्धन दुर्भिक्ष और दरिद्र से पीड़ित होकर शिवगौंड के पास आये तब शिवगौंड ने प्रेम से कहा तुम धबराओ नहीं श्री जिनेन्द्र देव का स्मरण करना चाहिए श्री भगवान् जिनेन्द्र का स्मरण करते हुए साहसत्व धैर्य और क्षत्रीय शूर वीरत्व भाव से एक युक्ति विचार कर कहा-तुम लोग मेरे साथ आओ और साहुकार लोगों को, तथा जिन क्षत्रियों के पास धान्य की पेव (खत्ती) थी उनको कहा कि इन निर्धन लोगो को धान्य देना चाहिए । आपने (शिवगौड) भी दिया किन्तु पेव वाले लोग नहीं देने लगे तब दिन में ही शिवगौंड ने खड़े-खड़े उन दुर्भिक्ष पीडित लोगो को कहा-इन पेवों को खोलो और यथेष्ट धान्य ले लो । जल्दी करो तुम डरो मत मैं खडा हूँ । देखे कौन आता है ऐसा कह कर पेवो को खुलवा दिया और साहस से दुर्भिक्ष पीडित लोगो की रक्षा करने की लिए अपनी जान को हथेली पर रख लिया ।

क्षत्रिय बधु आदि का प्रकोप हुआ और सरकार मे बडा भारी खटला (मुकद्दमा) चला । शिव गौड ने स्पष्ट प्रेमपूर्वक उत्तर दिया कि मुझे दुर्भिक्ष पीड़ित जनता पर दया आ गई मैंने पेवो (खत्ति) अन्न कोश के स्वामियों को अन्न का सदुपयोग करने को कहा किन्तु इन्होंने अन्न का सदुपयोग नहीं किया तब मैंने (श्री जिनेन्द्र का हृदय मे स्मरण कर) पेवों को खुलवा कर अन्न दिया । सरकार ने न्याय विचार कर शिवगौड़ को निर्दोष छोड़ दिया ।

सत्यवक्ता

गृहस्थ अवस्था से ही सत्य बोलने का असाधारण गुण था । एक बार जो मुख से निकल जाता था उसे पूर्ण ही कर डालते थे । उसमें आगा पीछा सोच विचार नहीं करते थे । जो मुख से

आ गया वही महाराज की पूर्व दिशा । तथा प्रेम शान्ति से बंधुओ को दृष्टान्त और समझ देकर मेल परस्पर प्रेम रख एव काम करने का चातुर्य था । सत्य मधुर भाषी हितभाषित्वगुण भी था । जो कार्य मन में आया उसे करके ही शान्त होते थे । कठोर प्रतिज्ञा और सत्य वचन निर्वाह करने का एक विशाल अद्वितीय (अपार) क्षत्री शूरवीरो के समुचित गुण था ।

जिस कार्य को हाथ मे लेते थे उसे बडे प्रेम से निर्वाह करते थे । चतुरत्व प्रीति रीति नीति साहस सत्य वक्तृत्व मित हित भाषणत्व आदि गुणो से यह महापुरुष थे ।

शिवगौंड-शेडबाल की प्रतिष्ठा मे गये और वहाँ जाकर भक्ति पूर्वक श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन किये वहाँ पर रात्रि भोजन त्याग मिथ्यात्व, कन्द मूल त्याग आदि साधारण व्रत ग्रहण किये । अनन्तर घर मे भी नियमपूर्वक अष्टमी चतुर्दशी को उपवास करते रहे । पश्चात् श्री बाहुबलि स्वामी के पर्वत की वन्दना के लिए प्रत्येक अमावस्या को भक्ति पूर्वक जाकर दर्शन करने लगे और एक दिवस नादिनी मठ के भट्टारक स्वामी पट्टाचार्य को क्षुल्लक दीक्षा देने के लिए अतिशय आग्रह किया । (अर्थात् इस देश मे प्राचीन काल में भट्टारक जन मठाधिपति श्रावक को क्षुल्लक दीक्षा आदि व्रत सस्कार ग्रहण कराते थे) तब भट्टारक स्वामी ने उत्तर दिया कि दीक्षा के लिए तुम्हारी पत्नी और कुटुम्ब वर्ग की भी परवानगी आवश्यक चाहिए । तब पत्नी कहने लगी अभी नही, कारण बालक छोटे हैं घर मे नियम निष्ठा से रहना चाहिए । एकमुक्ति प्रति दिवस करते-करते एक दिन उपवास दूसरे दिन पारणा इस प्रकार एकान्तराल से भिक्षा करने लगे । तथा द्वादशी को पारणा आने पर त्रयोदशी और चतुर्दशी इस प्रकार २ उपवास करने लगे । कषायो का शमन पचेन्द्रियो का दमन तत्त्व शास्त्र श्रवण चारित्र मे पूर्ण उद्यम गृहस्थ अवस्था मे करने लगे । अन्तरग मे दीक्षा कब मिलेगी ऐसी भावना लग रही थी । स्तवनिधि श्री १००८ श्री पार्श्वनाथ के सेवक ब्रह्मक्षेत्र तथा कुडल क्षेत्र श्री बाहुबलि अतिशय क्षेत्र पर पूर्ण भक्ति थी । तथा यात्रा विशेष रीति से करते रहे । नवादा, गुनावा, आरा, पटना, अयोध्या, तारगा, शत्रुञ्जय, पालीताना, श्री गिरनारजी, आबूजी, अचलगढ, पावागढ, कुण्डलपुर, सिहपुरी, मागीतुगी, गजपंथा, मुक्तागिरि, श्रवण-बेलगोल ,कारकल, वडवानी, सिद्धवरकूट, सोनागिरि आदि श्री सिद्धक्षेत्र व अतिशयतीर्थ क्षेत्रो की भक्ति व श्रद्धापूर्वक वदना की तथा रामटेक श्री अतरीक्ष पार्श्वनाथ काशी द्वारिका श्री कुन्थलगिरि आदि तीर्थो की वदना यात्रा कर अपना सम्यग्दर्शन दृढतम बना लिया था ।

विद्वान् और सत्पुरुषो का सत्सग करने से और धार्मिक हरिवशपुराण पाडवपुराण नागकुमार चरित्र आदि श्रवण कर सच्चरित्र पर विशेष श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी ।

श्री शिवगौंड को ३७ वर्ष की अवस्था मे वैराग्य हुआ था । उस समय इनका बालक तवन गौंडा अनुमानत: ५ या ६ वर्ष का होगा । उस समय ये श्री सम्मेद शिखर की यात्रा को जाने लगे । तब बालक ने पैर पकड लिया और रोकर कहा पिताजी तुम कहा जाते हो ? तब बालक को कुछ आश्वासन देकर, कुछ देकर मोह छोडकोर सम्मेद शिखर की यात्रा की तथा राजगृही पावापुरा सेठ सुदर्शन पवित्र स्थान गुलजार बाग पटना आदि की यात्रा कर आरा मे एक मास तक ठहरे वहाँ जिनवाणी भक्त शिरोमणि दानवीर रईस देवकुमारजी ने वैराग्य में विशेषता उत्पन्न करने के लिए ३२

श्री जिन मदिरों के भक्ति पूर्वक दर्शन कराये नांदिनी में तीन उपवास करने के पश्चात् श्री भट्टारक स्वामी श्री जिनप्पा से स्वाति नक्षत्र मे ४० वर्ष मे क्षुल्लक दीक्षा धारण की क्षुल्लक दीक्षा मे ३ मास तक रहे अनन्तर आर्य दीक्षा ऐलक दीक्षा दही गाँव मे श्री भगवज्जिनेन्द्र की साक्षी पूर्वक धारण की अनुमानत ८ वर्ष तक आर्य दीक्षा में रहकर ३ वर्षों में ३ उपवास अनन्तर भिक्षा आदि का उत्तम अभ्यास कर वैराग्य दृढ कर मार्गशीर्ष शुक्ला मूल नक्षत्र मगलवार १० बजे १८३५ शके श्री सिद्ध क्षेत्र स्थान श्री १००८ श्री कुथलगिरि तीर्थाधिराज पर श्री जिनेन्द्र देव की साक्षीपूर्वक निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की । कारण उस समय कलिकाल के महाप्रभाव से सतत् निर्ग्रन्थमुद्रा धारण करके रहने वाला कोई श्री गुरु प्राप्त नहीं हुआ था । निर्ग्रन्थ दीक्षा मे श्री आदिसागर मुनि कुञ्जर ने जब कुभोज बाहुबलि पहाड पर केशलोच किया था, उस समय आकाश में जयघोष हुआ था उस समय कुछ लोग महाराज के दर्शन के लिए आये थे जो नीचे पहाड के थे वे जय शब्द सुनकर ऊपर आये थे और विचारते थे कि यहाँ बहुत लोगो ने जयघोष किया था यह सुनकर हम आये हैं उत्तर दिया गया कि यहाँ केवल महाराज और १ उपाध्याय पण्डित है और कोई नही इनके (महाराज) देव कृत जय शब्द है उस घोष को सुनने वाले देशाई देव उदयगाँव मे अभी विद्यमान हैं ।

एक दिन बाहुबली पहाड पर एक जांम्मा पिच्छिका धारिणी व्रतिनी रात्रि के समय एकान्त मे आकर महाराज श्री से बडे प्रेमपूर्वक आकर कहने लगी तुम्हारी कोई स्त्री नहीं और मेरा कोई पति नहीं आओ हम तुम दोनो प्रेम से रहे और तुम मेरे पति बनो मैं तुम्हारी पत्नी बनूं । एक विकट समस्या, स्त्री परीषह पर जय करने के लिए शीघ्र ही मोह रहित, निर्विकार भाव और निर्विकार मुद्रा से गुफा मे ध्यानस्थ हुए और अपने शील का सरक्षण किया ।

एक दिन स्वप्न मे एक सुन्दर स्त्री ने एक रेशमी वस्त्र महाराज के ऊपर डाला । महाराज उसी समय जागृत हुए आप निर्ग्रन्थ भावना निर्मोहता स्वप्न मे जागृत रखते थे । बाहुबली की गुफा में अतिशय ध्यान करते थे एक दिन इतना ध्यान लगा कि शरीर भिन्न आत्मा भिन्न इस प्रकार आत्मिक प्रबल सुभावना से महानन्द हर्ष सुख का अनुभव हुआ और मेरा आत्मा शरीर से भिन्न हुआ । ऐसा ध्यानकर अवर्णनीय स्वानुभूति जन्य आत्म-साक्षात्कार होने से जो आनन्द हुआ वह इन्द्र नागेन्द्र अहमिन्द्र को भी नहीं है तथा दण्ड, कपाट, प्रतर, लोकपूरण का उसमें आत्मा पर विचार ध्यान करने से महासुख हुआ किन्तु जब शरीर मे आये ऐसा भास हुआ तभी महादुख हुआ । ध्यान के प्रभाव से और णमो अरिहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाणं णमो उवझायाणं णमो लोए सव्व साहूण इस णमोकार मत्र माहात्म्य से महाराज के तालुरध्र से अमृत झरता था । वह इतना मिष्ट इतना गाढा इतना सुखप्रिय होता था कि इतना मिष्ट गुड घी और कोई वस्तु अनुभवगोचर नहीं ऐसा चमत्कार और आश्चर्य जब वे केवल स्वल्प दूध और फल लेकर भी १ या २ या ३ तीन उपवास करते थे । उस समय कंठ से अमृत झरता था और स्वत· प्रत्यक्ष दिखाकर कहते थे देखो १ या २ या तीन उपवास करके भी कंठ से अमृत झरता है । यह इतना स्वादिष्ट और सुखप्रद है कि वर्णनातीत है । मुझे महानन्द है । केवल शरीर रूपी मुर्दे को लेकर फिरता हूँ । इतना महाकष्ट है, संक्लेश रहित होकर आनन्द से इस मुर्दे को छोड़ने का प्रयत्न करता हूँ । हे भगवन् ।

कब शरीर का त्याग कर आत्मा का सुख प्राप्त होगा इस प्रकार की उत्कृष्ट भावना प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होती गयी रात्रि मे भी सामायिक करते थे और दो बार लघुशका जाकर आत्मध्यान करते थे । निद्रा अतिशय कम थी । सतत समाधि की चिन्ता जागृत थी । सरल स्वभाव भोले चतुर्थ काल के साधु जो मन मे सो वचन से कहते थे जो वचन से कहते थे वही करते थे ।

श्री मुनि भक्त शिरोमणि दानवीर सेठ लक्ष्मण भरमप्पा आरवाड़े सांगली की महाभक्ति

यह सेठ (साहुकार) महाधनी अतिशय सुखी कोमलाग और धर्मात्मा है । इसकी पत्नी श्रीमती बहिणा बाई ज्येष्ठ भ्राता आर्या सरस्वती बाई व परम पवित्रा माता लक्ष्मी बाई है यद्यपि सर्व ही कुटुम्बवर्ग मुनिभक्त और दान पूजा मे संलग्न रहते है किन्तु विशेषत श्री सेठ लक्ष्मण भरमप्पा आरवाड़े दान पूजा मे इतनी प्रीति रखते है जिसके फलस्वरूप इस विद्यमान दक्षिण उत्तर भारत मे आदर्श जिन मुनिधर्म इस महाविकराल कराल कलि दुर्भिक्ष मे महा समाधि सम्राट् के रूप मे प्राप्त हो चुका । एक समय सागली मे साधु समूह तथा वृद्ध तपस्वी श्री मल्लिसागर महाराज व अकली मे महा तपस्वी रत्नप्पा स्वामी (श्री आदिसागरजी महाराज भोज) और अंकली वाले मुनि कुजर आदिसा.र महाराज का उदगाँव में चतुर्मास हुआ । ये श्रेष्ठिवर्य लक्ष्मणजी तीनो ही स्थानो ही मे जाते और सप्रेम भक्तिपूर्वक दान कर अपने को कृतार्थ मानते । मैने एक समय प्रत्यक्ष ऑखो से देखा कि सेठ लक्ष्मणराव शीघ्र वेग से आ रहे हैं । शरीर पर पसीना हो गया है । मुख से वेग से श्वास आ रहा है । हाथ मे दूध का पात्र है । न मेघ की चिन्ता है न धूप का डर किन्तु मुख पर प्रसन्नता है । अभी भी दानवीर मुनिभक्त माई के लाल लक्ष्मणराव सरीखे श्रावक महात्मा विद्यमान है । सागली से उदगाँव ६ मील है । पैदल आना श्रेष्ठ वर्य का महा कठिन किन्तु मुनि तीर्थ को दान भक्ति से अपार हर्ष से आते । जब तांगा मोटर नहीं मिला तो ऐसा करना पडता था और सरस्वती को भी पैदल कभी कभी लाते थे । अस्तु-श्री १०८ मुनि आदिसागर अंकली मे इतनी भक्ति होने का कारण महाराज का माया रहित सरल दयालु स्वभाव और कठोर उपवास तपश्चर्या तथा निर्दोष चारित्रशीलता है । एक बार कृष्णा नदी मे बाढ आई । महाराज के २ उपवास हो चुके थे मोटर तागा सब बद हो गये । लक्ष्मणराव को आने का मार्ग न मिला । रेल भी छूट गयी प्रकृति भी लाचार हुई आने का प्रयत्न सब विफल हुआ । इधर महाराज ने उपवास धारण कर लिया । सांगली में भी ७ या ८ साधुओं की व्यवस्था करना । प्राय सतत् ही २ या ४ साधुओ को सागली मे किसी न किसी प्रकार रखने का प्रयत्न आप करते ही रहते हैं । प्रात काल पचामृताभिषेक मध्याह्न दान आदि से उदगाव न आ सके । उस दिन लक्ष्मण राव को बहुत दुःख हुआ । ५ या ६ वर्ष तक जो महाराज की सेवा की वह अवर्णनीय है । साधुओं को आहार देकर दूध पीते हैं । आपके लघु भ्राता सेठ वासुदेव राव व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मी बाई व उनके पुत्र पुत्री आदि कुटुम्ब वर्ग भी साधुभक्ति पूजा मे सतत् श्रद्धा रखते हैं तथा करते हैं । इनके पास एक सज्जन अप्पा साहब धर्मात्मा हैं ये २२ वर्ष से धर्म में सहायता करते हैं । तथा बहिण परिहेजवाली एक श्रद्धा निष्ठा श्राविका है । मेरी समझ से लक्ष्मण राव का सर्व ही परिकर लक्ष्मणराव ही है । मुनि भक्ति मे श्रेयांस भरतेश्वर

श्रीमती मतिवर मंत्री आदि के समान लक्ष्मणराव वासुदेव लक्ष्मी बाई बहिणावाई अप्पासाहिब भोपाल आदि सागली के सज्जन गण हैं ।

समाध्यथ सत्प्रयत्न

एक दिवस श्री आदिसागर महाराज ने समाधि के समय ध्यान स्मरण कराना ऐसी आज्ञा की । श्री १०८ मुनिकुञ्जर आदिसागर महाराज को तदनुसार उनसे प्रश्नपूर्वक ध्यानों का स्मरण कराया गया ।

श्री केवल ज्ञानस्वरूपोऽहं । सिद्धोऽह । शुद्धोऽहं स्वस्वरूपोऽहं । शुभशुक्लध्यान स्वरूपोऽह । अनन्तज्ञानान्तदर्शनानन्तसुखानन्तवीर्यस्वरूपोऽह ।

१ क्षपक श्रेणी आरूढ कैसे करते हैं महाराज श्री ?

२ पृथक्त्ववितर्क, एकत्व वितर्क, सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति व्युपरत क्रिया निवर्ती कैसे होता है महाराज श्री ?

३ दड, कपाट, प्रतर, लोकपूरण मे आत्मा सर्व आकाश मे व्याप्त होता है उसे याद करो महाराज श्री ?

४ केवल स्वरूप से आत्मा भिन्न, शरीर भिन्न हुआ था सो याद है महाराज श्री ?

५ श्री कुम्भोज श्री बाहुबली स्वामी के पहाड पर शके सं १८४२ माघ शुक्ला १४ को शरीर भिन्न आत्मा भिन्न जो ध्यान हुये थे सो ध्यान में है कि नहीं ?

अर्थात् वह उच्च श्रेणी की प्रबल भावना से केवल श्री समाधि का उद्योग धारावाही अखण्ड करते रहे थे और शरीर मुर्दे को कहां तक धारण करूं । अब वस, वस ऐसा अभिप्राय धारण कर निर्जन वन मे निराधार गुफा मे एकाकी रहते थे । निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर कठोर तप करते रहते थे ।

शिर के केश, लोच के समय केश, ल्ंब बहुत अधिक होते थे । लोग देखकर आश्चर्य करते थे । शीत काल मे नदी किनारे उष्ण काल मे उष्णशिला पर और चतुर्मास में वृक्षमूल में ध्यान करते थे । ४ दिन अथवा ३ दिन उपवास के पश्चात् पारणा करते थे । कभी-कभी अन्तराय आने पर ८ दिन या ९ दिन अनन्तर भिक्षा करते थे । भिक्षा शान्त समाधान चित्त से करते थे । सतत् आत्म चिन्तवन करने का लक्ष्य करते थे । किसी की भी किसी प्रकार की भानगढ़ में न पड़ कर ध्यानाध्ययन करते थे । रात्रि मे भी १ घंटे खड़े होकर १ घंटे बैठ पर्यकासन से कुंभोज आदि गुफाओं मे ध्यान करते रहते थे । पूर्वोक्त सस्कारों की हृदय में गाढ श्रद्धा हो गयी थी कहते थे-हृदय में लडवड (भीति) नहीं है केवल संक्लेश परिणाम न होने का प्रयत्न हो तो हर्ष होता है ।

क्षुतृष्णामयशोकमोहजननातंकस्मयै र्वीजितः ।
देवेन्द्रैरभिपूजितोहमसमो राजेन्द्रसपूजित. ॥
सिद्धोऽह निजशुद्धभावसहिनो श्री केवल ज्ञानभाक्
स्वात्मानन्तसुखाकरो वलमयो सद्धैर्यसच्छीलभाक् ॥ १ ॥

मेरी आत्मा भूख प्यास भय शोक मोह जन्म रोग मद रहित, देवेन्द्रो के द्वारा पूजी हुई । मैं असाधारण हूँ राजेन्द्रो से मेरी पूजा हुई, मैं सिद्ध हूँ मेरे आत्मिक सुद्ध भावो से सहित हूँ । श्री केवल ज्ञान से युक्त हूँ । अपनी आत्मा के अनन्त सुखो का खजाना आकर हूँ, निधि हू वलवान् हूँ, उत्तम सम्यग्दर्शनोत्पन्न उत्कृष्ट धैर्य युक्त हूँ और उत्तम शील युक्त हूँ । १ ।

शुद्धोऽह परमात्मरूपरचितः शुभ्रैर्गुणैर्राजित.
दृष्टा सर्वभुवि प्रसिद्धमहिमा योगीन्द्रवृन्दार्चित
सिद्धानन्तचतुष्टयान्वितविभु श्री सिद्धशैलस्थितो
ध्यात्वा श्रीमुनि आदिसागररवि शात्या समाधिं श्रित ॥ २ ॥

मैं शुद्ध परमात्मास्वरूप से युक्त हूँ । शुभ गुणो से शोभायमान हूँ । सर्व जगत देखने वाला हूँ । मेरी महिमा प्रसिद्ध है । योगीन्द्र समुदाय से पूजित हूँ । सिद्ध परमात्मा के अनन्त चतुष्टया से सहित, मैं विभु हूँ, मै श्री सिद्ध शैल पर स्थित हूँ, इस प्रकार ध्यान कर श्री मुनि आदिसागर रूपी सूर्य शान्तिपूर्वक समाधि का आश्रय ले गये ।

संन्यास दिवसाञ्चतुर्दश बुध· हर्षाद् गृहीत्वा स्वयं रात्रौ चापि सुधर्मचिन्तनपरः ध्यान च कृत्वा ध्रुव आयाते समये समाधिमरणे आर्षा क्रिया सचरन् शिष्टात्मा शुचिरादिसागरमुनि शान्तिं समाधि श्रित· ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् शिष्ट आत्मा पवित्र आदिसागर मुनि हर्ष से आप चौदह १४ दिन का संन्यास ग्रहण कर दिन और रात्रि मे भी दश धर्म का विचार करने मे लीन तथा उत्तम रीति से धर्म ध्यान दृढ़कर समाधिमरण के समय आने पर परम महर्षियो से कही गई शास्त्रोक्त क्रिया को कर शान्ति देने वाली समाधि को प्राप्त हुए ।

श्री चैत्य जिननायकस्य विमल लोकोत्तर मगल श्रीशुक्लदृषदैव कल्पितविभुं श्रीपार्श्वनाथ जिनं । भाले हस्तयुगनिधाय शिरसा दृष्ट्वा च नत्वा मुहुः ध्यात्वा श्री बुध आदिसागरमुनि. शात्यिासमाधिं श्रित· ॥ ४ ॥

श्री आदिसागर रूपी मुनि चन्द्रमा ने विमल लोकोत्तर मंगल जिन नायक के श्री चैत्य को नमस्कार किया । श्री सुन्दर शुक्ल पाषाण मे ही बनाये हुए साक्षात् श्री बिम्ब पार्श्वनाथ जिनको

मस्तक पर दोनो हाथों को रखकर बारम्बार नमस्कार कर ध्यान कर श्री विद्वान् श्री आदिसागर मुनि शान्तिपूर्वक समाधि को प्राप्त हुए ।

मंत्र पचनमस्क्रियात्मकमलं सर्वे पठन्ति स्म वे । श्रुत्वा हर्षभर. प्रसन्नवदन. ध्याने दृढो भावत. । पाय पायमहो विशुद्धमनसा धर्म्यं शिवं मंगलं । श्री योगीश्वर आदिसागरमुनिः सिद्धां समाधिं श्रित. ॥ ५ ॥

सर्व मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका सवही विशुद्ध अमृत स्वरूपी कल्याणकारी मंगलमय "णमो आरिहताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्व साहूणं" इस नमस्कार मत्र को पढते थे और महाराज श्री सुनकर हर्षयुक्त प्रसन्न मुख हो भाव से ध्यान मे दृढ़ हो तथा मगलमय कल्याणकारी अमृत धर्मामृत का पान कर योगीश्वर श्री आदिसागर मुनि प्रसिद्ध समाधि को प्राप्त हुए ।

चिन्ताशोकभयातकादिरहिता क्लेशादिभिर्वर्जितां, हिक्काशान्तिकरीं प्रवोधजननी धीरा गभीरा शुभा । आयाते निकटे समाधिमरणे सौभाग्यसंसाधिका, पुण्यात्मा वर आदिसागरमुनि. पूता समाधि श्रित ॥ ६ ॥

समाधि मरण समीप आया तब चिन्ता शोक भय रोग आदि से रहित क्लेश आदि कुभावो मे वर्जित शान्तिकारी प्रबोधदस्त्री (आत्मज्ञान मे लग्न कराने वाली) धीर गम्भीर शुभ सौभाग्य साधन कराने वाली हिचकी आयी और पवित्र पुण्य आत्मा आदिसागरमुनि रूपी वर को पवित्र समाधिरूपी कन्या प्राप्त हो गई ।

स्वाद्य खाद्यमथान्नज च सकल लेह्य च पेयादिकं, सर्व हेयमसाररूपकमिदं आजन्म हित्वाजगत् । एक त्र्यादिभवेषु मोक्षजननी ससाररोगापहा श्रीचिन्तामणिरादिसागरयति· चिन्त्या समाधि श्रित ॥ ७ ॥

श्री चिन्तामणि आदिसागर यति महान् प्रयत्नशाली स्वाद्य (स्वादिष्ट) खाद्य (लाडू आदि) अन्नज और सर्व प्रकार लेह्य (चाटने योग्य रवडी आदि) पेय पीने योग्य दूध शर्वत आदि तथा सर्व असार स्वरूप त्याज्य ससार को जन्म पर्यन्त छोडकर एक तीन आदि भवों मे संसार रोग को हरण करने वाली मोक्ष देने वाली चिन्त्य-सतत् चिन्ता करने योग्य समाधि को प्राप्त हुए ।

आचार्य महावीर कीर्ति-गुणस्तवन

ले –गुरुचरणों मे श्रद्धाभक्तियुत राजमल जैन बेगस्या–जयपुर

संवत उन्नीसो सडसठ वैशाखवदी नौमी है महान
रतनलाल बूंदा देवी के घर जन्मे जैन जगत की शान ॥ टेक ॥
गर्भ मे ही बूदा देवी ने धर्मामृत की बूदे साधु पिलाईं ।
तीर्थ शिखर की वन्दना मां ने गर्भकाल मे ही करबाई ॥
धर्मचक्र को अभिमन्यु ज्यू सीख धरा पर आये थे ।
बचपन मे ही श्री महेन्द्र ने धर्म के रहस्य बताये थे ।
जन्म हुआ तो फिरोजाबाद मे गूज उठे थे मगलगान ॥ १ ॥ रतन ॥
जन्म स्थल पर प्रारम्भिक शिक्षा नायक जब पाय रहे ।
मातुश्री नही रही, शिक्षाहित शहर मुरैनाजाय रहे ॥
दशमी धर्म के साथ मुरैना मे पढ़ फिर इन्दौर गये ।
न्यायतीर्थ, शास्त्री करने सग अठदश भाषा सीख गये ॥
छन्द, व्याकरण, ज्योतिष, न्याय का ग्रहण किया था पूरा ज्ञान ॥ २ ॥ रतन
पलने मे ही पूत के पग तो माता ने ही दिखा दिये ।
मुक्ति रमणी को वरण करन के गुण वचपन मे सिखा दिये ।
बूदा माँ ने बूदे पिलाई तो बन्धन मे ही नही बधे ।
प्रस्ताव विवाह के आये पर गुरु अडिग रहे और रहे सधे ।
बीस वरस के युवा ने सप्तम प्रतिभा ले लीनी थी महान् ॥ ३ । रतन
वीर सागर आचार्य गुरु से उन्नीसौं पिच्याणवे माय ।
गुजरात के टाकाटूका गाँव मे क्षुल्लक दीक्षा लीनी जाय ॥
आगे अकलीकर आदिसागर आचार्य गुरु वर पा ये ।
गुरु चरणो मे छोड परिग्रह चौबीस, मुनि पदवी मे आये ॥
महान गुरु से दीक्षा दिगम्बरी लेकर बन गये स्वयम् महान् ॥ ४ ॥ रतन
मुनिपद सग महावीर कीर्ति नाम गुरु से था पाया ।
नाम को सार्थक कर महावीर की कीर्ति को फैलाया ।
भारत भू पर धर्म ध्वजा ले उत्तर दक्षिण भ्रमण किया ।
जैसी भाषा वाला आया, उस भाषा मे ज्ञान दिया ।
अठारह भाषाओ के ज्ञाता धर्म का सग मे सम्यक् बोध ॥ ५ ॥ रतन

15-5-94

आचार्य महावीर कीर्ति महाराज की डायरी से

श्री परमपूज्य मुनिकुजर समाधि सम्राट् आचार्य श्री महागुरु देवाधिदेव श्री १०८ श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज के पास आर्य व निर्ग्रन्थ दीक्षा ली थी । अत· मेरे (आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के) लिए दिव्योपदेशामृत-(१) स्वस्थ सरल पर्यंकासन से बैठना, दोनों नेत्र बन्द करना, एकाग्रता से एकान्त में ध्यान करना ।

(२) दक्षिण देश मे ऊदगाँव, नादनी, समडोली, शेरगाँव, जैनवाडी, कुभोज, अंकली, बोरगाँव, सदलगा, वेडीकयाल, शेडवाल, हलीहंगिणी, तेरदाल, गोकाक, कोत्रूर, मागूर, सिरदवाड़ आदि स्थानो मे मुनि निवास (गुफाएँ) हैं । इन स्थानों में जैनियो को गुरु निर्ग्रन्थ साधुओ को कोई उपसर्ग नही होता है और आत्म ध्यान विशेष रीति से होता है । यदि सुख शान्ति प्राप्त होगी तो केवल स्वस्थ ध्यान से होगी, तालुरंध्र से जैसे मेरे को अमृत झरता है वैसे ही तुमको भी झरने लगेगा । मात्र आत्म ध्यान धारावाही होना चाहिए ।

(३) यदि निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर आत्म-दर्शन-साक्षात्कार नही किया तो पीछी कमण्डलु लेना समूल व्यर्थ है ।

(४) भिक्षा समाधान भाव से लेना चाहिए । इस देश में प्राय· भिक्षा स्त्रिया कराती है, सो इस देश मे रहे तो उन श्राविकाओं के हाथ का आहार लेना पडेगा । णमो अरहताणं, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण, इस णमोकार मत्र को २७ बार जपने से सर्व विकार शान्त हो जाते हैं । इस मंत्र के प्रभाव से अमृत झरता है । प्राय· बडे-बडे शहरों मे विहार नही करना चाहिए ।

(५) मन को मारना चाहिए व १+२+३ यथाशक्ति उपवास करने का अभ्यास करना चाहिए तथा आत्मा भिन्न, शरीर भिन्न का विशेष ध्यान करना चाहिए । कर्मों के साथ धैर्यपूर्वक युद्ध करना चाहिए ।

(६) उत्तर हिन्दुस्तान को गये तो छोटे-छोटे ग्रामों में रहकर उत्तम ध्यान करना, निद्राजय करना चाहिए । तुम स्वयं शास्त्र पढ़े हो तथा प्रायश्चित समुच्चय शास्त्र पढ़ने का तुमको अधिकार देते हैं तथा आगमानुसार चलना चाहिए । मैंने अपना आचार्य पद चातुर्मास मे ही दे दिया है । स्त्री सगति से दूर रहना चाहिए । दुनिया की भानगद श्रावकों के झगडे मे नही पडना, ध्यान और अध्ययन करना विशेषत. एकान्त स्थान मे रहना । तुम्हारी प्रकृति का अब कोई नहीं मिलेगा तो ठीक है अन्यथा एकाकी भी रह सकोगे । सागली मे धार्मिक लक्षण है और राजा भी धर्मप्रिय है । सो समझाना । ब्रह्मसूरि को क्षुल्लक दीक्षा देना यह तुम्हारे पास है । हम तो समाधि का निर्णय कर चुके हैं ।

(१) निरीतचार ध्यान करणे ।

(२) क्रोधलोभ आहार ची इच्छा सोडणे आहारासन निद्रा जय ।

(३) निद्रा जय । बडी शास्त्रा बलि वा अन्य शास्त्रात स्वत अनुभवा चे प्रयोग करणे । । ५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इद्रियनिरोध, ६ आवश्यक, ७ विशेष गुण, द्वादश तप, दशधर्म जुतपाते पचाचार । षडा''श्यक त्रिगुप्ति गण ये आचारज पद सार निराहारोऽह निराकारोऽह । स्वात्मैव शरण । रहस्य ...स्त्रानुसार व श्री जिनेश्वराज्ञानुसार चले । नित्यमविकार सुस्थिता स्वोपदेशे । श्री देशभूषण कुलभूषण दर्शने शुद्धात्मा । न स्त्री नपुंसको न प्रमाण नैव पुण्यपापमय । अन्योन मम शरण । शरणं स एक परमात्मा । आदि शब्देन ''सिद्धि स्वात्मोपलब्धि द्रव्यभाव शुद्धि । सकल्प विकल्प त्याग । समाधि साधना विधेया । स्वात्मदर्शन । ध्यानाध्ययनपो न कोप प्रमाद न करिष्यामीति । पठतु सकल शास्त्र विविक्तशय्यासनेन । शुद्धमौनात्मन सिद्धि वा । वहिर्वकृत्व त्यज । जिनेन्द्र रूपोऽह । सिद्धोऽह । चचलत्व त्यज । आरवाडे मडली मम आहार व्यवस्था समतासेरी करणाना परमाचारा स्वात्म शुद्धि । सकलमणिविहायाव्हाय चिन्छक्ति रिक्त । आदर्शोय श्री बाहुबली महावीरो मुनि । प्रयत्नो विधेय । शुचि प्रसन्न । अधो कीलित नेत्राभ्या प्रसन्न । स्व मिथ्यात्व त्यज श्री कुथलगिरि उपवास । श्री देशभूषण कुलभूषणादर्श ।

प पू चारित्रचक्रवर्ती मुनिकुजर समाधिसम्राट आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) महाराज के दीक्षा के समय के विचार जिनका जीवन पर्यन्त निर्वाह किया ।

महोपसर्गे प्राण विसर्जनेश काय शिष्यादिवर्गस्य चिता विहाय स्वात्मसिद्धौ महा प्रयत्नो विधेय त्रिगुप्तोनन्तध्यानस्य क्षमाया सहनशीलताया महाभ्यास कार्य शक्ति प्रतिज्ञा । परसमाधि यथाशक्ति जिनाज्ञानुसारेण शरणागतस्याभिमुखस्य स्वसमाधिभ्यासो यदि कश्चित् सुपात्र धर्मप्रभावनादि श्री बाहुबली सम्मेदशिखरादि सिद्धादि तीर्थ यात्रार्थ प्रयत्नाऽपि शास्त्र दृष्टया कर्त्तव्य शिष्य मन जनाना प्रतिबोध । यथावसर यथोचित कार्य एव । इत्यापि प्रतिज्ञा शिष्यादि वर्गस्य चारित्र रक्षणार्थ उत्तमात्यचिन्ता भोग चिन्ता च मध्यमा, काम चिन्ताऽधमा प्रोक्ता पर चिन्ताऽधमाधमा । शक्ते वहिर्गत साहसो न विधेय । स्वमनस कर्त्तव्य पाखडित्व जल्पत्व जहामि ।

प पू चारित्र चक्रवर्ती, मुनिकुजर, समाधिसम्राट्, आचार्य श्री आदिसागर जी महाराज के आचार्यपद पदारोहण के समय की गई प्रतिज्ञाएँ जिनका निर्वाह समाधि पर्यन्त किया ।

श्री 108 आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज द्वारा रचित प्रबोधाष्टकम्

(स्वोपज्ञटीका सहितम्)

रागद्वेषमदमोह रहित हूँ जन्म मरण आचार्य नहीं
क्षुधातृषाविस्मय नहि मेरा, रोग शोक का नाम नहीं
इन्द्र चन्द्र अहमिन्द्र पूजते, क्या नरेन्द्र क्या असुरपति
सिद्धस्वरूपी स्वय आत्मा,केवल ज्ञानी जगतपति ॥
अनन्त सुखो का आकरहसा, धैर्यवीर्य सच्छीलमयी
समझो आतमनित्य निरजन, ध्यान योग्य यह सकलमयी ॥ १ ॥
शुद्ध स्वरूपी परमानन्दी शुभ्रगुणो से राजित हैं
दृष्टा सर्व जगत के स्वामी, योगीन्द्रों से अर्चित हैं
अनन्त चतुष्टय गुण से राजित सिद्धशिला अधिवासी हैं
आदिसागर सूरि ने ध्याकर, शान्त समाधिधारी है ॥ २ ॥
सन्यास धारकर दिवस चतुर्दश, हर्षित होकर बिता दिये
रात्रिकाल मे धर्मध्यानयुत, आत्म ध्यान मे सजग रहे
समय समाधि निकट समझकर, आर्षमार्ग का शरण लिया
शिष्ट शुद्ध श्री आदि सिन्धु मुनि, शान्त समाधि मरण किया ॥ ३ ॥
प्रतिमा शुभ्र फटिक सम निर्मल, लोकोत्तर मगलकारी
जिनवर कल्पित पार्श्व प्रभु की, छवि लखी तव सुखकारी
हस्त युगल रखकर मस्तक पर, नमन किया बारम्बारा
आदिसिन्धु गुरु ध्यान लगाकर, मरण समाधि को धारा ॥ ४ ॥
अपराजित यह महामत्र, मुनियो ने इसका ध्यान किया
सुनकर हर्षित चित्त हुए, गुरुवर ने दृढ हो ध्यान धरा ॥
मंगलकारी शिवसुखदायी, धर्मामृत को श्रवण किया
योगिराज श्री आदिसूरि ने, सकल समाधि मरण किया ॥ ५ ॥

चिन्ताशोकभयादिक हारे, क्लेश ताप संकट सारे
श्वासकाश का लेश न व्यापे, याद दिलावे निज गुण के ॥
धीर वीर गम्भीर बनावे, मरण निकट जिस क्षण आवे
पुण्य पुरुष श्री आदिसूरि, सौभाग्यकारी वह दिन माने ॥ ६ ॥
खाद्य स्वाद्य और लेह पेय सब, जीवन भर को त्याग दिया
ससार भोग अरु देह गेह की, क्षणभगुरता समझ लिया
एक तीन या दो भव अन्दर, मोक्षपुरी पहुँचाती है
चिन्तामणि श्री आदि सिन्धुयति, वही समाधिधारी है ॥ ६ ॥
सुरनरमुनिजन चर्चा करते पञ्चाचार परायण की
बाह्याभ्यन्तर सग तर्ज जिन वेष दिगम्बर धारी की
आत्मध्यान मे लीन हर्ष युत, मुनिकुञ्जर सम्राट् हुए
महावीरकीर्ति को निजपद देकर, सिद्ध समाधि प्राप्त किये ॥ ८ ॥

स्वोपज्ञ टीका

चैत्यभक्त्या ''मुख कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यतिकी'' इत्युल्लेखितम् । इद पंक्ति आधारं कृत्वा अत्र गुणकीर्तन ज्ञातव्यम् । यो अव्युत्पन्न त स्थितिकरणार्थं प्रबोधनमुचित किन्तु आत्म विहारीवीतरागी मनोबलीतपस्वीनामूधन्य गुरुदेवादिसागरस्य स्थितिकरणार्थं कृत प्रयत्न अप्रयोजनीभूत प्रतिभाति, तं प्रबोधनाय शब्दवर्गणाया शक्तिर्नास्ति । अधुना भवत ध्यानस्थवीतरागीशान्तमुद्रैव मह्यमुपदिशति तदित्थम्-

(१) **क्षुत्तृष्णामयशोकमोह जननातंकस्मयैर्वर्जित ।**
देवेन्द्रैरभिपूजितोहमसमो राजेन्द्रसपूजितः ॥
सिद्धोऽह निजशुद्धभावसहितो श्री केवलज्ञान भाक्
स्वात्मानन्तसुखाकरो बलमयो सद्धैर्य सच्छीलभाक् ॥

अस्मिन् श्लोके शुद्धात्मस्वरूप प्रकटितम् । भेद विज्ञानभावनया आलोकित समुद्योतित प्रकाशितञ्चचैतन्यपरिणतिर्यस्य तस्यादिसागरस्य प्रशान्तमुखाकृति शुद्धात्मस्वरूपं चित्रयति ज्ञापयति प्रथयति वा । शुद्धात्मतत्त्वं, कर्मोपाधिनिरपेक्षद्रव्यार्थिकनयस्य विषयो भवति । यत्र क्षुधादिदोषोत्पत्ति अशक्यम् ।

केन कारणभूतेन आत्मा क्षुधादि रहितं कथितम्-कर्मोपाधिनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकनयेन । क्षुधादीनि कानि ? कर्मजन्य वेदनाविशेषानि । मोहनीयकर्माभावात् क्षुधातृषादयः नश्यन्ति । यद्यपि वेदनीय कर्मक्षुधाद्युत्पत्तिकारणं कथितं किन्तु मोह बिना तत् न फलति । आहारवाञ्छां आहार सञ्ज्ञां वा उद्घाटयितु अन्तरङ्गकारणवेदनीयकर्मतीव्रोदयं, बहिरङ्गकारण अन्नपानादिसामग्र्यवलोकनं, भजनपान सप्रयोग रिक्तोदरञ्च यैः आहारेच्छा प्रकटीक्रियते । निमित्ताभावे नैमित्तिकं न फलति ततः कर्मोपाधि निरपेक्षविशुद्धात्मा क्षुधादिरोग रहितः इति सिद्धम् । अर्हत् परमेष्ठिनमपि क्षुधादिविरहितम् ममात्माऽपि अर्हत् सिद्धपरमेष्ठीसदृशं तस्मात् अहमपि क्षुधादिवर्जितम् एव । चारित्रमोहस्य भेद-सञ्ज्वलन्लोभतीव्रोदयाभावात् क्षुधादिवेदनं न भवति यः ध्यानावस्थाया उपयुक्त सोऽपि क्षुधादिरहितं इत्यर्थ ।

तृष्णाया- कोऽर्थः ? पिपासा जलपानेच्छा इत्यर्थ ।

मोहनीय कर्माभावे पिपासा न जाग्रति इति सुनिश्चितम् किन्तु, षष्ठमादिगुणस्थाने कर्मसद्भावेऽपि शुद्धात्मध्यानावस्थाया जलपानादिभोगेच्छा न भवति संज्वलनतीव्रोदयाभावात् । आमय इति किम् ? शरीर सबंधीरोगो आमय. । शरीराश्रयोपजीवकस्य रोगस्य, आत्मनः भेदात् आमयरहितोऽहमिति कथितम् ।

शोक चारित्रमोहस्य नोकषायस्यभेद विशेष. । शोचयति इति शोक । य. इष्टवियोगजक्लेश जनयति स शोक । शुद्धात्मभावनाया अवस्थितमुनिराजस्य परद्रव्यं-प्रतिअनुरागाभावात् इष्टवियोगोऽपि न सभवति अत शोकरहितोऽहम् इति कथितम् ।

यो विमुह्यति आत्मविभ्रम करोति मार्गात् प्रच्यावयति, विवेकवैपरीत्यं करोति स मोह. । फलोपेक्षया मोहस्य द्विभेद दर्शनमोहचारित्रमोहभेदात् । यः जीवं सर्वज्ञप्रणोतमार्गात्पराङ्मुख करोति, यस्योदयात् जीव. हिताहित विचारहीनो भवति स दर्शनमोहः । यः आत्मनः चारित्रगुणं नाशयति, चारित्रे विकारं करोति सचारित्रमोह । दर्शनमोह विषतुल्यघातक चरित्रमोहः मदिरावत् उन्माद करोति । समाधिस्थ गुरुदेवः स्वभावत परिणामतः सर्वप्रकारेण मोहवर्जितः इति ज्ञातव्य. । भवान्तरप्राप्ति. जननम् । मिथ्यात्वोदय. चारित्रमोहस्य तीव्रोदयश्च भवभ्रमणकारणौ । समाधिस्थगुरुदेवे तयोरुदयाभाव तस्मात् जननवर्जित इति वचन युक्तिसंगतम् । व्याधिविशेषो आतंकः । शुद्धात्मचिन्तने दत्तावधानस्य आतको न भवति । कर्मजन्यपर्याये एकत्वभावनासमुपस्थिते अहंकार. स्मयो वा भवति । साम्यभावेस्थितगुरुदेवे तद्वत् परिणामो न भवति ततो सुसंगतं स्मयवर्जित-विशेषणम् ।

देवपर्याये सयमाभावो, सयम बिना मुक्त्यसंभवः । निर्दोषतपसंयमादिगुणैरलकृतः सूर्यादिसागर सातिशयपुण्यार्थं देवेन्द्रैः परिपूजितः । समाधिकाले देवेन्द्रैः कृतगुरुभक्तिकार्यम् प्रत्यक्षेण दृष्टमपि । तैः कृतदिव्यानुपमवाद्यध्वनिना सह गगनमण्डलः प्रकाशितोऽभवत् । इत्थं कथ्यते तत्रोपस्थितजनसमूहेन ।

समाधिकाले निजशुद्धात्मभावनासहितः सूर्यादिसागरः स्वात्मानन्दसुखाकरः अतीन्द्रियात्मसुखास्वादकः केवलज्ञानमयः सिद्धस्वरूप इव इत्याचार्यमहावीरकीर्तिना प्रतिपादितम् ।

आत्मबलेन सह शरीर बलो धृति बलोपि यतिनायकादिसागरे अतुलैवासीत् । श्रेष्ठशील व्रतैरुत्तरगुणै· शोभितेन समाधिसंस्तरे आरूढेन तेन सूर्यादिसागरेण शान्त्या समाधिं श्रित इत्यर्थ. ।

(२) शुद्धोऽहं परमात्मरूपरचित· शुभ्रैर्गुणैर्राजित· ।
दृष्टा सर्वभुवि प्रसिद्धमहिमा योगीन्द्रवृन्दार्चिता
सिद्धानन्त चतुष्टयान्वितविभु· श्रीसिद्धशैलस्थितो
ध्यात्वा श्रीमुनि आदिसागर रवि शान्त्या समाधिं श्रित ॥

अत्र सुद्धनिश्चयनेन शुद्धात्मस्वरूप प्रतिपादितम् । शुद्धनय वस्तुस्वरूप ग्राहक· । समाधिकाले निजस्वरूप-चिन्तने दत्तावधानस्य मुनीन्द्रादिसागरस्य पवित्रभावना चित्रयितुम् पट्टशिष्याचार्यमहावीरकीर्तिना स्तुतिमय इद काव्य विरचितम् । श्लोकस्य अन्तिमचरणे रविशब्दोऽस्ति । रवि शब्द आचार्य परमेष्ठी बोधकपदविशेष· । विशेषनिर्णयार्थ मोतीलाल-बनारसीदासमुख्यकार्यालयात् प्रकाशितसंस्कृतहिन्दी कोषद्रष्टव्यम्-विशतिशतोत्तर सहस्रपृष्ठपत्रे । शुद्धनयापेक्षा प्रत्येकजीवात्मा द्रव्यकर्मनोकर्म भावकर्म रहितत्वात् शुद्ध एव अस्ति समाधिस्थ कायोत्सर्गमुद्रायामवस्थितस्य गुरो· ज्ञानोपयोगभूमिकाया कर्मजन्यपर्यायबुद्धिर्नास्ति । स्वात्मध्यानेऽवस्थित· स इत्थ विचारयति "अहमपि परमात्मरूपम् । तत्कथम् ? रागद्वेषादिविभावपरिणति रहित श्रेष्ठसम्यक्त्वादिगुणै शोभितत्वात् ।

यत्र किञ्चिदपि मोहजन्य विकारपरिणतिर्नास्ति तत्रैवात्मगुणेषु शुभ्रता पवित्रता निर्मलता आविर्भवति । निजज्ञानोपयोगभूमिकायां यदा आत्मानुभूति जाग्रति तदा अयमात्मा क्षायिक सम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यसुक्ष्मत्वावगाहनत्वागुरुलघुत्वाव्याबाधत्वरूपाष्टगुणै समन्वित सिद्धपरमेष्ठी इव प्रतीयते जायते । तस्मात् शुभ्रैर्गुणै राजित· परमात्मरूपरचित शुद्धोऽहम् इतिकथितम् । शुद्धात्मा ज्ञानघनस्वरूपोऽस्ति । घातिकर्माभावे असहायअतीन्द्रियकेवल ज्ञाने सर्वगुणपर्यायै· सह सम्पूर्णलोकालोक दर्पण इव प्रतिफलन्ति । केवलज्ञानमहिमया अस्य अप्रतिमप्रसिद्धिर्प्रभावश्च जायते । परमात्मरूप स· योगीन्द्रैरपि अर्च्यते पूज्यते । योग यस्य विद्यते स योगी । योगीना प्रधान योगीन्द्र आचार्य इत्यर्थ । बहिरन्तर्जल्पत्यागलक्षण योग· । सतस्य फलं समाधिसिद्धि· । स्वरूपे चित्तनिरोधलक्षण समाधि· लक्ष्य । तै योगीन्द्रै· परमात्मरूपोऽयमात्मा सर्वदा संपूज्यते, अभिमन्यते सिद्धपरमेष्ठी निकलपरमात्मा । अष्टविद्यकर्मकलकरहितसिद्धस्वरूपायमात्मा ऋजुगत्या ऊर्ध्वगमन कृत्वा लोकाग्रभागे अवस्थित । यत तनुवातवलय पर्यन्त एव जीवपुद्गलाना स्थितिर्गमन शक्यम् । तस्मात् अग्रे धर्मद्रव्याधर्मद्रव्याभावात् शुद्धजीवास्यापि गमन नास्ति । गमनाभावात् स्थितिरपि नास्ति इति प्रमाण भूत जिनवचनम् ।

अत्र उपमालकारेणाचार्यादिसागरस्य गुणोत्कीर्तनं कृतम् । सिद्धस्वरूपनिजात्मगुणाम्भोधौ निमज्जितेन मुनीनारविरादिसागरेण शान्त्या समाधि श्रिता इत्यादि वचनकुसुमैरत्र पट्टशिष्य महावीरकीर्तिना गुणानुवादं कृतम् ।

(३) सन्यास दिवसान्चतुर्दश बुध हर्षाद् गृहीत्वा स्वयम् ।
रात्रौ चापि सुधर्मचिन्तनपर. ध्यानं च कृत्वा ध्रुवम् ।
आयाते समये समाधिमरणे आर्षाक्रिया संचरन्
शिष्टात्मा शुचिरादिसागरमुनि शान्त्या समाधिं श्रित ॥

अत्र श्लोकस्यान्तिमचरणे प्रयुक्त शुचिशब्द. रविवाचक. । रवि शब्द. सूरिवाचक. । विशेषज्ञापनार्थं सस्कृतहिन्दीकोष पृष्ठपत्रत्रयविंशत्युत्तर-सहस्त्र द्रष्टव्यम्, पद्मचन्द्रकोषेऽपि सूरिपद· रविवाचकत्वात् पर्यायवाचीपद सिद्धयति पश्यत अष्टत्रिंशत्युत्तरपञ्चशतपृष्ठपत्रम् ।

अस्मिन् काव्ये पट्टशिष्यसूरिमहावीर कीर्तिना क्षपकेनाचरितमुत्कृष्टसाधनां उपक्रमविशेषं वा व्याख्यातम् ।

बहिरात्मबुद्धि समुच्छेद्य देहेममत्वभावमपाकृत्य चतुर्दशदिवसान् चतुर्दशविधाहार परित्यज्य भक्तप्रत्याख्यानसज्ञक पण्डितमरण स्वीकृत्य शुक्लध्यानकारणभूत सुधर्म ध्यानरथे संरूढेन शुचिरादिसागरेण सन्यास स्वीकृतम् ।

सन्यासस्य कोऽर्थ ? ज्ञानोपयोग भूमिकाया रागद्वेषपरिणतिरभावपूर्वक कायवाङ्मनस समीचीन न्यास, विषयेषु विरञ्जन विरमण वैराग्य, विषयाकाच्छारनुत्पत्तिर्वा सन्यास· । तत्र-

कायेन नि प्रयोजनगमनागमनप्रवृत्तिरभाव , शरीरचेष्टाया: अप्रवृत्ति·, शरीरेममत्वपरिव्यागश्च कायसन्यास । कषायवर्धकवचनाप्रयोग वचनसन्यास· । सक्षेपेण साम्ये स्थितिरेव सन्यास· । आगमभाषाया सल्लेखना एव सन्यास । सम्यक् प्रकारेण कायकषाय कर्षण सन्यास· । अत्र रागादि विकल्पाना सम्यग्लेखन तनुकरण भावसल्लेखना, तदर्थं-कायक्लेशानुष्ठान चतुर्विधाहारपरित्यागश्च द्रव्यसल्लेखना । समाधिसिद्धयर्थं द्रव्यसल्लेखनापि ग्राह्यमुपादेयम् इत्यर्थ· । य· प्रत्यक्षेण परोक्षेण वा नि श्रेयसमभ्युदय ददाति स समाधि सन्यासश्च ।

शिवकोट्याचार्येण भगवत्याराधनाया समाधि परमसुखकर मुक्तिकारणञ्च इति कथितम्-

"एकम्हिभवग्गहणे समाधिमरणेण जो मदो जीवो ।

ण हु सो हिंडदि बहुसो सत्तट्ठभवेपमोत्तूण ॥ ६८२ ॥

येन समाधिपूर्वकेन शरीरपरित्याग कृतम् स सप्ताष्टभवाभ्यन्तरे मुक्तिं प्राप्नोति । वर्तमानमुनिपरम्पराया यदासर्वे समाधिमरणेन अनभिज्ञ तदा पूर्वभवसंस्कारेण सुसस्कृतेन बुधेनादिसागरेण प्रथमत· आर्षविधिना समाधि· स्वीकृता ।

शब्दकल्पद्रुमकोशे बुधशब्द सूर्यर्थे प्रयुक्त पृष्ठपत्रे पचत्रिंशत्युत्तरचतु:शते ।

अल्पनेत्रज्योति तस्य सल्लेखनाया कारणम् । नेत्रनिर्मलताया: अभावे समितिपालनमशक्यम् इत्थमवधार्य स्वकीयमूलोत्तरगुणसंरक्षणार्थं मुनिकुञ्जरेण रत्नत्रयसाधनायांबाधकशरीर· हर्षात् परित्यक्त ।

निर्दोषनिर्विघ्नसन्याससिद्धयर्थं तेन किंकृतम् ? रात्रौ अपि निद्रां वञ्चनार्थं स द्वादशानुप्रेक्षायां व्यापृतो संलग्नोऽभूत् । प्रमादरहितेन तेन स्वकायोऽपि मूर्च्छारहितेन परित्यक्त: । धर्मभावपरिणतेन तेन ध्रुवमतीन्द्रियसुखमनुभूतम् ।

धर्मस्यकोऽर्थ· ? वस्तुस्वभावोधर्म. । वस्तुस्वभाव चिन्तनंधर्मध्यानं । प्राथमिकापेक्षया सविकल्पावस्थाया विषयकषायवञ्चनार्थं पञ्चपरमेष्ठ्यादिगुणानुमनन गुणानुरागपूर्वक पूजाभक्त्यादिकार्येप्रवर्तन व्यवहारनयेन धर्मध्यानम् । पश्चात् अभ्यासवशेन स्थरीभूते चित्तेसति शुद्धबुद्धनिजात्मस्वरूपानुमननं स्वस्वरूपे चित्तनिरोधन निश्चयनयेन धर्मध्यानम् । तपोनिधिरादि सागरेण उभयमाचरिद्व परिसेवितञ्च, निश्चयसप्राप्तिरपि व्यवहारपूर्वकत्वात् एव । चतुर्विंशति परिग्रहरहित ध्यातृस्वरूप शुचिरादिसागरे स्फुटं संप्राप्तम् ।

सवरपूर्वकनिर्जराया कारणभूतध्यानफलितार्थं आगमेकथिता पञ्चसामग्र्य परमावश्यका । ता इमा -

वैराग्य तत्त्वविज्ञान नैर्ग्रंथ वशचित्तता

जितपरीषहत्वञ्च पञ्चैते ध्यानहेतव ॥

तानि पञ्चानि वस्तूनि शुचिरादिसागरेण अधिकृतानि । वैराग्यमेव यस्य प्राणा , तत्त्वज्ञानमेव यस्य श्वासोच्छ्वास , नैर्ग्रन्थ्यमेव यस्य स्वरूपं, जितपरीषहत्वमेव यस्याभूषण कवच वा, वशचित्तता एव यस्य नैसर्गिकाचरण स शुचिरादिसागर. सुधर्मध्यानरूपलक्ष्म्या संसेवित सुशोभित परिकीर्तितश्च ।

सुधर्मध्याने ध्रुवेण अचलेन संस्थितेन शिष्टात्मना क्षपकेन शान्त्या समाधि श्रित इत्यादि वचनसूत्रेण अत्र गुरो गुणानुवादं कृतम् । अत्रशिष्टात्माशब्दस्य कोऽर्थ. । जिनशासनानुसारेणाचरण यस्य स शिष्टात्मा ज्ञानात्मा इति जिनवचनम् ।

बाह्याभ्यन्तरतपोनिष्ठेन शुचिरादिसागरेण त्रिगुप्तिना अनुशासित परिशिष्टित· निजात्मा । विपथापथकुपथे असचरन् क्षमादि दशधर्मरूपसुपथेप्रवर्तयन् क्षपक एव शिष्टात्मा । मरणकाल समुपस्थिते भेदविज्ञानेन वीतरागभावेन तेन तनुकारागार अदु·खेन उन्मुक्तम् । समाधिपूर्वकेन सहर्षे· शरीरपरित्याग कृतमित्यर्थम् ।

कि वा यथा बुधजनेन हर्षात् मलिनवस्त्रं परित्यज्यते तथैव शुचिरादिसागरेण सहर्षेण तत्त्वज्ञानपूर्वकेन आर्षाक्रियासचरन् शरीर-परित्यागं कृतम् ।

अथ समाधिकाले मुनिचन्द्रादिसागरस्य तीर्थंकरप्रकृते· बन्धकारणं अर्हद्भक्तिभावना प्रकट्यन् सूरिमहावीरकीर्तिना गुरो भावसल्लेखनाया: स्वरूपं प्रस्तूयते, कथ्यते-

( ) श्री चैत्य जिननायकस्य विमल लोकोत्तरं मगलम्
श्रीशुक्लदृषद्‌द कल्पितविभु श्रीपार्श्वनाथंजिनम्।
भाले हस्तयुग निधाय शिरसा नत्वा च दृष्टवामुहु
ध्यात्वाश्रीबुध आदिसागरमुनि शान्त्या समाधिं श्रित ॥

अत्र श्लोकस्य अन्तिमचरणे प्रयुक्त बुधपद-आचार्यपदबोधकम् तत् व्याकरणादपि संसिद्धम्। शब्दकल्पद्रुम तृतीय भागे बुधशब्द· आचार्य पद वाचकोऽपि स्वीकृत·।

श्रीबुधादिसागरेण शरीरपरित्यागसमयेलोकोत्तरमगलस्वरूपघातिकर्मरहित परम विमल जिननायकस्य शुक्ल पाषाणेन निर्मित श्री पार्श्वदेव सभक्त्या संस्तुत वंदित इति निर्देशवचनमत्र ज्ञातव्यम्।

समाधिसिद्ध्यर्थं चैत्यभक्तिरपि साधकमावश्यक प्रयोजनीभूतम् इत्यपि अत्र प्रदर्शितम्। चैत्यस्तुत्या सवरपूर्वकनिर्जरा भवति तस्मादर्हद्‌भक्तिरपि समाधिससाधनमितियुक्तिसगतम्। अशुभपरिणामवञ्चनार्थंरागद्वेषादिदोषनिवारयितुं चित्तभूमौ-संस्थित मोहकर्दमं अपाकर्त्तुं चैत्य भक्तिस्समथसाधनमिति जिनवचनम्।

स्तुतिपथातीत श्री भृतामर्हत्ता चैत्याना सकीर्ति: स्तुति, पापास्रव निरोधिका इति परम्पराचार्यैरपि प्रोक्तम्। कोपादिविकाराभावात् तद्‌जिनबिम्बमताम्रनयनोत्पल, विकारोद्रेकाभावात् वक्राक्षशरमोक्षहीन सौम्यञ्च, विपादमदहानित· प्रहसितायमानश्च इति चैत्यभक्त्या गदितम्। उक्ताभिप्रायं गृहीत्वा श्रीबुधादिसागरेण समीपस्थजिनालयेशोभित शुक्लपाषाणेन निर्मित कल्पितविभु श्रीपार्श्वनाथजिन परिपूजितम्।

मूलश्लोके प्रस्तुतं यत् विमल लोकोत्तर मगल कल्पितविभु जिनं इत्यादिशब्दं प्रयुक्त तत् जिननायकस्य श्री पार्श्वदेवस्य गुणोत्कीर्तकम्। सागरमिवार्थगाम्भीर्येण समन्विते तस्मिन् पदे वचनसक्षेपमस्ति अर्थ सक्षेपं नास्ति। शब्दसूत्रेण ग्रन्थित प्रत्येक पद अर्थ वैशिष्टेन अलकृतम्। अत्र प्रत्येक विशेषणस्य व्याख्यापि प्रस्तूयते-विमलदिशब्दस्य कोऽर्थ ? विगतं मलं पापं घातिचतुष्क यस्य स विमल इत्यर्थ। लोकेषु त्रिभुवनस्थितप्राणिवर्गेषु उत्कृष्ट स लोकोत्तर। लोकात् चतुर्गति भ्रमणरूपससारात् यो उत्तीर्ण· उत्तरति पारयति च भव्यजीवान् स लोकोत्तर।

मल पाप गालयति विध्वंसयति इति मगलम्।

मग पुण्यं सुखं तल्लति आदत्ते गृह्णाति वा मंगलम्।

विभु शब्द स्वाम्यर्थंप्रतिपादकम्। कल्पितशब्दं व्यवस्थितं निर्मित सरचित इत्यादि अर्थ प्रतिपादकम्। निश्चयनयेन य स्वस्वरूपे निजज्ञानदर्शनस्वभावेव्यवस्थित. व्यवहारेण व्यवहाररूपमोक्षमार्गस्यापि नेता स मोक्षमार्गस्य नेतृत्वात् कल्पितविभु· कथ्यते। स कल्पित विभु· तीर्थंकरार्हत्परमेष्ठी एव इत्यागमसिद्धं युक्तिसिद्धञ्च येन विजित. कषायध्वान्त. सजिन· इति

समन्तभद्राचार्य वचनम् । मोहशत्रु पराजित विजित येन स जिन । अत्र विवक्षित श्री पार्श्वदेव· अस्तु पूर्वोक्त सर्वविशेषणै श्री पार्श्व तीर्थंकरस्य स्तुतिर्ज्ञाताव्या ।

त श्रीपार्श्वदेव शिरसा प्रणम्य, तस्य चरणयुगले स्वशिरोभागमवनम्य, वीतरागेण भावेनालङ्कृत तस्य प्रशान्त मुद्रामवलोक्य ध्यानेन स्वहृदये त सस्थाप्य श्री बुधादिसागरेण शान्त्या समाधि स्वीकृता । भेदज्ञानेन तत्त्वज्ञानेन पौद्गलिक शरीर तेन सन्यस्त परित्यक्तम् । पूर्वोक्त वाक्येन, अत्र चतुर्दशदिवसभक्तप्रत्याख्यानपूर्वक येन समाधि अवधृता तस्य भावविशुद्धि प्रदर्शयन् पट्टशिष्याचार्य महावीरकीर्तिना स्वदीक्षागुरो श्रेष्ठ समाधिस्वरूप चित्रितम् ।

(५) मत्र पचनमस्क्रियात्मकमल सर्वेपठन्ति स्म वै
श्रुत्वा हर्षभर प्रसन्नवदन ध्यानेदृढो भावत
पाय पायमहो विशुद्धमनसा धर्म्य शिव मगल
श्रीयोगीश्वरआदिसागरमुनि सिद्धा समाधि श्रित ॥

श्लोकस्यान्तिमचरणे प्रस्तुत योगीश्वरपद आचार्यपदवाचकम् । इद श्लोक मन्त्रशब्देन प्रारम्भितम् । मन्त्रस्य कोऽर्थ ? "मन्यतेज्ञायते आत्मदेशोऽनेन इति मन्त्र ।" येन शुद्धात्मन आदेशो परिज्ञायते स्वात्मानुभव वा संप्राप्यते स मन्त्र । ज्ञानार्थे प्रसिद्धे दिवादिगणे मन् धातौ पऽनप्रत्ययेसयोगे मन्त्र सभवति । अस्मिन् व्युत्पत्तौ, मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन स मन्त्र इति ससिद्धयते ।

सम्मानार्थ प्रतिपादके मनधातौष्ट्रन् प्रत्यये कृते "मन्यन्ते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिता आत्मान यक्षादिशासनदेवता अनेन इति मन्त्र ।

सर्वपाप प्रणाशके णमोकारमहामन्त्रे गुरोरादिसागरस्यातुलभक्ति प्रकटयनत्र तस्य सुसमाधि सकीर्तितम् । अनादिमन्त्रमूलमन्त्रापराजितमत्रमहामत्रनमस्कारमत्ररूपेणसुप्रसिद्ध पचपरमेष्ठीवाचक इद णमोकारमन्त्रम् ।

अस्य महामत्रस्य पाठ तत्रोपस्थित सर्वमुन्यार्यिकाश्राविकावृन्दै मधुरध्वनिना अविरलेन सपादित तत्र । प्रसन्नवदनेनप्रहसितायमानचित्तेन मत्र प्रति स्वकीयभक्ति अभिव्यजयन् निजात्मतत्त्वे भावत भावविशुद्धिपूर्वक स्व सुमेरुवत् निश्चल कृत्वा अस्य महामन्त्रस्य पावनध्वनि श्रृण्वता शुचिरादिसागरेण वीरमरणेन पार्थिवशरीर परित्यक्तम् । पट्टशिष्यगुरुमहावीरकीर्तिना णमोकारमन्त्रस्य महिमाविशेषमपि अत्र प्रदर्शितम् । प्रत्येकपद अर्थगाम्भीर्येण समन्वितम् ।

'पा' धातौण्यत् प्रत्ययेकृते पाय शब्द निष्पन्नम् । यत् जलमिवसरक्षकार्थप्रतिपादकञ्च । धर्मेशत्प्रत्यये कृते धर्म्यशब्द फलितम्, यत् कर्त्तव्यसगतधर्मसंगतार्थबोधकम् । य स्वकर्त्तव्ये स्वस्वभावे जीव सस्थापयति स धर्म्यम् । स्थाईमोक्षसुखबोधक शिवपद पापरूपघातिकर्म प्रणाशक मङ्गलपदम् । इमानि सर्वाणि विशेषणानि पञ्चनमस्कारमन्त्रस्य ज्ञातव्यानि ।

श्री योगीश्वरपदेन आचार्यदिसागरस्य गुणानुवाद कृतमत्र । श्रीपद रत्नत्रयप्रतिपादकं अन्तरङ्गबहिरङ्तपरूपलक्ष्मी-अभिव्यञ्जकम् । योगीना प्रधान योगीश्वर यमनियमानसन प्राणायाम

प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि लक्षणा अष्टौ योगा विद्यन्ते येषा, ते योगिनः । योगीना प्रधान योगीश्वर । शब्दकोशे-योगीश्रमण ऋषिमुनिसाधुवीतरागानगारभदन्तादिपर्यायवाचकानि शब्दानि अधिकृतानि ।

य तपसा स्वात्मानं श्रमयुक्त करोति सश्रमण । य· पापानि निवारयति स ऋषि, सप्तऋद्धियुक्तोऽपिऋषि । य स्वपरार्थसिद्धि करोति स मुनि । य रत्नत्रय साधयति स साधु. । यस्य रागभाव विनष्ट स वीतराग । सर्व परिग्रहेण रहित अनगार । य सर्वजीव कल्याणकारक स भदन्त । येन पंचेन्द्रियाणि विजितानि दमितानि स दान्त· । त्रयोदशविधौ चारित्रे य प्रयत्नशील स यति इमानि सर्वाणिपदानि यतीना पर्यायनामानि इत्याभिव्यजितानि मूलाचारग्रन्थे । रविरादिसागर तेषायतीना नायक ईश्वर तेन निर्दोषा सिद्धिदा समाधि स्वीकृता ।

(६) **चिन्ताशोकभयान्तकादिरहिता क्लेशादिभिर्वर्जिताम् ।**

हिक्काशान्तिकरीं प्रबोधजननी धीरा गभीरा शुभा ।

आयाते निकटे समाधिमरणे सौभाग्य ससाधिका

पुण्यात्मावर आदिसागरमुनि पूता समाधि श्रित ।

समाधे योग्यसामग्री ज्ञापकमिद काव्यम् । चिन्ताशोकभयातकादि समाधे प्रतिपक्षी । समाधे श्रेष्ठफल स प्राप्नोति य चिन्ताशोकादिपरिणामात् उन्मुक्त । ससारशरीरभोगाकांक्षामयचिन्तन विचार यस्य हृदये नोत्पद्यते स एव समाधि पाप्नोति । समाधिस्तु चिन्तारहित शोकरहित भयरहित क्लेशादिभि वर्जितञ्च । मरणकालेसमुपस्थिते हिक्काशान्तिकरी धीरा गम्भीरा पूता बोधिदुर्लभभावनाजननी सौभाग्यसाधिका ता समाधिरूपमुक्तिवधू सम्प्राप्य सश्रित्य मुनिकुञ्जरादिसागरस्य परलोकयात्रा निविघ्नेन ससिद्धा सपूर्णा इत्यादि विषय सक्षेपेणाअत्र सुशिष्ट-महावीरकीर्तिना समुपस्थितम् ।

अत्र विशेषप्रज्ञापनार्थ चिन्तादिशब्दार्थअपि व्याख्यायते ।

पचेन्द्रिय विषय प्रति चिन्तन चिन्ता । नानार्थावलम्बनेन चिन्ता परिस्पन्दवती । अन्त करणस्य-वृत्ति अर्थेषु चिन्ता इत्युच्यते । चिन्ता अतिदु·खकरा, उक्तमपिनीतिकारेण-

चिन्ता चिता समायुक्ता विन्दुमात्र विशेषता ।

सजीव दहते चिता निर्जीव दहते चिता ।

अस्मिन् श्लोके चिन्ता चिता सम कथिता विन्दुमात्रेण तयोन्तर भेदम् ।

चिन्ता सजीव दहते, चिता निर्जीव दहते । तस्मात् चिताया चिता अतिदु खकरा । देहेममत्वाभावात् क्षपकस्यान्त करणे चिन्ता न जाग्रति ।

शोकशब्दस्य कोऽर्थः अनुग्राहकसबंधविच्छेदे वैक्लव्यविशेष शोकः इति सर्वार्थसिद्धिकारवचनम् । उपकारकस्य सबधविच्छेदे जायमानाकुलतारेव शोक । मोहकर्मोदयात् उत्पन्न जीवस्य परिणामविशेष शोक ।

यद विपाकाच्छोचन स शोक । शोक अरति पूर्वक भवति, अरतिं बिना शोक नोत्पद्यते ।

भयस्य किमर्थम् ? भीतिर्भयम् ? भयमपि मोहकर्मोदयात् उत्पन्नपरिणाम विशेषम् । धवलाया इ थ प्रतिपादितम्-

"जस्सकम्मस्स उदयेण जीवस्ससत्तभयाणि समुप्पज्जंति त कम्मभय णाम" यदुदयात् उद्वेगस्तद्भयम् इति सर्वार्थसिद्धौ अपि उक्तम ।

भयोत्पत्तिकारणानि कानि ? श्री नेमिचन्द्राचार्येण चत्वारि कारणानि भयोत्पत्तौ लिखितानि गोम्मटसारे-

"अइभीम दसणेण य तस्सुवजोगेण ओमसत्ताए ।

भयकम्मुदीरणाए भयसण्णा जायते चदुहिं ॥

सिन्हसर्पादि क्रूर भयकर जीवान् भयकरजडपदार्थान् दर्शनात्, भयकराकृतिस्मरणात् शरीरबलात्मबलक्षीणाच्च भयमुत्पद्यते । भयकर्मतीव्रोदयात् अत्र भयरूपपरिणाम प्रादुर्भवति ।

अन्तकस्य कोऽर्थ ? अन्तयति अन्त करोति स अन्तक घातक नाशक सहारक । रत्नत्रयाभावपूर्वक मरणमत्र अन्तकशब्दे विवक्षितम् । रत्नत्रयसद्भावमेव जीवनम्, रत्नत्रयविरहितपरिणाममेव मरणम् । य रत्नत्रयसहितपरिणामेन शरीर परित्यजति स सप्तभवोपरिससारे चतुर्गतिरूपभव भ्रमण न करोति अतएव अन्तकादिरहिता सा समाधि इतिससिद्धम् । सा समाधि क्लेशादिभि वजितमपि । क्लेशशब्द दु.खवेदनापीडादिबोधक । क्लिश्धातौ घञ् प्रत्यये कृते क्लेश निष्पन्न । परद्रव्यानुराग क्लेशस्योत्पत्तिकारणम् । समाधि. मोहस्याभावसूचक, साम्यपरिणामबोधक । साम्यभावे सति त्रिपक्षाभावात् समाधिः क्लेशादिभि वर्जिता इति न्यायम् ।

जिनशासने समाधि मृत्युमहोत्सवरूपेण प्रसिद्ध । समाधिस्थ मुनौ कषायपरिणामाभावात् क्लेशः न भवति । कषायोदय क्लेशस्य कारणम्, कारणाभावात् कार्यमपि न भवति । अत समाधि क्लेशादिभिर्वर्जिता इति सुस्फुटम् । मूल श्लोके समाधिः हिक्काशान्तिकरं त्यपि कथिता, तत् कथम् ? उपलक्षणेन हिक्कामरणकालीन वेदनायाः अभिव्यजका । समाधिस्थमुनि साम्यभावेन ता वेदना जयति, उपशाम्यति । तस्मात् हिक्काशान्तिकरीसमाधिः इति सुसगतम् ।

"प्रबोधजननी" अस्य कोऽर्थ ? प्रकृष्टेन बोध. प्रबोध । प्रकृष्टेन शब्देन किं अभिव्यक्तम् ? प्रकृष्टपद ज्ञानस्य विशेषणम् । स्वपरभेदविज्ञानः रागादिपरिणामविरहितज्ञानोपयोगः एव प्रकृष्ट बोध ज्ञातव्य ।

निश्चयनयेन अभेददृष्ट्या बोधिश्च समाधिश्च आगमेसमानार्थप्रतिपादकौ, व्यवहारनयेन तयो मध्ये निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धमस्ति । बोधि: निमित्तं नैमित्तिकं समाधि: अथवा यथावसरे समाधि निमित्त, नैमित्तिकं बोधिरपि स्वीकृतम् अत· "समाधि प्रबोधजननी" इदं सुसंगतम् ।

"धीरा" पदेन किं अभिव्यक्तिम् ? य· स्वस्थचित्त: शान्तसौम्यप्रशान्त चित्त: तस्यैव समाधि· सभवति । इदमेवभिप्राय प्रकाशनार्थं सा समाधि: धीराविशेषणेन विश्लेषिता । नीतिकारेण तथा उक्तञ्च-

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषा न चेतांसि त एव धीरा· ।"

दु·खपीडादिकारणे समुपस्थितेऽपि यस्मिन् चित्तविक्षेपो न भवति, मन· शाम्यति स धीर· । अथ समाधि गभीरा कथितातत्कथम् ?

य गम्भीर मेधावी, गम्भीरप्रकृतियुक्त स· समाधियुक्त. तस्मात् समाधि गम्भीरा कथिता । शुभापदेन परमश्रेयकारी स्वर्गमोक्षफलप्रदात्री सा समाधि इत्यभिव्यक्तम् । समाधि· सौभाग्यससाधिकाऽपि । सुष्टुभाग्यं सौभाग्यम् । साधुसमाधि भावना बलेन तीर्थंकर रूप महापुण्य प्रकृते बन्ध भवति । सुसमाधिना अल्पभवाभ्यन्तरे अविनाशीमोक्षसौख्योपलब्धिर्भवति ।

पुण्यात्मावरमहापुण्यशालीशुचिरादिसागरेण आयो:अवसाने आयाते निकटे मरणसमये वा उक्त वैशिष्ट्येन समलङ्कृता समाधि· संश्रिता ।

(७) स्वाद्य खाद्य मथान्नजं चसकल लेह्यं च पेयादिकम् ।
सर्वं हेयमसाररूपकमिदं आजन्महित्वा जगत्
एकत्रयादि भवेषु मोक्ष जननीं संसाररोगापहां
श्री चिन्तामणि रादिसागर यति· चिन्त्यां समाधिं श्रित ॥

आजन्म असारभूत चतुर्विधाहार परित्यज्य सुखतरेणाचार्यादिसागरेण वीरमरण स्वीकृत इत्यादि विषयप्रतिपादकमिद श्लोकम् ।

अशन भोज्यपदार्थं तत् चतुर्विध-स्वाद्य, खाद्यं, पेय, लेह्यम् च ।

एलामधुराताम्बूलादिस्वाद्य, रोटिका-पूलिका-पिष्टिका-पूपिकादिभोज्यसामग्रीखाद्यरूप, तक्रदुग्धजलादिपेयभभूतानि ।

सर्वप्रकाराणि अशनानि मोहोत्पत्तिकारणानि, राग द्वेषादि विकारोत्पत्तौ बाह्य निमित्तानि, आहारसज्ञाया. उद्दीपकानि तस्मात् अशन हेयमनुपादेयम् कथितम् ।

निश्चयनयेन सप्तधातुमयाशुचिकर देह यस्य फलं, यस्य कार्यं तदशनं आत्मस्वभाव सर्वथा भिन्नत्वात् हेयं त्याज्यम् । अशन चित्तविक्षेपकारण भोगाकाञ्छावर्धकं तस्मादपि हेयम् ।

१.

अशन असार सारहीनम् । सारमात्मस्वभाव रत्नत्रयादिगुणसमूहम् । अन्नादिभोज्यपदार्थानि असारभूतानि पलाण्डुपत्रवत् कदलीवृक्षस्तम्भत्वक्वत् । यथा पलाण्डु· पत्रमात्रेणपरिपूरितं पत्रमात्रत्वात् तुच्छ, तथैव अशनमपि आत्मस्वभावभिन्नकार्यत्वात् दुखोत्पत्तितत्रत्वात् असारभूत गदितम् ।

सकलसन्यासत्यागभावना एव मोक्षप्रासादस्थापनार्थं सुदृढनीववत् आधारभूता । वृक्षस्यमूलवत् सुरक्षणीया । आचतुर्दशदिवस चतुर्विधाहारपरित्यागपूर्वक चिन्तामणिरादिसागरेण रोगापहा-जन्मजरादिरोगात् विमोचका, एक द्वयत्रयादिभवेषु नियमत मोक्षप्रदायिका, सर्वयतिवर्गै साध्यभूता चिन्त्या सर्वप्रिया समाधि, स्वीकृता ।

यथाचिन्तामणिरत्न. याचकेभ्य चिन्तितफल ददाति तथा शुचिरादिसागरस्य दर्शनमपि भवभवान्तरस्य पापानि उन्मूल्य याचना बिना अपि स्वर्गमोक्षफल ददाति । ससारभ्रमणदु ख-निवारका, जन्मजरादिरोगापहारका समाधि परमोपादेया इत्यपि अत्र निर्दिष्टा । गुरुरादिसागरेण सा समाधि आगमोक्तप्रकारेण सधारिताश्च इयमपि अत्र स्पष्टीकृता ।

(८) पञ्चाचार परायण सुविमल स्वर्मोक्षसदेशक
आत्मध्यानरत प्रशान्तवदन नृपसुरेन्द्राद्यर्चित ।
बाह्याभ्यन्तर सगमोहरहित मुनिकुञ्जर नि स्पृह
दत्वा सूरिपद मयि सुविधिना निश्चित्य समाधि श्रित ॥

आचार्योचितश्रेष्ठगुणैरलंकृतसूर्यादिसागरस्य गुणानुवादपूर्वकेन समाधिकारणानि पञ्चाचारादीन्यपि उपदिष्टानि । तानि कानि ? दर्शनाचारज्ञानाचारचरित्राचारतपाचारवीर्याचारभेदेन पचप्रकारानिआचाराणि प्ररूपतानि ।

अथ क दर्शनाचार· इति सपृष्टे इदमार्हजिनोत्तमै यथा पदार्था· उपदिष्टा तेषा तथैव श्रद्धानपूर्वकमनुष्ठानम् दर्शनाचार । मूलाचारे उक्तञ्च-

तत्त्वार्थविषयपरमार्थश्रद्धानुष्ठान दर्शनाचार ''

ज्ञानाचारादिस्वरूपाणि कानि ? इति सपृष्टे प्रत्येक पदस्य व्याख्या जिनागमानुसारेण अत्र प्ररूप्यते-

योगशुद्धयासुशास्त्राणा कालाद्यष्टविद्याचारै पाठन ज्ञानविनयो, विनयपूर्वक वाचनापृच्छनादिपचविधज्ञाननिमित्त शास्त्राध्ययनादिक्रियाज्ञानाचार । अतिचारादि अपाकर्तुं कृत यत् प्रयत्नविशेष तत् विनय । अतिचारे निर्गते आगमोक्तविधिना अनुष्ठानमाचार इति सर्वत्र ज्ञातव्यम् ।

त्रयोदशविधौ वृत्तपालने यो उत्साहो अनुरागश्च स चारित्र विनय । सोत्साहप्राणिबध परिहारेन्द्रियसयमनप्रवृत्ति चारित्राचार । द्वादशविधतपयोगाचरणे तपस्विषु च शक्त्या य. भक्तिरागोद्यम स तपोविनय । सविनयेन कायक्लेशाद्यनुष्ठानं तपाचार· । शुभविष्येषु स्वशक्त्योत्साह वीर्यस्यानिह्नवो वीर्याचार ।

श्री सकलकीर्त्याचार्य विरचित मूलाचारे कथितञ्च-

बलं वीर्यं निजं सर्वं प्रकटीकृत्य योगिनाम् ।

सयमाचरणं यत्स वीर्याचारो जिनैर्मतः ॥

अत्र-सरसाहारौषधादि प्रयोगेनोत्पन्नसामर्थ्यविशेषं बलम् तथा वीर्यान्तरायकर्मणः क्षयोपशमात् उत्पन्नसामर्थ्यविशेष वीर्यम् ।

मूर्यादिसागरेण स्वकीयसम्पूर्ण बलवीर्य प्रकटीकृत्य द्वादशविधतपांसि समाचरितानि, निरतिचार सयमपालने स्वकीयात्मशक्त्य प्रयुक्ता इत्यर्थ· ।

सुनिर्मल सुष्ठु शोभन चारित्र तेन स्वीकृतम् । ससारसमुद्रतारणसमर्थेन तेन स्वर्गमोक्षप्राप्त्युपायौ अपि अत्र व्याख्यातौ । योग्य द्रव्यक्षेत्रकालादि-अभावात् मोक्षप्राप्तौ असमर्थ· स क्षपक शुभलेश्यासहशरीरपरित्यागात् स्वर्गसुख प्राप्नोति परम्परया अक्षयातीन्द्रियात्मसुखानुभवन-लक्षणमोक्षोऽपि सम्प्राप्यते । इत्यादि विषय शुचिरादिसागरेण सविस्तरेण प्ररूपितम् इति तेन धर्म-प्रभावनाकृतम् । साम्यस्वभावेनालकृत· प्रशान्तवदन राजेन्द्रसुरेन्द्रादिपुण्य पुरुषेण परिपूजित· स सूरिरत्नादिसागर पट्टशिष्यगुरुमहावीरकीर्तिना अपि संस्तुत. ।

परित्यक्तो येन दशविधबाह्यपरिग्रह· चतुर्दशविधाभ्यन्तरपरिग्रहश्च स विगतमोह· ससारशरीरभोगेषु वाञ्छारहित मुनीनां प्रधान ज्येष्ठ मुनिकुञ्जर·, तेनाचार्य प्रवरादिसागरेण ममोपरि सूर्यादिसागरस्य स्वकीयाचार्य पद निक्षिप्य निर्विकल्प भूत्वा सुष्ठुसमाधि श्रित ।

वर्तमान आचार्य परम्परा

श्री जिनेश कोठारी महामत्री
भारतीय जनता युवा मोर्चा,
आनन्दसर, कालु (राजस्थान)

वर्तमान आचार्य परम्परा की चर्चा करते समय मैं आचार्य कुदकुन्द को छोड दूँगा । चलती फिरती जीवन्त आचार्य परम्परा की चर्चा करूँगा । तीन आचार्य परम्पराये अभी हमारे सामने विद्यमान हैं । प्रथम आचार्य परम्परा है चारित्र चक्रवर्ती श्री आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) द्वितीय परम्परा है चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी दक्षिण की । तीसरी परम्परा है आचार्य शान्तिसागरजी छाणी वालो की ।

आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) तो निर्विवाद प्रथम स्थान पर बैठे हैं । कई बार एक जैसा नाम होने से भ्रम हो जाता है । आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण और आ शान्तिसागर जी छाणी की जय बोलते समय इस प्रकार का प्रश्न आ जाता है कि जय किसकी बोली गई । वैसे तो

'णमोलोएसव्वसाहूण' मे परमेष्ठी के नमस्कार स्वत हो जाता है चाहे वह किसी भी नाम का धारी हो । जय बोलने मे किसी श्रावक को कोई विवाद नही है, मतभेद नहीं, झगडा नहीं । विवाद और झगडा डालने वाले तो दो चार पडित वर्ग जो अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं, वे ही हैं । सामान्यत त्यागी वर्ग मे भी कोई विवाद नही है वैसे तो अपवाद रूप 2-4 सदस्य हर जगह होते हैं । स्थूलत किसी भी त्यागी वर्ग मे कोई विकल्प नही है । न आचार्य-चारित्र चक्रवर्ती आदिसागरजी अकलीकरजी के बारे मे विवाद है, न चा च आ शान्तिसागरजी दक्षिण के बारे मे विकल्प है । जहाँ तक पदो का प्रश्न है वहाँ तो मात्र आचार्य और उपाध्याय दो पद हैं जिसका निष्ठापन गुरु व सघस्थ त्यागियो के द्वारा होता है । व्यक्तियो को, सस्थाओ को यह अधिकार नही कि वे किसी मुनि को कोई आचार्य व उपाध्याय पद दे सके । जो आचार्यादि पद की गरिमा स्वय नही जानते वे किसी को पद भी कैसे दे सकते है । आचार्य और उपाध्याय पद का समारोहण, सस्कार वस्तुत उनके दीक्षा गुरु आचार्य ही करते हैं लेकिन विडम्बना है कि हम अह के साथ 2 स्वार्थों मे इतने लिप्त हो चुके हैं कि शीघ्र गुट बनाकर, समूह बनाकर जिस किसी मुनि को, मात्र अपनी पूजा, प्रतिष्ठा, ख्याति और स्वार्थ सिद्धि के लिए आचार्य पद दे देते हैं किसी को उपाध्याय भी बना देते हैं पर इस तरह हम धर्म प्रभावना नही अपितु मुनि परम्परा के अस्तित्व को धूमिल करने की कोशिश कर रहे है । आचार्य पद वर्तमान मे सर्वश्रेष्ठ पद है क्योंकि अरिहन्त प्रत्यक्ष यहाँ नही उपलब्ध होते, सिद्ध परमेष्ठी का ससारी जीव प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते नही अभी आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन परमेष्ठी पदधारी हमारे समक्ष है । और तीना पदो की स्थापना साधु सघ से होती है । दुर्भाग्य हुआ हमारा जो आज हम विवादो मे पहुँचे । विवाद की नीव भी उस दिन रखी गई जिस दिन श्री महावीर जी सिद्ध क्षेत्र पर आचार्य शिवसागरजी महाराज की समाधि हुई और उस समय मुनि सघ को यह निर्णय नही करने दिया कि हमारा अगला आचार्य कौन होगा । कुछ विद्वान् व चन्द ठेकेदारो ने इस कार्य को अपने हाथ मे ले लिया तथा मुनि धर्म की, मुनि आम्नाय की परम्परा को तोडकर अपनी इच्छानुसार आचार्य पद की स्थापना की । उस दिन समाज के चन्द विद्वान्, चन्द श्रीमन्तो यदि स्वार्थ लोलुपी होकर हस्तक्षेप न करते और मुनियो को उन्होने यह निर्णय करने का अधिकार दिया होता कि उस सघ का अगला आचार्य कौन होगा ? किसको बनाया जाये तो मै समझता हूँ आज जो विवाद हमारे समक्ष उपस्थित हुए है, आज जो समाज टूट रहा है, आज जो समाज के बीच दीवारे खडी कर दी हैं वह कभी नही होती और उसके बाद इस परम्परा को स्थाई बनाया गया । आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज की समाधि के बाद । पडित और श्रेष्ठि वर्ग ने फिर मुनि सघ के बीच हस्तक्षेप किया, जोरो से विवाद उठा इतना अधिक कि उसने हिन्दुस्तान के हर जन मानस को विवाद में घसीट लिया और ऐसा घसीटा कि सघ का विभाजन शुरू हो गया । हिन्दुस्तान के जेन जगत् के पेपर ही नहीं अपितु राष्ट्रीय पेपरों को भी इसमे शामिल कर डाला सबसे पहले विवाद हुआ-आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज के पद को लेकर । मुनि श्री बाहुबली जी और श्री विद्यानन्दजी महाराज को हमने इस घेरे मे पूर्ण रूप से कस डाला और इतना कसा कि विवाद न्यायालय तक पहुँच गया । फिर विवाद उठा आचार्य अजितसागरजी महाराज की समाधि के साथ और उस समय ऐसा लगा मानो जैन सिद्धान्त की सारी

आम्नाये, श्री कुन्दकुन्दाचार्य के सारे वचन जो केवलियों से सुनकर दक्षिण में गूंजे थे उनकी होली जला दी गई हो, मुनि श्रावक पद में पहुँच गये । फिर एक विवाद हुआ पंचम पट्टाचार्य को लेकर । आचार्य श्री वर्धमानसागरजी और आचार्य श्रेयांससागरजी २ पंचम पट्टाचार्य बने । एक पंचम पट्टाचार्य का स्वर्गवास हुआ और विभिन्न दुर्भावनाओं के साथ जो सम्पूर्ण समाज के लिए कलंक स्वरूप था एक नया विवाद शुरू हुआ और पंचम के रहते हुए षष्ठम पट्टाचार्य बनाया गया । उस समय मैं मूक दर्शक बना हुआ मांगी तुंगी जी सिद्ध क्षेत्र पर बैठा था । इस मूल परम्परा में जहाँ-जहाँ विवाद उठ गये हैं, जिन-जिन लोगो ने अपनी दुकाने चलाने के लिए समाज को तोड डाला है उन सबको समाज के बीच लाया जाय तथा आगे ऐसा न करने की प्रतिज्ञा कराई जाय इस आयोजन का लक्ष्य है । समाज विवादो से हटकर एक सूत्र मे बंध सके यही एक मकसद है मेरा अभिप्राय हगामा खडा करने का नही है हम यथार्थता को समझे और जिससे धर्म की हानि न हो, मुनि परम्परा आचार्य परम्परा की निर्मल धारा विच्छिन्न न हो इस प्रकार का प्रयत्न रखे तो आज की धर्म सीमा सफल समझी जायेगी मेरी इच्छा है कि सूरत ही नहीं सीरत भी बदलनी चाहिए । मेरे सीने मे न सही, तुम्हारे सीने मे ही सही, कही भी हो, लेकिन आग होनी चाहिए ।

आचार्य परम्परा

श्री सुरेशचन्दजी लवली बर्तन वाले फीरोजावाद (उ प्र.)

मै अपनी बात कहने से पूर्व अपने उन निर्ग्रन्थो का उन अरिहतों का तीर्थंकरों का उन परमात्माओ का भगवन्तो का जिसने इस सृष्टि के निवास करने वाले प्रत्येक प्राणी में विभिन्न रूपो मे विभिन्न मुद्राओ मे विभिन्न शक्लो मे देखा जाना और अपने आप को समर्पित कर दिया उनसव सबको जो भूतकाल मे हो चुके है वर्तमान में हो रहे हैं और भविष्य में होवेगे उनसव सबको जिन्होने अपने गतव्य को प्राप्त कर लिया है उन सबको जो अपने गंतव्य मार्ग पर बढ रहे हैं जिन्होने मानवता को मानवता का मार्ग दर्शन किया है अधकार मे प्रकाश प्रज्वलित किया है उन सव सबको मैं नमन करना चाहता हूँ । आपके साथ मिलकर के क्योंकि हम जब तक नमन नही करेगे, जब तक नम्रता की श्रेणी हमारे अदर प्रवेश नहीं करेगी और जब तक हम झुकना नहीं सीख सकेगे । तब तक हम आदमी तो रह सकते हैं । इसान नहीं बनेगे और जो इसान नहीं बन सकता वह भगवान भी नही बनेगे और जो इंसान नहीं बन सकता वह भगवान भी नहीं बन सकता तो मैं उन सब परमात्माओ को जो अपने गतव्य को प्राप्त कर लिया है या कर रहे हैं या भविष्य मे प्राप्त करेगे, उन सबको नमन करूँगा आपके साथ ।

मेरा वक्तव्य है मेरी विचारधारा है आप भी उससे सहमत अवश्य होगे आपका विषय है । मैं जो कह रहा हूँ उसका कहीं न कहीं किसी न किसी ग्रन्थ से प्रमाणित अवश्य होगा और अपवाद मार्ग और सुनी सुनाई बातें नहीं होगी । जो भी शंकाये हैं उनका मैं प्रमाण से आगम से धर्म

ग्रन्थों से और परम्परा से चले आ रहे तथ्यो से इसे प्रमाणित करने की कोशिश करूँगा । मेरा वक्तव्य पूर्वाग्रह से ग्रसित न समझा जाय । अब मैं अपना वक्तव्य कवि की इस पंक्ति से शुरू करू कि "गलती को गलती माने उसे इसान कहते हैं और गलती कर सुधरता है उसे भगवान कहते हैं । गलती पर गलती करे उसे शैतान कहते हैं और गलती को गलती नही माने उसे हैवान कहते है ।" वर्तमान मे विवाद है जिसमे समाज को किकर्त्तव्यविमूढ कर दिया है जिसने समाज को एक ऐसे चौराहे पर लाकर खडा कर दिया है जहाँ उसका सम्मान उसका स्वाभिमान उसका धर्म उसकी आबरू किस क्षण धरातल की ओर प्रवाहित कर जाय । कोई नहीं कह सकता । जिन आचार्यो के चरणार्विद से जिन आचार्यों की चरण रज और जिन आचार्यों के नामोच्चारण से हम अपने अनन्त भवो के सचित पापो को नष्ट कर सकते हैं । पापो से मुक्ति पा सकते है और मनुष्य जीवन को सार्थक करके परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति कर सकते है । ससार समुद्र से पार हो सकते हैं । आज उन्हीं आचार्य भगवन्तो को निमित्त बना करके हमने पाप की गठरियां भरनी शुरू कर दी हैं । हमने मनुष्य जीवन को ही कलंकित नही किया हमने अपने जीवन का ही नाश नहीं किया बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी, सम्पूर्ण सृष्टि को कलकित करने का दुस्साहस किया है । हमने जिन आगमो के ऐसे काले पृष्ठ लिखे है जो आने वाली पीढी कभी आपको माफ नही कर सकती और आपको ऐसे याद करेगी जैसे इतिहास रोम के नीरो को याद करती है ऐसे आने वाली पीढी इस जैन समाज के चद मुनियो को याद करेगी जिन्होने जैन सिद्धान्त के तीर्थंकर धर्म के उन स्वर्णमय अध्यायो को कालिमा से पोत दिया है अध्यायो को काला कर दिया है । जिन आचार्यों के चरण अगर सर पर पड़ जाय । जिनकी रज हमारे शरीर पर आ जाय तो ये अपवित्र शरीर भी पवित्र हो जाय । आज उनको निमित्त बनाकर के आप लोगो ने अपना व्यापार बना लिया है और मै नहीं समझता ऐसे निम्न स्तर का विचार ऐसे निम्न स्तर की क्रियाये किसी जैन खानदान के परिवार के खून मे तो प्रवेश नही कर सकती । तीर्थंकर के खून में उनके वशज के खून मे ऐसी निकृष्टता नहीं आ सकती कि वह आचार्य परमेष्ठियो को गालियाँ लिखे पेपरो मे भी वह आचार्य परमेष्ठियो के ऊपर कीचड उठाले । वे आचार्य पद को जलील करने की कोशिश करे । किसी तीर्थंकर वशज का खून नही हो सकता वह किसी अरिहत आम्नाओ को मानने वाले सबके अन्दर किसी महापुरुषो के सस्कार नहीं हो सकते । वो तो ऐसे हो सकते हैं जैसे चड कौशिक सर्प हो गया हो । मेरे लिए जितने चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी प्रमाणित है और नमन करने योग्य हैं उतने ही आचार्य शान्तिसागरजी महाराज दक्षिण हैं और उतने ही आचार्य शान्तिसागरजी छाणी हैं । लेकिन दुख इस बात का होता है कि हम अपनी शुद्ध भावनाओं को लेकर के हम चंद पदो की प्राप्ति को लेकर के हम चन्द चादी के सिक्को के लिए कागज के चंद टुकड़ों के लिए और इस गजी टांट को ढकने के लिए बडे-बडे साफे बाधने के लिए हम इन आचार्य भगवन्तों के ऊपर किस तरह से कीचड़ उछाल रहे हैं । आपको तो शायद मालूम नहीं लेकिन हमारा सर तो जमीन में धसता जा रहा है । शर्म से मैं आज आचार्य परम्परा के बारे मे चन्द शब्द कहूगा ।

एक आचार्य परम्परा चली चारित्र चक्रवर्ती अकलीकर आचार्य आदिसागरजी महाराज के समय से, एक आचार्य परम्परा चली आचार्य शान्तिसागरजी महाराज दक्षिण के समय से और एक

आचार्य परम्परा चली आचार्य शान्तिसागरजी छाणी की और आप सोच रहे होंगे तो चारित्र चक्रवर्ती का विवाद तो आचार्य के साथ है आचार्य शान्तिसागर दक्षिण के साथ ही हैं । चारित्र चक्रवर्ती कैसे लगा दिया यह नया विवाद खडा कर दिया परन्तु चारित्र चक्रवर्ती पद अगर किसी विश्वविद्यालय की डिग्री होती, कोई कालेज की डिग्री होती, कोई तीर्थंकर इस प्रमाणपत्र को देता, तो अरिहत के यहाँ से यह प्रमाण पत्र वखसाता, या जैसे हम किसी कुत्ते को पाल लेते हैं और उसके गले मे पट्टा बाध देते हैं ऐसे अगर पट्टे बाधने वाली बात होती तो मैं नि संकोच स्वीकार कर लेता कि आपका हर कथन मुझे मान्य हो जाता ।

जैन सिद्धान्त मे पाँच पदो का प्रमाण आया है । एक अरिहत पद का आया है एक स्द्धिपद का आया है इसके अलावा जिनागम मे जैन सिद्धान्त में कहीं कोई प्रमाण मेरे देखने में आज तक नही आया । समाज की उपस्थिति या साधु की उपस्थिति अथवा दोनों की उपस्थिति प्रमाणभूत मानी जाती है । इसके बाद में प्रमाण आया नहीं फिर विवाद कहां है क्या आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण आचार्य नहीं थे क्या वे मुनि नहीं थे क्या वे साधु नहीं थे क्या वे त्यागी नहीं थे क्या वे हमारे महाराज नहीं थे तो क्या आचार्य आदिसागरजी अकलीकर महाराज अराध्य नही थे क्या उन्होने मुनिपद का निर्वाह नहीं किया क्या उन्होंने आचार्यपद को कलकित किया क्या हमारे श्रावक यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं या वे तीर्थंकर पद पर नहीं बैठे थे क्या उनके आगम की अवस्था मे कोई दोष था क्या वे वस्त्र पहनते थे क्या वे दो समय खाते थे क्या वे कैंची मे बाल काटते थे क्या वे विस्तरों पर सोते थे क्या वे गाड़ी में घूमने जाते थे और आचार्य शान्तिसागरजी छाणी हवाई जहाज में चलते होगे इसलिए एक वर्ग को एक समुदाय को एक गुट को आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) भाये और एक गुट को आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण भाये और एक गुट को आचार्य शान्तिसागरजी छाणी भाये और हमने विभाजित कर दिया और कह दिया हम तो चारित्र चक्रवर्ती मानते ही नहीं जैसे तुम्हारे बाप का लिखा हुआ हो । जिसको तुम बाप मानो वह ही सच्चा बाप होगा और दूसरों के लिए दूसरो का बाप-बाप नहीं होगा । हम तो एक को ही चारित्र चक्रवर्ती मान सकते हैं बाकी कोई चारित्र चक्रवर्ती नहीं है । इसका मतलब यह है कि आपने रजिस्ट्रेशन करवा रखी है, कि आप अपने बाप के नाम के आगे ही पूज्य लिख सकते है । दूसरा अपने बाप को पूजनीय नहीं कह सकता है । और यह तथाकथित जो परम पूज्य आचार्य श्री शातिसागरजी को ही मानता है परम पूज्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) को मानने के लिए तैयार नहीं । उनका कितना सीधामार्ग है कार्य है मैं मेरे बाप को कह सकता हूँ उसको चारित्र चक्रवर्ती कह सकता हूँ । ऐसा लगता है कि आपकी ही बपौती हो चद लोग जिसको बाप माने वही सारा ससार का बाप हो और किसी का बाप उसका बाप नहीं हो सकता है ।

'यह हमारी आस्था का विषय है यह हमारी श्रद्धाओ का विषय है यह हमारे समर्पण का विषय है । यह हमारे मन का विषय है कि कहाँ हमारी आस्था कितनी हो सकती है और मैं कहूँ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी की बात नहीं करूँ मैं आचार्य शान्तिसागरजी की बात नहीं करूँ मैं आचार्य शान्तिसागरजी छाणी की बात नहीं करूं मैं इस जिनमुद्रा की बात करूँ । मैं

दिगम्बर मुद्रा की बात करूँ इस ससार के अन्दर जितनी दिगम्बर मुद्रा है जितनी जैन मुद्रा है वह सब चारित्रवान है । इसमें कहीं कोई शक नहीं है और जो ऐसा नहीं मानता जो इसमें विभाजन करता है वे सब धर्मद्रोही हैं वे सब राष्ट्र के हत्यारे हैं वे सब समाज को नष्ट करने वाले कीडे हैं जो समाज को अन्दर ही अन्दर जैसे लकडी मे कीड़ा लग जाता है वे अन्दर ही अन्दर खोखला कर जाता है ऐसे ही समाज को खोखला करते हैं । जगह-जगह पर अपने बाप को ही सभी अपना बाप मनवाने के लिए कटिबद्ध हैं परन्तु यह असम्भव है उनका यह दुराग्रह है यह हठग्रहिता है यह मिथ्यात्व है यह अत्याचार है यह धर्मद्रोहिता है यह समाज को नष्ट करने के कृत्य हैं । आपका एक विवाद और उठा । आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के विषय मे कुछ पुस्तको मे पढने मे आया है कि वह आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर महाराज के कमंडल मे पानी भरते थे । मैं कहता हूँ कि आप धन्य हैं आचार्य शान्तिसागरजी महाराज और मैं कहता हूँ कि गौरवान्वित हो गये हम उनसे पूछते है कि आचार्य शान्तिसागरजी ने आचार्य आदिसागरजी महाराज अकलीकर के कमडलु मे पानी भरा और ऐसा गौरवपूर्ण इतिहास शायद हम मुनि भी नही लिख पाये जो उन्होने लिखा और ऐसे गौरवमय इतिहास को हम लेकर के विवाद कर रहे है आचार्य शान्तिसागरजी महाराज ने पानी भरा उन्होने अरिहत की सेवा की । कब भरा ? जब वे गृहस्थ थे वे आज आचार्य हैं तो मैं आज कहता हूँ शायद आपको पता नही है "कमडल मे पानी भरने वाला महान् होता है, वे गुरुभक्ति से स्वय नमस्करणीय हो जाते हैं । पानी भरा माने उन्होने जिनमुद्रा का सम्मान रखा । यह उनका कर्त्तव्य था मुझे भी गौरव है । आचार्य शान्तिसागरजी महाराज पर कि उन्होने जिस समय पानी भरा वे एक सच्चे श्रावक थे और प्रत्येक श्रावक का कर्त्तव्य होता है, उनका धर्म होता है । उन्होने अपना धर्म निभाया और हमे धर्मारूढ होने की सत्प्रेरणा प्रदान की । हमे आदर्श उपस्थित किया । धन्य हैं वे परम गुरु जो शिष्य बन गुरुत्व को पाने मे समर्थ हुए ।



પરમ પૂજ્ય ૧૦૮ આચાર્ય આદિસાગર મુનિ મહારાજ અંકલીકર
[illegible] ચતુર્થ કાળના શ્રી [illegible] [illegible] હોવા [illegible]
ધર્મનો [illegible] [illegible] [illegible] ઉપદેશ [illegible] જૈન ધર્મની
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] નહીં આમ પરંપરા
[illegible] [illegible] હોતી નથી પ.પૂ. ૧૦૮ આ. આદિસાગર ની
આમ પરંપરા [illegible] [illegible] ની આમ પરંપરા [illegible] [illegible]
આચાર્ય પ.પૂ. ૧૦૮ આચાર્ય [illegible] પૂ. ૧૦૮ આચાર્ય શાંતિસાગર
મહારાજાંને ગુરુ હોતે [illegible] મહારાષ્ટ્રાત [illegible] વિહાર
[illegible] [illegible] [illegible] આમ પરંપરા [illegible] [illegible] મહા
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] પરંપરા [illegible] [illegible]
પ.પૂ. ૧૦૮ આ. મુનિ[illegible] સમાધિ સમ્રાટ હોતે

[illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
શ્રી [illegible]
મહારાજ

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible] 580024

आचार्य आदिसागर (अंकलीकर) अभिनन्दन ग्रन्थ

तृतीय खण्ड

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ही स्थायी सुख का साधन

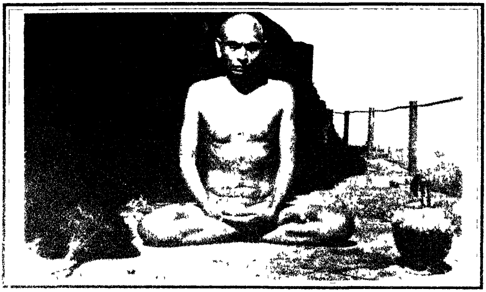
चयन—सुमन

१. तेरहवें और चौदहवे कुलकर अकेले ही उत्पन्न हुए थे । १४वे कुलकर नाभिराय का विवाह इन्द्र ने प्रधान, कुलीन कुल की कन्या के साथ जिसका नाम मरुदेवी था करवाया था ।

२ मुलतान के उदयराम जैन को नवाव मुजफ्फरखाँ ने कहा, इस शेर के बच्चे को आप अहिंसक बना दो तो समझा जायेगा आपका सिद्धान्त सही है । उदयरामजी बच्चे (शेर) को अपने घर ले आये और उसे दूध पिलाने लगे । धीरे-धीरे खीर, पूरी, लाडू खिलाकर पक्का शाकाहारी बना दिया । तीन साल में पक्का अहिसक हो गया । उसे नवाव के सामने उपस्थित किया "लीजिये आपका शेर अहिंसक हो गया ।" नवाव ने शेर को मांसाहार करने को बाध्य किया परन्तु उसने मुह फेर लिया । नवाव ने पराजय स्वीकार की । उसे महान् आश्चर्य हुआ । यह है संगति और वातावरण का प्रभाव ।

३. विवेकानन्दजी चादर ओढ़े अमेरिका में बाहर निकले । एक महिला उन्हें देखकर हंसी । उन्होंने कहा, "बहिन हमारे देश में मनुष्य का मूल्यांकन चरित्र से किया जाता है, वेष-भूषा से नहीं ।" मैं भारतीय हूँ । जिस देश में आचार शुद्धि नहीं वह जीवित नहीं रह सकता ।

४. तीर्थंकर छद्मस्थ अवस्था में अवधिज्ञान का प्रयोग नहीं करते । स्वयं जानते अवश्य हैं । कृष्णाजी ने अपने समर जय के विषय में पूछा तो नेमि प्रभु मात्र मुस्कुराये, वचन से उत्तर नहीं दिया ।



[illegible] परमपूज्य आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी महाराज



मुनि १०५ श्री शान्ति सागरजी महाराज



ब्र. श्री मोतीलालजी हाडा



स्वामि श्री भट्टारक देवेन्द्र कीर्तिजी स्वामीजी (हूमच)



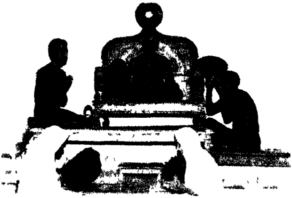
श्री १००८ आदिनाथ मन्दिर देरोल में विराजमान चक्रेश्वरी माता



[illegible]



परम पूज्य [illegible] [illegible] धर्म[illegible] सम्राट आचार्य श्री आदिसागरजी
[illegible] आचार्य श्री महावीर कीर्ति[illegible] महाराज
श्रावक श्री लक्ष्मण अप्पा[illegible] [illegible] व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती [illegible] ग्राम सांगली



परम् पूज्य चा च 108 मुनिकुञ्जर समाधि सम्राट आचार्य श्री आदिसागर (अकलीकर) के तृतीय पट्टाधीश परम् पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती 108 आचार्य श्रीसन्मति सागर जी महाराज की वदना करते हुए राष्ट्र सत आचार्य 108 श्री सुधर्म सागर जी, 108 मुनि श्री सिद्ध सागरजी महाराज 105 आर्यिका श्री नगमती माताजी एव प्रथम गणिनी आर्यिका श्री विजयमती माताजी निमाज (पाली)।

प्रथम गणिनी आर्यिका १०५ श्री विजयमती माताजी अपने गुरु सहित परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती [illegible] श्री १०८ सन्मति सागरजी महा. [illegible] निमाज-पाली राजस्थान

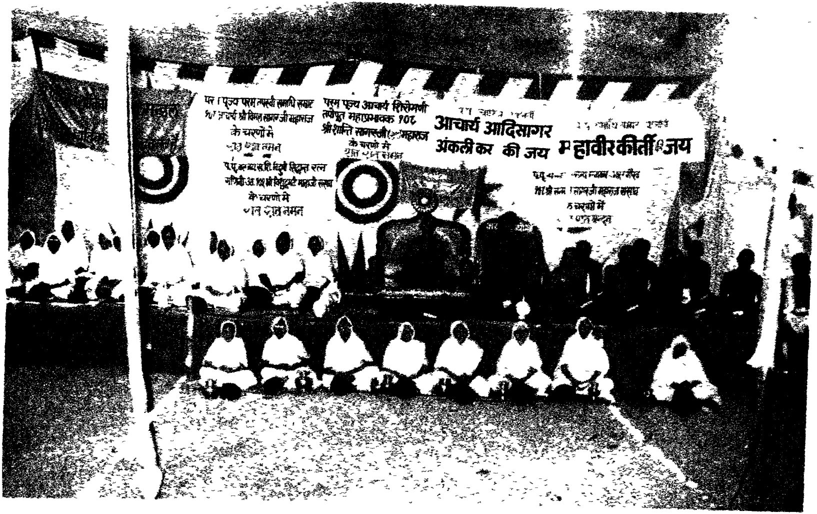




२०वीं सदी के प्रथमाचार्य चा च १०८ श्री आदि सागरजी महाराज (अकलीकर) के ८१वे दीक्षा समारोह महोत्सव पर आनन्दपुर कालू मे निकाले गये भव्य जुलूस का एक दृश्य दि १५ १२ ९३



क्षुल्लक मणि श्री शीतल सागरजी महाराज



परम् पूज्य सिद्धात चक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज सघ एव गणिनी आर्यिका
१०५ श्री विशुद्धमती माताजी सघ महावीर नगर कोटा, महावीर जयन्ती १९९२

सम्यग्दर्शन की महिमा

बा. ब्र पद्मप्रभा

ससार में सम्यक्त्व रत्नों में श्रेष्ठ है, यह मोक्षरूपी महल पर चढ़ने के लिए प्रथम सोपान है । इसे मोक्षरूपी महावृक्ष का मूल कहा गया है । निश्चय और व्यवहार नय से इसका भेद किया जाता है, सम्यग्दर्शन से शुद्ध व्यक्ति सात भय, सात व्यसन, पच्चीस मल दोष से रहित होता है । संसार शरीर भोगों से विरक्त ८ गुणो से परिपूर्ण तथा अंगों से युक्त और पचपरमेष्ठी का भक्त होता है । जो निज शुद्धात्मा में अनुरक्त, बहिरात्मावस्था से रहित वीतराग मुनिधर्म को मानता है वह दुःखों से मुक्त सम्यग्दृष्टि होता है । जिनके आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन शंकादि आठ दोष सात व्यसन, सात भय, पाँच अतिचार ये चवालीस दूषण नहीं होते वे सम्यग्दृष्टि होते हैं । जो मनुष्य देव गुरू और शास्त्र के भक्त, संसार, शरीर भोग के परित्यागी रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं, वे सुख को प्राप्त करते हैं । अत. सुख प्राप्ति के लिए तत्त्व का श्रद्धान आवश्यक है, यह तत्त्व श्रद्धान ही आत्म अन्तरात्म बुद्धि का प्रारंभ है जो वस्तु जैसी है उसको उसी रूप में देखना उसको वैसा ही मानना तथा उस पर तथैव श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है । सम्यग्दर्शन का शाब्दिक अर्थ है सही दृष्टिकोण । सम्यग्दर्शन सद्दर्शन, सद्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि सद्दृक, सम्यकदृक और सम्यक्त्व ये सब पर्यायवाची नाम हैं, सत या सम्यक् शब्द प्रशस्त और प्रशंसावाची हैं । दृशिर, धातु यद्यपि देखने अर्थ मे है तो मोक्षमार्ग के प्रकरण में उसका श्रद्धान अर्थ ग्राह्य है चूँकि धातुओं के अनेक अर्थ पाये जाते हैं, अत समीचीन श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन हो जाता है, यह मोक्षमार्ग का मूल है । यहाँ पर पण्डित दौलतराम जी सम्यक्त्व की महिमा दर्शाते हुए अपने छहढाला ग्रन्थ में लिखते हैं कि-

मोक्षमहल की प्रथम सीढी या बिन ज्ञान चरित्रा ।

सम्यकता न लहे सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा ॥

दौल समझ सुन चेत सयाने काल वृथा मत खोवै ।

यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक नहिं होवै ॥१७॥

अर्थ–यह सम्यग्दर्शक मोक्षरूपी महल में चढ़ने की पहली सीढी है इसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्त्वपने को प्राप्त नहीं होते । हे भव्य जनो ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण करो, हे भव्य आत्मन दौलराम समझ सुन चेत, यदि तू सयाना है तो बेमतलब समय को मत खोवो । क्योंकि

इस जन्म में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई तो फिर से ऐसे उत्तम मनुष्य जन्म श्रेष्ठ पर्याय का मिलना बहुत दुर्लभ है ।

श्री समन्तभद्र आचार्य रत्नकरण श्रावकाचार में सम्यग्दर्शन का लक्षण बताते हुए कहते हैं-

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागम् तपोभृताम् ।

त्रिमूढ़ापोढ़मष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन मस्मयम् ।।

अर्थ–सच्चे देव शास्त्र गुरु का तीन मूढ़ता रहित आठ अग सहित तथा आठ मद रहित जैसा का तैसा श्रृद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है । इसके औपशमिक सम्यग्दर्शन, क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन और क्षायिकसम्यदर्शन के भेद से ३ भेद हो जाते हैं । ये भेद अंतरंग में दर्शनीय मोह और अनंतानुबंधी काषाय के उपशम्, क्षयोपशम और क्षय की अपेक्षा से होते हैं अत· इसके अंतरग कार्य की अपेक्षा से सार्थक है ।

सम्यक्त्व के निसर्गज और अधिगमज ये दो भेद भी माने गये हैं, इन दोनो मे अतरग कारण से उपर्युक्त उपशमादि तीनों मे से कोई भी हो सकते हैं, अत ईसके अंतरग कार्य की अपेक्षा से सार्थक हैं, सम्यक्त्व के निसर्गज और अधिगमज ये दो भेद भी माने गये हैं इन दोनों में अतरग कारणों से उपर्युक्त उपशमादि तीन में से कोई भी हो सकता है किन्तु बाह्य कारणों में अन्तर होने से इनके नाम में अतर पड गया है । ऐसे ही आज्ञासम्यक्त्वादि १० भेदो मे भी अतरग कारण समान होते हुए भी बाह्यकारणो की अपेक्षा से १० प्रकार हो जाते है । सराग और वीतराग अथवा व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा भी सम्यक्त्व के दो भेद होते हैं । इनमें अतरग कारण में कथंचित अतर है कथचित नही भी है जब उपशम क्षयोपशम को सराग कहकर क्षापिक को वीतराग कहा जाता है तब अंतरंग कारण में अंतर हो जाता है और जब द्वितियोपशम सम्यग्दृटि उपशम श्रेणी में चढ़कर वीतरागता प्राप्त कर वीतराग सम्यग्दृष्टि कहलाता है तब मात्र बाह्य कारणो की अपेक्षा से ही अंतर माना जाता है । ऐसे व्यवहार और निश्चय मे भी समझना चाहिए । श्री उमास्वामी आचार्य श्रवकाचार सम्यक्त्व स्वरूप बताते हैं-

जीवाजीवादि तत्त्वानां श्रद्धानं दर्शन मतम् ।

निश्चयात्स्वे स्वरूपे वावस्थानं मलवर्जितम् ।।

जीव अजीव आदि तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है अथवा निश्चय से अपने आत्मस्वरूप में स्थिर होना सम्यग्दर्शन है यह २५ मल दोषों से रहित है । आगे ३ प्रकार के जो पूर्व में उपशमादि सम्यक्त्व के भेद कहे हैं उनका अलग-अलग स्वरूप कहते है-

उपशम सम्यक्त्व—अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को सबसे प्रथम उपशम सम्यदर्शन ही होता है अतः वह मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी चतुष्क इन पाँच के उपशम से होता है यदि मिथ्यादृष्टि के ७ प्रकृतियों के उपशम जो सम्यक्त्व होता है उसे उपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

क्षयोपशम सम्यक्त्व—सम्यग्दर्शन गुण को विपरीत करने वाली प्रकृतियों में से देशघाति प्रकृतियों के उदय रहने पर तथा अनन्तानुबंधी चतुष्क दर्शनमोहनीय की मिथ्यात्व, सम्यगमिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व प्रकृति इन ७ प्रकृतियों के आगामी निषेकों का सदवस्था रूप उपशम और वर्तमान निषेकों का बिना फल दिये ही निर्जरा होने पर आत्मा के जो परिणाम होते हैं उसको वेदक अथवा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि के परिणाम चल मलिन या अवगाढ़ होते हुए भी नित्य ही अर्थात जघन्य अंतर्मुहुर्त से लेकर उत्कृष्ट छयासठ-सागर पर्यन्त कर्मों की निर्जरा के कारण हैं। सम्यग्दर्शन का प्रत्यक्ष रूप इस सदी के सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर अंकलीकर थे।

क्षायिक सम्यक्त्व का स्वरूप—दर्शन मोह की मिथ्यात्व सम्क्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व तथा अनंतानुबंधी चतुष्क इन सात प्रकृतियों के सर्वथा क्षय से जो क्षयिक सम्यक्त्व होता है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि उसी भव में या तीसरे अथवा चौथे भव में सिद्ध पद को प्राप्त कर लेता है किन्तु चौथे भव का उलंघन नहीं करता है। तथा दूसरे सम्यक्त्वों की तरह यह समयक्त्व नष्ट भी नहीं होता।

आत्म-सिद्धि व शिव स्वरूप की प्राप्ति सम्यग्दर्शन के बिना त्रिकाल में भी नहीं हो सकती है जैसा कि कहा है-

दंसण भट्ठा भट्ठा दंसण भट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।

सिज्झंति चरिय भट्ठा दंसण भट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं॥

अर्थ—सम्यक्त्व प्राप्ति का प्रमुख साधन है जिनेन्द्र भगवान की भक्ति पूजा विनय आराधना क्योंकि सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन साध्य है और जिनभक्ति साधन है साध्य की सिद्धि के लिए साधन उपयुक्त योग्य रहेगा तो ही साध्य की सिद्धि होगी, यहाँ पर संसार रुपी समुद्र पार कराने में सम्यग्दर्शन खेवटिया के समान है-रत्नकरण श्रावकाचार में बताते हैं-

दर्शनं ज्ञानचारित्रात् सधिमानमुपाश्नुते।

दर्शन कर्णधारं तन् मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते॥३१॥

जिस प्रकार नौका का चलना उसके चलाने वाले खेवटिया के आधीन होता है इसलिए दूसरे तट पर ले जाने में खेवटिया ही मुख्य है, उसी प्रकार संसार समुद्र से पार होने के लिए मोक्षमार्ग रूपी नौका का चलना सम्यदर्शन रूपी खेवटिया के आधीन है इसलिये मोक्षमार्ग में

सम्यग्दर्शन ही उत्कृष्ट है । इस सम्यग्दर्शन के समान तीनों लोकों और तीनों कालों में और दूसरा कोई पदार्थ प्राणी का कल्याणकारी नहीं और मिथ्यात्व के समान कोई अकल्याणकारी नहीं इसलिये भी मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन ही उत्तम है, ऐसे प्रभावयुक्त सम्यग्दर्शन रत्न की ज्योति से जिस भव्य प्राणी की आत्मा प्रकाशित हो रही है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव मरने पर नारकी तिर्यञ्च नपुंसक नीचकुली विकलाङ्ग अल्पायु और गरीब नहीं होता है परन्तु सम्यग्दर्शन पाने के पहिले यदि किसी आगे की गति की आयु का बंध कर लिया, इसके बाद में सम्यक्त्व छूट जावे तो सम्यक्त्व के प्रभाव से वहाँ इतनी विशेषता हो जाती है कि सप्तम नरक का आयुबंध किया हो तो प्रथम नरक का नारकी, एकेन्द्रिय निगोद का आयुबंध किया हो तो भोगभूमि का पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, लब्धपर्याप्तक मनुष्य का आयु बंध किया हो तो उत्तम भोग भूमि का मनुष्य, व्यन्तरादिक लघु देवायु का बंध किया हो तो कल्पवासी महर्धिक देव ही होता है यह सब सम्यक्त का प्रभाव है पुनः सम्यग्दर्शन का माहात्म्य दिखाते आचार्य श्री कहते हैं कि-

सम्यग्दृष्टि जीव ही मरण करके देवेन्द्र धर्णेन्द्र चक्रवर्ती तथा गणधरों से पूजनीय तीन लोक के शरणभूत तथा धर्मचक्र के धारक तीर्थंकर पद पाते हैं स्वरूप १८ जन्म जरा बुढ़ापादि दोषों से रहित, चरम सीमा को प्राप्त ऐसे अनंतसुख तथा अनंतज्ञान सहित, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म रहित अविनाशी मोक्ष को भी पाते हैं ।

सम्यग्दर्शन की महिमा

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् ।

त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥

अर्थ–सच्चे देव शास्त्र गुरु पर-

तीन मूढ़ता रहित आठ अंग सहित श्रद्धान (विश्वास) करना सम्यग्दर्शन है ।

इसके आठ अंग हैं-

1	निःशंकित अंग	-	(विश्वास नहीं करना)
2	निःकांक्षित अंग	-	(चाहना नहीं करना)
3.	निर्जुगुप्सा	-	(ग्लानि नहीं करना)
4.	उपगूहन	-	(दोष को छिपाना)
5	अमूढ़दृष्टि	-	(मिथ्या दृष्टि को नहीं मानना)

6. स्थितिकरण - (गिरते हुये को धर्म में स्थापित करना)

7 वात्सल्य - (आपस में प्रेम से रहना)

8 प्रभावना - (जैन धर्म का महत्व बताना)

इन अंगों से सहित सम्यग्दर्शन संसार से पार करने के लिए खेवटिया के समान है । जीव सम्यग्दर्शन पूर्वक मरण करके निम्नलिखित स्थानों में पैदा नहीं होता । नरक की प्रथम भूमि को छोड़कर शेष छह पृथ्वियों में, ज्योतिषी देवों में, व्यंतर देवों में, भवनवासी देवों में, नपुंसक वेद में, स्त्री वेद में, पाँच स्थावरों में, विकलत्रय में और पशुओं में जन्म नहीं लेते हैं ।

कदाचित् तिर्यञ्च आयु का बन्ध हो गया हो तो भोगभूमि का तिर्यञ्च होता है । जहाँ कोमल चारा खाने को मिलता है । दुख नहीं होता है । इस सम्यग्दर्शन की महिमा से विकलांगी-दरिद्री कुलों में पैदा नहीं होता है । संसार का सुख भी वास्तविकता को लिए हुये इसी से मिलता है । चक्रवर्ती का पद भी इस सम्यग्दर्शन की महिमा से प्राप्त होता है । अरहंत पद भी सम्यग्दर्शन की विशुद्धि से प्राप्त होता है ।

सोलह कारण भावनाओं में सर्वप्रथम भावना दर्शन विशुद्धि है । बताया है कि इस दर्शन विशुद्धि भावना के बिना शेष पन्द्रह भावनाएँ अरहंत पद के लिए कार्यकारी नहीं होती हैं । यह सम्यग्दर्शन तीन प्रकार का है ।

1 उपसम सम्यक्त्व

2 क्षयोपशम सम्यक्त्व

3 क्षायिक सम्यक्त्व

संसारी जीव अनादिकाल से अष्ट कर्मों से बंधा है । इनमें मोहनीय कर्म का एक भेद दर्शन मोहनीय भी है जिसके तीन भेद हैं ।

1 मिथ्यात्व

2. सम्यग्मिथ्यात्व

3. सम्यक्त्व

दूसरा भेद चरित्र मोहनीय है जिसके अनंतानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ ये भेद भी हैं । ये सात प्रकृतियाँ सम्यग्दर्शन का घात करती हैं । इन सप्तप्रकृतियों के उपशम से उपशम सम्यक्त्व होता है, और इनके ही क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है तथा इनके क्षयोपशम से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है । इसी को वेदक सम्यक्त्व कहते हैं । अनादिमिथ्यादृष्टि जीव के पहले उपशम सम्यक्त्व ही होता है । इसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं और जो उपशम श्रेणी की आदि में होता

है उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं । उपशम श्रेणी वाले को क्षायिक सम्यक्त्व भी हो सकता है । किन्तु क्षपक श्रेणी वाले को नियम से क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है ।

सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के लिए पाँच लब्धियों की आवश्यकता होती है । वे पाँच लब्धियाँ इस प्रकार हैं-

1	क्षयोपशम लब्धि	4	प्रायोग्यलब्धि
2	विशुद्धि लब्धि	5	करणलब्धि
3	देशनालब्धि		

इनमें से करणलब्धि आवश्यक होती है । इसके बिना सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है । अर्थात् सम्यग्दर्शन के महत्त्व में सहकारी कारण बन नहीं पाता । देखिये सम्यग्दर्शन प्रभाव से कुत्ता भी देव हो गया है और सम्यग्दर्शन से रहित देव कुत्ता हो जाता है । चांडाल होते हुये भी देवों के द्वारा पूज्य हो गया । सम्यग्दर्शन की महिमा अगाध है । सागारधर्मामृत में बताया है कि सम्यग्दर्शन के प्रभाव से नरक में भी आत्मा के प्रति श्रद्धा रहने से वहाँ की वेदना का अनुभव नहीं हो पाता और इसके अभाव में देवपर्याय प्राप्त करने पर भी आत्मबोध नहीं रह पाता और बाह्य सासारिक परिकरो मे उलझे रहते हैं । २०वीं सदी के प्रथमाचार्य आदिसागर अकलीकर हुए जो आत्मबोध को प्राप्त हुए ।

सम्यग्दर्शन मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी है । धर्म की जड़ है । इसके बिना मोक्ष की प्राप्ति आकाश पुष्प एवं गधे के सींग के समान समझना चाहिये । इसलिए संसार में जिन प्राणियों ने सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लिया है उनका ससार परिभ्रमण अर्धपुद्गल परावर्तन पर्यन्त अधिक से अधिक रह जा है । वे नियम से इतने समय के अन्दर मोक्ष को प्राप्त करेंगे । ऐसी महिमा इस सम्यग्दर्शन की है । जितने जीव संसार से मोक्ष में पहुंचे हैं या जा रहे हैं या जायेंगे वह सब इस सम्यग्दर्शन का प्रसाद है ।

एम. जिनेश कुमार कोठारी

आनन्दपुर कालू (पाली)

जिनभक्ति का महात्म्य

–मीना जैन, बलून्दा (पाली)

मनुष्य भव आत्मोन्नति का पवित्र आधार है । उच्चकुल, जिनधर्म, विवेक शक्ति को पाकर मनुष्य जिन भक्ति रूपी गंगा में स्नान कर अनादिकालीन गहरी कर्म कालिमा को धोकर नर से नारायण बन सकता है । नदी में जब बाढ़ आ जाती है तो उसके जल प्रवाह में कूड़ा-कचड़ा बहता हुआ बहुत दूर चला जाता है । सर्वत्र भूमि स्वच्छ और निर्मल हो जाती है इसी प्रकार जब अन्त: स्थल में जिन भक्ति रूपी गंगा प्रवाहित होती है तब मिथ्यात्व, कषाय प्रमाद आदि विकार विलय को प्राप्त हो जाते हैं । जैसे जोरों की आंधी आने पर धूल, मिट्टी कूड़े कचरे उड़ते हुए बहुत दूर चले जाते हैं, उसी प्रकार जब जिनभक्ति रूपी उत्कट पवन, वेग के साथ अन्त:स्थल में प्रवाहित होने लगता हैं तब पापकर्म तत्काल विलीन हो जाते हैं । आत्म प्रदेश पर उनका ठहराव नहीं रहता अथवा कर्म की स्थिति और अनुभाग अतिक्षीण शिथिल पड़ जाते हैं । कहा भी है-

"एकापि समर्थेयं जिनभक्ति: दुर्गतिं निवारयितुम् ॥"

अर्थात् अकेली जिनभक्ति समस्त दुर्गतियों का निवारण करने में पूर्ण समर्थ है । जिनभक्ति, स्वयं जिन रूप, भक्त को परिणमा देती है, संसार में चिन्तामणि रत्न इच्छित पदार्थ चिन्तवन करते ही प्रदान कर देता है, कामधेनु जो चाहे वह वस्तु उपस्थित कर देती है और कल्पवृक्ष याचनानुसार याचक को फल प्रदान करता है किन्तु न तो चिन्तामणि चिन्तक को चिन्तामणि बनाता है न कल्पवृक्ष याचक को अपने रूप परिणमन कराता है और न कामधेनु किसी को कामधेनु बना सकी है किन्तु जिन भक्ति जिन भगवान ही एक ऐसे हैं जो सच्चे भक्त को स्वयं निज रूप, जिनेन्द्र स्वरूप बना लेते हैं । अन्य शिव, ईश्वर ब्रह्म आदि भी अपना अंशादि कल्पना कर उन्हें छोड़ देते हैं किन्तु जिन-वीतराग भक्ति करने वाला स्वयं वीतराग होकर अदृश्य अनन्त सुख का भोक्ता होता है विकास की चरम सीमा का स्पर्श करने का उपाय जिन धर्म की आराधना है जिनदेव की उपासना है ।

भक्ति का अर्थ–सर्वार्थ सिद्धि ग्रन्थ में भक्ति का स्वरूप इस प्रकार मिलता है "**भावविशुद्धि युक्तोऽनुरागो भक्ति:**" भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग रखना भक्ति है । भगवती आराधना के अनुसार "**अर्हदादिगुणानुरागो भक्ति:**" अर्हदादि के गुणों से प्रेम करना भक्ति है, और भी भक्ति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए आचार्य लिखते हैं-

मन वचन काय के उद्धतपने के अभाव को भक्ति कहते हैं । वह किसके संभव है ? सच्ची अर्हदादि भक्ति का प्रादुर्भाव सम्यग्दृष्टि में ही संभव है । दर्शन विशुद्धि आदि के बिना अर्हद भक्ति

भावना जागृत नहीं हो सकती है । निर्दोष यथार्थ, सुदृढ़ जिन भक्ति उस नाव के समान है जो जीव को संसार समुद्र से पार कर देती है । पूजा में कहा भी है-

"अतिदृढ़ परम पावन यथारथ भक्ति वर नौका सही"

अर्हन्त परमेष्ठी की पूजा करते समय प्रमाद को छोड देवे, मन वचन काय को पवित्र, कुटिलता रहित करें । यदि भक्ति सछिद्र कुटिलता सहित है तो उससे आत्मशुद्धि नहीं हो सकती है । फैक्ट्री में मशीन का एक पार्ट भी यदि गलत लग गया है तो वह मशीन अपना कार्य नहीं कर सकती । जिन भक्ति भी एक फैक्ट्री है जहाँ सातिशय पुण्य का उपार्जन होता है पर भक्ति करते समय मन वचन काय संबंधी कहीं कोई त्रुटि रह गई दोष रह गया तो वह सुखद फल नहीं प्रदान कर सकती है । सदोष भक्ति संसार वृद्धि का ही कारण बनती है । अतः पवित्र, निर्दोष सुदृढ़ जिनभक्ति ही सर्वथा उपादेय है ।

त्रियोग की शुद्धतापूर्वक अर्हन्त भगवान के गुणों में भक्ति या अनुराग से अनन्त पापों का संहार होता है, भाव निर्मल हो जाते हैं । आत्मा में लाघव गुण की वृद्धि होती है, संतोष गुण की उत्पत्ति होती है । जीवन शोधन के लिये जिन गुण स्तवन ही एकमात्र साधन है । जिन महिमा वर्णन से इन्द्रिय विषय निरोध होता है । जो ध्यान सिद्धि का भी प्रमुख साधन है । ध्यान कर्म कलंक का नाशक है । ज्ञानी और ध्यानी साधु ही क्रमशः कर्म निर्जरा कर मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ होता है । इस तरह मंगलप्रद जिन भक्ति सुरतरु के समान है इसके करने से मनोभिलाषित पदार्थ की प्राप्ति होती है । संसार में जितने भी इष्ट पदार्थ हैं उनकी सिद्धि जिन भक्ति से अनायास हो जाती है । खोटे विकल्पों को ठगने-वंचन करने का यह अमोघ मंत्र है । विषय कषायों को वश करने के लिए जिन भक्ति रामवाण है । इसके आगे संसार में अन्य कुछ नहीं है । वर्तमान काल में भोगों का प्राचुर्य है मनोविकारो का ज- है । विषयों का बाजार गर्मागर्म है । चारों ओर संसार वर्धक वातावरण छाया हुआ है । इससे संरक्षण करने एकमात्र उपाय जिनेन्द्र शरण है । वीतराग प्रभु का वीतराग शासन ही समर्थ है । जिनवाणी ही रक्षक है । इसलिये हमें भी सच्चा जिनभक्त बनकर, जिनेन्द्र चरण दास होकर ही सच्चा सुख मिल सकता है । अन्यथा नहीं । ऐसा उपदेश इस सदी के सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर अंकलीकर किया करते थे । साक्षात् केवली के न होने पर जिन बिम्ब की पूजा भी पूजक को श्रेष्ठ फल को देने वाली है । श्रावकाचार ग्रन्थानुसार-

"आप्तस्यासन्निधानेऽपि पुण्यायाकृति पूजनम् ।
तार्क्ष्य मुद्रा न किं कुयदि् विष सामर्थ्य सूदनम् ॥

साक्षात केवली के न होने पर स्थापित जिन बिम्ब की पूजा भी पापों का क्षय करती है । जैसे गरुण के न होने पर गारुणी मुद्रा भी सर्प के विष का निवारण कर देती है ।

पद्मपुराण में जिनभक्ति का महात्म्य बताते हुए रावण नागेन्द्र के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है-"जिन वन्दनया तुल्यं अन्यं किमपि न विद्यते" नागेन्द्र रावण की जिन भक्ति से प्रसन्न होकर कहने लगा कि तुम्हारी अतुल जिनभक्ति को देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। मैं तुम्हें उपहार स्वरूप वर देना चाहता हूँ अत: जो चाहिये वह मांगलो तब रावण ने नागेन्द्र से कहा कि धरणेन्द्र ! तुम ही बताओ कि जिन भक्ति से बढ़कर संसार में क्या चीज है, जिसे मैं जिन भक्ति के बदले तुमसे माँगू ? तब धरणेन्द्र निरुत्तर हो गये और कहने लगे कि "जिन वन्दना के तुल्य तो अन्य कुछ नहीं है।"

उदाहरण के तौर पर मेढ़क भक्ति से फूल की पंखुडी लेकर भगवान के दर्शन को चला। राजा श्रेणिक के हाथी के नीचे दबकर तत्क्षण ही देव हो गया। मनोवती ने मुक्ता चढ़ाकर जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन करने की प्रतीज्ञा ली थी तब देवों ने वन में पृथ्वी के नीचे मन्दिर बनाकर, मुक्ताओं का ढेर लगाकर उसकी प्रतीज्ञा पूरी की। मानतुंगाचार्य के ४८ ताले टूट गये, अनेकों उदाहरण भरे पडे हैं जिन बिम्ब की भक्ति अर्हन्त भक्ति है। क्योंकि जिन बिम्ब दर्शन से भी सम्यक्त्व प्रगट हो सकता है। जिन महिमा दर्शन को सम्यक्त्व की उत्पत्ति में कारण बतलाया है और जो प्रतिमा के दर्शन की भावना करता है वह बेला के उपवास के फल से उद्यम करने से तेला के उपवास को ऐसे क्रम से मंदिर के द्वार में प्रवेश करने से वर्षोपवास के फल को एवं क्रम से जिन-स्तुति से अनन्त उपवास के फल को प्राप्त होता है। इस प्रकार की जिन भक्ति में सतत् तत्पर रहना तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध का कारण है।

जिनभक्ति दुर्गति की निवारक है जिन बिम्ब साक्षात् जिनेन्द्र प्रभु से भी अधिक भव्यों का आलम्बन है। जिन प्रभु तो अपने आयुष्य काल पर्यन्त ही मार्ग दर्शन करते हैं। किन्तु उनकी मूर्ति, करोड़ों भवों तक आदर्श बनकर संसार रवी से निकालने में समर्थ होती है। वास्तव में भगवान का बिम्ब जिसकी प्रतिष्ठा हो गई है वह प्रभु वीतराग की प्रतिमा साक्षात उन्हीं प्रभु की साकार जीवन्त आकृति ही है। इस प्रकार दृढ़ अकाट्य श्रद्धा कर जो पूजन भक्ति करता है उसे साक्षात जिन पूजा के बराबर फल मिलता है।

भगवान के स्तवन से लौकिक कार्यों की तो बात क्या, आत्मशुद्धि परिणाम विशुद्धि और अभिष्ट फल की प्राप्ति होती है। यह जिन भक्ति अमृत है। संसार तारक है। समस्त दुःख हारक है, जन्म-मरण के संकट से रक्षा करने वाली है। इस लोक में भी कल्पवृक्ष सदृश इच्छित पदार्थ प्रदान करने वाली है। अत: हम सभी को अगाढ़ श्रद्धा से जिन भक्ति करनी चाहिये, जिनाराधना करनी चाहिए। यही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है।

सच्चे सुख का मार्ग

सुख । कैसा सुख ? कहां से मिलेगा सुख ? प्राणी मात्र के लिए एक ही चिन्तन का विषय, इसी के पीछे हमारी सोच, हमारी शक्ति, हमारी वस्तुऐं लगी हुई हैं ।

अरे भाई तुम कहां सुख ढूंढते हो । किस जगह सुख है । यह तो मोह की नींद का एक स्वप्न है । सब कुछ बिखर जायेगा । कोई यहां न रहेगा । सो कोई बुद्धिमानी का काम कर लो जिससे सदा के लिए सुख मिल जाये । सुख तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र की उपासना है, जो पदार्थ जैसा है उसका वैसा ही विश्वास रहे यह तो है सम्यग्दर्शन, जो पदार्थ जिस स्वरूप का है उस रूप ही ज्ञान रहे यह है सम्यग्ज्ञान और अपना जैसा स्वरूप है उसके अनुरूप ही आचरण रहे यह सम्यग्चारित्र है । इस रत्नत्रय परिणाम में ही पारमार्थिक आनन्द है । श्रोता को वास्तविक सुख का ही अभिलाषी होना चाहिए । मायामय सुख से विरक्ति हो और परमार्थ सुख की प्राप्ति हो इस भावना को लेकर जो उपदेश का श्रमण है इससे आत्मवैभव बढ़ता है ।

आज मनुष्य भौतिक वस्तुओ से खुद को सुखी मानता है टी वी , फ्रिज, वाशिंगमशीन, एयरकन्डीशन, मोटरकार से अपने आप को सुखी मानता है, पर यह भूल जाता है कि इनसे सुख प्राप्त होने वाला नहीं यह तो बीमारियो का घर है । आज घर बैठे सारे काम अपने आप हो जाते हैं तो क्यों नहीं होंगे बीमार, आज मनुष्य भौतिकवाद रूप मायाजाल में फस रहा है और आध्यात्मिकता की ओर ध्यान नहीं दे रहा है । इसलिए कहते हैं ।

दुख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय ।

जो सुख में सुमिरन करे, दु:ख काहे को होय ॥

आज प्रश्न यह उठता है कि क्या भौतिकवाद, राग, द्वैष, लड़ाई-झगडे, ईर्ष्या आतंक, अपहरण, युद्ध को छोडकर कोई दूसरा मार्ग नहीं अपना सकता, जिससे सच्चे सुख की प्रप्ति हो सके ।

किसी ने ठीक ही कहा जहां चाह, वहां राह । अगर इस संसार के प्राणी सच्चे सुख की प्राप्ति चाहते हैं तो जरूर मिल सकता है यदि वह अपने अन्दर भगवान को खोजें, शान्ति को खोजें, समता, त्याग, तप, संयम, अनुग्रह, देव दर्शन, पूजा, दान आदि का सहारा लें तो जरूर सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकती है ।

"You do not behave that which is not good for you" अर्थात् ''जो आपके लिए प्रतिकूल है वह आप दूसरों के लिए व्यवहार मत कीजिए'' **'You behave that which is good for you"** अर्थात् जो आपके लिए अनुकूल है वही व्यवहार दूसरों के लिए करिये ।''

इसलिए मनुष्य को सदैव दूसरों के प्रति अनुकूल सोचना चाहिए कभी किसी का ह्रदय नहीं दुखाना चाहिए ।

सच्चा सुख का उदाहरण तो दि जैन साधुओं को देख सकते हैं जो अपना घर, सम्पत्ति, त्याग कर, तप, संयम व समता भाव अपने अन्दर रखते हैं । किसी विद्वान ने ठीक ही कहा ''त्यागात् शान्ति:'' जिस प्रकार नदी अपने जल का निरन्तर त्याग करती रहती है फिर भी वह खाली नहीं होती और आसपास के खेत को, प्राणियों को तृप्त करती रहती है उसका पानी कितना स्वच्छ रहता है परन्तु सागर जो अपने अन्दर निरन्तर जल भरता रहता है और त्याग नहीं करता है इसलिए उसका जल खारा व गन्दा रहता है । पेड पर फल पक जाने के बाद पेड़ अपनी शाखाओं को नीचे झुका देता है ताकी सभी उसके फलों का सेवन कर सकें और आनन्द प्राप्त कर सकें । अत्यधिक धन इकट्ठा हो जाने पर उस धन को अच्छे कार्यों में खर्च कर देना चाहिए, जिससे शान्ति रूपी सुख मिल सके ।

भगवान महावीर ने कहा था कि तुम यदि सुखी रहना चाहते हो तो उतनी ही वस्तुएँ व सम्पत्ति रखो जितनी तुम्हें आवश्यकता हो, बाकी दान कर दो । भगवान् महावीर ने शान्ति के लिए एक सन्देश दिया है जो है-''जीओ और जीने दो'' आज दुनिया वालों को सुख, शान्ति, चैन के लिए इसी सन्देश की आवश्यकता है ।

इसलिए सच्चे सुख के लिए संयम, त्याग, समता की आवश्यकता है, भौतिक वस्तुओं की नहीं । अगर हमें सच्चा सुख प्राप्त करना है तो दिगम्बर जैन दीक्षा लेनी ही होगी, इसी से सच्चा सुख प्राप्त होगा । सच्चे सुख का मार्ग का २०वीं सदी में सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुंजर आचार्यपरमेष्ठी आदिसागरजी (अंकलीकर) ने उपदेश दिया ।

मनीष जैन

आनन्दपुर कालू

सुख प्राप्ति का उपाय

–सीमा जैन बलून्दा

मानव जीवन का लक्ष्य है, सुख-प्राप्ति, वह जो कुछ भी करता है, वह सुख और शान्ति की इच्छा से करता है, भले ही उसका प्रयत्न विपरीत दिशा मे चल रहा हो किन्तु लक्ष्य में सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिये ही कामना अन्तर्निहित हैं । निम्न श्रेणीय वनस्पति से लेकर जागृत चेतन महत् श्रेणीय मानव तक दृष्टिपात करने से एक ही सत्य तथ्य दृष्टिगोचर होता है, जो कि सर्वजीवों में समरस लाता है, वह है सुखेच्छा । जिस प्रकार मोती की माला के प्रत्येक मोती में धागा अनुस्यूत रहता ह, उसी प्रकार जीव संकुल की एक ही विचारधारा जो जीवों में सुनुस्यूत रहती है, वह है सुख की धारा ।

जैसे-नन्हा सा अंकुर अपनी छोटी सी जड धरती में गाढता है, और चुन्नु-मुन्नु सा स्कंध के भाग को धरती के ऊपर उठाता है । अपने सुख के लिए सर्प दूसरों के ऊपर विष उगलता है, अपने सुख के लिए विष पीड़ित रोगी विष को उतारता है, इसी प्रकार प्रत्येक जीव सुख चाहता है, दुःखों से दूर भागता है इसका सत्य तथ्य यह है कि जीव का स्वभाव, स्वगुण, स्वधर्म सुख ही है, उन्होंने अपना सुखगुण पर द्रव्यो में मान रखा है, बाह्य तन, धन परिजन की अनुकूलता में ही सुख प्राप्त होगा ऐसा सोच रहा है लेकिन प्रत्येक गुण अपने द्रव्य में ही रहता है, बाहर से आता नहीं व जाता नहीं क्योंकि आत्मा में एक अगुरुलघुत्व गुण होने से प्रत्येक द्रव्यगुण पर्याय अपने ही अस्तित्व में रहते हैं, लेकिन हम विपरीत परिणमन कर रहे है ।

यथार्थ में-सुख कहाँ हैं ? स्वय अपने में, कितना है ? अपरिमित, कैसे जाना जाय ? असीम ज्ञान के द्वारा 'वह असीम ज्ञान कहाँ है ?' आत्मा मे । शुद्ध आत्मा मे है ।

आत्मा की अशुद्धि क्या है ? अज्ञान-मोह मिथ्यात्व-राग द्वेष आदि । इस मल का शोधन, ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी दर्शनचारित्र्य मोहनीय कर्म के नाश से किया जाय, लेकिन नष्ट करने का उपाय है, सद्शास्त्रों का अध्ययन, अहकार, ममत्व का त्याग, विषय भोगों से वैराग्य, संसार, शरीर और भोगों से वैराग्य । क्योंकि आत्मध्यान में जो सुख है, वह अन्यत्र नहीं, आत्मध्यानी एक क्षण मे जिस आत्मोत्थ सुख का अनुभव करता है, वह सुख करोड़ों देवांगनाओं के साथ, एक साथ रमण करने वाला इन्द्र भी प्राप्त नहीं कर सकता, सुख का सम्बन्ध श्रद्धा और ज्ञान से है, यदि श्रद्धा और ज्ञान यथार्थ है तो उसे सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकती हैं, अन्यथा नहीं, कहा है-

ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण

यह परमामृत जन्म जरा, मृत रोग निवारण ।

सम्यग्ज्ञान ही विश्व में सुख का उपाय है यह सम्यग्ज्ञान जन्म जरा मृत्यु रोग को नाश करने के लिए अमृत के समान हैं, दु:ख का मूल कारण मिथ्याश्रद्धादि है । ध्यानरूपी अग्नि ही सम्पूर्ण कर्मों को क्षणमात्र में नष्ट कर देती है वह सच्चा सुख प्राप्त कराती है । जैसे-गरम अवस्था में भी पानी का तरल स्वभाव, अग्नि उपशामक भाव, भारीपन आदि में विषय विपरीत परिणमन न होकर मात्र शीतल अवस्था का ही विशेष परिवर्तन होता है । जैसे गर्म पानी को उष्णता के निमित्त कारण को हटाने से पानी धीरे-धीरे शीतल हो जाता है उसी प्रकार दु:खी आत्मा से दु:खों के कारणभूत मोह, राग, द्वेष, अहंकार, ममकार, अज्ञान, हिंसा, अविद्या, अन्याय, अत्याचार हटाने से आत्मा धीरे-धीरे सुखी होती जायेगी, अत: सिद्ध हुआ है कि मोहादिक आत्मा से हटाना, घटाना या दूर करना ही सच्चे सुख प्राप्ति का मार्ग है । यही उपदेश इस सदी के महान् चा च. आचार्य आदिसागर अंकलीकर ने दिया । मनुष्य ने अनादि काल से आज तक जो विभिन्न कार्यपद्धति, तकनीक, ज्ञान-कला कौशल्य, धर्म दर्शन अध्यात्म आदि का आलम्बन हो रहा है, उसका भी मूल उद्देश्य सुख, शान्ति, आनन्द है ।

निम्नातिनिम्न उन्नत से उन्नत जीव सुख प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्न करते हैं, उसमें जिस अश में मोहादि भावों का अभाव हो जाता है, उतने अंश में आनन्द व सुख की प्राप्ति होती है । जिस-जिस अंश में मोहादिक भावों से भावित हैं, उतने अंश में दु:खी है, अत: सुख प्राप्त करना चाहने पर भी तब तक सुख प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक मोहादि भाव दूर नहीं होगा । अत· सच्चा सुख का मार्ग मोहादिक भाव दूर किये बिना नहीं प्राप्त हो सकता । कारण जैसे-बीज बोय, बबूल का आम कहाँ से खाये-अर्थात् साधारण जीवों का सतत प्रयत्न सुख प्राप्त करने के लिए होने पर भी वह प्रयत्न विपरीत दिशा में होने के कारण सुख के स्थान में दु:ख होगा व दु:ख की प्राप्ति हो रही है । साधारणतय: जीव इन्द्रियों के रमणीय भौतिक साधनों, भौतिक सम्पत्ति-विभूति के उपार्जन संग्रह, संवर्धन संग्रह संरक्षण से ही सुख प्राप्ति का उपाय मान रहा है । परन्तु विपरीत प्रक्रिया होने से वर्तमान के मानव प्राचीन सरल-स्वभाव, सुखमय जीवन यापन करने वाले मानव से अधिक भौतिक साधन सम्पन्न होने पर भी अन्त:करण से मानसिक दु:ख अधिक है, संताप सहित है क्योंकि इन्द्रियों को चकाचौंध करने वाले चमक-दमक वाले भौतिक साधन अधिकाधिक मोहममत्व, लोभादिक को उत्तेजित संवृद्धि को करके आत्मिक सहजानन्द अवस्था को विकृत, निरोहित करके दु:ख सतापादिक को उत्पन्न कराने के लिए कारण बनते हैं । इसलिए इन कारणों का पूर्ण अभाव होकर के ऐसी शिक्षा, प्रचार, प्रसार की समता, मैत्री, सत्य, अहिंसा, सच्चरित्र आदिगुण व मोह ममत्व, लोभादि भाव, अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित फलान्वित होवे ऐसा प्रचार व विकास करने से सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकेगी ।

जीवन में सुख प्राप्त करना चाहते हैं तो दूसरों को भी सुख पहुंचाना चाहिये, जो व्यवहार आपके लिए अनुकूल है, वह व्यवहार दूसरों के लिए भी करिये जैसे-दूसरों से प्रेम, आदर, व्यवहार, सुरक्षा चाहते हैं तो हमें भी दूसरों को प्रेम, आदर, सम्मानित व्यवहार करना चाहिये ।

"परोपकाराय पुण्याण पापां परपीठनम्"

परोपकार करना पुण्य है तथा परपीडा देना पाप है, पुण्य का फल सुख एवं पाप का फल दुःख होने से परोपकार सुख प्राप्ति का उपाय व पीडा देना दुःख का कारण है । जो परोपकार करता है, अहिंसादि पालन व सेवा करता है उसका दूसरा भी आदर-सत्कार करते हैं, आचार्यों ने कहा है-

"धम्मो मंगल मुंदिट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवावि तस्स पणंमति जस्से धम्मे सया मणो"

विश्व में धर्म ही सर्वोत्कृष्ट, मंगल, पवित्र पूत हैं, अहिंसा, तप, संयम को धर्म कहते हैं । उपरोक्त धर्म पालन करने वाला मनुष्य से ही क्या देव तक से भी नमस्करणीय हो जाते हैं । अहिंसादि भाव धर्म हैं, हिंसादिभाव अधर्म है अतः सिद्ध हुआ है कि-हिंसादि भाव से ही दुःख है एवं अहिंसादि भाव सुख प्राप्ति का मार्ग है, धर्म ही सुख का कारण है विभिन्न तत्वज्ञ, साधुसंत, मनीषियों ने गंभीर चिन्तन-मनन से सुख प्राप्ति का एकमेव उपाय व अद्वितीय मार्ग शोध निकाला है वह है-धर्म-

धर्मः सुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्नते ।
धर्मणैव सुखाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्यमूलंदया
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म, मां पालय ॥

धर्म सर्व प्रकार से सुख प्राप्ति का मार्ग है, हितकर है, इसलिए सच्चे सुख की प्राप्ति अगर हमें करना है तो धर्म का संग्रह, संचय करना चहिये, धर्म से ही शाश्वतिक, मंगलमय, पवित्र सुख प्राप्त होगा, इसलिए धर्म को नमस्कार हो, धर्म से अन्य कोई भव-कूप में दुःखों से उठाने वाले जीवों के अकारण बंधु नहीं हैं, धर्म की मूल दया (अहिंसा, करुणा, दया, मैत्री, प्रेम) है इस प्रकार सर्वसुखप्रद अहिंसा धर्म को मैं मन मंदिर में सतत धारण करती हूँ यही चिर-सुखप्रदाता है धर्म के लिये ध्यान करने के लिए इस ज्ञान स्वभाव आत्मा में ही सदा काल तल्लीन होकर रहने पर ही सच्चा आनन्द ही आनन्द व सुख ही सुख व शान्ति का ही अनुभव होगा, आकुलता नहीं रहेंगी, यही एकमात्र साधन चिर सुख प्राप्ति का उपाय है । अहिंसा सर्व सुख की जननी है, सुख का कारण निर्मोह है ।

कितना विलक्षण, अलौकिक है आत्म-सुख ? अतुलनीय है, इसी को पाने का प्रयास करने पर ही अपूर्व सुख है, लोकोत्तर हैं, अलौकिक साधन एकत्व विभक्त, आत्मानुभूति द्वारा ही सच्चे सुख प्राप्ति का मार्ग अर्थात् उपाय है ।

जैन धर्म का महत्व

वर्तमान युगानुसार जैन धर्म का इतिहास सर्वसाधारण से भगवान महावीर के काल से जाना जाता है । यद्यपि अनेक शोधर्ताओं व विद्वानों ने धर्म का इतिहास यह बताया है कि जैन धर्म अतीत से चला आ रहा धर्म है परन्तु कुछ का कहना है कि यह सारा भूभाग भारत क्षेत्र का एक छोटा सा अंग मात्र है ।

आधुनिक विज्ञान वेत्ता यद्यपि गहन परिश्रमी व 'बाल की खाल' निकालने वाले अवश्य हैं तथापि तीन लोक जंबूद्वीप आदि की अवगति उनकी सूझ-बूझ से परे है । अब प्रश्न तो हमारे सामने यह उठता है कि-

(1) क्या पृथ्वी की उत्पत्ति करोड़ों वर्ष पूर्व हुई ?

(2) क्या पूर्वकाल में पृथ्वी का थल व जल भाग भाप व कोहरे के रूप में थे ?

(3) क्या पानी व मिट्टी का प्रादुर्भाव क्रमशः हुया व निरन्तर जिवाणुओं ने अपनी सक्रियता धारण की ?

(4) क्या वनस्पति के पश्चात् दो, तीन, चार, पाँच इंद्रिय जीव तथा जलचर, थलचर व नभचर जीव सशक्त हुये ?

(5) क्या मनुष्य की उत्पत्ति क्रमिक विकास का परिणाम है ? विज्ञान की यह अनुमानिक विकास क्रमिका करोड़ों वर्षों की गणना में है । परन्तु हमने वास्तविकता को पहिचानने का न तो प्रयत्न किया न मंथन ही । वह मंथम तो मात्र धर्म शास्त्रों के गहन अध्ययन से ही संभव था ।

हम इस पृथ्वी पर रहने वालों ने अपने आपको ही सर्वस्व मान लिया है । आज अगर कोई हमारे सामने धर्म शास्त्रों को रखता है तो हम उनका गहन अध्ययन नहीं करते और अगर ये ही हमको बुरे शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए कहेंगे तो हम कर लेंगे । तभी तो हमारी बुद्धि काम नहीं करती है यही अगर हम धर्मशास्त्रों को मन लगाकर पढ़ेंगे तो हमें मालूम पड़ेगा कि जैन धर्म का कितना महत्व है आज इस धर्म का अध्ययन करके तो कितने ही पापियों का उद्धार हो गया हम क्यों नहीं सोचते कि जब तक हम इस धर्म को नहीं अपनायेंगे तब तक हमारा कल्याण नहीं होगा । हमें फिर वापस यही सब कुछ भोगने को मिलेगा । अरे ! सुनो-प्रभु शक्ति कितनी महान् है, इसको नकारा नहीं जा सकता । जिस आत्मा ने कर्मों का नाश कर सर्वोपरि सच्चा सुख प्राप्त कर लिया वही सद् चिदानंद प्राप्त करने की शक्ति प्रत्येक आत्मा में है । कर्मों को नष्ट करने पर आत्मा परमात्मा बन जाती है ।

सभी आत्माएं अपने-अपने कर्मबल के आधार पर अनादिकाल से भटकती फिर रही हैं। जितने जीवधारी प्राणी हैं वे सब अनंतानंत हैं, सारे ससार में व्याप्त हैं, सभी की आत्माएँ समान होती हैं और वे सभी अपने-अपने कर्मों के कारण सुख दुःख भोगते हैं। हाँ यह अवश्य है कि जिस या जिन महान् आत्माओं ने सबको पहिचाना स्व से पर पदार्थों को दूर किया पर को त्यागा, तत्त्वों को पहिचाना, शुभोपयोग से शुद्धोपयोग की और अपना मन लगाया, वे आत्माएँ महान हो जाती हैं वे अपने कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त करती हुयी निर्वाण यानि मोक्ष अवस्था में जा विराजती हैं। यानि कि जन्म मरण के दुखों से दूर होकर सर्वदा के लिए सच्चा सुख प्राप्त कर लेती हैं। ये ही आत्माएं ईश्वर, परमेश्वर, भगवान, जगदीश्वर, महादेव, आदि नामों से सुशोभित होती हुयी दिव्य ज्योति मानी जाती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब इस तरह से हमारी आत्मा का कल्याण हो सकता है तो फिर क्यों लोग रात्रि भोजन का त्याग नहीं करते ? क्यों रात्रि भोजन करके अपने कर्मों को बांधते हैं और नरकगति के दुःखों को भोगते फिरते हैं-अरे जैन धर्म की तो इतनी महिमा है कि जिसने ध्याया वो ही पार हो गया। अरे जैन धर्म तो वो धर्म है कि जो मन, वचन, काय से अपनायेगा वही इस ससार के जंजाल से छूट जायेगा। जैन धर्म इतना महान् धर्म है कि त्याग तो सभी धर्मों मे होता है, परन्तु इस धर्म में न केवल ससार की सभी वस्तुएँ अपितु शरीर भी पर पदार्थ है अतः जीर्ण वस्त्रवत् प्रसन्न मुग्धा में त्याज्य माना गया है। पर तो पर ही है पर पदार्थ अपना है नहीं वह तो कदापि हो भी नहीं सकता। केवल चैतन्य आत्मा ही अपनी है। सांसारिक सुख-दु.ख तो केवल पुण्य पापकर्मों के खेल हैं व ये ही खेल इस महान् चैतन्य आत्मा को विभिन्न योनियों में निरन्तर परिभ्रमण करा रहे हैं। इसको २०वीं सदी में सर्वप्रथम चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य परमेष्ठी आदिसागर जी (अंकलीकर) ने रोका मैं मानती हूँ एक गृहस्थ सब कुछ नहीं त्याग सकता। पर कम से कम थोड़ा बहुत त्याग तो कर ही सकता है अरे तुम दिन-रात परिश्रम करते हो कितनी हिंसा करते हो दूसरों का हृदय दुखा कर पैसा इकट्ठा करते हो आखिर एक दिन मरना है फिर क्यों करते हो इतना संचय। अरे इसके बजाय तुम सामायिक करो जैन धर्म के सिद्धान्तों को अपनाओ तो अवश्य ही तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। क्योंकि बिना त्याग, सम्यक् बुद्धि स्वपर का ज्ञान, आत्म मंथन व शुद्धोपयोग आदि के बिना मुक्ति का मार्ग मिलना कठिन है ?

मानव जीवन महान् पुण्योदय से सुलभ होता है। इस जीव ने अनंतानत श्रेष्ठतम कार्य किये तभी उसे चिन्तामणी रत्नवत यह मानव शरीर मिला और इसी मानव शरीर के द्वारा मोक्षमार्ग की उपलब्धि हो सकती है। अतः जैन धर्म महान् धर्म है हमें इस धर्म को अपनाना है क्योंकि एक जैन धर्म ही ऐसा धर्म है जो हमें मोक्ष की राह दिखा सकता है।

रेखा कासलीवाल

श्री महावीराय नमः

सुख प्राप्ति का उपाय

नेहल सी दोषी

पोस्ट ऑफिस के पास, ईडर

आज प्रत्येक जीव जन्म से मरण पर्यन्त एक ऐसी दौड़ लगा रहा है, जिसे देखकर स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठेगा कि आखिर जीव चाहता क्या है ? वह किसे प्राप्त करने का उपाय कर रहा है । तब सम्भवतः यह उत्तर सामने आयेगा जीव सुख प्राप्ति के उपाय में लगा हुआ है । ऐसे उपाय में यह जीव इतना रचपच हो गया है कि, वह सही दिशा में दौड़ रहा है या गलत दिशा में उसका भी ख्याल नहीं रहा । जन्म से मरण तक बस एक अन्धा-धुन्ध दौड . . । बस सुख प्राप्ति । यथार्थ में गहनता से विचार किया जाये तो अपने को भी प्रश्न होता है कि आखिर इसका क्या उपाय है ?

क्या पार्टियाँ मनाना, होटल में जाना, पिक्चर देखना, धन-दौलत पाने का यह एस-आराम का पुरुषार्थ करना । उसे पाना वही सच्चा सुख है ? नहीं । अरे, एक पशु भी-एक चींटी, एक मकोडी भी उसके लिए पुरुषार्थ नहीं करते ? करते ही तो हैं पर अपने में कहावत है कि

॥ बीज बोया बबूल का आम कहाँ से मिलें ॥

यह सब तो असली चेहरे पर एक नकाब जैसा उपाय है ।

सच्चा सुख कहाँ ?

गुजराती में कहावत है कि

"वृक्ष विनानी वेसडी,
चन्द्र विनानी रातसडी
लखतर विनानी भुंग्गी
यहं क्षे जरजाह"

जिस तरह वृक्ष के सहारे के बिना बेल का टिके रहना असंभव है, चन्द्र के बिना यह रात्रि अशुभ सी दिखती है, उसी तरह यह जीवन ज्ञान के बिना व्यर्थ है । ज्ञान प्राप्ति के बिना सुख त्रिलोक में कहीं भी नहीं है । तो हमारे यह नवयुवक यह सवाल कैसे नहीं करेंगे कि हमने इतनी ७ साल की उम्र से २१ साल तक की उम्र तक पढ़ाई नहीं की ? पर मेरा कहना यह नहीं है । ज्ञान भी यदि सही हो तो ही हम सुख प्राप्त कर सकेंगे । तो ऐसा कौनसा ज्ञान है, जो हमें मंजिल पर पहुँचा

सके । वही ज्ञान सही ज्ञान है जो हमें अन्याय, अत्याचार, हिंसा, रागद्वेष, भ्रष्टाचार, शोषण आदि अनेक दैत्यों से बचा सके । यथार्थ में हमें स्वतंत्रता एवं स्वाधीन बना सके ।

संसार में जितने जीव हैं, उनका वास्तव में स्वभाव है परोपकार करना ।

"परस्परोपग्राही जीवानाम्"

कहीं भी नजर करें, वृक्ष देखे तो छाया-फल व शांति प्रदान करता है । नदी जल देती है । हवा-पानी और अन्न से जीवन टिकता है । अर्थात् परोपकार ही । परोपकार के भीतर एक अद्भुत रोमांच, अवर्णीय सुख है, जो लिखा नहीं जाता । ऐसे सुख की प्राप्ति के लिए सबसे पहले हमें अहिंसा का पालन करना पड़ेगा । इसीलिए तो हमारे आचार्य कहते हैं कि जिसने जीवन में अहिंसा का पालन किया, उसने कुछ कुछ अंश तक तो सुख प्राप्त कर ही लिया समझो, और सत्य भी तो है । ऐसे व्रत का पालन करने वाले की पूजा स्वर्ग के देव भी तो करते ही हैं ।

इन सबसे परे भी एक अलौकिक, दैविक, अद्भुत, अकल्पनीय, अकथनीय सुख का मार्ग है । वह है मोक्ष मार्ग ।

"॥ सम्यग्दर्शन–ज्ञान, चारित्राणि मोक्ष–मार्ग. ॥"

ऐसे मार्ग को पाने के लिए क्यों नहीं पुरुषार्थ करें जिससे जनम-मरण के महा भयंकर दु ख छूट जायें । इसके लिए तो हमें लोभ रूपी लुटेरे से बचना पडेगा । हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँचों पापों का भी त्याग करना पडेगा । इतना ही नहीं बल्कि दीक्षा धारण करके, रत्नत्रय को धारण करके घोर तपस्या करनी पडेगी । अर्थात् ५ महाव्रत, ५ समिति, ६ आवश्यक और ७ शेष गुणो, ५ इन्द्रिय विजय का पालन करना होगा । यानी सयम रूपी पतवार से भवसागर रूपी समुद्र में कूदकर तपरूपी के द्वारा शिवपुरी जाने का पुरुषार्थ किया जायेगा तो अपने आप ही सुख प्राप्त हो जायेगा । आचार्य श्री कहते हैं कि लक्ष्मी चचल है, वह कब हमें छोडकर भाग जायेगी, उसका भरोसा नहीं रखना । लेकिन जो मोक्ष रूपी कन्या को ग्रहण करेगा वही शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकेगा । इसीलिए तो जिनेन्द्र देव कहते हैं कि मोक्षमार्ग की प्राप्ति ही सुख प्राप्ति का उपाय है ।

२०वीं सदी मे सर्वप्रथम चारित्रचक्रवर्ती मुनि कुंजर आचार्य परमेष्ठी आदिसागरजी (अंकलीकर) ने व्रतो को व्यवहार निश्चय मे आचरण कर साक्षात् सुख प्राप्ति का उपाय बताया है ।

सुख प्राप्ति के उपाय

ससार में जीव को सुख प्राप्ति के जिनेन्द्र भगवान ने दो मार्ग बतलाये ।

(1) महाव्रत (2) अणुव्रत

महाव्रत

महाव्रत का स्वरूप अठाईस मूल-गुण का पालन करना पाँच महाव्रत, पाँच समिति, छः आवश्यक, पाँच इन्द्रीय विजय, सात शेष गुणों को पालन करना तेरह प्रकार का चारित्र को पालन करना ।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, बाईस परिषय को जीतना और व्रतो की पच्चीस भावना का स्वरूप समझकर पालना । वह ध्यान तथा स्वाध्याय में लीन रहना ।

उपर्युक्त सभी बातो का पालन करना ।

यह मोक्ष का प्रथम मार्ग है । और मोक्ष में जाने के बाद अनन्त काल तक सुख प्राप्त होता है ।

अणुव्रत

श्रावक को बारह व्रतो का पालन करना चाहिए ।

बारह व्रतो के नाम निम्न हैं ।

पाँच अणुव्रत

तीन गुणव्रत

चार शिक्षा व्रत

ये बारह व्रत का पालन करना चाहिए ।

यह दूसरी प्रतिमा धारी श्रावक पालन करता है ।

पूर्णता ग्यारह प्रतिमा में होती है और सम्यक्त्व के आठ नि:संकादि आठ दोष, आठ मद, व छ: अनायतन तथा तीन मुक्का इन पच्चीस गुणों को पालन करता है । नीरतिचार पालन करता है ।

सम्यक्त्व के पच्चीस गुण निम्न प्रकार है ।

(1) नि:शंकित	(5) उपगुहन
(2) नि:कांक्षीत	(6) स्थतिकरण
(3) नि.विचिकित्सा	(7) वात्सल्य
(4) अमूढदृष्टि	(8) प्रभावना ।

यह आठ मद को त्याग करके उसके आठ गुणों का पालन करना चाहिए ।

ज्ञानं पूजां कुलं जाति, बल बृद्धि तपो वपु ।

अष्टावाश्रित्यमानित्वमं, स्मयमाहुगर्तस्मया ॥

भावार्थ

(1) ज्ञान (विद्या)	(2) बड़प्पन (पूजा प्रतिष्ठा)	
(3) कुल	(4) जाति	(5) बल
(6) धन-ऋद्धि	(7) तप	(8) शरीर (सुन्दरता)

इन आठो मे से किसी एक का घमड करना मद कहलाता है । तथा आयतन निम्न प्रकार है ।

(1) जिन (2) जिन मन्दिर, जिनागम के धारक तप, तप के धारक ये छ: आयतन सम्यक्त्व प्रकृति के नौ कर्म हैं एव तीन मूढ़ता निम्न हैं ।

(1) देव मूढ़ता (2) गुरु मूढता (3) लोक मूढ़ता ।

इन तीनों का त्याग करना चाहिए ।

देव मूढ़ता के लक्षण

वरोपलिप्स्याशावान् रागद्वेष मलीम सा· ।

देवता यदुयासीत, देवता मूढ़मुच्यते ॥१॥

गुरु मूढ़ता के लक्षण

सग्रन्थारम्भहिं सानां, संसारावर्त वर्तिनाम् ।

पाखण्डिनां पुरस्कारों, ज्ञेयं पाखंडिमोहनम् ॥२॥

लोक मूढ़ता

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम् ।

गिरपातोऽग्निपाश्चलोकमूढ निगद्यते ॥३॥

उक्त पच्चीस सम्यक्त्व के गुणों का पालन करना और नित्य प्रति जिनेन्द्र भगवान का पूजन करना व न्याय मार्ग से धन्धा करना । चोरी नहीं करना । सदा धर्म की रक्षा करना संसार शरीर भोगों से उदासीन रहना अन्त में समाधिपूर्वक शरीर का त्याग करना यह श्रावक का मुख्य कर्त्तव्य है ।

इनके पालन करने से मोक्ष सुख मिलता है । यह अनन्त काल तक रहता है ।

सुख प्राप्ति के यही दो मार्ग हैं ।

सम्यक् दृष्टि के निम्न प्रकार भाव रहते हैं-

चक्रवर्ती की संपदा, इन्द्रलोक के भोग ।

काक विष्ट समजानत है, सम्यक दृष्टि लोग ॥२॥

यह उपाय २०वीं सदी में सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदि सागरजी (अंकलीकर) ने बताया था ।

जयकुमार कोठारी

आनन्दपुर कालू

(राजस्थान)

साधु परमेष्ठी के मूलगुणों का वर्णन

पंच महाव्रत समिति पंच पंचइन्द्रिय का रोध

षट आवश्यक साधुगुण सात शेष अब बोध ।

प्रारम्भ मे भगवान् जिनेन्द्र देव के कहे हुए और श्रेष्ठ मुनियों के मूलभूत २८ मूल गुणों को कहूँगा । ये मूल गुण सर्वोत्कृष्ट हैं । मुनियो के गुण दीक्षा और आचार मे मगल वाले हैं और समस्त अर्थों की सिद्धि करने वाले है । उन्हीं सबको मै अपनी शक्ति के अनुसार कहूँगा ।

महाव्रतानि पंचैव परा समितयस्तथा ।

पचेन्द्रियनिरोधाश्च लोच आवश्यकानि षट ।

अचेलत्त्व ततोऽस्नानम् धराशयन मे महि ।

अदन्त घर्षणा राग दूरं च स्थिति भोजनम् ।

अर्थ-५ महाव्रत, ५ समिति, ५ इद्रियो का निरोध, ६ आवश्यककेशलोंच (२) नग्नत्व धारण करना (२) स्नान नही करना (४) दत धावन नहीं करना (५) राग रहित खड़े होकर भोजन करना (६) दिन में एक बार ही भोजन करना और (७) भूमि पर शयन करना ये सक्षेप मे २८ मूलगुण है । ये समस्त मूलगुण कर्मों को नाश करने वाले है और मोक्ष के सुख तथा **सिद्धो** मे होने वाले समस्त गुणो को देने वाले हैं । विद्वानो को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए ।

पुनरेतान प्रवक्षयामि के अन्तर्गत प्रतिज्ञा कथन ।

विस्तार के साथ समझने वाले शिष्यो का उपकार करने के लिए तथा सिद्ध अवस्था प्राप्त करने के लिए आगे हम इनका अलग-अलग स्वरूप विस्तार के साथ कहते हैं ।

महाव्रतो की परिभाषा

अर्थ-श्रेष्ठ मुनिराज अपने मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना से जो (१) हिसा (२) झूठ (३) चोरी (४) कुशील और (५) परिग्रह इन ५ पापो का पूर्ण रूप से सर्वथा त्याग कर देते हैं उनको भगवान जिनेन्द्र मुनियो के महाव्रत कहते हैं ।

अहिंसा महाव्रत का लक्षण

हृदा च वपुषा वाचा कृते न् कारितेन् च ।

स्वानुमत्या प्रयत्नेन् रक्षा मात्र विधीयते ।

मत्वात्म स दृशन् जीवान् नव् भेदैः षडंगिनाम् ।

मूल सर्व व्रता नाम् स्यात् पंच सं तन्महा व्रतम् ।

अर्थ-छहो काय के समस्त जीवों की अपने आत्मा के समान समझकर मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना के ९ भेदों से प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना पहला अहिंसा महाव्रत कहलाता है । इस अहिंसा महाव्रत को समस्त व्रतों का मूल समझना चाहिए ।

द्वितीय सत्य महाव्रत का वर्णन

मुनि जो धर्म और ज्ञान के उपदेश के लिये राग द्वेष रहित यथार्थ हित करने वाले परिमित सारभूत जिन शास्त्रो के अनुसार शुभ पाप रहित और करुणा से भरे हुए जो वचन कहते हैं । उसको भगवान जिनेन्द्र देव दूसरा सत्य महाव्रत कहते हैं ।

भगवान गणधर देवों ने वचन के चार भेद बतलाये हैं । (१) सत्य वचन (२) असत्य वचन (३) उभयवचन (४) अनुभय वचन ।

अचौर्य महाव्रत का स्वरूप

किसी गाव खेट वन पर्वत घर जगल व मार्ग आदि में पड़ी हुई भूली हुई खोई या रखी हुई छोटी बडी बहुत वा कम दूसरे की वस्तु को कभी ग्रहण नहीं करना है । उसे काले सर्प के समान समझकर अलग हट जाना है । उसको तीसरा अचौर्य महाव्रत कहते हैं ।

ब्रह्मचर्य महाव्रत का स्वरूप

शुद्ध हृदय को धारण करने वाले वीतरागी पुरुष अपने राग रूप परिणामों का सर्वथा त्याग कर कन्या को अपनी पुत्री के समान मानते हैं । यौवन वती स्त्री को अपनी बहिन के समान मानते हैं और वृद्धा स्त्री को अपनी माता के समान मानते हैं । इस प्रकार जो निर्मल ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं । उसको भगवान जिनेन्द्र देव ब्रह्मचर्य महाव्रत कहते हैं ।

परिग्रह महाव्रत स्वरूप

जहाँ पर बुद्धिमान लोग शरीर कषायादि संसारी जीवों के साथ रहने वाले और वस्त्रालंकार आदि जीव के साथ न रहने वाले समस्त परिग्रहों का त्याग वाली मूर्च्छा व ममत्व का त्याग कर देते हैं तथा मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदना से उन परिग्रहों में होने वाली मूर्च्छा व ममत्व का भी त्याग कर देते हैं । उसको भगवान जिनेन्द्र ने पूज्य आकिंचन्य महाव्रत कहा है ।

समितियों के नाम

(१) ईर्यासमिति (२) भाषा समिति (३) एषणासमिति (४) आदान निक्षेपण समिति (५) प्रतिष्ठापन समिति ये समितियाँ कहलाती हैं ।

(१) गमन करते समय चार हाथ आगे भूमि देखने का ध्यान रखना ईर्यासमिति है ।

(२) वचन बोलते समय हित मित और प्रियपने का ध्यान रखना भाषा समिति है ।

(३) आहार के विषय में एक बार निर्दोषता और शुद्धि का ध्यान रखना एषणा समिति है ।

(४) अपने शास्त्र पीछी और कमण्डलु आदि धरते उठाते समय जीव की रक्षा का ध्यान रखना आदान निक्षेपण समिति कहते हैं ।

(५) भूमि की जीव रहितता का ध्यान रखना प्रतिष्ठापना समिति है ।

सपरस रसना नासिका नयन का रोध

शेष सात मंजन तजन शयन भूमि की शोध ।

वस्त्रत्याग कचलुच अरु लघु भोजन इकवार

दातुन मुख में ना करे ठाडे लेहि आहार ।

अर्थ-पाचो इन्द्रियो को वश में करना उनके इष्ट और अनिष्ट विषयो में रागद्वेष नहीं करना इन्द्रियविजय नामक पाच मूलगुण है ।

(१) स्नान का त्याग (२) भूमि पर शयन (३) वस्त्रत्याग (४) केशोंका लोंच करना (५) आहार दिन मे एक बार व थोडा लेना (६) दातोन नहीं करना और (७) आहार खड़े होकर लेना ये साधु परमेष्ठी के शेष मूलगुण हैं । इन मूलगुणो को २०वीं सदी के सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुजर आचार्यपरमेष्ठी आदिसागरजी (अकलीकर) ने आचारण कर क्रियात्मक उपदेश दिया ।

बा. ब्र. राजकुमारी जैन

सुख प्राप्ति के उपाय

मन में प्रश्न यह उठता है कि वास्तव में सुख नाम की चीज है कहां ? वह है क्या और कहां मिलता है ? मन्दिर, मस्जिद व गिरजाघर में अथवा रुपयों, पैसों में व स्त्री पुत्रादि कुटुम्बी जनों में ? यह एक विचारणीय प्रश्न है । मानव जीवन में सभी वस्तुओं का संयोग वियोग चक्रवत् होता ही रहता है तो क्या यह मानना सही है कि संयोग का नाम सुख और वियोग का नाम दुख है । बस सुख-दु.ख की इतनी ही परिभाषा से सन्तोष हो जाना चाहिए । सुख की खोज में यह संसारी प्राणी भटकता फिरता है । सभी चाहते हैं सुख हो किन्तु सुख कहां मिलता है, सुख है क्या चीज, यह पता ही नहीं ।

सुख स्वयं के पास है किन्तु बाह्य पर पदार्थों के संयोग में सुख की कल्पना कर लेता है जो कि झूठी है । जहां संयोग हुआ है वहां वियोग अवश्य होगा और दु:खी होंगे । जिस प्रकार प्यासा मृग पानी की तलाश में इधर से उधर भागता फिरता है । धूप में चमकते बालू के कणों को ही पानी समझ कर उसे पाने के लिए दौड़ लगाता है अन्त में हारकर पानी के न मिलने पर दु:खी होता है । उसी प्रकार यह संसारी प्राणी पंचेन्द्रियों की इच्छापूर्ती के पीछे ही नाना प्रकार के पापमय कार्यों को करता हुआ सुनहरा जीवन खो देता है, किन्तु इच्छाओं की पूर्ति न होने से दु:खी हो जाता है । जीवन के अन्तिम क्षणो मे पछताता है कि मैं कितना मूर्ख रहा । एक इच्छा की पूर्ति की, तब तक दूसरी इच्छा मन में जागृत हो गई । तो फिर सुख है कहाँ ?

इच्छाओं के अभाव में ही सच्चा सुख है । हिरण के पास ही कस्तूरी भरी हुई है, इसका उसे ज्ञान नहीं और उसकी सुवास की खोज मे भटकता फिरता है । उसी प्रकार इस संसारी प्राणी की आत्मा के अन्दर ही सच्चा सुख भरा पड़ा है । फिर भी उसे पर वस्तुओं में खोजता फिरता है । इच्छाओं की पूर्ति में सुख नहीं किन्तु इच्छा के अभाव में ही सुख सम्भव है । यदि हमें मिठास का स्वाद लेना है तो हमको उस वस्तु को स्वीकार कर उसको प्राप्त करना पड़ेगा जिसमें मिठास भरी हुई है या जो मिठास से बनी हुई हो । उसी प्रकार यदि हमें अन्तर में साध्य सुख को पाने की तीव्र अभिलाषा हो तो हमें उस वस्तु की खोज और शोध करनी पड़ेगी जिसमें कि सुख ही सुख है या जिसकी रचना सुख से ही हुई है । किन्तु हमारी सबसे बडी भूल यह हो जाती है कि हम उस स्थान पर सुख की खोज और शोध करते हैं, जहां पर सुख की गन्ध भी नहीं आती है । अत: हमारी सुख की खोज की दिशा ही विपरीत है । और दिशा विपरीत होने से दशा भी (दुख:रूप) विपरीत है । आत्मोन्मुखी पुरुषार्थ से ही हम सच्चे सुख को प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु यदि हम आत्मान्मुखी पुरुषार्थ को न करके परोन्मुखी पुरुषार्थ को ही तीव्रता से करते रहेंगे तो वह सुख हमें

प्राप्त नहीं हो सकता है । सुख की खोज के लिए सर्वप्रथम अन्तर में स्वरूप का भेदविज्ञान होगा तब पर से दृष्टि हटकर स्वआत्मा में लगेगी और स्वआत्मा मे उपयोग लगेगा तब वास्तविक सुख प्रकट होगा । आत्मानुभव ही सुख प्राप्ति का उपाय है क्योंकि सुख से ही आत्मा की रचना हुई है और सुख से रचे हुए उस चैतन्य स्वरूप आत्मा की जब पहचान होगी तब सुख प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगा । अपने को दु खी मानना और सुख प्राप्ति हेतु दर-दर भटकना यही सुख से वंचित रहने का प्रमुख कारण है यदि अपने आपको अनन्त सुख का भण्डार माने तो वर्तमान में ही अनंत सुख की प्राप्ति हो सकती है । सच्चा सुखमोक्ष में है एवं इस सदी के प्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर अंकलीकर कहते थे-

तेरा जीवन ज्ञान सुधा आनन्दामृत पान सुधा-

कहता दुःखी अपने को बस इसी भ्रम को हरता चरम सुख को बाह्य मे खोजते मत फिरो । वह स्वयं ही समस्त जीवो की आत्मा के अन्दर मौजूद है । सयोग और वियोग ये तो पुद्गल के सुख-दु.ख हैं । बाह्य सामग्री बढ़िया वस्त्राभूषण तथा खाने को मिल गया तो अपने को पूर्ण सुखी मान लिया । सुख की परिभाषा यह गलत है । अपने स्व के चिन्तवन मनन में जो सुख है । वह सुख अन्य बाह्य पर पदार्थों में आज तक न मिला और न मिलेगा । कहने का मतलब यह है कि सुख सभी के पास मौजूद है । उसे और कहीं खोजो मत बाहर जो सुख खोजता है उसे सुख के बदले दु·खी अधिक होना पड़ेगा । हाथी, मछली, भौंरा, पतंगा और हिरण ये सभी सिर्फ इन्द्रियो के सुख की लालसा में ही अपने प्राणो का घात कर बैठते हैं । सच्चा सुख वीतरागता में है । अपनी आत्मा के स्वरूप का चिन्तवन करने में है । जिस प्रकार स्वाध्याय परमं तप कहा जाता है । उसी प्रकार सन्तोष परमं सुखं यह भी झूठ न होगा किन्तु सन्तोष को सुख मानना यह बाह्य जीवन व्यवहार की बात है । अन्तरग वास्तविक सच्चा सुख तो अपनी आत्मा के अनुभवन, चिन्तवन में है । समस्त चिन्ताओं विकल्पों से मुक्त होकर कुछ क्षण आत्म चिन्तवन में ही अपने उपयोग को लगाना चाहिए । उस समय सच्चे सुख का आभाष होगा तथा सहज स्वरूप की प्राप्ति होगी । क्रोध कषाय तो सारे संसार के प्राणियों को दु·खी किए हुये हैं किन्तु क्रोध के कारणों के उपस्थित होने पर भी क्रोध न करना महानता है फिर भी क्रोध जल की रेखा के समान क्षणिक होना चाहिए । पत्थर की रेखा के समान तीव्र क्रोध नरक को ले जाने वाला है । अपनी आत्मा के अन्दर से क्रोध को बढाने वाली शक्ति को नष्ट कर दो फिर बाह्य निमितो को पाकर कैसे क्रोध उत्पन्न होगा । स्वयं की कमजोरी को हटादो । बाह्य पदार्थ कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकते हैं तथा हम सुख को प्राप्त कर सकते हैं ।

एक समय की बात है कि एक बडे राज्य के राजा को वैराग्य हो गया । उस राजा ने एक आचार्य के पास जाकर साधु की दीक्षा ले ली और उन्हीं के साथ में रहने लगा । वह राजा उठते बैठते हर समय अहो सुखम्, अहो सुखम् बोला करता । आश्रम में रहने वाले अन्य साधुओं को

सन्देह हुआ कि इस राजा को अपने राज्यकाल के समय में भोगे हुए सुखों की याद सताती है । उन साधुओं ने अपने मन का सन्देह अपने आचार्य से प्रकट किया । आचार्य ने उस राजा को बुलवाया और उससे पूछा 'वत्स' तुम हर समय अहो सुखम्, अहो सुखम् क्यों बोला करते हो । क्या तुम्हें राज्यकाल के समय में भोगे हुए सुख याद आते हैं । राजा ने उत्तर दिया आचार्य श्री ! साधु जीवन मे मुझे सच्चे सुख की अनुभूति होती रहती है । इसलिए मेरे मुख से ये शब्द निकलते रहते हैं । आचार्य ने फिर पूछा अहो वत्स जब तुम राजा थे तब तुम्हें कौनसा सुख उपलब्ध नहीं था । उससे भी बड़ा ऐसा कौनसा सुख है जिसकी तुम्हें इस साधु जीवन में अनुभूति होती रहती है । राजा ने कहा पूज्यवर उस समय राजा होते हुए भी मैं सुखी नहीं था अपितु बहुत दु:खी था । अपने पड़ौसी राजाओं से मुझे हर समय आक्रमण का भय लगा रहता था । अपने राज्य के अन्दर भी षड्यन्त्र होते रहने के कारण मुझे चैन नहीं मिलता था । जब मैं भोजन करने बैठता था तो मुझे सन्देह होता था कि भोजन में किसी ने जहर तो नहीं मिला दिया, रात को बन्द महलों में सोता था । मेरे शयनकक्ष के बाहर नगी तलवार लिए सैनिक पहरा देते रहते थे फिर भी मैं सुख से सो नहीं पाता था और तो क्या मेरा अपना पुत्र भी मेरी मृत्यु की कामना किया करता था आचार्य श्री जिस जीवन में न दिन में चैन था न रात को आराम, जिस जीवन में न तो प्रसन्नचित्त होकर भोजन कर पाता था न रात को शान्ति से सो पाता था, क्या वह जीवन सुखी था । अब मैं भिक्षा-जीवी होकर भोजन करता हूँ । अनजाने व्यक्ति से अनजाना भोजन सेवन करते हुए भी मुझे कोई भय नहीं होता, किसी भी आरक्षित तथा खुले स्थान पर मैं रात को शान्तिपूर्वक सो लेता हूँ । मुझे अब किसी का कोई भय नहीं रहा मुझे अब किसी प्रकार की आकुलता भी नहीं है । अत: अब मुझे सच्चे सुख की अनुभूति होती रहती है । अस्तु इसी कारण मुख से मेरे सहजभाव से ही अहो सुखम, अहो सुखम निकलता रहता है । सच्चा सुख किसी भी बाह्य वस्तु स्त्री, पुत्र, धन-धान्य आदि के आश्रित नहीं होता अर्थात् वह निरपेक्ष व स्वाधीन होता है और वह अपने अन्तर, अपनी आत्मा मे ही प्राप्त किया जा सकता है । अन्त मे मैं तो यही कहना चाहूँगा ।

प्राण पोषना धर्म हे, प्राण नाशना पाप
ऐसा परका कीजिये, जैसा सुहाये आप
पाप जानि परि पीढ़वो, पुण्य जानि उपचार
पाप बुरो, पुण्य है भलो, लीजै राखि विचार
अपनो सो दुख जानिके, जे न दुखाये आन
ते सदैव सुखिया रहे, यह भाषी भगवान ।

मोतीलाल जैन (बगडा)
बलुन्दा (पाली)

सम्यग्दर्शन की महिमा

बाबूलाल चूनीलाल गांधी, ईडर

तत्वार्थसूत्रकार आचार्य रत्न उमास्वामी ने निम्नलिखित सूत्र के द्वारा विश्वधर्म की फिलासफी को प्रस्तुत करने में कोई कमी नहीं रखी है · सूत्र है-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ।

सम्यग्दर्शन + सम्यग्ज्ञान + सम्यक्चारित्र = मोक्षमार्ग

भविष्य के तीर्थंकर आचार्यप्रवर समंतभद्रस्वामी ने र श्रा सूत्र ३ में निर्देश किया है कि धर्म का पर्यायवाची शब्द है सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ।

सम्यग्दर्शन की व्याख्या / व्याख्याएँ

सम्यग्दर्शन का साक्षात्कार करने के लिए मिथ्यादर्शन के बारे में जानना उपयुक्त है । तत्व का विपरीत श्रद्धान करना मिथ्यादर्शन है ।

दृष्टान्त : जीव को अजीव और अजीव को जीव मानने की दृष्टि । उससे बचानेवाला बहुमूल्य रत्न है सम्यग्दर्शन । सम्यक्दृष्टि = सम्यग्दर्शन

सम्यग्दर्शन के भेद

व्यवहार	निश्चय
सत्यार्थ देवशस्त्र गुरु में निष्कप, अविचल तीन मूढ़ताओं से रहित, आठ मद रहित श्रद्धान् का होना व्यवहार से/व्यवहार सम्यग्दर्शन है ।	आत्मा के शुद्ध स्वभाव का यथार्थ श्रद्धान् निश्चय सम्यग्दर्शन है । मैं शुद्ध आत्मा हूँ ।

सत्यार्थ देव . तीनों कालकी प्रत्येक पर्यायको जानने वाले, उसे सत्यार्थ स्वरूप से प्रगट करनेवाले सत्यार्थ आप्त-देव हैं ।

सत्यार्थ शास्त्र . आप्तके द्वारा खिरी हुई दिव्यध्वनि की शब्द रचना सत्यार्थ शास्त्र है ।

सत्यार्थ गुरु : आगमोक्त वाणी के अनुसार मन वचन काय से विचरण करनेवाले सत्यार्थगुरु हैं ।

(प्रथमानुयोग एवं चरणानुयोग की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन का उपरोक्त व्यवहार स्वरूप थोड़े में बहुत कुछ व्यक्त करने के लिए सक्षम है ।)

उमास्वामी ने कहा है : तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।

जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्त्व हैं । उनका यथार्थ श्रद्धान करना भी सम्यग्दर्शन है ।

सम्यग्दर्शन के बारे में करणानुयोग क्या कहता है ?

दर्शन मोहनीय की (मात्र) तीन तथा अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम और क्षय से उत्पन्न श्रद्धा गुण की निर्मल परिणति को सम्यग्दर्शन कहते हैं ।

● एक और बात :

व्यवहार कारण है : निश्चय कार्य । व्यवहार पुष्प सदृश है । पुष्प के भीतर फलांकुर है । ज्यों-ज्यों फल बढ़ता है पुष्प सकुचाता है । फल की पूर्ण वृद्धि होने पर पुष्प पृथक हो जाता है । शुरु मे व्यवहार-धर्म होता है जिसमें निश्चय धर्म अंकुर रूप से होता है । . निश्चय की पूर्णता होने पर व्यवहार स्वयं ही दूर हो जाता है । चा च पेज 107 से

● सम्यग्दर्शन के विद्यातक बल

- लोकमूढता · समुद्र मे स्नान करने में धर्म मानना
  पाषाण के पुंज करना इत्यादि ।
- देवमूढता राग द्वेषयुक्त से मलिन देवो की उपासनादि ।
- गुरुमूढता आरभी-परिग्रही गुरुओं की उपासना ।
- मद ज्ञानमद, कुलमद, जातिमदादि का नशा मनुष्य को हैवान बनाता है ।
- छह अनायतन · कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र और उनके अनुयायी-उनमें माननेवाला न तो अपना कल्याण कर सकता है न परका । वे छह अनायतन सम्यग्दर्शन में बाधक हैं ।

● सम्यग्दर्शन महात्म्य

- सम्यग्दृष्टि मन-वचन-काय से हरेक कार्य यथायोग्य रीति से करते हुए भी उसमें उसे कर्तृत्वबुद्धि नहीं होती, वह अहंबुद्धि नहीं करता।
- सर्व प्रकार के अज्ञान नष्ट हो जाते हैं . मिथ्या तिमिर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है ।
- उसके प्रभाव से ही रत्नत्रय प्रगट होता है ।
- इन्द्रिय सुख तुच्छ प्रतीत होता है ।

- सांसारिक सुख दुःख सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व को मलिन नहीं कर सकते ।
- सदा संतोष रहता है ।

Contentment is the best happiness.

- चांडाल भी मृत्यु के बाद उत्तम देव बनता है ।
  (सम्यग्दर्शन से युक्त चाड़ाल को गणधर देवों ने मानवीय देवतुल्य कहा है)।
- जीव शंकारहित होता है निर्भय रहता है । (सात प्रकार के भय उसे नहीं सताते)।
- ध्यान में रुचि होती है ।
- शुद्ध सम्यग्दृष्टि अगर व्रत रहित भी है तो भी वह नारकी नहीं होता । वह तिर्यंच गति में नहीं जाता । वह नपुंसक नहीं होता । वह स्त्री पर्याय में नहीं जाता ।
- एक ओर त्रिलोक का राज्य हो और दूसरी ओर सम्यग्दर्शन तो उसमें सम्यग्दर्शन का लाभ ही श्रेष्ठ कहलायेगा इसलिए कि उसके द्वारा किसी एक दिन मोक्ष रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति होगी ही ।
- जो सिद्ध हुए हैं, होगे उसके मूल में सम्यग्दर्शन ही है ।
- सम्यग्दर्शन तो नींव की ईंट है ।
- निश्चय सम्यग्दर्शन तो आत्मा का ही गुण है, आत्मा में ही व्याप्त है ।

अमृतचद्राचार्य 'नाटक समयसार कलश से'

- सम्यग्दर्शन बीज है मोक्ष रूपी वृक्ष का ।
- सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र का बीज है : तप स्वाध्याय की आधारशिला है ।
- संसार समुद्र से पार कराने वाला जहाज सम्यग्दर्शन है । भव्यजीव ही उसे पा सकते हैं । सम्यग्दर्शन पाप रूपी वृक्ष को काटनेवाली कुल्हाडी के समान है ।
- सम्यग्दर्शन से युक्त दान, पूजा, ब्रह्मचर्य, उपवास, अनेक प्रकार के व्रत, मुनिलिंग इत्यादि सार्थक हैं । सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग के कारणभूत है ।

(दाण पूजा दीह ससार-रयणसार गाथा-१०)

- दंसण मूलो धम्मो । -आचार्य कुंदकुंददेव

● संक्षेप से

- सम्यग्दर्शनयुक्त जीव संख्यात-असंख्यात कर्मों की निर्जरा करता है । सम्यग्दर्शन कल्पतरु, चिन्तामणि रत्न, कामधेनू एवं रसायण के समान मनोवांछित फल प्रदाता है ।
- मिथ्यात्व अनंतानुबंधी का अभाव होने से 41 प्रकृतियों का नवीन बंध सम्यग्दृष्टि को नहीं होता । मिथ्यात्व दशा में अगर नरक का बंध हो गया हो और बाद में सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई हो तो वह जीव प्रथम नरक में ही जाता है ।
- सम्यग्दर्शन की वजह से अणिमा-महिमादि ऋद्धियों की प्राप्ति होती है । सम्यग्दर्शन से ही तीर्थंकरदेव के धर्मचक्र को प्राप्त कर अंत में निर्वाण की प्राप्ति की जा सकती है । इस सम्यग्दर्शन की साक्षात मूर्ती इस २०वीं सदी में सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर थे ।

● अंतिम बात

- सम्यग्दर्शन के महात्म्य को बताने वाली कहानी 'निर्भय सम्यग्दृष्टि का चमत्कार' पढ़िये 'कथा मजरी' से : जिसकी सशक्त लेखनी प्रस्तुत है, जिन धर्म प्रभाविका, विदुषी गणिनी आर्यिका रत्न श्री १०५ विजयामतिजी माताजी ।

सम्यग्दर्शन की महिमा

नगर मे जिस प्रकार द्वार प्रधान है, मुख में चक्षु प्रधान है तथा वृक्ष में जड़ प्रधान है, उसी प्रकार ज्ञान-चारित्र-तप एवं वीर्य मे सम्यग्दर्शन प्रधान है, क्योंकि सम्यग्दर्शन ही मोक्ष में चढ़ने की प्रथम सीढी है । जिस प्रकार ताराओ में चंद्र और पशुओं में सिंह प्रधान है उसी प्रकार मुनि व श्रावक धर्म में सम्यक्त्व प्रधान है ।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः (सम्यग्दर्शन चारित्राणि)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं । इन तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग अथवा मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है ।

ॐ में रत्नत्रय: ॐ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र है । सम्यग्दर्शन् अपने आत्मदर्शन को ही सम्यग्दर्शन कहते हैं । देखना याने अवलोकन-

सम्यग्दर्शन - अवलोकन = अ + उ + म् = ॐ

सम्यग्ज्ञान - उद्योतन = उ

सम्यग्चारित्र - मौन (मुनि) म

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्र

सम्यग्दर्शन–सत्य के कराये जो दर्शन वही है सम्यग्दर्शन । सत्य का अर्थ वीतरागी देव, शास्त्र, गुरू के प्रति भक्ति प्रगट कराये, उनके निकट ले जाय, संसार भोगो से उदासीन कराये, तत्वज्ञान की जिज्ञासा पैदा कराये उनका नाम सत्य का दर्शन यानि सम्यग्दर्शन ।

धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है

द्व्यानुयोग की दृष्टि से तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।

अर्थात् जीवादि सात पदार्थों का जैसा स्वरूप कहा गया है वैसा ही श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा गया है ।

करुणानुयोग की अपेक्षा दर्शन मोहनीय की तीन तथा अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रवृत्तियों के उपशम्, क्षयोपशम व क्षय से उत्पन्न होनेवाली श्रद्धा गुण की निर्मल परिणति को सम्यग्दर्शन कहा है ।

सम्यग्दर्शन के भेद

व्यवहार सम्यग्दर्शन	निश्चय सम्यग्दर्शन
जिनेन्द्र भगवान की आज्ञानुसार अधिगम कर श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है ।	आत्मानुभूति पूर्वक विकम्प रहित श्रद्धान को निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं । जो मात्र मुनि अवस्था में होता है ।

व्यवहार सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यग्दर्शन का साधन है

मिथ्यात्व, मिथ्यात्व सम्यक्त्व, अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ के उपशम से औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है ।

मिथ्यात्व सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति और अनंतानुबंधी क्रोध मान, माया लोभ इन सात प्रकृतियों के क्षय से जो सम्यकत्व उत्पन्न होता है वह क्षायिक सम्यकत्व कहलाता है ।

क्षायिक सम्यग्दर्शन मेरू की भाँति निष्प्रकम्प होता है, वह निर्मल अक्षय अनत होता है । क्षायिक सम्यकदृष्टि जीव चारों ही जातियो में पाये जाते हैं ।

शब्दों की अपेक्षा संख्यात्, श्रद्धा करने वालों की अपेक्षा असख्यात और श्रद्धान करने योग्य पदार्थों व अध्यवसायों की अपेक्षा अनंतप्रकार का सम्यग्दर्शन होता है ।

व्यवहार सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन को मोक्षमार्ग कहा है । वास्तव में सम्यग्दर्शन तो आत्मा का गुण है आत्मा का स्वभाव है इसलिए वह मंजिल है ।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए योग्यता

सर्वप्रथम जीव का भव्य होना, जाग्रत अवस्था में काल लब्धि का निकट होना, संसार शरीर भोगों से उदास होना, सैनी पंचेन्द्रिय होना, पागल आदि नहीं होना, धर्म के ऊपर आस्था वाला होना । देव-शास्त्र गुरु का परम भक्त होना, पूर्वाग्रही भी नहीं होना चाहिए । उपरोक्त बातें जिसमें होगी वही सम्यग्दर्शन का पात्र होगा । जो इस सदी मे सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर अकलीकर हुए ।

सम्यग्दर्शन की महिमा

मोक्षमार्ग में रत्नत्रय प्रधान है और रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन प्रधान है । आचार्य कुंदकुंददेवने 'दंसण मूलो धम्मो' सम्यग्दर्शन ही धर्म का मूल जड़ है ऐसा कहा है ।

आचार्य समतभद्र ने भी कहा है कि सम्यग्दर्शन के समान त्रिलोक मे कोई कल्याणकारी नहीं है । सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र भी समीचीन नहीं होते है ।

सम्यक्त्व से युक्त प्राणी संख्यात्-असंख्यात गुणी कर्म-निर्जरा करते हैं । सम्यक्त्व अतुल सुख निधान है, कल्पतरु, चिंतामणी रत्न, कामधेनु और रसायन के समान मनोवांछित सुख अर्थात् मोक्षप्रदान करनेवाला है । सम्यग्दर्शन सर्व रत्नों मे महारत्न है ।

निर्मल सम्यक्तव का धारी जीव संसार के उत्तमोत्तम पदो को प्राप्त करता हुआ अन्त में मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है ।

सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने वाला जीव उसी भव से या तीन-चार भव अथवा सात-आठ भव से मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।

अत· सर्व दु खों को नष्ट करने वाले समस्त सुखों के बीजरूप सम्यक्त्व की आराधना करनी चाहिए ।

श्रद्धान परमार्थानां माप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढ़ापोढ़-मष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन मस्मयम् ॥

जयप्रकाश चुन्नीलाल गांधी,
ईडर मु. पो. ता. ईडर
डाकघर के पास, जिला साबरकांठा,
गुजरात, पिन. : 383430

20वीं सदी में श्रुत पंचमी की महानता

भारतीय परम्परा में पर्वों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये पर्व कई प्रकार के होते हैं। दिगम्बर जैन परम्परा मे पर्वों की विशेष महत्ता है। ये मानव जीवन के साथ गुथे हुए हैं। मानवता के ये प्राण हैं। कुछ पर्व सनातन अनाद्यनन्त हैं यथा 'पर्यूषण' 'रत्नत्रय', 'शोडषकारण' आदि। कुछ पर्वों का श्रीगणेश किन्हीं तीर्थंकर या महापुरुषों के जीवन की विशेष घटनाओं से होता है। जैसे-दीपावली पर्व-भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण दिवस, अक्षय तृतीया श्री आदिश्वर प्रभु को प्रथम आहारदान से, रक्षाबंधन के दिन ७०० मुनिराजो के घोर उपसर्ग निवारण से जुडा है। इनमे भी कुछ धार्मिक, कुछ राष्ट्रीय और कुछ पारम्परिक भी होते हैं। श्रुतपचमी महापर्व धार्मिक पर्व होते हुए हमारी श्रुत परम्परा की कड़ी से जुड़ा है। वर्तमान आर्ष परम्परा को जीवन्त रखने वाला यह पर्व जिनशासन का प्राण है। इस दिन हमें जिनवाणी का सार प्राप्त हुआ। वर्तमान मे संपूर्ण वांगमय का आधार इसी दिन को कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। सारा संसार अनंत पदार्थों से भरा रहे यदि उन पदार्थों का स्वरूप प्रतिपादक कोई न कोई हो तो उनके रहने का क्या लाभ ? अज्ञात को कौन ग्रहण करेगा ? अग्रहीत का हमारे जीवन मे क्या उपयोग ? जन्माध जिस प्रकार अपने समक्ष बिखरे अनंत पदार्थों को नहीं देख सकता, न उनको जान सकता है और न ही यथार्थ उपभोग करता है। इस दशा में उनके पाने का प्रयोजन क्या ? लाभ क्या ? आनन्द क्या ? विषाद भी क्या ? कुछ भी प्राप्त नहीं होता। उसी प्रकार आगम समीचीन जिनवाणी के अभाव मे हम अधे हैं, मूढ हैं और अपने विकास में पंगु हैं। हम क्या, हमारे पूज्य महान्, मार्गदर्शक श्री मुनिराज, आचार्य उपाध्याय आदि भी आगम के अभाव मे हमारे समान ही अज्ञानी, मूढ रह जायेंगे। इसीलिए तो पूर्वाचार्यों ने लिखा है-आगम चक्खू साहू, देवाण ओहि सव्वचक्खूणी, अर्थात् साधु को आगम चक्षु होना चाहिए। वीतरागी या सारगी छद्मस्थ मुनिराज अनुवीची भाषण करते हैं। आगमानुसार पदार्थों का निर्णय कर, उपदेशामृत कर स्व और अन्य भव्यात्माओं को सन्मार्गारूढ करते हैं। आगम उनका नेत्र है। जीवन का प्रतिक्षण व प्रतिकदम आगमानुसार ही यापन करते हैं। अभिप्राय यह है कि आगम के बिना हम अंधे हैं। अधा व्यक्ति जिस प्रकार यथार्थ मार्गावलोकन नहीं कर सकता, न उस पर चल ही सकता है, उसी प्रकार हम आगमरूपी नयनों के बिना एक कदम भी नहीं बढ सकते, चले बिना कोई लक्ष्य पर पहुंच नहीं सकता। बैठे-बैठे कदाच ज्ञान हो सकता है परन्तु अपने गंतव्य को कदापि पाया नहीं जा सकता।

आगम अनादि है उसी प्रकार अनंत भी है। फिर भी कालाश्रय से यहा इसका उत्पाद और विनाश होता रहता है अर्थात् आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है, क्योंकि भरतक्षेत्र में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल दस-दस कोडा कोड़ी सागर काल में आते जाते रहते हैं। यह

चक्रभ्रमण भी अनाद्यनंत है । धारा प्रवाह चलता ही रहेगा । इस वर्तमान धारा में सर्वप्रथम श्री वृषभदेव स्वामी ने तीर्थ प्रारंभ किया । उनके निर्वाण होने पर ५० कोटिसागर पर्यन्त श्रुतधारा अव्युच्छिन्नरूप से बराबर चलती रही है । इसके बाद श्री अजितनाथ प्रभु हुए और इस श्रुतप्रवाह को ज्यों का त्यों प्रवाहित रखा । इस प्रकार श्री पुष्पदंत भगवान पर्यन्त श्रुतसागर की स्थिति अविच्छिन्न बनी रही । पुनः श्री शांतिनाथ सोलहवें तीर्थंकर प्रभु पर्यन्त क्रमशः मध्यांतर में चौथाई पल्य, आधापल्य पौन पल्य आदि क्रमशः विच्छेद होता गया । किन्तु श्रीशांतिनाथ भगवान के बाद श्री महावीर प्रभु तक यह श्रुत जाह्नवी का प्रवाह बराबर चलता रहा । कुशाग्रबुद्धि यतिवरों द्वारा यह प्रकाशित होता रहा । अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान के मुक्तिकाल में ही श्री गौतम स्वामी गणधर जी ने केवलज्ञान प्राप्त किया और श्रुतधारा को यथानुरूप बनाये रखा । इन्होंने अपने सहधर्मी सुधर्माचार्य को गणधर बनने पर अंग चौदह पूर्व रचकर पढाया था । इसके अनंतर सुधर्माचार्य ने जम्बू स्वामीजी को और उन्होंने अन्यमुनीश्वरों को अध्ययन कराया । इन्द्रभूति, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी ये तीनों ही अनुबद्ध केवली हुए । अर्थात् भगवान महावीर स्वामी कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को मोक्ष पधारे उसी समय श्री इन्द्रभूति (गौतम गणधर) केवली हुए और बारह वर्ष तक धर्म वर्षण कर मोक्ष सिधारे । इनके निर्वाण होते ही उसी समय श्री सुधर्माचार्य केवली बने । इन्होंने भी १२ वर्ष पर्यन्त विहरण कर भारतधरा पर श्रुतधारा बहायी । इनके मुक्ति पाते ही श्री जम्बूस्वामी ने केवललब्धि प्राप्त की । आपने केवली होकर ३८ वर्षों तक भव्यपुंडरीकों को धर्मोपदेश दिया । अंत मे मोक्ष महल में जा विराजे । बस, यहीं से केवलज्ञान मार्तंड अस्त हो गया ।

जंबूस्वामी के मुक्त होने के बाद श्री विष्णु मुनि, श्री नंदी मित्र, श्री अपराजित, श्री गोवर्धनाचार्य, श्री भद्रवाहु स्वामी ये पांच महामुनिराज समस्त श्रुतज्ञानसागर के पारगामी हुए । यह काल मात्र १०० वर्ष रहा । अनन्तर श्रुत केवलि रवि भी अस्त हो गया । तब ११ अंग और दशपूर्वधारी महात्मा दिगम्बर मुनिराज हुए । ये भी श्री १०८ विशाखदत्तजी, श्री १०८ प पू प्रोष्ठिल, श्री १०८ प पू क्षत्रिय, श्री प पू १०८ जयसेन, श्री प पू १०८ नागसेन, प पू श्री १०८ सिद्धार्थ, श्री प पू १०८ धृतिषेण, श्री प.पू १०८ विजयसेन, श्री प पू १०८ बुद्धिमानजी, श्री प पू १०८ गंगदेव और श्री प पू १०८ धर्मसेन ये ग्यारह आचार्य श्री हुए । अब पूर्व श्रुत भी लुप्त हो गया । मात्र ११ अंगधारी श्री १०८ नक्षत्र, श्री १०८ जयपाल, श्री १०८ पाण्डु, श्री १०८ द्रुम सेन और श्री १०८ कंसाचार्य ये पांच ही आचार्य हुए । पुनः श्री सुभद्र श्री अभयभद्र, श्री जयवाहु एवं श्री लोहाचार्य ये चार मुनीश्वर आचारांगशास्त्र के परमज्ञाता हुए । यहां तक ही पूर्ण अंग श्रुत की धारा चली । यह समय वीर निर्वाण के बाद ६८३ वर्ष तक रहा ।

इसके अनंतर यद्यपि महान विद्वान विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हदत्त ये चार आरातीय आचार्य हुए । ये अंगपूर्व के कुछ भाग के ज्ञाता थे । इनके अनंतर अर्हद्बलि कुछ ही भाग के ज्ञाता हुए । इनके समय तक युग प्रतिक्रमण चला । अनंतर संघों का निर्माण हो गया । क्योंकि इन्होंने पूछा-"सब साधुगण आ गये ?" उत्तर मिला "जी हां," सभी अपने-अपने संघ सहित आविराजे इस वाक्य में अपने अपने संघ सहित इस वाक्याश से उन्होंने ज्ञात कर लिया कि इस

कलि काल में पृथक-पृथक सघ में पक्षपात बुद्धि-निजत्व बुद्धि रहेगी । अब उदासीन भाव से जैन धर्म नहीं चल सकेगा । अत. कलिकाल का प्रभाव समझ जिनधर्म की स्थिति के लिए उन्होंने जो मुनि गुफाओं से आए थे, उनमें से किसी की नन्दि, और किसी की वीर संज्ञा रख दी । इसी प्रकार अपराजित, देवसेन, भद्र, गुणधर, गुप्त, चंद्र, सघादि नामकरण कर दिया और ये अपने-अपने संघ समूह में धर्मोपदेश करते हुए विहार करने लगे, इसके बाद श्री माघनंदी उद्‌भट आचार्य हुए । इन्होंने अंगदेश का सम्यक् प्रकाश कर स्वर्गारोहण किया । पुन श्री धरसेनाचार्य हुए । ये गुरु गुजरात-सौराष्ट्र प्रान्त में ऊर्जयंतगिरि की चंद्रगुफा मे निवास करते थे । इन्हें आग्रायणीय पूर्व के अंतर्गत पंचम वस्तु के चतुर्थ महाकर्म प्राभृत का ज्ञान था । ये महान् तपस्वी थे ।

इन्हें जब अपने निर्मल ज्ञान से यह भान हुआ कि मेरी आयु अल्प है और जो मुझे श्रुतज्ञान है इतना ही इस काल मे अलम् है । अर्थात् इससे आगे अधिक ज्ञान नहीं होगा । मुझे मेरे श्रुत का दान करना चाहिए । ऐसा विचार कर वेणातटाक निवासी महामहिम मुनिराजो के पास एक ब्रह्मचारी को भेजा । समाचार पाते ही वहा से दो तीव्र बुद्धि महामनीषी युवक साधुओ को भेजा । "जयतु जिनशासन" उच्चारण करते हुए श्री धरसेनाचार्य ने रात्रियोग विसर्जन किया और उसी समय ये दोनो मुनिराज उपस्थित हुए । उसी दिन धरसेन जी ने स्वप्न मे दो सफेद बैलो को अपने सामने नतमस्तक देखा था । यह श्रुतधर्म रक्षण का द्योतक है । अस्तु-

दोनो महर्षियो का श्री १०८ धरसेनाचार्य ने आगमोक्त विधिपूर्वक उचित सत्कार किया । मार्गश्रम हपनार्थ तीन दिवस का उन्हे अवकाश प्रदान किया । तत्पश्चात् "सुपरीक्षाचित्त को शाति देने वाली होती है" अर्थात् जिस विषय की भलीभाति परीक्षा कर ली जाती है । उसमे पुन विघ्नबाधाए नही आती, आई भी तो सहज उपाय से टल जाती है । अत उन दोनो कुशाग्रबुद्धि मुनिराजों को परीक्षार्थ 'मत्रसाधना' की आज्ञा प्रदान की । आज्ञा पाते ही उभय अतिविनम्र, शातचित्त, निर्विकार, बालकवत् आज्ञा पालन मे तत्पर हुए । एकान्त मे श्री नेमिनाथ भगवान की सिद्ध शिला पर जाकर मंत्रसिद्ध करना प्रारम्भ किया । उन्हे अतिशीघ्र सफलता प्राप्त हुई । परन्तु उनमे से एक के समक्ष एकाक्षी (काणी) देवी और दूसरे के सामने दांतवाली देवी प्रकट हो गई । यह देख उन्हे बड़ा आश्चर्य और कौतूहल हुआ । क्योंकि यह उन देवताओ का असली रूप नहीं था । तीव्र प्रज्ञाबल से उन्होने मत्र व्याकरंण की विधि से मत्रो को परखा और उनमें रहने वाली एक अक्षर की कमी और दूसरे मे एक अक्षर की अधिकता को पकडकर दोनो ने अपने-अपने मत्र शुद्ध कर पुन. यथा विधि साधना की । दोनो के समक्ष सौभाग्य सुन्दरी अतिमनोहर देविया आ खडी हुईं और हाथ जोडकर विनम्र हो 'हम क्या करे'? आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी । निस्पृह, वीतरागी, मुनिराजो ने उत्तर दिया, हमे आपसे कोई प्रयोजन नहीं है हमने तो मात्र गुरु आज्ञापालनार्थ आपको सिद्ध किया है । आप अपने यथा स्थान पधारें । देवता विसर्जन कर वे दोनों महत्वाकांक्षी अति विनीत शिष्य गुरुचरणो में आए और संपूर्ण वृत्तांत यथावत् निरूपण कर दिया । गुरुदेव ने भी उन्हे परीक्षोत्तीर्ण ज्ञात कर अति सम्मान व वात्सल्य से अपने हृदस्थ श्रुत की वाचना कर उन्हे हृदयगम कराया ।

कुछ दिन बाद आषाढ़ शुक्ला ११ को वाचना समाप्त हुई । इससे विदित होता है अब तक ओरल (मौखिक) अध्यापन होता था । दूसरे दिन गुरुदेव यह सोचकर कि मेरा मृत्यु काल सन्निकट है, यदि ये समीप रहेंगे तो इन्हें इष्ट वियोगज आर्तध्यान होगा, उन दोनों को "कुरीस्वर" भेज दिया । ८ दिवस विहार कर यहां आए और श्रावण कृष्णा ५ को वर्षायोग स्थापन किया । चातुर्मास समाप्त कर दक्षिण की ओर विहार किया । करहाट नगर से दोनों बिछुड़कर एकल विहारी हो गये । श्री पुष्पदंत जी ने अपने भानजे जिनपालित को दीक्षा दी और उन्हें पढ़ाने को कर्म प्राभृत की छह खण्डों में रचना करनी चाही । अत· उन्होंने प्रथम जीवस्थानाधिकार की जिसमे गुणस्थान, जीव समासादि बीस प्ररूपणाओं का वर्णन है, बहुत ही उत्तमता से रचना की । वनवास देश में चातुर्मास किया और भूतवलीजी ने मथुरा में किया । जिनपालित को सौ सूत्र पढ़ाकर भूतवली जी के पास उनका अभिप्राय समझने के लिए भेजा । इससे इन्होंने श्री पुष्पदंतजी के षट्खंडागम रचना के अभिप्राय को जान लिया और स्वय उन्होंने शेष पाच खण्डो -१ जीवस्थान, २ छुल्लकवंध ३ वध स्वामित्व ४ भाववेदना और ५ वर्गणा की रचना कर पश्चात् महावंधनामक छठवें खण्ड को तीस हजार सूत्रो मे समाप्त किया । श्री भूतवलि स्वामीजी ने इस प्रकार षट्खण्डों की रचना कर उसे असद्भाव स्थापना द्वारा लिपिबद्ध की । इन पुस्तकाकार ग्रन्थों (खण्डों) को सुन्दर वेष्टनों में बाधकर ज्येष्ठ शुक्ला पचमी के दिन चतुर्विधसंघ के समक्ष विधिवत् पूजा की । उसी दिन से यह पचमी श्रुतपचमी के नाम से प्रसिद्ध हुई । आज भी समस्त जैन समाज इस दिन श्रुत की पूजा कर महोत्सव मनाता है ।

कुछ दिनो बाद श्री भूतवलिजी ने षट् खण्डागम का अध्ययन कर जिनपालित शिष्यों को यह पुस्तक देकर श्री पुष्पदत गुरू के पास भेज दिया । जिनपालित के हाथ मे ग्रथ देख मनोरथ सिद्ध जान श्री पुष्पदताचार्य का शरीर प्रगाढ श्रुतानुराग से तन्मय हो गया । अतिशय आनंदित होकर उन्होने भी दूसरे वर्ष श्रुतपंचमी के दिन ही चतुर्विध संघ के समक्ष अष्ट द्रव्य, घंटा, तोरण, वितान, ध्वजादि द्रव्यो से सिद्धात ग्रन्थो की पूजा की । इस महापूजा से श्रुतानुराग की धारा जन-जन के मानस में प्रविष्ट हो उनके कल्मष का प्रक्षालन करने लगी । आज भी समस्त दिगम्बर जैन समाज सर्वत्र इस दिन विविध उपकरणो से श्रुतपूजा कर महामहोत्सव मनाती है ।

श्रीधरसेनाचार्य के काल मे ही एक श्रीगुणधराचार्य हुए इन्हे पाचवे ज्ञान प्रवादपूर्व के दशम वस्तु के तृतीय कषाय प्राभृत का ज्ञान था । अत इन्होंने भी वर्तमान कालीन पुरुषो की हीनशक्ति का विचार कर कषायप्राभृत (दोषप्राभृत) को १८३ मूल गाथा और ५३ विवरण रूप गाथाओं में रचा/पुन· १५ महा अधिकारो मे विभाजित कर श्री नाग और आर्यमंक्षु मुनिराजो के लिए व्याख्यान किया । इन दोनो धुरधर श्रुतधरो के पास श्री यति ृषभाचार्य ने इन दोष प्राभृत के सूत्रों का अध्ययन किया इन्होंने इनका गहन अध्ययन कर ६००० श्लोक प्रमाण चूर्णिवृत्ति बनाई और उच्चारणाचार्य ने उन सूत्रो का तलस्पर्शी ज्ञानकर १२००० श्लोको मे उच्चारण वृत्ति की रचना की । इस प्रकार कर्म प्राभृताधिकार की भाति कषायप्राभृत भी सिद्धान्त ग्रथ रूप मे लिपिबद्ध हुआ । इन दोनों की परम्परा चलती रही ।

श्री पद्मनंदी मुनिराज ने प्रथम तीन खण्डों को १२००० श्लोकों में टीका रची । कुछ काल पश्चात् श्री श्यामकुण्डाचार्य ने दोनों ही प्राभृतों का अध्ययन कर १२००० श्लोकों में टीका रची पुन: कुछ-कुछ समय पश्चात् श्री तुम्बुलूर नामक आचार्य श्री ने छठे महाबंध खंड को छोड़कर शेष दोनों आगमों की कर्णाटकीय भाषा में ८४००० श्लोंक प्रमित "चूडामणि" नाम की व्याख्या की । इन्होंने ही पुन: छठे खण्ड पर भी ७००० (सातहजार) श्लोकों में पंजिका टीका की रचना की ।

कालांतर में तार्किक सूर्य श्री १०८ समंतभद्राचार्य उदित हुए । इन्होंने दोनों ही सिद्धान्त ग्रंथों का मंथन किया । प्रथम पांच खण्डों की ४८००० श्लोकों में अतिशय सुन्दर, सुकोमल संस्कृत भाषा में टीका निर्मित की । पुन. इन्होंने ही द्वितीय सिद्धान्त की व्याख्या प्रारम्भ की, किन्तु इनके सहाध्यायी किन्हीं मुनिराज ने द्रव्यादि शुद्धि के अभाव के कारण निषेध कर दिया । जिससे वह नहीं लिख सके ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी समंतभद्राचार्य पर्यन्त इन दोनों सिद्धान्तों की व्याख्या परिपाटी अत्यंत वेग से चलती रही । इनके पश्चात् भी अति तीक्ष्ण बुद्धिशाली श्री शुभनंदि, श्री रविनदी मुनियो को इन सिद्धान्तो का बोध हुआ । इन्होंने भी पांचखण्डों पर 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' नामक व्याख्या रची । कषाय प्राभृत पर प्राकृत भाषा में ६०००० (साठ हजार) और केवल महाबध पर ८००५ श्लोक प्रमाण दो व्याख्यायें ग्रथ निर्मित किये । कुछ समयोपरान्त श्री ऐलाचार्य सिद्धान्त तत्वों के ज्ञाता और विख्याता हुए । उन्होंने सत्कर्म ग्रथ बनाया । पुन· छहों खण्डों पर ७२००० श्लोको में प्राकृत सस्कृत मिश्र भाषा मे "धवल" नामक टीका रची । फिर कषाय प्राभृत की चारों विभक्तियो पर "जयधवल" नामक टीका २०००० (बीस हजार) श्लोकों में निर्मित की । इनके पश्चात् इनके शिष्य जयसेनाचार्य स्वामी ने चालीस हजार श्लोंक और बनाकर जय धवल टीका को पूर्ण किया ।

उपर्युक्त प्रकार से श्रुत की धारा तो चलती रही परन्तु अंशांशरूप में ही रही । सिद्धान्त ग्रंथों का यह प्रवाह चलता रहा । परन्तु आचारशास्त्र, प्रथमानुयोग का विकास कब, कहां रुका, कुछ विदित नहीं है, अर्वाचीन आचार्य मुनिपुंगवों में श्री समंतभद्र स्वामी का श्रावकाचार (रत्नकरण्ड श्रावकाचार), ी उमास्वामी का उमास्वामी श्रावकाचार, श्रीवसुनंदिजी का वसुनंदीश्रावकाचार, श्री कुन्दकुन्द स्वामी का मूलाचार (यत्याचार) व श्रावकाचार तथा वट्टकेराचार्य का मूलाचार प्रदीप, चारित्रसार आदि ग्रंथ उपलब्ध हैं । इन ग्रंथों के पूर्व क्या आधार था, पता नहीं । शिव कोट्याचार्य जी ने श्री मूलाराधना अपरनाम भगवती आराधना नामक वृहद् ग्रंथ की रचना कर साधु धर्म का सुस्पष्ट निरूपण किया । करणानुयोग में श्री नेमीचंद्र जी सिद्धान्त चक्रवर्ती ने जीव काण्ड, श्रीकर्मकाण्ड, गोमट्टसारों की रचना की तथा त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणासार, वृहद्द्रव्यसंग्रह आदि ग्रंथों को निर्मित किया । इनके पूर्व श्री यतिवृषभाचार्यजी ने तिल्लोयण पण्णत्ती ग्रंथ रचा । पुन: श्री कुंदकुंदाचार्य ने सिद्धान्त ग्रंथोंके अध्ययन के साथ आध्यात्म ग्रंथों की रचना की यथा समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्ट पाहुड आदि ८४ पाहुड ग्रथ बनाए । श्रावक धर्म प्रतिपादन करने के लिए रयणसार जैसे अमूल्यग्रंथ की रचना की । आज ये ही हमारे जीवनाधार हैं । वर्तमान काल में इन्हीं का अध्ययन-अध्यापन चलता है । श्री उमास्वामीजी आचार्य ने तत्वार्थसूत्र रचना की जिसकी

अनेकों उद्भट, तार्किक, महर्षियों ने टीका की है । यथा पूज्यपाद स्वामी विरचित सर्वार्थ सिद्धि, श्री श्रुतसागर जी की श्रुतसागरी टीका, श्री अकलंक देव भट्टाचार्य जी का तत्वार्थ राजवार्तिक, श्री विद्यानंदजी का तत्वार्थ श्लोक वार्तिक पद्य आदि ।

आज भी इन ग्रंथों की हिन्दी टीकाएँ महान् विद्वान् विद्वज्जनों की हैं । किन्तु कुछ समय पूर्व कहां यह प्रवाह मंदतम हुआ और पुनः कहां से चला यह प्रमाणित प्राप्ति नहीं है, जो हो वर्तमान काल इस बीसवीं सदी में इन महान ग्रंथों की हिन्दी टीकाएं भी जितनी सुस्पष्ट सुलझी होनी चाहिए उतनी नहीं हैं तो भी कुछ मुनिपुंगवों, आर्यका माताओं ने प्रयास किया है और योग्यतानुसार सफलता प्राप्त की है यह आपके सामने स्पष्ट ही है ।

अध्ययन और वाचना एवं व्याख्यान रूप मे इस २०वीं सदी के चारित्र चक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री १०८ आचार्य मुनि कुंजर श्री आदिसागरजी महाराज ने प्रारम्भ किया । मुनिमार्ग के शिथिलाचार को मिटाया सही निर्ग्रन्थ परम्परा का जीर्णोद्धार (सुधार) किया । साथ ही श्रावक धर्म का भी परिशोधन किया । परन्तु यह कार्य मात्र कर्नाटकऔर महाराष्ट्र तक ही वेगरूप में रहा । महान शांत स्वभावी, आगम अध्ययन प्रेमी, तीव्र बुद्धि श्री १०८ आचार्यरत्न श्री शांतिसागर जी (दक्षिण) ने इस दिशा मे विशेष प्रयत्न (विहार) कर संपूर्ण भारत मे प्रचार किया । इनके शिष्य श्री १०८ चद्रसागरजी, श्री १०८ आचार्य वीर सागर जी और श्री समाधि सम्राट् प्रथमाचार्य जी के पट्टशिष्य तीर्थभक्त शिरोमणि श्री समाधि सम्राट् १८ भाषा भाषी श्री प पू १०८ आचार्य महावीर कीर्तिजी ने तो समस्त क्षिति तल पर धर्मोपदेश वर्षण कर द्रव्य श्रुत और भावश्रुत का सामंजस्य करते हुए अध्ययन-अध्यापन की कला सिखाई । यही नहीं दैनिक जीवन आचार-विचार, क्रिया-कलाप, जिनदेवाराधना, गुरु भक्ति आदि का विशेष रूप से सुधार किया । सच पूछिये तो नरपुंगव न होते तो आज हम सच्चे धर्म कर्म विहीन हो भटकते ससार अटवी में तडपते रहते । इन्हीं महर्षियों की कठोर साधना, त्यागवृत्ति, विद्वत्ता, वाक्पटुता, बुद्धि कौशलादि के फलस्वरूप श्री १०८ आचार्यरत्न महावीर कीर्तीजी गुरुवर्य के पट्टाचार्य श्री १०८ आचार्य सन्मतिसागरजी तथा निमित्त ज्ञानशिरोमणी वात्सल्य रत्नाकर वयोवृद्ध प्रथमशिष्य श्री आचार्य विमलसागरजी, श्री १०८ श्री कुंथुसागरजी, प पू श्री संभवसागरजी आदि उग्रोग्र तपस्या के साथ धर्मामृत पिला कर जैन जैनेतर भव्य जनता को पुष्टि (आद्यात्मय) प्रदान कर रहे हैं । इसी प्रकार प पू श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजी की परम्परा में इस समय उनके पट्टाधीश श्री १०८ वर्धमान सागरजी श्री १०८ अभिनंदन सागरजी, माताओं में भी उभय आचार्यों की परम्परा में अनेको विदुषीरत्न, गणिनि पदालंकृता एवं अन्य पद विभूषिता सद्धर्मप्रचार कर श्रुतसेवा में संलग्न है ।

कुछ दिनों पूर्व पता चला है कि इसी श्रुत पंचमी के दिन चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य श्री आदिसागर जी अंकलीकर को, जयसिंहपुर गाँव में सन् १९१५ को आचार्य पद प्रदान किया गया था । अतः श्रुत परम्परा में यह महान् कार्य सोने में सुगंध उत्पन्न करता है । श्रुतावतार और प्रत्यक्ष वर्तमान में यस्याचारावतार का जोड़ सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का समन्वय उपलब्ध करता है । जहाँ सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है वहां सम्यग्दर्शन रहना सुनिश्चित ही है । अतः यह दिवस न

केवल श्रुतावतार का द्योतक है अपितु बोधि रत्नत्रय का भी द्योतक है । अस्तु श्रुतपंचमी महोत्सव में श्रुतागम की पूजा, भक्ति आदि के साथ रत्नत्रय महोत्सव भी मनाना चहिए । अर्थात् रत्नत्रय के अवतार स्वरूप चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर के आचार्य पद महोत्सव को भी विविध आयोजनो द्वारा मनाना चाहिए । वर्तमान समय में आचार्य परमेष्ठी ही साक्षात् अर्हत् स्वरूप हैं । क्योंकि इन्हीं से हमें भगवान की वाणी देशनारूप में उपलब्ध होती है । आचार्य श्री पद्मनदीने अपनी पंचविंशतिका में लिखा है ।

संप्रत्यस्तिनकेवली किलकलौ त्रैलोक्य चूड़ामणि ।

स्तद्वाच: परमासतेऽत्रभरतक्षेत्रे जगद्द्योतका· ॥

सद्रत्नत्रयधारिणोयतिवरास्तासांसमालंवनम् ।

तत्पूजा जिनवाचिपूजनमत. साक्षाज्जिन. पूजित. ॥

अर्थात् इस समय भरतक्षेत्र में कोई भी केवली भगवान नही हैं किन्तु उनके वचन अर्थात् जिनवाणी है जो तीनो लोकों मे तत्व का द्योतन करते हैं । उस जिनेंद्रवाणी का आलम्बन लेकर तत्वोपदेश धर्मोपदेश का निरूपण करने वाले सम्यक् रत्नत्रयधारी यतीश्वर आचार्य परमेष्ठी हैं अत इन आचार्यों की पूजा साक्षात् जिन भगवान की ही पूजा है ।

हमें आत्मकल्याण की भावना से एकान्तवाद व एकातवादियों की अनर्गल चर्चा व प्रचार त्यागकर श्रेष्ठ मुनिराजो, आर्यका माताओं व झुल्लक झुल्लिकाओं की यथायोग्य भक्तिपूजा, आतिथ्य दान सम्मानादि करना चाहिए ।

सभी भाई बहिनो को आज स्वाध्याय करने का प्रण करना चाहिए । साथ ही अपने बच्चो को भी प्रतिदिन एक दो लाइन, दो चार शब्द पढायेंगे ऐसा नियम करना चाहिए । मिनट, दो मिनट, पाच मिनट या अवकाशानुसार अपने स्व आत्मा का चिन्तन करें । मैं कौन हूँ, कहाँ से आया, कहाँ जाना है ? आदि विचार करें । इस भावना के पोषण के लिए कर्मास्राव और बंध के कारणों व सवर निर्जरा के स्वरूप तथा कारणो का चितवन करे । इस प्रकार कुछ न कुछ तत्व विचार करने का अभ्यास करना चाहिए ।

मानव महत्वाकांक्षी प्राणी है । प्रत्येक मनुष्य प्रति समय विकास चाहता है । नन्हा शिशु भी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का रक्षण, रुदन कर , हाथपाव फेंककर, आदि चेष्टाओं से प्रकट करता है । वचनशक्ति प्रकट होने पर तो बोलकर स्पष्टीकरण करना ही है । किन्तु कुछ गुण, प्रतिभाएं, योग्यताएं जो स्वाभाविक होती हैं वे थोडा सा निमित्त पाकर ही वृहद्रूप में अभिव्यंजित हो जाती हैं। वह अपनी स्वत: सपत्ति धरोहर रूप इन योग्यताओ से महान् हो जाता है । धर्म, समाज, राष्ट्र, कला, विज्ञान आदि का नेता हो जाता है । इसीलिए कहा है कि महानता या पद मांगने से नहीं मिलता, लादने से नहीं लादा जाता, अपितु स्वयमेव अपनी योग्यता से उपलब्ध होता है ।

सिंह पशुओं का राजा होता है । कानून से उसे राज्यासीन किसने किया ? पक्षियों का शिरोमणी मयूर होता है, मादा पक्षियों में कोकिलारानी होती है, फलों में आम, पुष्पों में गुलाब को

राजा कहा जाता है। क्या इन्हे किसी ने राज्याभिषेक कर राजा बनाया ? नहीं ये स्वयं अपने अपने गुणों के बल पर ही नृपत्व पद को प्राप्त हुए हैं । यद्यपि मानव जाति में राज्याभिषेक, पट्टाभिषेक, दीक्षाभिषेक आदिकर पदवियां प्रदान की जाती हैं, तो भी इनके मूल में उनके आंतरिक गुण ही कारण होते हैं ।

महान बनना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है । पर सभी महान् बन नहीं पाते । बन भी नहीं सकते । कारण नेतृत्व गुण हर एक में नहीं होता । अन्यथा सभी संसार में शासक ही होते, शासित कोई रहता ही नहीं परन्तु ऐसा हो नहीं सकता । राजा नहीं तो प्रजा और प्रजा नहीं तो राजा का व्यवहार ही नहीं होगा । परन्तु महान बनने वाला कोई सत्पुरुष, ज्ञानी, महात्मा विशेष प्रतिभासंपन्न होता है । पुण्यरूपी धन का धनी यशस्कीर्ती कर्मार्जित होता है । वह स्वभावत· धर्मानुरागी, विषयविरत परोपकाररत और उदारमना होता है । वसत काल आते ही, पेड़-पौधे उसके स्वागत में संपूर्ण प्राप्त धन पात्रो को अर्पण कर देते हैं । तो वह भी उन्हें सुहाने, कोमल, आकर्षित पर्णों से सजाकर महान् बना देता है । मधुर, रसीले फलो से भरित डालिया झुक झुक कर अपने फलों को आबालवृद्ध, पशु पक्षी सबको वितरण कर देते हैं और स्वयं ऊचा मस्तक कर ऊपर उठ जाते हैं । इसी प्रकार जो मानव अपनी उदारवृत्ति, विशाल हृदय और अनोखी सूझ से स्व पर के हित में अनुरक्त हो जाते हैं, संसार उन्हे महान् कहता है, पूज्य कहता है, मान्य समझता है । इस प्रकार की विभूतियाँ बहुत दुर्लभ और अल्प ही हुआ करती हैं ।

'वर्तमान काल में बडप्पन की धुन बड़ी तेजी से पनप रही है । प्रत्येक क्षेत्र में "मैं बड़ा", "यह बडा", "वह बड़ा" इत्यादि चर्चाएँ चलती हैं, इस विषय की शंकाएँ और समाधान होते हैं । ठीक है निर्पेक्ष दृष्टि से किसी विषय को चर्चनीय बनाना बुरा नहीं । परन्तु जो सुलझा, स्पष्ट और सत्य विषय हो उसके प्रकट होने पर उसकी महत्ता पर परदा डालना, उसे ओझल करने का व्यर्थ प्रयास करना, उसके विकास में विरोध डालना क्या मानवता, धर्मात्मा, भक्तों का कर्त्तव्य हो सकता है ? कि प्रतिद्वन्दी बनाकर उस पर आक्षेप-विक्षेप करना, समाज की एकता, विकास और महत्ता को कम करना नहीं है ? धर्म के क्षेत्र में या समाज में धर्मात्माओं में भेद डालना आगम विरुद्ध तो है ही सम्यक्त्व की हानि का भी कारण है । हमें आदर्श आत्माओं की श्रद्धाभक्ति से आराधना कर उनके गुणों को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए न कि उनकी टीका टिप्पणियो में समय व्यतीत कर खोखले, कोरे रह जाना चाहिए । हमारे मान्य पुरुष कह गये, लिख गये "वे गुरु चरण जहां धरें, जग मे तीरथ होय" सन्त साधु, वीतरागी मुनिराजों के चरण जिस धरा पर पड़ गये वह भूमि तीर्थ हो गई । वहाँ धूलि भी परम पावन हो गई "सो रज मम मस्तक चढे ।" उस धूल को मस्तक पर धारण करें । क्या यह किसी खास साधु या मुनि राज के लिए लिखा गया है ? यह तो सार्वभौम सत्य है, सर्वत्र, सर्वकाल मान्य है । परन्तु हां, व्यवहार में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, दीक्षा, पदवी आदि की अपेक्षा उनमें भी छोटे-बड़े का विभाजन मान्य होता है, होना ही चाहिए । हुए बिना हम धर्म, आगम, आर्ष परम्परा के प्रवाह को अक्षुण्ण नही रख सकते ।

पूज्य गुरु भी एक नहीं अनेक होते हैं, हो सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं । लेकिन पूज्यता का हेतु सार्वजनिक एक होने पर भी अन्य अनुशंगिक गुणों की अपेक्षा उनकी ख्याति, मान्यता, महिमा, चमत्कार, गुण गरिमा में अन्तर होना स्वाभाविक है । सर्वमान्य समानता क्या है ? वीतरागता निर्ग्रंथता । कुछ वर्षों से इस बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य कौन ? इस प्रश्न की चर्चा तेजी से चल रही है । हमारे श्री परम पूज्य, निस्पृही, आर्ष परम्परानुरागी, चारित्र चक्रवर्ती प्रथम समाधि सम्राट् मुनि कुजर आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) और द्वितीय श्री परमपूज्य अखिल भारत में मुनि चर्या के प्रचारक आचार्य १०८ श्री शांतिसागर जी महाराज (दक्षिण) के बीच कौन बडा ? यह दीवार खड़ी कर दोनों को अर्चनीय के स्थान पर चर्चनीय बना लिया है और इसके लिए उभयपक्ष से अनेकों ऊहापोह, तर्क-वितर्क निकालकर समाज और धर्म की बहुत बड़ी क्षति की जा रही है । इससे लाभ क्या है ? यह समझ में नहीं आता । हमारे समाज के कर्णधार, ध' की आधारभूत सस्थाएँ क्यों विसंवाद में पडी हैं । यह सत्य ही है कि आचार्य शांतिसागजी ने सात गौडा की पर्याय में (गृहस्थ जीवन में) उन्हें आहार दिया था, वैयावृत्ति की थी, उन्हें कन्धे पर बिठाकर नदी पार करते थे । फिर उन्हें प्रथम कहने में हिचकिचाहट क्यो ? यह भी सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट है कि उनके पूर्व प्राय· साधु वस्त्रग्रहण कर लिया करते थे । पूर्णत. निर्ग्रंथ (वस्त्रत्याग) इन्होंने ही प्रारम्भ किया और इसीलिए अपनी मुनिदीक्षा का कोई गुरु न बनाकर श्री १००८ कुलभूषण देशभूषण भगवान को साक्षी कर श्री कुथलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर दीक्षा धारण की । यहीं से शुद्ध वीतराग मार्ग प्रारंभ हुआ । यही नहीं उनकी तपोभूमि कुंजवन (ऊदगाँव) में हमें वृद्ध जनों से ज्ञात हुआ कि उस समय सभी साधु उन्हें ज्येष्ठ, वरिष्ठ और गुरु मानते थे, उनसे प्रायश्चित लेते थे । श्री शांतिसागरजी ने भी उनसे ऐलक दीक्षा ली थी और प्रायश्चित् भी लिया करते थे । वे महासाधुरत्न थे, अपने समय की महान् विभूति आचार्य शिरोमणी थे । जो हो, यह विवाद कोई ऐसा नहीं कि जिसके कारण हम वीतराग मार्ग मे राग द्वेष, वैमनस्य, पराभव एक-दूसरे के प्रति कटुता पैदा कर धर्म मार्ग की वृद्धि को अवरुद्ध करे ।

कुछ मनीषियों की धारणा है कि श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) के गुण महत्ता, महानता, वरिष्ठता, ज्येष्ठता के कारण श्री आचार्य १०८ शांतिसागरजी की ख्याति को धक्का लगेगा । परन्तु मैं समझती हूँ, यह मात्र भ्रम है, हास्यास्पद और अबोधता का ही ज्ञायक है । हमें चद्र का प्रकाश अनुकूल होना है, हम उसकी शीतलता, चद्रिका उज्जवलता, आल्हादिता आदि की प्रशंसा करते हैं, उसे सुखद बताते हैं, उसकी महिमा का बखान करते हैं और कुछ अन्य जन सूर्य के प्रताप, तेज, प्रकाश, उष्णतादि गुणों का वर्णन करते हैं तो इससे क्या सूर्य चांद के गुण-दोष अधिक या कम हो गये ? उनके कार्य विपर्यास हो गया क्या ? कोई समुद्र के गीत गाये, कोई सरिता की लहरों का आनन्द गाये इसमे उनमे क्या अन्तर पड़ेगा ? यथा स्थान सभी को तो सबको मान्य हैं । मैं समझती हूं इस प्रकार के विवाद हमारे अल्पज्ञान, ओछी बुद्धि, अनुदार भावना, एकांगी भक्ति, पगुश्रद्धा और लंगडी आस्था के ही द्योतक हैं । हमें इन विसंवादित विषयों को छोड़कर तथ्य की ओर दृष्टि देना चाहिए । जिससे समाज को ठोस, स्वस्थ, मर्यादित, आर्षोक्त

दिशा प्राप्त हो। हम एकता के सूत्र में बंधे। एकता ही बल है। ''बुद्धिर्यस्यबलतस्य'' हम सद्बुद्धि का सही उपयोग करें तो हमारी भावी पीढ़ी स्वस्थ बन सकेगी।

दिगम्बर परम्परा में वीतरागत्व का वैशिष्ट्य होने से प्राय: महान् प्राचीन आचार्यों के जीवन चरित्र यथार्थ और पूर्ण उपलब्ध नहीं है। अन्वेषणों और किंवदन्तियों के आधार पर ही तो आज हम उन महर्षियों के महत्व और उनकी कृतियों की समीचीनता व मान्यता स्वीकार करते हैं। यदि यह न मानें तो हमारे पास रह ही क्या जायेगा ? महान तार्किक उद्भट विद्वान समंतभद्र स्वामी, अकलंकदेव स्वामी आदि को कब, कहाँ, किसे आचार्य पद दिया, क्या यह उपलब्धि है ? परम्परागत अनुश्रुतियां ही सामान्यत: आधार हैं। फिर आज तनिक सी बात को लेकर हम असफल प्रयास कर समाज में टूट-फूट कर कितनी बड़ी क्षति उठा रहे हैं ? यह कौनसी विद्वत्ता है ? महापुरुषों की स्तुति भक्ति कर हमें तो अपना कल्याण करना चाहिए।

किन्हीं का अभिप्राय है कि एक का अभिनव कर दूसरे को उठाने की चेष्टा की जाती है। यह धारणा भी निर्मूल है। यदि कोई ऐसा अभिप्राय रखता है तो यह उनकी भूल है। किसी की निंदा या पराभव करने से किसी अन्य में गुणोत्कर्ष हो यह कदापि नहीं हो सकता। अन्यथा संसार में सभी निंदक महान् बन जाते या बन गये होते। पर ऐसा हुआ क्या ? नहीं। श्री धनंजय कवि विरचित विषापहार स्तोत्र मे श्री आदीश्वर प्रभु की स्तुति करते हुए उन्होंने बड़ा ही सुन्दर और महत्त्वपूर्ण विवेचन किया है-

सनीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा, तद्दोष कीर्तैव न तेगुणित्वम्।
स्वतोस्वुराशेर्महिमान देवस्तोकापवादे न जलाशयस्य ॥११॥

अर्थात् आपके विषय में, हे भगवान! कोई कहे कि आप मल रहित हैं, क्योंकि अन्य पापात्मा हैं-पाप युक्त हैं। इस प्रकार उसके (अन्य के) दोषोद्भावन से आपके गुणों की महत्ता नहीं है। अर्थात् आपके गुणों में गुणत्व निर्गुण की निंदा से आया ऐसा नहीं है। समुद्र की अथाह-असीम जलराशि की गरिमा उसके स्वत: के पारावार जल समूह से है, न कि सरोवर के तुच्छ कम जल का अपवाद करने से है। अभिप्राय: यह है कि जिस समय हम किसी भी सन्त, महन्त, ऋषि मुनि या अन्य विद्वान के गुणगान में प्रवृत्त होते हैं उस समय अन्य किसी के दोषोद्भावन या दोषारोपण को माध्यम नहीं बनाते अपितु उसी महात्मा के गुणगान में प्रवृत्त हो अपने अशुभ कर्मों का विध्वंश और शुभ भावों की प्राप्ति के लिए करते हैं। गुरु भक्ति वर्तमान में सर्वज्ञ या देव भक्ति समान है। गुरुओं की, आचार्यों की पूजा भक्ति को श्रीपद्म नंदी स्वामी ने साक्षात् जिनेंद्रपूजा समान कहा है। स्तुति भी तो स्तुत्य के गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर की जाती है। श्री समंतभद्रस्वामी जी ने श्री अरनाथ भगवान की-स्तुति करते हुए वृहत स्वयंभू स्तोत्र में लिखा है-

''गुणस्तोकं सदुल्लंघ्यं तद्बहुत्व कथा स्तुतिः'

अर्थात् अल्पगुण रहने पर उनको बढ़ा चढ़ा कर, विस्तार रूप से कम्पन्न करना स्तुति है। भक्त श्रद्धा से सद्गुणें का कीर्तन करता है इसलिए कि वे गुण उसे प्राप्त हो जायें, न कि उनके

कीर्तन से कीर्त्य या श्रद्धेय की महत्ता अधिक हो जायेगी । मैंने पूर्व मे ही लिखा है महानता किसी पर थोपी नहीं जाती, न मांगने से प्राप्त होती है, न अन्य के द्वारा हानि वृद्धि का उपाय करने से उसका ह्रास व विकास ही होता है । यदि कोई अपने आराध्य के विषय में यह सोचता है कि अन्य का गुणानुवाद होने से मेरे आराध्य या श्रद्धेय का पराभव हो जायेगा, उसकी ख्याति, पूजा, प्रतिष्ठा कम हो जायेगी तो, आराधक सच्चा भक्त नहीं, उनके गुणो के प्रति सच्चा पक्का श्रद्धालु नहीं । फिर श्रद्धा, भक्ति किसी के बधन मे नहीं रहती है । हम जितनी श्रद्धा भगवान वीरप्रभु के प्रति रखते हैं उतनी ही अन्य तीर्थंकरो के प्रति रक्खें तो इसमे न तो हमारी श्रद्धा ही धुंधली होगी और न ही भगवान के गुणो में कोई कमीबेशी हो सकती है । इसी प्रकार जितनी श्रद्धा भक्ति हम श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य रत्न श्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) के प्रति रक्खें उतनी ही श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजी के प्रति रखते हैं तो क्या चा च आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) की गुणगरिमा कम हो जायेगी या आचार्य श्री शातिसागरजी की कम या अधिक होगी ? या क्या हमारे श्रद्धा गुण में कुछ हेरफेर हो जायेगा ? कभी नहीं, कदापि नहीं । ये हमारे चारित्रगुण के आधार हैं, आदर्श हैं, मार्गदर्शक है, सच्चे निर्देशक हैं । मोक्षमार्ग प्रदर्शक है । हमे तो सभी के गुणो में अनुराग रखना चाहिए, जिसमे जो गुणाधिक्य हैं उससे वह गुण ग्रहण कर लेना चाहिए । कोई एकान्तप्रिय, ध्यानी, मौनी, वनवासी, आत्म साधनारत रहते हैं तो कोई लोकप्रियता वश परोपकार दृष्टि प्रधान होने से सर्वत्र विहार कर धर्मोपदेश करते हुए भव्यो को सन्मार्ग प्रदर्शित करते है । क्या ये दोनों ही हमारे उद्धारक नहीं ? स्तुत्य नहीं ? श्रद्धेय नहीं ? दोनो की समान रीति से भक्ति करने पर उनके गुण गौरव गाथानुवाद मे कुछ न्यूनता होगी ? सर्वत्र स्तुत्य के गुणो को बढा चढा कर निरूपण किया ही जाता है । युक्तनुशासन मे स्तुति का लक्षण भी समन्तचद्र स्वामी लिखते हैं-

"याथात्म्यमुल्लंघ्य गुणोदयाख्या लोके स्तुतिर्भूरिगुणोदधेते ।"

अर्थात् ससार मे यथातथ्य गुणो का उल्लघन कर विवेचन करना स्तुति कही जाती है । अब हम विचार कर देखें, हमारी बुद्धि कितनी है ? हम अपने गुरुजनो के गुणो की कितनी परख कर सकते हैं ? क्या उनका मापतौल करने की सामर्थ्य है ? फिर व्यर्थ के वितण्डा वाद खडे कर समाज में और धर्म की हानि करना कौनसी बुद्धिमत्ता है ? हमें प्रत्येक विषय को नि·स्वार्थ दृष्टि से गंभीरता पूर्वक उभयनेत्रों से देखकर विचार करना चाहिए । लोक व्यवहार की सिद्धि का कथन करते हुए श्री सोमसेनाचार्य लिखते हैं-

सर्वएव विधिर्जैन·, प्रमाण लौकिक सताम् ।

यत्र न व्रत हानि· स्यात्, सम्यक्त्वस्य च खण्डनम् ॥६५॥

अर्थात् जिस लोकाचार विधि से हमारे व्रतो की हानि न हो और सम्यकत्व का नाश या दूषण न हो वह समस्त क्रिया कलाप विधि विधान प्रमाणिक माने जाते हैं । उन्हें प्रमाण रूप में ग्रहण करने में कोई दूषण नहीं है । फिर ये दोनो ही आचार्य अपने-अपने क्षेत्र में (समकालीन रहते हुए) मूर्धन्य तपस्वी, धर्मप्रभावक, आत्मप्रभावक रहे हैं । उन्हें उसी रूप में मान्यता प्रदान करना हमारा कर्त्तव्य नहीं ? हमें उचित नही ? हमारे जीवन का लक्ष्य नही है क्या ? पक्षपात छोड़कर

हम विचार करें । गुरुभक्ति बढ़ायें गुरुभक्ति बिना संसार तारक न कोई हुआ न हो सकता है । गुरुमहिमा अगम्य है । यद्यपि निश्चय से तो अपना शुद्धात्मा ही गुरु है । मुख्यत· श्री सर्वज्ञ प्रभु गुरु हैं । व्यवहार से और उपचरित सद्भूत व्यवहार से हमारे वर्तमान कालीन आचार्यपरमेष्ठी ही गुरु हैं । उनका गुण कीर्तन हमारे मन, वचन काय की शुद्धि का साधन है । अस्तु हमें परम्परा का व्यामोह त्यागकर सभी आचार्य परमेष्ठियों के प्रति समान रूप से श्रद्धालुभक्त बनने का प्रयत्न करना चाहिए ।

गुरूजनों की सेवा, सुश्रुषा, भक्ति, वैयावृत्ति, विहरादि करने कराने का उद्देश्य रागद्वेष परिणति का कम होना है, पारस्परिक दुर्भावों का नाश करना है, आपसी मन मुटाव को समाधान पूर्वक त्याग करना है । यदि ये गुण जागृत नहीं होते जो साधु शरण में आने का लाभ ही क्या है ? यह बात सत्य है कि हर व्यक्ति हर एक परमेष्ठी के प्रति समान रूप से भक्त नहीं हो सकता । इसी प्रकार प्रत्येक आचार्य परमेष्ठी के प्रति समान गुरु भक्ति भी संभव नहीं है । दीक्षागुरु के प्रति श्रद्धा भक्ति एक प्रमाण मे होती हैं तो शिक्षागुरु की भक्ति का प्रमाण कुछ और ही होता है, अन्य साधारण गुरुओं के प्रति किसी अन्य प्रकार श्रद्धाभक्ति हो सकती है, होती रहे इससे हम अन्य किसी की श्रद्धा भक्ति हमारे ही समान रहे यह तो कहने कराने का अधिकार नहीं रख सकते । फिर झगडा क्यों ? अपने अपने गुरु का कोई यशोगान करें, गुण कीर्तन करें, उनके सद्गुणों का उद्भावन कर सर्वसाधारण को सत्यपथ प्रदर्शन करे, उनकी शिक्षाओ का प्रचार कर भोले भव्यप्राणियों को सन्मार्गारूढ़ करे, आध्यात्म की महिमा दिखाये, सदाचार, शिष्टाचार, नैतिकाचार का प्रचार प्रसार आदर्श उपस्थित करे तो इससे क्या क्षति होगी ? नहीं, तो क्यों विरोध किया जाय ? जिसके जिस अंश में सत्य, गुण उपकार हैं वे रहेगे उनके प्रति भय क्यो ? भय असत् मे होता है सत् मे नहीं । जब तक जिसका बोलबाला रहता है रहेगा । हम किसी को यशस्वी या अपयशी बना सकते हैं यह हमारा कोरा दम्भ है ।

हमारा और हमारी धार्मिक सस्थाओ एव कार्यकर्ताओ का कर्त्तव्य है । वे बाह्यवाग्जाल और आडम्बरो का लिबास त्यागकर एक सतह पर आए । जो वास्तविक धर्म विरोधी, एकांतवादी, झूठे ममकारवाद, अहकारवाद आदि मन्तव्य पनप रहे हैं, उन्हें रोके । राजनीति के समान धर्मनीति में भी गद्दियो के लिए सग्राम होना क्या शोभनीय है ? यह कोई समाज को स्वास्थ्य दान है । इससे राग, द्वेष, कलह, निदा एक-दूसरे को पराभूत करने का भाव आदि कुत्सित, घिनौनी, हास्यास्पद प्रवृतियाँ ही बढ रही हैं, पनप रही हैं, इनको रोकना चाहिए । इनके विरोध में शक्ति, समय, अर्थ व्यय कर सही, सत्य अनेकांत सिद्धान्त का पोषण करे । आर्षमार्ग परम्परा को निर्मल रखकर स्वच्छ जह्नवी के प्रवाह सदृश प्रवाहित करें । श्री जिनधर्म की सच्ची प्रभावना कर भावीपीढी के प्रत्येक युवक युवतियों, श्रावक श्रावकाओं के हृदय में सच्चा जैनत्व जाग्रत करे । देवशास्त्रगुरु का सत्यार्थ रूप समक्ष आए तो सच्चे भक्तों की कमी नहीं रहेगी । अन्यथा यदि हम आपस में, अपने ही घर में, अपने ही परिवार को एक सूत्रता में न ला सके तो पूरे देश, समाज व राष्ट्र को किस प्रकार धर्म नीति का पाठ एक स्तर पर बिठाकर दे सकते हैं । पथवाद, परम्पराओं के संकीर्ण दायरे से निकल कर आगम की कसौटी पर हर व्यक्ति अपने को कसने का प्रयत्न करें तो सारी विषमताएँ दूर हो

सकती हैं। हम एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करें, एक-दूसरे के मंतव्य को सुनने और जानने की क्षमता उत्पन्न करें, हरएक के अभिप्राय का स्वागत करें, सबकी बातें खुलने-खुलाने का अवसर दें। सबको लेकर टोटल करें, अनुपातानुसार उन्हें उचित सम्मान या स्थान देकर आर्षमार्ग या परम्परानुसार जिसमें जो सार है उसे स्वीकार करें और जर्जरित, शिथिलाचारी, विषम समाज को सही स्वास्थ्य प्रदान करें।

बडप्पन की रक्षा, चाह न बनने की धुन में सत्य का सहारा न छूट जाय यह ध्यान में रखना चाहिए। हमारा व्रत, संयम, चारित्र मलीन न हो, अंतरंग परिणामों में कालुष्य न आ जाय, इसके लिए सतत् सावधान रहना चाहिए। हमसे लघु महान हो गया या बड़ा छोटा रह गया इस प्रपंच से कभी कोई बडा बना न बन सकता है। आज तक कर्त्तव्य निष्ठा होकर अपने-अपने पदानुसार अपने-अपने कर्त्तव्यों का, अधिकारों का पालन करें। हाँ इस दिशा में मर्यादा का उल्लघन न हो इसे ध्यान में रखकर वर्तन करें। अब हमारी समझ में अच्छी तरह समझ आया कि श्रुतपंचमी को श्रुतशास्त्र का पूजन आदि भक्ति तो करते ही हैं। परन्तु प पू इस सदी के सर्व प्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य मुनिकुंजर आदिसागर जी अंकलीकर का आचार्य पदारोहण दिवस है इसलिए हम उन महान गुरु का भी स्मरण चिन्तन मनन कीर्तन पूजन आदि भक्ति करके उस श्रुतपंचमी पर्व के महत्त्व को बढावे।

श्रीमती राजुल जैन

एम कॉम , बी एड ,

अध्यापिका किरोली (सिरोही)

साधु के मूलगुण

सुश्री सरिता जैन कासलीवाल, बलून्दा

भारतीय वसुन्धरा को इस बात का महान् गौरव है कि इसने अनेक महान् नररत्नों को जन्म दिया है व दे रही है, आज भी हमें बहुत से साधु विचरण करते हुए दिखाई दे रहे हैं व कठोर तपस्वी व पवित्र आचार-विचार से स्व पर का आत्म कल्याण करते हैं। रत्न की कीमत फिर भी आँकी जा सकती है किन्तु धर्मात्मा नर-रत्नो की कीमत नहीं आँकी जा सकती, क्योंकि उनका कोई मूल्य नहीं होता वे अमूल्य होते हैं मात्र जन्म से ही जीवन रत्न तुल्य नहीं बनता अपितु उसे बनाया जाता है, जीवन को पाकर के जिन्होंने उसे सत्य सयम की कसौटी पर कस लिया है उनका ही जीवन रत्न तुल्य है, बहुमूल्य है, वे ही प्राणी नररत्न हैं उनका जीवन सफल एवं सार्थक है, वह है साधु परमेष्ठी।

२०वीं सदी में सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुंजर आचार्य परमेष्ठी आदिसागरजी (अकलीकर) ने दीक्षित हो पाला, आगम में साधु का लक्षण इस प्रकार कहा है "जो पंचेन्द्रियों के विषयों से विरक्त, आरम्भ-परिग्रह रहित और ज्ञान ध्यान तप में लवलीन हो सो ही साधु है।" अर्थ आत्म स्वरूप मे लवलीन होने को बाधक कारण आरम्भ परिग्रह और इन्द्रिय-विषयों की लोलुपता हैं, इन्हीं के निमित्त से जीव के कषायों की उत्पत्ति होती और आत्मध्यान में चित्तवृत्ति स्थिर नहीं रह सकती, अतएव इनको त्याग आत्म ज्ञानपूर्वक ध्यान में लवलीन रहना ही साधु का कर्त्तव्य है।

जो इस साधु भेष रूपी कसौटी पर ठीक उतरता है वही जीव भेद विज्ञान के बल से भावों को विशुद्ध करते हुए कर्मों का नाश करता है। साधुओ को अन्तर-बाह्य २४ प्रकार के परिग्रह का त्याग करके २८ मूलगुणों का आचरण करना होता है। साधु के २८ मूलगुण:

वद, समिदि, कसायार्णा, दण्डण तहिंदियाणपञ्चणहं
धारण पालन, निग्गह, चागजओ, संजमोभणियो

मूलगुणों को भलीभांति पालने से आत्मा के ८४ लाख उत्तरगुणों की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार मूल बिना वृक्ष नहीं ठहर सकता और न विस्तृत व हरा-भरा हो सकता है, उसी प्रकार मूलगुणों के समुचित पालन किये बिना न तो मुनिधर्म धारणकर ही साधना हो सकती, और न उत्तर गुणों की उत्पत्ति ही हो सकती है, अतएव मुनिधर्म धारण कर आत्म स्वरूप साधु, परमात्म होने के इच्छुक भाग्यवानों को ये २८ मूलगुण यथार्थ रीति से पालन करना अत्यावश्यक है।

पंच महाव्रत : जिनका आचरण पूर्णरूपेण सावद्य की निवृत्ति और मोक्ष की प्राप्ति के लिये किया जाय, सो महाव्रत है, इस प्रकार हिंसादि पंच पापों के सर्वथा त्यागरूप सकल संयम (चारित्र) के साधक महाव्रत पाँच प्रकार है।

(१) अहिंसा महाव्रत · प्रमत्तयोग पूर्वक द्रव्य और भाव प्राणों के घात का सर्वथा त्याग सो अहिंसा महाव्रत है, षटकाय जीवो की हिसा न करना, द्रव्य कर्म व भावकर्म के मुनि त्यागी होते हैं ।

(२) सत्य महाव्रत . प्रमत्त योग पूर्वक असत्यवचन का सर्वथा त्याग सो सत्यमहाव्रत है ।

(३) अचौर्य महाव्रत · प्रमत्तयोग पूर्वक बिना दी हुई वस्तु के ग्रहण करने का सर्वथा त्याग सो अचौर्य महाव्रत है ।

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत . वेद के उदय जनित मेथुन सम्बन्धी सम्पूर्ण क्रियाओं का सर्वथा त्याग सो ब्रह्मचर्य महाव्रत है ।

(५) परिग्रह त्याग महाव्रत : परद्रव्य एव तत्संबधी मूर्च्छा का अभाव सो परिग्रह त्याग महाव्रत है, वहाँ चेतन, अचेतन दोनों प्रकार के परिग्रह अथवा चौदह प्रकार अतरग परिग्रहो का त्याग सो परिग्रह विरति है ।

पाँच समिति

सम अर्थात् भले प्रकार, सम्यक, शास्त्रोक्त, इति कहिये गमनादि मे प्रवृत्ति सो समिति है । इसमें समीचीन चेष्टा सहित आचरण होता है, इसलिये ये व्रतों की रक्षक और पोषक हैं । ये पाँच प्रकार हैं-

(१) ईर्या समिति . जो मार्ग मनुष्य पशु आदि के गमनागमन मे खुद गये हों सूर्य के आताप से तप्त हो गये हों, हल बखर आदि से जोता गया हो तथा मसान भूमि हो, ऐसे प्रासुकमार्ग से, प्रमाद रहित होकर दिन के प्रकाश मे चार हाथ प्रमाण भलीभाँति निरखते हुए प्राणियो को न विराधते हुए, शास्त्रश्रवण तीर्थयात्रा, गुरुदर्शन आदि धर्म-कार्यों तथा आहार विहारादि आवश्यक कार्यों के निमित गमन करना सो ईर्यासमिति कहलाती है ।

(२) भाषा समिति : सर्व प्राणियो के हितकारी, सुख उपजाने वाले, प्रामाणिक शास्त्रोक्त, विकथा वर्जित वचन बोलना, लौकिक, कर्कश, हास्यरूप, परनिन्दक, स्वात्मप्रशसक प्राणियो को सक्लेश दु·ख हानि उपजाने वाले वचन न बोलना, सो भाषा समिति है ।

(३) एषणा समिति. मुनिराज जो आहार ग्रहण करते हैं वह उद्‌गमादि ४६ दोषो से रहित निर्दोष होता है, असातावेदनीय कर्म का उदय होने से उत्पन्न हुई क्षुधा को मिटाने के लिए मुनि आहार लेते हैं । कृत कारित अनुमोदना नव कोटि से शुद्ध, अपने निमित्त न किया हुआ ऐसा अनुदिष्ट आहार लेना सो एषणा समिति कहलाती है ।

(४) आदान–निक्षेपण समिति : रखी हुई वस्तु उठाने को आदान और ग्रहण की हुई वस्तु रखने को निक्षेपण कहते हैं । जिस प्रकार जिससे किसी जीव को बाधा न पहुँचे उस प्रकार ज्ञान के उपकरण शास्त्र, सयम के उपकरण पीछी, शौच के उपकरण कमडलु तथा संस्तरादिको यत्नपूर्वक उठाना, रखना सो आदान निक्षेपण समिति कहलाती है ।

(५) प्रतिष्ठापन समिति . जो प्रदेश एकान्त मे हो, दूर हो, एका हो, दृष्टि के अगोचर हो जो उचित है, विरोध रहित हो, जहाँ किसी की रोक टोक न हो और जिसमें जीव-जन्तु न हो ऐसे स्थान को देख-शोधकर मुनिराज मलमूत्रादिक करते हैं, उसे प्रतिष्ठापना समिति कहते हैं ।

पंचेन्द्रिय निरोध .

इन्द्रियो तथा मन के विषयो मे रागद्वेष रहित होना इन्द्रिय-निरोध कहलाता है, यह पाँच प्रकार के हैं ।

(१) स्पर्शन-इन्द्रिय निरोध चेतन पदार्थ स्त्रीपुत्रादि, अचेतन पदार्थ वस्त्र शय्यादि सम्बन्धी स्पर्शन के विषयभूत, कठोर, कोमल, शीत उष्ण, हल्के-भारी, चिकने रूक्ष पदार्थों से रागद्वेष न करना ।

(२) रसना इन्द्रिय निरोध . अशन-पान, खाद्य-स्वाद्य चार प्रकार इष्ट-अनिष्ट आहार तीखे, कडुवे, कषायले, खट्टे मीठे पच रसरूप आहार मे रागद्वेष न करना ।

(३) घ्राण इन्द्रिय निरोध . सुख-दुःख के कारण रूप सुगधित, दुर्गन्धित पदार्थों में रागद्वेष न करना ।

(४) चक्षु–इन्द्रिय निरोध कुरूप सुरूप सुहावने-भयावने रागद्वेष के उत्पादक पदार्थों को तथा लाल-पीले, हरित-रक्त सफेद आदि रगो को देखकर रागद्वैष न करना ।

(५) श्रोत्र-इन्द्रिय निरोध चेतन स्त्री, पुरष आदि, अचेतन मेघ बिजली आदि और मिश्रत बलासारगी आदि से उत्पन्न शुभ-अशुभ, प्रशसा-निन्दा, आदि क शब्द सुनकर रागद्वेष न करना ।

षट् आवश्यक

अवश्य करने योग्य को आवश्यक कहते है, मुनियो के ये षट आवस्यक समस्त कर्मों के नाश करने को समर्थ है । यद्यपि मुनिराज नित्य ही ये षटकर्म करते हैं, तथापि ध्यान-स्वाध्याय की इनके मुख्यता है । ये षटकर्म इस प्रकार हैं

(१) समता अर्थात् सामायिक . भेदज्ञान पूर्वक समस्त सांसारिक पदर्थों को अपने आत्मा से पृथक ज्ञान तथा आत्म स्वभाव को रागद्वेष रहित जान-जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सयोग-वियोग शत्रु-मित्र, सुख-दु ख मे समान भाव रखना तथा कर्मों के शुभाशुभ के उदय से रागद्वेष न करना । सामायिक के ३२ दोष होते हैं ।

(२) वदना चौबीस तीर्थंकरो मे ने एक तीर्थंकर की व पचपरमेष्ठी में एक की मुख्यता करके स्तुति करना अर्हंप्रतिमा, सिद्ध प्रतिमा तपोगुरु, श्रुतगुरु, दीक्षागुरु, दीक्षाधिक गुरु को प्रणाम तथा मन वचन काय की शुद्धता पूर्वक स्तुति करना ।

(३) स्तुति चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करना ।

(४) प्रतिक्रमण आहार, शरीर, शयन, आसन, गमनागमन और चित्त के व्यापार से द्रव्य क्षेत्र काल, भाषा के आश्रय अतीत काल में लगे हुए व्रतसबंधी अपराधों का शोधना, निन्दागर्हायुक्त अपने अशुभ योगो से निवृत होना, किये हुए दोषो का परित्याग करना प्रतिक्रमण कहलाता है ।

(५) कायोत्सर्ग शरीर से ममत्व छोड खडे होकर या बैठकर शुद्धात्मा चिन्तन करना, सम्यक्त्वादि रत्नत्रयगुणो की भावना सहित होकर शरीर से निर्ममत्व होना ।

(६) स्वाध्याय वाचना, पृच्छनादि पच प्रकार से शास्त्रो का अध्ययन अथवा आत्मचिन्तन करना ।

अन्य सात गुण इस प्रकार है

(1) केशलोच अपने हाथ से शिर, डाढी, मूछो के केशो को उखाड डालना, सो केशलोच कहलाता है लौंच के दिन प्रतिक्रमण सहित उपवास करना चाहिए ।

(2) आचेलक्य चेल वस्त्र को कहते हैं । निरवद्य मुनिधर्म के विराधक कपास-रेशम सन-टाट आदि वनस्पति के वस्त्रो तथा मृग व्याघ्र आदि से उत्पन्न मृगछालादि चर्म व वृक्षो के पत्र-छाल आदि द्वारा शरीर को आच्छादित नही करना और उन्हे मन-वचन काय से त्यागना ।

(3) अस्नान · जल तथा मलयुक्त शरीर होने पर भो स्नान, विलोपन जल सिचन आदि शरोर सस्कार न करने को अस्नान गुण कहते हैं ।

(4) क्षितिशयन एक स्थान मे प्रछन्न ओधे अथवा सीधे रहित एक पसवाडे से दड अथवा धनुष के समान शयन करना, क्षितिशयन गुण कहलाता है ।

(5) अदन्तधावन हाथ की अगुली, नख, दान्तौन, तीक्ष्ण ककर, वृक्ष की छाल आदि द्वारा दातो का शोधन न करना अदन्तधावन कहलाता है ।

(6) स्थित भोजन भीत आदि के आश्रय बिना, दोनो पावो मे चार अगुल का अन्तर रखकर समपाद खडे होकर 46 दोष, 32 अतराय, 14 मल दोष त्यागकर, प्राणीमात्र आहार लेने को स्थिर या स्थिति भोजन गुण कहते हैं ।

(7) एकमुक्ति तीन घडी दिन चढे, पीछे तीन घडी दिन रहे पहिले मध्य मे 1, 2, 3 मुहुर्त काल के भीतर-भीतर दिवस मे केवल एक बार ही अल्प आहार लेने को एकमुक्ति गुण कहते हैं । इन्द्रियों के जीतने तथा भकाणा की निवृत्ति के लिये एकभुक्ति व्रत है ।

इन उपयुक्त अठाईस मूलगुणो के विधिपूर्वक पालन करने से इन्द्रिय सयम और प्राणी संयम दोनो की भली-भाँति सिद्धि होती है, स्वाधीनता, निराकुलता बढती, धर्म में प्रवृत्ति भलीभाति होती है, उपयोग स्थिर और निर्मल होता है, यही योग्यता मोक्षप्राप्ति के लिए मूलकारण और मोक्ष का स्वरूप है ।

आचार्य आदिसागर (अंकलीकर) अभिनन्दन ग्रन्थ

चतुर्थ खण्ड

विभिन्न विषयों पर विभिन्न
पदों से अलंकृत प्रतिष्ठित विद्वानों
एवं समाज सुधारकों
द्वारा तथ्यात्मक लेख

चयन—सुमन

१ मुनिकुञ्जर कौन ?

जिन पवित्रात्माओं का ये अध्यवसान-अज्ञान अदर्शन एवं अचरित्र नहीं है। वे ही मुनिकुञ्जर हैं। सर्वोत्तम मुनिराज हैं। स.सा.प्रा.

२ तीर्थ किसे कहते है ?

जणिम्मल सुधम्म सम्मत्त सजम तव णाण ।
त तित्थ जिणमग्गे हवेइ जदि संतिभावेण ॥२७॥

अर्थ—सुविशुद्ध निर्मल निरतिचार सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र तप आदि जो जो मोक्षमार्ग के साधन है वे सब मन्दकषाययुक्त तीर्थ कहे जाते है।

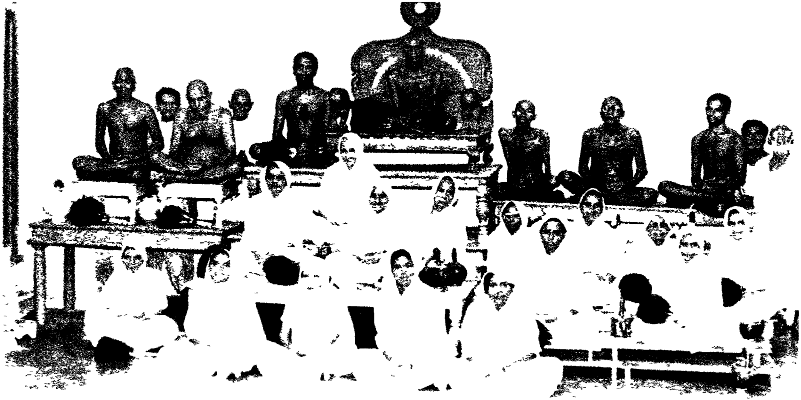
३ ससार मे सर्वत्र मुद्रा की मान्यता होती है। मुद्रा बिना कोई नहीं मानता। राजमुद्राधारी हीन भी है तो मान्यता होती है। इसी प्रकार जिन मुद्राधारी ज्ञान विशेष रहित भी है तो परम पूज्य है मान्य है। दिगम्बर मुद्रा मात्र का सम्मान करना ही चाहिए। अवज्ञा कभी नहीं करना चाहिए।

४ जो व्यक्ति गुरु को नहीं मानते, उनकी उपासना नहीं करते उनके लिए सूर्योदय रहने पर भी अन्धकार ही है। अर्थात् गुरुभक्ति व उपासना बिना अज्ञान अंधकार नष्ट नहीं होता।



परम् पूज्य चा च मुनि कुञ्जर समाधि सम्राट १०८ आचार्य श्री आदि सागरजी (अकलीकर) के तृतीय पट्टाधीश परम् पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती तपस्वी सम्राट बालयोगी १०८ आचार्य श्री सन्मति सागरजी महाराज आशीर्वाद देते हुए

– आनन्दपुर कालू (पाली) राजस्थान



प पूज्य [illegible] अचार्य श्री [illegible] महाराज [illegible] मुनि श्री [illegible] सागरजी [illegible]
मुनि श्री श्रुत सागरजी। आचार्य श्री [illegible] मुनि श्री [illegible] सागरजी [illegible]।

बाये से दाये – आर्यिका [illegible]मती माताजी [illegible] आर्यिका [illegible]मती माताजी [illegible] श्री [illegible]मती माताजी
आर्यिका [illegible]मती माताजी [illegible] आर्यिका [illegible] आर्यिका [illegible]मती माताजी आर्यिका विजय
प्रभा माताजी [illegible]।

नीचे – क्षु [illegible]मती माताजी ब्रह्मचारिणी [illegible] ब्रह्मचारिणी [illegible]
बाई [illegible] ब्रह्मचारी [illegible]।

अंकलीकर धकार शतक

धर्म ही मगल श्रेष्ठ है, दुक्खोषधि है धर्म ।
जन गण को बल धर्म है, त्राणभूत है धर्म (1)
धर्म तत्व परमार्थ विद् शील करे नहि भंग ।
नहि टाले गुरु वचन को, नहि कुशील को सग (2)
धर्म बन्धु अरु मित्र है, धर्म गुरु भर्तार ।
मुकती मारग के लिए, सन्मति का दातार (3)
धर्म हरे बहु व्याधि को, धर्म हरे ग्रह-दुक्ख
धर्म ही से रिपु जीतिये, तहा धर्म तहं सुक्ख (4)
धर्म किये सुख होत है, धर्म किए सुर होय ।
धर्म किये शिवपुर वसे, धर्म समान न कोय (5)
धर्म लहै नहि दुष्ट चित्त, लोभी वश किमि पाय ।
भागहीन को लाभ नहि, नहि औषधि गत आय (6)
धर्म भिन्न फिर कौन है, कहो सुधी कल्याण ।
जिससे मिलता स्वर्ग है, तथा कठिन निर्वाण (7)
धर्म तुल्य ससार में, अन्य न कुछ भी श्रेय ।
और न इसके त्याग सम, अन्य न अधिक अश्रेय (8)
धर्म पदारथ धन्य जग, जा पटवर कुछ नाहि ।
दुर्गति वास वचाय के घटे सुरग शिव मांहि (9)
धर्म सुखाकुर मूल है, पाप दुखाकुर खान ।
गुराम्नाय से धर्मगृह, आपा पर का ज्ञान (10)

धर्म किया लाभ है, यह मत पूछो बात ।
देखो नृप की पालकी, वाहक गण ले जात (11)
धर्म शून्य जाता नही, जिसका क्षण भी एक ।
बन्द किया भव द्वार को, उसने ही सविवेक (12)
धर्म जन्य सुख को कहे, सच्चा सुख श्रीमान ।
विषय वासना सुख सदा, जज्जा दुक्ख निदान (13)
धर्म क्षमादिक अग दश, धर्म दयामय जान ।
दर्शन ज्ञान चारित्र धरम, धर्म तत्व श्रद्धान (14)
धर्म वचन नर के लिए, दृढ लाठी का काम ।
देते विपदा काल मे, कर रक्षा अविराम (15)
धर्म मूल हो सम्पदा, पुण्य हेतु विख्यात ।
कृश भी हो यदि मध्य मे, अन्य मिले वह तात (16)
धर्म तथा शुभ नीति से, जो करता उपकार ।
उसके पुण्य प्रभाव से, सब ही श्लाघाकार (17)
धर्म घात कर मोह से, भोगे भोग निशक ।
तरुवर जड से काट के, फल चाहत वे रग (18)
धर्म अर्थ अरु काम अरु, मोक्ष एकहु जास ।
अजा-कण्ड-कुच के सदृश, व्यर्थ जन्म है तास (19)
धर्म ग्रन्थ भी विश्व के सन्तो का जयघोष ।
करते हैं जिनकी सदा, सत्य वचन निर्दोष (20)
धर्मी को लख पापी जन, जाग्रत को लख चोर ।
कवि को लखकर मूक नर, करै कोप घनघोर (21)
धर्म मित्र अरु पाप अरि, जो नित जानत होय ।
पढकर गुनकर शास्त्र को, अमल करे सुख होय (22)

धर्म कल्प तरु के निकट, मागू शिवफल आज ।
दान पुण्य की कर क्रिया, पाऊँ सुख साम्राज्य (23)

धर्म विहारी पुरुष हो, धर्म चारिणी नार ।
धर्म बन्त सन्तान हो, सुखी रहे परिवार (24)

धर्म न हिन्दू बोध है, धर्म न मुस्लिम जैन ।
धर्म चित्र की शुद्धता, धर्म शाति सुख चैन (25)

धर्म न छापा तिलक है, धर्म न तुलसी माल ।
धर्म कमण्डल मे नहीं, धर्म नहीं मृग छाल (26)

धर्म ना मिथ्या मान्यता, धर्म न मिथ्याचार ।
धर्म न मिथ्या रुढिया, धर्म सत्य का सार (27)

धर्म न तर्क वितर्क है, धर्म न वाद-विवाद ।
विरज विमल चैतन्य का, धर्म पुनीत प्रसाद (28)

धर्म सार सुख मूल है, धर्म सार सुख खान ।
बिना सार धारण किये, कहाँ मुक्ति निर्वान (29)

धर्म वही जो मेट दे, इस जीवन के शोक ।
बिना लोक सुधरे, भला कब सुधरे परलोक (30)

धर्म ज्योति जलती रहे, प्रतिपल अन्तर माहि ।
जीवन पथ पर पाप की, पडे न काली छाँहि (31)

धर्म पथ ही शाति पथ, धर्म पथ सुख पथ ।
जिसने पाया धर्म पथ, मगल मिला अनन्त (32)

धन्य धर्म ऐसा मिला, मिली रत्न की खान ।
दुख दारिद्र सब मिट गया, तन मन पुलकित (33)

धर्म सदृश ना कवच है, धर्म सदृश ना ढाल ।
धर्म पालको की सदा, धर्म करे रखवाल (34)

धर्म सदृश रक्षक नही, सखा सहायक मीत ।
राख आसरा धर्म का, राख धर्म से प्रीत (35)

धर्म देशना सरल है, बडा सरल व्यापार ।
पर चलना कठिन है, ज्यो खाडे की धार (36)

धर्म धर्म तो सब कहे, पर समझे न कोय ।
निर्मल मन का आचरण, धर्म कहावै सोय (37)

धारण करले वावरे, बिन धारे नही त्राण ।
योग क्षेम दातार है, धर्म बडा बलवान (38)

धरम जगत का ईश है, धर्म ब्रह्म भगवान ।
धरम सदा रक्षा करे, धर्म बडा बलवान (39)

धर्म पथ की यात्रा, सदा मागलिक होय ।
साधक के अभ्यास श्रम, कभी ना निष्फल होय (40)

धन्य धर्म का तेज बल दुर्जन हुआ निहाल ।
हत्यारा अर्हन्त, धन्य अगुली माल (41)

धरम सदा रक्षण करे, धर्म करे कल्याण ।
धरम सदा मङ्गल करे, धर्म बडा बलवान (42)

धर्म न मन्दिर मे मिले, धर्म न हाट विकाय ।
धर्म न ग्रथो मे मिले, धारण किये ही आप (43)

धन्य भाग सावुन मिली, निर्मल पाया नीर ।
आओ धोवे स्वय ही, मन के मैले चीर (44)

धर्म कार्य करते रहे, भूत न आवै पास ।
धर्म शून्य घर ही सदा, भूतो का आवास (45)

धर्म धर्म सब ही कहे, विरला जानै मर्म ।
मन वचन तन की शुद्धता, यही परम है धर्म (46)

धर्म गृहस्थो का प्रथम, द्वितीय धर्म अनगार ।
यथा शक्ति धारो धरम, होना है यदि पार (47)

धर्म और है पथ और है, अन्धे बन कर दौडो ।
पाना है यदि धर्म मर्म तो, पथ मोह को छोडो (48)

धर्म कहो या आचरण, दर्शन या सुविचार ।
दर्शन और फिलासफी, एकार्थक व्यवहार (49)

धर्म बिना मिलने नही, सोख्य शाति संतोष ।
आपस में झगडे सभी, बडे क्षोभ अधरोष (50)

धर्म कर्म निरपेक्षता, दु ख अशान्ति का मूल ।
श्रद्धा तत्व परोक्ष मे, नहिं रखना है भूल (51)

धर्म नियन्त्रित देशना, धार्मिक शासन सूत्र ।
अगर रहे ससार मे, कोऊ न हो उत्सूत्र (52)

धन्धे मे दिन जात है, सोवत रात विलात ।
कौन वैर है धरम को, जब ममता मर जात (53)

धर्म धर्म सबही कहै, पर नाहिं समझे धर्म ।
धर्म मर्म समझे बिना होत नहि शिव राम (54)

धन कन कचन त्याग कर, जानो आत्म धर्म ।
परम अहिसा धर्म का, अद्भुद है यह मर्म (55)

धर्मी जन इस धर्म को, कभी न जाना भूल ।
भोग रहे जो महल मे, सध्या मे हो धूल (56)

धन्धा करता फिरत है, करत न अपना काज ।
अपनी झूपडि जलत है, परघर करत इलाज (57)

धन धरा के बीच मे, सभी धरा रह जाय ।
मृत्यु का दिन आय जब, कोई नासग में जाए (58)

धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण ।
धर्म पंथ साधै बिना, नर तिर्यन्च समान (59)

धन जोड़त तो प्रिय लगे, लुटते दुख भरपूर ।
अत सम्पदा सर्प से सिद्ध रहो तुम दूर (60)

धैर्य धरो दु ख मे सदा, घबडाओ न विशेष ।
स्थिर दु ख रहता नही, समझो यही हमेश (61)

धर्म घटे से धन घटे, धन घट मन घट जाय ।
मन के घटे सुरुचि घटे, घटत घटत घट जाय (62)

धर्म बढे से धन बढे, धन बढ मन बढ जाय
मन के बढे सुरुचि बढे, बढत बढत बढ़ जाय (63)

धन सचय अरु भोगरत, दीसै सब ससार ।
इनका त्यागी बिबुध वर, शीघ्र लहै भवपार (64)

धर्मात्मा का रूप धर, जो करता है पाप ।
झाडी भीतर व्याध सा, बैठा ले वह चाप (65)

धन अरु यौवन पर गरव, कवहूँ करिये नाहि ।
देखत ही मिट जात है, ज्यों वादल की छांहि (66)

धनी देखकर जल मरे, निर्धन लख दुत्कार ।
गुण गावे निज धन तने, सो धन मद निर्धार (67)

धर धन मद धन पाल ने, विप्र रक ठहराय ।
असली हार छिपायके, दण्ड भूप से पाय (68)

ध्यान मग्न यह सोचते, मुक्ति कामिनी सग ।
निज गुण दे अरहंत प्रभु, वादा रहित निसंग (69)

घटी रहेगी सम्पदा, पडी रहेगी काय ।
खडे रहेगे कुटुम्ब जन, खाली हाथो जाय (70)

ध्यान धनुष को थाम ले, ज्ञान वाण दे तान ।
कर्म शत्रु को मार दे, तो पावे निर्वाण (71)
धन जोरे से ऊंच नहीं, ऊंच दान से होय ।
सागर नीचे ही रहे, ऊपर मेघ उद्योत (72)
धाम घटा धन नारी, सुत पापी के भी होय ।
सन्त समागम और प्रभु भजन, जग में दुर्लभ दोय (73)
धन चाहे तो धर्म कर, धर्म बिन धन ना होय ।
जो तू धन हो धन चाहे, तो दो में एक न होय (74)
धूम धाम मे दिन गयो, सोवत सुख भई साज ।
शास्त्र सुन्यो ना प्रभु भज्यो, जाते जननी जन भई बाँज (75)
धर्म से ही लिंग केवल, लिंग से न धर्म हो ।
समभाव को पहचानिये, द्रव्य लिंग से क्या कार्य हो (76)
धर्म ध्यान को फल भलो, पद अहमिन्द्र सुरेन्द्र ।
परम्परा शिवपुर बसै, जो नर धरं वितन्द्र (77)
धूप छाव ज्यो फिरत है, सम्पत् विपत सजोय ।
हर्ष शोक कर फसत कयो, मूढ अज्ञानी लोय (78)
धर्म किये सुख होत है, धर्म किये सुर होय ।
धर्म किये शिवपुर वसै, धर्म समान न कोय (79)
जिन धर्म का चौर है इन्द्रिय तस्कर जान ।
इसे छोड़े सुख अचल हो, उसे सुख बहु जान (80)
धर्म शांति मय जैन है, इसे चाहते जीव
जो रखता है शांति को, धनी है वह जीव (81)
ध्यान नहीं है छूटता, चाहते भी यह जान ।
यह योगी बतलाइये, तत्व ज्ञान से ज्ञान (82)

ध्याता ध्यान चिदेशमय, जब लायक हो एक ।
तव ही तेरे पास हैं, कहते यह जिन देव (83)
धन वैभव में फूलना, यह है भारी भूल ।
यम की झुझा वायु से, उड़े न क्यो वह फूल (84)
धरम धरम सब कोई कहे, मरम न जाने कोय ।
जीव जात जाने बिना, धर्म कहां से होय (85)
धर्म घटे सब कुछ घटै, धर्म घटे दूनीति ।
न्याय नीति सद् भावविन, कष्ट अशान्ति रु भीति (86)
धर्म धर्म सब ही कहे, धर्म वस्तु है गूढ़ ।
मर्म धर्म का कठिन है, क्या जाने जग मूढ़ (87)
धर्म अहिसा रूप है, सत्य रूप आधार ।
शील गुप्त बल है क्षमा, शाति वहां है सार (88)
धन लेकर जो धर्म को, बेच रहे है भूल ।
रत्न छोडकर मूढ वे, लेते बदले धूल (89)
धाम धाम क्यो भटकता, क्यों करता है पाप ।
क्या लाया क्या ले जायेगा, वृथा सहे संताप (90)
धूम नहि बतिया नहि, नहिं तेल का पूर ।
झझा से बुझता नहि, ज्ञान दीप भरपूर (91)
धर्म मूल सम्यक्त्व है, उसमें दया प्रधान ।
दया अहिसा रूप जो, करती सर्व प्रधान (92)
ध्यान अध्ययन मुख्य है, सुमनि धर्म अम्लान ।
पूजा-दान प्रमुख है, गृहस्थ का यह जान (93)
धिक्कार ऐसी वीरता को बार शत धिक्कार है ।
जो निर्बलों को कष्ट देता, वह अधम है मक्कार है (94)

धन मिला अधिकार पाया, इन्द्रिय सुख साधन मिले ।
ज्ञान बिन कुछ सुख न पाया, छोड़कर सब कुछ चलै (95)

धर्म भावना के बिना, बिगड़ रही सब सृष्टि ।
भारत का दुर्भाग्य जो, इधर न जाती दृष्टि (96)

धर्म बिना सुख शांति नहीं, मिले नहि संतोष ।
देख परस्पर जगत मे, बढता जाता रोष (97)

धर्म हीन चलता जहां, हो शासन अधिकार ।
कभी न होगा देश वह, सुख समृद्धि आधार (98)

धिक् है ऐसी दौलत पर, जो दुर्जन करदे सज्जन को ।
लानत है ऐसी पदवी को, जो मिट्टी कर दे जीवन को (99)

धर्म अर्थ कामादि में, इनमे एकहु नाहिं ।
जन्म लिये का फल लह्यो, केवल मरणहि ताहि (100)

धर्म घटाये धन घटे, धन घट मन घट जात ।
मन ही घटे सब ही घटे घटत घटत घट जात (101)

धन्य पुरुष स्वाध्याय से, जिनके सत्य विचार ।
शिव पथ के उस पन्थ को, मिले न फिर संसार (102)

धर्म कल्प तरु के निकट, मांगू शिवफल आज ।
दान पुण्य की कर क्रिया, पाऊं सुख साम्राज्य (103)

घट के सम्यक् ज्ञान को, निज को निज मे जान ।
नर तन का उपयोग कर वन जा तू भगवान (104)

"वैराग्य के नक्षत्र" पुस्तक से
रचियता-शर्मन कुमार "सरस" साभार

॥ श्री महावीराय नम. ॥

धर्मात्मा से परमात्मा



धर्म साधना से ही धर्मात्मा की सज्ञा मिलती है । जिस प्रकार गाडी पर बैठकर जो गाडी चलाता है, उसको गाडीवान की सज्ञा दी जाती है, उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति पानी में नाव चलाता है तो उसको नाविक की सज्ञा दी जाती है । ऐसे ही अपने जीवन मे ससार से पार होने के लिये जब साधना से ज्ञान की प्राप्ति होती है तब ही मोक्ष मिलता है । वैसे तो इस आत्मा मे ज्ञान का अखण्ड पुज पडा हुआ है । यह ज्ञान तीन प्रकार का होता है । जब इस ज्ञान का उपयोग धन के उपार्जन मे किया जाता है तो पेट भरने व आगम के लिये ज्ञान का उपयोग किया गया है । जब वही आत्मा इस ससार के कर्म बधन से छूट करके सम्यक रीति एव उससे मुक्त होने का प्रयत्न करती है तो उस ज्ञान को "मोक्ष तरणी विद्या" कहते है ।

आगम मे उस विद्या व ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो स्पष्ट उल्लेख किया गया है । आत्मा और अध्यात्म यह दो चीजे है । जैसे-हमारे शरीर मे दो की सख्या मे ऐसी चीजे हैं, जिनके बिना हमारा जीवन चल नही सकता है यानि अधूरा है । दो हाथ, दो पेर, दो कान व दो आँखे ऐसे तत्व हैं जिनमे एक के भी नही होने से हमारा जीवन व शरीर अधूरा है । जीवन का निर्वाह करना व जीवन का निर्माण करना अपने आप मे भिन्न विषय है । जीवन निर्माण में सम्यग्ज्ञान सम्यक दर्शन सम्यक चारित्र का पूर्ण सहयोग आवश्यक है । अपनी निजात्मा एक केमरे का रूप है, जिसमे अज्ञानता एव विकारी भाव हैं जिससे आत्मा रूपी कपडा मैला बना हुआ है उसे उज्वल बनाना है, उसमे निर्मलता लानी है तो हमे सच्चा ज्ञान प्राप्त करना होगा । आगम का अध्ययन करना होगा । जब आत्मा से आत्मा की ओर गमन करने की सक्षमता हममें नही हुई तब इस सबध मे पूज्यपाद स्वामी श्री अमृतचद्र आचार्य ने धर्म की बात बताते हुए कहा है कि शक्ति के अनुसार पहले तुम मुनि बनो और यदि मुनि न बन सको तो श्रावक बनो, उन्होंने बताया कि मौत एक निश्चित वस्तु है अत धर्मात्मा बनो, धर्मात्मा वही है जो स्वय को धर्म मे ले जाने की प्रतिक्रिया अपनाये । तुम्हे अपनी आत्मा का कल्याण करना है दूसरी सभी बाते स्वय इसके साथ हैं । इस बात का ध्यान

रखना है कि मनुष्य जन्म व्यर्थ नही निकल जाये, अपना जीवन व्यर्थ नहीं जाना चाहिये, अपना धन, अपना समय व अपने कर्त्तव्य एवं संस्कार का सदुपयोग करना है यह व्यर्थ नहीं चले जावें यह ख्याल हमेशा रखना है क्योंकि यह पर्याय बार-बार मिलने वाली नही है । अपना मन वचन एव काया को वश मे रखो, समय का सदुपयोग करो एव आत्म साधना कर 'सतपथ' मोक्ष मार्ग पर चलो जिससे आप धर्मात्मा से परमात्मा बन सको ।

–एलाचार्य १०८ भरतसागर,

ऋषभदेव

दिगम्बर मुनि के नाम

(१) अकच्छ (२) अकिचन्य (३) अचेलक (४) अचेलव्रती (५) अतिथि (६) अनगारी (७) अपरिग्रही (८) अन्हीक (९) आर्य (१०) ऋषी (११) गणि (१२) गुरु (१३) जिनलिगी (१४) तपस्वी (१५) दिगम्बर (१६) दिग्वास (१७) नग्न (१८) निश्चेल (१९) निर्ग्रन्थ (२०) निगथ (२१) निरागार (२२) पाणिपात्र (२३) भिक्षुक (२४) महाव्रती (२५) माहण (२६) मुनि (२७) यति (२८) योगी (२९) वातवसन (३०) विवसन (३१) संयमी (३२) सयत (३३) स्थविर (३४) साधु (३५) सन्यस्थ (३६) श्रमण (३७) क्षपणक ।

श्रीयुत बाबू कामताप्रसाद जैन

धर्म के रूप को नहीं स्वरूप को समझें



ले. मुनि सिद्धान्त सागरजी

साधु सन्तो का आगमन उस क्षेत्रवासियो की श्रद्धा पर अवलम्बित है । जहॉ गर्मी अधिक होती है, वहाँ वर्षा भी अधिक होती है । क्योकि गर्मी मे वर्षा को खीचने का आकर्षण है । श्रद्धा मे सन्तो को खींचने का आकर्षण है । अर्थ (वाट) जनमत मे वह शक्ति नही, जो श्रद्धा मे है । जहॉ धर्म के प्रति श्रद्धा नही है वहॉ जाकर सन्त करेगे क्या ? शास्त्रो मे उल्लेख आता है राजा उदाई के लिए भगवान महावीर को ७०० कोस जाना पडा । भगवान चाह क्या थी ? भक्तो की भक्ति ही उनके आकर्षण का प्रमुख कारण बनी । आज "गुरुत्वाकर्षण" का सिद्धान्त चल रहा है । पर इसकी स्थिति कितनी है ? कोई नही कह सकता । क्योकि नये वैज्ञानिक अन्वेषणो से प्राचीन अवधारणाएँ धराशायी हो रही हैं । लेकिन "श्रद्धाकर्षण" का सिद्धान्त सदा स्थिर रहा है ।

सन्त-समागम से धर्म का अर्जन और सरक्षण होता है । अर्थार्जन मे पशुबल और शस्त्रास्त्र की अपेक्षा रहती है । लेकिन धर्म के लिए केवल आत्मबल अपेक्षित है । धर्म एक व्यापक तत्व है, लेकिन धार्मिको ने उसको विभक्त कर दिया है, देश वर्ण, जाति, सम्प्रदाय और आचार्यों को लेकर धर्म के पीछे अनेक विशेषण जुड गए । इन सब विशेषणो के बावजूद भी धर्म का मौलिक स्वरूप एक है और वह निर्विशेषण हैं । वैष्णव, जैन, ईसाई, मुसलमान कोई भी हो, धर्म सबको शान्ति देता है, अत वह एक है ।

"धार्यले इति धर्म " जो अनिवार्य रूप मे धारण करने की वस्तु है, वह धर्म है । यह उसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है यद्यपि धारण करने की वस्तुएँ बहुत हो सकतीं है, पर उनके बिना भी काम चल सकता है । भोजन पानी और श्वासोछ्वास के बिना कुछ दिन काम चल सकता है, लेकिन धर्म के बिना एक क्षण भी नही चलता । उष्णता के बिना अग्नि का कोई अस्तित्व नहीं है । वैसे ही धर्म के बिना आत्मा का कोई अस्तित्व नही रहता । उपासना और क्रियाकाण्ड का रूप धर्म

किसी मे हो या नहीं, पर धर्म का मूल रूप सर्वत्र मिलेगा । एक वट वृक्ष का विकास छोटे से बीज मे अन्तर्निहित है ।

माला फेरना, तिलक लगाना, मन्दिर मे जाना, अनेक प्रकार के त्याग करना, धार्मिक स्थान मे जाना, सामायिक करना, मुहपत्ती रखना, जटा बढाना, ये सब धर्म के रूप हैं । आज सब लोग इन वाह्य रूपो को देखते हैं । स्वरूप की ओर किसी का ध्यान नहीं है । बौद्धिक विचारक भी यह भूल कर रहे है । बाह्य रूप को देखकर ही आकर्षण हो रहा है, लेकिन यह बुद्धि का दिवालिया-पन है । किसी के बाह्य रूप को देखकर आकर्षण-विकर्षण होना ही नहीं चाहिए ।

"धर्म का स्वरूप है भीतर और बाहर की एकरूपता । समूह मे बैठकर व्यक्ति धार्मिक होने का दभ भरता है, और एकान्त मे पाप करते भी नहीं सकुचाता किन्तु यह धर्म का स्वरूप नहीं है ।

धर्म का स्वरूप धर्म शास्त्रो मे नहीं रहता आकार-प्रत्याकार मे नही रहता, वह तो रहता है व्यक्ति के जीवन मे, हजार पुस्तके पढने से धर्म का जो स्वरूप नही जाना जाता, वह एक धार्मिक व्यक्ति के जीवन से जाना जा सकता है । श्री मद्रामचन्द्र के जीवन से महात्मा गाँधी ने जो पाया वह पुस्तकीय अध्ययन से नही पाया । आज के बौद्धिक लोग जो धर्म के प्रति अश्रद्धावान् बनते जा रहे है । इसमे उनका ही दोष नही है । इसका मूल कारण है धर्म का स्वरूप उनके सामने नही आया है ।

"हस्तिना ताड्यमोनोऽपि न गच्छेत जैन मन्दिरम्" एक समय था जब हाथी के पैरों से कुचलकर मरना मजूर था, लेकिन बचाव के लिए भी जेन मन्दिर मे जाना निषिद्ध था । आज ऐसी भावना को महत्त्व नही दिया जाता । इसका कारण है कि धर्म के रूप को महत्त्व न देकर स्वरूप को उजागर करने का प्रयत्न हो रहा है ।

केवल धर्म के रूप को प्रधानता देकर चलने वाली धार्मिक समाज शक्कर मिश्रित जहर के समान है । जो पदार्थ स्पष्ट रूप से जहर नाम से प्रसिद्ध है, उसे कोई खाना नहीं चाहता । पर उसी के ऊपर जब थोडी सी मिश्री लगाकर नामान्तर कर दिया जाता है तो साधारण व्यक्ति उसे नहीं पहचान सकता । शास्त्रो में किम्पाक फल का उल्लेख आता है जो खाने मे मधुर पर परिणाम मे जहर के समान है ।

मुनि के उपदेश से प्रभावित होकर एक व्यक्ति ने कहा-मैने अपनेजीवन मे अनेक बुराइया की हैं और कर रहा हूँ, पर उनको छोडने मे मै समर्थ नहीं हूँ । आपके उपदेश से मुझे प्रेरणा मिली है कि कुछ न कुछ प्रत्याख्यान होना चाहिए । इसलिए मैं एक प्रतिज्ञा करता हूँ कि किसी भी स्थिति मे उस फल का उपयोग नही करूगा, जिसे मैं नही जानता ।

वहाँ से वह अपने साथियो के साथ एक सघन जगल में पहुँचा । पास मे खाद्य सामग्री नहीं थी । भूख के कारण सबका मन अकुलाने लगा । आगे जाकर वे सब ठहर गये । निकट ही फलों से लदे वृक्ष थे । फल आकार मे सुन्दर थे और सुगन्धित भी । सबका मन ललचा गया । फल तोड़कर लाए और मुखिया के आगे रख दिए ।

मुखिया ने पूछा-इन फलों का नाम क्या है ? सबने उत्तर दिया-नाम तो हम नहीं जानते हैं । यह सुनकर वह बोला-जिस फल का नाम मालूम नहीं, उसे मैं नहीं खाऊँगा ।

बहुमत से कार्य सिद्ध करने के लिए उन्होने इस बात पर बल दिया कि "आपत्ति काले मर्यादा नास्ति" इस समय आप इन्हे नही खायेगे तो प्राण चले जाएगे । मुखिया बोला-प्राणो की अपेक्षा प्रण को मैं अधिक महत्त्व देता हूँ । मेरा यह अन्तिम निर्णय है कि मैं इन फलों को नही खाऊँगा और न तुम्हें खाने की आज्ञा दूगा । परन्तु तुम लोग यदि खाना चाहते हो तो मै बाध्य भी नहीं करता । मुखिया के इन्कार कर देने पर शेष सब व्यक्तियो ने फल खा लिए । मिश्री से अधिक मीठे फल खाकर एक बार फिर वे अपने स्वामी को विवश करते हुए कहने लगे-आप एक बार फल अवश्य खा ले, फिर इस पाप का प्रायश्चित ले लेना । मुखिया बोला मुझे मजबूर मत करो, मेरा हित चाहते हो तो मेरी प्रतिज्ञा मत तोडो ।

वे सब फल खाकर पानी पीकर लेट गये । उनको नींद इतनी गहरी आई कि फिर वे कभी उठे ही नहीं । स्वाद आकार-प्रत्याकार, गन्ध सब सुन्दर होने पर भी उन फलो का उपयोग करने से खत्म हो गये, यदि उनको फलो के स्वरूप का ज्ञान होता तो यह स्थिति नहीं बनती ।

मैं आप सबसे कहना चाहता हूँ कि धर्म के रूप मे मत उलझिये । इसके स्वरूप को समझिए । धर्म का स्वरूप समझे बिना मोक्ष और स्वर्ग तो दूर, जीवन भी नहीं चलेगा । मैं इस बात को फिर दोहरा देता हूँ रोटी-पानी के बिना जीवन चल सकता है । अनेक बहिन-भाई महीनों तक उपवास करते हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि भोजन के बिना आदमी जी सकता है, पर धर्म के बिना जीना मुश्किल है । धर्म एक ऐसा आधार है, जिसके टूटने पर व्यक्ति असहाय हो जाता है । इसलिए आप स्वरूपत धार्मिक बने । रूप मे जितनी उलझने हैं, स्वरूप में उतना ही आनन्द है ।

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग

मुनि श्री १०८ सुविधिसागरजी

ऋषियों ने अरुणाचलसे उदित होने वाले उषाकालीन सूर्य की ओर **अंजलिबद्ध होकर** परमपिता परमात्मा की स्तुति करते हुए याचना की **तमसो मा ज्योतिर्गमय** ''हे भगवान, हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चल ।''

जीवन एक अन्धेरी रात की भाँति है । अज्ञान की पर्तों के कारण परम ज्ञानरूपी सूर्यकिरणे तो क्या क्षायोपशमिक सम्यग्ज्ञानरूपी मृत्तिका के दिये की छोटी सी लौ भी हमारे जीवन मे नहीं है । जब से जीवनारभ हुआ है तबसे ही हम अज्ञान के अन्धेरे मे छटपटाते रहे हैं । जीवन मे सतत् अन्वेषण की यात्रा जारी है, ज्योति की खोज है । अन्तर्लोक की ज्योतिर्मय बनाने के लिए अज्ञान, मोह व कषायो के आवरणो से ढकी आत्मलक्ष्मी की तेज किरणों को पुनश्च जगमगाने का प्रयत्न ही जीवन का आदि व अन्त लक्ष्य है ।

प्रकाशपुज ज्ञानभानु आत्मस्वभाव है, जो हमारा प्राप्तव्य है । कहीं बाहर नही है यह आलोक । स्कूल-कालेजो से आज नाना तरह के सर्टिफिकेट मिल रहे है सारे जगत मे आज बी ए के, एम ए के, पी एच डी के सर्टिफिकेट धडल्ले से बाटे जा रहे हैं । यह सारे प्रमाणपत्र मानव को विद्वान, ज्ञानवान घोषित कर देते हैं, किन्तु आज मानव इस तथ्य से सर्वथा अपरिचित है कि वह कौन है । जब तक यह पता नहीं चलेगा कि मै कौन हूँ ? सारा ज्ञान अज्ञान की श्रेणी में ही बसा रहेगा । निजत्व से परिचित कराने मे यदि कोई सहयोगी हो सकता है तो वह है ज्ञान । इसीलिए ज्ञान को आचार्य अमृतचद्रजी ने परमज्योति नामसे आख्यायित किया है ।

ज्ञान का अर्थ है आत्मस्वभाव–

आचार्य जेष्ठ कुन्दकुन्द देव ने प्रवचन सार में लिखा है कि आदा णाण पमाणं (23) आत्मा ज्ञान के बराबर है अर्थात जितना ज्ञान है, उतना ही आत्मा है ।

यह जनरीति लोक विश्रुत है कि किसी एक प्रधान विशेषता को विलोक कर उसी नाम से व्यक्ति को सम्बोधित करे । जैसे कोई व्यक्ति शास्त्र पढता हो तो उसे पण्डित कहना । उस व्यक्ति में अन्य भी कई विशेषताएँ हैं किन्तु पण्डित्व उन सबका प्रतिनिधित्व करता है । ठीक उसी प्रकार

आत्मा में अनन्त गुण विराजमान है । उन सभी गुणों में ज्ञान गुण नायक है । ज्ञान का व्यवहार प्रगटरूप से अनुभूत है । अनन्त पदार्थों के समुदाय इस महा विश्व में ज्ञान से ही आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध है । जगत के निगूढतम रहस्यो का उद्घाटन मात्र ज्ञान द्वारा ही सम्भव है । ज्ञान ही आत्मा का सर्वस्व है । ज्ञान के बिना ससार में आत्मसंज्ञक चेतनतत्व की कल्पना ही व्यर्थ है । इसीलिए ही समयसार जैसे परमागम मे महर्षि कुन्दकुन्ददेव ने आत्मा को ज्ञानमात्र कहा है ।

ज्ञान समान न आन जगत में

ज्ञान मानवता का जीवन है । इसीलिए ही अनुभव-विद् महात्माओ ने कहा कि ''ज्ञानेन हीना पशुभि समाना'' ज्ञान से हीन मनुष्य पशुवत् है । तत्वचितको ने 'अज्ञान तिमिरान्धाना' इस सूत्र द्वारा अज्ञान को तिमिर कहा है । सघन अंधकार है अज्ञान, तो ज्ञान है आलोक । यदि अज्ञान को हलाहल कहा जाए तो ज्ञान को सुधा कहना होगा । यदि अज्ञान को मृत्यु कहा जाए तो शाश्वत अमरता का दूसरा नाम ज्ञान ही होगा ।

ज्ञान बडा ही विश्वसनीय सखा है । समस्त स्थानो पर अभयप्रदाता है वह । महाभयानक हिस्र श्वापदो से, विषधरो से, चित्ताकर्षक किपाक फलो से वा कूपवापीकाओ से सुरक्षितता प्रदान करता है यह ज्ञान । चरणो मे चक्रमणता, देश-विदेशो मे पूज्यता, सकटो में धैर्यता व सदैव स्वाभिमानता देता है यह ज्ञान ।

आदित्य की आभा जब चतुर्दिक मे अपना आवास कायम करने के लिए उत्सुक हो उठती है तब कलरव करने वाले पक्षी भी अपने नीड को छोडकर उन्मुक्तता से सुविस्तृत नभ के आगण मे वायुयान की तरह बादलो की छाती फाडते हुए गमन करने लगते हैं, उस समय उन्हे किसी बात की चिन्ता नही होती । उसी प्रकार ज्ञान का आलोक भास्वित होते ही नि शंक होकर यह जीव ध्रुव लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्व-सुरक्षा युत होकर अग्रेसर हो जाता है ।

ग्राहयाग्रहयका ज्ञान, हेयोपादेय विचक्षणता, आत्मानात्म परामर्श वा सुख दुख मे समता बिना ज्ञान के कैसे सभव है ? प्रशस्त जीवन जीने की कला सिखाने वाला शिक्षक, आनंद मार्ग को बताने वाला दिशादर्शक, सुमार्ग पर अवस्थापित करने वाला व्यवस्थापक, निराकुलता को उत्पन्न करने वाला जनक आदि नाना रूपो मे अभिनित यह ज्ञान जिस जीव मे न हो उसे पगु क्यो न कहे ?

मनमोहक कुसुम यदि सौरभ विरहित हो तो उससे क्या लाभ ? आकर्षक काया यदि दिल की धडकनो से हीन हो तो उसका क्या उपयोग ? सुन्दर नारी यदि सतीत्व विहीन हो तो वह किस काम की । पुष्ट स्तन वर्ती गाय यदि दोग्धी नही है तो उससे क्या प्रयोजन ? उसी प्रकार मानव में

सशय का समुलोच्छेदी, अज्ञान उच्छेदक, भ्रान्ति विनाशक ज्ञान न हो तो उसकी क्या शोभा ? कायिक चारुत्व प्रशंसनीय नही होता, मानव के गुण ही अभिनन्द्य व अभिवन्द्य होते हैं ।

ज्ञान का अर्थ है अनस्तमित सूर्य, ज्ञान का अर्थ है प्रच्छन्वन गुप्त धन, ज्ञान का अर्थ है निर्धुम प्रसमिद्ध अग्निज्वाला, ज्ञान का अर्थ है मानव का तृतीय नेत्र । ज्ञान के बिना आत्मकल्याण त्रिकार मे भी सभव नही है ।

ज्ञान की परिभाषा करते समय माणिक्यनन्दिजी परीक्षामुख मे लिखते है कि ''हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थ हि प्रमाण ततो ज्ञानमेव तत् (सूत्र 2)'' जो हितकी प्राप्ति व अहित का परिहार करावे, वही ज्ञान है ।

अनेक दिनो से नाटक की तयारी करने वाले अभिनेताओ को नाटक हुए बिना संतुष्टता की उपलब्धि नही होती । तत्वत् मुमुक्षु द्वारा अनेक दिनो से उपार्जित किया हुआ ज्ञान उसे सम्यक्-चारित्र की पुण्य विधियो से ले गये बिना चुप नही बैठता ।

अतएव चारित्ररूपी वृक्ष का पोषक ज्ञान ही हे । हिताहित का ज्ञान होने पर अहित मे प्रवृत्ति होगी ही केसे ? इसलिए ही माणिक्यनन्दिजी ने ज्ञान को अहित परिहारक या कुमार्ग विप्लावक कहा हे ।

श्रमण सम्स्कृति के मुकुटमणि आचार्य कुन्दकुन्ददेव प्रवचन सार मे लिखते है कि-

ज अण्णाणी कम्म, खवेदि भवसय सहस्स कोडीहिं ।

त णाणी तिहिं गुत्तो, खवेदि उस्सासमेत्तेण ॥ – 3/238

अर्थात् जितना कर्म अज्ञानी लक्षकोटि भवो मे खपाता है उतना कर्म ज्ञानी त्रिगुप्ति से युक्त होकर उच्छ्वास मात्र मे खपा देता हे ।

इसी आशय को पुष्ट करते हुए समणसुत्तकार कहते है कि-

छट्ठट्ठमदसम दुवलिसिहिं, अबहुसुयस्स जा सोही ।

तत्तो बहुतरगुणिया हविज्ज जिमियस्सण्णाणिस्स ॥ 447 ॥

अर्थात् अबहुश्रुतज्ञ (अज्ञानी) तपस्वीकी जितनी विशुद्धि 2/4 उपवासो के पश्चात् होती है, उसमे अधिक विशुद्धि नित्य भोजन करने वाला ज्ञानी करता है ।

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग का अर्थ बताते समय वीरसेन स्वामी ने धवला मे लिखा है कि-'अभिक्खणमभिक्खण णाम बहुवारमिदि भणिद हादि । णाणोवजोगोत्ति भावसुद वावेक्खदे । तेमु

मुहुम्मुहु जुत्तदाए तित्थयर णामकम्म बज्झइ''-अभीक्ष्ण का अर्थ बहुत बार है । ज्ञानोपयोगसे दिव्य व भावश्रुत अपेक्षित है । श्रुत मे बारबार उपयुक्त रहने से तीर्थकर नामकर्म बधता है ।

अमरकोशकार को भी अभीक्ष्ण शब्द का निरन्तर यही अर्थ मान्य है । देखो अभीक्ष्णतु मुहुर्महु-भी अभीक्ष्ण निरतर ज्ञानस्य उपयोग अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग (तत्पुरुष समास) गौ प्रभृति अनेक पशु शस्यादि के भक्षणोरान्त चवर्णकर उन पदार्थो का रसमय फल प्राप्त करते हैं या दही को अच्छी तरह बिलौने पर ही नवनीत की उपलब्धि होती है, उसी प्रकार गृहित ज्ञान का मथन ही ज्ञानोपयोग है ।

इस ज्ञानोपयोग के प्रसाद से ज्ञान का मुमुक्षु जीव विषयो से अवश्य, निरारभी, निष्परिग्रही व निर्द्वन्द हो जाता है । सर्कस का रिंगमास्टर शेर को जैसे अपने वश मे करता है उसी प्रकार यह ज्ञानोपयोग मन को अपने वश मे रखता है । ज्ञानपूर्वक परित्यक्त वस्तुएँ ही ग्रन्थ विमोचन के नाम से सुख्यात है । ज्ञानपूर्वक सहय परिषय ही निर्जरा के हेतु हे । उत्तम क्षमा भाव वा तितिक्षा भाव ज्ञानी के लिए ही सभव है ।

श्रीकृष्ण ने अपनी अमृतपाथेय वाणी के द्वारा अर्जुन को गीतामय उपदेश देते समय कहा है अक्ष्यसित त कौन्तेय 6/35 स्वाध्याय से मन का निरोध होता है । इसी बात को पातजलि योगदर्शनकार लिखते हैं, अभ्यास वैरागभ्या तन्निरोध (9/92) । श्रुतस्कभ के अवरोहणोपरान्त आत्मशान्ति व निराकुलता का जन्म होता हे । आत्मरति व परविरति ज्ञानोद्भव है । समस्त परभावो से विरक्त कराकर मोक्ष का अक्ष्य सुख ज्ञान ही देता है, यह देखते हुए पण्डित दौलतरामजी ने लिखा कि ''इहि परमामृत जन्म जरा मृतु रोग निवारण (4/4) अतएव प्रत्येक कल्याणेच्छु भव्य को अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग मे दत्तचित्त रहना चाहिए ।

मानव धर्म

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर अकलीकर ।

के चरण कमलो मे कोटि कोटि नमनवर ॥

मोक्षमार्गस्य नेत्तार, भेत्तार कर्मभूभृताम् ।

ज्ञातार सर्वतत्वाना, वदे तद्गुण लब्धये ॥

आचार्यो ने कहा है कि धन गया तो कुछ नही गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया और चारित्र गया ता सर्वस्व गया । मानव जीवन मे चारित्र का बहुत महत्व है । चारित्र सम्यक्त्व सहित हो ता मोक्ष का कारण बनता है । धर्मरूप चारित्र स्वर्ग व मोक्ष सबधी सुख उत्पत्ति का स्थान सब जीवो का हित करने वाला है । चारित्र रूप धर्म को सभी विवेकशील तीर्थकर आदि महापुरुष सचित करते है । चारित्रधारी आत्मा ही साधु उपाध्याय आचार्य होता है । अरहत अवस्था भी स्वरूपाचरण वीतराग चारित्र से ही प्राप्त होती है । सभी गुरु आत्म कल्याण पथ के प्रकाशक हैं । हिसा मे त्रिकाल मैत्री धर्म नहीं हो सकता । ज्ञान दर्शन के नायक चारित्र रूप सागर के समान गभीर व माक्षमार्ग के उपदेशक गुरु हमारी नित्य रक्षा करो । चारित्र का अभाव ससार मार्ग है । आत्म कल्याण का कारण अर्हद्भक्ति आचार्य महाव्रती होते है । इनमे ग्यारह अग चौदह पूर्व रूपी महातीर्थ है । इनमे स्नान करने से पापरूपी मल नष्ट होते हैं । सम्यग्ज्ञान ही क्रमश· केवलज्ञान रूप परिणत होता है । ज्ञान विशाल सरोवर है । महाव्रत और शील इसके विस्तीर्ण किनारे हैं । इसमे शुक्ल ध्यान रूपी राजहस स्नान करते है । यहाँ स्वाध्याय की गंभीर ध्वनि गूजती है । रागद्वेषादि शैवाल व काई से रहित है । मरणरूपी मगरमच्छ से बचाता है । इसमे स्नान अवगाहन से पवित्रता होती है । अर्हन्त की दिव्यध्वनि ही सरस्वति है । उन्ही का अवधारण कर गणधरो ने गूँथी, आचार्यो ने शास्त्रो की रचना की । वीतरागता की पोषक ही जिनवाणी कहलाती है । इसमे आत्मशोधन हेतु हेय उपादेय का निरूपण कर आत्मोद्धार का मार्ग प्रशस्त किया है ।

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग की सम्यक् विनयपूर्वक स्वाध्याय ही शास्त्र पूजा है । आत्मकल्याण के लिए पन्थ का मोह छोड सत्य धर्म को अगीकार करे तो हितकारी होगा । कहा भी है-

"जो संसार विषै सुख होता, तो तीर्थंकर क्यो त्यागे ।

काहे को शिव साधन करते, आतम सौं अनुरागे ॥"

आत्महित के लिए सप्त तत्वो का ज्ञान होना अनिवार्य है । उनमे भी जीव और अजीव मुख्य जीवाजीव ज्ञेय का ज्ञान भेद विज्ञान पूर्वक इसकी पहचान कर इनके सयोग से होने वाले आश्रवबंध की हेयता का विचार करना चाहिए । तथा आत्मोत्थान मे सहयोगी सवर निर्जरा उपादेय तत्व को अगीकार कर मोक्ष ध्येय को स्वात्मचिंतन आत्मरमण पूर्वक प्राप्त करना चाहिए । अत स्व पर का भेद विज्ञान तत्व का यथार्थ ज्ञान व स्वस्वरूप की पहचान द्वारा आत्महित मे लगो । केवल कथन मे मत पडो । "आतम के अहित विषय कषाय इनमे मेरी परिणति न जाय ।" तुम मे भगवान बनने की शक्ति है । ससार मे क्यो भटकते हे । चारो कषायो को तूने पाला जो आत्म प्रभु करता है काल इसकी संगति को छोडे तो तेरा प्रभु तुझ मे ही डोले अत तू आत्मिक रूप से धर्म के लक्षणो को हृदय से धारण कर । उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव भाव हैं जो कि क्रोध, मान, माया के अभाव से आत्मा मे प्रगट होगे । सत्य, शौच, सयम, तप त्याग उपाय हैं जो कि लोभ व राग द्वेष के नाश होने पर प्रकट होते हैं । तब ही आत्मस्वरूप 'अकिचन्य ब्रह्मचर्यसार है" इस सार धर्म की उपलब्धि होती है, प्राणीमात्र के प्रतिकरुणा स्रोत फूट निकलता है । उस दया मयी निर्झरणी से दर्शन विशुद्धि भावना का अनुचितन कर हृदय मे स्थापना करके "पुण्णफला अरहता" तीर्थकर प्रकृति को बाधकर अष्ट कर्मों को नष्ट कर मानव निर्वाण प्राप्त कर ले तो यही मानव जीवन तथा मानव धर्म का सार है ।

चैत्र मास मानव धर्म का प्रतीक है । भोगभूमि के कुलकर नाभिराय के यहा चैत्र कृष्णा नवमी को ऋषभदेव का जन्म हुआ । ऋषभदेव युग पुरुष थे । इन्होने प्रजा को असि, मसि, कृषि शिल्पी विद्या एव वाणिज्य का ज्ञान कराया । रक्षण, जीविका उत्पादन की विद्या सिखायी । लिपि का ज्ञान कराया । मनुष्य को गृहस्थ धर्म का पाठ पढाया । इसीलिए वे सृष्टि के आदि विधाता, ब्रह्मा, प्रजापति माने गये । ८३ लाख वर्ष पूर्व के लम्बे कालतक गृहस्थावस्था मे रहे । तत्पश्चात् गृह त्यागकर मुनि धर्म अगीकार कर अनगार बन गये, परम दिगम्बर अवस्था स्वीकार कर ली । आत्म ज्ञान प्राप्त करके जनजीवो को मानव धर्म का अहिसा का उपदेश दिया । प्रथम उपदेष्टा होने के कारण वे धर्मतीर्थ के प्रवर्तक प्रथम तीर्थकर कहलाए । आदिनाथ को तपस्याकाल मे प्रथम आहारदान कुरुक्षेत्र के नरेश श्रेयाशने इक्षु रस से कराया । इस कारण राजा श्रेयाश दानधर्म के प्रथम प्रवर्तक हुए । अक्षय तृतीया का पर्व इसी प्रथम दान की पावन स्मृति मे मनाया जाता हे । आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए । उन्होंने राष्ट्र को सुहृद राज्य व्यवस्था दी । इन्ही के नाम से इस देशका नाम भारत पडा । ऋषभदेव को परम हसयोगी कहा गया है । भारत एव बाहुबलि के द्वद युद्ध की कहानी अहिसक युद्ध के रूप मे मानवीय इतिहास की प्रथम कथा है । भरत के छोटे भाई बाहुबलि हैं । चैत्रमास अति महत्वपूर्ण है । इसे मधुमास भी कहा जाता है । इसी मास मे २०वे तीर्थकर मुनिसुव्रतनाथ हुए । श्रीराम जैसे सनातनियो के अवतार पुरुष हुए । चौबीसवे तीर्थकर वर्धमान महावीर का जन्म भी चैत्रशुक्ला तेरस को हुआ । अनेक शलाका पुरुष चेत्रमास मे

अवतीर्ण हुए । हमारा कर्त्तव्य है कि हम इन सब मानव धर्म प्रवर्तक महापुरुषो के जीवन आदर्श को समझकर अपने आचरण मे उतारने का प्रयत्न करें । पुरुषार्थ करें अपने स्वरूप को पहचाने ।

भाद्रपदमाह आत्मशुद्धि का मास है । रत्नत्रयधर्म की समीचीन साधना का मास है । मानव धर्म के दसलक्षण के दस धर्ममाने गये है । मानव के अंतर्गत दस बाते होना आवश्यक है । (१) व्यसन मुक्त हो (२) कषायो पर नियत्रण करने वाला हो (३) दया भावना रखने वाला हो (४) उपकारी हो (५) आत्म विश्वासी हो (६) आस्तिकता रखता हो (७) पुरुषार्थी हो (८) विवेकवान हो (९) ज्ञानाभ्यासी हो (१०) निर्णायक बुद्धि का धारक हो । वही मानव है । अहिसा के साथ गाधीजी ने मानव धर्म बताया । मदर टेरेसा भी मानव धर्मकार्य कर रही है । मानव मे मानवधर्म हमेशा जाग्रत रहना चाहिए । मानव धर्म जैन धर्म से अलग नहीं है । जैन का वह पालन करना पहला कर्तव्य है । उत्तरोत्तर मानव धर्म बढता और फैलता रहे । जैन धर्म की जय । मानव धर्म की जय ।

(चातुर्मास वीड)

लेखक

बालयोगी सस्कार रत्न मुनि श्री कुशाग्रनदी जी महाराज

Adisagaracharya (Anklikar's) Say

Three is a full shape of a tree in a seed If it is a sheed of mango, the ~~use is~~ full shape or Sanskar of your parents in your blood-Rather in every atom of blood in your body with all its virtues

Whose parampara or Sanskar is pious or holy and correct they, and only they Conworship God and gradually they can attain right path if their thought activity is pure

You see a mirror Are you really seeing a mirror ? No, you are seeing your own face in the mirror Similarly, we see and worship idol In idol we see own pure soul i e

H H. Ganni Ariyka 105 Shree Vijaimati Mataji



सर्वज्ञ

ले श्री १०५ आर्यिका सरलमती माताजी

य सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषा गुणान्
पर्यायानपि भूतभाविभवत. सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमत सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मैनम ॥

जो सपूर्ण चर और अचर द्रव्यो को, उनके सहभावी गुणों की ओर क्रम भावीभृत, भावी तथा वर्तमान सर्वपर्यायो को भी सदा सर्वकाल अशेष विशेषो को लिए हुए युगपत् (काल क्रम से रहित एक साथ) प्रतिक्षण जानते है इसलिए उन्हे सर्वज्ञ कहते है, उन सर्वज्ञ महान् गुणोंत्कृष्ट अतिम तीर्थकर वीर जिनेश्वर को नमस्कार हो ।

सर्वज्ञ के वचनों मे सशय का स्थान नही रहता । फिर भी प्राणी यथार्थता मे सशय करने लगते हैं उनके लिए मोक्ष बहुत दूर है । श्रेयभूत धर्म, गुरु, मोक्षमार्ग और तत्वों मे सशय बना लेते है । यह मिथ्यात्व का रूप है । निर्ग्रन्थ गुरु वस्त्रादि परिग्रह से रहित होता है । क्योकि इससे मोह उत्पन्न होता है मोह से राग द्वेष आदि समस्त दुर्गुण पैदा हो जाते हैं । उसके नष्ट होने पर सतत् सताप, शोक, सक्लेश पैदा होता है । नये वस्त्र की इच्छा और उसके लिए याचना करनी पडती है । उसको धोने से जीवघात महाहिसारूप पाप होता है चित्त अस्थिर रहता है, इससे काम उत्पन्न होता है । परिग्रही के नेत्रो मे विकृति पैदा होती है । वस्त्र त्याग से निसगता और निशल्यता आती है । उत्तम तप और चारित्र की सिद्धि होती है । इच्छा निरोध होता है । नग्न परीषह और आकिचन धर्म की सिद्धि मे कारण है । अन्यथा गृहस्थ को भी मोक्ष की प्राप्ति का प्रसग आ जायेगा । तब तपश्चरणादि सब व्यर्थ हो जायेगे । वस्त्रधारी साधु गृहस्थ माना जाता है । विदेह क्षेत्र मे आज भी तीर्थकर दिगम्बर अवस्था मे विराजमान है । इसलिए साधु भी दिगम्बर ही होते हैं । भारत और ऐरावत क्षेत्र मे भी यही व्यवस्था है । जो भी मोक्ष को गये वे दिगम्बर अवस्था से ही मोक्ष गये हैं । जा रहे हैं और जायेगे । अकृत्रिम प्रतिमाएँ भी नग्न अवस्था मे हैं । अतएव संग्रथता संसार का ही कारण है । साधुओ को वस्त्रधारण नहीं करना चाहिए ।

दण्ड धारण करना अयोग्य है इसके धारण से मोक्ष होना माना जाय तो शस्त्रधारी को भी मोक्ष होना चाहिए परन्तु ऐसा हो नही सकता । क्योंकि दण्ड भय से बचने के लिए धारण किया जाता है । दण्ड देखने से दूसरे भी भय से भाग जाते हैं । भ्रम का एक चिन्ह है । हिसा का साधक

है धर्म का घातक है वीतरागता नष्ट हो जाती है । इसलिए वीतरागी साधुओं को दण्ड धारण नहीं करना चाहिए ।

वीतराग परमदेव की मूर्ती को अंगी पहनाना ठीक नहीं है वे सपूर्ण परिग्रह से रहित हैं । अवश्य मोक्षगामी है । अकृत्रिम प्रतिमाओ मे भी अगी नहीं पाई जाती और न कहीं इसका उल्लेख ही पाया जाता है । समवशरण मे विराजमान केवली को भी अंगी नहीं होती है । आगी परिगृह होती है । यह अज्ञानी लोगो ने पक्षपात करने के कारण चला दी है जो सर्वथा अयोग्य है । इसी प्रकार सोने आदि के नेत्र आगमानुकूल नही हैं ।

केवली को कवलाहार की कल्पना उचित नहीं है । वे सपूर्ण भूख प्यास आदि दोषो से रहित हैं । घातिया कर्मो मे सर्वथा रहित है समवशरण मे अधर विराजमान हैं । अनन्त चतुष्ट्य रूप अतरग लक्ष्मी और समवशरण आदि बहिरग लक्ष्मी से सुशोभित अरहंत देव को मोहनीय कर्म का अभाव है अतएव आहार सज्ञा का प्रसग ही नहीं बनता । आहारसज्ञा स्वीकार कर लेने पर परिगृह सज्ञा भी माननी पडेगी परन्तु इन सब दोषो को उत्पन्न होने मे कारणभूत मोहनीय कर्म का अभाव हो गया है इसलिए इन दोषो का भी अभाव बन जाता है । भगवान जिनेन्द्र देव को क्षुधादोष मानने पर रागद्वेष आदि समस्त दोष मानने पडेगे । परन्तु सर्वज्ञ इन दोषो से रहित होते है । आहार गृहण से राग और राग से मोह पैदा होता है । निद्रा, तन्द्रा, मद क्लेश, रोग, चिता, वेदना समस्त दोष उत्पन्न हो जाते है । कामोत्पत्ति भी माननी पडेगी । इससे चित्त मे व्याकुलता और मथन की इच्छा माननी पडेगी । मनाज्ञ आहार मे सतोष और अमनोज्ञ में ग्लानी अरुचि सिद्ध हो जायेगी । आहार से क्लेश और रोग पेदा होते है । पसीना थकावट कफ अनेक दोष पैदा होने है । वे शरीर और इन्द्रियो को पुष्ट करने के लिए आहार करते है तो अप्राप्ति मे विषाद का प्रसग आ जायेगा । तब अनत वीर्य गुण का कार्य क्या हे ? मन और इन्द्रियो की प्रवृत्ति अपने आप आहार की ओर होती हे तो ज्ञान भी इन्द्रिय जन्य मानना पडेगा, फिर उन अरहंत परमेष्ठी के सर्वज्ञता का अभाव मानना पडेगा । ऐसी स्थिति मे सैकडो कल्पकाल बीतने पर यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति नहीं हो सकती । जितेन्द्रियता कवलाहार का निषेध कर देता है । जबकि क्षुधादि अठारह दोषों से रहित होने पर केवलज्ञान की प्राप्ति होती हे । केवलज्ञान से पूर्व मे कवलाहार होता है । वहाँ दोष भी पाए जाते है । जिनमे क्षुधा सब दोपो का मुखिया है । वेदनीय कर्म को सद्भाव से क्षुधा और आहार की प्रवृत्ति होती है । परन्तु वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म से सद्भाव मे ही कार्य करेगा । इसीलिए मोहनीय कर्म के अभाव होने से वेदनीय कर्म जली रस्सी के समान अकिंचित्कर हो गया । जिस प्रकार मुनिराज वीतराग होने पर भी कवलाहार ग्रहण करते हैं इसलिए समवशरण मे केवली भी ग्रहण करते है । यह बात भी ठीक नहीं है मुनिराज छद्मस्थ अल्पज्ञानी हैं और वे पूर्ण वीतराग केवली भगवान ही है । वे ही दोषों से सर्वथारहित हैं । आहार के बिना शरीर की स्थिति नहीं रह सकती इसलिए कवलाहार ग्रहण करते है । यह कथन उचित नहीं है क्योंकि केवली भगवान अनतवीर्य को धारण करते हैं इसलिए शरीर की स्थिति के लिए नो कर्मवर्गणा के आहार से अवश्य होती रही

है । केवली भगवान के प्रतिसमय अनतानत नो कर्म वर्गणाए आती रहती हैं, वे परम शुभ और परम सूक्ष्म होती हे । उन्ही से उनके शरीर की स्थिति बनी रहती है । मनुष्यो के ओदारिक शरीर होता है । माहनीय कर्म का उदय रहता है वे इद्रियजन्य सुख का अनुभव करने वाले होते है इसलिए उनके शरीर की स्थिति कवलाहार से होती है । परन्तु उन केवली का शरीर परमौदारिक कहलाता है तथा वे भगवान महाप्रभु सिहासन के ऊपर भी निराधार ही विराजमान रहते है । इसलिए उनके शरीर की स्थिति नो कर्मवर्गणा के आहार से अवश्य हो जाती है । इन्द्र भी अव्रती होने के कारण कवलाहार नहीं दे सकता । अव्रती से आहार ग्रहण नही किया जाता । गाँव गाँव मे आहार के लिए भ्रमण करने से छद्मस्थ अल्पज्ञानी ही मानना पडेगा उनको केवली या सर्वज्ञ नही माना जा सकता । इसके अलावा वे सर्वज्ञ है इसलिए ससार मे फैले हुए मद्यमास मलमूत्र और रुधिर आदि को देखते हुए भी बिना किसी प्रकार की ग्लानि के अनेक दोष और अतरायो से वेष्टित उस आहार को कैसे ग्रहण कर लेते है । ये सभी दोष प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं । अतएव वे केवली भगवान कवलाहार ग्रहण नही करते हैं ।

केवली भगवान को रोग उपसर्ग और पीडा आदि भी मानना ठीक नही है । क्योकि केवली भगवान परमतीर्थकर के घातिया कर्मों का क्षय हो गया है । इसलिए तज्जन्य ये पीडादि कभी किसी काल मे भी नहीं हो सकते । असाता के उदय होने पर रोगादिक हो जाते है, तो उनको असाता का उदय ही नही होता । उनको साता का उदय पाया जाता है परन्तु यह रोगादि की उत्पत्ति मे कारण नही बन सकता है । दूसरी बात यह है कि साता का उदय भी मोहनीय कर्म का उदय होने पर ही क्रियान्वित होना है । इससे स्पष्ट हो जाता हे कि उनको रोगादि नही होने हैं । यह असत् कथा कि ''गोसाल ने समवशरण मे बैठे बैठे श्री महावीर स्वामी के ऊपर तेजोलेश्या चलाई जिससे उनको अतिसार रोग हो गया । इसलिए उन्होने अभक्ष्य भक्षण कोए का मास खाया था तब रोग शात हुआ ।'' लेकिन उनके ये वचन युक्ति आगम से सर्वथा विरुद्ध हैं ओर अप्रमाण है । भगवान महावीर स्वामी अचित्य और अनत वीर्य को धारण करने वाले है । सम्पूर्ण दोषो से रहित है । रोगो की उत्पत्ति मानने पर दोष रहित की बात भी नहीं बन सकेगे । रोगी आदि होने पर ईश या देव का प्रसग नही बन सकता वे परमात्मा हे अत्यन्त शुद्ध है यथाख्यात चारित्र को धारण करने वाले हैं इसलिए उनको रोग का होना, अभक्ष्य भक्षण की बात नही बनती । यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि भगवान महावीरस्वामी सर्वज्ञ हैं वीतराग हैं परमात्मा हैं और जिन हैं इसलिए उनके न तो कभी रोग हो सकते हैं और न कभी उपसर्गादिक हो सकते हैं ।

मिथ्या दृष्टि अज्ञानी स्त्री को मोक्ष होना बताते हैं । स्त्री दो प्रकार की होती हैं । एक उच्च कुल मे उत्पन्न होने वाली ओर दूसरी नीच कुल मे उत्पन्न होने वाली । इनमे से नीच गोत्र मे उत्पन्न होने वाली स्त्रियाँ है उनको अर्जिकाओ के व्रत धारण करने का भी अधिकार नहीं हैं । अतएव उनको इस भव मे मोक्ष की प्राप्ति होना दुर्लभ है । दूसरी उच्च कुल मे उत्पन्न होने वाली स्त्रियाँ है वे अधिक से अधिक पाचवा गुण स्थान प्राप्त कर पाती है और अर्जिका के व्रतो को धारण कर

लेती हैं । परन्तु छठा गुण स्थान नही हो सकता न वे महाव्रत की दीक्षा धारण कर सकती है और न वे दिगम्बर हो सकती हैं । फिर भला उनके मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है । स्त्रियो के पाप कर्मों का उदय रहता है इसलिए वे जिनलिंग को कभी धारण नही कर सकती तथा मोक्ष प्रदाता एकमात्र नग्नता या दिगम्बर अवस्था भी वे स्त्रियाँ कभी नहीं धारण कर सकती । तात्पर्य यह है कि पुरुष के समान स्त्रियाँ महाव्रत की दीक्षा धारण नहीं कर सकतीं क्योकि मनुष्य की समानता स्त्रियाँ नही कर सकती जैसे स्त्रियाँ गर्भधारण करती है परन्तु क्या कभी पुरुष गर्भ धारण करता है ? अर्थात् कभी नही । स्त्रियो की अपवित्रता के कारण और पापोदय से महीने महीने बाद रज स्राव होता ही रहता है उस समय अनेक जीवो का घात होने के कारण उन्हे अपवित्रता बनी रहती है । इसके सिवाय सतान उत्पन्न होने के कारण और मनुष्यो का वीर्य ग्रहण करने के कारण भी उन स्त्रियो के अपवित्रता बनी रहती है । अतएव दिगम्बर सप्रदाय मे स्त्रियाँ जिनलिग धारण कभी नही कर सकती । और उन स्त्रियो के स्तन भागो मे, योनि मे, और कांख मे निरन्तर असख्यात सूक्ष्म निगोदिया जीव उत्पन्न होते रहते है उनके असख्यात जीवो का घात सदा होता रहता है । इसलिए उनके जिनदीक्षा की पात्रता, महाव्रत, ऋद्धियाँ, श्रेणी चढने के योग्य परिणाम नहीं हो सकते है शुल्कध्यान नहीं होता है । घातिया कर्मो का क्षय नही होता है । केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है । योग निरोध नही होता है । वे तद्भव मोक्षगामी नही हाती ह । जाति की अपेक्षा स्त्री पुरुष समान हैं तो भी स्त्री का सहनन हीन होता है । क्योकि कर्म भूमिजस्त्रियो के अतिम तीन सहनन ही होते है हीन सहनन होने से शुक्ल ध्यान नहीं होता और शुक्लध्यान के बिना समस्त कर्मों का क्षय कभी नही होता हे । हीन सहनन से अल्पशक्ति मानी जाती है । इसके कारण दीक्षा की पात्रता प्रमत्तादि गुणस्थानो मे चढने की योग्यता नही होती और सातवे नरक मे जाने की योग्यता भी नहीं होती । अतएव यह निश्चय रूप से सिद्ध हुआ कि स्त्रियो मे स्वाभाविक दोष होने के कारण श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न होने पर भी उसी भव से सर्वज्ञता की प्राप्ति नही कर सकती हे तथा मुक्ति की प्राप्ति भी नहीं कर सकती हैं ।

भगवान महावीर स्वामी का गर्भापहरण की बात असभव है । मोहनीय कर्म के उदय से जीव को तीव्र भ्राति हो रही है इसलिए वे समस्त ससार को भ्रमरूप ही देखते हैं । जो पदार्थ प्रमाण नय से सिद्ध हैं और श्रेष्ठ या यथार्थ हैं उनको वे लोग कभी नही जान सकते । मनुष्य के गर्भ का अपहरण होना प्रत्यक्ष मे भी कभी सभव नही हो सकता । सर्वज्ञ देव की बात को प्रमाण मानकर चलने वाले भी सर्वज्ञ पद को प्राप्त कर लेते हैं ।

मोक्ष मार्गीय



—आर्यिका १०५ सुपार्श्वमति माताजी

मुमुक्षुओ को मोक्ष मार्गी का लक्षण समंतभद्रस्वामी ने इस प्रकार बताया है-

विषयाशा वशाती तो निरारम्भोऽपरिग्रह ।
ज्ञान ध्यान तपो रक्त स्तपस्वी स प्रशस्यते ॥

विषयो की आशा जिसने छोड दी है । आरम्भ रहित है और परिग्रह त्यागी है वह तपस्या करने वाला साधु कहा जाता है ।

मोक्ष मे यदि जाना है तो इस रास्ते को अपनाना होगा विश्वास करना पडेगा क्रियात्मक रूप देना पडेगा । इसका प्रारम्भ कहा से हुआ और अन्त कहाँ पर होगा यह विषय केवलज्ञान का है जिनको प्रत्यक्ष हो गया है वे इस बात को यथार्थ मे बता सकते है । परन्तु पुराणो से जाना जाता है कि यह आत्मा कुछ पर्यायो के पहले से इस मार्ग का प्रारम्भ करता हे । जिसको हम सम्यग्दर्शन, श्रद्धा, विश्वास आदि के नामो से पुकारते हैं, इसको होने पर अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल शेष रहा यह सुविख्यात है । यह अधिक से अधिक समय हे । इस काल मे से कितना कम किया जा सकता है तब इसका उत्तर यही हे कि जितना हम अनुकूल पुरुषार्थ करेगे उतना ही कम हो जायेगा । इतना ही नही पूर्णतया ससार काल समाप्त हो जायेगा । यह आत्मा राग से बधता है और विराग से मुक्त होता है । ससार मे यह भी देखा जाता है कि राग से वस्तु की प्राप्ति और द्वेष से वस्तु का वियोग हो जाता है परन्तु आत्मा तो इन राग द्वेष से रहित है यह आत्मा अनादि काल से ऐसी ही चली आ रही है और अनत काल तक ऐसी ही चलती रहेगी, फिर व्यर्थ ही ससार मे ग्रहण और त्याग का झझट लगा हुआ है । प्रति समय यह कुछ न कुछ ग्रहण करता रहता है और कुछ न कुछ त्यागता रहता है । इस चक्कर मे लगा रहता है । भूल जाता है अपने को ।

श्री जिनेन्द्र देव मार्ग बताते आ रहे हैं इतना ही नही, मोक्ष मार्ग दिखाते भी आ रहे है । जितने भी तीर्थकर हुए हैं उन सबका एकसा उपदेश रहा है । हम हमारी पिछली बातो को छोडते नही हैं जिन्होने ससार छोडा हे वे ही सत्य मार्ग पर गये और मोक्ष को प्राप्त कर लिया । उन्होने सर्वप्रथम गृहस्थ धर्म का मार्ग बताया इस गृहस्थ मार्ग को भी उन्होने प्राप्त किया जिन्होने पिछली बातो को छोड दिया और सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लिया कर्म के भार के कारण प्रयत्न पूर्वक उठना बैठना चलना इत्यादि नही कर पाता । कर्मभार से ससार वन मे घूमता रहता है । जिन्होने ससार शरीर और भोगो की यथार्थता को जान लिया मान लिया एव क्रियात्मक रूप दे दिया ऐसे मोक्ष मार्गी यत्र तत्र यदा कदा मिल गये तो मिल गये नही तो रागी द्वेषी मोही गुरु का मिलना सरल है उनसे क्या मिलेगा उनके पास क्या है ? जो हे वह मिलेगा राग द्वेष व मोह । यह तो मिलता ही आया है, वीतरागता नही मिली, वही चाहिए । एक समय आया कि वीतरागता निर्दोष गुरु के दर्शन

दुर्लभ हो गया । तब सन् १९१३ मे निर्ग्रंथ दीक्षा जिन्होने ली वो परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी (अंकलीकर) के नाम से विख्यात हो गये । आप की चर्या निर्दोष रही वीतरागता का सच्चा दिग्दर्शन करने वाले थे । मार्ग दर्शन मिला जिनके दो प्रमुख शिष्य हुए (दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि पृ २६८) प्रथम-आचार्य शान्तिसागरजी (दक्षिण) को ऐलक दीक्षा दी और दूसरे-आचार्य महावीर कीर्तिजी को मुनि दीक्षा व पट्ट पद दिया । परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी महाराज (अकलीकर) बडे तपस्वी थे ७ दिन के बाद आहार लेते थे यह क्रम जीवन भर रहा । आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज (दक्षिण) (ग्रह अवस्था मे) उनको आहार देते थे, उनके पास सोते थे, निरन्तर वैयावृत्ति करते थे । उनको दूध गगा वेदगगा नदी के सगम के पास तक पहुचाते थे । बाद मे अपने कधे पर बैठाकर नदी के पार ले जाते थे उनकी तपस्या से बहुत प्रभावित थे । उनके साथ रहा करते थे । उनके ध्यान करते समय शेर आता था और दर्शन करके चला जाता था । उनको श्रुतपचमी सन् १९१५ मे आचार्य बनाया था, सन् १९१६ मे चारित्र चक्रवर्ती पद से अलकृत किया था । मुनि कुजर थे । उनकी समाधि ४ मार्च फागुन कृष्णा १३ सन् १९४३ मे हुई थी । तब से निर्दोष सयम मार्ग पर चलने वाले कतिपय साधु पाये जाते है । आज वर्तमान मे साधुओ मे राजनीति का प्रवेश हो गया है । कतिपय गृहस्थ एव विद्वान् उनको अपने स्वार्थ के कारण कूटनीति का करावलम्बन देकर स्वय का तो अहित कर ही रहे है उनके अयोग्य और अनुचित वस्तुओ को देकर पाप लिप्त कर रहे हैं । पतन की ओर ले जा रहे है । यह जीव दीक्षा ग्रहण करते समय सत्यरूप से मोक्ष मार्गी होता है, बाद मे प्रवृत्ति मार्ग मे आता है । उत्थान पतन का विचार करने का अवसर, सामायिक आदि से अथवा रात्रि को एकान्त मे मिलता है ।

दीक्षा ग्रहण काल के परिणामो मे कितनी विशुद्धि आई और कितनी अशुद्धि आई । अगर अशुद्धि बढ गई तो "डाग्गो पावई दुक्ख" इसको चरितार्थ कर दिया । लाभ के लिए कार्य करते हैं यह तो घाटा हो गया । असयमियो का सम्पर्क छोडने पर और सयमियो से सम्पर्क जोडने पर उत्थान होता है परिणामो मे विशुद्धि की वृद्धि होती है । सयमियो की माता बारह भावनाओ का चिन्तन हैं । ये द्वादशाग प्रेक्षाये सुख से सयम का निर्वाह करती है । आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज और आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज ये दोनो महानतम साधु है । जिसको जैसा सुख चाहिए ले लो, मिलेगा । ससार मे वीतरागता दुर्लभ है । दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति इस मनुष्य पर्याय मे सभव है जो ससार शरीर भोगो से विरक्त है । उनको दुर्लभ भी सुलभ है । गुण ग्राही आत्मा प्रत्येक निर्ग्रंथ से वीतरागता को ग्रहण कर लेती है । साधु पुरुष ऐसा ही करते है ।

'साधु ऐसा चाहिए जैसा सूप स्वभाव ।
सार सार को गहि रहे थोथा देय उडाय ॥'

यथार्थ मोक्ष मार्ग पर चलने वाला साधु कहलाता है । रत्नत्रय पूर्वक प्रयत्न प्रवृति करने वाला साधु की कोटि मे गिना जाता है ऐसी आत्माएँ मोक्ष को प्राप्त करती है जो भी इस प्रकार का प्रयत्न मे लगा रहेगा । वह मोक्ष को प्राप्त कर लेगा ।

प. पू. चा. च. आचार्य श्री 108 आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) द्वारा प्रतिपादित

अष्ट प्रवचन मातृका

(आर्यिका श्री १०५ विमलप्रभा माताजी)

वर्तमान युग मे निर्दोष मुनि धर्म का मार्ग निर्देशन करने वाले बीसवी शदी के प्रथमाचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज थे । आपने अपनी निर्दोष चर्या के द्वारा दिगम्बर मुनि धर्म पुनरुत्थान कर आध्यात्मिक जीवन को पल्लवित और पुष्पित कर महान् उपकार किया है । यहाँ हम आपके द्वारा निर्दिष्ट अष्ट प्रवचन मातृका के स्वरूप महत्व आदि पर विचार करेगे ।

प्रवचन का अर्थ–प्रकृष्ट वचन प्रवचन यह प्रवचन का निर्देश रूप कथन सर्वत्र मिलता है तदनुसार रागद्वेष से रहित श्रेष्ठ आत्माओ के वचनो को जो पूर्वापर विरोध रहित सर्वप्राणियो के लिये हितकर हे, उन्हे प्रवचन कहते है । तत्वानुभव प्राप्त करके बाले गये ऐसे विशिष्ट शब्द जिनका सबध आन्तरिक निधि से होता है वे प्रवचन कहलाते है । जिनेन्द्र प्रभु के वचनानुसार गणधर परमेष्ठी के द्वारा प्रतिपादित जैन सिद्धान्त-द्वादशाङ्ग रूप जिनवाणी को प्रवचन कहते हैं ।

इस द्वादशाङ्ग रूप श्रुत स्कन्ध का बीज अष्ट प्रवचन मातृका है । जिस प्रकार छोटे से वट बीज के अन्दर विशाल वृक्षपना अव्यक्त रूप मे समाहित है उसी प्रकार अष्ट प्रवचन मातृका मे द्वादशाङ्ग रूप विस्तृत ज्ञान गर्भित हे, समाहित है । जिस प्रकार व्रत शीलादि से अलकृत माताएँ अपने पुत्र का सर्वाङ्गीण विकास करते हुए उसे विकास की चरम सीमा तक पहुँचाने मे अत्यन्त सहायक हे उसी प्रकार पॉच समिति और तीन गुप्ति रूप अष्ट प्रवचन मातृका अपने आश्रय रहने वाले भव्य जीवो का सर्वाङ्गीण विकास करती हुई उसे केवलज्ञानादि श्रेष्ठतम विभूति प्रदान कर देती है, सम्पूर्ण दु खो का विच्छेद कर उसे अनाकुलता रूप अतीन्द्रिय आत्म सुख का अनुभव करने मे समर्थ बना देती है ।

जो बच्चे का सब प्रकार से हित चाहे उसे माता कहते हे । अष्ट प्रवचन मातृका, प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप सुपथ पर आरुढ कर जीव को मोह रूपी गहन अन्धकार से व्याप्त भयकर अटवी से निकालकर उसकी सुरक्षा करती हे, दु खो से उन्मुक्त करती है । जिस प्रकार प्रात कालीन सूर्य की लालिमा धीरे धीरे अपनी धवलरश्मियो का प्रखर बनाते हुए मध्याह्न काल में अपरिमित प्रताप और प्रकाश को प्रगट करता हे उसी प्रकार अष्ट प्रवचन मातृकाओ का भली प्रकार आचरण करने वाला भव्य पुरुष अपनी साधना से पाप रूप घातिया कर्म का नाश कर केवलज्ञान को प्रगट कर

विकास की चरम सीमा को प्राप्त कर लेता है । अब हम अपनी अमूल्य निधि समिति और गुप्ति के स्वरूप और भेद प्रभेदो पर क्रम से विचार करेगे-

समिति का स्वरूप–

चलने फिरने मे, बोलने चलने मे, आहार गहण करने मे, वस्तुओ को उठाने धरने मे और मलमूत्र निक्षेपण करने मे विवेक पूर्वक सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करते हुए जीवों की रक्षा करना समिति है ।

नयापेक्षा समिति का स्वरूप (१) निश्चय नय से–

नियमसार ग्रन्थ के अनुसार–"अभेदानुपचार रत्नत्रयमार्गेण परम धर्मिण आत्मान सम्यग् ईति परिणति समिति" अभेद-अनुपचार रत्नत्रय रूपी मार्ग पर परम धर्मी ऐसे आत्मा के प्रति सम्यक् इति अर्थात् परिणति वह समिति है ।

प्रवचन सार ग्रन्थ के अनुसार–निश्चय से तो अपने स्वरूप मे सम्यक् प्रकार से गमन अर्थात् परिणमन समिति है ।

व्यवहार नय से समिति का स्वरूप–सर्वार्थ सिद्धिग्रन्थानुसार–

"प्राणिपीडापरिहारार्थ सम्यगयन समितिः" प्राणि पीडा का परिहार करने के लिए सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना समिति है । अन्य ग्रन्थो मे भी इसी अभिप्राय को अभिव्यक्त किया गया है । समिति के पॉच भेद हैं-(१) ईर्यासमिति (२) भाषा समिति (३) एषणा समिति (४) आदान निक्षेपण समिति (५) व्युत्सर्ग समिति अथवा प्रतिष्ठापना समिति ।

(१) ईर्या समिति का स्वरूप–जीव स्थान आदि की विधि को जानने वाले धर्मार्थ प्रयत्नशील साधु का सूर्योदय होने पर, चक्षु इन्द्रिय के द्वारा स्पष्ट दीखने योग्य, कुहरा, क्षुद्रजन्तु आदि से रहित मार्ग मे सावधान चित्त होकर शरीर सकोच करके धीरे धीरे चार हाथ जमीन आगे देखकर प्रासुक भूमि पर गमन करना ईर्या समिति है ।

शीत से उष्ण प्रदेश मे गमन करते समय शीत और उष्ण जन्तुओ को बाधा न हो इसके लिये शरीर प्रमार्जन करना चाहिए तथा सफेद भूमि या लाल भूमि में प्रवेश करना हो तो कटि प्रदेशो से नीचे तक सर्व अवयव पिच्छिका से प्रमार्जित करना चाहिए । ऐसी क्रिया न करने से विरुद्ध योनि सक्रमण से पृथ्वीकायिक जीव और त्रस कायिक जीवो को बाधा होगी । जल मे प्रवेश करने के पूर्व साधु हाथ पाँव वगैरह अवयवों मे लगे हुए सचित्त और अचित्त धूलि को पीछी से दूर करे, अनन्तर जल मे प्रवेश करे । जल के बाहर आने पर जब तक पाँव न सूख जाएँ तब तक जल के समीप ही खडा रहे । पाँव सूखने पर विहार करे । बडी नदियों को उलाघने का कभी अवसर आवे तो नदी के प्रथम तट पर सिद्ध वन्दना कर समस्त वस्तुओ का प्रत्याख्यान करे, मन में

एकाग्रता धारण कर नौका वगैरह पर आरुढ होवे । दूसरे तट पर पहुँचने के अनन्तर उसके अतिचार नाशार्थ कायोत्सर्ग करे । प्रवेश करने पर अथवा वहाँ से बाहर निकलने पर यही आचार करना चाहिए । जो गीली है, हरे तृणादि से व्याप्त हे ऐसी पृथ्वी पर गमन नही करना चाहिए ।

(२) भाषा समिति–मूलाचार ग्रन्थानुसार भाषा समिति का स्वरूप–

''पेसुण्णहास कक्कसपरणिदप्पप्पसस विकहादी । वज्जित्तासपरहिद भासासमिदि हवेकहण॥

''निर्दोषस्य दोषोद्भावन पैशून्य''

निर्दोष व्यक्ति पर दोषारोपण कर उसके दोषो का प्रचार करना, व्यर्थ हँसना, कठोर वचन, पर निन्दा, अपनी प्रशसा और विकथा इत्यादि वचनो को छोडकर हित मित प्रियवचन बोलना भाषा समिति है ।

(३) एषणा समिति–श्री कुन्दकुन्द स्वामी नियमसार ग्रन्थ एषणा समिति का स्वरूप बताते हुए लिखते हैं-

कदकारिदाणु मोदणरहिद तह पासुग पसत्थ त्तु

दिण्ण परेणभत्त समभुत्ती एषणा समिदी ॥

अर्थ–कृत, कारित, अनुमोदना रहित शुद्ध आहार आगमानुसार ग्रहण करना, श्रावको द्वारा प्रदत्त प्रासुक और प्रशस्त आहार सन्तोष पूर्वक ग्रहण करना एषणा समिति है ।

प्रासुक का क्या अर्थ है ? इसका समाधान आचार्य श्री के वचनो मे ''हरितकायजीवादि रहित योनिभूत बीजादि रहित वा प्रासुकम्'' हरितकाय जीवराशि से रहित तथा योनिभूत बीजादि से रहित आहार को प्रासुक आहार कहते है ।''

''अनिष्टानुपसेव्यादिरहित प्रशस्तम्'' अनिष्ट और अनुपसेव्यादि आहार का त्याग कर शुद्ध आहार ग्रहण करना प्रशस्त अर्थ का बोधक है ।

(४) आदान निक्षेपण समिति–मूलाचार ग्रन्थ के अनुसार-

णाणुवहिं सजमुवहिं सौचुवहिं अण्णमप्पमुवहिं वा

पयद गहण णिक्खेवो समिदी आदाणणिक्खेवा ॥

अर्थ–ज्ञान के उपकरण, सयम के उपकरण तथा शौच के उपकरण तथा अन्य साथरे आदि के निमित्त उपकरण, इनका यत्नपूर्वक उठाना, रखना आदान निक्षेपण समिति है ।

(५) प्रतिष्ठापन समिति–मूलाचार ग्रन्थ के अनुसार–

एगंते अच्चित्ते दूरे गूढे विसालमविरोहे ।

उच्चारादिच्चाओ पदिठावणिया हवे समिदी ॥

अर्थ–एकान्त स्थान अचित्त स्थान दूर, छिपा हुआ, बिल तथा छिद्र रहित चौड़े तथा जिसकी निन्दा वा विरोध न करे ऐसे स्थान मे मूत्र, विष्टा आदि देह के मल का क्षेपण करना प्रतिष्ठापना समिति कही गई है ।

प्रमाद न होना ही सच्ची समिति है । समिति के उपदेश का प्रयोजन अहिसाव्रत की रक्षा है । समितिपूर्वक चर्या रखने वाला पापो से लिप्त नहीं होता है ।

समिति के समान गुप्ति भी आत्म गुणो की रक्षक तथा वर्धक है गुप्ति के स्वरूप का कथन करते हुए आचार्य लिखते हैं-

''गुप्यन्ते रक्ष्यन्ते सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि यकाभिस्ता गुप्तय· अथवा गोप्यते रक्ष्यते आत्मा मिथ्यात्वासयमकषायेभ्यो याभिस्ता गुप्तय इति गीयन्ते ।

जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की रक्षा करे तथा मिथ्यात्व, असयम और कषायो से जीव को निवृत (अलग) करे उसे गुप्ति कहते है निश्चय और व्यवहार नय की अपेक्षा काय गुप्ति का स्वरूप शुभाशुभ समस्त शारीरिक क्रियाओ का त्याग अथवा शरीर मे ममत्व परिणाम का त्याग निश्चय से काय गुप्ति हे ।

असावधानता पूर्वक कायिक अशुभ चेष्टाओं का परित्याग व्यवहार नय से काय गुप्ति है ।

वाक् गुप्ति–असत्य भाषण का त्याग करना तथा शुभाशुभ समस्त वचन प्रयोग का त्याग कर मोन धारण करना वचन गुप्ति है ।

मनोगुप्ति–रागद्वेष रूप परिणति को छोडकर निज शुद्ध आत्म तत्व मे मन को स्थिर करना निश्चय से मनोगुप्ति है तथा अशुभ से मन को हटाना व्यवहार गुप्ति है । अशुभ संकल्प विकल्पो से आत्मा की रक्षा के लिये मनोगुप्ति परम सहकारी हे ।

व्यवहार गुप्ति और समिति मे अन्तर–

मन, वचन, काय को पाप क्रिया से निवृत करना, पापो का निवारण करना व्यवहार गुप्ति है और मन वचन काय की सम्यक् प्रवृति समिति है । यही इन दोनों में अन्तर है ।

इस प्रकार का लक्षण भेद होते हुए भी दोनो आत्म विशुद्धि मे साधक हैं । आत्म गुणो की सरक्षक और वर्धक हैं, मुक्ति की प्राप्ति मे श्रेष्ठ अवलम्बन है । जिनेन्द्र प्रभु ने उक्त समिति और गुप्तियो को अष्ट प्रवचन मातृका का रूपक (नामकरण) देकर उसकी महत्ता को प्रकट कर प्रत्येक भव्य जीवो को उनकी प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील होने का निर्देश या आदेश प्रदान किया है । अत मुमुक्षुओ को अष्टप्रवचन मातृका की पूजा अर्चना, अभ्यर्थना माता के समान जानकर करनी चाहिए ।

कुसंगति का प्रभाव

–आर्यिका १०५ विजय प्रभा माताजी



खोटी सगति का प्रभाव प्रत्येक अच्छे पदार्थ को इस संसार मे बुरा कर देता है । दूध यदि खटाई से थोडी देर भी सम्पर्क कर ले तो उस खटाई के संयोग से वह दूध फट जाता है । जीव अनादि काल से इस ससार मे परिभ्रमण कर रहा है । उसका मूल कारण है कुसगति । यह जीव जब शुद्ध पुद्गल से सयोग करता है तो देखो उसी समय शुद्ध पुद्गल विकृत होकर कर्म बन जाता है । कैसा हे सगति का प्रभाव कि शुद्ध मे भी विकृति आ जाती है, और उस पुदगल के सयोग से यह जीव जन्म मरण की परम्परा मे पडकर नाना तरह के दु खो को सहन करता हुआ अपने जीवन का यापन करता हे ।

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि जी ने कहा है

जीवकृत परिणाम निमित्त मात्रं प्रपद्ये पुनरन्ये

स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुदगला कर्म भावेन

चैतन्य स्वरूप जीव के राग द्वेप, क्रोध, लोभ आदि परिणामो का निमित्त पाकर जड कार्मण पुदगल स्कन्ध ज्ञानावरणादि कर्मरूप से स्वय परिणमन करते है ।

इसके बाद जीव मे भी ऐसा होता है ।

परिणममानस्य चितश्चिदात्मकै स्वयमपिस्वकैभावै ।

भवति हि निमित्तमात्र पौदगलिक कर्म तस्यापि ॥

आत्मा स्वय अपने ही चैतन्यात्मक भावो के द्वारा परिणमन करता है । परन्तु उसके इस परिणमन मे वह जीव से सम्बन्धित पुद्गल कर्म निमित्त बनकर जीव को बहुत हानि पहुँचाता हे ।

ससारी जीव जब तक कर्मों की कुसगति मे रहता है, तब तक वह भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, जन्म, मरण, रोग, शोक, भय, चिन्ता आदि महान् दु खो का भार उठाया करता है । यदि निश्चय से

विचार किया जाये तो जीव का जन्म मरण व भूख प्यास दुख शोक भय आदि नहीं होता है- वीतराग श्लोक में बतलाया है ।

न जन्मो न मृत्यु न मोहो न चिंता
न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा
न स्वेदो न खेदो न वर्णों न मुद्रा
चिदानंद रूपं नमो वीतरागम्

यह कारिका हमें क्या बतलाती है कि आत्मा का जन्म मृत्यु नहीं, आत्मा में मोह व चिंता नहीं, न इसके अन्दर क्षुद्रपना न इसमें भयपना न इसमें नींद न इसमें स्वेदपना न खेद, न कोई वर्ण, न कोई आकार, जब इस आत्मा में ये सब कुछ नहीं है, तो फिर आत्मा को इसका सम्बन्ध बताया जाता है, उसका कारण है कर्मों की संगति बस यही सबसे बड़ी भूल है ।

इस तरह कुसंग से जीव इस संसार में अनेकों कष्टों को सहन करता है, पुद्गल अपने शुद्ध स्वरूप से विचलित होकर जीव के साथ अपना स्वरूप बिगाड़कर कर्मरूप बनता बिगड़ता है शरीर के कुसंग से दूध, जल, फल, फूल मेवा आदि सुन्दर पदार्थ बिगड़कर मलमूत्र, खून, हड्डी आदि घृणित पर्याय में परिणत हो जाते हैं । उदाहरण से देखिये-एक समय एक शिष्य अपने गुरु के पास आया और कहने लगा भगवन् मुझे संसार से विरक्ति है, आप मुझे दीक्षा दीजिये, तब गुरूजी ने कहा पहले मेरे प्रश्न का उत्तर लाओ, बाद में दीक्षा देंगे, तब शिष्य ने कहा कहिये आपका कौनसा प्रश्न है, तब गुरुजी कहने लगे कि संसार में सबसे बुरी वस्तु क्या है ? लेकर आओ-तब शिष्य बुरी वस्तु खोजने के लिये इधर-उधर घूमता रहा लेकिन कहीं भी उसको बुरी वस्तु नहीं दीखती, वह प्रत्येक गाँव में बुरी वस्तु खोजता जा रहा था, एक गाँव में प्रवेश करने से पहले रास्ते पर विष्ठा पडी थी और उस पर मक्खी भिनभिना रहीं थीं, तब शिष्य ने सोचा सबसे गन्दी व बुरी वस्तु यही है, इससे बुरा मुझे आज तक नहीं मिला जैसे वह विष्टा के पास पहुँचा तो विष्ठा बोल उठी क्यो मैं जब मिठाई के रूप में, फल के रूप में या अन्न के रूप में थी फिर विष्ठा क्यों बनी, बस तुम्हारे शरीर का संयोग मुझे मिला तो मैं विष्टा रूप में बन गई । सबसे खराब वस्तु तुम्हारा ही शरीर है, भाई तुम दुनिया में कहाँ खोजते हो, तब शिष्य ने विचार किया कि सबसे गन्दा तो मेरा शरीर है, जिसकी कुसंगति के कारण अच्छे-अच्छे पदार्थ भी विष्टारूप में बन जाते हैं तो यह संगति का प्रभाव है । इसी बात को लेकर पं. दौलतरामजी ने कहा है-

"जे जे पावन वस्तु जगत में वे इन सब विगारी"

संसार में जितने फूल, फल, जल आदि शुद्ध स्वच्छ सुगन्धित पदार्थ हैं उनको यही शरीर अपवित्र, घृणित दुर्गंधित कर डालता है ।

खोटे पदार्थ की वह चाह जीव हो या जड पदार्थ इनकी सगति करना कुसगति कहलाती है । गर्भ मे आते ही जीव पर सगति का प्रभाव पडना प्रारम्भ हो जाता है, और फिर जन्म लेने के बाद जीवो का पालन पोषण यदि दुर्गुण माता-पिता की गोद मे होता है तो उनके सहवास से बच्चो मे वे दुर्गुण स्वय आ जाते हैं । घर मे माता-पिता भाई-बहिन का जेसा व्यवहार होता है वैसा ही वे सीख जाते है । वैश्या के बच्चे माता की व्यभिचार लीला देख व्यभिचारी बन जाते है जुआरी का बच्चा जुआ खेलना सीख जाता है ।

जिस तरह जगल मे जहाँ बासो के पेड होते हैं, वहाँ सूखे बाँस हवा के जोर से रगड खाकर आग लग जाती है, उस आग के साथ वृक्ष भी जाते हे इसी तरह दुष्ट दुराचारी पुरुष की सगति से सभ्य-सज्जन पुरुषो की बुद्धि भी मलिन होकर गुण नष्ट हो जाते हे ।

काजर की कोठरी मे कैसो हूँ सयानो जाय ।

काजर की एक रेख लागि है पे लागि है ॥

काजर की कोठरी मे सावधानी से आते जाते हैं तो भी कपडो पर काजल धब्बा लग ही जाता है, इस तरह कुसगति मे रहने वाले मनुष्य चाहे जितने सभलकर रहे किन्तु उनके ऊपर कुछ न कुछ प्रभाव जरूर पडता है । इस तरह कुसगति के प्रभाव से जीवन का सारा ढाचा ही बदल जाता है, इसलिये प्रत्येक मानव को सभ्य पुरुषो की सत्सगति करना चाहिये, अगर हमको ऊँचा उठना है तो जो ऊँचे उठे हुए है उनकी सगति करना चाहिए जेसे कि साधु, सन्त, आर्यिका माता, और भी महापुरुष हुये ऐसे पुरुषो की सगति करने से हम सभ्य व सदाचारी बनजाये हम जैसा करेगे वैसा ही हमारे बच्चे करेगे अपने को और अपने परिवार की सुरक्षा के लिए हमेशा अच्छी सगति करनी चाहिए । सत्सगति करने से हमारे अदर को दुर्गण निकल जाते हैं और अनेक प्रकार के गुण उत्पन्न हो जाते हे ।



प्रमाणता

ब्र सुशीला कुलथाना (राज.)

स्व पर प्रकाशक ज्ञान प्रमाण है । पहले न जाना गया अपूर्व पदार्थ प्रमाण का विषय है, और वस्तु की सिद्धि अथवा हित प्राप्ति व अहित का परिहार इसका फल है । श्रुत ज्ञान परोक्ष ज्ञान है इसके मूल कर्ता सर्वज्ञ है । उसके बाद गणधर प्रति गणधर हैं उनके वचन के अनुसार अन्य गुरु है । श्री गुरु परम गुरु परपराचार्य गुरु हैं । वे प्रमाण है इस कारण उनको वचन प्रमाण है ।

पमाणत कुदो णव्वदो राग दोष मोह माणेव पमाणीभूद पुरिस परपराए आगमत्तादो ।

सूत्र की प्रमाणता कैसे जानी जाती है ? राग द्वेष और मोह का अभाव हो जाने से प्रमाणीभूत पुरुष परम्परा से प्राप्त होने के कारण उसकी प्रमाणता जानी जाती है । (ध १०/५५, १२१/२८२/९)

त कधणव्वदे ? अइरिय परपराभदोवदेसादो ।

यह कैसे जाना जाता हे ? आचार्य परपरागत उपदेश से यह जाना जाता है । (ध ५/१ ६,३६/३१/५)

आइरिय वयणमणेयत मिदि चे, होदुणाम णत्थिमज्झेत्थ आग्गहा ।

आचार्यो के वचन अनेक प्रकार के होते हैं । तो होओ इसमे हमारा दुराग्रह नही हैं । (ध ३/१, २, १२३ / ४०८/५)

दोण्ह सग्गह करे तो सशय

मिच्छाइट्ठी होदित्ति तण्ण, मुत्तुद्दिट्ठमेव अत्थिति सद्दहतस्स स देहा भावादो ।

दोनो वचनो को सग्रह करने वाला सशय मिथ्यादृष्टि हो जायेगा ? नहीं, क्योकि सग्रह करने वाले के यह सूत्र कथित ही है इस प्रकार का श्रद्धान पाया जाता है । (ध १/१, १, ३७/२६२/२)

पमाणत्त कुदोणव्वदे । पमाणभूद पुरिस परम्पराए आगदत्तादो ।

प्रमाणता कैसे जानी जाती है ? प्रमाणीभूत पुरष परपरा से प्राप्त होने के कारण उसकी प्रमाणता जानी जाती है । (ध १३/५, ५, १२१/३८२/९)

दोण्ह वयणाण मज्झे क वयणसच्च मिदि चे, सुद केवली केवली वा जाणादि ।

दोनो वचनो मे से किसको सत्य माना जाय ? इस बात को केवली या श्रुत केवली ही जान सकते हैं । (ध १/१, १, २७/२२२/४)

तिदोण एत्थ इदमित्थ मेवेति एयत परिग्गहेण असग्गाहो कायव्वो, परमगुरु परम्परागरूए सस्स नुति वलेण विहडावेदुम सक्कियत्तादो ।

यह ऐसा ही है इस प्रकार एकात कदाग्रह नहीं करना चाहिए क्योंकि गुरुपरपरा से आए उपदेश को युक्ति के बल से विघटित नहीं किया जा सकता । (ति प ७/६, १३/७६६/२)

किन्तु अणेणेव हो दव्वमिदि ण वहमाण काले णिच्छओ कादु साकिज्जदे जिणगणहर पत्तेयबुद्ध पण्णसमणसुदकेवलि आदीणमभावदो ।

इन दोनो मे से कोई एक अल्पवहुत्व होना चाहिए किन्तु यही अल्प बहुत्व होना चाहिए । इस बात का निर्णय वर्तमान काल मे निश्चय करना शक्य नहीं हैं । क्योकि इस समय जिन, गणधर, प्रत्येक बुद्ध, प्रज्ञाश्रमण और श्रुत केवली आदि का अभाव है । (गो जी /जी प्र २२८ / ६१६ / २-४)

आइरिय परम्परागदुव देसादो ।

आचार्य परपरा से उपदेश हैं ।

(छवखडाग मे वेयणाखड)

वक्तृ प्रामाण्या द्वचन प्रमाण्य

वक्ता की प्रमाणता से वचन मे प्रमाणता आती हे । (ध १/१/, १, २२/१९६/४)

एत्थपुणो दो वि परुवेयव्वा दोण्हमेक्कदरस्स सुत्ता वुसारितागमाभावादो ।

फिर भी यहाँ दोनो ही उपदेशो का ग्रहण करना चाहिए, क्योकि दोनो मे से अमुक उपदेश सुत्रानुसारी है इस प्रकार के ज्ञान करने का कोई साधन नही पाया जाता । (क पा २/९, १५/४६३/४१७/७)

उस्सुत्तु लिहता आइरिया कथ वज्जभीरुणो इदि चे, ण एस दो सो, दोण्ह मज्झे एक्कस्सेव सग्गहे कीरमाणे वज्ज भीरुत्त णिवहति । दोण्ह पि सगह करे ताण माइरियाण वज्जभीरुता विणासाभावादो ।

उत्सूत्र लिखने वाले आचार्य पापभीरू केसे माने जा सकते हैं ? यह कोई दोष नहीं है क्योकि दोनो के वचनो में से किसी एक ही वचन का सग्रह करने पर पाप भीरूता निकल जाती है उच्छृखलता आ जाती है । अतएव दोनो प्रकार के वचनो का सग्रह करने वाले आचार्यो के पाप भीरुता नष्ट नही होती है बनी रहती है । उपदेश के बिना दोनो मे से कौन सा वचन सूत्ररूप है । यह नही जाना जा सकता, इसलिए दोनो वचनो का सग्रह कर लेना चाहिए । (ध १/१, १, २७/२२२/२)

वर्तमान मे मूलकर्ता सर्वज्ञ का अभाव है और उत्तर कर्त्ता का भी अभाव है । परन्तु उनके वचनानुसार आगम पाया जाता है । आगम ज्ञान साध पुरुषो के लिए तीसरा नेत्र है । उस आगमज्ञान रूपी नेत्र से देखकर मोक्षमार्ग मे चलना चाहिए ।

जैन धर्म में आर्यिका का स्थान

ले १०५ आ. विनयप्रभा माताजी

(संघस्था-१०५ ग आ. विजयमती माताजी)



भारत देश ऋषि, महर्षि, सत, त्यागी, व्रतियों का देश है । अनादि काल से स्त्री-पुरुष दोनो को समाज में समान अधिकार दिया गया है । आचार्य परमेष्ठी मुनि संघ का सचालन करते हैं तथा शिक्षा-दीक्षा देते हैं । आर्यिकाओं में जो सघ की प्रमुख है (गणिनी) वह आर्यिका संघ का सचालन एव दीक्षा व शिक्षा देती हैं । भगवान आदिनाथ के समय मे ब्राह्मी एव सुन्दरी आर्यिकाओ की गणिनी थी । वे अपने सघ का सचालन एव शिक्षा-दीक्षा देती थीं । भगवान महावीर की भक्ति से चदनबाला को बेडियो से मुक्त किया । पुन दीक्षा देकर उसका उद्धार किया । भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में चदनबाला गणिनी थी । उसने भी आर्यिकाओ को शिक्षा-दीक्षा दी । जिस प्रकार दिगम्बर, आम्नाय में मुनि परिषद मे आचार्य का स्थान व अधिकार है वही आर्यिकाओ मे जो प्रधान आर्यिका (गणिनी) का स्थान व अधिकार है ।

तमिल देशीय जैनधर्म की एक उल्लेखनीय विशेषता सहित आर्यिकाओ का साध्वियो की सस्था होना भी हे । वे साध्विया भी साधुओ की तरह सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्तियो में प्रमुख रूप से भाग लेती थी । वे अपने अनुयायी गृहस्थो का नियमन करती थीं और वसतिकाओ के प्रमुख के रूप मे सम्मानास्पद होती थीं ।

कर्णाटक शिलालेखो मे जैन धर्म की अनुयायी गृहस्थ स्त्रियो और गृहस्थाश्रम त्यागी साध्वियो (दीक्षा लेने वाली महिलाओ) के उल्लेख मिलते हैं । प्रत्येक धर्म में उसकी अनुयायी स्त्रियाँ रहती ही हैं । किन्तु तमिलदेश के शिलालेखो मे ऐसी स्त्रियो की सूचना मिलती है जो न केवल गृहस्थ रूप मे या साध्वी रूप मे जैन धर्म की अनुयायी मात्र थीं अपितु गुरु और आचार्य रूप में धार्मिक प्रवृत्तियो का सचालन भी करती थी । शिलालेखों मे निर्दिष्ट इस प्रकार की धर्माधिकारी स्त्रियों के उत्तराधिकारियो की लम्बी सूची से यह मानना पडता है कि तमिलदेश में साध्वियों की भी अपनी सस्थाएँ थीं और उनमें से कुछको प्रधान धर्माधिकारी पद प्राप्त था । ऐसी साध्वियों को कुरट्टियार कहते थे । ये श्राविकाओ, आर्यिकाओ या साध्वियो से भिन्न होती थीं ।

मध्यकालीन कर्णाटक साहित्य महिलाओ का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है । उन्होंने अपने समकालीन महत्वपूर्ण कार्यों मे क्रियात्मक भाग लेकर सफलता प्राप्त की है । हमको प्रधानत· जैन धर्म की क्रिया कलापों को देखना है ।

दसवीं शताब्दी मे राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय के राज्यकाल मे महासामन्त कलिबिट्टरस वनवास प्रदेश के अधिकारी थे । ९११ ई मे नागर खण्ड के अधिकारी सत्तरस नागार्जुन का स्वर्गवास हो गया । उनके स्थान पर उनकी पत्नी जक्कियव्वे को अधिकारी नियुक्त किया गया । जक्कियव्वे शासन मे सुदक्ष और जिनशासन की सुभक्त थी । उसने नागर खण्ड की सुरक्षा करते हुए अपने मरणकाल मे वदनि के नामक पवित्र स्थान मे जाकर वही के जिनालय मे समाधिमरण पूर्वक प्राण विसर्जन किया । उसी दसवी शताब्दी मे 'अतिमव्वे' स्मरणीय महिला हुयी । यह सेनापति मल्लप की पुत्री और नागदेव की पत्नी थी । अत्तिमव्वे ने पोन्नेके शान्तिपुराण की १००० प्रतियाँ तैयार करवायी और सोने एव जवाहरात की १५०० मूतियाँ बनवायी ।

दसवी शताब्दी मे ही पामव्वे नामकी महिला हुई । वह राजा भूगूत्त की बडी बहिन थी । उसने जिनदीक्षा लेकर ३० वर्ष तक तपस्या की और ९७३ ई मे उसका स्वर्गवास हुआ । इस प्रकार के बहुत लेख मिलते हैं ।

वैसे तो आर्यिका की सभी क्रियाये मुनिराज के समान ही होती है । पच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध षट् आवश्यक, सात विशेषगुण ये २८ मूलगुणो का आर्यिका पालन करती हैं परन्तु स्त्री के शरीर का आकार इस प्रकार का है कि वह दिगम्बर वेष धारण नही कर सकती । उसके पास आगमानुसार सोलह हाथ की दो सफेद साडिया रहती है । मुनिराज के समान खडे होकर आहार भी नही ले सकती, उसको बेठकर आहार लेना पडता है ।

आर्यिकाएँ वसतिका मे कैसे रहती हैं-

आर्यिकाओ की वसतिका मुनिराज की वसतिका से दूर रहती है । आर्यिकाएँ वसतिका मे मत्सर भाव छोडकर रहती है । आपस मे रक्षण करने के लिये तत्पर रहती है । जिस आचरण से लोक में अपवाद होवे ऐसे आचरण से वे हमेशा दूर रहती है । लज्जा, मर्यादा तथा क्रियाओ से आर्यिकाएँ अपने चारित्र का रक्षण करती हैं । आर्यिकाएँ मिलकर स्वाध्याय करती हैं । एक-दूसरे को पठन-पाठन कराती हैं । अगर स्वाध्याय करते समय कोई शंका उपस्थित हो जाय तो उसका समाधान करने के लिये आर्यिका अपने साथ अपनी मुख्य (गणिनी) आर्यिका को साथ मे लेकर आचार्यश्री या मुनिराज के पास जाती हैं । अकेली आर्यिका मुनिराज को प्रश्न पूछे तो उसका उत्तर नही देना चाहिये ।

सयत मुनि के साथ आर्यिका अकेली हंसी मजाक तथा उत्कट-तारुण्यवाले पुरुष के साथ पूर्ववृत्तात्मक चरित्र बोलेगी या कहेगी तो उसको जिन आज्ञाकोप, मिथ्यात्वाराधना, आत्मनाश और सयम-विराधना ऐसे पाँच प्रकार के दोप लगेगे । इसलिये आर्यिकाओं को मुनियों की वसतिका मे रहने का निपेध किया हे । क्षणमात्र में जो कार्य होते हैं, वे करना भी निषिद्ध है । जैसे वहाँ बैठना, लेटना, स्वाध्याय करना, प्रवचन करना, आहार या भिक्षा लेना, प्रतिक्रमणादि करना वगैरह क्रियाये जो थोडे काल मे होती हैं वे नही करनी चाहिये । वृद्ध तथा गुणयुक्त मुनिराज के साथ भी आर्यिकाओ को भाषण आदि ससर्ग भी निषिद्ध है । क्योंकि जो मुनि के मन में मैथुन की अभिलाषा उत्पन्न हुई है ऐसा पुरुष चिरकाल से दीक्षित होने पर भी अपने चिरदीक्षागुण की भी परवाह नहीं करता । चाहे वे आचार्य पद का धारक हो, सर्वशास्त्र निपुण हो, दो या तीन उपवास वगैरह करने वाला तपस्वी हो तो भी उसको अपने पद की परवाह नहीं रहती है । वह मुनि अपने आचार्यत्वादिक गुणो का एव माता-पिता के कुल को नष्ट करता है, बिगाडता है । अत· आर्यि-ाओ को अकेले मुनियो का सहवास, उनसे भाषण करना, उनके निवास स्थान मे आना-जाना इत्यादिक कार्यो के लिये निषेध किया है । अनावश्यक क्रियाएँ नहीं करना ।

चतुर्थ काल मे स्त्रियाँ आर्यिका से ही दीक्षा लेती थी । महारानी सीता ने परम पूज्य १०५ गणिनी पृथ्वीमती माताजी से दीक्षा ली थी । रावण पटरानी मदोदरी ने परम पूज्य १०५ शशिप्रभा माताजी से दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का कल्याण किया । इससे यह सिद्ध होता है कि जैनधर्म में आर्यिकाओ का भी अग्रगण्य स्थान व अधिकार है ।

केशलोच—आचार्य उपाध्याय साधुओ के अनेक गुण होते हैं । उन गुणो मे से एक गुण केशलोच करना होना है । जो हमको प्राय. देखने को मिलता है । आश्चर्य होना है । राग के अभाव मे यह कार्य सरल हो जाता है कि केशलोच देखने से आत्मशक्ति का ज्ञान होता है । अनुभव होता है । हृदय परिणमन होने की भावना होती है ।

विधि—प्रतिक्रमण पूर्वक दिन मे उपवास करके मस्तक दाढी एव मूछ के केशो का लोच हाथो की अगुलियो से करते है । दाहिने बाजू से आरम्भ कर बाएं तरफ आवर्तरूप करते हैं । काल-उत्तम मध्यम, जघन्य क्रमश दो महिना, तीन महिना, चार महिना मे करना चाहिए ।

आवश्यकता—तेल लगाना अभ्यङ्ग स्नान, सुगन्धित पदार्थों से केशों का संस्कार करना जल से धोना इत्यादि क्रियाएं नहीं करने से केशों में जूँ और लीख इत्यादि जीव पैदा हो जाते हैं। फिर बहुत कठिनाइ से नहीं निकल पाते है। पापास्त्रव होता है। संक्लेश भाव होता है। उनके काटने पर असहाय वेदना होने पर मस्तक खुल जाते हैं। जिससे जूं, लीखों का परस्पर मर्दन होने से मरते हैं। ऐसे दोषों से बचने के लिए आगमानुसार केशलोंच करते हैं। कोडी मात्र भी धन का संग्रह नहीं करते हैं। जिससे कि मुंडन कराया जा सके। अथवा इसके लिये उस्तरा या कैंची आदि औजार का भी आश्रय नहीं लेते हैं, क्योंकि चित्त में क्षोभ पैदा होता है। इससे जटाओं को धारण कर लेते हैं सो यह भी संभव नहीं है। इसका कारण यह भी है कि ऐसी अवस्था में अनेक उत्पन्न होने वाले जूं लीख आदि जन्तुओ की हिंसा टाली नहीं जा सकती है। इसलिए आवश्यक है आयाचन वृति को धारण करने वाले साधुजन वैराग्य आदि गुणों की वृद्धि के लिए केशों की लोंच क्रिया करते हैं।

प्रयोजन—शिरमुण्डन होने पर निर्विकार वृत्ति होती है। उससे वह मुक्ति के उपायभूत रत्नत्रय में खूब उद्यम शील बनता है। अत लोंच परम्परा रत्नत्रय का कारण है। केशलोंच करने से और दु:ख सहन करने की भावना से मुनिजन आत्मा को वश मे करते हैं। सुखों में वे आसक्ति नही रखते है। लोंच करने से स्वाधीनता तथा निर्दोषिता गुण मिलता है, तथा शरीर में राग नष्ट होता है। इससे धर्म के चारित्र के ऊपर बड़ी भारी श्रद्धा व्यक्त होती है। लोंच करने वाले मुनि उग्रतम अर्थात् काय केशतम करके, दु:ख सहते है। जो केशलोंच करते हैं उनको दु:ख सहन करने का अभ्यास हो जाता है। इस पर से उसके आध्यात्मिक बल की तथा शरीर पर से उपेक्षाभाव की परीक्षा होती है। यह साधू के मूलगुणों मे से एक मूलगुण है। जिसका पालन होता है। २०वीं सदी मे सर्वप्रथम परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुंजर आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) ने निर्दोश केंशलोंच किया था।

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

सार्वभौमिक शान्ति के लिये जैन सिद्धान्त

ले लाडली प्रसाद जैन पापडीवाल प्रतिष्ठाचार्य–सवाई माधोपुर

ससार का प्रत्येक प्राणी सुख और शान्ति चाहता है-पर देखा यह जा रहा है कि जितनी दौड़ वह सुख शान्ति के लिए लगा रहा है-सुख और शान्ति उससे उतनी ही आगे बढ़ती जा रही है-उसका मूल कारण यह देखा जा रहा है कि उसने या तो जैन सिद्धान्तो का अध्ययन नहीं किया और कदाचित कुछ पढ भी लिया तो उनका चिन्तन और मनन नहीं किया-और जिन ने सुख शान्ति की वास्तविक परिभाषा को समझ लिया, चिन्तन और मनन कर जीवन में उसकी परिपालना करली उन्हे वास्तविक सुख और शान्ति का मार्ग मिल गया और वास्तविक सुख और शाति की प्राप्ति भी हो गई ।

सुख और शान्ति की परिभाषा–सुख दो प्रकार का है, एक भौतिक सुख और दूसरा आत्मिक सुख । भौतिक सुखो को हमने कई बार प्राप्त किया है-पर ये वास्तव मे सुख नहीं सुखाभाष ही रहे, कुछ काल तक क्षणिक सुख शान्ति मिल गई पर ये अस्थाई रहे, बिजली की भांति क्षण में ही विलीन हो गये, जैनाचार्यो ने सुख की परिभाषा करते हुये लिखा है, संसार के सुख स्थाई सुख नहीं है, इसीलिए तीर्थंकर जैसे महापुरुषो ने इनका त्याग किया है, जो संसार विषै सुख होता-तीर्थंकर क्यो त्यागे । यह सासारिक सुख भौतिक सुख है, विनाशीक हैं-वास्तविक सुख है, जो छः ढाला मे पं दोलत रामजी ने लिखा है कि "आतम को हित है सुख, सो सुख निराकुलता, बिन कहिये, आकुलता शिव माहि न, सातै शिवमग लागो चाहिये" और आगे कहा है तीन लोक तिहुकाल मांहि नहिं, दर्शन सों सुखकारी । सकल धर्म को मूल यही, इस बिन करनी दु:खकारी । अर्थात् हमने अभी तक सुख की वास्तविक की परिभाषा को समझा नहीं है और इसका मूलकारण है जैन सिद्धान्तों के पठन, पाठन, चिन्तन मनन और अनुपालन का अभाव । सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिये आवश्यक है जैन सिद्धान्तो का चिन्तन, मनन, कथनी और करनी समान । भगवान महावीर ने तीन सिद्धान्त बतलाये-जिसे तीन "अ" कार कहते हैं-अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त । जैन सिद्धान्त ने पांच बातों पर विशेष प्रकाश डाला, अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और

अपरिग्रह । इनमे झूठ, चोरी और कुशील का त्याग अहिसा मे गर्भित हे, अत अहिसा और अपरिग्रह मे पाचो पापो का त्याग हो जाता है । ससार मे कलह, विसवाद, की जड है एकान्तवाद अत. भगवान महावीर ने अनेकान्तवाद को समझाया ।

अहिंसा–किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से पीडा नही पहुँचाना अहिसा है । अहिसा को सभी धर्मों ने और महापुरुषो ने स्वीकार किया है ।

अहिसा परमोधर्म -जन धर्म ।

अहिसा भूताना जगति, विदित ब्रह्म परमम् । स्वामी समन्तभद्र राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, भीरुता, शोक, घृणा, आदि विकृत भावो का त्याग करना अहिसा है- जेन दर्शन (जेन शासन पृ १४३)

रागादिक का अ प्रादुर्भाव अहिसा है-पुरुषार्थ सिद्धयुपाय प्रमन्तयोगत्प्राण व्ययरोपण हिसा जनक भावो का त्याग करना अहिसा है । उमास्वामी अहिसा के जैन सिद्धान्त ने वेदिक हिन्दू धर्म की क्रियाओ पर प्रभाव डाला है । प्रो आयगर "अहिसा परमोधर्म" इस उदार सिद्धान्त ने ब्राह्मण धर्म पर छाप मारी है । लोकनायक तिलक जैनधर्म के सिद्धान्त विज्ञान के अनुकूल है । मेथ्यूमेके - लन्दन- तात्पर्य यह है कि भगवान महावीर का प्रथम सिद्धान्त था "अहिसा" दूसरा उनका सिद्धान्त था, अपरिग्रह-अर्थात् आवश्यकता से अधिक सग्रह मत करो-जितने कम से कम द्रव्य मे अपना काम चल सकता हो उतने मे चलाने का प्रयास करो-क्योकि जेनाचार्यों ने मूर्छा परिग्रह लिखा है, अनावश्यक आशक्ति मत रक्खो ।

अनेकान्त–यह जैन धर्म का बहुत महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, दो शब्द है एकान्त और अनेकान्त । एकान्त लडाई-झगडे की जड है, अपराधी हे, अनेकान्त न्यायधीश है । एकान्त मे हठवाद है, अनेकान्त मे समन्वयवाद है । स्याद्वाद, सप्तभगी यह सब अनेकान्त के रूपान्तर है । जगत के सभी पदार्थ अनन्त गुणात्मक है-उन अनन्तगुणो का परिणमन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो (अपेक्षाओ) से जानने का नाम ही अनेकान्त है । विभिन्न दृष्टिकोणो से विभिन्न प्रकार की प्रतीत होने वाली अनेक प्रकार की विशेषताए प्रत्येक पदार्थ मे होती है-उन विशेषताओ को जो अपेक्षावाद से देखता है, उसका नाम अनेकान्त है-जहाँ किसी प्रकार का विसवाद, झगडा या हठवाद होता ही नहीं । और जो एकान्तवाद से हठकर बैठ जाता है वहाँ विसवाद, कलह, उत्पन्न हो जाता है, वैसे दोनो मे केवल "ही" और "भी" का अन्तर है । 'ही' कलह कारक है, 'भी' समन्वय कारक है । उदाहरण के लिये बताया है दूध शरीर के लिये सर्वोत्तम पोषक पदार्थ है-शिशु का जन्म तो दूध के ही आधार पर है फिर किशोर हो प्रौढ हो, वृद्ध हो दूध तो सभी के लिये पौष्टिक है और इसीलिये इसे अमृत भी कहा है-पर वही दूध किसी अतिसार के रोगी को पिलाया

जायेगा तो वह उसके लिए विष जैसा होगा-पौष्टिक की दृष्टि से उसे जो अमृत कह रहा है वह भी सत्य है और अतिसार का रोगी उसे विष बता रहा है वह भी सत्य है-यह है अनेकान्त उस दूध को अमृत ही कहना या विष ही कहना-यह है एकान्तवाद । यदि अपेक्षा लगाली जाय तो दोनो ठीक हैं एकान्तवाद से दूध को अमृत ही कहना या विष ही कहना मिथ्या हो जावेगा । पुरुषार्थ सिद्धि उपाय मे लिखा हे एकेनाकर्षयन्ती, श्लपयन्ती वस्तुतत्व मितरेण । अन्तेनजयति जैनी, नीतिर्मन्थान नेत्रमिवणोपी । अर्थात जिस तरह दही को मथकर मक्खन निकालने वाली ग्वालिन मथानी की रस्सी को एक हाथ से खीचती है और दूसरे हाथ की रस्सी को ढील देती है-इसी तरह जैन पदार्थ निर्णय पद्धति (अनेकान्तवाद) पदार्थ के किसी एक धर्म को मुख्य करता है तो दूसरे को गौण कर देता है-उसे सर्वथा छोड नही देता । जैनधर्म के सिद्धान्त प्राचीन भारतीय तत्वज्ञान और धार्मिक पद्धति के अभ्यासियो के लिये बहुत महत्वपूर्ण है । इस स्याद्वाद से सर्वसत्य विचारो का द्वार खुल जाता है । स्याद्वाद की परिभाषा करते हुए भट्ट अकलक स्वामी ने लिखा है, "अनेकान्तात्मकार्थ कथन स्याद्वाद" अनेक धर्म-विशिष्ट वस्तु का कथन करना स्याद्वाद है । धनजय कवि कहते हे-जिस प्रकार मुक्त व्यक्ति का बोध उसके स्वर विशेष के द्वारा होता है उसी प्रकार स्याद्वाद वाणी के द्वारा जिनेन्द्र भगवान की निर्दोपता का ज्ञान होता है । आचार्य हेमचन्द्र ने बताया है कि स्याद्वाद का सिक्का सम्पूर्ण विश्व मे चलता है । इसकी मर्यादा के बाहर कोई भी वस्तु नही रह सकती । छोटे से दीपक से लेकर विशाल आकाश पर्यन्त सभी वस्तुएं किसी दृष्टि से नित्य और किसी दृष्टि से अनित्य रूप अनेकान्त मुद्रा से अकित है जैसे-'आत्मा' अब थोडा सा विचार एक उदाहरण से एकान्त विचारधारा पर भी देखिये कि एकान्तवाद का परिणाम क्या होता है -

एक ग्वाला क्षणिक तत्व के एकान्त भक्त पडित जी के पास गया और गाय चराने के पैसे मागने लगा-एकान्ती पंडितजी ने क्षणिक विज्ञान की धुन मे मग्न हो ग्वाले को यह कहकर वापस लौटा दिया कि जिसकी गाय थी और जो ले गया था, वे दोनो अब नही है बदल गये-इसलिये कौन और किसे पैसा दे । ग्वाला बडा दुखी हुआ-निराश वापस लौटा-एक स्याद्वादी पंडितजी के पास पहुँचा और उसने प्रथम पडितजी की बात सुनाई-दूसरे स्याद्वादी पडितजी ने उसे युक्ति समझाई-दूसरे दिन प्रथम पडितजी के घर गाय नहीं पहुँची । उन्हें चिन्ता हो गई-ग्वाले के घर पहुचे, गाय के विषय मे पूछा-ग्वाले को तो दूसरे पडितजी ने समझा ही दिया था, अत· ग्वाला बोला-महाराज गाय देने वाला, लेने वाला गाय-सभी तो बदल गये-इसलिये आप मुझसे क्या माँगते हैं । पंडितजी चक्कर मे पड गये । व्यवहारिक जीवन ने भ्रमाधकार दूर कर दिया-इसलिये उन्होने कहा "गाय सर्वथा नही बदली है" इसलिये उसने स्वीकार किया "उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्" स्याद्वाद युक्ति ही सत्य है-अनेकान्त या स्याद्वाद पर जितना भी चाहे लिखा जा सकता है । विस्तार भय से संक्षेप

में ही लिखना उचित समझकर यहीं विराम करता हूँ, कुछ अभिमत भी हैं-पहले मैं मानता था कि मेरे विरोधी अज्ञान में हैं आज मैं विरोधियो से प्यार करता हूँ-क्योंकि अब मैं अपने को विरोधियों की दृष्टि से भी देख सका हूँ-मेरा, अनेकान्तवाद, सत्य और अहिंसा इन युगल सिद्धान्तो का ही परिणाम है । महात्मा गांधी-हरिजन २१/७/४६ अनेकान्तवाद या सप्तभगी न्याय जैन दर्शन का मुख्य सिद्धान्त है । प्रत्येक पदार्थ के जो सात अन्त या स्वरूप जैन शास्त्रो में कहे गये हैं वस्तु स्थिति के अनुकूल हैं । डाक्टर सम्पूर्णानन्द जैन धर्म (जैनाचार्यों की) यह वृत्ति अभिनन्दनीय है कि उन्होंने ईस्वरीय आलोक के नाम पर अपने उपदेशो मे ही सत्य का एकाधिकार नहीं बताया । इसके फलस्वरूप उन्होंने साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता के दुर्गुणों को दूर कर दिया जिसके कारण मानव इतिहास भयंकर द्वन्द और रक्तपात के द्वारा कलंकित हुआ है । अनेकान्तवाद अथवा स्याद्वाद विश्व के दर्शनों में अद्वितीय है स्याद्वाद सहिष्णुता और क्षमा का प्रतीक है । कारण वह यह मानता है कि दूसरे व्यक्ति को भी कुछ कहना है । सम्यग्दर्शन और स्याद्वाद के सिद्धान्त औद्योगिक पद्धति द्वारा प्रस्तुत की गई जटिल समस्याओं को सुलझाने में अत्यधिक कार्यकारी होगे ।

श्री डा एम बी नियोगी एम ए एल एल बी एम एल एल डी भूतपूर्व चीफ जज नागपुर हाई कोर्ट तथा उपकुलपति नागपुर विश्वविद्यालय । महावीर के सिद्धान्त मे बताये गये स्याद्वाद को कितने ही लोग संशयवाद कहते हैं-इसे मैं नहीं मानता । स्याद्वाद-सशयवाद नहीं है किन्तु वह एक दृष्टि-बिन्दु हमको उपलब्ध करा देता है । विश्व का किस रीति से अवलोकन करना चाहिये यह हमें सिखाता है । यह निश्चय है कि विविध दृष्टि बिन्दुओ द्वारा निरीक्षण किये बिना कोई भी वस्तु सम्पूर्ण रूप से समझी नहीं जा सकती । स्याद्वाद पर आक्षेप करना बहुत अनुचित है ।

श्री प्रो आनन्द शंकर बाबूभाई ध्रुव से जब मैंने शकराचार्य द्वारा जैन सिद्धान्त का खडन पढ़ा तब से मुझे विश्वास हुआ है कि इस सिद्धात में बहुत कुछ है-जिसे वेदान्त के आचार्य ने नहीं समझा और जो कुछ अब तक जैन धर्म को जान सका हूँ, उससे मेरा दृढ़ विश्वास हुआ है कि यदि वे जैन धर्म को उसके मूल ग्रन्थों से देखने का कष्ट उठाते तो उन्हे जैन धर्म का विरोध करने की कोई बात ही नहीं मिलती ।

श्री डा गंगानाथ झा-प्रयाग विश्वविद्यालय इस प्रकार अनेकान्त, स्याद्वाद को अच्छे-अच्छे मनीषियों ने स्वीकार किया है-और यह माना है कि विश्व की समस्याओ को सुलझाने में अनेकान्त सिद्धान्त बहुत उपयोगी है ।

जैन धर्म में निमित्त ज्ञान

ससार मे रहते हुये प्राणी को निमित्ताधीन ज्ञान होता है । शुभ व अशुभ परणति के जैसा निमित्त मिलता है वैसा परिणाम होता रहता है । किन्तु शुद्धोपयोग में कैसा भी निमित्त रहे वह सदा अपने रूप मे ही रहता है । जैन धर्म अनादि निधन धर्म है । जिसे २४ तीर्थंकर प्रकाशित कर धर्म व ज्ञान की गंगा प्रवाहित करते है । द्वादशाग रूप श्रुतज्ञान में बारहवें अंग के विद्यानुवाद दसवें पूर्व में अष्टाग निमित्त ज्ञान का वर्णन है । शरीर के अवयव अंग चिन्ह रेखा व्यंजन आदि को देखकर उसके भविष्य के सुख दुख की घटनाओं को बतला देते हैं । एक कथानक चरितार्थ है कि राजा वसु नारद पर्वत इनके गुरु क्षीर कदम्ब ये चारों व्यक्ति एक दिन जंगल घूमने गये । वहां पर जंगल में मुनि महाराज अष्टांग निमित्त ज्ञान के ज्ञाता शिष्यों को निमित्त ज्ञान की शिक्षा दे रहे थे उन्हें निमित्त ज्ञान पूर्णरूप से समझा चुके थे । उसी समय इन चारों व्यक्तियों पर उनकी दृष्टि पड़ी तब गुरु ने अपने एक शिष्य से प्रश्न किया कि इन चारों में से कौन स्वर्ग और कौन नरक जायेंगे तब शिष्य ने उत्तर दिया कि इनमें से दो व्यक्ति स्वर्ग जावेंगे और दो नरक जावेंगे यह उत्तर सुनकर गुरु ने कहा कि तुम्हारा निमित्त ज्ञान सही है । फिर दूसरे शिष्य से प्रश्न किया कि इनमें स्वर्ग कौन-कौन जायेगा कौन-कौन नरक जायेगा, तब शिष्य ने उत्तर दिया कि राजा वसु और पर्वत दोनों नरक जायेंगे और नारद व क्षीर कदम्ब स्वर्ग जावेगे । गुरु कहते हैं कि तुम्हारा भी निमित्त ज्ञान सही है । इनका चर्चा सुनकर क्षीर कदम्ब कहते है कि मेरा पुत्र पर्वत नरक जावेगा ? पिता ने बहुत प्रयत्न किया पर पिता के निधन के बाद पुत्र विपरीत होकर बकरे का यज्ञ बताकर नरक चला गया । इसी पाप का समर्थन कर राजा वसु भी नरक मे चले गये इससे सिद्ध होता है कि निमित्त ज्ञान भी अवधि ज्ञान जैसा महान् होता है । अवधि ज्ञान तो अपनी अवधि अन्दर दूर क्षेत्र तक पदार्थों का ज्ञाता है किन्तु निमित्त ज्ञान प्रत्यक्ष देखने पर भविष्य का बोध करता है । यह ज्ञान भी यथार्थ होता है ज्योतिष ज्ञान भी भविष्य का ज्ञान का द्योतक है । श्रुत ज्ञान में सभी गर्भित हैं । वैधक ज्योतिष मंत्र विद्या आदि । यद्यपि ज्ञान आत्मा का ही है फिर भी कारणो के अनुसार विभिन्न प्रकार का होता है । मतिज्ञान का कारण पांच इन्द्रिय हैं । श्रुत ज्ञान भी भिन्न-भिन्न कारणों द्वारा ११ अंग चौदह पूर्व आदि का बोध होता है । भगवान की वाणी में जो आता है उसे ही गणधर द्वादशांग रूप से रचना करते हैं । सम्यक्त के साथ इनका ज्ञान होता है वह अवधि मन: पर्यय केवल ज्ञान को प्राप्त कराकर मुक्ति के पात्र होते हैं । ज्ञान गुण है उसी की पांच पर्यायें होती हैं । केवल ज्ञान तो नित्य पर्याय है । अत: निमित्त ज्ञान भी उपयोगी है ।

पं. अमरचंद जैन प्रतिष्ठाचार्य शाहपुर सागर (म.प्र.)

जैन शोध का महत्त्व

विद्यावारिधि डॉ महेन्द्रसागर प्रचडिया एम ए ,
पी –एच डी , डी लिट्
(निदेशक जैन शोध अकादमी)

शुद्धि, शुद्ध करने की प्रक्रिया, सस्कार तथा अनुसधान परक अर्थ (अभिप्राय) का बोधक शब्द है-शोध । जैन जीवन और साहित्य मे शोध का महत्व अपूर्व है । जीवन और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । जागतिक और आध्यात्मिक जीवन विकास के लिए शोध की भूमिका महत्त्वपूर्ण है । जैनचर्या आत्मा को क्रमिक विकास की द्योतक है । बहिरआत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा एक ही आत्मा के क्रमिक विकास-चरण है । जिनेन्द्र आत्मा का विशुद्ध स्वरूप है । जिनके द्वारा नि सृत वाणी वस्तुत कहलाती है-जिनवाणी । प्रमाद और असमर्थता वश जिनवाणी को जब शब्दायित किया गया तो कालक्षेत्र की प्रभाव वश उसमे दोष और अशुद्धि का आरोपण होने लगा । मूल आशय और अभिप्राय को ध्यान मे रखकर विकृत और विलुप्त साहित्य का सधान-अनुसधान वस्तुत शोध का विषय बना । यहा सक्षेप मे चर्चा करना हमे मूलत ईप्सित है ।

जीवन शुद्धि का मूलाधार है-भोजन । आज की जीवनचर्या मे जो आशातीत गिरावट आयी है उसका सीधा प्रभाव जीवन की प्रामाणिकता पर पडा है । आज परस्पर मे अनुग्रह विग्रह मे परिणत हो गया है । जैन चर्या चौका शुद्धि की पोषक रही है । आज इस सस्कृति (शुद्धि) का लोप ही हो गया है । चौका के अभिप्राय से आज प्राय हम अनभिज्ञ हो गए हैं । जीवन मे उसके प्रयोग-उपयोग का तब प्रश्न ही नहीं उठता । चौका की सस्कृति और उसकी उपयोगिता आज भी प्रासगिक है । सस्कृति का अर्थ यहाँ शुद्धि है ।

चौका से अभिप्राय है चार प्रकार की शुद्धियो का समीकरण । क्षेत्र शुद्धि, द्रव्य शुद्धि, काल शुद्धि और भावशुद्धि मिलाकर चौका के रूप को स्वरूप प्रदान करती है । शुद्ध और स्वच्छ वायुमण्डल से सम्यक्त भूमि प्रदेश वस्तुत क्षेत्र शुद्धि कहलाती है । सर्वत्र भोजन प्रकरण नहीं होना चाहिए । न्याय पूर्वक अर्जित शुद्ध और प्राकृत भोज्य पदार्थ चौका मे एकत्र करना वस्तुत द्रव्य शुद्धि है । द्रव्य शुद्धि के प्रति आज का आम आदमी अनभिज्ञ है । वह भक्ष्य अभक्ष्य का भेद करने मे असमर्थ है । द्रव्य शुद्धि के अभाव मे आज का जैन-जैनेतर नाना प्रकार के विषाक्त और भयकर रोगो से ग्रसित है । काल शुद्धि भोजन प्रकरण मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । सारा ससार सूर्य को

ऊर्जा का केन्द्र स्वीकारता है । उसके प्रकाश में उत्पन्न तथा तैयार किए गये पकवान पोषणकारी होते हैं । सूर्य प्रकाश में भोजन करने-कराने का औचित्य असंदिग्ध है । आश्चर्य है जैन भी इस सत्य की अवहेलना करने मे लगे है । रात्रि भोजन मात्र छोटे-बडे कीट-कीटाणुओ की विराधना का ही कारण नहीं है-अपितु रात्रि भोजन प्राणी के मन वचन और कर्म तंतुओ को प्रभावित कर विनाश की ओर जीव को प्रेरित करता है ।

सबसे महत्त्वपूर्ण भोजन प्रकरण की शुद्धि है भाव शुद्धि । भाव शुद्धि के अभाव मे शेष सभी शुद्धियाँ स्खलित होने लगती हैं क्योकि भाव शुद्धि हमारी अन्तरचेतना का प्रतिनिधित्व करती है । आर्जव धर्म लक्षण के अभाव मे हमारी चर्या में आडम्बर और प्रदर्शनकारी प्रवृत्तियों का अभिबर्द्धन हुआ है । फलस्वरूप भाव शुद्धि का लोप होने लगा है । इस प्रकार भ्रष्ट भोजन हमारी जीवनचर्या को नष्ट करता है । लोक में कहावत आज भी जीवत है-जैसा खाओगे अन्न वैसा बनेगा मन ।

भावशुद्धि के प्रकरण मे एक जीवत वृत्त का स्मरण हुआ है । एक हलवाई की दुकान पर मेरा जाना हुआ । एक सम्भ्रान्त परिवार के व्यक्ति ने एक किलो के डिब्बे मे साडे सात सौ ग्राम मिठाई खरीदकर रखवा ली । पैकिग कराने के उपरान्त जब वे चलने को हुए तब एक मित्र ने उनसे पूछा एक किलो के डिब्बे मे साढे सात सौ ग्राम मिठाई पैकिग क्यो कराई आपने ? रहस्य किसी को नही मालूम था और मुझे भी नही, पर जब क्रेता ने मन्तव्य को स्पष्ट किया तो ज्ञात हुआ कि आए दिन सम्बधियो मे मिष्ठान ले जाना होता है अत इस प्रकार से प्रति डिब्बे मे ढाई सौ ग्राम की बचत तो हो ही जाती है । मिठाई एक किलो के डिब्बे मे एक किलो ही समझी जाती है । यह सुनकर दग से रह जाना पडा । अब आप विचार कीजिए भाव शुद्धि का किस प्रकार अत हो गया । उस मिठाई को जो भी खायेगा उसके चित्त मे तद्नुसार सस्कार उत्पन्न होगे ।

इस प्रकार चौका की सस्कृति से अनुप्राणित भोजन व्यक्ति मे सद् सस्कार की प्रवृत्ति को चिरजीवी करता है । इसके अभाव मे जो हो रहा है उस अप्रमाणिक जीवनचर्या के परिचय देने की आवश्यकता अब यहाँ नही रह गयी है । अत वह आज के जीवन मे रच-पच गई है ।

जीवन शुद्धि के साथ-साथ वैचारिक शुद्धि के लिए साहित्यिक शोध की आवश्यकता भी असदिग्ध है आज की जीवनचर्या से स्वाध्याय के सस्कार उठ से गये हैं अत आज जिनवाणी को समझना दुरुह हो गया है । जिनवाणी के प्रत्येक शब्द आज पारिभाषिक होते जा रहे है । साधु सस्कृति से आज का आदमी प्राय अनभिज्ञ है । अभिवादन करने का अन्दाज भी उसे नहीं रहा । चप्पल/जूते पहिने हुए ही श्रावको को मैने जैन साधु को नमस्कार करते देखा है । 'नमोस्तु' शब्द के अभिप्राय से अपरचित होने के कारण उसके प्रयोग करने मे असमर्थ है । किससे वन्दामि और किससे इच्छामि कहा जाता है और क्यो ? उससे आज का आम आदमी अनभिज्ञ है ।

इतना ही नहीं, स्वाध्याय के अभाव मे हमारे धार्मिक श्रद्धान और मान्यता में भी विकार पैदा हो गये हैं । अब जैन भी वीतराग देव से माग करने लगे हैं । तीर्थ क्षेत्रों और मंदिरों में मनौती मनाने लगे हैं । साधुओ और साधको की निन्दा करने लगे है । इससे मिथ्यात्व का जन्म होता है । पाप कर्म एक जन्म को बिगाड़ते है परन्तु मिथ्यात्व तो जन्म जन्मान्तरो का जीवन बिगाड़ देता है । इस भयकर भूल को मिटाने के लिए जैन शोध की आवश्यकता असदिग्ध हो जाती है ।

परमवद्य पूज्य आर्ष आचार्यो द्वारा प्रणीत धर्मग्रन्थों को प्रकाश मे लाने का काम शोध के अन्तर्गत आता है । ऐसे दुरुह ग्रंथो की सरल एव सहज अर्थ-व्याख्या तथा शुद्धनय पूर्वक अर्थ-अभिप्राय को स्पष्ट करना शोध प्रक्रिया का लक्ष्य एवं उद्देश्य है ।

साधूचर्या जिनधर्म की प्रयोगशाला है । साधू तथा सुधी विद्वानो की संगति करने से जिनवाणी के सम्यक और शुद्ध स्वरूप को समझना आज की प्रथम आवश्यकता है । मेरी राय में सुधी-साधुओ के तत्वाधान मे आवश्यकतानुसार दो तीन दिनो के शिक्षा शिविर लगने चाहिए, जिनमें जिनवाणी की पारिभाषिक शब्दावलि का वैज्ञानिक तथा आधुनिक भाषा-शैली में अर्थ, अभिप्राय अभिव्यक्त होने चाहिए ताकि कॉलेज और कान्वेन्टस में पढने वाले बच्चे धर्म के मर्म को आत्मसात कर सकें । इससे जैन शोध का सम्यक् उपयोग हो सकेगा और शुद्ध तथा सात्विक जीवनचर्या जीने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलेगा ।

इत्यलम् ।

मगल कलश, 394, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड
अलीगढ़–1

गुणस्थान

ले श्री जिनचन्द्र शास्त्री, अंकली

गुणस्थानेषु सर्वेषु गतानामाश्राय शिवं ।

अभिन्नं सहजं सिद्धं चित्स्वभावं न्माम्यह ॥

समस्त गुण स्थानों को प्राप्त करके जिन्होने मोक्ष स्थान का आश्रय लिया है उन अभिन्न सहज चैतन्य चित्त स्वभाव वाले सिद्ध परमेष्ठी को मै नमस्कार करता हूँ । मोह और योग के निमित्त से होने वाली आत्मा के दर्शन और चारित्र गुण की अवस्थाओ को गुणस्थान कहते है । इनमे से कोई तो मोह के उदय से, कोई मोह के उपशम से, कोई मोह के क्षयोपशम से और कोई मोह के क्षय से, कोई मोह की अनपेक्षा से और कोई योग के सद्भाव से, और कोई योग के अभाव से होता है । ये सभी निमित्त है तथा निमित्त सद्भाव और अभाव रूप होता है ।

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान–मिथ्यात्व प्रकृति नामक दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से वस्तु स्वरूप के यथार्थ श्रद्धान न होने को मिथ्यात्व कहते हैं । इसके असख्यात लोक प्रमाण भेद है । परन्तु समान जाति की अपेक्षा से पांच भेद कहे हैं । (१) ऐकातिक (२) सांशयिक (३) विपरीत (४) वैनयिक (५) अज्ञान । **मिथ्यादृष्टि जीवो की विशेष जानकारी के लिए अन्य भेद बताते है ।**

(१) अनादि मिथ्या दृष्टि (२) अनादि सान्त मिथ्यादृष्टि (३) २८ मोह प्रकृतियो की प्रथम सत्ता वाले मिथ्या दृष्टि (४) २७ की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि (५) २४ की सत्ता वाला मिथ्या दृष्टि (६) अनतानुबधी का उदयरहित मिथ्यादृष्टि (७) मरणरहित मिथ्यादृष्टि (८) वेदक सम्यकत्व सहित सयमासयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि (९) वेदक सम्यकत्व सहित सयमाभिमुख (१०) प्रथमोपशम सम्यक्तव सहित सयमासंयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि (११) प्रथमोपशम सम्यक्तवसहित सयमाभिमुख मिथ्यादृष्टि (१२) वेदक योग्य मिथ्यादृष्टि (१३) तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि । (१४) दर्शनमोहोपशामनाप्रतिष्ठापक मिथ्यादृष्टि (१५) आहारकद्विक की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि (१६) अगृहीत मिथ्यादृष्टि (१७) गृहीत मिथ्यादृष्टि (१८) द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि (१९) सातिशय मिथ्या दृष्टि (२०) लब्धोन-लब्धिक मिथ्यादृष्टि ।

(२) सासादन सम्यक्तव–जिस उपशम सम्यग्दृष्टि जीव के सम्यक्तव की विराधना हो गई और मिथ्यात्व के उदय से होने वाला मिथ्यात्व आ नही पाया इस बीच के परिणामों को सासादन सम्यक्त्व कहते हैं । सासादन सम्यग्दृष्टि जीवो की विशेष जानकारी के लिए कुछ सासादन सम्यक्दृष्टियो के भेद कहते है । (१) प्रथमोपशम च्युत सासादन (२) द्वितीयोपशम च्युत सासादनमृत सासादन (३) प्रथमोपसम च्युत सासादनमृत सासादन (४) विग्रहगतिसमाप्त सासादन

(५) निर्वृत्यपर्याप्ति समाप्त सासादन (६) क्रोध प्रेरित सासादन (७) मान प्रेरित सासादन (८) माया प्रेरित सासादन (९) लोभ प्रेरित सासादन ।

(३) सम्यग्मिथ्यात्व–सम्यक् या समीचीन अथवा सच्ची, मिथ्या (झूठी) दृष्टि या श्रद्धा अथवा रुचि जिसके होती है वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि है । उसके परिणमन को सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं । अब सम्यग्मिथ्यादृष्टियो की विशेषताओ के लिए उनके भेदों को कहते हैं । (१) वेदक योग्य मिथ्यात्वगत सम्यग्मिथ्यादृष्टि (२) द्वितीयोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि (३) प्रथमोपशमागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि (४) वेदन् सम्यक्त्वागत सम्यग्मिथ्यादृष्टि (५) २८ की सत्तावाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि (६) २४ की सत्ता वाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि (७) उपर्यागतिगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि (८) उपर्यागत्यधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि (९) अध समायातोपरिगतिकसम्यग्मिथ्यादृष्टि (१०) अध समायातोधोगतिक सम्यग्मिथ्यादृष्टि ।

(४) अविरत सम्यक्तव–जहाँ सम्यग्दर्शन तो प्रगट हो गया है परन्तु एक देश या सर्वदेश किसी भी प्रकार का व्रत (सयम) नहीं हुआ हो उसे अविरत सम्यक्तव गुणस्थान कहते हैं । इस गुणस्थान के विशेष परिज्ञान के लिए सम्यग्दृष्टियो के भेद कहते है । (१) आद्य प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि (२) प्रथमोपशम सम्यक्तवागत वेदक सम्यग्दृष्टि (३) मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि (४) सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि (५) द्वितीयोपशमागत वेदक सम्यग्दृष्टि (६) कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि (७) २८ सत् प्रकृतिक मिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि (८) उद्वेलित सम्यक्तवमिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि (९) उद्वेलित द्वय मिथ्यात्वागत प्रथमोपशम सम्यग्मिथ्यादृष्टि (१०) सम्यग्मिथ्यात्वागत वेदक सम्यग्दृष्टि (११) २३ की सत्तावाला वेदक सम्यग्दृष्टि (१२) २२ की सत्ता वाला सम्यग्दृष्टि (१३) क्षायिक सम्यग्दृष्टि (१४) द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि (१५) अपर्याप्त द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि (१६) अपर्याप्त वेदक सम्यग्दृष्टि (१७) अपर्याप्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि (१८) दर्शन मोह क्षपणा प्रस्थापक वेदक सम्यग्दृष्टि (१९) दर्शनमोहोपशामना प्रस्थापक वेदक सम्यग्दृष्टि (२०) अनतानुबंधी का विसयोजक वेदक सम्यग्दृष्टि (२१) द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि (२२) वेदक सम्यग्दृष्टि (२३) क्षायिक सम्यग्दृष्टि ।

(५) देशसंयत–जहा सम्यक्तव तो प्रगट हो गया हो और देश सयम भी उत्पन्न हो जावे उस स्थान को देश सयत गुणस्थान कहते हैं । यह गुणस्थान ११ भेद मे होता है । (१) दर्शनप्रतिमा (२) व्रत प्रतिमा (३) सामायिक प्रतिमा (४) प्रोषधप्रतिमा (५) सचित्त विरति प्रतिमा (६) रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा (७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा (८) आरभत्याग प्रतिमा (९) परिग्रह विरति प्रतिमा (१०) अनुमति विरति प्रतिमा (११) दृष्टिविरति प्रतिमा ।

(६) प्रमत्त विरत गुणस्थान–जो सम्यक्तव और सकल व्रत (महाव्रत) सहित हो, परन्तु संज्वलन कषाय का तीव्र उदय होने से प्रमाद सहित हो वह प्रमत्तविरत गुणस्थान कहलाता है । इसमे आहार करने, विहार करने, दीक्षा-शिक्षा प्रायश्चित्त देने आदि व इनके विकल्प करने रूप

प्रमाद रहता है। प्रमाद के भेद इस प्रकार हैं। (१) स्त्री (२) अर्थ (३) भोजन (४) चोर (५) राज (६) वैर (७) पर पाखण्ड (८) देश (९) भाषा (१०) गुणवंध (११) देवी (१२) निष्ठुर (१३) पर पैशून्य (१४) कंदर्प (१५) देशकालानुचित (१६) भण्ड (१७) मूर्ख (१८) आत्म प्रसशा (१९) पर परिवाद (२०) पर जुगुप्सा (२१) पर पीडा (२२) कलह (२३) परिग्रह (२४) कष्याद्यारंभ (२५) संगीतवाद्य ये २५ कथा हैं। (१) अनं क्रोध (२) अन मान (३) अन माया (४) अन लोभ (५) अप्र क्रोध (६) अप्र मान (७) अप्र माया (८) अप्र लोभ (९) प्र क्रोध (१०) प्र मान (११) प्र माया (१२) प्र लोभ (१३) सं क्रोध (१४) सं मान (१५) स माया (१६) स लोभ (१७) हास्य (१८) रति (१९) अरति (२०) शोक (२१) भय (२२) जुगुप्सा (२३) स्त्री वेद (२४) पुरुष वेद (२५) नपुसक वेद ये २५ कषाय हैं। (१) स्पर्शन (२) रसना (३) घ्राण (४) नेत्र (५) कर्ण (६) मन। ये ६ इन्द्रियां हैं। (१) स्त्यानगृद्धि (२) निद्रानिद्रा (३) प्रचला-प्रचला (४) निद्रा (५) प्रचला ये ५ निद्रा हैं। (१) स्नेह (२) मोह ये २ प्रणय है। इस तरह २५×२५×६×२=३७५०० साढे सैतीस हजार भेद हैं।

(७) अप्रमत्त विरत–जहाँ सम्यक्तव एवं महाव्रत हैं तथा संज्वलन कषाय के मद उदय से प्रमाद भी नहीं है उसे अप्रमत्त विरत गुणस्थान कहते हैं। (१) स्वस्थान अप्रमत्तविरत (जो अप्रमत्त विरत आगे के गुणस्थान में जाने का अपूर्व परिणाम नहीं कर रहा और छठे गुणस्थान में जावेगा) (२) निरतिशय अप्रमत्त विरत (जो अप्रमत्त विरत छठे गुणस्थान में नहीं जावेगा किन्तु मरण कर चौथे मे जावेगा वह भी अप्रमत्त विरत है। जो श्रेणी चढने के सन्मुख है वह सातिशय अप्रमत्त विरत गुणस्थान होता है।)

(८) अपूर्वकरण गुणस्थान–चारित्र मोह के उपशम या क्षय के लिए अप्रमत्त विरत साधु जब अध:करण करके अपूर्वकरण में पहुंचता है तो अपूर्वकरण के प्रथम समय से ही यह अपूर्वकरण गुणस्थान होता है। इस गुणस्थान में परिणामों में प्रतिसमय ६ कार्य विशेष होते हैं। (१) प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता (२) पूर्व में बंधे हुए कर्म की असंख्यात गुणी स्थिति का घात (३) असंख्यात गुणी कर्म स्थिति होकर ही नवीन कर्मों का बंधना (४) पूर्व बंधे हुए कर्मों का सुसंख्यात गुणा अनुभाग का घात (५) असंख्यात गुणी कर्म वर्गणाओं की निर्जरा (६) पाप प्रकृतिओं का पुण्य प्रकृतियों मे बदलना। गुणस्थान का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है-

अ = नहीं, पूर्व = पहले, करण = परिणाम। अर्थात् जो परिणाम पहले समय में उसके या अन्य के नहीं थे उन परिणामों का होना। इसमें क्षपक और उपशमक दो प्रकार के जीव होते हैं।

(९) अनिवृत्तिकरण–जहां पूर्व व उत्तर समयवर्ती साधुओं के परिणाम विलक्षण हो तथा समान समयवर्ती साधुओं के परिणाम एकसे ही हों समान हो उन परिणामों का नाम अनिवृत्ति करण गुण स्थान है। इस गुणस्थान का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है। अ = नहीं, निवृत्ति = भेद,

करण - परिणाम अर्थात् जहां समान समय के परिणामो में भेद न हो उन परिणामों को अनिवृत्तिकरण कहते है । इसमे क्षपक और उपशमक दो प्रकार के जीव होते हैं ।

(१०) सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान–जब केवल संज्वलन सूक्ष्म लोभ रह जाता है तब सूक्ष्म सापराय गुणस्थान कहलाता है । उस सूक्ष्म लोभ के क्षय के लिए चारित्र होता है उसे सूक्ष्म सांपराय चारित्र कहते है । इस गुणस्थान मे रहने वाले अतरात्मा का नाम सूक्ष्म सापराय प्रविष्ट शुद्धि सयत उपशमक या क्षपक है । यह गुणस्थान प्रत्याख्यानावरण के क्षयोपशम के सज्वलन सूक्ष्म कृष्टिगत लोभ के उदय के निमित्त से तथा सूक्ष्म सापराय चारित्र परिणाम द्वारा होता है । इसमे चारित्र मोह का क्षयोपशम या उपशम या क्षय है । इसमे भाव सराग चारित्र होने से क्षयोपशमिक है किन्तु अवशिष्ट मोह के भी क्षय का यत्न है अत मे अवशिष्ट सूक्ष्म लोभ का क्षय कर देता है अत· क्षायिक भाव है । उपशम श्रेणी मे चढे हुए अतरात्मा के सूक्ष्म लोभ के उपशम का यत्न है व अंत मे सूक्ष्म लोभ का भी उपशम कर देता है, अत औपशमिक भाव है ।

(११) उपशात कषाय गुणस्थान–जिनके समस्त कषाये उपशात हो चुकी है उन्हे उपशात कषाय कहते हे । इस गुणस्थानवर्ती जीव उपशात कषाय वीतराग छद्मस्थ है । ये जीव उपशात कषाय है वीतराग हैं और छद्म कहिए ज्ञानावरण और दर्शनावरण इनमे स्थित है । उपशम का समय समाप्त होते ही नीचे दसवे गुणस्थान मे गिरता है फिर नवमें गुणस्थान मे गिरता है इस पम्म्परा मे ७वें ६वे तक तो गिरना ही पड़ता है । आगे चढ भी सकता है व गिर भी सकता है । यदि गिरेगा तो चौथे तक फिर क्षपक श्रेणी चढकर निर्वाण प्राप्त कर सकता है और चौथे मे मरण करे तो देवगति मे ही उत्पन्न होगा । द्वितीयोपशम मे मरण करे तो देवगति मे और बाद मे यातो वेदक सम्यक्तव पाकर सातवे तक आ सकता है या मिथ्यादृष्टि हो सकता है या सासदन मे भी जा सकता है ।

(१२) क्षीणकषाय गुणस्थान–जहा समस्त कषायो का क्षय हो चुका है उन निर्मल परिणामो को क्षीण कषाय गुणस्थान कहते हैं । इस गुणस्थान वर्ती जीव का नाम क्षीण कषायवीतराग छद्मस्थ है और अत्यंत निर्मल है । चारित्र मोह के क्षय से प्रगट हुआ है । इसमे क्षायिक भाव हे । इसके प्रवेश के समय में तो पृथक्त्व वितर्क विचार होता है, पश्चात् एकत्व पृथक्तव वितर्कवीचार होता है । इस ध्यान के समाप्त होते ही केवलज्ञान उत्पन्न होता है ।

(१३) संयोग केवली–चारो घातिया कर्मों के क्षय होते ही वे अंतरात्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनतसुख और अनतवीर्य से संपन्न जिनेन्द्र, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अरहंत, सकल परमात्मा आदि नामो वाले, ईश्वर हो जाते हैं । योग के कारण सयोग केवली कहलाते हैं । भव्य जीवो के भाग्य से इनके विहार होता रहता है । ये पृथ्वीतल से ५००० धनुष ऊपर रहते हैं । ये औपचारिक कारणो से २ प्रकार के होते हैं । (१) तीर्थंकर केवली (२) सामान्य केवली । तीर्थंकर केवली के समवशरण होता हे और सामान्य केवली के गधकुटी होती है । यह सव रचना इन्द्र की आज्ञा से कुवेर ऋद्धि की विशेषता से अतर्मुहुर्त मे कर देता है । ये मूलग्रंथ कर्ता कहलाते हैं ।

इनकी दिव्यध्वनि निरक्षरी कहलाती है । आत्मीय अनंतशक्ति से केवलज्ञान प्रगट हुआ है । पूर्णज्ञान है । अठारह दोषों से रहित है । आयु के अन्त होने पर इनका निर्वाण होगा । धातु दोष से रहित परमौदारिक शरीर हो जाता है । नख केश नहीं बढ़ते हैं कवलाहार नहीं करते हैं ये स्नातक नामक निर्ग्रंथ कहलाते हैं । पलक नहीं झपकते ।

इसके सयोग केवली, तीर्थंकर केवली, सामान्य केवली, मूक केवली, अंत:कृत केवली, समुद्घात केवली, उपसर्ग सिद्ध केवली, आदि अनेक भेद हैं । उनके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं होता है । यहाँ आठ प्रातिहार्यों की मुख्यता होती है । ये मोक्षमार्ग के नेता कहे जाते हैं । आयु के अन्त समय से कुछ दिन बाकी रहने पर इनका विहार और उपदेश बंद होता है । आयु अंतर्मुहुर्त शेष रह जाने पर केवली समुद्घात करते हैं । यह आयु को छोड़कर शेष अघातिया कर्मों की स्थिति अधिक होने पर आयु के बराबर लाने के लिए किया जाता है । जिन केवलियों के समुद्घात नहीं होता उनके भी योग निरोध की क्रिया का प्रारभ हो जाता है । अन्तर्मुहुर्त के वाद वादरकाय योग से वादर वचन का, फिर अर्न्तर्मुहुर्त के बाद वाद श्वासोस्वास का फिर इसी क्रम से वादरकाय योग को सूक्ष्म काय योग मे सूक्ष्म मनोयोग का फिर सूक्ष्म बचन योग का फिर सूक्ष्मस्वासोच्छ्वास का फिर सूक्ष्म काय योग का निरोध करते हैं । सयोग केवली के अन्तिम समय में योगपूर्ण सर्वथा निरोध, सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान का व्युच्छेद व तीनों घातिया कर्मों का आयु कर्म के पूर्ण समान हो जाना ये तीनों बातें एक साथ होती हैं ।

(१४) अयोग केवली गुणस्थान–योग के नष्ट होते ही ये केवलज्ञानी सकल परमात्मा अयोग केवली कहलाते हैं, शरीर के क्षेत्र में रहते हुए भी शरीर से इनके प्रदेशों का संबंध नहीं रहता । इस गुणस्थान मे व्युपरत क्रिया निवृत्ति शुक्ल ध्यान है । इसका दूसरा नाम समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति है । ध्यान का कार्य निर्जरा होने से ध्यान संज्ञा है । इस गुणस्थान का काल समाप्त होते ही अनतर गुणस्थानातीत सिद्ध हो जाते हैं । इस गुणस्थान का समय अंतर्मुहुर्त है । अथवा पाच ह्रस्व स्वरो के शीघ्र बोलने में जितना समय लगे उतना है ।

सिद्ध परमेष्ठी गुणस्थानातीत हैं । ये द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म से रहित हैं । लोकांत में निवास करते है । जिस स्थान से मुक्त हुए हैं उसी स्थान की सीध के ऊपर लोकशिखर पर विराजमान रहते हैं ! जिस आसन से मुक्त हुए हैं उसी आसन के आकार में रहते हैं । यहां क्षायिक भाव ९ व जीवत्व ये १० भाव होते हैं अभेद विवक्षा में ५ होते हैं ४ लब्धियां क्षायिक सम्यक्तव में चारित्र का अतर्भाव है । यह सिद्ध अवस्था सर्वथा अत्यन्त निर्मल पूर्ण सुख की पवित्र अवस्था है । इसकी प्राप्ति आत्मस्थिरता से होती है । आत्मस्थिरता सम्यग्दर्शन के अनुभव से होती है यह आत्मस्वभाव के परिचय से प्रगट होता है यह पर्यायोंगत है । अनन्त परिणमन होने पर भी स्वभाव एक है । आत्मस्वभाव का परिचय तत्वों के भूतार्थ नय से जाना जाता है । पर्याय जिस गुण की है उस गुण को मुख्य करके पर्यायों को गुण में लीन करना व गुणों को गुणों के अभिन्न आधाररूप अभेद आत्मद्रव्य को लक्ष्य करके विलीन करना परम पुरुषार्थ है । इस उपाय के बाद निर्विकल्प होकर आत्म स्वभाव को कारणरूप से उपादान करके स्वयं परिणमते हुए केवलज्ञानमय उपयोग से परिणमन कर अनत सुखी हैं ।

जिनभक्ति

श्री उपाध्याय महावीर प्रसाद इच्चलकरञ्जी

एकापि समर्थेयं जिनभक्ति दुर्गतिं निबारयितुं ।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ॥

यह भगवान जिनेन्द्र देव की एक भक्ति ही समस्त नरकादिक दुर्गतियों से बचाने के लिए समर्थ है तथा समस्त पुण्यों को पूर्ण करने के लिए समर्थ है । यह भगवान जिनेन्द्रदेव की भक्ति भव्य जीवो को मोक्षलक्ष्मी देने के लिए भी पूर्ण समर्थ है । "अर्हदादि गुणानुरागों भक्ति" अर्हंत आदि के गुणो मे अनुराग होना भक्ति का लक्षण बतलाया है । अर्हंत के ४६ गुण, सिद्ध के ८ गुण आचार्य के ३६ गुण उपाध्याय के २५ गुण और साधु के २८ गुण मूलरूप से होते हैं । यहाँ जिन भक्ति से अरहंत भक्ति या आप्त भक्ति अथवा देवाधिदेव से प्रयोजन है । अतएव उनके ४६ गुणों में मूलरूप से हैं उनमे अनुराग चाहिए । उन गुणो की जानकारी इस प्रकार है ।

जन्म के साथ १० गुण पाये जाते हैं जो अन्य साधारण मनुष्यों में नहीं पाये जाने के कारण अतिशय के नाम से भी कहे जाते हैं । (१) उनके शरीर में पसीना कभी नहीं आता । (२) मलमूत्र नहीं होता (३) रुधिर दूध के समान सफेद होता है (४) समचतुरस्र संस्थान होता है (५) वज्रवृषभनाराच संहनन होता है (६) शरीर अत्यत सुन्दर होता है (७) शरीर से सदा सुगंध आती रहती है (८) शरीर पर उत्तम लक्षण रहते हैं (९) अतुलबल होता है (१०) उनके मुख से सबका हित करने वाले मधुर वचन निकलते हैं ।

केवलज्ञान के प्रगट होने के साथ ही ये १० गुण होते हैं तथा इन्हें अतिशय भी कहते हैं । (१) चारसौ कोसपर्यन्त दुर्भिक्ष नहीं होता (२) आकाश में गमन करना (३) किसी जीव को बाधा न पहुचाना (४) कवलाहार ग्रहण न करना (५) किसी प्रकार का उपसर्ग न होना (६) चारों दिशाओं में चार मुख दिखाई देना (७) समस्त विद्याओं का स्वामीपना प्रगट होना (८) शरीर की छाया का न पडना (९) नेत्रों की टिमकार न लगना (१०) नख केशों का न बढना ।

भक्ति और अनुराग पूर्वक देव इन १४ गुणों को प्रगट करते हैं इनको अतिशय के नाम से भी कहा जाता है। (१) समस्त जीवों का कल्याण करने वाली भगवान की दिव्य ध्वनि अर्द्ध मागधी भाषा में होती है भगवान की दिव्यध्वनि एक योजन तक सुनाई पड़ती है परन्तु मागध जाति के देव उसे समवशरण के अंत तक पहुंचाते रहते हैं तथा उस अनक्षरी भाषा को अर्द्ध मागधी भाषा में परिणत करते रहते हैं। जिसको समस्त प्राणी अपनी अपनी भाषा में समझ लेते हैं (२) समवशरण मे आने वाले समस्त प्राणी जन्म से होने वाला वैर विरोध छोड़कर मैत्री भाव से रहते हैं (३) वहां की पृथ्वी के वृक्ष छहों ऋतुओं में होनेवाले फल गुच्छे पत्ते और फूलों से सुशोभित रहते है (४) वहा की पृथ्वी दर्पण के समान अत्यन्त निर्मल रहती है अनेक प्रकार के रत्नों से बनी हुई होती है और बडी ही सुन्दर होती है (५) भगवान जिस दिशा की ओर विहार करते हैं वायु भी उसी दिशा की ओर बहती है (६) वहा पर आने वाले समस्त जीवो को बड़ा ही आनन्द होता है (७) जहा भगवान विहार करते हैं वहा पर सुगध मिली हुई वायु एक योजन तक की भूमि को धूलि कटक तृण कीड़े और वालू पत्थर आदि को हटाकर स्वच्छ कर देती है (८) बिजली की चमचमाहट और बादलो की गर्जना ही जिनके आभूषण हैं ऐसे स्तनित कुमार जाति के देव इन्द्र की आज्ञा से सुगधि से मिली गधोदक वृष्टि करते हैं (९) भगवान तीर्थंकर परमदेव जब विहार करते हैं तब देव उनके चरण कमल के नीचे कमलों की रचना करते हैं। उन कमलों में उत्तम पद्मरागमणियो की केशर होती है स्पर्श करने मात्र से अमित सुख देने वाले ऐसे स्वर्ण के बने हुए उसके पत्ते रहते हैं। एक कमल, चरण कमल के नीचे रहता है सात आगे रहते हैं और सात पीछे रहते हैं। ऐसे पन्द्रह कमल होते हैं अथवा २२५ होते हैं वे एक कमल मध्य में होता है और ७-७ कमल आठो दिशाओ मे तथा उन आठो दिशाओ के मध्य के आठों भागों में रहते हैं ऐसे ये एक सौ तेरह कमल होते है तथा उन सोलह पक्तियो के मध्य भाग में ७-७ कमलो की पंक्ति होती है इस प्रकार एक सो बारह कमल ये होते हैं। सब मिलाकर २२५ कमल हुए अथवा एक कमल चरण कमल के नीचे रहता है। सात कमल आगे सात पीछे होते हैं इनमे से एक-एक कमल के दाईं ओर ७-७ कमल होते हैं इसी प्रकार बाईं ओर भी ७-७ कमल होते हैं। इस प्रकार १५ मध्य के १०५ दाईं ओर के १०५ बाईं ओर के सब मिल का २२५ हो जाते हैं।

(१०) भगवान जहां पर विराजमान होते हैं वहां की भूमि फल के बोझ से नम्र हुए शाली, साठी चावल आदि समस्त पके हुए धान्यों से सुशोभित रहती है और इसीलिए ऐसी जान पडती है मानों तीनो लोकों के स्वामी भगवान अरहत देव की विभूति को देखने से उसे बहुत आनंद हुआ है और इसीलिए मानों उसके रोमांच खड़े हो गये हैं। (११) उस समय शरद ऋतु के आने से जिसका पानी अत्यन्त निर्मल हो गया है ऐसे सरोवर के समान आकाश बादल आदि सब दोषों से रहित अत्यत निर्मल हो जाता है और समस्त दिशाएँ धूम्ररहित तथा धूल रहित और भी सब तरह की

मलिनता से रहित होकर शीघ्र ही अत्यन्त निर्मल हो जाती हैं । (१२) भगवान अरहतदेव की पूजा सेवा करने के लिए व्यतर देव ज्योतिषी देव भवनवासी देव और कल्पवासी देव इन्द्र की आज्ञा से चारो ओर परस्पर एक दूसरे को बुलाते हैं । पूजा करने के लिए तुम भी आओ । तुम भी आओ । इस प्रकार उच्चारण करते है । (१३) जिसमें दैदीप्यमान एक हजार आते हैं और उन्हीं से जो अत्यन्त सुन्दरता धारण करता है जिसके चारो ओर अत्यन्त निर्मल ऐसे महारत्नों की किरणों के समूह शोभा दे रहे है और जो अपनी काति से सूर्य की कांति को भी तिरस्कार करता है, ऐसा धर्मचक्र भगवान के विहार करते समय सबसे आगे-आगे चलता है । (१४) धर्म चक्र के समान दर्पण आदि एकसौ आठ मगलद्रव्य भगवान के सामने रक्खे रहते है ।

अष्ट महाविभूति होती है जिसको प्रातिहार्य भी कहते है । (१) जिसका विस्तार वैडूर्यमणि की कांति के समान अत्यन्त सुन्दर है जिसकी शाखायें नवीन अकुरों से और कोमल पत्तो से सुशोभित हैं उत्तम मरकतमणि के समान जिनके हरे पत्ते है और पत्तो की बाहुल्यता होने से जिसकी छाया बहुत बडी और बहुत घनी है ऐसी अनेक प्रकार की शोभा से सुशोभित होने वाला अशोक वृक्ष भगवान के समीप शोभायमान रहता है । (२) जिनके चारों ओर मदोन्मत्त भ्रमर फिर रहे हैं, ऐसे मदार कुद, रात्रि विकासी कमल, नीलकमल श्वेत कमल मालती वकुल आदि मिले हुए फूलों की आकाश से सदा पुष्प वृष्टि होती रहती है । (३) कड़े, करधनी, कुंडल, वाजूवद, आदि आभूषणो से जिनके शरीर सुशोभित हो रहे हैं तथा स्वाभाविक रीति से जिनके शरीर सुदर है और कमल के फूल के समान जिनके सुन्दर नेत्र है ऐसे ६४ यक्ष लीलापूर्वक चमरो को ढोलते रहते हैं । (४) भगवान का प्रभामडल बहुत ही अच्छा सुशोभित होता है । वह भामण्डल ऐसा जान पडता है मानो हजारो सूर्य एक साथ अकस्मात् उदय हो आये हो तथा उन हजारो सूर्यों में कोई अतर न हो उस प्रभामंडल से समवशरण में रात्रि दिन का भेद नष्ट हो जाता है । ऐसा वह भामण्डल अत्यन्त दैदीप्यमान होता रहता है । (५) प्रवलवायु के घात से क्षोभित हुए समुद्र के गभीर शब्द के समान जिनके मनोहर शब्द हो रहे है ऐसे वीणावशी आदि सुंदर बाजों के साथ दुंदुभि बाजे ताल के साथ-साथ बडी मनोहर ध्वनि से बजते रहते हैं । (६) जो तीनो लोकों के स्वामीपने के चिन्ह हैं जो ऊपर नीचे रखे हुए तीन चन्द्रमाओं के समान हैं जिनमें उपमा रहित अनेक मोतियों की झालरे लग रही है जो बहुत ही मनोहर है और जिनके दड बड़ी-बड़ी वैडूर्यमणियों के बने हुए हैं ऐसे तीन छत्र भगवान के ऊपर सदा सुशोभित होते रहते हैं । (७) जिनकी ध्वनि पानी से भरे हुए बादलों की गर्जना के समान है जो समस्त दिशाओं के समूह में व्याप्त हो रही हैं और जो कानों को तथा मन को सुख देने वाली है । ऐसी भगवान की दिव्यध्वनि एक योजन तक पहुंचती है । (८) जिनकी किरणे चारो ओर फैल रही है ऐसे रत्नो की किरणों से जिसने इन्द्र धनुष भी अनेक रंग का

बना दिया है ऐसी अपूर्व शोभा को धारण करने वाला तथा स्फटिक पाषाण का बनाया हुआ ऐसा अत्यन्त उत्कृष्ठ सिंहासन सिहो के द्वारा धारण किया जाता है ।

मोहादि सर्वदोषारि घातकेभ्यः सदाहत रजोभ्यः ।

विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हदभ्यः ॥

मोहनीय कर्म और क्षुधातृषा आदि दोष इस जीव के शत्रु हैं क्योंकि जिस प्रकार शत्रु दुख देता है उसी प्रकार ये सब इस जीव को दुख देने वाले हैं ये समस्त शत्रु जिन्होंने नाश कर दिये हैं उन्होंने अनंत सुख गुण प्राप्त कर लिया है तथा ज्ञानावरण और दर्शनावरण दोनों कर्मरूपीरज को जिन्होंने सदा के लए नाश कर दिया है उन्हे अनंतज्ञान और अनंतदर्शन इन गुणों की प्राप्ति हो गई है । जिन्होंने अतराय कर्म को सर्वथा नष्ट कर दिया है उन्होने अनन्त वीर्य गुण प्राप्त किया है । इस प्रकार चार घातिया कर्मों को सर्वथा नाश कर देने से चार अनंत चतुष्टय प्राप्त किये हैं अर्थात् (१) अनतदर्शन (२) अनतज्ञान (३) अनत सुख (४) अनतवीर्य को प्राप्त कर लिया है और जो १०० इन्द्रादिक देवो के द्वारा भी सर्वोत्कृष्ट रीति से पूज्य हुए हैं । उन ४६ गुण सहित भगवान अरहंत जिनदेव को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । इनकी पूजा व भक्ति भक्त को भगवान बनाने में समर्थ होती है । अत जिनभक्ति मंगलकारिणी और दुरित विनाशिनी है । सतत जिनभक्ति करना चाहिए ।

अनेक शक्तियुक्ति आत्मा का ज्ञानमात्रपना

ले. श्री शिवा आदिनाथन् जी पोन्नूरमलय

आत्मा मे क्रम और अक्रम से प्रवर्तमान अनन्तधर्मों के समुदायरूप से परिणत एक ज्ञप्ति मात्र भावरूप से स्वयं ही है, इसलिए उसके ज्ञानमात्र एक भाव की अंत·पातिनी अनंतशक्तियां उछलती है-

(१) जीवत्व शक्ति–आत्मद्रव्य के कारण भूत चैतन्यमात्र भाव का धारण लक्षण है ।

(२) चितिशक्ति–चेतनत्व लक्षण है ।

(३) दृशिशक्ति–ज्ञेयाकार सामान्य दर्शनोपयोगमयी सत्तामात्र पदार्थ में उपयुक्त लक्षण है ।

(४) ज्ञानशक्ति–ज्ञेय पदार्थों के विशेषाकारो से उपयुक्त लक्षण है ।

(५) सुखशक्ति–अनाकुलता लक्षण है ।

(६) वीर्यशक्ति–स्वरूप का सामर्थ्य लक्षण है ।

(७) **प्रभुत्वशक्ति**–अखंडित प्रताप की स्वतंत्रता से शोभायमानपना लक्षण है।

(८) **विभुत्वशक्ति**–सर्वभावों में व्यापक एक भावरूप लक्षण है।

(९) **सर्वदर्शित्वशक्ति**–सर्व पदार्थों के समूह रूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करने रूप आत्मदर्शनमयी लक्षण है।

(१०) **सर्वज्ञत्वशक्ति**–समस्त विश्व के विशेष भावो को जानने रूप परिणत आत्मज्ञानमयी लक्षण है।

(११) **स्वच्छत्वशक्ति**–अमूर्तिक आत्म प्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से अनेक आकार उपयोग लक्षण हैं।

(१२) **प्रकाशशक्ति**–स्वय प्रकाशमान स्पष्ट स्वसंवेदनमयी लक्षण है।

(१३) **असंकुचित विकाशत्वशक्ति**–क्षेत्र और काल से अमर्यादित चित्विलास लक्षण है।

(१४) **अकार्यकारणत्वशक्ति**–अन्य से नहीं किया जाता और अन्य को नहीं करता एक द्रव्य लक्षण है।

(१५) **परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति**–स्व और पर के निमित्त से ज्ञेयाकारो और ज्ञानाकारो को ग्रहण करने के और ग्रहण कराने के स्वभावरूप लक्षण है।

(१६) **त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति**–कम बढ नहीं होने रूप में निपतत्वरूप लक्षण है।

(१७) **अगुरुलघुत्वशक्ति**–षट्स्थानपतित वृद्धिहानिरूप से परिणमित स्वरूपप्रतिष्ठत्व का कारण रूप लक्षण है।

(१८) **उत्पादव्ययध्रुवत्व शक्ति**–क्रमवृत्ति रूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन लक्षण है।

(१९) **परिणामशक्ति**–द्रव्य के स्वभाव भूत ध्रौव्य व्यय उत्पाद से स्पर्शित, सदृश और विसदृशरूपएक अस्तित्वमात्रमयी लक्षण है।

(२०) **अमूर्तत्वशक्ति**–कर्मबंध के अभाव से व्यक्त किये गये सहज स्पर्शादिशून्य आत्म प्रदेश लक्षण है।

(२१) **अकर्तृत्व शक्ति**–समस्त कर्मों के द्वारा किये गये ज्ञातृत्व मात्र भिन्न परिणामों के कारण अभाव रूप लक्षण है।

(२२) अभोकृत्वशक्ति–सम्पूर्ण कर्मों से किये गये ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणामों के अनुभव का अभाव लक्षण है ।

(२३) निष्क्रियत्वशक्ति–समस्त कर्मों के अभाव से प्रवृत्त आत्म प्रदेशों की निष्पंदता लक्षण है ।

(२४) नियतप्रदेशत्वशक्ति–अनादि संसार से संकोच विस्तार वाला है और जो चरम शरीर के परिमाण से कुछ कम परिमाण से अवस्थित होने वाला लोकाकाश के प्रमाण वाला आत्मा अवयवत्व लक्षण है ।

(२५) स्वधर्मव्यापकत्व शक्ति–संपूर्ण शरीरों मे एक स्वरूपात्मक लक्षण है ।

(२६) साधारणासाधारण धर्मत्वशक्ति–स्व पर के समान, असमान और समानासमान इन तीन भावो की धारणस्वरूप साधारण असाधारण लक्षण है ।

(२७) अनंत धर्मत्वशक्ति–विलक्षण अनंत स्वभावों से भावित एक भाव लक्षण है ।

(२८) विरुद्धधर्मत्वशक्ति–तद्रूपमयता और अतद्रूपमयता लक्षण है ।

(२९) तत्वशक्ति–तद्रूप भवनरूप लक्षण है ।

(३०) अतत्वशक्ति–अतद्रूप भवनरूप लक्षण है ।

(३१) एकत्वशक्ति–अनेकपर्यायों में व्यापक स्वरूप एक द्रव्यमयता रूप लक्षण है ।

(३२) अनेकत्वशक्ति–एक द्रव्य से व्याप्य अनेक पर्यायें उसमयपनेरूप लक्षण है ।

(३३) अभावशक्ति–शून्य अवस्था युक्तारूप लक्षण है ।

(३४) भावाभावशक्ति–भवते हुए पर्याय के व्ययरूप लक्षण है ।

(३५) भावशक्ति–विद्यमान अवस्था युक्तारूप लक्षण है ।

(३६) अभावभावशक्ति–नहीं भवते हुए पर्याय के उदयरूप लक्षण है ।

(३७) भावभावशक्ति–भवते हुए पर्याय के भवन रूप लक्षण है ।

(३८) अभावाभावशक्ति–नहीं भवते हुए पर्याय के अभवन रूप लक्षण है ।

(३९) भावशक्ति–कारकों के अनुसार जो क्रिया से रहित भवन मात्रमयी लक्षण है ।

(४०) **क्रियाशक्ति**–कारकों के अनुसार परिणमित होने रूप भावमयी लक्षण है ।

(४१) **कर्तृत्वशक्ति**–होनेरूप और सिद्ध रूप भाव के भावकत्वमयी लक्षण है ।

(४२) **कर्मशक्ति**–प्राप्तक्रिया सिद्धरूप भावमयी लक्षण है ।

(४३) **करणशक्ति**–भवते हुए भाव के भवन के साधकतमपनेमयी लक्षण है ।

(४४) **संप्रदानशक्ति**–अपने द्वारा दिया जाता जो भाव उसके उपेयत्वमय लक्षण है ।

(४५) **अपादानशक्ति**–उत्पाद व्यय से स्पर्शित भाव का नाश होने से हानि को प्राप्त न होने वाले ध्रुवत्वमयी लक्षण है ।

(४६) **अधिकरणशक्ति**–भाव्यमान भाव के आधारत्वमयी लक्षण है ।

(४७) **संबंधशक्ति**–स्वभाव मात्र स्वस्वामित्वमयी लक्षण है ।

मुनिमार्ग को पुनर्जीवित करने वाले इस बीसवीं सदी के सर्वप्रथम प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनि कुंजर आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकरजी) ने अपने जीवनात मे अपना उपदेश ४७ वाक्यों में जीवन्त कर दिया है जो उनकी आत्मा की ज्ञान मातृता को स्पष्ट करता है । यह हमारे जीवन का सफल पाथेय है ।

इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि,

यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भाव. ।

एव क्रमाक्रम विवर्तितविवर्त चित्र,

तद्द्रव्य पर्ययमय चिदिहास्तिवस्तु ॥

इत्यादि अनेक निजशक्तियों से भली भांतिपरिपूर्ण होने पर भी जो भाव ज्ञानमात्रमयता को नहीं छोड़ता ऐसा वह पूर्वोक्त प्रकार से क्रमरूप और अक्रमरूप से वर्तमान रूपान्तर से अनेक प्रकार का द्रव्य पर्यायमय चैतन्य भाव वाला आत्मा इस लोक में वस्तुस्वरूप है ।

कर्म

-डा. कान्तिलाल, सोलापुर

कर्माष्टकं विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी निकेतनं । —

सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहं ॥

आठ कर्मों से रहित मोक्ष लक्ष्मी का स्थान समयक्त्व आदि आठ गुणों को प्राप्त हुए हैं उस सिद्धचक्र को मै नमस्कार करता हूँ । राजवार्तिक में कहा है कि कर्मशब्दोऽनेकार्थः क्वचित्कर्तुरीप्सिततमे वर्तते-यथा घटं करोतीति । क्वचित्पुण्यापुण्यवचनः-यथा कुशलाकुशलं कर्म इति । क्वचिच्चक्रियावचन.-यथा उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुंचन प्रसारणं गमनमिति कर्माणि इति तत्रेहक्रियावाचिनो ग्रहण । कर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं जैसे घड़ा कर्ता है इसमे कर्म कारक कर्म शब्द का अर्थ है । कुशल अकुशल कर्म में पुण्यपाप अर्थ है । उत्क्षेपण अवक्षेपण आदि में कर्म का क्रिया अर्थ विवक्षित है । यहाँ आस्त्रव के प्रकरण में क्रिया अर्थ विवक्षित हैं । अन्य नहीं । क्योंकि वही जड कर्मो के प्रवेश का द्वार है ।

मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, योग, मोह तथा क्रोधादि कषाय ये भाव जीव और अजीव के भेद से दो-दो प्रकार के है । अथवा द्रव्यकर्म और भावकर्म । अथवा कर्मवर्गणा और नोकर्मवर्गणा । जो मिथ्यात्व योग अविरति और अज्ञान अजीव है सो तो पुद्गल कर्म है और जो मिथ्यात्व अविरति और अज्ञान जीव है वह उपयोग है । जीव के जो द्रव्य कर्म हैं वे पौद्गलिक हैं और उनके अनेक भेद हैं तथा जो भाव कर्म हैं वे आत्मा के चैतन्य परिणात्म हैं और छह पर्याप्ति और तीन शरीर ये नोकर्म हैं ।

प्रसिद्ध मूल कर्म आठ प्रकार के होते है-(१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) अंतराय । ज्ञानावरण आत्मा के ज्ञानगुण को घातता है । दर्शनावरण आत्मा के दर्शनगुण को घातता है । वेदनीय से सुख-दुःख का आत्मावेदन करता है । मोहनीय आत्मा के अपने स्वरूप को भुला कर पर में अपनापन मनवाता है । आयु नरक तिर्यंच मनुष्य देव मे से किसी के शरीर में आत्मा को रोकता है । नाम कर्म शरीर आदि की रचना करता है । गोत्र ऊँच नीच कुल मे पैदा करता है । अंतराय दानादि में विघ्न करता है । इनके उत्तरभेद १४८ हैं ।

ज्ञानावरणी के ५ भेद होते हैं (१) मति ज्ञानावरण (मतिज्ञान को ढांकने वाला) (२) श्रुतज्ञानावरण (श्रुतज्ञान को ढांकनेवाला) (३) अवधिज्ञानावरण (अवधिज्ञान को ढांकने वाला) (४) मनः पर्ययज्ञानावरण (मन॰ पर्यय ज्ञान को ढाकने वाला) (५) केवल ज्ञानावरण (केवल ज्ञान को ढांकने वाला) । दर्शनावरण के नौ भेद हैं । (१) चक्षु दर्शनावरण (चक्षुइंद्रिय से होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे) (२) अचक्षुदर्शनावरण (चक्षुइंद्रिय को छोडकर शेष इंद्रिय और मन से पदार्थ सामान्य अवलोकन न होने दे) (३) अवधि दर्शनावरण (अवधिज्ञान से होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे) (४) केवल दर्शनावरण (केवल ज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को रोके) (५) निद्रा (मदरवेद आदि को दूर करने के लिए शयन करना) (६) निद्रानिद्रा (निद्रा के बाद फिर निद्रा का आना अर्थात् निद्रा के कारण आँखे नहीं खोलता) (७) प्रचला (बैठे बैठे नेत्र शरीर आदि में विकार करने वाली या शोक या थकावट से उत्पन्न हुई निद्रा वह सोता हुआ भी जागता रहता है) (८) प्रचल्ला प्रचला (प्रचला के ऊपर प्रचला का आना इससे मुंह से लार बहती है) (९) स्त्यानगृद्धि (सोती अवस्था में भयकर कार्य कर लेता है और जागने पर याद नहीं रहता है) । वेदनीय के 2 भेद हैं (१) सातावेदनीय (देव आदि गति में शारीरिक तथा मानसिक सुख मिले) (२) असातावेदनीय (नरकादिगतियो मे दुख प्राप्त होना)

मोहनीय के २८ भेद हैं ।

(१) मिथ्यात्व प्रकृति (सर्वज्ञ कथित मार्ग से पराड्मुख हो) (२) सम्यक्त्व प्रकृति (आत्मा के सम्यग्दर्शन मे दोष पैदा हो) (३) सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति (मिले हुए दही गुड़ के स्वाद की तरह उभयरूप परिणाम हो) (४-७) अनतानुबधी क्रोध मान माया लोभ (आत्मा के स्वरूपाचरण चारित्र को घाते) (८-११) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ (देशचारित्र न हो सके) (१२-१५) प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ (सकल चारित्र को घाते) (१६-१९) सज्वलन क्रोध मान माया लोभ (यथाख्यात चारित्र न हो सके) (२०) हास्य (हसी आवे) (२१) रति (विषयों में प्रेम हो) (२२) अरति (विषयों में प्रेम न हो) (२३) शोक (चिन्ता हो) (२४) भय (डर लगे) (२५) जुगुप्सा (ग्लानि हो) (२६) स्त्रीवेद (पुरुष से रमने का भाव हो) (२७) पुरुषवेद (स्त्री के साथ रमने का भाव हो) (२८) नपुंसकवेद (स्त्री पुरुष दोनों से रमने की इच्छा हो) । आयु के ४ भेद हैं-(१) नरकायु (नारकी के शरीर मे रुका रहे) (२) तिर्यंचायु (तिर्यंच के शरीर में रुका रहे) (३) मनुष्यायु (मनुष्य के शरीर मे रुका रहे) (४) देवायु (देव के शरीर में रुका रहे) ।

नामकर्म के ९३ भेद हैं-(१) नरक गति (नरकगति प्राप्त हो) (२) तिर्यंच गति (तिर्यंचगति प्राप्त हो) (३) मनुष्यगति (मनुष्य गति प्राप्त हो) (४) देवगति (देवगति प्राप्त हो) (५) एकेंद्रिय जाति (एकेन्द्रिय में पैदा हो) (६) द्विंद्रिय जाति (दो इंद्रिय में पैदा हो) (७) त्रींद्रिय जाति (त्रींद्रिय मे पैदा हो) (८) चतुरिंद्रिय जाति (चतुरिंद्रिय में पैदा हो) (९) पंचेंद्रिय जाति (पंचेंद्रिय में पैदा हो) (१०) औदारिक शरीर (औदारिक शरीर की रचना हो) (११) वैक्रियक शरीर (वैक्रियक

शरीर की रचना हो) (१२) आहारक शरीर (आहारक शरीर की रचना हो) (१३) तैजस शरीर (तैजस शरीर की रचना हो) (१४) कार्मण शरीर (कार्मण शरीर की रचना हो) (१५) औदारिक शरीरांगोपांग (औदारिक शरीरांगोपांग की रचना हो) (१६) वैक्रियक शरीरांगोपांग (वैक्रियक शरीरागोंपांग की रचना हो (१७) आहारक शरीरांगोपांग (आहारक शरीरांगोपांग की रचना हो) (१८) निर्माण (आंगोपाग का यथा स्थान और यथा प्रमाण रचना हो) (१९) औदारिक बंधन (औदारिक शरीर के परमाणु छिद्र सहित परस्पर संबंध को प्राप्त होवे) (२०) वैक्रियवंधन वैक्रियक शरीर परमाणुओ का परस्पर संबध को प्राप्त होना) (२१) आहारक बंधन (आहारक शरीर के परमाणुओ का परस्पर में सबध हो) (२२) तैजसबंधन (तैजस शरीर के परमाणुओं का परस्पर में संबंध हो) (२३) कार्मण शरीर बधन (कार्मण शरीर के परमाणुओं का संबंध प्राप्त हो) (२४) औदारिक सघात (औदारिक शरीर के प्रदेशो का छिद्ररहित बंधन हो) (२५) वैक्रियक संघात (वैक्रियक शरीर के प्रदेशों का छिद्ररहित बंधन हो) (२६) आहारक संघात (आहारक शरीर के प्रदेशों का छिद्र रहित बंधन हो) (२७) तैजससंघात (तैजस शरीर के प्रदेशों का छिद्ररहित बधन हो) (२८) कार्माण सघात (कार्माण शरीर के प्रदेशों का छिद्ररहित बंधन हो) (२९) समचतुरस्र संस्थान (शरीर ऊपर नीचे तथा बीच में समान हो) (३०) न्यग्रोधपरि मंडल (शरीर नाभि से नीचे पतला और ऊपर मोटा हो) (३१) स्वाति संस्थान (शरीर ऊपर पतला और नीचे मोटा हो) (३२) कुब्जक सस्थान (शरीर कुबड़ा हो) (३३) वामन संस्थान (शरीर बौना -छोटा हो) (३४) हुडक संस्थान (शरीर के आंगोपांग किसी खास आकृति के न हो) (३५) वज्र वृषभ नाराच संहनन (वेष्टन कील हड्डियां वज्र की हो) (३६) वज्र नाराच (वज्र के हाड़ और कोले हो) (३७) नाराच सहनन (सामान्य वेष्टन और कीली सहित हाड़ हो), (३८) अर्धनाराच (हड्डियों की संधियाँ अर्द्धकीलित हो) (३९) कलिक संहनन (हड्डियाँ परस्पर में कीलित हों) (४०) असम्प्राप्तामृपाटिका संहनन (अलग-अलग हड्डियाँ नसों से बंधी हों परस्पर में कीलित नहीं हों) । (स्पर्श नाम कर्म के भेद) (४१) कोमलस्पर्श (शरीर में कोमल स्पर्श हो) (४२) कठोर स्पर्श (शरीर मे कठोर स्पर्श हो) (४३) भारी (शरीर का भारी स्पर्श हो) (४४) हलका स्पर्श (शरीर मे हलका स्पर्श हो) (४५) शीत स्पर्श (शरीर में शीत स्पर्श हो) (४६) ऊष्ण स्पर्श (शरीर मे ऊष्ण स्पर्श हो) (४७) स्निग्ध (शरीर में स्निग्ध स्पर्श हो) (४८) रुक्ष स्पर्श (शरीर में रुक्ष स्पर्श हो) (४९) तिक्त रस (शरीर में तिक्त रस हो) (५०) कटु रस (शरीर में कटु रस हो) (५१) कसायलारस (शरीर मे कसायला रस हो) (५२) आम्ल रस (शरीर में आम्ल रस हो) (५३) मधुर रस (शरीर में मधुर रस हो) (५४) सुगंध (शरीर में सुगंध हो) (५५) दुर्गंध (शरीर में दुर्गंध हो) (५६) शुक्लवर्ण (शरीर में शुक्लवर्ण हो) (५७) कृष्णवर्ण (शरीर में कृष्ण वर्ण हों) (५८) नीलवर्ण (शरीर में नील वर्ण हों) (५९) रक्तवर्ण (शरीर में रक्त वर्ण हो) (६०) पीत वर्ण (शरीर में पीत वर्ण हो) (६१) नरक गत्यानुपूर्वी (विग्रहगति में मरण से पहले नारक शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश रहते हैं) (६२) तिर्यग्गत्यानुपूर्वी (विग्रहगति में मरण से पहले तिर्यंच शरीर के

आकार आत्मा के प्रदेश रहते हैं) (६३) मनुष्य गत्यानुपूर्वी (विग्रह गति में मरण से पहले मनुष्य शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश रहते हैं) (६४) देवगत्यानुपूर्वी (विग्रहगति में मरण से पहले के शरीर के आकार आत्मा के प्रदेश रहते हैं) (६५) अगुरुलघु (शरीर न भारी और न हल्का हो) (६६) उपघात (शरीर के अपने अंगो से अपना घात हो) (६७) परघात (दूसरे का घात करने वाले आंगोपांग हों) (६८) आतप (आतपरूप शरीर हो) (६९) उद्योत (शरीर उद्योत रूप हो) (७०) उच्छवास (शरीर में उच्छ्वास हो) (७१) प्रशस्तविहायो गति (आकाश में प्रशस्त गमन हो) (७२) अप्रशस्त विहायोगति (आकाश मे अशुभगमन हो) (७३) प्रत्येक शरीर (एक शरीर का एक जीव स्वामी हो) (७४) साधारण शरीर (एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हो) (७५) त्रस (दो इंद्रियादिक जीवो में जन्म हो) (७६) स्थावर (एकेंद्रिय जीवों में जन्म हो) (७७) सुभग (दूसरे जीवों को अपने से प्रीति उत्पन्न हो) (७८) दुर्भग (रूपादि गुणी होने पर भी दूसरे जीवो की अप्रीति उत्पन्न हो) (७९) सुस्वर (उत्तम स्वर हो) (८०) दु स्वर (खराब स्वर हो) (८१) शुभ (शरीर के अवयव सुन्दर हो) (८२) अशुभ (शरीर के अवयव अमनोज्ञ हो) (८३) सूक्ष्म (न किसी को रोके न किसी से रुके ऐसा शरीर हो) (८४) वादर (दूसरे को रोकने वाला और दूसरे से रुकने वाला शरीर हो) (८५) पर्याप्ति (अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण हो) (८६) अपर्याप्ति (जीव के एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो) (८७) स्थिर (धातुएँ उपधातुएँ अपने अपने स्थान मे स्थिरता को प्राप्त हो) (८८) अस्थिर (धातु उप धातु अपने अपने स्थान मे स्थिर न रहे) (८९) आदेय (प्रभा सहित शरीर हो) (९०) अनादेय (प्रभारहित शरीर हो) (९१) यश कीर्ति (ससार मे जीव की प्रशसा हो) (९२) अयश कीर्ति (जीव की ससार मे निदा हो) (९३) तीर्थकरत्व (अरहंत पद के कारण भूत कर्म)।

गोत्र कर्म के दो भेद हैं-(१) उच्च गोत्र (लोकमान्य कुल मे पैदा हो) (२) नीच गोत्र (लोक निंद्य कुल मे पैदा हो)। अतराय कर्म के ५ भेद हैं। (१) दानातराय (दान की इच्छा होते हुए भी दान न कर सके) (२) लाभातराय (लाभ की इच्छा होते हुए भी लाभ न हो) (३) भोग (भोगों को चाहते हुए भी भोगों की प्राप्ति न हो) (४) उपभोग (उपभोगो को चाहते हुए भी उपभोगो की प्राप्ति न हो) (५) बलवान (बलवान बनने की इच्छा होते हुए भी बलवान नहीं होवे)।

इनमे से कुछ कर्म तो पुण्य रूप है और कुछ पाप रूप हैं। जो संसार मे रोके रखते हैं-

"पुण्य पाप मिलि दोय पायन बेड़ी डारी।

तन कारागृह माहिं मोय दियो दु ख अति भारी॥

उभय कर्म रहित होने पर मुक्त जीव सदा सुखी एक रूप रहता है। कर्मनाश का उपाय करना चाहिए।

॥ ० ॥

जैन दर्शन में औषध ज्ञान क्यों ?

डॉ. श्री भूपेन्द्र कुमारजी वैद्य, इटावा

जैन दर्शन में श्रुतज्ञान के विषय में उमास्वामी ने ऐसा लिखा है कि "श्रुतंमतिपूर्वं द्वयनेक द्वादशभेदं" अर्थात् श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है और वह दो अनेक तथा बारह भेदवाला होता है । उसमे से प्राणानुवाद बारहवां पूर्व मे आयुर्वेद शास्त्र का स्थान है । औषधज्ञान कराता है ।

पृथक्-पृथक् देशो मे भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्य उत्पन्न होते हैं । वैसे ही लोगों के रोगशाति के लिए उन प्रदेशों मे भाँति भाँति की औषधियाँ भी उत्पन्न कर दी हैं । प्रकृति ने मनुष्यों को इस प्रकार की शक्ति और बुद्धि प्रदान की है कि जिसके द्वारा वह अपनी हितकारक औषधियों को प्रत्येक स्थान मे खोजने मे समर्थ हों । इस समय जो जातियाँ सभ्यता और विज्ञान के सर्वोच्च आसन पर विराजमान हैं वह केवल अपनी बुद्धिमानी के गुण से ही इस पदवी को पहुँची है । अति प्राचीन काल मे भारतवासी भी सभ्यता और विज्ञान के अत्यन्त ऊँचे आसन पर विराजमान थे, परन्तु समय के हेर फेर से या अपने दोष से उनकी सतान जिस हीनावस्था को पहुँच गई है उसका विचार करने से हृदय विस्मित और स्तम्भित हो जाता है ।

समस्त विज्ञान में चिकित्सा विज्ञान मनुष्यो के लिए जैसा उपकारी और नित्य प्रयोजनीय है । दूसरा कोई विज्ञान उतना उपकारी और आवश्यकीय नहीं है । कारण कि जीवन में मनुष्य जाति का मुख्य उद्देश्य आरोग्य शरीर से जीवन यात्रा निर्वाह करना और संसारी सुख को भोगना ही है । यही कारण है कि जो चिकित्साविज्ञान का सूत्रपात संसार की अत्यन्त शैशवास्था से आरम्भ हुआ है । संसार के उस शैशव काल में ही भारतीय ऋषि मुनियों के द्वारा चिकित्सा शास्त्र की नींव जमाई गई इस बात को इस समय चिकित्सा विज्ञान के अनुशीलन करने वाले डाक्टर वाइज आदि महाशयों ने भी स्वीकार किया है । परन्तु यह बड़े क्षोभ की बात है कि भारतवासियों ने इस विज्ञान की कुछ भी उन्नति न की वरन् जो कुछ अपने पास था उसको भी खो बैठे । यदि इस समय के अंग्रेजी चिकित्सा विज्ञान से मिलान किया जाय तो हमारी आर्य चिकित्सा अत्यन्त हीन और असम्पूर्ण ज्ञात होगी तथापि आज पर्यन्त इसको ऐसी महोपकारी औषधियों का भंडार हम जानते हैं कि वे औषधियाँ अंग्रेजी औषधियों से बहुत ही अधिक रोग दूर करने में समर्थ हैं । भलीभाँति से आलोचना न होने और व्यवहार न होने के कारण भारतवर्षीय औषधियों के गुण मनुष्यों पर प्रगट नहीं होते ।

यद्यपि हमारे घर के चारो ओर उत्तमोत्तम औषधियाँ उपजी हुई विद्यमान रहती हैं तथापि हम रोगशान्ति की आशा में अग्रेजी औषधियो की ओर ही ताका करते हैं भारतवासियों के लिये यह बड़ी लज्जा की बात है । यह अवश्य मानते हैं कि जिन रोगो की श्रेष्ठ औषधि या चिकित्सा विज्ञान का अंग विशेष हमारे देश में नहीं है उसको भिन्न देश या जाति से ग्रहण करना उचित है । भारतवासी प्रत्येक वैद्य का यह उचित कार्य है कि विदेशी औषधि का सहारा छोड़कर देशी औषधि के द्वारा रोगियो के रोग दूर करना सीखें ओर जहाँ तक संभव हो देशी औषधियों के अनुसंधान और उनकी परीक्षा करने में दत्तचित्त हों । प्राचीन आर्य चिकित्सकों की बहुदर्शिता और अंग्रेज चिकित्सको की गवेषणा से हम लोग स्वदेशीय औषधियो की उन्नति करने मे बहुत सी सहायता प्राप्त कर सकते हैं । यदि उनकी दिखाई हुई प्रणाली के अनुसार कार्य करने लगे तो भैषज्यतत्त्व के सबध मे क्रमश· अनेक नूतन विधि विधानो का आविष्कार होता जायेगा । वर्तमान समय मे भारतवासी जिस भाँति रोग शोक से जीर्ण होकर समय व्यतीत कर रहे है और जैसा कुछ धनाभाव उनको हो रहा है उसके देखते हुए निश्चय कहा जा सकता है कि बहु व्यय साध्य अग्रेजी चिकित्सा के द्वारा प्रत्येक मनुष्य चिकित्सित नही हो सकता । इस कारण वैद्यगणों को उचित है कि यथा सभव इस विद्या का अनुशीलन करके । देशी औषधियो का अधिकता से प्रचार करने मे कटिबद्ध हों । जब किसी अति कठिन रोग मे साधारण औषधि काम नहीं करती उस समय रसो से काम लिया जाता है । अधिक क्या कहें यथोक्तविधि के अनुसार बने हुए रस मुमूर्षु रोगी को भी एक बार अच्छा निरोग बना सकते हैं ।

आजकल के बहुत लोग डाक्टरो के बहकाने से देशी औषधियो की निदा किया करते हैं कि रोगी निरोगी नही होता अथवा समय अधिक लगता है इत्यादि परन्तु आज कल के निरक्षर वैद्याभिमानियो ने उनको प्रसारित किया है । कुछ नहीं जानते हुए भी आडम्बर के कारण परदेशी लोग धोखे मे आकर चिकित्सा की घोर निन्दा करने लगते हैं । लेकिन जिन लोगों ने गुरु की बताई विधि के अनुसार औषधियो का निर्माण किया है उन्हीं लोगो की औषधियाँ अपना गुणरामवाण के समान दिखा सकती है । शुद्ध देशी औषधियो के द्वारा निरोगता प्राप्त करने से सदाचरण का पालन होता है । ज्ञान की अभिवृद्धि होती है श्रद्धा दृढ होती है इन तीनो के मिलने से मोक्ष मार्ग बनता है जो इष्ट मोक्ष स्थान मे पहुँचाता है ।

॥ ० ॥

आचार्य बिम्ब प्रतिष्ठा

ले. :– पं श्री आनन्दलालजी चीतरी

पीछी कमण्डलु के चिह्न सहित आचार्य की मूर्ति होती है । आसन पद्मासन या खड्गासन ही मुख्य है नग्नता है आचार्य की प्रतिष्ठा में दस हजार मंत्र की जाप देवें । जैसे तीर्थंकर की मूर्ति मे एक लाख की दी जाती है, मंत्र वही है । पहले मंडप बनाकर यागमंडल का मांडला बनावे उसमे पहले मध्य में ॐ लिखे उसके चारों तरफ १७ खाने का वलय करे, फिर दूसरा वलय ३६ कोठो का हो जिसमे आचार्य के छत्तीस गुण लिखे जायँ, फिर तीसरा वलय ४८ कोठों का हो जिसमें ऋद्धियाँ लिखी जाएँ । इस तरह तीन वलय का मंडल बनाकर पूजा इन्द्र व आचार्य करे । अग शुद्धि, न्यास व सकलीकरण विधि की जाय । फिर पूजा में अर्घ १७+३६+४८ = १०१ इतने चढ़े पूजा के पहले पूज्य प्रतिमा अर्हंत का अभिषेक करे फिर तीन कुण्डों में होम किया जावे । होम मे सत्य जाताय नम आदि मंत्रो के सिवाय १०८ आहूति उसी मंत्र की देवें । फिर स्तुति पढी जाय व मडल की पूजा की जाय पूजा के पीछे आचार्य भक्ति अर्हंत भक्ति सिद्धभक्ति व चारित्र भक्ति पढें । फिर दूसरे दिन या उसी दिन मडप मे अग शुद्धि अभिषेक नित्यपूजा व होम करके आचार्य के बिम्ब की प्रतिष्ठा का प्रारम्भ करे । यदि उसी दिन प्रतिष्ठा करना हो तो फिर होम करने की जरूर नहीं है । आचार्य के बिम्ब को अभिषेक करने की पीठ पर विराजमान करे । फिर इन्द्र शुद्ध जल से स्नान करावे । पश्चात् पाँच आचार रूप मे पाँच कलशों से जिनमें केशरादि द्रव्य बहुत मिला हो सर्वौषधि के रूप मे उनसे स्नान करावे । फिर प्रतिमा को पोछ कर मातृका मत्र को १०८ बार जप कर प्रतिमा के अंग पर सोने की सलाई से लिखकर न्यास लिखा जावे फिर महर्षि उपासना की जाय ।

ये अनगारा ऋषयोयतीन्द्रा, मुनीश्वरा भव्य भवद्व्यतीता· ।
तेषां ममेषांपदपं कजानि, संपूजयामो गुणशील सिद्धये ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र पवित्रतर गात्र चतुर्शीतिलक्ष गुणगणधरचरणा आगच्छत-आगच्छत-सवौषट् । ॐ ह्रीं सम्यग् अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः स्थापनं । ॐ ह्रीं सम्यग् मम रत्नत्रय शुद्धिं कुरुत कुरुत अत्रमम सन्निहितो भवत भवत वषट् सन्निधिकरणं ।

अथाष्टकं

सुगंधि शीतलैः स्वच्छैः स्वादुभिर्विमलैः । सार्द्धद्वीपद्वयातीत भवद्धव्य यतीन्यजे ॥

ॐ ह्रीं गणधर चरणेभ्यो जलं निर्वपामीतिस्वाहा ।

सारकर्पूर काश्मीरकलितैश्चंदनदवै· । सार्धद्वीपद्वितीयातीतभवद्धव्य यतीन्यजे ॥ गंधं ॥

अक्षतैरक्षतै सूक्ष्मैवलक्षैऋक्षसन्निभैः । सार्धद्वीपद्वयातीतभवद्धव्यय तीन्यजे ॥ अक्षतान् ॥

पुष्पै प्रसरदामोदाहत पुष्प छायावृतै. । सार्ध द्वीप द्वयातीतभवद्धव्य यतीन्यजे ॥ पुष्पाणि ॥

हव्यैर्नव्यघृतापूपपायस व्यजनान्वितै· । सार्ध द्वीप द्वयातीत भवद्धव्य यतीन्यजे ॥ चरूं ॥

कर्पूरप्रभवैर्दीपैर्दीप्त्यादोपित दिड्मुखैः । सार्धद्वीप द्वयातीत भवद्धव्य यतीन्यजे ॥ दीपं ॥

दशागधूपसद्धूमैर्दशाशापूर्ण सौरभै. । सार्धद्वीप द्वयातीत भवद्धव्य यतीन्यजे ॥ धूप ॥

चोचमोचचाम्र जंवीरफल पुंगादिसत्फलैः । सार्धद्वीप द्वयातीत भवद्धव्य यतीन्यजे ॥ फलं ॥

गुणमणिगणसिंधून्भव्यलोकैकवंधून्, प्रकटित निजमार्गीन्ध्वस्तमिथ्यात्वमार्गान् ।

परिचितनिजतत्वान्पालिताशेष सत्वान्, शमरसजितचंद्रानर्ध्ययामो मुनींद्रान् ॥

ॐ ह्रीं गणधर चरणेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

स्तुति

ये सर्वतीर्थ प्रभवा गणेंद्रा , सप्तर्द्धयो ज्ञानचतुष्टयाढ्या· ।

तेषां पदाब्जानि जगर्द्धिताना, वचोमनोमूर्धसु धारयामः ॥ १ ॥

तपोवलाक्षीणरसौषधर्द्धीन्, विज्ञानऋद्धीनपिविक्रियर्द्धीन् ।

सप्तर्द्धियुक्तानखिलानृषीन्द्रान्, स्मरामि बदे प्रणमामि नित्यम् ॥ २ ॥

सर्वेषु तीर्थेषु तदन्तरेषु, सप्तर्षयो ये महितावभूवु· ।

भवाबुधेः पारमिताः कृतार्था, भवतु नस्ते मुनय. प्रसन्नः ॥ ३ ॥

ये केवलींद्राः श्रुतकेवलींद्रा, ये शिक्षकास्तुर्यतृतीयबोधाः ।

सविक्रिया ये वरवादिनश्च, सप्तर्षिसंज्ञानिह तान्प्रवंदे ॥ ४ ॥

प्रमत्तमुख्येषुपदेषु सार्धं, द्वीपद्वये ये युपद्भवन्ति ।

उत्कर्षतस्तान्नवकोटिसंख्यान्, वंदे त्रिसंख्यारहितान्मुनींद्रान् ॥ ५ ॥

फिर प्रतिमा को स्पर्श करके पुष्पांजलि देवें और पंच आचार प्रतिमा में स्थापित करें । नीचे प्रमाण मंत्र पढ़कर प्रतिमा पर पुष्प क्षेपें-

(१) ॐ ह्रू दर्शनाचार गुण विभूषिताय आचार्याय नमः ।

(२) ॐ ह्रूँ ज्ञानाचार गुणविभूषिताय आचार्याय नम· ।

(३) ॐ ह्रूँ चारित्राचार गुणविभूषिताय आचार्यायनम· ।

(४) ॐ ह्रूँ तपाचार गुणविभूषिताय आचार्यायनम· ।

(५) ॐ ह्रूँ वीर्याचार गुणविभूषिताय आचार्याय नम· ।

फिर से नीचे लिखा मंत्र पढ़कर पुष्प क्षेपे-

ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं आचार्यपरमेष्ठिन् अत्र एहि संवौषट, ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं आचार्य परमेष्ठिन् अत्रतिष्ठ ठः ठ·, ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं ममसन्निहितो भव भव वषट् ।

फिर १०८ बार नीचे लिखा मत्र पढ़ें

ॐ णमो आइरियाण धर्माचार्याधिपतये नम. ।

इसके बाद सुगधित केशर से सोने की सलाई से नाभि में ह्रूँ लिखे । यह तिलक दान विधि है । फिर अधिवासना विधि मे नीचे प्रमाण अष्ट द्रव्य चढ़ावे-

ॐ ह्रू णमो आइरियाणं आचार्य परमेष्ठिन् जलं ग्रहाण ग्रहाण नमः ।

इसी तरह जल के स्थान मे चंदनादि चढ़ावें । फिर नीचे लिखा मंत्र पढ़कर मुख पर वस्त्र ढकें व परदा कर दें ।

ॐ ह्रूँ मुखवस्त्रं दधामि स्वाहा ।

फिर आचार्य चारित्र भक्ति पढकर नीचे लिखा मंत्र १०८ बार पढकर मुख से वस्त्र अलग करें ।

ॐ ह्रूँ आचार्य मुख वस्त्रं अपनयामि स्वाहा ।

फिर १०८ बार नीचे लिखा मंत्र पढ़कर सोने की सलाई आँखों में फेरें ।

ॐ ह्रूँ आचार्य प्रबुद्धस्वध्यातृजन मनांसि पुनीहिपुनीहि स्वाहा ।

तब परदा हटाया जावे और सब कहें-

परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) की जय । (अथवा जिन आचार्य की प्रतिमा हो उनकी जय ।)

फिर नीचे लिखे प्रमाण पूजा की जावे-

गीता छन्द

मुनिराज आचारज बडे, शिव मार्ग को दर्शावते ।
जोपालते आचार को, अर अन्य को पलवावते ॥
जो जैन आगम तत्त्व जाने, स्व पर भेद लखावते ।
निज आत्म मे रमते सदा, निज ध्यान सम्यक् ध्यावते ॥

ॐ हूँ चारित्र चक्रवर्त्यादिसागर (अकलीकर) आचार्य परमेष्ठिन् अत्रावतर२संवौषट् आह्वानन ।

ॐ हूं चारित्र चक्रवर्त्यादिसागर (अकलीकर) आचार्य परमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ. स्थापनं ।

ॐ हू चारित्रचक्रवर्त्यादिसागर (अकलीकर) आचार्य परमेष्ठिन् अत्रमम सान्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण ।

चालीछंद

भरसलिल महाशुचि झारी, दै तीन धार हितकारी ।
पद आचारज सुखकारी, पूजत त्रय रोग निवारी ॥

ॐ हूँ चारित्रचक्रवर्त्यादिसागर (अकलीकर) आचार्यपरमेष्ठिने जल ।

चदन घस केसर लाऊँ, मन मे बहुचाव धराऊँ ।
आचारज है गुण दाई, पूजत भवताप मिटाई ॥

ॐ हूँ चारित्र चक्रवर्त्यादिसागर (अकलीकर) आचार्य परमेष्ठिने चंदनं ।

अक्षत ले दीर्घ अखण्डे, उज्वल शशि मम दुतिमण्डे ।
गुरुपाद जजो मन लाई, अक्षयपद हो सुखदाई ॥

ॐ हू चारित्रचक्रवर्त्यादिसागर (अकलीकर) आचार्यपरमेष्ठिने अक्षतं ।

ले फूल सुवर्ण सुहाई, बहुगंध युतं सुखदाई ।

गुरुपूज काम दुखदाई, भयभीत होय नश जाई ॥

ॐ ह्रूं चारित्रचक्रवर्त्यादिसागर (अंकलीकर) आचार्यपरमेष्ठिने पुष्पं ।

ताजे पकवान बनाऊँ, आदर युत गुरु ढिंगलाऊँ ।

पूजत क्षुद रोग शमाऊँ, अमृत निज ले सुख पाऊँ ॥

ॐ ह्रूं चारित्रचक्रवर्त्यादिसागर (अंकलीकर) आचार्यपरमेष्ठिने नैवेद्यं. ।

ले दीपक तम हर तारा, बहु ज्योति प्रगट कर तारा ।

गुरुपाद पूज सुख पाऊँ, भ्रमतम सब तुर्तनशाऊँ ॥

ॐ ह्रूं चारित्रचक्रवर्त्यादिसागर (अंकलीकर) आचार्यपरमेष्ठिने दीप ।

वहु धूप सुगंधित लाऊँ, धूपायन माहिं खिबाऊँ ।

आचारज जज हितकारी, जल जांय कर्म दुखकारी ॥

ॐ ह्रूं चारित्रचक्रवर्त्यादिसागर (अंकलीकर) आचार्य परमेष्ठिने धूप ।

बहु दाख वादाम रसाला, पिस्ता अखरोट जम्बीरा ।

गुरुपाद जजे हित पावे, शिववनिता को परणावे ॥

ॐ ह्रूं चारित्रचक्रवर्त्यादिसागर (अंकलीकर) आचार्य परमेष्ठिने फल ।

शुचि द्रव्य जुआठ मिलाऊँ, करि अर्घ महा सुखपाऊँ ।

गुरु चरणन शीश नवाऊँ, जासे सब दोष मिटाऊँ ॥

ॐ ह्रूं चारित्रचक्रवर्त्यादिसागर (अंकलीकर) आचार्य परमेष्ठिने अर्घ्यं ।

जयमाल (छंद स्रग्विनी)

जप कृपाकंद आनंदरूपी सदा, आत्मगुणवेदते हैं न तृष्णा कदा ।

धन्य आचार्य हैं साधु रक्षा करें, बोध दें दण्ड दें तत्त्व शिक्षा करें ॥ १ ॥

सात तत्त्वार्थ को श्रद्धते भाव से, तत्त्व शुद्धात्म को चाहते चाव से ।

दर्शनाचार में लीन सुख पावते, अन्य को बोध दे दर्शझलकावते ॥ २ ॥

शास्त्र को जानते ज्ञान उपजावते, सप्तभगी सुनय तत्त्व को साधते ।
मोह मिथ्यात्व के हेतु को टालते, बोध दे ज्ञान को लोक विस्तारते ॥ ३ ॥
व्रत महापालते गुप्ति उर धारते, पंच समितीन को ध्यान से पालते ।
आत्म मे लीन हो ध्यान दृढ धारते, सब आचार को लोक विस्तार से ॥ ४ ॥
तपमहा द्वादश पालते भाव से, अनशन आदि को धारते चावसे ।
सेवकर साधु जन मान को टालते, भव्य को मार्ग तप मे सदा लावते ॥ ५ ॥
वीर्य को गुप्त रखते नहीं है यती, कार्य उत्साह से चूकते नहीं रती ।
आत्म शक्ति को दिन दिन अधिक पावते, अन्य को बोध दे वीर्य विस्तारते ॥ ६ ॥
पच आचार ये पालते भाव से, अन्य साधुन को बोधते चाव से ।
निश्चय आत्मरस पीवते प्रेम से, धन्य आचार्य हैं चालते नेम से ॥ ७ ॥
ॐ ह्रूं चारित्र चक्रवर्त्यादिसागर (अकलीकर) आचार्य परमेष्ठिने महार्घ ।

दोहा

जो पूजे आचार्य को, मन एकाग्र कराय ।
सो पावे निज निधि सही, भवसागर तर जाय ॥

॥ इत्याशीर्वाद ॥

फिर आचार्य भक्ति या चारित्र भक्ति पढकर नीचे का श्लोक पढ़कर चारो ओर पुष्प क्षेपे ।

प्राज्य साम्राज्यमस्तु स्थिरमिह, सुतरां जायता दीर्घमायु- ।
भूंयाद्भूयांश्च भोग· स्वजन, परिजनैस्तात्सदारोग्यमग्र्यम् ॥
कीर्तिर्व्याप्ताखिलासा प्रभवतु, भवतान्नि प्रतीष. प्रताप ।
क्षिप्रं स्वर्मोक्षलक्ष्मीर्भवतु, तनुभृता धर्मसूरि प्रसादात् ॥

फिर शातिपाठ विसर्जन करके आचार्य की प्रतिमा की प्रतिष्ठा पूर्ण की जाय ।

यत्र प्राणप्रतिष्ठा मत्र

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमोआइरियाण णमो उवज्झायाणं णमोलोएसव्वसाहूणं ॐ परम हसाय हस हंस· ह ह हैं हौं ह्रू असिआउसा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नमः ।

इस मत्र को ९-९ बार बोलते हुए यत्र पर क्रमशः जल, दूध, चंदन एवं पुष्प डालें ।

ॐ आं क्रो ह्रीं असि आ उ सा य र ल व श ष स ह अमुष्यप्राणा अमुष्य जीव इह स्थिताः । अमुष्य यंत्र का नाम । यंत्र मंत्र तंत्रस्य सर्वेंद्रियाणि कायवाङ्गमनसचक्षुः श्रोत्र घ्राणप्राणाः इहैवायान्तु । अत्र सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥ अनेनमत्रेण यंत्रोपरि नववारं पुष्पाक्षतान् क्षिपेत् ॥

ॐ आं क्रों अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ ए ऐ ओ औ अं अः कम्ल्वर्यूंवम्ल्वयूँ नमः परमात्मने । अ हंसः क ख घ ङ ॐ ह्रां णमो अरहंताणं क्ष्म्लब्यूँ । च छ ज झ ञ ॐ ह्रीं णमो सघ सिद्धाण क्ल्वर्यूं जल देवतायां प्राणाः । ट ठ ड ढ ण ॐ ह्रूं णमो आइरियाणं यम्ल्व्यूँ अग्नि देवताया प्राणाः । त थ द ध न ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाण स्म्लर्व्यूं वायु देवतानां प्राणाः । प फ ब भ म ॐ ह्र णमो लोए सव्वसाहूणं हम्ल्व्यूं आकाश देवताया प्राणाः । ॐ य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ ॐ णमो अर्हत् केवलिम्यो झम्ल्व्यूं आनंद देवतायां प्राणा • । जीवा इह स्थिता. । सर्वयंत्र मंत्र तंत्र रूपेण दिव्य देहस्य अस्य पूजकस्य सप्त धातु रूप कायेन्द्रियाणि काय वाङ्ग मनश्चक्षुः श्रोत्र धाण जिह्वेद्रिपाणि सुरुचिरं सुख चिरं तिष्ठतु स्वाहा ॥ अनेन मत्रेण यंत्रोपरि सप्तवारं गंध पुष्पाक्षतांजलिक्षिपेत् ॥

संवर्द्धित मंदिर जिन बिम्ब और देश कल्याण

–ब्र डॉ. उषा जैन

वर्तमान युग में प्रश्नचिह्न बनते जा रहे हैं मंदिर व उनमें विराजित बिम्ब अर्थात् मूर्तिया । आज के पश्चिमी बढते वैज्ञानिक व नास्तिक प्रभाव ने युवा मन के प्राणों को झकझोर दिया है, और वे हमें प्रतिद्वदी दिखाई देने लगे हैं । नई पीढ़ी के सवालों को बुजुर्ग पीढ़ी सुलझाने में समर्थ नहीं हो पा रही है, क्यों ? यह एक सामान्य प्रश्न नहीं है । प्राचीन मदिरों को देखने से आज हजारो वर्षों पूर्व की संस्कृति एवं अतीत की सभ्यता परिलक्षित होती है

संस्कृति समाज की धरोहर है, और उस धरोहर का संसक्षण प्राणपण से तभी सम्भव है, जब समाज के उन्नायक चारित्रवान् हों, जैन धर्म में ऐसे ही उन्नायक चारित्र की विभूतियाँ दिगम्बर मुनि हैं, जो जिनेन्द्र के लघु नन्दन हैं । वृषभदेव प्रथम तीर्थंकर थे वृषभदेव के बाद 23 तीर्थंकर और हुए, जिन्होंने धर्मदेशना दी । चारित्र पालन कर उस अपूर्व धारा को आज भी जीवंत रखा । ये मंदिरों में विराजमान जिनबिम्ब इन्हीं 24 तीर्थंकरों और अनन्तानन्त हुए सिद्ध परमेष्ठियों के हैं । ये आदर्श रूप में स्थापित हैं, जिनका दर्शन कर भव्य जीव सम्यकदर्शन पाकर सम्यक् चारित्र की प्रेरणा पाकर अपना जीवन धन्य करते हैं । स्वयं तो भवसागर से तिरते ही हैं, और दूसरों को भी पाप पंक में से निकलने में प्ररक बन जाते हैं । वर्तमान में इसी श्रमण परम्परा के नवोदित सूर्य संत

शिरोमणि आचार्य श्री १०८ सन्मति सागरजी हैं, श्री १०८ आ विद्यासागरजी हैं इत्यादि । आप प्राचीन श्रमण परम्परा की शृंखला को गतिमान कर रहे हैं ।

हम अपनी संस्कृति से सीधे परिचित, वास्तु शिल्प के माध्यम से ही होते हैं, और यह वास्तु शिल्प मंदिरो एव उनमे विराजमान जिनबिम्बो के द्वारा ही होता है । विभिन्न समयों में सृजित मंदिर एवं जिन बिम्ब, देश की बदलती सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक एव प्राकृतिक परिवर्तनो के साक्षी होते हैं । बदलते समय के साथ शिल्प मे भी परिवर्तन होता है । इसके स्पष्ट प्रमाण हमे अपने आप वास्तुकला के द्वारा ज्ञात हो जाते हैं । इतिहास हमे परिचित कराता है, पूर्व काल की वैभवता को और प्रेषित करता है कि यदि हम अपनी संस्कृति को जीवित रखना चाहते हैं, तो नई शिल्प को निर्मित प्रदान करते रहे । शायद इन्ही भावनाओं के कारण ही आवश्यकता न होते हुए भी वास्तु शिल्प मे मदिर और जिनबिम्ब वर्तमान में पूर्व से अधिक ही निर्मित होते जाते हैं । 2500 वर्षों पुराना है यह प्रश्न कि मदिरो और मूर्तियो के निर्माण की आवश्यकता नही, इनकी सुरक्षा, प्राचीनता जीर्णोद्धार की आवश्यकता है । फिर भी शिल्प रुका नही है, और इसका जीता जागता उदाहरण है जबलपुर की पिसनहारी मढिया मे नवनिर्मित नन्दीश्वर द्वीप मदिर एव उनमे प्राण प्रतिष्ठित किये जाने वाले 128 जिनबिम्ब जो अपनी वर्तमान वास्तु शिल्प का श्रेष्ठ नमूना २७ जनवरी को लोकार्पित किया जा रहा है आचार्य १०८ विद्यासागरजी एव उनकी शिष्य परम्परा के द्वारा ।

प्रत्येक शताब्दी मे निर्मित शिल्प मे कुछ न कुछ परिवर्तन होता आया है, आज भी 9वी से 16वी शताब्दी तक की प्राचीन मूर्तिया किन्हीं-किन्हीं स्थानो पर उपलब्ध हैं, जो कि आज से बहुत अलग दिखाई पडती हैं । पत्थर मे परिवर्तन आ गया है । पहले पाषाण रहता था, आज वह स्थान सगमरमर और अब ग्रेनाइट लेता जा रहा है ।

प्राचीन काल के मंदिर और मूर्तियाँ इस बात के साक्षी है और वे प्राचीन कालीन मदिर उस सुन्दर वैभवपूर्ण कलाकृति से आकर्षित करते हैं । यदि ये प्रतिमाये न होतीं तो हम कैसे प्राचीन सस्कृति से परिचित होते और उसकी गरिमा को स्थिरता प्रदान करने मे सफल होते । प्राचीन विकसित समुन्नत मदिर एव मूर्तियों को देखकर ही हम उस युग के मानव समाज के धर्माचरण के प्रति गहरी आस्था को जान सकते हैं । मुगल काल मे मंदिरों व मूर्तियों का ध्वंस भी बहुत अधिक हुआ ।

स्वतत्रता प्राप्ति के बाद पुन मंदिर निर्माण एवं मूर्ति प्राण प्रतिष्ठा व्यापक रूप से हुई, जिसकी प्रेरणा चारित्र चक्रवर्ती श्री आदिसागरजी, शातिसागरजी, धर्मसागरजी, देशभूषणजी आदि आचार्यों से प्राप्त हुई है । पौराणिक ग्रन्थो की सुरक्षा व उनको साकार रूप भी इसी वर्तमान शताब्दी को प्राप्त हुए । भगवान महावीर की शाश्वत साक्षात् रूप मे नहीं है, लेकिन जैन साहित्य के रूप मे हजारों सहस्त्रो वर्षो तक यह सस्कृति जीवित रहेगी ।

साहित्य से प्रभावित होकर भी आज नन्दीश्वर, सुदर्शन, मेरू, जम्बूद्वीप, समोशरण, मानस्तम्भ आदि आलौकिक रचनायें हमारी संस्कृति के उन्नयन में वर्तमान समाज का पोषण कर, धर्म संवर्द्धन में सहयोग प्रदान करती रहेंगी ।

मानव उत्कर्ष में प्राचीन संस्कृति की उन्नति, समृद्धि मे ये मंदिर एवं मूर्तियो, आत्मकल्याण, धर्माचरण एवं आस्थाओं को प्रशस्त करते रहें । वास्तुकला वैभव प्राप्त कर देश के उत्थान में सुन्दरता में अपना सहयोग कर विश्व मे शान्ति स्थापना के आयाम बने, यही शुभकामना व समाज कल्याण की शुभकामना चिरपोषित होती रहे ।

मैं, आप और हम सब

"गुरु भक्ति विहीणस्स सिस्साणुट्ठाण णस्सदे सव्वं" गुरुभक्ति से विहीन शिष्यों के समस्त अनुष्ठान नष्ट हो जाते हैं । "गुरुभक्ति विणा तव गुण चरित्त णिप्फलं जाण" गुरुभक्ति के विना तप, गुण, चारित्र निष्फल जानो । एवं विविध प्रकार से पूज्य आचार्य कुंदकुंद स्वामी आदि प्राचार्यों ने श्रावको को मार्ग दर्शन दिया किन्तु यदि वे पूज्य आचार्य कुदकुद को मानने वाले गुरु भक्ति के मार्ग पर न चले और "दुग्गदिमग्गासुलग्गओ" दुर्गति के मार्ग मे ही सलग्न रहे तो कहना पड़ेगा कि वे मनुष्य जीवन को सार्थक नहीं कर रहे हैं । ऋग्वेद में कहा भी है-

"न यातव इन्द्र जुजुवर्नो न वंदना शाविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणास्य जंतोर्माशिश्नदेवा अपि गंत्तृतं नः ॥

(६/२२/५)

श्लोक मे 'शिश्नदेवा' दिगम्बरप्रभु कहे जाने वालो से भयभीत होकर शक्तिशाली इन्द्र से सहायता की याचना करना पाया जाता है, ऐसे प्रसंग से तथा २४०० से २००० ई पू. भग्नमूर्ति, इन्द्रिय विजयी जिन एव मोहनजोदड़ो की अत्यत प्राचीन 'सीता' आदि प्राचीन ऐतिहासिक दिगम्बरत्व की प्रामाणिक सामग्री से भी जो प्रेरणा न लें और जिनालयो में दिगम्बर प्रतिमाएँ खड्गासन मुद्रा स्थापित न होने दे तो ऐसी मानसिक दशा वालों पर तरस आता है । हम श्रावकों के लिए यही श्रेयस्कर है कि निर्वाण स्वामी, मुक्ति श्रीवल्लभ निर्ग्रंथ मुनियों की भक्ति करके उनके पद चिन्हों पर

चलकर अपने चारित्र को ऊँचा उठाये व्यर्थ के विवादों मे पडकर छिद्रान्वेषी चारित्र आचरण द्वारा व्यर्थ में अपना पतन न होने दें और अपने चारित्र को निष्फल होने से रोकें ।

आश्चर्य तथा दुख भी होता है कि जहाँ भी भर्तृहरि जैसो ने हाथो को पात्र , चरणों को वाहन, भिक्षावृत्ति को अन्नपूर्ति, दिशाओ को वस्त्र, पृथ्वी को शैय्या, माननेवालों को धन्य कहा, वहीं दूसरी ओर इन दिगम्बर और अकेला, इच्छा रहित, शान्त, पाणिपात्र, बंधन निर्मूलन करने वाली महान् आत्माओ पर ऊँगली उठाने मे सकोच नहीं करते । प्रसंग आता है कि नारायण श्री कृष्णजी ने जब नग्न दिगम्बर मुनि श्री को सामने से आते देखा तो अर्जुन को शीघ्र गांडीव हाथ मे लेकर रथ में सवार होने के लिए कहा और अवश्य विजयी होने का सकेत दिया । कहा भी है-

पद्मिनिराजहंसाश्चनिर्ग्रथाश्चतपोधनाः ।

यश्मिन् क्षेत्रे विचरन्ति सुभिक्षस्तत्रनिश्चयः ॥

महाराष्ट्र दक्षिण मे सुभिक्ष सा रहता हे उस का कारण यह है कि वहाँ निर्ग्रथ तपोधनो का विचरण होता रहता है इस बीसवी सदी मे सर्वप्रथम प पू चारित्र चक्रवर्ती मुनिकुजर आचार्य आदिसागर अंकलीकर से आचार्य शान्तिसागर (दक्षिण) ने ऐलक पद धारण किया था (दि जै वर्ष १६ अक १-२ पृ ९) । किन्तु ऐसे भी लोग हैं जो उनके अस्तित्व को नकारते हैं तथा जिनके मुख से दिगम्बर मुनि को सामने दर्शन होने पर आदर से नमोस्तु नही निकलता । शत्रु समूह पर विजय पाने वाले योद्धा भी स्त्री परीषह सहने मे असमर्थ हो गये, किन्तु दिगम्बरमुनि जन इस परीक्षा मे सफल रहे-ऐसे चारित्रशिरोमणि आत्माओं को 'कूलर' की हवा मे रहने वाले, 'कार' मे घूमने वाले, वस्त्रधारी, चादी आदि मूल्यवान धातुओ के वर्तन मे भोजन करने वाले केवल 'आत्मा' के गीत गाने वालो के चरित्र से तुलना की जाय (तीर्थंकर प्रकृति तक का बध करना मान लिया जाय । ऐसी तुलना करने वालो को "आत्मज्ञानी", "सम्यग्दृष्टि" समझने वाले वस्तुत भस्मपाने के लिए रत्नहार जला देने वालो की श्रेणी की आत्माएँ हैं प्रभु से प्रार्थना है कि वे ही इन्हे सद्बुद्धि प्रदान करें, इनको सही मार्ग पर लगाएँ ताकि अमूल्य मनुष्य जीवन का ये सदुपयोग कर सके ।

क्षत्रचूडामणिकार ने जीवो को भवसतरण का मार्ग बताते हुए श्रमण सस्कृति के हेयोपादेय विज्ञान का निष्कर्ष एक पक्ति मे रख दिया है । लिखते है कि "जैनी दीक्षामुपादत्त यस्या कायेऽपिहेयता" (१०/२) उस जिनेन्द्र भगवान के धर्म मे दीक्षित बनो, जिसमे काय को भी पर द्रव्य होने से हेय बताया है" हम अपने अह या स्वार्थ या कोई भी कारण हो, उसकी पुष्टि में लिप्त रहने के फलस्वरूप इस अमृत पक्ति पर ध्यान न दें । अवहेलना करें, किन्तु सत्य तो सत्य ही है, वह सत्य ही रहेगा । निर्ग्रन्थ मुनिचर्या पालने वाले विद्यमान हैं । कहते हुए सोम देवसूरि जैसे ज्ञानियों ने आश्चर्य व्यक्त किया उसी आश्चर्य को जीवित रखने वाले पुण्यवान् सुकृती धन्य महापुरुषों के प्रति यदि मस्तक न झुके उन के प्रति कोई उपेक्षा भाव बनाये रखे तो ऐसो को दया के पात्र ही मानना होगा । यहूदी (JEWS) लोगो की प्रसिद्ध रचना 'THE ASCESION OF ISAIAH' के पृष्ठ 32

पर लिखा है "वह जो मुक्ति की प्राप्ति में श्रद्धा रखते थे एकांत में पर्वत पर जा जमे-वे सब संत थे और उनके पास कुछ भी नहीं था और वे नग्न थे ।" श्रीशंकराचार्य जी ने विवेक चूड़ामणि में स्पष्ट लिखा है कि जिस योगी के पास दिशारूप वस्त्र होता है अर्थात् जो दिगम्बर होता है वह श्रेष्ठ अवस्था में यह जीत पूर्ण निराकुल ब्रह्मदर्शन जनित आनन्द प्राप्त करने में समर्थ होता है । रामायण के 'बालकाण्ड' (सर्ग १४२ श्लोक २२) में राजा दशरथ श्रमणों को दिगम्बर मुनियों को आहार दे रहे हैं ऐसा बताया है । ईसाई मजहब भी स्पष्ट रूप से दिगम्बरत्व के महत्त्व को मानता है (सम्मू अल १९/२४ ईसाय्या २०/२) ईसाई सतपीटर का कथन है कि "हमें अपने पास कुछ भी नहीं रखना चाहिए । परिग्रह हम सब के लिए पापरूप है । इसका जैसे भी हो त्याग करना है ऐसे पापो से बचना है । वैदिक साहित्य मे भी प्राचीनतम ऋग्वेद में नग्न साधु को 'वातरशना' शब्द द्वारा बताया गया है । 'सुतयो वातरशना पिशंगावसतेमला' (ऋग्वेदमण्डल १०-२-१३६२) । अब्दुल कासिम गिलानी और सरमदसहीद आदि सैकड़ो मुस्लिम फकीर नग्न रूप दिगम्बर वेष में विहार करते थे । सूफी सत सरमद ने तो बादशाह को मुल्लाओं की उपस्थिति में कहा था कि-

आकस कि तुरा कुलाह मुल्तानी दाद । मारा हम ओ अस्वाव परेशानी दाद ॥

पोसानीद लवास हरकारा एवेदीद । वे ऐवा रालवास अर्यानी दाद ॥

जिसने तुमको बादशाही ताज दिया, उस ने हमको परेशानी का सामान दिया । जिस किसी में कोई ऐब पाया उसको लवास पहनाया और जिनमें ऐब न पाये उनको नंगेपन का लिवास दिया । स्वयं गौतम बुद्ध निर्ग्रन्थ थे । श्रमणमार्ग दिगम्बर मार्ग कठिन होने से छूट गया । मध्यम मार्ग अपना बैठे [मज्झिम निकाय (पाली) १२ महासिंहनाद सुत्तं पृ ९०५] कल्याणकीर्ति आदि मुनिगण दिगम्बर ऋषि ही थे जिन्होने सिकन्दर महान् जैसे विदेशियो का मन मोह लिया था और उन्हें भारत भक्त बनाया था । वे दिगम्बर ऋषि ही थे जिन्होंने अपने तत्वज्ञान का सिक्का यूनानियो के दिलों पर जमा दिया था । श्रीऋषभदेव दिगम्बर मुनि ही थे जिन्होने ससार को सभ्यता और धर्म का पाठ पढ़ाया, वे आध्यात्म आत्मविद्या के आदि प्रवर्तक है । 'नगण्ठेसु पिमे करे विधायपट्टाहोहंति' अशोक स्तम्भ दिल्ली फिरोजशाह कोटला शिलालेख पर आज भी अंकित है । गांधीजी के शब्दों में भी "मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है मुझे स्वय नग्नावस्था प्रिय है ।" गोस्पल ऑफ श्री रामकृष्ण के अन्तर्गत स्वामी श्री निखिलानन्दजी रामकृष्ण मठ द्वारा अनुदित (मद्रास १९८१ पृ १९२) अरविन्दोज एक्शन (ARBINDO'S ACTION) पुस्तक में रामकृष्ण के आध्यात्मिक अभ्यास पर प्रकाश डालते हुए एक प्रसग आया है कि घने जंगलो में विहार करके श्रीरामकृष्ण परमहंस निर्वस्त्र होकर पवित्र जनेऊ तक उतार देते थे और ध्यानस्थ हो जाते थे उनके इस "विचित्र चरित्र" के बारे में पूछने पर उन्होने कहा था-"Dont you Know that when one think of god, our should be freed from all ties " क्या तुम नहीं जानते कि जब प्रभु का स्मरण, चिन्तन किया जाता है, अपने को सर्व प्रकार के बंधनों से अपने को मुक्त करना होता है ।

उपरोक्त समस्त सामग्री अति सक्षेप में प्रस्तुत करके यह बताने का प्रयत्न किया है कि अतीत से वर्तमान तक संसार के समस्त तत्त्ववेत्ताओं ने दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया है । हम सबको "हठयोग के श्रेष्ठतम रूप दिगम्बरत्व" पर नाज करना चाहिए । हम समस्त निर्ग्रन्थ मुनियों का आदर करें । इन धर्म कर्म की झलकती प्रकाशमान मूर्तियों से अपने जीवन को प्रकाशमयी बनायें । अपने को समस्त विवादो से दूर रखें । बालवत, सरल, विषय विकार भाव से रहित, तन से भी मन से भी नग्न, महानतम आत्माओं को नमन करे । किसी भी ऐसे संत के प्रति दुराग्रह से अपने को दूर रखें । विमलस्वभावी आत्मा पर मलिनता न आने दें ।

प्रस्तुति · **प्रद्युम्नकुमार जैन**

सन्मति आनासागर के सामने कृष्णगज रोड, अजमेर-305001 दीप वर्ष १९९३

ऋणी रहेगा जैन समाज

प्रकृति का ऐसा नियम रहा है कि जब जब देश मे अन्याय एव अत्याचार का बोलबाला हुआ, पाप कर्म बढने लगे, देश का चारित्र गिरने लगा, तब तब ऐसा व्यक्ति सामने आया जिसने दुष्टों का सहार किया । अन्याय एवं अनाचार को समाप्त कर देश का रक्षण किया । धर्म का बिगुल बजाया व लोक जीवन में चारित्र के प्रति आस्था स्थापित की । इतिहास साक्षी है जब देश में कस का अत्याचार बढ़ा कृष्ण पैदा हुए, रावण की दुष्टता समाप्त करने के लिए राम आए, अंग्रेजों के अत्याचार बढे तो संत के रूप में महात्मागाधी अवतरित हुए । जिन्होने भगवान महावीर की अहिसा का सहारा लेकर अंग्रेजो से देश को मुक्त कराया ।

बीसवीं शताब्दी मे देश मे जब धर्म का लोप हो रहा था धर्म गुरु के रूप मे दिगम्बर संतो का अभाव हो गया था । देश मे अत्याचार अनाचार बढने लगा था । जैन धर्म लोप होता जा रहा था ऐसे समय मे पूज्य शिव गौड़ा ने प्रथम दिगम्बर दीक्षा लेकर इस देश मे पुन· धर्म का झडा फहराया । आज हम भारत के कोने-कोने में जिन दिगम्बर साधुआ को देख रहे है उनमें अधिकांश साधु परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर (अंकलीकर) महाराज या उनके शिष्यों द्वारा दीक्षित हैं जो जैन धर्म की ध्वजा का डका देश मे ही नहीं पूरे विश्व मे फैला रहे हैं । परमपूज्य आचार्य महावीर कीर्ति महाराज जैसे विद्वान् साधु चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर महाराज (अकलीकर) की ही देन है जिन्होंने ऐसे साधु को जन्म दिया जो स्वय आचार्य पद प्राप्त किया और जिनके परमशिष्य आचार्य सन्मति सागर महाराज तपस्वी संत के रूप में जगत् में शीर्षस्थ स्थान रखते हैं ।

इस देश के जैन धर्मावलम्बियो का सौभाग्य कहूँ या उनके पूर्व जन्मों में संग्रहीत पुण्य का फल कि उन्हे इस सदी में प्रथमाचार्य के रूप मे पूज्य आदिसागर महाराज (अंकलीकर) मिले

जिन्होंने भारत देश में विलुप्त हुई दिगम्बर संत परम्परा को पुनर्जीवित किया । जैन धर्म का प्रचार प्रसार कर उन्होंने डूबते हुए जैन धर्म को तिरा ही नहीं दिया बल्कि जैन धर्मावलम्बियों को धर्मरूपी तैराकी में कुशल भी कर दिया । उसी का परिणाम है कि उनके द्वारा डाला गया धर्मरूपी बीज आज देश मे विद्वान् साधुओ के रूप मे धर्म ध्वजा फहराते हुए देश के कोने कोने में धर्म का प्रचार कर रहे हैं । नींव के ऐसे स्तम्भ का जीवन परिचय शिक्षाएँ एवं कार्यशैली को जैन धर्म मतावलम्बियो को समझा कर प्रचारित कर परम पूज्य आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज ने अद्वितीय कार्य किया है । कुजरमुनि का जीवन परिचय पाकर प्रत्येक धर्मावलम्बी कृतकृत्य हो गया है । इससे वह उनकी कार्यशैली को अपने जीवन में अपना कर जीवन को आत्मोन्मुख कर सार्थक कर सकेगा ।

मुझे उन कतिपय तथा कथित लोगो पर हँसी आती है जिन्हें ऐसे परम तपस्वी साधु का जीवन परिचय प्रचारित एवं प्रकाशित करना आ नहीं रहा है । परम पूज्य आचार्य सन्मति सागर महाराज की सद् प्रेरणा से जैन धर्मावलम्बी यह कार्य युद्ध स्तर पर कर रहा है । यह बात प्रकाशित होना कि परम पूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज इस सदी के प्रथम आचार्य नहीं थे सत्य है । वे परम पूज्य आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) के परम श्रद्धालु भक्त थे तथा उन्होंने कुम्भोज बाहुबलि मे क्षुल्लक पद से ऐलक पद की दीक्षा परम पूज्य आचार्य आदिसागर (अंकलीकर) से ली थी । उसके तुरन्त बाद वे सिद्ध क्षेत्र गिरनारजी के बदनार्थ चले गये थे । यह बात तथ्यात्मक प्रमाणो सहित अनेक बार अनेक जैन पत्र पत्रिकाओ तथा धार्मिक ग्रन्थों मे प्रकाशित हो चुकी है । परम पूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज महान् विद्वान् साधु थे तथा उन्होने दक्षिण से उत्तर मे आकर भी जैन धर्म की प्रभावना को बढाया जबकि पूज्य आचार्य आदिसागर महाराज (अकलीकर) दक्षिण तक ही सीमित रहे । यही कारण है कि उत्तर के लोगों को आचार्य आदि सागर (अकलीकर) सबंधी जानकारी नहीं हो पायी । जिसे अब प पू आचार्य सन्मति सागर महाराज की प्रेरणा से श्रद्धालु भक्त पुस्तके प्रकाशित कराकर बता रहे हैं ।

इन तथाकथित लोगों को ये बाते वस्तुत· अप्रिय तो नहीं लग रही है किन्तु ये बेवस हैं, इन्हे चाहिए तथ्य समझने की चेष्टा करें । कुछ नहीं सूझा तो इसी बात पर अपनी नेतागिरि करने लग गये कि कौन इस सदी का प्रथम दिगम्बर साधु है । मेरे बुजुर्ग विद्वान, समाज सेवियों से प्रार्थना है समाज को तोड़ो मत, जोड़ो'' । फिजूल के विवाद में मत फँसो जिसमे कोई तथ्यात्मक सत्य न हो । सत्य कभी असत्य नहीं होता, तत्त्व कभी अपने मूल स्वभाव को नहीं छोड़ता । अग्नि, कभी ऐसा नहीं हो सकता कि ठण्डी लगे ऐसा ही सत्य यह है कि इस सदी के प्रथम दिगम्बर आचार्य परम पूज्य आचार्य आदि सागर महाराज (अकलीकर) हैं । यह अन्यथा हो नहीं सकता ।

ऐसे परम गुरु कुंजर मुनि परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर महाराज के चरणों में अपनी शतशत विनयांजलि अर्पित करता हूँ । एक बार पुनः ऐसे प्रथम आचार्य को मैं

अपनी भाव सहित विनयांजलि अर्पित करता हूँ । जैन धर्म को अंधकार से प्रकाश में लाने के लिए जैन समाज ऐसे चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी महाराज(अंकलीकर) का चिरकाल तक ऋणी रहेगा ।

महावीर प्रसाद जैन

महामंत्री दि जैन महासमिति, कोटा संभाग

सच्चा जीवन

किसी भी तपस्वी सम्राट् भव्यात्मा को श्रद्धांजलि देने के पूर्व उनका जीवन परिचय दिया जाना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है हमारे पूजनीय महाराज श्री १०८ आचार्यरत्न आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) को श्रद्धाजलि देने के पूर्व हम उनका जीवन परिचय देना समझते है । जो इस प्रकार है-जन्म महाशिवरात्रि, अकलीग्राम (महाराष्ट्र) सन् १८६६ । क्षुल्लक दीक्षा नांदनी ग्राम मे सन् १९०६ । मुनि दीक्षा ऊदगाँव मगशिर शुक्ला २ सन्, १९१३ । आचार्य पद जयसिहपुर ग्राम श्रुतपंचमी सन् १९१५ । चारित्र चक्रवर्ती पद अंकलीग्राम सन् १९१६ । समाधि अतिशय क्षेत्र ऊदगाँव (कुंजवन) में मिती फागुन कृष्ण १३ महाशिवरात्रि ता ४ मार्च, १९४३ ।

गुरु के समान अन्यकोई महान् नही होता । गुरुभक्ति सर्वोपरि हैं जो अज्ञानाधकार से निकाल कर अरहत पद मे रख दे वह गुरु है क्यों कि देव को बताने वाला गुरु होता है यदि गुरु नहीं हो तो देव का पता ही नहीं चलेगा । गुरु द्वारा मूर्ति को सूर्यमंत्र देने पर ही मूर्ति पूजनीय होती है देव का साक्षात्कार भी गुरु ही कराते हैं ऐसे ही हमारे गुरुवर आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) २०वीं सदी के अनोखे सूर्य थे क्योंकि उनमे प्रमाद व अधकार मे डूबे हुए भव्य जीवो को सयमित जीवन का मार्ग दिखाकर रत्नत्रय की ज्योति को उद्घाटित किया था । उनने कोन्हूर की गुफा मे तपस्या की थी । वे कठोर तपस्वी थे और एक ही आसन पर ३-३ दिन तक लगातार आत्मचिन्तन मे तल्लीन रहते थे वहाँ उनके पास कोन्नूर की गुफा में एक सिंह हमेशा उनके पास आकर बैठता था । एक बार एक आश्चर्य जनक घटना घटी । एक बालक सर्पडंस से मर गया, उसकी माँ ने ले जाकर आचार्य श्री के पास लिटा दिया वर्षा का पानी उनके शरीर से बहता हुआ आया और उस बालक को स्पर्श होते ही वह जीवित हो गया । महिला के गांव से आये सभी आगतुक चकित होकर महाराज श्री के चरणों में नत मस्तक हो गये । पुनर्जीवित बालक महाराज श्री का परम भक्त हो गया ।

महाराज श्री सप्ताह मे सिर्फ एक बार ही हर शनिवार को आहार लेते थे । सप्ताह के शेष दिन तपस्या मे ही बीतते थे और यह नियम उनने समाधि होने तक निभाया । उनके तप और त्याग में वह आकर्षण शक्ति थी कि लोग स्वयमेव उनके दर्शनार्थ आते थे और बिना आग्रह के व्रत नियम ग्रहण करते थे । उनकी देशना से अनेको त्यागीव्रती बने । आपने ४० त्यागी व्रती को मुनि दीक्षा व ४० माताओं को आर्यिका दीक्षा दी और बहुत से क्षुल्लक क्षुल्लिकाओ को दीक्षा दी । ये दीक्षाएँ उस समय पर ही जब भारत में मुनियों के दर्शन दुर्लभ हो गये थे । वर्तमान युग में आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी महाराज ने दिगम्बर मुनि मार्ग की नींव डाली थी जिस पर आचार्य १०८ शान्तिसागरजी महाराज ने भव्य महल बनाया तथा ऐलक दीक्षा भी आपसे ही धारण की थी । (दि जै वर्ष १६ अक १-२ पृ ९) । और १०८ समाधिसम्राट् आचार्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज श्री ने उसे सुदृढ किया ठोस किया । महाराज श्री ने ही महावीर कीर्तिजी महाराज को उनकी ३२ वर्ष की अवस्था मे मुनिदीक्षा दी थी ।

प पू चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) का इस सदी का प्रथम आचार्य होना तथ्यात्मक सत्य है इतिहास इसका साक्षी है अनेकों ग्रन्थों विद्वानों एवं संतों ने इस बात को प्रमाणिक बताया है उनका प्रथम आचार्य होना उतना ही सत्य है जितना सूर्य का पूर्व में उगना और पश्चिम में अस्त होना । अनेकों पद विभूषित तपस्वी सम्राट् १०८ आचार्य रत्न सन्मति सागरजी महाराज द्वारा उनके बारे में जो प्रचार किया जा रहा है वह अक्षरश: ठीक है । १०८ आचार्यरत्न आदिसागरजी महाराज साहब ने समाधि मरण के १४ दिन पहले ही अन्न जल का त्याग कर दिया था जिस की सूचना कुछ जैनेतरो ने पुलिस को कर दी थी जिस पर से पुलिस ने आकर महाराज श्री को अन्न जल ग्रहण करने को बाध्य करना चाहा परन्तु आगम के पारगामी वीर शिरोमणि आचार्य रत्न ने अत्यन्त मित और प्रिय वाणी में आत्म हत्या और सल्लेखना में भेद बताया । सत्यार्थ समझ जाने पर नत मस्तक होकर वे महाराज श्री का आशीर्वाद लेकर चले गये । वे आचार्य श्री से बहुत प्रभावित हुए साधु सतों को समाधिमरण की कला सिखाने वाले प्रथम आचार्य १०८ आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) ही थे । आपने समाधि मरण के पूर्व अपने सघस्थ श्रेष्ठतम शिष्य श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज श्री को अपना आचार्यपद देकर १४ दिन की यम सल्लेखना द्वारा ऊदगाँव के कुंजवन में फागुन कृष्णा १३, सन् १९४३ को सिद्ध परमेष्ठी के उच्चारण के साथ रात्रि को २ बजे नश्वर शरीर का त्याग कर दिया ।

ज्यो ही महाराज श्री के दिवंगत होने की सूचना सब स्थानो पर फैली हजारों की संख्या मे महाराज श्री के अंतिम दर्शनार्थ भीड़ उमड़ पड़ी । सरकार की ओर से जाने आने के लिए विशेष रेलगाड़ियाँ छोड़ी गईं अपार जनसमूह ऊदगाँव के कुंजवन में पहुँच गया और कुजवन नन्दनवन बन गया । सभी साधु गण पैदल चल कर महाराज श्री की सेवा में उपस्थित हो गये । आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज वहां पधारे हुए थे । चारों ओर पीछी धारी विचरण करते हुए नजर आने लगे उस समय आचार्य श्री आत्मस्वरूप में रत थे शरीर पीड़ा उनको तनिक भी चलायमान नहीं कर

सकी । अन्त तक चेहरे पर अपरिमित शान्ति ओठों पर मधुर हास नयनों मे पवित्र तेज और शरीर में कान्ति बनी रही । नश्वर शरीर त्यागने के पूर्व निराकुल चित्त वृत्ति और महामंत्र पंचपरमेष्ठी का जाप ही उनका आधार था । जिस क्षण महाराज श्री ने पार्थिव शरीर त्यागा उस समय कुछ देवकृत चमत्कार भी हुए जो उस समय उनके पास रहने वाले वृद्धगण बताते हैं संस्तर वाली गुफा में एक विद्युत सा प्रकाश हुआ वह प्रकाश पुंज आकाश मार्ग से निकल गया और आधे घंटे तक मधुर कर्ण प्रिय वादित्रों की ध्वनि आकाश मे होती रही और पुन: जय ध्वनि के साथ बन्द हो गई । उपस्थित अपार जन समूह ने इसे सुना और आश्चर्य चकित हो गये । समाधि के समय वहां बहुत से पीछी धारी साधु थे तथा अनेक श्रावक श्राविकायें एवं बहुत बड़ी संख्या में जैनेतर उपस्थित थे जिनमें जय-जयकार करते हुए अपने आराध्य गुरुदेव की वंदना की । सागलीवाली सरस्वती अम्माजी जो महाराज श्री के सान्निध्य में वर्षों से रहकर आहार आदि देकर वैय्यावृत्ति कर रही थीं अन्त समय तक महाराज श्री के पास बनी रही ऐसी विशिष्ट महिला रत्न को मैं सादर प्रणाम करता हूँ ।

प पू १०८ आचार्यरत्न आदिसागरजी महाराज श्री के तृतीय पट्टाधीश तपस्वी सम्राट् भारत गौरव चारित्र चूड़ामणि अनेक पद विभूषित मेरे परम आराध्य गुरु आचार्यरत्न १०८ श्री सन्मति सागरजी महाराज साहब को मैं सादर शत-शत नमोस्तु करते हुए विश्व वंद्य चारित्र चक्रवर्ती प्रथमाचार्य मुनिकुजर आचार्यरत्न १०८ श्री आदिसागरजी महाराज साहब के चरणों मे श्रद्धा नमन होकर सादर सविनय कोटिश: अश्रु पूरित विनम्र श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हुए १००८ महावीर स्वामी से विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि हम सब उनके द्वारा बताये गये सन्मार्ग पर चलकर मनुष्य जन्म सफल बनाकर सद्गति प्राप्त करे । अत: बीसवीं सदी के परमपूज्यनीय विश्ववंद्य चारित्र चक्रवर्ती प्रथमाचार्य मुनिकुंजर १०८ आचार्यरत्न श्री आदिसागरजी महाराज साहब (अकलीकर) के चरणो में अश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ ।

१०-११-९३

प्रस्तुतकर्त्ता विनीत
धर्मचन्द वाकलीवाल भूतपूर्व आनररी मजिस्ट्रेट नगरपालिका मंदसौर,
मदसौर जिलाध्यक्ष एव संरक्षक भा दि जैन महासभा,
अध्यक्ष दशपुर विकास परिषद् मंदसौर (म प्र)
न्यू बाकलीवाल भवन किलारोड, मदसौर (म प्र)

मरण विचार



रोगी के प्रश्नलग्न के अनुसार-यदि प्रश्नकुंडली में आठवें स्थान में चंद्रमा हो और लग्न पाप ग्रहों से युक्त हो या दृष्ट हो तो रोगी का मरण समझना चाहिए।

प्रश्न लग्न मे पाप ग्रह हों और चन्द्रमा १२वां, ८वाँ, ७वाँ, ६वाँ हो तो रोगी की मृत्यु समझनी चाहिए। शनि यदि अष्टमेश हो बारहवें भाव में हो और मंगल तृतीयेश होकर आठवें भाव में हो तो भी रोगी की मृत्यु होती है। लग्न स्थान में बुध, शुक्र, गुरु हो तथा ८वे और ६वे भाव में कोई ग्रह नहीं हो तो रोगी जल्दी रोग से मुक्त होगा। पाँचवें भाव मे शुक्र हो शनि चतुर्थ भाव में हो और रवि अष्टमेश हो ७वें या ८वे भाव मे हो ता रोगी एक दो माह कष्ट पाने के बाद रोग मुक्त होता है।

प्रश्न लग्न के स्वामी क्रूर ग्रह रवि, मगल हों और १२वें या ७वें भाव मे स्थित हो तो रोगी की १० दिन के भीतर मृत्यु समझनी चाहिए।

रोगी जिस दिन प्रश्न करे उस दिन की तिथि और तिथि की घड़ी को (दूना) करी चार उमेरवा (जोड़ना) अने तेनो सरवालो कर चणनो भाग देना एक वचे तो तरत सारू थसे अने शून्य बचे तो मृत्यु थशे।

(१) जिस समय रोग उत्पन्न हो उस समय चर लग्न हो तो कुछ दिन बाद आराम होता है स्थिर लग्न हो तो अधिक दिन तक बीमारी और द्विस्वभावी हो तो मृत्यु होती है। (२) मृत्यु के दिन निकालने के लिए रोगी के जन्म नक्षत्र से दिन गिनना और नौ का भाग देना। शेष ३, ५ और ७ बचें तो मृत्यु होती है। अर्थात् उसी दिन मृत्यु होती है। (३) प्रश्न कुंडली मे सप्तम भाव में शुभ ग्रह हों तो रोग जल्दी शान्त होता है और अशुभ ग्रह हों तो विलम्ब से रोग जाता है और अष्टम स्थान मे शनि, राहु, केतु और मंगल हों तो भी रोगी की मृत्यु होती है। (४) रोगी के नाम के अक्षरों को तीन से गुणा कर उसमें ४ जोड़ें और ३ का भाग देवें। १ शेष बचे तो जल्दी आरोग्यता, 2 बचे तो बहुत समय तक रोग रहता है और शून्य बचे तो मृत्यु होती है। (५) प्रश्न लग्न में पाप ग्रह की राशि हो, लग्न पाप ग्रह से युक्त हो या दृष्ट हो तथा अष्टम स्थान में चंद्रमा अथवा पाप ग्रह हो तो रोगी का मरण होता है। (६) प्रश्न कुंडली में पाप ग्रह आठवें या बारहवें स्थान में हो

या चन्द्रमा १/६/७/८वें स्थान में हो तो शीघ्र ही रोगी की मृत्यु होती है। (७) चन्द्रमा लग्न मे सूर्य सप्तम् में मंगल मेषराशिस्थ वृश्चिक के नवमांश में चंद्रमा से युक्त हो तो रोगी का शीघ्र ही मरण होता है। (८) प्रश्न लग्न से ७वे स्थान में पाप ग्रह हो तो रोगी को महाकष्ट और शुभ ग्रह हो तो स्वस्थ होता है। ७वें स्थान में शुभाशुभ ग्रह हो तो मिश्रित फल होता है। (८) लग्नेश निर्बल हो अष्टमेश बली हो और चन्द्रमा ६वे या ८वें भाव मे हो अथवा ८वें में शनि, मंगल दृष्ट हो तो रोगी की मृत्यु होती है (१०) ८वें स्थान में सूर्य हो तो रक्त पित्त, बुध हो तो सन्निपात, राहु से युक्त सूर्य हो तो कुष्ठ, राहु से युक्त शनि हो तो वायु विकार एव चद्रमा और शुक्र हो तो शन्निपात होता है। (११) लग्नेश बलवान और अष्टमेश निर्वल हो तो रोगी जल्दी अच्छा हो जाता है।

नक्षत्रानुसार-स्वाति, ज्येष्ठा, तीनों पूर्वा, आद्रा और आश्लेषा नक्षत्र मे जिस व्यक्ति को रोग हो तो उसकी मृत्यु होती है। भरणी, आश्लेषा, मूल, कृतिका, विशाखा, आद्रा और मघा नक्षत्र मे किसी को सर्प काटे तो उसकी मृत्यु होती है। भरणी श्रवण, शतभिषा, हस्त और चित्रा मे रोग हो तो ११ दिन तक, मूल, कृतिका, अश्विनी में रोग हो तो ९ दिन तक मघा मे हो तो ७ दिन तक मगशिर और उत्तराषाढा में हो तो एक महीना तक रोग रहता है। आर्द्रा, आश्लेपा, ज्येष्ठा, शतभिषा, भरणी, तीनों पूर्वा (पू षा, पू फा , पू भा), विशाखा, धनिष्ठा, और कृतिका ये नक्षत्र और रवि, मगल और शनि एवं ४/९/१४/६/११ इन तिथियों मे रोग हो तो मृत्यु होती है।

इष्टानिष्ट ग्रह- ६/८/१२वे भाव के स्वामी जिन भावों मे रहते हैं वे अनिष्टकारक हैं। १/४/५/७/९/१०वे भाव में शुभग्रह रहने से शुभकारक हैं और ३/६/११वे भाव मे अशुभ ग्रहो का रहना शुभ है। सूर्य, मगल, शनि, राहु क्रम से अधिक अधिक पाप ग्रह हैं। चद्र, बुध, शुक्र, और गुरु ये क्रम से अधिक-अधिक शुभ ग्रह है। ८/१२वें भाव में सभी ग्रह अनिष्ट कारक हैं। सूर्य से आत्मा, चन्द्र से मन, मगल से पराक्रम, बुध से वाणी, गुरु से ज्ञान और सुख, शुक्र से कामदेव, शनि से दुख जानना चाहिए।

ग्रहयोग विचार—कर्मयोग-शुभ ग्रह ५/६/७वें में और पापग्रह १/३/११वें भाव होने से कर्म योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला राजा, धीर, धर्मात्मा, गुणी, यशश्वी, उपकारी, सुखी और नेता होता है। कवि योग-१०वे भाव का स्वामी लग्न मे गया हो तो कवि होता है। लग्नाधियोग-लग्न से ७/८वें स्थान मे शुभग्रह हो तो उन पर पाप ग्रह की दृष्टि या पाप ग्रह से युक्त हो तो लग्नाधि योग होता है इसमें जन्म लेने वाला महान विद्वान, महात्मा और सुखी होता है। श्री नाथ योग-सप्तमेशदशमभाव में सर्वोच्च का हो और दशमेशनवमेश से शुरू हो तो ऐसे श्रीनाथयोग में जन्म लेने वाला इन्द्रसमान राजा होता है। कला निधि योग-बुध, शुक्र से युक्त या दृष्ट गुरु २/५ वें भाव में हो या बुध, शुक्र के राशिस्थ हो तो ऐसे कलानिधि योग में जन्मा हुआ मनुष्य गुणी राज्यमान, निरोग, सुखी, धनी एवं विद्यावान होता है। सर्वसम्पदान्वित योग-लग्न का स्वामी, गुरु,

बुध, शुक्र से युक्त होकर केन्द्र १/४/७/१०वें में स्थित हो तो सर्व सम्पदान्वित योग होता है । इसके नामानुसार फल की प्राप्ति होती है । चतुरयोग-पंचमेश केन्द्र १/४/७/१०वें में शुभग्रह से युक्त हो तो धारण आदि में पटु होता है और बलवान शुभग्रह की दृष्टि बुध, चन्द्र और मंगल पर हो तो हाजिर जवाब देने वाला होता है । विद्वान् योग-स्वग्रही, उच्चग्रही, मित्रग्रही राशि में गया हुआ बलवान पचमेश केन्द्र १/४/७/१० और त्रिकोण ५/९ में हो तो विद्वान् होता है । धर्मत्व योग-लग्नेश धन में या लाभ मे गया हो तो धर्म का जानने वाला पडित होता है । पंचमेश दशवें या लाभ में गया हो तो पडित होता है । चद्रमा से ९/५वे भाव में गुरु और बुध से ९/५वें भाव में मंगल गया हो तो सर्व विद्या जानने वाला होता है । कुल दूषित योग-शुक्र, वृश्चिक राशि में हो तो जातक परस्त्रीगामी तथा धनहीन और कुल मे दाग लगाने वाला होता है । आफीसरीयोग-जिसके लग्न से १/७/२/८/ ५/११/३/९वे स्थान मे से कोई भी स्थान में गुरु और शनि सकराशि में अतिसमीप के अंशों में गया हो अथवा परस्पर नवमें में पाँचवें स्थान में उपरोक्त भावो में गया हो या मेष, तुला, मिथुन, धन, कुम्भ और सिंह राशि के हों तो जज, वैरिस्टर, प्लीडर, वकील तथा उच्च शिक्षाएँ प्राप्त करता है । उपरोक्त ग्रहो का योग पचम स्थान में सर्वोत्तम होता है । ९वें भाव में मध्यम, लग्न व धनभाव में हो तो कनिष्ट होता है ।

महाभाग्यवान योग-लग्नेश नवमे भाव में धनेश लाभ भाव में नवमेश धन भाव में गया हो और दशमेश से युक्त व दृष्ट हो तो महान् भाग्यवान होता है । महायात्रा योग-नवमें भाव पर शुभ ग्रहो की अधिक दृष्टि हो और नवमेश १/४/७/१०/११/९/५ भाव में गया हो तो महायात्रा होती है । नवमेश एक राशि मे हो तो महायात्रा होती है । तीर्थयात्रा योग-जन्म कुंडली में व्ययेश (१२) नवम् (धर्म) स्थान मे हो तो विशेष रूप से जातक तीर्थों में जाना पसन्द करता है । यदि व्ययेश पाप ग्रह हो तो महापापी तथा उसका सब धन निरर्थक हो जाता है । मान्य व कामी योग-जिनके लग्न में शनि चद्र की युति हो और अष्टम में शुक्र हो तो वह पुरुष राजमान्य और कामी होता है । उसकी स्त्री परम रमणीय होती है । राज्य व पुत्रयोग-यदि गुरु, शुक्र और चंद्रमा तीनों मीन राशि में हो तो इस जातक को कहीं से राज्य अवश्य मिलता है और उसकी स्त्री के बहुत पुत्र होते हैं । राजगद्दी योग-जिसके जन्म समय में शुक्र मीन राशि में बुध लग्न राशि में बारहवें स्थान में सूर्य लग्न में चद्रमा 2रे धन स्थान में तथा राहु तृतीय स्थान में हो तो उसको राजगद्दी मिलती है । महापराक्रमी योग-यदि लग्न में गुरू चन्द्रमा पंचम में या दशम स्थान में हो तो जातक राजा का आदर पाता है महा बुद्धिमान बड़े-बड़े पराक्रमियों में भी महापराक्रमी होता है । यह भी राजयोग ही है । कुबेर के समान धनी योग-यदि गुरु पाँचवें भाव में चंद्रमा नवमें भाव में और सूर्य तृतीय भाव में हो तो उसके धन की वृद्धि कुवेर के समान हो जाती है । प्रसिद्ध दान योग-जन्म लग्न में १२वें भाव का स्वामी ११वें लाभ भाव में हो तो जातक बड़ा मालदार दीर्घजीवी अपने स्थान में सबसे बड़ा दानी लोगों में

प्रसिद्ध सत्यवादी पराक्रमी और भाग्यशाली होता है । पुत्रहीन दुखी सामर्थ्यहीन योग-जन्म लग्न में १२वे भाव का स्वामी चौथे स्थान मे हो तो वह कृपण रोगी उच्च कर्मों का करने वाला अपने पुत्रों द्वारा मृत्यु पाने वाला एव दुखी होता है । यदि व्यय भाव का स्वामी पाप ग्रह होकर पचम भाव में बैठा हो तो उसके पुत्र नही होता । यदि शुभग्रह हो तो पुत्रवान् समझें अपने पिता के उपार्जित धन से विलासहीन परन्तु स्वास सामर्थ्यहीन होता है । शिक्षक योग-जिनके लग्न से या चन्द्र से नवमें स्थान में गुरु बैठा हो तो वह शिक्षक होता है ।

नेत्रदोष अंधा योग-यदि जन्म कुंडली मे १२वें भाव का स्वामी पाप ग्रह होकर लग्न से ६वें स्थान में बैठा हो तो जातक कृपण आँख मे किसी प्रकार का दोष और असमय मे मरने वाला होता है । यदि व्ययेश का स्वामी शुक्र हो और अष्टम में बैठा हो तो जातक अंधा होता है । १२वें स्थान का स्वामी ७वें हो तो जातक दुष्ट स्वभाव वाला खराब आचरण करने वाला परन्तु बातचीत करने मे परम प्रवीण होता है । यदि व्ययेश पाप ग्रह हो तो अपनी ही स्त्री द्वारा शुभग्रह हो तो वेश्याओ के द्वारा मृत्यु पाता है । यदि व्यय भाव का स्वामी १०वें भाव में हो तो जातक सच्चरित्र होता है परस्त्रियो का मुख देखना भी पाप समझता है । उसके सभी अग पवित्र होते हैं अपने पुत्र के लिए धन का सग्रह करता है । परन्तु उसकी माता कटु वादिनी होती है ।

डॉक्टरी योग-जिनके जन्म कुडली मे वृश्चिक राशि में चंद्र, मगल अथवा गुरु हों तथा वृश्चिक राशि लग्न मे हो या दशवे मे हो तो वह डाक्टर सर्जन बनता है । नेता, प्रतिनिधि, कोषाध्यक्ष, न्यायाधीश योग-नवम-नवमस्थ गुरु को सूर्य या शनि देखते हों तो नेता आदि सरकारी पदाधिकारी और नवमस्थ गुरु को चद्र मगल देखते हों तो सेनापति सुखी चतुर होता है ।

अरिष्ट नाशक योग-जिसके लग्न मे शुक्र गुरु और बुध इन तीनो मे से एक भी ग्रह केन्द्र मे आ जाय तो उसके साथ कितने ही पापग्रह भी क्यो न रहे परन्तु अरिष्टादि सब दोष बिल्कुल नष्ट हो जाते है । जैसे सिह को देखते ही मृगो का समूह दूर भागता है उसी तरह सब पाप ग्रह कुछ नहीं कर सकते हैं । यदि लग्न मे, चतुर्थ मे पाँचवें मे दशवें मे और ग्यारहवे में गुरु और शुक्र हो तो उस जातक को हर तरह से भलाई हो तथा योगों की खराबियों का अंत हो जायेगा । यदि शुक्र लग्न मे रहे तो दशहजार दोषो को नाश करता है । बुध रहे तो एक हजार तथा गुरु हो तो लाखों दोषो का नाश करने वाला होता है । वस्तुत एक तो केद्री विशेषत· लग्नगत वृहस्पति होने से जातक सिह की तरह आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है । जिनके जन्म समय गुरु शुक्र अथवा बुध केन्द्र त्रिकोण १/४/७/१०/५/९ मे हो तो वह बहुत वर्षो तक जीने वाला तथा किसी राजा का परम प्रेमी होता है । आध्यात्मिक ज्ञान, तपादि योग-जब मनुष्य के सात्विक गुणों का उदय होता है तब उसका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर हो जाता है । ग्रहों में सात्विक गुणो का कारक गुरु माना जाता है यह गुरु जब कुडली मे शनि के द्वारा देखा जाता है या शनि के साथ हो तो मानव में त्याग

की भावना रहती है परन्तु जब तक चन्द्र और सूर्य का संबंध प्रत्यक्ष या परोक्ष राहु तथा शनि से न हो तब तक जातक में पूर्ण आध्यात्म भाव का उदय नहीं होता । आध्यात्मिक कुंडली में द्वादश भाव विचार(१) शिष्यों की योग्यता (२) ज्ञान पिपासा, ज्ञान संचार (३) संयम सहनशीलता तथा दृढ़ता (४) साधनासम्बन्धी सामग्री का अभाव या बाहुल्यता और क्षमा (५) बाणी सत्यता सिद्धि साधना के प्रकार (६) भविष्य की कठिनाइयों का ज्ञान तथा सामर्थ्य (७) शान्तिप्रियता (८) अचानक विपदाओं का अध्ययन (९) दयालुता का अध्ययन (१०) धैर्य शक्ति का अध्ययन (११) आत्मसाक्षात्कार का अध्ययन (१२) समाधि मोक्ष का ज्ञान । यदि कुंडली में मंगल गुरु राहु और शनि का आपस में संबध होता है तो ऐसा जातक त्यागी योगी और पंथ का निर्माता होता है ।

वैपरीत्य भाव फल योग-(१) यदि लग्नेश धन भाव में और धनेश लग्न में हो जातक धनि बुद्धिमान अत्यन्त सुकृत कार्य करने वाला और भोगी होता है । (२) यदि लग्नेश तीसरे भाव में और तृतीयेश लग्न में हो तो थोडी शक्ति वाला अच्छे भाइयों वाला राजा से पूज्य कुल के लोगों को सुखदायक और मातृपक्ष से युक्त होता है । (३) सुखेश चतुर्थ लग्न में और लग्नेश चतुर्थ भाव में हो तो क्षमाशील पितृभक्त राज कार्य में बुद्धिमान सज्जन गुरु से युक्त और अपने पक्ष से युक्त होता है । (४) पंचमेश लग्वन मे एवं लग्नेश पंचम भाव में हो तो मनस्वी विद्या से विभूषित कुल प्रसिद्ध और ज्ञानी होता है । (५) षष्ठेश लग्न में और लग्नेश षष्ठम भाव में हो तो रोगहीन नित्यविद्रोह करने मे आसक्त शरीर से बलवान धनी और संग्रही होता है । (६) सप्तमेश लग्न में और लग्नेश सप्तम भाव मे हो तो पिता का सेवक स्त्री में चंचल (कामी) और साले का सेवक होता है । (७) अष्टमेश लग्न मे और लग्नेश अष्टम मे हो तो जुआ खेलने की बुद्धि, शूरवीर चोरी करने की बुद्धि राजा से या लोगो द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है । (८) नवमेश लग्न में और लग्नेश नवम् भाव में हो तो धर्म करने वाला, परदेशी निरन्तर देव शास्त्र गुरु की पूजा में तत्पर और राजा से माननीय होता है । (९) दशमेश लग्न में और लग्नेश दशम भाव में हो तो राजा होता है । (१०) लाभेश लग्न में और लग्नेश लाभ भाव में हो तो जातक शुभ कार्य करने वाला दीर्घायु राजा सुन्दर वैभव से युक्त और पंडित होता है । (११) द्वादशेश लग्न मे हो और लग्नेश बारहवें भाव में हो तो सबसे शत्रुता करने वाला बुद्धिहीन कृपण द्रव्य का नाश करने वाला विचारहीन होता है परन्तु लग्नेश शुक्र हो तो राजा से पूज्य होता है ।

ब्र. मणिलाल, भीमपुर (राज.)

परमपूज्य समाधि सम्राट् आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज का जीवन परिचय

सम्पूर्ण भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है यह रत्न प्रसवा भूमि है । इसमे ऐसे विशिष्ट तेजस्वी दैदीप्यमान एव पूज्यवर रत्न पैदा हुए जिससे इस भूमि को रत्न प्रसवा नाम की सार्थकता सिद्ध हो जाती है । चौबीसवे तीर्थकर भगवान महावीर आज से ढाई हजार वर्ष पहले हुए । जिनके आदर्श ने आध्यात्मिक प्रकाश, त्याग एव तप के प्रभाव से समस्त ससार को हिसा के दुष्कृत्यो से बचाकर अहिसा अपरिग्रह और अनेकान्त का सच्चा मार्ग बताया तथा इसका रहस्य भी लोगो को समझाया ।

भगवान महावीर की उसी वीतराग और आदर्श दिगम्बर परम्परा में आचार्य कुदकुद, जिनसेन समतभद्र विद्यानन्द नेमिचद्र अकलक तथा चारित्रचक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) जैसे उत्तम विद्वान् चारित्रवान् तपस्याधारी साधु पुगव हुए जिन्होने समय समय पर उन्हीं भगवान महावीर के आध्यात्मिक सदेश और सत्यधर्म का प्रसार प्रचार किया । उसी आदर्श दिगम्बर साधु सत परम्परा मे ईस्वी की बीसवी सदी मे जो साधु सत हुए उनमे आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज भी एक ऐसे साधु श्रेष्ठ तपस्वी रत्न थे, जिनकी महान विद्वत्ता, कठोर तपस्या प्रगाढ धर्म श्रद्धा आदर्श चारित्र एव उत्कृष्ट त्याग ने विश्व मे सच्चे धर्म को प्रकाशित किया ।

चारित्रनायक का जन्म वैशाख कृष्णा ९ वि स १९६७ को सुप्रसिद्ध नगर फिरोजाबाद में हुआ । आपके पिता का नाम लाला रतनलाल जी एव माता का नाम बूदादेवी था । आपने पद्मावती पुरवाल जाति को अलकृत किया । माता-पिता धार्मिक होने से अतिथि सत्कार आदि यथोचित करते थे । पिता कुशल व्यापारी थे । ये अपने माता-पिता के तीसरे पुत्र थे । इनका नाम श्री महेन्द्र कुमारजी था । इनसे दो बडे एव दो छोटे भाई थे । इन्होने अपने आदर्शमय त्याग एवं तपस्यामय जीवन से ससार मे लोकोत्तर अवस्था प्राप्त की ।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा फिरोजाबाद मे हुई । दस वर्ष की अवस्था मे माता का स्वर्गवास हो गया ि से ससार की असारता नजर आने लगी । आत्म कल्याण के लिए जैन धर्म का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यावर, इन्दौर इत्यादि स्थान मे जाकर शास्त्र ज्ञान प्राप्त किया तथा न्याय तीर्थ, आयुर्वेदाचार्य, ज्योतिषाचार्य आदि की परीक्षा देकर उत्तीर्ण किया । इसके साथ संस्कृत व्याकरण साहित्य न्याय सिद्धान्त आदि विषयो का भी अध्ययन किया । अठारह भाषाओं की जानकारी प्राप्त की । युवावस्था प्राप्त होने पर विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया एवं

अखण्ड आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया । १६ वर्ष की अवस्था से ही श्रावक धर्म का निर्दोषाचरण करने लगे । ससार शरीर भोगों से विरक्तता रूप सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये एवं वि सं १९९४ में टांका टूका में क्षुल्लक दीक्षा ली । अब आपका अधिकतम समय ज्ञानार्जन में लगने लगा । क्षयोपशम वढ़ा/५वर्ष के बाद वि सं १९९९ में इस युग के प्रधान सर्व प्रथम चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बराचार्य विश्व वंद्य सिद्धान्त शास्त्र पारगत सम्यक्तशिरोमणी आचार्य श्री १०८ आदिसागर जी (अकलीकर) महाराज से सपूर्ण परिग्रह को छोड़कर निर्वाण दीक्षा ग्रहण की । आपका नाम महावीर कीर्तिजी घोषित किया गया । आपका यथा नाम तथा गुण थे ।

आगम के अनुसार आचरण एव कठोर तपस्या करने मे दक्ष थे । व्रतो में निर्दोषता ही रहती थी । सिहवृत्ति धारी महान तपस्वी थे । कुछ समय दक्षिण भारत में विहार किया । इनके दीक्षा गुरु परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री आदिसागरजी (अंकलीकर) ने सल्लेखना पूर्वक वीर मरण किया । समाधि के पूर्व सघ मे विशेष योग्यता के धारी विद्वान् तपस्वी मुनि श्री १०८ महावीर कीर्ति जी को अपना आचार्य पद दिया । आप भी गुरु की आज्ञानुसार चतुर्विध संघ का सचालन करने लगे । सघ का नेतृत्व करने के साथ-साथ अपने चारित्र को भी निर्दोषता के साथ पालन करते थे एव जैन धर्म की महान् प्रभावना की संघ सहित दक्षिण महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, उडीसा, उत्तर प्रदेश, बगाल, बिहार इत्यादि स्थानो मे विहार किया । जिससे जैन धर्म की प्रभावना एव प्रचार हुआ । त्याग, तप, आदि के उपदेश से प्रभावित होकर अनेको ने मुनि, अर्जिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी, की दीक्षा ग्रहण की ।

आप महोपसर्ग विजयी निर्मोही, निस्पृही साधु थे । कठिन से कठिन प्राणघातक उपसर्गों को सहन करते थे । अनायास जीत लेते थे । स्थान-स्थान पर परीषह उपसर्गों को सहन किया । विहार करते हुए जब आप सोनागिरि सिद्धक्षेत्र पर आ रहे थे तब वहाँ पर आचार्य वीर सागरजी ससघ विराजमान थे । वे सघ सहित आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज को लेने को गये । वहाँ पर आचार्य श्री वीरसागरजी ने आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज की प्रदक्षिणा पूर्वक अनेकों बार नमस्कार किया । यह दोनो का मिलन अनुपम महत्त्व पूर्ण था । खानिया जयपुर में आचार्य वीर सागरजी की समाधि के समय पर प पूज्य आचार्य महावीर कीर्तिजी को बुलवाया था । वहाँ पर एक बार आचार्य श्री वीरसागरजी विराजमान थे तब उनके मुँह मे कफ आ गया उस समय आचार्य श्री महावीर कीर्तिजी उस कफ को लेने लगे तब आचार्य श्री वीर सागरजी ने उनको मना कर दिया और कहा कि आपके पास परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) का आचार्य पद है । आप मेरे से बड़े हैं । धीरे-धीरे आचार्य वीरसागरजी बीमार हो गये तब उनके आचार्य पद का अधिकार किसको दिया जाय यह चिन्ता समस्त संघ के सामने थी तब सभी संघ ने मिलकर निर्णय लिया कि पू आचार्य महावीर कीर्तिजी को आचार्य वीरसागरजी का आचार्य पद दे

दिया जाय । तब आचार्य महावीर कीर्तिजी को आचार्य पद स्वीकार कराने के लिए समस्त संघ और ब्रह्मचारी सूरजमलजी ने मिलकर प्रार्थना की उस समय आचार्य महावीर कीर्तिजी ने कहा कि मेरे पास मेरे मुनि दीक्षा गुरु परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री आदिसागरजी (अंकलीकर) का आचार्य पद है इसलिए मैं नहीं लूँगा । मुनि शिवसागरजी को दे दीजिए । इस बात को सबने सहर्ष स्वीकार कर लिया । शुभ मुहूर्त में मुनि शिवसागरजी को आचार्य वीरसागरजी के आचार्यपद का संस्कार आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज द्वारा कर दिया गया । वहाँ चातुर्मास कें समय मे आर्यका ज्ञानमतिजी आर्यका सुपार्श्व मति आदि साधुओं को विशेष ग्रन्थो का अध्ययन कराया । इसी प्रकार अनेको साधुओं की समाधि कराई । यह बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुआ ।

आपने १८ मुनि ९ आर्यका ८ क्षुल्लक ५ क्षुल्लिका आदि दीक्षाएं दी । जिनमे प पू निमित्तज्ञान शिरोमणी आचार्य श्री विमलसागरजी प पू गणधराचार्य श्री कुथुसागरजी प पू स्थविराचार्य श्री संभवसागरजी मुनि श्री वर्धमानसागरजी क्षुल्लक श्री शीतलसागरजी आदि शिष्यो के द्वारा धर्मध्वज फहराया जा रहा है । तथा आपके पट्टाधीश आचार्य श्री सन्मतिसागरजी एव प पू गणिनि आर्यका श्री विजयमति माताजी हैं जो धर्म प्रभावना कर रहे है ।

आपके अनेको चातुर्मास जगह-जगह पर प्रभावनापूर्वक हुए उनमे अतिम चातुर्मास गिरनार क्षेत्र पर हुआ वहाँ से सघ विहार करता हुआ महसाना नगर मे आया । वहाँ पर जुखाम बुखार आदि बीमारियो ने घेर लिया । समाधि निकट जान कर तीन दिन पहले ही ३ जनवरी, सन् १९७२ को अपना आचार्य पद प पू सन्मति सागरजी को दिया एवं गणिनि पद आर्यका श्री विजयमति माताजी को दिया तथा गणधर पद मुनि श्री कुथुसागरजी, स्थविर पद मुनि श्री संभव सागरजी, प्रवर्तक पद श्री नेमिसागरजी एवं उपाध्याय पद मुनि श्री सन्मतिसागरजी को दिया । एवं आपकी समाधि माघ कृष्णा ६ गुरुवार, ६ जनवरी, सन् १९७२ को रात्रि मे ९ बजकर १५ मिनट पर हो गई । सघ का कार्य आचार्य श्री सन्मति सागरजी की आज्ञा के अनुसार होने लगा । हम सभी उनके समान बने यही आदर्श ग्रहण करना चाहिए । अतएव उनके चरणो मे नमस्कार हो । ''धम्माइरिये सदा वदे ।''

संस्कार की पात्रता

जैन धर्म में चारित्र के लिए बहुत बड़ा महत्त्व दिया गया है और "चारित्रं खलु धर्मो" अर्थात् चारित्र ही निश्चय से धर्म हैं। नीति वाक्यामृत ग्रन्थ में महान् आचार्य सोमदेवसूरी कहते हैं- वर्ण चार हैं, ब्राह्मण, क्षत्रीय वैश्य और शूद्र। ये वर्ण वाले अपना-अपना काम अलग करते हैं। आचार्य सोमदेव सूरी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं-

"स्वधर्म ऽसकर प्रजानां राजनं त्रिवर्गेणोपसन्धन्ते" ॥ २० ॥

अर्थात् जिस राज्य में अपने धर्म का संकर-एक वर्ण वाले मनुष्यों के धर्म में दूसरे वर्ण वाले मनुष्यो के धर्म का मिश्रण नहीं होता और समस्त वर्णों के मनुष्य अपने धर्म का पालन स्वतंत्र रीति से करते हैं वहाँ राजा और प्रजा के लोग धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ से अलंकृत होते हैं।

नारद विद्वान् ने लिखा है कि "जिसके राज्य में पूजा के धर्म में वर्ण संकरता-एक वर्ण वाले के कर्त्तव्य में दूसरे वर्ण वाले के कर्त्तव्यो की मिलावट नहीं हैं, उसको धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। आगे यह भी लिखा है-किसी प्रकार वैश्या का अंगीकार करना अच्छा है परन्तु अशुद्ध "व्यभिचारिणी या असज्जातीय" कन्या के साथ विवाह करना उचित नहीं क्योंकि इससे भविष्य में असज्जाति सन्तान उत्पन्न होने के कारण उसका मोक्ष मार्ग ही बन्द हो जाता है ॥ २४ ॥ "नितिवाक्यामृत पृष्ठ ४०९॥ जैसे अनेक जाति वाले चावल एक साथ मिलाकर अन्न बनाये तो बिगड़ जाता है। उपासकाध्ययन ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद व संपादन ब्र कैलाश चन्द्र जैन सिद्धान्त शास्त्री ने किया जो भारतीय ज्ञान पीठ दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें लिखा है-

संस्कार शतेनापि ना जातिर्द्विजता व्रजेत

अर्थात् सैकड़ों संस्कार करने पर भी अवर्ण या जातिच्युत आदि लोग द्विज अर्थात् सज्जातीय नहीं हो सकते।

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज ने भी १९५२ में हरिजन जैन मन्दिर प्रवेश के प्रसंग को लेकर अन्न त्याग कर दिया था तथा बाम्बे हाई कोर्ट ने निर्णय दिया था कि जैन मन्दिर में हरिजन प्रवेश नहीं कर सकते है।

आज के युग में जैन आचार्य ही इस विषय पर व्याख्या कर समाज का मार्गदर्शन कर सकते हैं।

राम दयाल जैन, फूलबाग, बरेली (उ प्र.)

अध्यक्ष, महावीर निर्वाण समिति (रजि.)

जैन-समाज, बरेली

चल प्रतिमा की स्थापना

श्री पं. बादामीलाल मुंगाना

आठ दस हाथ प्रमाण लम्बी चौड़ी भूमि को यत्न के साथ भले प्रकार शुद्ध करके उसके ऊपर तत्प्रमाण मंडप बनाना चाहिए। वह मडप चार तोरणों से और चार द्वारो से सुशोभित हो, नाना प्रकार के वस्त्रों से विभूषित हो, जिस पर ध्वजा पताकायें फहरा रही हो, जो नाना पुष्पोपहारो से युक्त हो, जिसमें पुष्पमालाएँ लटक रही हो, जिसके दरवाजे वदनमालाओं से विभूषित हों, जो द्वार के ऊपर दोनो कोनों में जल से परिपूर्ण कलशो से रमणीक हो, उस मंडप के बहुमध्य देश मे, अर्थात् ठीक बीचो बीच प्रतिष्ठा शास्त्र में कहे हुए प्रमाण से सम चतुरस्र अर्थात् चौकोर पीठ (चबूतरा) बनाकर और उसे सर्वत्र समान करके, चारो ही दिशाओं मे तोरण और वदनमालाओ से संयुक्त द्वारो को बनाकर, तथा कोनो में दृढ, मजबूत और स्थिर नद्यावर्त बनाकर, चीन पट्ट (चाइना सिल्क), कोशा आदि नाना प्रकार के नेचाकर्षण वस्त्रो से निर्मित चन्द्रकातमणि तुल्य चतुष्कोण चंदोवे को तान कर चद्र, अर्द्धचंद्र, बुद्धबुद, वराटक (कौड़ी), आदि से तथा मोतियाँ की मालाओ से, नाना प्रकार की छोटी घटियो के समूह से, छत्रो से, चमरो से, दर्पणो से, भृगारो से, तालवृन्तों से, कलशो से, पुष्प पटलो से, सुप्रतिष्ठक (स्वतिक) और दीप समूहो से आभूषित करे। इस प्रकार की रचना करके पुन उस चबूतरे के आभ्यंतर भाग मे चारो कोनो मे विविध वर्तनो में वेदिका बनानी चाहिए।

धारणा के दिन अर्थात् प्रतिष्ठा करते समय उपवास ग्रहण करने के पहले इन्द्र (प्रतिष्ठाचार्य) और दातार (प्रतिष्ठा कारापक) प्रासुक जल से देह को प्रक्षालन कर अर्थात् स्नान कर तत्पश्चात् मधुर अन्न को खाकर, पुन· गुरु के पास मे प्रोषध विधि से उपवास को ग्रहण कर, नवीन उज्जवल श्वेत वस्त्रों से विभूषित हो, श्रीखण्ड चदन से सर्व अंग को लिप्त कर, आभरण और वासिका (सुगंधित द्रव्य या चूर्ण आदि) से विभूषित होकर, अपने आप को अपनी बुद्धि से मैं इन्द्र हूं ऐसा संकल्प करके वह इन्द्र और प्रतिष्ठाकारापक यज्ञावनि अर्थात् प्रतिष्ठा मडप में प्रवेश करे।

प्रतिष्ठा मडप में जाकर तत्रस्थ पूर्वोक्त वेदिका के मध्य मे पंच वर्षा वाले चूर्ण के द्वारा प्रतिष्ठा कलापकी विधि से पृथु अर्थात् विशाल कर्णिका वाले नीलकमल को लिखे और उसमें रंगावलि को भरकर उसके मध्य मे श्वेत वस्त्र से परिवृत्त पीठ अर्थात् सिंहासन या ठौना को स्थापित कर तथा प्रतिष्ठा मे आवश्यक उपकरण द्रव्य उचित स्थानों पर रखें। इस प्रकार उपर्युक्त कार्य करके पुनः ईशान दिशा में एक दिव्य वेदिका रचकर, उसके मध्य मे एक स्नान पीठ अर्थात् अभिषेकार्थ सिंहासन या चौकी वगैरह स्थापित करे और उसके ऊपर विधिपूर्वक अरहंत की प्रतिमा को स्थापित कर सूत्रधार अर्थात् प्रतिमा बनाने वाले कारीगर के द्वारा धूली कलशाभिषेक करावे।

तत्पश्चात् उस सूत्रधार का अपनी शक्ति के अनुसार वस्त्र आदिक से सन्मान करना चाहिए। तत्पश्चात् क्रमश. प्रोक्षण विधि को मांगलिक वचन गीत आदि से करे।

गोश्रृंग, गजदंत आदि से अर्थात् आज की भाषा में कुदाली, कुश आदि के द्वारा किसी तीर्थ, तालाब, नदी या प्रसिद्ध स्थान की मृत्तिका खोदकर लावे और उसे तीर्थ जल से भरे घड़े में भरकर गलावे। पुन. उस गली हुई मिट्टी से प्रतिमा का लेप करे, इसे धूलिकलशाभिषेक कहते हैं। यह प्रतिमा की शुद्धि के लिए किया जाता है।

कुलीन, सधवा या व्रती विधवा स्त्रियों के द्वारा लोकप्रसिद्ध सद्द्रव्यों से प्रतिमा का सम्मार्जन करे, इसे प्रोक्षण कहते हैं।

तत्पश्चात् आकर शुद्धि के योग्य उपकरणो को अपने समीप रखकर प्रतिष्ठा शास्त्र में कहे हुए मार्ग के अनुसार आकर शुद्धि करे।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थचंपकाशोककिंशुक
कदम्बप्लक्षविल्वाम्रवकुलार्जन पल्लवैः ॥ १ ॥
प्रच्छादितास्यत्कुंभैः सर्वतीर्थऽम्बुसंभृतैः।
मंत्राभिमंत्रितैः कुर्याजिनबिम्बाभिषेचनं ॥ २ ॥

(द्वादशपल्लव कलशाभिषेक मंत्रः)

रोचनादर्भसिद्धार्थपद्मकागुरुचंदनं।
दूर्वांकुरयवव्रीहि श्रीखण्ड रौप्यकांचनं ॥ ३ ॥
मालती कुंदपुष्पाणि नंद्यावर्त तिलस्तथा।
गोमयं भूमिमप्रासं निम्नगाढ़ासुमृत्तिका ॥ ४ ॥
एतैर्द्रव्यैः समायुक्त सर्वतीर्थाम्बुसम्भृतैः।
चामीकर प्रभैः कुम्भैः जिनार्च्चा स्नापयेत्सदा ॥ ५ ॥

(मंगल द्रव्यकलशस्नपन मंत्रः)

अमृता सहदेवी च विष्णुकांता शतावरी।
भृंगराजः शमीश्यामा सप्तौषधयः स्मृताइमाः ॥ ६ ॥
एताभिर्युक्ततीर्थाम्बु पूर्णशुभ्रमहाघटैः।
मंत्राभिमंत्रितैर्भक्तया जिनार्चामभिषिंचयेत् ॥ ७ ॥

(सप्तौषधि कलशस्नपनमंत्रः)

जातिफललवंगाम्रविल्वमल्लातकान्वितैः ।

सर्वतीर्थाम्बुभिः पूर्णैः कुम्भैः संस्नापयेज्जिनं ॥ ८ ॥

(फलपंचक कलशस्नपनमंत्रः)

पालाशोदुम्वराश्वत्थशमीन्यग्रोधकत्वचा ।

मिश्रतीर्थाम्बुभि· पूर्णै· स्नापयेच्छुभ्रसद्धैरः ॥ ९ ॥

(छल्लपंचक कलशस्नपनमंत्रः:

सहदेवीवलासिंही शतमूलीशतावरी ।

कुमारी चामृता व्याघ्री तासां मूलाष्टकान्वितैः ॥ १० ॥

सर्वतीर्थाम्बुभि· पूर्णैश्चित्रकुम्भैर्नवैर्हदैः ।

मत्राभिमत्रितैर्जैनं बिम्बं संस्नापयेत्सदा ॥ ११ ॥

(दिव्यौषधिमूलाष्ट कलशस्नपनमत्र·)

लवंगैलावचाकुष्ठं कंकोलाजातिपत्रिका ।

सिद्धार्थनंदनाधैश्चगंध द्रव्यविमिश्रितैः ॥ १२ ॥

तीर्थाम्बुभिर्भृते कुम्भै. सर्वौषधि समन्वितै· ।

मत्राभिमंत्रितैर्जैनीप्रतिमामभिषेचयेत् ॥ १३ ॥

(सर्वौषधि कलशस्नपनमंत्र·)

एवमाकरसशुद्धिं कृत्वा शास्त्रोक्त कर्मणा ।

श्री वर्धमानमंत्रेण जिनार्चामभिमंत्रयेत् ॥ १४ ॥

ॐ णमो भयवदो वऽढमाणस्स रिसिस्स जस्स चक्कं जलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जए वा विवाए वा थंभणे वा मोहेण वा रणांगणे वा सव्व जीव सत्ताणं अवराजिओ भवदु मे रक्ख रक्ख स्वाहा । अनेन श्रीवर्धमान मंत्रेण प्रतिमां सप्तवारानभिमंत्रयेत् ।

न्यग्रोध आदि बारह वृक्षों के द्वारा ढके दुर्वांकुर आदि मांगलिक द्रव्यों से युक्त अमृतादि सप्त औषधियो के, जातिफलादि पचफलो के, पलाशादि की छाल के, सहदेवी आदि आठ दिव्यौषधियों की जड़ों के और लवगादि सप्तौषधियों के रसो से भरे घटों से खानि के भीतर ही प्रतिमा को शुद्धि करने को आकर शुद्धि कहते हैं ।

इस प्रकार आकर शुद्धि करके पुन: क्षोभित हुए सपुद्र के समान गर्जना करते हुए उत्तमोत्तम भेरी, करड, काहल, जय-जयकार शब्द, घंटा और शखों के समूहों से, गुलगुल शब्द करते हुए तालाबों से, झम झम करते हुए कंसतालों से, घुम घुम शब्द करते हुए नाना प्रकार के ढोल, मृदग हुडुक्क आदि मुख्य-मुख्य बाजों से सुर अलप करते हुए संधिवंधादिकों से अर्थात् सारंगी आदि से और नाना प्रकार के गीतों से, सुरम्य वीणा, वांसुरी से तथा सुन्दर आणक अर्थात् वाद्य विशेष के शब्दों से, नाना प्रकार के हाव भाव, विभ्रम, विलास तथा हाथ, पैर और शरीर के विकारो से अर्थात् विविध नृत्यो से नाचते हुए नौ रसों को प्रकट करने वाले नाना नाटकों से, स्तोत्रों से, मागलिक शब्दों से तथा उत्साह शतो से अर्थात् परम उत्साह के साथ मधुरभाषी, धर्मानुराग रत्त और भक्ति से उत्सव को देखने वाले चातुर्वर्ण संघ के सामने, जिसके ऊपर श्वेत आत्पत्र (छत्र) तना है, और श्वेत चमरो के ढोरने से व्याप्त है सर्व अंग जिनका, ऐसी जिन प्रतिमा को वह प्रतिष्ठाचार्य अपने मस्तक पर रखकर और जिनेन्द्रगृह की प्रदक्षिणा करके, पूर्वोक्त वेदिका के मध्य स्थित सिहासन पर विधिपूर्वक स्थापित कर, जिनेन्द्र प्रतिविम्ब में अर्थात् जिन प्रतिमा में जिन भगवान के गुणो का आरोपण करता हुआ, पुन. इष्ट लग्न के उदय में अर्थात् शुभ मुहूर्त में प्रतिमा के चंदन का तिलक लगावे । पुन प्रतिमा के सर्व आंगोपांगो में मंत्र न्यास करे और विविध प्रकार के पुष्पों से नाना पूजनों को करे । तत्पश्चचात् मदनफल (मैनफल या मैनार) सहित धवल वस्त्र युगल से प्रतिमा के मुख पट देकर अर्थात् वस्त्र से मुख को आवृत्त कर, अक्षत, पुष्प, चरु, दीप से, विविध धूप और फलो से, वलिवर्तिको से अर्थात् पूजार्थ निमित्त अगरबत्तियों से, जावारको से, सिद्धार्थ (सरसों) और पर्ण वृक्षो से तथा पूर्वोक्त उपकरणों से पूर्ण वैभव के साथ या अपनी शक्ति के अनुसार पूजा रचे ।

गुणारोपण विधि :

सहजान्घातिनाशोत्थान दिव्याश्चातिशयान् शुभान् ।
स्वर्गावतार सजन्य निःक्रम ज्ञाननिर्वृती: ॥ १ ॥
कल्याण पचकं चैतत्प्रातिहार्याष्टकं तथा ।
संध्यायां रोपयेत्तस्यां प्रतिमायां वहिर्भवं ॥ २ ॥
अनन्तदर्शन ज्ञानं सुखं वीर्यं तथांतरं ।
सम्यग्ध्यात्वाऽर्हतां बिंबंमनसाऽऽरोपयेत्तथा ॥ ३ ॥
सम्यक्त्व दर्शनं ज्ञानं वीर्यागुरुलघु सुखम् ।
अव्यावाधावगाहौ च सिद्ध बिंबेषु संस्मरेत् ॥ ४ ॥
रत्नत्रयं च बिंबेषु शेषाणां परमेष्ठिनां ।
अंगपूर्वमयं देहं श्रुतदेव्याश्च चिंतयेत् ॥ ५ ॥

पुस्तकार्थमपि ध्यायेदनंतार्थाक्षरात्मकं ।

अनेनविधिना तिष्ठेद्यावदिष्टांशकोदयः ॥ ६ ॥

(प्रतिमायां गुणारोपणं)

अर्थात् उक्त प्रकार से अरहंन की प्रतिमा मे अरहतो के, सिद्धों के बिम्ब में सिद्धों के और शेष परमेष्ठियों की मूर्तियो में उनके गुणो को आरोपण करें । शास्त्रों में द्वादशांग श्रुत का अध्यारोपण करे ।

चंदन तिलक :

दधिसिद्धार्थ सद्दूर्वाफल पुष्पाक्षतान्यपि ।

सद्वृद्धिरुद्धि कर्पूरप्रियगुयुत चंदनम् ॥ १ ॥

एवमादिशुभै र्द्रव्यै. समावाहनपूर्वकम् ।

लग्नेष्टांशोदये सम्यक् स्मृत्वा मंत्रं प्रतिष्ठयेत् ॥ २ ॥

(प्रतिष्ठा तिलक द्रव्याणि)

तिलक मंत्रोऽय-'ॐ णमो अरहताण अर्हं स्वाहा' तिलकं दधात् । अर्थात् उक्त द्रव्यो से प्रतिमा के तिलक करें ।

मंत्र न्यास ·

अत्र स्थापना निक्षेपमाश्रित्यावाहनादिमंत्रा· कथ्यन्ते । यथा ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू ह्रौं ह्र असिआउसा एहि एहि सर्वोषट् । आवाहन मत्र· । ॐ ह्रा ह्री ह्रूं ह्रौं ह्र· असिआउसा तिष्ठ तिष्ठ ठ· ठ· । स्थापनं मत्र । ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू ह्रौ ह्र असिआउसा ममसन्निहितोभव भववषट् । सन्निधिकरण मत्र· ।

आवाहनादिक कृत्वा सम्यगेवं समाहितः ।

स्थिरात्माष्ट प्रदेशानां स्थाने बीजाक्षरं न्यसेत् ॥

ॐ ह्रा ललाटे, ॐ ह्रीं वामकर्णे, ॐ ह्रूं दक्षिण कर्णे, ॐ ह्रौं शिर. पश्चिमे, ॐ ह्रं मस्तकोपरि, ॐ क्ष्मानेत्रयो , ॐ क्ष्मीं मुखे, ॐ क्ष्मूं कण्ठे, ॐ क्ष्मौं हृदये, ॐ क्ष्म· वाह्वोः, ॐ क्रौं उदरे, ॐ ह्रीं कट्या, ॐ क्रू जघयो·, ॐ क्षूं पादयो. ॐ क्ष हस्तयोः ।

श्री खण्डकपूरेण प्रतिमांगे गध विलिप्य प्रतिष्ठापयेत् । बीजाक्षराणिविन्यसेत् ।

अर्थात् उक्त प्रकार प्रतिमा के विभिन्न अंगों पर बीजाक्षरों को लिखे, यह मंत्र न्यास क्रिया कहलाती है ।

मुख पट विधानादि :

बहुमूल्य स्तिशलक्ष्णं प्रत्यग्रं सुदशान्वितं ।

प्रनष्टा वृत्तिदोषस्य मुखवस्त्रं ददाम्यहं ॥

ॐ नमोऽर्हते सर्वशरीरावस्थिताय समदनफलं सर्वधान्ययुतं मुखवस्त्र ददामिस्वाहा ।

(मदनफलसहितमुखवस्त्रमंत्र)

ॐ अट्ठविहकम्ममुक्को तिलोयपुज्जोय संथुओभयवं ।

अमरणरजाह महिओ अणाइणिहणो सि वंदसि ओ स्वाहा ।

(ककणवधनं)

निरस्त्रमन्मथास्त्रस्य ध्यानशस्त्रस्तकर्मण ।

विघ्नौघाऽ ध्नानि काण्डानि वस्त्र प्रातेषुविन्यसेत् ॥

(कांडस्थापनं)

यावारकस्थापनादि .

सर्वद्विदलसंभूतैर्थालाकुर विरूढकै · ।

पूजयामि जिनं छिन्नकर्म बीजाकुरोत्करं ॥ १ ॥

यवादिधान्य संभूतै· प्रौढोल्लासिहरित्प्रभै ।

यावारकैर्जिनं भक्त्या पूजयामि शुभ प्रदै· ॥ २ ॥

(यावारक स्थापन)

पचवर्णोलसच्छायै शक्रस्यधनुस्मरिभि ।

जगद्वर्णित सत्कीर्तिर्वर्णपूरैर्यजे जिन ॥

(वर्णपूरक)

प्रोद्दण्डै सद्रसोपेतैः यौवनारंभसन्निभै । निराकृतेक्षुकोद्दंडं यजे पुड्रेक्षुभिर्जिनं ॥

(इक्षुस्थपन)

अर्थात् मत्रन्यास के पश्चात् मैनफल के साथ धवल वस्त्रयुगल से प्रतिमा के मुख को आच्छादन करे । पुनः प्रतिमा के ककण वधन, काण्डकस्थापन, यावारक (जवारे) स्थापन वर्णपूरक और इच्छु स्थापन क्रियाओं को करे ।

वलिवर्तिकादि :

सत्पुष्पपल्लवाकारैः फलाकारैरनेधा ।
आर्द्रै दिष्टोद्भवैः शंभु बलिवर्त्युत्करैर्यजेत् ॥

(वलिवर्तिकास्थापनं)

सौवर्णं राजतं पूर्णं सुवारिपल्लवाननं ।
दधि दूर्वाक्षताक्तांगं भृंगारं पुरतो न्यसेत् ॥

(भृंगार स्थापनं)

अनेनविधिना सम्यक् द्वे चत्वारि दिनानि वा ।
त्रिसंध्यमर्चन कुर्वन् जिनार्चामधिवासयेत् ॥

(अधिवासना विधान)

अथारार्तिकमुत्तार्य धूपमुत्क्षिप्यचोत्तमम् ।
श्रीमुखोद्घाटन कुर्यात् सुमंत्र जपभावितः ॥

ॐ उसहाय वडढमाणाण पंचमहाकल्लाण सपाणाणं महइमहावीर वडढमाण साभीण सिज्झड मे महर महा विज्जा अट्ठमहा पाडि हेर सहियाणं सयल कल्लाण धराण सज्जोजादरुवाणं चउतीस अइसय विसेस सजुत्ताण बत्तीस देविंदमणि मउडमत्थमहियाणं सयल लोयस्स सति बुद्धि तुट्ठि कल्लाणाउ आरोग्ग कराण बलदेव चक्कहर रिसिमुणि जदि अणगारोवगूढाण उभयलोय सुहफलयराणं युइसयस हस्सणिलयाणं परापरमप्पाणं अणाइणिहणाणं वलिवाहुवलिसहियाणं वीरे वीरे ॐ हा क्षां सेण वीरे वड्ढमाणवीरे ह सं जयत वराइए वज्जासिलत्थं भमयाणं सस्सदवंभपइट्ठियाणं उसहाय वीरमंगल महापुरिसाण णिच्चकाल पइट्ठियाण एत्थ सण्णिहिदा मे भवंतु ठः ठः क्ष· क्ष· स्वाहा । श्री मुखोद्घाटनमंत्र । उक्त मंत्र के द्वारा प्रतिमा के मुख को उघाड़ देंवे ।

पुनः संघ के साथ तिरेसठ शलाका पुरुषों की सुकथालापो से रात्रि को जगे अर्थात् रात्रि जागरण करे । और फिर प्रातः काल संघ के साथ पूजन करे । इस प्रकार चार दिन तक तीनों संध्याओं में जिन पूजन करे । तत्पश्चात् नत्रोन्मीलन पूजन और चतुर्थ अभिषेक करे ।

(विदध्यात्तेन गंधेन चामीकर शलाकया । चक्षुरुन्मीलनं शक्रः पूरकेन शुभोदये ॥)

नेत्रोन्मीलन मंत्रादि :

रौप्यपात्रस्थदुग्धाज्यशर्करापूरसिताकृया ।

चक्षुरुन्मीलनं कुर्याच्चामीकर शलाकया ॥

ॐ णमो अरहताण णाणदसण चखुमयाणं अमीयरसायण विमलतेण सति तुट्ठि वरद सम्मा दिट्ठीणं वंझ अमियवरिसीणं स्वाहा । इस मंत्र के द्वारा प्रतिमा के नेत्रो में कनीनिका (पुतली) का आकार सोने की सलाई से अष्ट गंध द्वारा निकाले । इसे नेत्रोन्मीलन संस्कार कहते हैं ।

ॐ सत्तक्खर सज्झाणं अरहंताणं णमोतिभावेण ।

जो कुणई अणहवमणो सोगच्छई उत्तमं ठाणं ॥

(कंकणं मोक्षणं)

इस मत्र से ककण छोडे । पुनः प्रतिमा का अभिषेक और पूजन करके निम्न मंत्र से विसर्जन करे ।

अभिषेक ततः कुर्यात् स्थापन शास्त्रोक्त कर्मणा ।

वलिंशास्त्रोक्त मार्गेण भ्रामयेच्छ चतुर्दिशं ॥ १ ॥

मंगलार्थ समाहूता विसर्ज्याखिल देवताः ।

विसर्जनाख्य मंत्रेण वितीर्णकुसुमांजलिं ॥ २ ॥

ॐ जिनपूजार्थं समाहूता देवता विसर्जनाख्य मंत्रेण सर्वे विहित महामहाः स्वस्थानं गच्छत गच्छत य य॰ य॰ ।

इस प्रकार चल प्रतिमा की स्थापना कही गई, स्थिर या अचल प्रतिमा की स्थापना भी इसी प्रकार की जाती है । केवल इतनी विशेषता है कि आकर शुद्धि स्वस्थान में ही करे । (भित्ति या दीवाल या विशाल पाषाण और पर्वत आदि पर) चित्रित अर्थात् उकेरी गई, प्रतिलेपित अर्थात् रंग आदि से बनाई गई या छापी गई प्रतिमा का दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाकर और मस्तक पर तिलक करे । इतना मात्र ही भेद है, अन्य नहीं । शेष विधि पूर्व के समान ही जानना चाहिए ।

इसी प्रकार चिरन्तन अर्थात् अत्यन्त पुरातन कृत्रिम और अकृत्रिम प्रतिमाओं का जीर्णोद्धार, अविनय आदि से रक्षण, मेला, उत्सव आदि किया जाता है, वह सब स्थापना पूजा जानना चाहिए ।

प्रणाम

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी ।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारा ॥

जैन धर्म अनादिकालीन है और आज भी जैनधर्म का प्रचार-प्रसार है । संसार भर के लोग जैन तत्त्वो को मानते है और प्रशसा करते है । इसका कारण है जैन धर्म के कट्टर साधु मुनि त्यागी तपस्वी जो जैन धर्म के सच्चे तत्त्वो की पहचान कराते हैं । श्रावको को श्रावक धर्म के प्रति प्रेरित कराते है । उन्हे सही मजिल का ज्ञान कराते है । ऐसे ही मुनियों मे से थे चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) । नाम से ही जाना जाता है कि वे आदि यानि पहले दिगम्बर जैनाचार्य थे । यह सच है और इसमे कोई अतिशयोक्ति नहीं । जब जमाना २०वीं सदी की ओर बढ रहा था । भारत मे त्राहि त्राहि मची थी । सब तरफ अग्रेज शासन का जुल्म बढ़ रहा था । ऐसे समय मे दिगम्बर साधु का विहार मुश्किल था । पहले तो मुगल काल मे होने वाले जुल्म अत्याचार की वजह से जैन दिगम्बर साधु की लाखो वर्षों की परम्परा पर आँच आई थी । जिससे धीरे-धीरे दिगम्बर साधु की सख्या दिन व दिन घट रही थी । जैन धर्म की बागडोर भट्टारको के हाथो मे जा चुकी थी । धर्म का ह्रास हो रहा था । ऐसे कठिन समय मे अधेरे मे सूरज निकल आया । स्वय प्रकाशित तथा दूसरो को ज्ञान प्रकाश देने वाले 'आदिसागर' अवतरित हुए ।

ऐसे महापुरुष का परिचय बताते है । आपका जन्म दक्षिण के अंकली नामक गाँव में महाशिवरात्रि सन् १८६६ मे हुआ था । यह अकली एक ग्राम है जो महाराष्ट्र में स्थित है । आपका बचपन का नाम शिवगौडा था । आपके पिता सिद्ध गौड़ा और माता का नाम अक्का बाई था । आपके पितामह का नाम शकर गौड़ा पाटिल था । आपके दो भाई थे बालगौड़ा व वावगौड़ा और आदुबाई नामक एक बहिन थी । आपका विवाह आऊ बाई से हुआ था । जिनसे आपको एक लडका तवनगौड़ा और एक लडकी हीराबाई थी । आप क्षत्रिय कुल के थे और पूर्वज अंकली के जागीरदार थे तथा वर्तमान मे भी जागीरदार हैं । शिव गौडा गृहस्थ अवस्था में बडे पराक्रमी शूरवीर दयालु तथा जैन धर्मपरायण थे । जिसे देख अन्य मनुष्य बहुत आश्चर्य करते थे । एक बार कुछ साथियो ने आपको एक कमरे मे बद कर दिया । तब आप मुक्कों से किवाड़ तोड़ कर बाहर आ गये । तब से साथियो मे मुख्य माने गये । एक बार साथियो की शर्त पर एक बड़ा कद्दू हाथ से दबाकर फोडकर सारा का सारा खा गये । ऐसा भी कहा जाता है कि गृहस्थावस्था में आपके पेट

में सर्प था, प्यास लगने पर चूने के पानी से भरी हंडी छाछ समझकर पी गये उससे सर्प निकल कर बाहर आ गया अन्यथा उस सर्प से मृत्यु हो सकती थी। अवसर पाने पर आप बाढ़ से भरी कृष्णा नदी को अपनी भुजाओं से तैर कर पार कर लेते थे और नदी मे 12 हाथ गहरी डुबकी लगाते थे। एक या दो घूसे में नारियल फोड़ देते थे। भोजन के पश्चात् एक सेर सींगदाना (मूगफली के बीज) और एक सेर गुड सहज खा जाते थे। विपत्ती आने पर या अन्य कोई कारण उपस्थित होने पर आप साहस के साथ छाती सामने कर ताल ठोक कर यमराज से भी मुकाबला करने के लिए तैयार हो जाते थे। ऐसे साहसी थे शिव गौडा। कपास के पौधों को जड़मूल समेत उखाड़कर तीन घंटे में गाडी भरकर घर पर ले आते थे।

एक समय अंकली गाँव में दुर्भिक्ष पड़ा। लोग भूख से व्याकुल होकर त्राहि त्राहि करने लगे। अन्न के अभाव से प्राणो के संकट आने लगे। चारों ओर से निराश होकर सब लोग शिव गौडा के पास आए। शिवगौड़ा ने सबको सात्वना देते हुए जिनेंद्रदेव को स्मरण करने की प्रेरणा दी। समयोचित वीरत्व के साथ सबको धैर्य बंधाया और सबको लेकर वहाँ गये जहां अनाज के कोठे भरे हुए थे। शिव गौड़ा उन अनाज के कोठो के मालिको से बोले कि मैं अपने पेवों को खाली कर इन भूखो को दे देता हूँ। आप भी दो। इस पर साहूकार लोग बिगडे। उन्हे गरीब व भूखो पर दया नहीं आई। तब विवश होकर शिवगौडा ने बड़ी वीरता से साहस के साथ अपने प्राणो की बाजी लगाते हुए दुर्भिक्ष पीडित लोगो से कहा कि इन पेवों को (अनाज भरे गोदाम) खोल दो, डरो मत, मै खडा हूँ, कौन मेरे सामने आता है। ऐसा कहकर सबके पेवे खुलवा दिये और सब अन्न पीडितो मे बटवा दिया गया। पीडित लोग यथेष्ट अन्न ले गये। कोई भी शिवगौडा का मुकाबला करने नहीं आया। बाद में मुकद्दमा चलाया गया। शिवगौड़ा ने अदालत मे स्पष्ट कह दिया कि मै भूख से व्याकुल लोगो को नहीं देख सका। मेरे प्रार्थना करने पर भी जब पेवो के स्वामियों ने अन्न देना अस्वीकार कर दिया, तब मैंने यह कार्य भूखों को मृत्यु से बचाने के लिए किया। मजिस्ट्रेट ने निर्दोष घोषित कर छोड़ दिया।

उनके गाँव में पढाई का कोई साधन नही था। आपको शास्त्र श्रवण करने का व्यसन था। अंकली से दक्षिण की ओर ऊदगाँव में एक विद्वान् पंडित अप्पा शास्त्री रहते थे। चातुर्मास में वे शास्त्र प्रवचन करते थे। उसे सुनने के लिए शिवगौडा नियमित रूप से ऊदगाँव जाया करते थे। पहले से ही धर्म मे लगन थी। शिवगौडा जब १५ वर्ष के थे तब उनके पिता का स्वर्गवास हुआ और २७ वर्ष की अवस्था मे माता का स्वर्गवास हो गया। इसके कुछ समय पश्चात् धर्मपत्नी चल बसी। यही कारण आपके वैराग्य का हुआ। धीरे-धीरे आप मे वैराग्य की भावना जागने लगी। संसार में विरक्त मानव होकर धर्मात्म साधन में लगता है। नादणी गाँव में भट्टारक स्वामी मुनि जिनप्पा से क्षुल्लक दीक्षा देने की प्रार्थना की, किन्तु उस समय बच्चे छोटे होने से दीक्षा रुक गई। किन्तु धर्म की आराधना विशेष बढ़ने लगा।

अब आप एकाशन, अष्टमी, चौदस के उपवास करने लगे । दीक्षा के भाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगे । अन्त में नादनी गाँव मे ई सन् १९०६ में भट्टारक स्वामी मुनि जिन्नप्पा से ३१ वर्ष की आयु में स्वाति नक्षत्र में आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की । क्षुल्लक दीक्षा ले कर आत्महित के मार्ग पर चल पड़े । केवल ३ मास क्षुल्लक अवस्था में रहकर दही गाँव में श्री जिनेन्द्रदेव की साक्षी से ऐलक दीक्षा ले ली । दीक्षा के बाद स्वाध्याय आदि कर शास्त्र ज्ञान आपने बढ़ा लिया । अब आप तीन तीन उपवास कर आहार को निकलते थे । इस प्रकार व्रत उपवास ध्यान आदि का आपने अच्छा अभ्यास कर लिया । शक् सं १८३६ (ई सन् १९१३) मार्ग शीर्ष शुक्ला दोज मूल नक्षत्र मंगलवार १० बजे सिद्ध क्षेत्र कुंथलगिरि तीर्थ राज पर जिनेन्द्र देव की साक्षी पूर्वक आपने दिगम्बर जैन निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की । कारण यह था कि उस समय कोई भी निर्दोष मुनि दीक्षादाता नहीं था । अब आप शिवगौडा से आदिसागर हुए । एक बार आपके ब्रह्मचर्य की परीक्षा का भी समय आया । श्री क्षेत्र बाहुबलि पहाडी पर एक जम्बा नाम की बाई ने रात्रि के समय एकान्त अवसर पाकर आपसे आपस मे पति पत्नी बन जाने की प्रार्थना की और कहा कि आपके स्त्री नहीं है और मेरे पति नहीं है हम दोनो प्रेम से रहेगे । तुम मेरे पति बनो । एक युवास्त्री की एकान्त में ऐसी विकार युक्त बात करने पर भी आदिसागर मुनिराज (अकलीकर) तनिक भी विकार भाव नहीं लाए और निर्विकार भाव से गुफा में जाकर ध्यान मे लीन हो गये ।

लक्ष्मण्णराव भरमप्पा आरवाड़े सागली प्रबध करते थे । महाराज श्री उपदेश देते थे दीक्षाएँ दी संघ बन गया । आप पचाचार का पालन करते थे । अत: श्रुतपचमी के रोज सन् १९१५ मे आपको आचार्य परमेष्ठी का पद घोषित कर दिया गया । आप सप्ताह मे एक बार आहार लेते थे । आहार में एक ही वस्तु ग्रहण करते थे उनमे बड़ी शक्ति थी । आम की ऋतु में आम के रस का आहार मिला तो वे उस पर ही निर्भर रहते थे । दूसरी वस्तु नहीं लेते थे । जब गन्ने का रस लेते थे तब रस के सिवाय अन्य कोई भी पदार्थ ग्रहण नहीं करते थे । वे कन्नड़ी भाषा में आध्यात्मिक पदों को गाते थे वास्तव मे उनकी ज्ञान सपत्ति अपूर्व थी । पर जब श्रावक लोग उन्हें अपने कंधे पर उठाकर ले जाते थे तब उठाने वाले को ऐसा लगता था कि किसी बालक को उठाया हो । वे प्राय: कोनूर की गुफा मे रहते थे और ध्यान करते थे । वहाँ शेर आया करता था । शेर के आने पर उनको भय का सचार नहीं होता । थोड़ी देर दर्शन कर शेर चला जाता । आपके संघ में ६०-७० साधु थे । अकली गाँव में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी । उस समय चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया था । आपने दीक्षाएँ दीं उनमें क्षुल्लक शान्तिसागरजी दक्षिण को ऐलक दीक्षा दी जो वर्तमान में आचार्य शान्तिसागर (दक्षिण) के नाम से प्रसिद्ध हैं । आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज जिनका जन्म फिरोजाबाद मे हुआ उनको मुनि दीक्षा दी एवं अपना आचार्य पद प्रदान किया ।

ऊदगाँव मे आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) की सल्लेखना हुई थी । वहाँ कुछ दिनों बाद मुनि श्री ने अत्यन्त शांतता से धर्म प्रभावना पूर्वक समाधि मरण प्राप्त किया । यह महोत्सव बहुत प्रभावशाली हुआ । सल्लेखना की जानकारी श्रावकों को हो, और जन सामान्य में धर्म

प्रभावना बढ़े इस हेतु से सब तरफ सल्लेखना की खबर कराई थी। प्रतिदिन पंचामृत अभिषेक पूजा शान्ति मंत्र वगैरह दिनचर्या शुरू की थी। तब आचार्य श्री के दर्शन हेतु भक्तों का मेला लग गया था। मुनि यति अनगार ऐलक क्षुल्लक आर्यिका श्रावक श्राविका बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे। प्रतिदिन धर्मोपदेश होता था। व्रत उपवास जाप समाधि इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयों पर तत्त्व चर्चा होती थी। महाराज श्री के प्रभाव से दिग् देशस्थ समस्त जैन लोगों का अपूर्व मेला लगा हुआ था। रोज भजन पूजन सदुपदेश होते थे। चौदह दिन चौदह घंटे के समान चले गये तथा महाराज का शरीर कृश होने लगा। किन्तु आत्म बल उत्तरोत्तर वृद्धिंगत हो रहा था। समग्र चौदह दिनों का चतुराहार का त्याग किया था। महाशिवरात्रि का दिन था रात्रि के २ बजे सन् १९४३ को महाराज ने इस लोक की यात्रा समाप्त की। परलोक के लिए गमन कर गये। बहुत शान्ति से समाधि हुई तथा उस समय नाना प्रकार के बाजे बजे थे।

परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य मुनि कुंजर वीतरागी आदिसागरजी (अंकलीकर) की चरण पादुका मुनि श्री पायसागर महाराज ने बनवाई। समाधि के पूर्व सभी साधुजनों की साक्षी में प पू आचार्य आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) ने अपने योग्यतम शिष्य मुनि श्री महावीर कीर्तिजी महाराज को अपना आचार्य पद दिया था।

ऐसे महानमुनि परम्पराचार्य देश का राज्य का राष्ट्र का समाज का हित करते थे। आपने सत्य अहिंसा का प्रचार किया। कितने ही मांसाहारियों को शाकाहारी बनाया। भव्य जीवों को दिशाएँ देकर सघ का कुशलता से संचालन किया। आपने निर्दोष चारित्र पालन कर चारित्र चक्रवर्ती यह नाम सार्थक किया। धन्य है वह भूमि जहाँ जन्म लिया तथा धन्य है वह जन्मदात्री माता जिन्होंने आप जैसी शक्ति को जन्म दिया। उनको मेरा शत-शत प्रणाम्।

कन्नड धन्नूलाल साहूजी

दि 8 11 93

जैन दर्शन में ज्योतिष

ले : सौ. अनिला जैन पहाड़िया



अनादिकाल से ससार में कर्म के कारण आत्मा सुख और दुःख प्राप्त करती है । चढ़ती है औ ाडती है इसमे कर्म आधार है । अन्य दर्शन का अध्ययन करता हुआ जैन दर्शन में कर्म सिद्धान्त अत्यन्त गहन है । समझने जैसा है । अन्य दर्शन मे सुख और दुःख ईश्वर देता है ऐसा कहा गया है जबकि जैन दर्शन इस बात को हरगिज स्वीकार करने के लिए तैयार नही है । आत्मा कर्त्ता है और आत्मा भोक्ता है । ईश्वर किसी को सुख-दुःख नहीं देता है । जो कोई माया जाल दिखाते है वह कर्म ही हैं । कर्म को जानने वाला व्यक्ति स्वय अपने जीवन मे कभी भी वैर झेलने इकट्ठा करने के लिए नहीं खडा है । वैर के द्वारा ससार मे मायाजाल आत्मा के आस-पास फिरता है । उस मायाजाल को जानने के लिए जैनाचार्यों ने महान ग्रन्थो और शास्त्रों की रचना की है । इसका कथन भगवान् जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ वीतरागी हितोपदेशी ने बताया है जिसको गणधर प्रतिगणधर ने श्रुतज्ञान मे लिपिबद्ध किया है ।

जो परिकर्म के चद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, मे ज्योतिष देवो के इन्द्र हैं जिनका विशद वर्णन पाया जाता है । साथ द्वीप सागर प्रज्ञप्ति में भी संदर्भ पाया जाता है । प्रश्न व्याकरणांग प्रश्नादिकों का वर्णन मिलता है । आज वर्तमान में बहुधा पुराणों में तो मिलता है जैसे हरिवंश पुराण मे हस्त सामुद्रशास्त्र का वर्णन है विशेषतया त्रिलोकसार और त्रिलोक प्रज्ञप्ति मे ज्योतिष का वर्णन है । जैन धर्म के अनन्य विद्वान् श्री नेमीचन्द्र जी ने प्रश्नचिन्तामणि भारतीय ज्योतिष, कर लक्खण को लिखकर जैन धर्म के अस्तित्व को बनाये रखने का ही कार्य किया । भद्रबाहु आचार्य महान उच्च

कोटि के निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु हुए है उन्होंने भद्रवाहु संहिता ग्रन्थ लिख दिया है । जिससे जैन धर्म में चारचाद लग गये हैं । उसमे अष्ट महा निमित्तो का सुन्दर ढग से चित्रण किया गया है । उसमें साधुओ के लिए भी उपयोगी बतला दिया है । उमा स्वामी ने भी मोक्षशास्त्र में समस्त ज्योतिर्मंडल को बताया है । उन्होने बताया कि ज्योतिषी देवो के त्रापस्त्रिंश और लोकपाल देव नहीं होते हैं । वे ज्योतिष देवो को बताते हुए लिखते है-ज्योतिष्का: सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्र प्रकीर्णक तारकाश्च । मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयो नृ लोके । तत्कृत काल विभाग· । वहिरवस्थिता· ।

सूर्य, चन्द्र ये इन्द्र और प्रतींद्र होते हैं ग्रहों की सख्या का प्रचलन ७-८-९ सामान्य रूप है । इसका विशेष कथन अन्य ग्रन्थो से मिलता है उन्होंने ग्रहों की संख्या ८८ और इससे भी ऊपर बताई हे । नक्षत्रो के विपय मे भी यही व्यवस्था बतायी गई है । मूल में २७ नक्षत्रों का प्रचलन है अभिजित को भी जोडने पर २८ की सख्या हो जाती है । परन्तु जैन धर्म में असंख्यात नक्षत्र बताये गये हैं । प्रकीर्णक का अर्थ यत्र-तत्र फैले हुए से हैं ताराओ की बात भी इसी तरह से है । ये सभी ज्योतिषी देव कहलाते हैं ।

वस्तुस्थिति तो यह है कि कोई किसी का कुछ नहीं कर सकता है । यह प्राणी स्वयं जब अपने मन को अपने वचन को और इसी प्रकार अपने काय को कंपन करता है तब कर्म वर्गणाएँ आ जाती है बध जाती हैं वे जब उदय मे आती हैं तब याद आती है कि मैंने क्या किया इसमे भी समझ करके भी नासमझ बने तब क्या करना ? जिस जीव ने जिस जीव के साथ जैसा किया है । वैसा ही उसको फल मिलता है और भोगना पड़ता है । ज्योतिषी देव क्यों और कैसे हुए यह भी ग्रन्थातर से जानना चाहिए । लेकिन इतनी बात अवश्य है कि दुख देने वाले को दुख और सुख देने वाले को सुख भोगना पडता हे ये ज्योतिषी अर्थात् ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक और तारा जीव हैं । ये द्रव क्षेत्र काल और भाव के अनुसार शुभ-अशुभ रूप हो जाते हैं । जो जीवो को शुभाशुभ फल देते हैं । विचार करने से मालूम हो जायेगा कि एक ग्रह या एक नक्षत्र या एक तारा आदि एक समय में एक को सुख और एक को दु·ख देते हुए देखे सुने और पाये जाते हैं । जीवों को इसकी जानकारी होनी चाहिए कि कर्म किस प्रकार से बधने के कितने स्थान है और किस प्रकार कर्म भोगना चाहिए ।

९ ग्रहो के नाम इस प्रकार हैं-(१) सूर्य (२) चन्द्रमा (३) मगल (४) बुध (५) वृहस्पति (६) शुक्र (७) शनि (८) राहु (९) केतु । २८ नक्षत्रो के नाम इस प्रकार हैं । (१) अश्विनी (२) भरणी (३) कृतिका (४) रोहिणी (५) मृगशिर (६) आद्रा (७) पुनर्वसु (८) पुष्य (९) आश्लेषा (१०) मघा (११) पूर्वाफाल्गुनि (१२) उत्तराफाल्गुनि (१३) हस्त (१४) चित्रा (१५) स्वाती (१६) विशाखा (१७) अनुराधा (१८) ज्येष्ठा (१९) मूल (२०) पूर्वाषाढा (२१) उत्तराषाढा (२२) श्रवण (२३) धनिष्ठा (२४) शतभिषा (२५) पूर्वाभाद्र पद (२६) उत्तराभाद्र पद (२७) रेवती (२८) अभिजित । १२ राशि इस प्रकार हैं । (१) मेष (२) वृषभ (३) मिथुन (४) कर्क (५) सिह (६) कन्या (७) तुला (८) वृश्चिक (९) धन (१०) मकर (११) कुंभ (१२) मीन

इत्यादि जड़ का चेतन पर और चेतन का जड़ पर प्रभाव प्रत्येक गुण द्रव्य पर्याय का पड़ता है । इसलिए मुहूर्त आदि का आलंबन लेने की आवश्यकता है । वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में हीन संहनन काल पाँचवां है ऐसी स्थिति में इस ज्योति के प्रभाव की अनुकूल अनुकूलता से साधना में सुगमता हैं । इसी दृष्टिकोण से ज्योतिष को महत्त्व दिया गया है । दूसरी बात यह है कि जिनवाणी ही नहीं है जिन वाणी है । अर्थात् इसके मूल कर्त्ता श्री जिनेन्द्रदेव तीर्थंकर अरहंत परमेष्ठी हैं । अतएव यह श्रद्धातव्य ज्ञातव्य और कर्त्तव्य है ।

प्रकीर्णक

समाधि सम्राट् आचार्य परमेष्ठी श्री 108 आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज की डायरी से-

(१) व्यायाम के आसन के ८४ भेद :

(१) सिंहासन (२) पद्मासन (३) वीरासन (४) पवन मुक्तासन (५) वामपाद पवन मुक्तासन (६) दक्षिण स्वांस गमनागमनासन (७) सिद्धासन (८) सर्वांगासन (९) हस्त भुजासन (१०) ज्योष्तिकासन (११) मडुंकासन (१२) वामार्धपादासन (१३) मत्स्यासन (१४) पवनासन (१५) क्षेमासन (१६) अपानासन (१७) लोलासन (१८) वामपाद अपानगमना गमनासन (१९) कुक्कटासना (२०) अर्द्धपआसन (२१) द्विपादशिरासन (२२) गोरक्षासन (२३) स्थिरासन (२४) चक्रासन (२५) अर्ध्वपआसन (२६) वामसिद्धासन (२७) अर्ध धनुषासन (२८) स्थिति विवेकासन (२९) दक्षिणचतुर्थांशपादासन (३०) दंडासन (३१) वाम पादासन (३२) वाम अगुष्ठासन (३३) कुर्मासन (गोमुखासन) (३४) वामशाखासन (३५) वामजान्हासन (३६) वाम हस्त भयकरासन (३७) पूर्णपादत्रिकोणास्न (३८) वामतर्कासन (३९) दक्षिण वामत्रिकोणासन (४०) दक्षिणासन (४१) धीरासन (४२) वातायनासन (४३) पश्चिमतासन (४४) अर्ध्वपादासन (४५) प्रार्थनासन (४६) पूर्वतकीसन (४६) गरुडासन (४८) पूर्वत्रिकोणासन (४९) दक्षिणतर्कासन (५०) वाममत्स्येंद्रासन (५१) दक्षिण पाद पवन मुक्तासन (५२) मत्सोंद्रासन (५३) उष्ट्रासन (५४) उपधानासन (५५) एक पाद वृक्षासन (५६) वामहस्त चतुष्कोणासन (५७) कोकिलासन (५८) गर्भासन (५९) हस्तवृक्षासन (६०) अर्ध्वसंयुक्त पादासन (६१) चित्तस्तम्भासन (६२) मुस्त हस्त वृक्षासन (६३) उत्थान पादासन (६४) प्रोढासन (६५) धनुषासन (६६) वामदक्षिण पादासन (६७) हंसासन (६८) वाम भुजासन (६९) अर्धवृक्षासन (७०) अध्यासन (७१) पूर्णपादासन (७२) नाड़ासन (७३) सुखासन (७४) वृक्षासन (७५) विश्वासन (७६) अर्ध कूर्मासन (७७) प्राणासन (७८) शलभासन (७९) कार्मुकासन (८०) वज्रासन (८१) समानासन (८२) भुजासन (८३) आनन्दमंदिरासन (८४) मयूरासन ।

(२) गृहस्थासन के ५१ भेद :

(१) सुखासन (२) उत्कृटिकासन (३) इन्द्राणिकासन (४) वांडविकासन (५) विजृभितासन (६) पिडितासान (७) सपुटासन (८) स्थिरतासन (९) पद्मासन (१०) अर्ध पद्मासन (११) अर्पितासन (१२) उत्पीडिकासन (१३) अर्ध निपीडितासन (१४) अविलंवितासन (१५) उत्थितासन (१६) जानुकूर्परासन (१७) धेनुकासन (१८) मृगासन (१९) करीवहर्मासन (२०) समुद्रासन (२१) सन्मुखापुटासन (२२) व्यापतासन (२३) झूलासन (२४) परिवर्तितासन (२५) उपवीतासन (२६) आदितासन (२७) ग्राम्यासन (२८) नागरिकासन (२९) सूच्यासन (३०) मागवलासन (३१) युग्मपड़ासन (३२) वेणुविदारितासन (३३) प्रसारितासन (३४) मुक्तासन (३५) फलियाशासन (३६) सर्पासन (३६) कार्ककटासन (३८) प्रेक्षासन (३९) कुंदुं कासन (४०) परावृतासन (४१) कौर्मासन (४२) मांडुकासन (४३) संयमनासन (४४) व्योमदासन (४५) कीर्तिविध्वासन (४६) मार्कटासन (४६) उन्मत्तासन (४८) हनुपादासन (४९) रतिसुंदरासन (५०) विमर्दितासन (५१) स्वरितकासन।

(३) पाषाण के ८४ भेद :

(१) अजूवा (२) अहवा (३) अर्मलिया (४) अवरी (५) अलेमानी (६) उपल (७) उदाऊ (८) एमनी (९) कटैला (१०) कुदरत (११) कसौटी (१२) कहरवा (१३) कांसला (१४) कुरड (१५) गवा (१६) गौरी (१७) गुदड़ी (१८) गोदंती (१९) गोदंता (२०) चिती (२१) चकमक (२२) चुंबक (२३) जवरजद (२४) जजेमानी (२५) खारा (२६) जहरमोरा (२७) झरना (२८) टोपस (२९) डुर (३०) डेडी (३१) तामड़ा (३२) तिलिया (३३) तुरमली (वैक्रांत) (३४) तुरसावा (३५) दारचना (३६) दानेफरंग (३७) दुरेनजफ (३८) दांतला (३९) धनैला (४०) नरम (४१) पनघन (४२) पितोनिया (४३) पारस (४४) फातजहर (४५) फीरोजा (४६) फिटक (४७) बसरी (४८) विल्लौर (४९) वेरुज (५०) बाँसी (५१) मरगज (५२) माखर (५३) मकड़ी (५४) मरियम (५५) मूसा (५६) मूवेनजफ (५६) यशव (५८) रातरतुवा (५९) लालड़ी (६०) लाजवती (६१) लूधिया (६२) लास (६३) संगसितारा (६४) संगे सिनाक (६५) सुलेमानी (६६) संगेजराहत (६७) सुनैला (६८) सिंदुरिया (६९) सीवार (७०) सीजरी (७१) संगीया (७२) सिफरी (७३) सीया (७४) सोहनमक्खी (७५) सुरमा (७६) सीगली (७७) स्फटिक (७८) अकीक (७९) हदीद (८०) हजरतवेर (८१) हकीकुलवहार (८२) हवास (८३) हालन (८४) संगेवसरी।

(४) किस वस्तु के अभाव में कौन वस्तु को ग्राह्य :

जावित्री के	अभाव में	लवंग
कस्तुरी	''	कंकोल
कंकोल	''	जावित्री
कपूर	''	नागरमौथा
केसर	''	कुसुम के फूल
श्रीखण्ड चंदन	''	कपूर
कपूर	''	रक्त चन्दन
रक्त चन्दन	''	नई खस
नाग केसर	''	पद्मकेसर
स्वर्ण	''	स्वर्ण माक्षिक
शहद	''	पुराना गुड
मिश्री	''	खाड

(५) किस राशि को किस राशि से लेना है :

मेष को	मेष, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन ।
वृष को	वृष, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, मीन ।
मिथुन को	मिथुन, धन, मकर, कुम्भ, मीन ।
कर्क को	कर्क, मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृषभ ।
सिह को ·	सिह, कुम्भ, मीन, मेष, मिथुन, वृषभ ।
कन्या को ·	कन्या, मीन, मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क ।
तुला को ·	तुला, मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह ।
वृश्चिक को	वृश्विक, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिह, कन्या ।
धन को	धन, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला ।
मकर को ·	मकर, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक ।
कुम्भ को :	कुम्भ, सिह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन ।
मीन को	मीन, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर ।

(६) जन्म तारीख से राशि का ज्ञान :

२१ मार्च से १९ अप्रेल तक की मेष ।	२० अप्रेल से २० मई तक की वृषभ ।
२१ मई से २० जून तक की मिथुन ।	२१ जून से २१ जुलाई तक की कर्क ।
२२ जुलाई से २२ अगस्त तक की सिंह ।	२३ अगस्त से २० सितम्बर तक की कन्या ।
२१ सितम्बर से २२ अक्टुम्बर तक की तुला ।	२३ अक्टुम्बर से २१ नवम्बर तक की वृश्चिक ।
२२ नवम्बर से २१ दिसम्बर तक की धन ।	२२ दिसम्बर से २० जनवरी तक की मकर ।
२१ जनवरी से १९ फरवरी तक की कुम्भ ।	२० फरवरी से २० मार्च तक की मीन ।

(७) नक्षत्रानुसार व्यवसाय :

''अश्विनी, भरणि, कृतिका''

वेल्ला, सक्करे, तुप्प, एण्णे, उप्पु, एल्लु, जौडल, मुतादरस पदार्थ गढ़, काहीण, शीरे, कुप्पस, उद्दु, मौदलाद, कप्पु ।

''पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेशा''

अडिके, जवलि, कविलि, आरणे, नुलूमध्यम-एल्लू, कुसुंवि, जौडल, वैण्णे, वेल्ल उत्तम ।

''हस्ता, चित्रा, स्वाति '

कघिण, सीस, कवलि मध्यम, कप्पु, एण्णे, वेल्ल, जौडल, शीगां सुवि ।

''मूला, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ''

अक्कि, गोदि, वेलिजौड, अरणि, वेल्लि, अरिवे, रेशम, मेंशिनकाई, तंवाक, उत्तम, एल्लु, कव्विण, उक्कु, शीश ।

''पूर्भाद्रपद, उमाद्रपद, रेवती'' ''रोहिणी, मृगशिर, अरिद्र''

आडिक्के, कविलि, आरिवे, आरले, वेल्लि, ताम्र, हिताले, काहीण, वारपान ।

''गमघा, हुधा, उत्तराग''

हत्ति, अरणे, नूलु, रेशम, कघिण, वेल्लि, मगार, ताम्र, हित्तालि, नीरस वस्तु, एण्णे, वेण्णे, वेल्ल, एड्डु, उत्तम ।

''विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा''

कडले, गोधि, अगसि, केंपुजौड, तोगरे, उप्पु, वेल्ल, एल्लु, कुसुविं जौडल ।

''श्रवण, घनिष्ठ, शत्ततारा''

एण्णे, वेण्णे, उप्पु, सक्करे, वेल्ल, हुण्णि, जौडल, सींगा, रसवर्ग ।

अरणि, हत्ति, वेल्लि, जवलि, नूलू, विलिजोल, कंविण, शीश, एल्लू, वेल्ल, एण्णे, कप्पु ।

(८) राशि नक्षत्र वार के अनुसार कार्य :

चर-चल : पुनर्वसु, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, नक्षत्र सोमवार को वाहन, वाड़ी आदि कार्य करना चाहिए ।

लघु-क्षिप्र : अश्विनि, पुष्य, हस्त, अभिजित, नक्षत्र गुरुवार को व्यापार, विलास, ज्ञान और औषधि कार्य करना चाहिए ।

मृदु-मैत्री : मृग, चित्रा, अनुराधा, रेवती, नक्षत्र शुक्रवार को मैत्री तथा मागलिक कार्य करना चाहिए ।

ध्रुव-स्थिर : उत्तरा फाल्गुनि, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद, रविवार को बोना तथा वास्तु आदि कार्य करना चाहिए ।

दारुण-तीक्ष्ण आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल, नक्षत्र शनिवार को क्लेश, बंधन, पशु विक्रय कार्य करना चाहिए ।

क्रूर-उग्र भरणी, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वा भाद्रपद मंगलवार को घात मारण आदि कार्य करना चाहिए ।

मिश्र-साधारण · कृतिका, विशाखा, नक्षत्र बुधवार को यज्ञ अग्नि होम आदि कार्य करना चाहिए ।

(९) कार्य के लिए सामान्य दिन शुद्धि :

तिथि · २, ३, ५, ७, १०, ११ बदी (कृष्णपक्ष) की १ तथा शुक्ल पक्ष की १३ शुभ हैं ।

वार सोम, बुध, गुरु और शुक्रवार शुभ हैं ।

नक्षत्र · अश्विनि, रोहिणी, मृग, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तर फाल्गुनि, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, उत्तरा षाढा, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, उत्तरा भाद्रपदा और रेवती शुभ हैं ।

करण · वव, वालव, कौलव, तैतिल, चर और वणिज शुभ हैं ।

(१०) राशि-रंग-नंग-स्वभाव-स्वामी :

राशि	रंग	नंग	स्वभाव	स्वामी
मेष	लाल	प्रवाल	चर	मगल
वृषभ	फीका	हीरा	स्थिर	शुक्र

मिथुन	पीला	पन्ना	द्विस्वभावी	बुध
कर्क	नीला	मोती	चर	चन्द्र
सिंह	नारंगी	माणिक	स्थिर	सूर्य
कन्या	फीकाकाला	पन्ना	द्विस्वभावी	बुध
तुला	हिरमिजी	हीरा	चर	शुक्र
वृश्चिक	तेजलाल	प्रवाल	स्थिर	मंगल
धन	पीला	पुखराज	द्विस्वभावी	गुर
मकर	कालाश	नीलम	चर	शनि
कुम्भ	आस्मानी	नीलम	स्थिर	शनि
मीन	तेज सफेद	पुखराज	द्विस्वभावी	गुरु

(११) योग :

राजयोग · मंगल, बुध, शुक्र और रवि इन वारों में से किसी वार को २, ३, ७, १२ और पूनम इनमें से कोई तिथि और भरणी, मृगशिर, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा अनुराधा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा, उत्तरा भाद्रपद इनमें से कोई नक्षत्र हो तो मांगलिक, धर्म, पौष्टिक आदि कार्य करना शुभ हैं ।

कुमार योग : सोम, मंगल, बुध और शुक्र ये वार १, ६, ११, ५ और १० ये तिथि । आश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, हस्त, विशाखा, मूल, श्रवण और पूर्वा भाद्रपदा ये नक्षत्र । वार तिथि नक्षत्र इन तीनों के योग मिलने पर मैत्री विद्या, दीक्षा, ग्रह, व्रत आदि कार्य करना शुभ है ।

अमृतसिद्ध योग · रवि-हस्त, सोम को मृग, मंगल को अश्विनी, बुध को अनुराधा, गुरु को पुष्य, शुक्र को रेवती, शनिवार को रोहिणी होने पर बनता है ।

(१२) दीक्षा :

प्रव्रज्या की कुंडली में ग्रहों का उत्तम स्थान **सूर्य** २, ५, ६, ११, **चन्द्र** २, ३, ६, ११ **मंगल** ३, ६, १०, ११, **बुध** २, ३, ५, ६, १०, ११ **गुरु** १, ४, ५, ६, ७, १०, ११ **शुक्र** ३, ६, ९, १२ **शनि** २, ५, ६, ८, ११ **राहु** ३, ६, ११ **केतु** ५, ९, १२ ।

लग्न में तथा नवमांश में द्विस्वभावी राशि (मिथुन, कन्या, धन, मीन) वृषभ के बिना स्थिर राशि (सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) और मकर राशि ये शुभ है । मेष, वृषभ, कर्क और तुला राशि लग्न में अशुभ है ।

(१३) वारानुसार कार्य :

सूर्य . नौकरी, राज्य, टेन्डर देना, पद का चार्ज देना ।

चन्द्र : सर्व कार्यार्थ कल्याण कारक ।

मगल युद्ध, यात्रा, कर्ज देना, सभा सोसाइटी मे जाना, वादविवाद मुकदमा, नोटिस, कार्य करना ।

बुध · विद्या पठन पाठन, संग्रह करना, नवीन व्यापार प्रकाशन करना, लेखना करना प्रार्थना पत्र देना ।

गुरु विवाह सम्बन्धी कार्य सम्पर्क व्यवहार अधिकारी से मिलना सग्रह करना विद्या का अभ्यास करना ।

शुक्र · यात्रा करना, वस्त्र धारण करना, शत्रुगण का कार्य करना, मागलिक कार्य करना ।

शनि हीरा द्रव्य, सग्रह करना, भूमि मकान की नीव रखना, गृह प्रवेश करना, मशीनरी कार्य करना, स्थापना का कार्य करना स्थिर कार्य करना ।

(१४) यंत्र रचना फल :

(१) एक से प्रारम्भ करने पर ·	दृष्टि शाकि न्यादि भय नही होता ।
(२) दश से ''	अधिकारी आदि प्रसन्न होता है ।
(३) उन्नीस से ''	अग्नि सर्प भय नहीं होता ।
(४) अट्ठाईस से ''	ताप नहीं होता ।
(५) सैंतिस से ''	नव ग्रहादि की पीडा नही होती ।
(६) छियालीस से ''	विजय होती है ।
(७) पच्चपन से ''	मन्दिर घर के दरवाजे पर लिखने से उन्नति होती है ।
(८) चौसठ से ''	शास्त्र पर बाँधने से विजय होती है ।
(९) तिहत्तर से ''	दीपावली को दीवाल पर लिखने से जय विजय होती है ।

धनतेरस से तीन दिन घी का अखण्ड दीपक के सामने २५ हजार जाप कर घी, दूध, दही, गुड़ मिश्री से दशांश होम तथा १२ हजार मंत्र से तर्पण जलांजलि देना फिर रोजाना २१ बार जपना।

"ॐ आं ऐं क्रों ह्रीं हंस रूपे सर्व वश्ये श्रीं सोऽहं पद्मावत्यै ह्रीं नमः पद्मावत्यै।"

(१५) नक्षत्रानुसार कार्यफल :

(१) श्रवण नक्षत्र में काले एरंड की जड़ लाकर दीप धूप देकर वंध्या के गले में बांधने से पुत्रोत्पत्ति होती है।

(२) उत्तराषाढा नक्षत्र में मंदार का वंदा हाथ बाँधने से सर्वजन प्रिय होता है।

(३) अनुराधा नक्षत्र में चमेली की जड़ लाकर शिर पर रखने से शत्रु मित्र होता है।

(४) चित्रा नक्षत्र में गुलाब की जड़ को लेकर पास रखने पर शरीर में कष्ट नहीं होता है।

(५) उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में नीम की जड़ लाकर दूध में घिसकर पिलाने से पुत्र होता है।

(६) अर्द्रा नक्षत्र में अर्क की जड़ लाकर ताबीज में रख कर पास मे रखने पर झूठा साँचा होता है।

(७) आँवला और मुलेठी को दूध में साथ पीने से गर्भ स्तम्भन होता है।

(८) काली सरसों, काली मिर्च पीसकर आंजने से भूत बाधा दूर होती है।

(१६) दीक्षा नक्षत्र :

मृग, आर्द्रा, पुष्य, मघा, उत्तरा; हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपदा, रेवती ये शुभ नक्षत्र हैं।

स्त्री दीक्षा नक्षत्र

अश्विनी, हस्त, स्वाति, अनुराधा पूर्वाषाढा, मूल, उत्तराषाढा, पूर्वा फाल्गुनि, श्रवण, शतभिषा, उत्तरा भाद्र पदा ये शुभ नक्षत्र हैं।

केशलोंच करने का योग्य समय

कृतिका, विशाखा, मघा, भरणी, ये नक्षत्र वर्ज्य हैं। सोम, बुध, शुक्र इन वारों को करना शुभ है।

(१७) मंत्र ग्रहण दिवस फल :

रविवार को : धन लाभ सोमवार को : शान्ति

मंगलवार को	:	आयु क्षय	बुधवार को	:	सौन्दर्य लाभ
गुरुवार को	:	ज्ञान वृद्धि	शुक्रवार को	:	सौभाग्य
शनिवार को	:	वंश हानि ।			

नक्षत्र फल

अश्विनी	शुभ	ज्येष्ठा	पुत्रहानि
भरणी	मरण	मूल	कीर्ति वृद्धि
कृतिका	दुख	पू षाढा	यश वृद्धि
		उ षाढा	यश वृद्धि
रोहिणी	ज्ञानवान	श्रवण	दुख
मृगशिरा	सुख	धनिष्ठा	दारिद्रय
आर्द्रा	वंधुनाश	शतभिषा	बुद्धि
पुनर्वसु	धनलाभ	पूर्वा भाद्रपदा	सुख
पुष्य	शत्रुनाश	उतरा भाद्रपदा	सुख
आश्लेषा	मृत्यु	रेवती	कीर्ति वृद्धि
मघा	दुखमोचन	मकर सक्रान्ति	मत्र
पू फाल्गुनी	सौन्दर्य	कर्क संक्रान्ति	ग्रहण
उ फाल्गुनी	ज्ञान	कर्क संक्रान्ति	करने में
हस्त	धन लाभ	सूर्य ग्रहण	शुभ हैं ।
चित्रा	ज्ञानवृद्धि	चन्द्र ग्रहण	,,
स्वाति	शत्रुनाश	सोमवार को अमावस्या	,,
विशाखा	दुख	मंगलवार को चतुर्दशी	,,
अनुराधा	बंधु वृद्धि	रविवार को सप्तमी	,,

भाद्रपद की छठ

आसौज कृष्णा १४	कार्तिक सुदी ९
मंगाशिर सुदी ९	पोष सुदी ९

माघ सुदी ४	पाल्गुण सुदी ९
चैत्र सुदी १४	वैसाख सुदी ३
ज्येष्ठ सुदी १०	आषाढ सुदी ५ एवं श्रावण सुदी-५ ये सिद्ध योग हैं :
चैत्र सुदी १३	वैसाख सुदी १३
ज्येष्ठ बदी १४	आषाढ सुदी ५ (नाग पंचमी)
श्रावणी	एकादशी
भादवा	रोहिणी
आसोज	नीमहाष्टमी
कार्तिक सुदी ९	मंगसर सुद ९
पौष सुदी ६, १४	माह सुदी ११ एव फाल्गुन सुदी ६ सिद्ध योग हैं।

मास फळ

चैत्र	सर्व सिद्धि।	वैशाख	रत्न लाभ।
ज्येष्ठ	मरण।	आषाढ	बधु नाश।
श्रावण	शून्य।	भाद्र पद	शून्य।
आसौज	रत्नलाभ।	कार्तिक	सिद्धि।
मंगसिर	सिद्धि।	पोष	शत्रु वृद्धि पीडा।
माघ	मेघा वृद्धि।	फाल्गुण	सर्व सिद्धि।

तिथि फळ

एकम	बुद्धि वृद्धि	दौज	मेघावि
तीज	शुद्धि	चौथ	शून्य
पंचम	ज्ञान वृद्धि	षष्ठ	भविष्य वृद्धि
सातम	शून्य	अष्टमी	बुद्धि क्षय
नवमी	शून्य	दशमी	शून्य
ग्यारस	शुद्धता	बारस	शून्य
तेरस	शून्य	चौदश	शून्य
पूर्णमासी	सिद्धि	अमावश्या	सिद्धि नहीं

(१८) बुद्धिवर्द्धक प्रयोग :

ॐ आं अं स्वाहा । १० माला प्रतिदिन जाप्य करें ।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं वद वद वाग्वादिनि भगवती सरस्वती ऐं नमः स्वाविधां देहि देहि मम ह्रीं स्वाहा ।

ग्रहण समय १४४ बार जपें फिर नित्य त्रिकाल 108 बार जपें ।

ॐ नमो भगवती सरस्वती परमेश्वरी वाग्वादिनि मम विद्यां देहि भगवती हस वाहिनी समारूढ़ा वृद्धि देहि देहि आज्ञा देहि देहि विद्यां देहि देहि परमेश्वरी सरस्वती स्वाहा ।

रविवार से २१ दिन तक १०८ बार जाप करें ।

ॐ नमो ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वद वद वाग्वादिनी बुद्धि वर्धय वर्धय ॐ ह्रीं नमः स्वाहा ।

ग्रहण समय १०८ जाप करे फिर प्रतिदिन १०८ बार जापें ।

(१) हल्दी, वज, कुष्ठ, पीपल, सोंठ, अजमोद, जेठी मद, सेंधा नमक, समभ्ग्ग घी के साथ २१ दिन लेवें ।

(२) घोड़ा वज १५ से बीस रती घी के साथ लेना दूध पीना आवला के रस की भावना देकर उपयोग करना ।

(३) माल कागनी (ज्योतिष्मति) का तैल १० बूंद बतासे मे दूध पीना साथ मे पुराना चावल सेवन करे । पानी बिल्कुल नहीं लेना । इसको दो बून्द से प्रारम्भ करे ४१ दिन तक लेवें ।

(४) सूठ, अजमान, हल्दी, दारुहल्दी, सेधा नमक, वज, ज्येठी मद, कुष्ठ, पीपल, जीरा, सम भाग घी से लेना ।

रोग निवारण

ॐ नमो भगवते श्री पार्श्वनाथाय धरणेंद्र पद्मावति सहिताय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउसा सर्व रोग स्तम्भ्य स्तम्भ्य ठ॰ ठ. स्वाहा ।

संकट मोचन

ॐ नमो भगवते पार्श्वनाथाय धरणेंद्र पद्मावती सहिताय फणामणि मंडिताय कमठ विध्वंशनाय सर्व ग्रहोच्चाटनाय सर्वोपद्रव शान्ति कुरु कुरु स्वाहा ।

सूर्य मंत्र

ॐ ह्रीं ऐं श्रीं भूः ॐ भुवः ॐ माः ॐ हाः ॐ जनः तत्सवितुवरेणां गर्भोदेवाय धमहीधियोनि असि आउसा णमो अरहंताणं अनाहत पराक्रमस्ते भवतु ते भवतु ।

णमोकार मंत्र के जाप में विशेष

(१) स्वांस नाभि से चलकर ह्रदय कमल से होकर नासिका से निकले साथ ही नाभि से नवकार मंत्र भी निकले । कुछ समय बाद नवकार मंत्र का स्वरूप स्वर्ण के समान हो जायेगा और दृष्टि से नवकार के अक्षर स्वर्ण ज्योति में दिखाई देंगे ।

(२) स्वास नाभि से चलकर ह्रदय कमल से होकर मस्तक से गमन करके नासिका द्वारा बाहर निकले साथ ही णवकार की ध्वनि भी चले ।

(३) अगर यह दोनों अवस्था न आ सके णवकार की तीव्र ध्वनि से यानि वचन से जो शब्द के रूप मे हो इतनी तेजी से करे कि एक माला लगभग ५ मिनट में हो जावे ।

यह किसी भी प्रकार से दो दिन के आहार आदि का समय सकाल का ८-९ घंटे प्रतिदिन हो और यह कई वर्ष तक चले । मौन रखें ।

क्या भगवान महावीर असत्य बोलते थे ?

हमे तलाश है जिसकी महावीर स्वामी ने बताया था उसकी । उसे कैसे पहचानें समझ में नही आता इसलिए तो तलाश है । जैसे अपना बड़ा भाई हो चाहे वह अच्छे विचार वाला हो या मिथ्या विचार वाला हो । जब तक नहीं मिले तब तक चिन्ता रहती है । प्रमुख आचार्यों ने भी अनेक ग्रन्थों मे सब प्रकार से अपने ग्रन्थो में यह बात लिखी है । महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के बाद ३ वर्ष और आठ माह १५ दिन पश्चात् पंचम काल लग गया । सो उस पंचम के हर पाँच सौ वर्ष में एक उत्कलकी पुरुष एवं फिर पाँच सौ वर्ष बाद एक कलकी राजा होगा । इस प्रकार हर पाँच सौ वर्ष के अन्तर में एक उत्कलकी एवं एक कलकी होगा । इस प्रकार २१ उत्कलकी एवं २१ कलकी होंगे । ये दोनों ही क्रमश: जैन सिद्धान्तों एवं जैन धर्म का आघात एवं मिथ्या प्रचार तथा धर्मोद्योतन कार्य करेंगे ।

महावीर स्वामी को मोक्ष गये २५०० वर्ष हो गये । इस समय में दो कलकी राजा एवं तीसरा उत्तलकलकी पुरुष हुआ । हमें बस उसी की तलाश है जो अभी पाँचवें नम्बर का हुआ । यदि ऐसा नहीं है तो भगवान महावीर की बात झूठी हुई लेकिन ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि भगवान कभी असत्य नहीं बोलते । हमें समझने में अन्तर आ रहा है । यही बात अन्य आचार्यों ने भी कही हैं ।

आचार्य भगवन्त १०८ श्री यति वृषभाचार्य तिलोयपण्णति भाग-२ ४/१५१६ से १५३५ तक में लिखते हैं यही बात क्षुल्लक जैनेन्द्रप्रसाद जी वर्णीजी जैन सिद्धान्त कोष भाग-२ में भी लिखते हैं कि इस प्रकार एक हजार वर्षों के पश्चात् एक कलकी राजा एवं हर पाँच सौ वर्ष के बीच एक

उत्कलकी पुरुष होगा । इस प्रकार ये उत्कलकी एवं कलकी धर्म के द्रोह से एक सागर से अधिक आयु को प्राप्त होकर धम्मा-पृथ्वी पहला नरक में जन्म लेकर दुख देखेगे । इस प्रकार सभी आचार्यों ने वर्णन किया है ।

लेकिन अब बात यह है कि अपनी मान-प्रतिष्ठा की कषाय बढ जाती है तब यह जीव आत्मा किसी की भी बात को नहीं मानता है । मानी जीव की प्रवृत्ति का चित्रण पंडित टोडरमलजी अपने मोक्ष मार्ग प्रकाशक में लिखते हैं कि जब इस जीव के मान कषाय उत्पन्न होती हैं तब औरों को नीचा एव अपने को ऊँचा दिखाने की इच्छा होती है और इसके लिए अनेक उपाय सोचता है । अन्य का निन्दा करता है अपनी प्रशसा करता है एव अनेक प्रकार से दूसरों की महिमा से अधिक अपनी महिमा बताता है एव मरने के बाद हमारा यश होगा ऐसा विचार कर अपना मरण करके भी अपनी महिमा बढाता है । यदि कोई अपना सम्मान न करे तो उसे भय आदिक दिखलाकर दुख उत्पन्न करके अपना सम्मान करवाता है तथा मान होने पर कोई पूज्य गुरु आदि बड़े हों उनका भी सम्मान नहीं करता । ये ही अवस्था मानी पुरुष की है । अर्थात् वह मुनियो से भी ऊँचा बनता है ।

सौ ऐसे जीवात्मा पुरुष अपनी मान-सम्मान प्रतिष्ठा के पीछे किसी की बात मानने को तैयार नहीं है । क्योंकि ऐसा भगवन्तों का कहना है । इस जीव के आयु के त्रिभाग मे अगली गति आयु का बध हो जाने पर इसकी अगली गति के अनुकूल ही बुद्धि हो जाती है । जैसी गति वैसी मति । हर विद्वान मुनियों त्यागी वृत्तियो ने समझाया परन्तु होनहार को कौन टाल सकता है एव मरण के अंतिम समय में जिसके परिणाम समाधि मरण के न होकर जस लोक अस्पताल के हो उसका भविष्य केवली भगवान भी नहीं जान सकते हैं ।

यह तो हमारे समझने की बात है हम भी उनके अनुयायी की कही बातों पर विश्वास कर लेते हैं जो कि हमारे मुनियों के बारे में बिना विवेक का चाहे जो लिख देते हैं । एव अपने आपको सम्यक दृष्टि कहते है । क्योंकि जिसकी आत्मा में उपगूहन अंग नहीं हैं सम्यक् दृष्टि हो ही नहीं सकता । ऐसा आचार्यों का कथन है । हमारे आचार्य, विद्वान्, पंडित, त्यागी क्या मूर्ख हैं ?

आजकल नये-नये विद्वान हो गये हैं जिन्होंने धन्य अवतार वचनामृत, लिख कर धर्म विरुद्ध कार्य किया है एव अन्य भी नई-नई पुस्तकें आज भी लिखी जा रही हैं । आगम के विरुद्ध इनकी होनहार ही ऐसी हैं । हमारे आगम के रहस्य को जानने वाले विद्वान् आचार्यों ने इन पुस्तकों मे प्रमाण दिये हैं कि कहाँ-कहाँ भूल की हैं इन पुस्तकों में खुलासा करके बताया है ।

1	काजीमत विवेचन I भाग	धर्मरत्न ब्रह्मचारी चांदमलजी चूड़ीवाल
2.	मनुष्यों के उद्गार	पंडित निरंजनलाल जैन
3	सात्विक चिन्तन	पं सुमेरचन्दजी दिवाकर
4	काजीमत विवेचन II भाग	पं चांदमल चूड़ीवाल

5	सोनगढ़ रंगढंग	ब्र कपिल भाई कोटडिया
6	अध्यात्मवाद की मर्यादा	पं. सुमेरचन्दजी दिवाकर
7	जैन साहित्य में विकार	श्री ऐलाचार्य विद्यानन्दजी महाराज
8	दिव्य दर्शन और प्रतिकार	पं झम्मनलालजी शास्त्री
9	सोनगढ समीक्षा	श्री नीरज जैन
10	दि जैन धर्म पर आघात	श्री ऐलाचार्य विद्यानन्दजी
11	कांजी स्वामी की विचारधारा का खुलासा	दिगम्बर जैन महासभा
12	सोनगढ साहित्यागामानुकूल नहीं है	पं बाबूलालजी जमादार
13	धीमा-धीमा मन्द जहर	पं श्री बिहारीलालजी
14	कांजी स्वामी एवं दिगम्बराचार्य क्या कहते हैं।	पं मक्खनलालजी
15	सोनगढ अपने खेमे में	श्री नीरज जैन
16	धर्म पर कलक	पं मक्खनलालजी शास्त्री
17	समाधान चंद्रिका	पं शिखरचंदजी शास्त्री
18	मोक्ष मार्ग विरोधी कांजी भाई	प मक्खनलालजी शास्त्री
19.	सत्यम दर्पण	पं. अजीत कुमार जी शास्त्री
20	कांजीमत खण्डन	पं. मक्खनलालजी शास्त्री
21	व्यवहार धर्म निश्चय धर्म का समाधान भूत है	पं नेमीचंदजी शास्त्री
22	कांजीस्वामी का नया पंथ	दि जैन महासभा

इसके अलावा भी कम से कम १५-२० पुस्तकें अन्य मुनियों एवं विद्वानों की लिखी हुई हैं उनको पढ़कर भी हम सच्चाई को जान सकते हैं। इसके अलावा छोटे-छोटे अनेक लेखों में अनेक त्यागी मुनियों एवं विद्वानों ने भी लिखा है। परन्तु अग्रहीत मिथ्यात्व के कारण हमारी ज्ञान दृष्टि खुल ही नहीं पा रही है।

सो फिर से इस शुद्ध जीवात्मा ने मान कषाय के कारण आचार्यों की बात को नहीं माना, यह भी नहीं सोचता है कि इस प्रकार से दर्शन मोहनीय कर्म का बंध करके ७० कोड़ा-कोड़ी सागर

तक कहाँ तक रोता रहेगा ऐसा सोचता नहीं है, कहते तो ऐसा है बंध समय जीव चेतोरे उदय समय क्यों रोये, परन्तु समझते नहीं बस यही कथनी करनी में अन्तर है । ये न तो संयमी है न त्यागी हैं न ही वृत्ति है खूब खाना-पीना घूमना-फिरना और ना ही इन्द्रियों का संयम है, डनलप के गद्दो पर बैठ-बैठकर समयसारजी का अध्ययन कर लिया और कहने लगे, लिखने लगे कि इस-इस मुनि में ये-ये कमियाँ है । परन्तु स्वयं में नहीं देखा कि हम क्या हैं, ऐसे ही एक नये विद्वान डॉ योगेश कुमार है । जिन्होंने भी धर्म के वास्तविक मर्म को नहीं समझा एवं नाही अनुभव किया भगवान ही जाने कि ऐसे लेखक महोदय की क्या गति होगी । क्योंकि जो जैसा होता है उसको वैसी-वैसी दुनियाँ भी दिखती है । इसीलिए हमारे आचार्यों ने हम पर करुणा करके धर्म, त्याग, दान आदि के बारे मे बतलाया है कि योग एव भोग दोनों कार्य एक साथ नहीं हो सकते ।

नीतिकारो ने कहा है-

दो मुख सुई सिये न कन्था, दो पथ राहि चले न पन्था,

त्यो दो काम न होये सयाने विषय भोग और मोक्ष पयाने ॥

इसलिए त्याग, संयम, व्रत आदि की बडी महत्त्वपूर्ण विशेषता रहती है । हमारे आरातीय आचार्य भगवन्त कुन्द-कुन्द स्वामी, उमा स्वामी, समन्तभद्र आचार्य आदि अनेक आचार्यों के सिद्धान्तों को तोड-मोड कर व्यवहार को गौण कर एकान्त नय से कथन करते हैं । जबकि मिथ्यात्व के भेदो मे एकान्त कथन को मिथ्या कहते हैं । आज तो ठीक है परन्तु आगे आने वाली पीढ़ी जब इस कथन पर सत्य श्रद्धान करेगी तो ससार रूपी गड्ढे में ही पडेगी तथा अभिषेक, पूजा, स्थापना का निषेध करते हैं एवं वर्तमान के मुनियों को मिथ्यादृष्टि और भी अनेक घृणित शब्दों से कहते हैं । एव माता के समान जिनवाणी को भी परायी स्त्री (वेश्या) के समान उपमा देते हैं । सो इसका पूर्व से आचार्यो को आभास था सो उन्होंने लिखा है । आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी ने लिखा है, द पा टीका भाग-२/३०५/१२ में-मिथ्या दृष्टि ऐसा कहते हैं, कि महाव्रतियों से क्या प्रयोजन । आत्मा ही साध्य है । एस मनुष्य मिथ्यादृष्टि चार्वाक, मतावलम्बी नास्तिक हैं । यदि समझाने पर भी वे कदाग्रह को न छोड़े तो समर्थ जो आस्तिक जन हैं विष्ठा से लिप्त जूता उनके मुख पर देकर मारे उसमें कोई भी पाप का दोष नहीं हैं ।

भा पा टीका १५१/२८७ मे जो ग्रहस्थ अर्थात् ग्रहस्थवत वस्त्रधारी होते हुए भी किंचित् मात्र आत्म भावना को प्राप्त करके हम ध्यानी हैं ऐसा कहते हैं उन्हें जिन मार्ग विरोधक मिथ्या दृष्टि जानना चाहिए । सबेरे-सबेरे उनका नाम लेना तथा उनका मुख भी नहीं देखना चाहिए । क्योंकि ऐसा करने से इष्ट वस्तु, भोजन आदि की प्राप्ति में विघ्न पड़ जाता है ।

अब और इससे ज्यादा हमारे आचार्य गुरुदेव और क्या करते ? आज से २००० दो हजार वर्ष पूर्व इन बातों को लिख गये । धर्म का स्वरूप बताया परन्तु हम मंदबुद्धि जल्दी ही गंगा गये

गंगादास जमना गये जमना दास हो गये । और यदि हमें धर्म के बारीक विषय को समझने की शक्ति नहीं है तो भी भगवान की वाणी पर श्रद्धान कर लेंगे तो भी आज्ञा समयक्त्व होता है । इससे और ज्यादा हमारे लिये हमारे आचार्य क्या करते उनका कार्य मार्ग बतलाना है चलना या न चलना मोक्ष जाना या शुभ्र सागर में गिरना हमारे ऊपर है । सो मेरा जिज्ञासुओं से निवेदन है कि उपरोक्त आचार्यों ने, विद्वानों, मुनियों की लिखी पुस्तकों को दृष्टिगत करे, पढ़ें और उसे समझें, बारीकी से एवं शान्ति से विचार करें, एव छपवायें लोगों एवं समाज में बाँटें जिससे धर्म से भ्रमित लोग धर्म में स्थिर हों । एवं वे अपना भी कल्याण करसकें । यह भी जिनवाणी की सेवा है तथा जो लोग भटक गये हैं उन्हें भी समझाकर मोक्ष मार्ग मे लगायें । सभी सहधर्मी भाइयों से मेरा कहना है कि अभी घबराओ मत हिम्मत रखो ऐसा यह पाँचवा नम्बर का कलंकी है । अभी ३७ और होंगे । हिम्मत से काम लो अपनी भूल सुधार लो क्योंकि किसी ने कहा है सबेरे का भूला यदि शाम को घर आ जाये तो वह भूला नहीं कहलाता । इसलिए जो कुछ होना था सो हो गया । अपने देवशास्त्र गुरु की सेवा करके अपने रत्नत्रय को उज्ज्वल करने का प्रयत्न करें । एव समयक्त्व के आठों अगों का यथा शक्ति पालन करते हुए उपगूहन अग एवं उपवृहण का विशेषता से विद्वानों से समझकर निर्दोषता से पालकर पुन· मोक्षमार्ग में लगें । तथा नई चकाचौंध मे न उलझकर खोटी गतियों से बचने का पुरुषार्थ करे क्योकि काजीभाई कहा करते थे कि पुरुषार्थ करने से क्या होता है । जब होना होगा तभी हो जावेगा ।

जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे ।
अनदेखी कबहूँ न होसी काहे होत अधीरा रे ॥

सो विद्वानों ने एवं मुनियों ने कहा है कि

क्या-क्या देखी वीतराग ने तू क्या जाने वीरा रे ।
अरे देवशास्त्र गुरु पर श्रद्धा करके काटो भव की पीड़ा रे ॥

हमको सोचना है कि जिसने हमारे पूर्वज गुरुओं के लिखे शास्त्रों में नयी नयी बातें मिला दी हैं । सो हमें बुद्धि से विचार करना चाहिए कि हमारे आचार्य गुरुजन कम अक्ल, कम बुद्धि या मूर्ख थे जो हमें धर्म का मार्ग न बता सके ? ५०-६० वर्ष में ऐसा एक धन्य-अवतार हो गया कि जिसके तलवे चाटने से ही सम्यक्त्व के न होने पर भी हमें मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है । जो ऐसी महिला हमारे आचार्यों से भी तीव्र बुद्धि की हो गयी । जिन्होंने कभी संयम, त्याग का पालन नहीं किया और नहीं दूसरे को संयम का उपदेश दिया और स्वयं पुण्य का भोग भोगते रहे । उस पुण्य के उदय से कार, बंगला, आदि में रहते हुए भी पुण्य को विष्टा कहते हैं ।

इसलिए हम लोगों को सोचना चाहिए कि ऐसे उपकल्की पुरुष की बातों को हम कैसे मान लेवें । हमारी सभी लोगों से निवेदन है कि इसको पढ़ें, समझें, एवं सन्मार्ग में लगे ।

पं. संतोष कुमार जैन, उज्जैन (म. प्र.)

"जैन धर्म और ज्योतिष"

संसार परिभ्रमण करने वाले इस प्राणी को सुख शान्ति से जीवन यापन करना जैन धर्म ने बतलाया है । इसमें वस्तु की स्वतत्रता अनेकान्त सिद्धान्त और प्रत्येक आत्मा को परमात्मा बनने का अधिकार दिया है । कर्म बधन सहित संसार स्थित आत्मायें अपने ही पुरुषार्थ द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकती है ।

आत्मा अपने ही अज्ञान से कर्म बंधन करता है और उसका फल भोगता हुआ ससार परिभ्रमण करता है किन्तु प्रयत्न पूर्वक आत्मबोध होते ही कर्म बंधन से मुक्त हो जाता है ।

"स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फल मश्नुते

स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्मा द्विमुच्यते"

मानव जीवन मे कल्याण पथ की ओर अग्रसर होने के लिए निर्वाध रूपेण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का उपयोग करना आवश्यक है ।

गृहस्थावस्था में निरत मानव धर्म, अर्थ, काम इन तीनो ही पुरुषार्थों का पालन कर सकता है । महापुराण मे आचार्य जिनसेन स्वामी ने बताया है कि धर्म वृक्ष के रूप मे है अर्थ उसका फल है, अर्थ से काम है इस प्रकार इन पुरुषार्थों का उपयोग करता हुआ कोई विरला मानव विषय कषाय राग द्वेषादिक विकारो से मुक्त होने के लिए पूर्ण संयम धारण करने के लिए दिगम्बर मुद्रा ग्रहण करके तपश्चरण द्वारा कर्म बधन से मुक्त होता हुआ केवल ज्ञान प्राप्त कर परमात्मा बनता है । ऐसे ही पुण्य पुरुष अपने दिव्योपदेश से पथ भ्रष्ट संसार के प्राणी को मोक्ष मार्ग का साधन बतलाते हैं । उनका दिव्योपदेश अठारह महाभाषा, सात सौ लघु भाषा चार अनुयोग, बारह अगों में समाविष्ट है । इसमें विद्यानुवाद पूर्व है जिसमें ज्योतिष गणित चिकित्सा आदि को विस्तारपूर्वक बताया है । जिसको जैनाचार्यों ने विविध रूप से अनेक ग्रन्थो में वर्णित किया है । पर्वप्रथम श्रुतज्ञान को मूर्तिमान करने वाले पुष्पदत और भूतिबली स्वामी ने षट्खण्डागम (धवलाटीका) के खेत्ताणुगम पुस्तक ४ पृष्ठ ३१८ मे काल द्रव्य के माध्यम से मुहूर्तों की चर्चा की है (१) रौद्र (२) श्वेत (३) मैत्र (४) सारभट (५) दैत्य (६) वैरोचन (७) वैश्य देव (८) अभिजित (९) रोहण (१०) बल (११) विजय (१२) नैऋत्य (१३) वारुण (१४) अर्यमान् (१५) भाग्य । यह पंद्रह मुहूर्त दिन में होते हैं । १ सावित्र, २ धूर्य, ३ दात्रक, ४ यम, ५ वायु, ६ हुतासन, ७ भानु, ८ वैजयंत, ९ सिद्धार्थ, १० सिद्धसेन, ११ विक्षोप, १२ योग्य, १३ पुष्पदंत, १४ सुगन्धर्व, १५ अरुण यह पंद्रह मुहूर्त रात्रि में होते है । रात्रि और दिन का समय तथा मुहूर्त समान कहे गये हैं उत्तरायण सूर्य में अठारह मुहूर्त का दिन बारह मुहूर्त की रात्रि होती है और दक्षिणायन में बारह मुहूर्त का दिन और

अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है । पंद्रह दिनों (तिथियों) का पक्ष होता है । दिनों के नाम इस प्रकार हैं-१. नन्दा, २ भद्रा, ३ जया, ४ रिक्ता, ५ पूर्णा इस क्रम से पाँच तिथियाँ होती है इनका विशेष इस प्रकार है ।

प्रतिपदा,	षष्ठी	एकादशी,	को नन्दा
द्वितीया,	सप्तमी,	द्वादशी,	को भद्रा
तृतीया,	अष्टमी,	त्रयोदशी,	को जया
चतुर्थी,	नवमी,	चतुर्दशी,	को रिक्ता
पचमी,	दशमी,	पूर्णमासी,	को पूर्ण तिथि होती है ।

दो पक्षों का एक मास, १२ मास का १ वर्ष ५ वर्षों का एक युग होता है ऐसा वर्णन आया है । अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं उनका विभाजन तीन प्रकार से हैं १ कुल संज्ञक, २ उपकुल संज्ञक, ३ कुलोपकुल सज्ञक हं ।

१ धनिष्ठा, उत्तराभाद्र५द, अश्वनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्प, मघा, उत्तरा फाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल, उत्तराषाढ यह बारह नक्षत्र कुल संज्ञक है ।

२ श्रावण, पूर्व भाद्रपद, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, अश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ, यह बारह नक्षत्र उप कुल सज्ञक है ।

३ अभिजित, शत्भिषा, आद्रा, अनुराधा, यह चार नक्षत्र कुलोपकुल संज्ञक है ।

इनका विभाजन पूर्णमासी को होने वाले नक्षत्रों के आधार से किया जाता है ।

जैसे श्रावण मास मे श्रवण अभिजित धनिष्ठा

भाद्रपद मे पूर्व भाद्रपद उत्तरा भाद्रपद शतभिषा

अश्विन मे अश्वनी, रेवती

कार्तिक मे कृतिका भरणी

मार्गशीर्ष मे मृगसिरा, रोहिणी

पौष मास में पुष्प, पुनर्वसु आद्रा

माघ मास में मघा, आश्लेषा

फाल्गुन मास में पूर्वाफाल्गुन, उत्तरा फाल्गुन

चैत्र मास में चित्रा, हस्त

वैशाख मास में विशाखा, स्वाति

ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठा मूल, अनुराधा

आषाढ मास में पूर्वाषाढ, उत्राषाढ

इस प्रकार प्रत्येक मास की पूर्णिमा को उस मास का प्रथम नक्षत्र कुल संज्ञक दूसरा नक्षत्र उपकुल संज्ञक तीसरा नक्षत्र कुलोपकुल संज्ञक माना गया है ।

इन ही नक्षत्र के नाम से बारह महिनों का नामकरण किया गया है-

अश्वनी से आश्विन मास, भरणी का लोप ।

कृतिका से कार्तिक मास, रोहणी का लोप

मृगसिर से मार्गशीष मास, अद्रा पुनर्वसु का लोप

पुष्य से पौष मास अश्लेषा का लोप

मघा से माघ मास पूर्वा फाल्गुनी का लोप

उत्राफाल्गुनी से फाल्गुन मास हस्त का लोप

चित्रा से चैत्र मास स्वाति का लोप

विशाखा से वैसाख मास अनुराधा का लोप

ज्येष्ठा से ज्येष्ठ मास मूल का लोप

पूर्वाषाढ़ से आसाढ़ मास उतराषाढ़ का लोप

श्रवण से श्रावन मास धनिष्ठा का लोप

पूर्वाभाद्रपद से भाद्रपद मास उत्राभाद्रपद रेवती का लोप

इस प्रकार नक्षत्रों के अनुसार महीनों के नाम रखे गये हैं ।

सिद्धांत चक्रवर्ती नेमीचंद्राचार्यजी ने त्रिलोक सार ग्रंथ में ज्योतिर्लोकाधिकार में ज्योतिष का वर्णन किया है । जैनाचार्यों ने ज्योतिष का वर्णन दो प्रकार से किया है (१) गणित सिद्धान्त (२) फलित सिद्धान्त ।

गणित सिद्धान्त के द्वारा गति, स्थिति, मध्यफल, मंदफल, सूक्ष्मफल, केन्द्रफल, एवं आकाश मण्डल में सूर्य चन्द्र तारिकाओं का ग्रहों के साथ कैसा संबंध होता है इन सबका ज्ञान गणित प्रक्रिया से ही होता है । बीज गणित रेखा गणित, त्रिकोणमिति आदि गणित के साथ पंचांङ्ग निर्माण जन्म पत्र के बनाने की विधि का विशद वर्णन किया है ।

फलित सिद्धांत में तिथिवार नक्षत्र योग करण ग्रहयोग आदि का फल समय शुद्धि, देश शुद्धि, दिशा शुद्धि और अनेक मुहूर्त आदि का वर्णन करने वाले अनेक जैन ज्योतिष ग्रन्थों में कथन किया है । जैसे-

1 भद्रबाहु संहिता - निमित्त ज्ञान

2. केवल ज्ञान प्रश्न चूड़ामणि - प्रश्न ज्योतिष

3 आर्यभट्ट संहिता - गणित एवं फलित ज्योतिष

4 करलक्खण - हस्त रेखा ज्ञान

5 हस्त सजीवनम्-हस्त रेखा ज्ञान

6 लोक विजय मंत्र - फलित ज्योतिष (फलादेश)

7 व्रत तिथि निर्णय - व्रत एवं तिथि ज्ञान

8 भारतीय ज्योतिष - सामान्य ज्योतिष (सभी विषय)

इत्यादि अनेक ज्योतिष ग्रन्थ उपलब्ध हैं । इन ग्रन्थों में ज्योतिष संबंधी समस्त जानकारी सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में प्राप्त होती है ।

पूज्य आचार्य जयसेन अपरनाम बसुबिन्दु द्वारा रचित प्रतिष्ठा पाठ में प्रतिष्ठा संबंधी मुहूर्त आदिक का सूक्ष्म विषद विवरण मिलता है ।

इस प्रकार हम अपना कार्य जैन ज्योतिष ग्रन्थों से निर्विघ्न सम्पन्न कर सकते हैं ।

श्री ब्र मणिलालजी का आभार मानता हूँ कि जिन्होंने शुभ सूचना देकर प. पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य सम्राट् मुनि कुञ्जर श्री आदिसागरजी के विश्व वंद्य चरणारविंद में श्रद्धांजलि रूप में अपने भाव प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ । परमाराध्य गुरु चरण कमलों में कोटिशः नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।

पं. गुलाबचन्द्र जैन पुष्प, प्रतिष्ठाचार्य
पुष्प भवन टीकमगढ़, म. प्र. 472001

मंत्र यंत्र तंत्र

"जोणी पाहुडे भणिदमंत तंत सत्तीयो पोग्गलाणुभागो त्ति घेत्तव्वो" धवलाकार **कहते हैं कि** योनि प्राभृत मे कह गये मंत्र तंत्र रूप शक्तियों का नाम पुद्गलानुभाग है । अन्यत्र भी इसी बात को पुष्ट करते हुए बताया है कि विद्या, मणि, मत्र, औषधि आदि की अचिंत्य शक्ति का माहात्म्य देखने में आता है यह वस्तु का स्वभाव है और स्वभाव तर्क का विषय नहीं ऐसा समस्त वादियों को सम्मत है ।

मत्र तत्र आदि की सिद्धि के लिए मुमुक्षुओं को निषेध किया है । क्योकि यह सभी मुनियों को दूषित करता है । वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, मारण, उच्चाटन तथा जल, अग्नि, विष आदि का स्तम्भन, रस कर्म, रसायन, नगर मे क्षोभ पैदा करना, इन्द्रजाल साधना, सेना का स्तम्भन करना, जीत हार का विधान बताना, विद्या के **छेदने को** विधान साधना, वेधना, ज्योतिष का ज्ञान, वैद्यक विद्यासाधन, यक्षिणी मत्र, पाताल **सिद्धि के विधान का अभ्यास करना**, मृत्यु जीतने का मंत्र साधना, पादुका साधन करना, अदृश्य होने तथा गढे हुए धन को देखने के अंजन का साधना, शस्त्रादिक का साधना, भूत साधना, सर्पसाधन इत्यादि विक्रिया रूप कार्यों मे अनुरक्त होकर दुष्ट चेष्टा करने वाले जो हैं । वे आत्म ज्ञान से भी वचित रहे और दोनो लोकों का कार्य भी नष्ट किया । ऐसे पुरुष को ध्यान की सिद्धि कष्ट साध्य होती है । ऐसे खोटे ध्यान के उत्कृष्ट प्रपंचो के विस्तार के द्वारा काम क्रोध से वशीभूत होकर, सासारिक सुख के चाहने वाले और दुष्ट आशा से पीड़ित तथा भोगों की पीडा से वंचित होकर नरक मे पड़ते हैं । इससे समीचीन मार्ग का विरोध होता है । जैसे कोई अपनी माता को वेश्या बनाकर उमसे धनोपार्जन करता है । वैसे जो मुनि होकर आजीविका का साधन बनाते हैं, धनोपार्जन करते हैं वे अतिशय निर्दय और निर्लज्ज हैं । परन्तु जिन मुनियों को चोर से उपद्रव हुआ हो, दुष्ट पशुओं से पीडा हुई हो, दुष्ट राजा से कष्ट पहुँचा हो नदी के द्वारा रोके गये हो, भारी रोग से पीड़ित हो गये हों तो उनका उपद्रव विद्यादिकों से नष्ट करना चाहिए वैयावृत्ति करनी चाहिए, इसमें दोष नहीं है ।

सामान्य मंत्रों की पूजा विधानादिको के लिए निर्देश दिया गया है । जैसे भूमि शुद्धि के लिए, गध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप और नैवेद्य द्वारा भूमि का संस्कार करने के लिए पीठिका मंत्र, काम मंत्र, जाति मत्र, निस्तारक मत्र, ऋषि मंत्र, सुरेन्द्र मत्र, परमराजादि मंत्र, परमेष्ठी मंत्र इस प्रकार के मत्रो का निषेध नहीं है । ये मत्र गर्भाधानादि क्रियाएँ करते समय क्रिया मत्र, गणधर कथित सूत्र में साधन मंत्र और देव पूजनादि नित्य कर्म करते समय प्रयोग में लाये जाते हैं ।

(1) गर्भाधान, (2) प्रीति, (3) सुप्रीति, (4) धृति, (5) गोद, (6) प्रियोद्भव, (7) जन्म संस्कार, (8) नाम कर्म, (9) बहिर्यान, (10) निषधा (11) अन्न प्राशन, (12) व्युष्टि, (13) चौल, (कैश) (14) लिपि सख्यान, (15) उपनीति, (16) व्रतचर्या ।

णमोकार मत्र महामंत्र है । जिसमें अरहंत, सिद्ध और साधु को नमस्कार किया है । यह अनादि मूलमंत्र है । धवलाकार इस मंत्र को निबद्ध मंगल स्वीकार करते हैं । लेकिन ऐसा समझ में कम आता है क्योंकि आगे धवलाकार १/४/१/४४/१०३/४ पर की गई चर्चा से मालूम पड़ता है कि वे सूत्र (णमोकार मंत्र) महाकर्म प्रकृति प्राभृत के आदि में गौतम स्वामी ने रचे थे । वहाँ से भूतवलि भट्टारक ने लिख दिया है । इस णमोकार मंत्र की उच्चारण और विधि के लिए प्राण वायु को भीतर प्रवेश करके आनन्द पूर्वक विकसित हृदय कमल में रोक कर जिन मुद्रा से ध्यान करना चाहिए और गाथा के दो दो और एक भाग का क्रम से अलग-अलग चिन्तवन करके अन्त में उस प्राणवायु का धीरे-धीरे रेंचन करना चाहिए । इस प्रकार नौ बार प्राणायाम प्रयोग करने वाला संयमी महान पाप कर्मो को क्षय कर देता है । प्रथम भाग में णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं इन पदों का, दूसरे भाग मे णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं इन दो पदों का तथा तीसरे भाग में णमो लोए सव्वसाहूण इस पद का ध्यान करना चाहिए । इस ध्यान को पदस्थ ध्यान कहते हैं ।

निर्वाण के साधनीभूत मूल गुण आदिक में सर्व काल अपने आत्मा को जोड़ते हैं और सब जीवो मे समता भाव को प्राप्त होते हैं पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करने में जो सर्व और लोक पद है वे अंत दीपक हैं इसलिए सम्पूर्ण लोक में रहने वाले त्रिकालवर्ती अरहंत आदि देवताओं को नमस्कार करने के लिए उन्हे प्रत्येक नमस्कारात्मक पद के साथ जोड़ लेना चाहिए । ऐसा अपराजित सूरि ने बताया है । चत्तारि दण्डक में साधु शब्द आया है सो वहाँ पर साधु शब्द से आचार्य, उपाध्याय व सर्वसाधु का ग्रहण हो जाता है । अरिहंतों को प्रथम नमस्कार करने में कारण यह है कि सबसे अधिक गुणवाले सिद्धो में श्रद्धा की अधिकता से अरिहंत है । अरिहंत परमेष्ठी के प्रसाद से हम लोगो को आप्त, आगम, और पदार्थ का बोध की प्राप्ति हुई है । बात यह है कि यहाँ परमेष्ठियो के व्यक्तियों को नमस्कार नहीं किया गया है । बल्कि उनके गुणों को नमस्कार किया गया है । और उन गुणो की अपेक्षा पाँचों परमेष्ठियों में कोई भेद नहीं है आप्त की श्रद्धा से ही आप्त, आगम और पदार्थों के विषय में दृढ़ श्रद्धा पैदा होती है ।

यंत्र के विषय में धवलाकार ने लिखा है कि सीवग्घधरणट्ठमोहिदमब्भंतर कयच्छालियं जंतं णाम । जो सिह और व्याघ्र आदि के घेरने के लिए बनाया जाता है और जिसके भीतर बकरा रखा जाता है वह यंत्र कहलाता है कुछ विशिष्ट प्रकार के अक्षर शब्द व मंत्र रचना जो कोष्ठक आदि बनाकर उसमें चित्रित किये जाते हैं वे यंत्र कहलाते है । मंत्र शास्त्र के अनुसार इसमें कुछ अचिंत्य शक्ति मानी गई है यही कारण है कि जैन समुदाय में पूजा, प्रतिष्ठा, व यज्ञ विधानादि में इनका बहुत प्रयोग किया जाता है । अनेक यंत्रों का निर्माण प्रयोजन के वशीभूत किया जा सकता है । मुमुक्षुओं का प्रयोजन मोक्ष की प्राप्ति है । इससे श्रावक और साधु भव्य जीवों का ग्रहण होता है । गृहस्थ्य ग्रहस्थ्य धर्म का साधन करता हुआ मोक्ष प्राप्त करना चाहता है और साधु सीधा मोक्ष प्राप्त करना चाहता है । मूलतः प्रयोजन दोनों का एक मुक्ति प्राप्त करना है ।

॥ श्री वीतरागाय नमो नम. ॥

जैन सिद्धान्त और अध्यात्म

लेखक-विद्याभूषण, पंडितरत्न मल्लिनाथ जैन शास्त्री
न्यायतीर्थ, प्रवीण, मद्रास

जैन धर्म अनादि निधन है। क्योंकि सारी वस्तुओ के अस्तित्व को पूर्ण रूप से मानने वाला एक मात्र धर्म यदि कोई संसार मे है तो वह जैन धर्म ही है। अन्य धर्म नहीं है।

ऐसे महत्त्वपूर्ण जो जैन सिद्धान्त अर्थात् जैन धर्म का सिद्धान्त है वह अनूठा सिद्धान्त है। वह सर्वज्ञ कथित है। उसमे किसी तरह की कमी नहीं देखी जा सकती है। मानव जीवन को शुद्ध एव सुन्दर बनाने के लिए इस सिद्धान्त के अन्दर जितना विशाल उपदेश दिया गया है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ ही नही अपितु असम्भव है। इस सिद्धान्त के अध्ययन से मानव के दिल में सहज ही शान्ति मिलती है।

ऐसे इस परम पवित्र सिद्धान्त में अहिसा अपरिग्रह और अनेकान्त इन तीन विषयों का अत्यन्त महत्त्व है। एक तरह से कह सकते हैं कि जैन सिद्धान्त इन तीनों की भित्ति पर ही खड़ा है और भी कई विषय बनाये गये हैं परन्तु इन तीनो विषयो का अत्यधिक मुख्यत्व दिया गया है। अत. यहाँ पर इन विषयो के बारे मे विवेचन करना आवश्यक समझते हैं।

अहिंसा

जैन सिद्धान्त में अहिंसा का सर्व प्रथम स्थान है। यों कह सकते हैं कि अहिंसा की दीवार पर जैन धर्म खड़ा है। अहिसा नहीं है तो जैन धर्म नहीं है। जैन धर्म नहीं तो अहिंसा नहीं है। इस धर्म में इन दोनो का घनिष्ठ सबध है। परन्तु जैन धर्म की अहिंसा बहुत सूक्ष्म है। अर्थात् जैन धर्म ने अहिंसा को अत्यन्त सूक्ष्म रूप से माना है। इसके विषय में पूज्य अमृतचन्द्राचार्य का कहना यह है-

अप्रादुर्भाव खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्ति हिंसेति जिनागमस्य सक्षेप:।

आशय यह है कि रागादि भावो के उत्पन्न न होने से अहिसा की उत्पत्ति होती है। यदि रागादि भावो की उत्पत्ति हो जाती है तो हिंसा अवश्यमेव उत्पन्न होती है। इस बात को संक्षेप में जिनागम का सार समझना चाहिए। जीव की हिंसा से ही हिंसा होती हो ऐसी बात नहीं है परन्तु हिंसा के रूप में रागादि भावो का उत्पन्न होना भी हिंसा ही है।

इस विषय में दूसरी जगह बताया गया है कि ''मरदुव जियदुव जीवो अयदाचारस्यणिच्चिदाहिंसा'' अर्थात् जीवों को मारने से ही हिंसा होती हो ऐसी बात नहीं है । परन्तु जीव मरें या न मरें जहाँ प्रयत्न का अर्थात् किसी भी तरह से जीव की हिसा नहीं होनी चाहिए, इस तरह का प्रयत्न न हो तो हिंसा हो जाती है । यदि सादर प्रयत्न है तो जीव हिंसा हो जाने पर भी अहिंसा ही है । यह सब भाव की अपेक्षा का कथन है । द्रव्य की अपेक्षा भाव से ही कर्म का आश्रव ज्यादा होता है ।

इस तरह जैन सिद्धान्त के अन्दर सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में अहिंसा का विवेचन किया गया है । इस विषय मे ''पुरुषार्थ सिद्धयुपाय'' देखने लायक है । जैन सिद्धान्त को छोडकर अन्यत्र इस तरह का गृढ विवेचन देखा नही जा सकता । इसलिए जैन सिद्धान्त की अहिंसा ही वास्तविक अहिंसा मानी जा सकती है । बाकी नाम मात्र के लिए है ।

व्यवहार में भी अहिंसा का ऊँचा स्थान है । शास्त्रकारों ने तथा लोगो ने अहिसा को परम धर्म माना है । ''अहिसा परमोधर्म ।'' कोई भी व्यक्ति एक जीव को उत्पन्न नहीं कर सकता । ऐसी अवस्था मे जीवो को मारने का अधिकार उसे कहाँ से मिला ? कतई नहीं ।

लोक व्यवहार में अहिंसा का सीधा अर्थ है कि हिसा न करना । अर्थात् किसी भी जीव को न मारना । इस तरह के व्यवहार को लोग अहिसा के रूप मे स्वीकार करते हैं । दुनिया के अन्दर सभी लोगो को नहीं-नहीं सभी जीवों को जीने का अधिकार है । ऐसी अवस्था में अपनी सुख सुविधा के लिए दूसरों को मार डालना या मार कर अपनी इच्छा पूर्ति करना कहाँ तक उचित है । किसी भी हालत मे यह उचित नहीं माना जायेगा ।

भगवान महावीर की वाणी मे अहिंसा का सर्वोपरि स्थान है । भगवान महावीर की वाणी अहिसामय हे । लोग कहते हैं कि भगवान बुद्ध ने भी अहिंसा का उपदेश दिया है । साधारणतया अनभिज्ञ लोगो का कहना यह है कि दुनिया के अन्दर अहिसा का उपदेश बुद्ध महाराज ने ही दिया है । क्योकि जन गणना की दृष्टि से बुद्ध मतावलम्बी लोग दुनिया के अन्दर ज्यादा रहने के कारण से कहते हैं या अनभिज्ञता के कारण मोटे तौर पर कह डालते हैं पता नहीं । बुद्ध ने अहिसा का उपदेश दिया जरूर है । परन्तु उन्होंने मांस खाने के निषेध मे जोर नहीं दिया । उस पर अपना विचार प्रकट ही नहीं किया । इसलिए सारे के सारे बुद्धमतावलम्बी लोग मास खाते हैं ।

भगवान महावीर ने अहिंसा के बारे में इतनी सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया है कि मन-वचन काय, कृत कारित अनुमोदन किसी भी तरह से हिंसा नहीं करनी चाहिए । साथ ही साथ मांस त्याग के बारे में भी जोर दिया है । अत: कुन्द-कुन्दाचार्य का अपर नाम जो एलाचार्य था, उनसे विरचित तिरुक्कुरल महाकाव्य में कहा गया है कि-

"कोल्लान फुलालै मरुत्तानै क्कै कूप्पिएल्ला उयिरु तोलुं । 'तिरुक्कुरल' आचार्य महाराज का कथन है कि जीव हिंसा न करने के साथ साथ जिस व्यक्ति ने मांस खाने का सर्वथा त्याग किया है ऐसे महान् व्यक्ति को ससार के सारे जीव (पशु-पक्षी आदि सारे के सारे) हाथ जोड़कर नमस्कार करेंगे । याने कृतज्ञता प्रकट करेंगे ।

इसका आशय यह है कि अहिसक मात्र होना काफी नही है बल्कि साथ ही साथ मास का त्यागी होना भी आवश्यक है । तभी वह वास्तविक अहिसक कहा जा सकता है ।

मांस जो है वह जीव हिंसा के बिना कभी नहीं मिल सकता अर्थात् जीव हिंसा से ही मिलता है । वस्तुत: मारे गये या मरे हुए शरीर से मांस मिलता है । ऐसी अवस्था मे मास खाने वाला व्यक्ति अहिसक कैसे बन सकता है ? कदापि नहीं ।

कुछ लोगो का कहना यह है कि हम जीव हिंसा नहीं करते । बाजार मे जो मांस बिकता है उसे खरीद कर लाते हैं और खाते हैं । इसमे क्या दोष है ? यह बात भी गलत है । क्योंकि खाने वाले होने से ही बेचने वाला मास तैयार करता है । यदि खाने वाले नहीं हो तो बेचने वाला मास तैयार कर क्या करेगा ? इसलिए मास खाने वाला अनुमोदक बन जाता है । अग्रेजी मे एक नीति है-"Where is demand there is supply" इसका आशय यह है कि जहाँ आवश्यकता होती है वहीं माल तैयार किया जाता है । अन्यत्र नहीं ।

अत: अहिंसा यदि है तो भारत में ही है । अन्य देशों मे नही है । अन्य देशों में सारे के सारे मांस खाने वाले हैं । यदि भारत मे अहिसा है तो जैन शास्त्र मे, जैनो में, जैन धर्म के अनुयायियों मे है । अन्य नाम के वास्ते है ।

अपरिग्रह

परिग्रह किसे कहते हैं ? "मूच्छा परिग्रह " कहा भी है-

या मूच्छा नामेयं विज्ञातव्य: परिग्रहोह्येष· ।

मोहोदया दुदीर्णो मूच्छा तु ममत्व परिणाम

आशय यह है कि मूर्च्छा को ही परिग्रह कहते हैं । मोह के उदय से जीव अजीव पदार्थो के यह मेरा है, यह मेरी है ऐसा जो ममत्वरूप परिणाम होता है, उसी को कहते हैं परिग्रह । जैन सिद्धान्त के अनुसार जीव-अजीव पदार्थो की अपेक्षा उन वस्तुओ पर मोह भाव याने जो लालसा होती है उसी को कहते हैं परिग्रह ।

यहाँ पर समझने की बात यह है कि धन-धान्य, घर-गृहस्थी, पति-पत्नी आदि जीव और अजीव वस्तुओं पर यह धन मेरा है । यह स्त्री मेरी है । मैं सारी संपत्ति का मालिक हूँ । मैं जो कुछ कहूँगा तो सारा संसार हिल जायेगा । मेरे को इतनी शक्ति है कि मै सब को हरा दूँगा या खतम कर

दूँगा । इस तरह अपने धन्न-धान्य पुत्र-मित्र कलत्र आदि वस्तुओं पर ममत्व (मेरा-तेरा) भाव दिखाना या रखना यही परिग्रह है । इस अपेक्षा से गरीब के पास न कुछ होने पर भी ममत्व या लालच की अपेक्षा से परिग्रही बन जाता है । आचार्य का कहना यह है कि परिग्रह एक तरह से पिशाच है । यह बड़े से बड़े लोगों को भी हिला देता है । छोटों की बात ही क्या है ?

दूसरी बात समझने की यह है कि जिसके पास धन है उसे सब लोग पूछते हैं । जिसके पास धन नहीं है उसे कोई भी नहीं पूछता । वह भले ही ज्ञानवान-गुणवान क्यों न हो । सारी दुनिया पैसे के (टण-टण) पीछे पागल है । लोगों की दृष्टि पैसे के ऊपर रहती है न कि गुण के ऊपर । इसी कारण से लोग जैसे-तैसे धन कमाने की चेष्टा करते हैं । आज कल धन कमाने वालों के दिल मे न्याय-अन्याय का विचार ही नहीं रहता । जल्दी से जल्दी लखपति या करोड़पति बन जाना चाहते हैं । चाहे चोरी से कमा लें कोई बात नहीं । परन्तु पैसा इकट्ठा होना है । आज कल यही व्यवहार चल रहा है । लोग धन कमाने के विषय में पाप पुण्य के विषय में या मान-अपमान के लिए नहीं डरते हैं । पैसा यदि मिलेगा तो जेल जाने के लिए तैयार हैं । आज कल ऐसे त्यागी बहुत मिलेगें ।

वास्तव मे धन का संचार सब जगह होना चाहिए । तभी लोगों का व्यवहार ठीक तरह से चल सकता है । लोगो के दिल में दुर्भाव पैदा नहीं हो सकता । आतंक नहीं हो सकता । धन एक जगह जुड़ जाने से अन्य लोगों को धन की कमी दिखने लगती है । पैसे वालों को देखकर गरीब लोग जलते है । ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगते हैं । इसी कारण से ही 'कम्यूनिस' साम्यवाद का जन्म हुआ ।

अत: सभी आतताइयों को जन्म देने वाले परिग्रह के ममत्व भाव को नहीं रखना चाहिए । यही जैन सिद्धान्त का सार है । लेकिन प्रश्न यह उठता है कि गृहस्थावस्था में रहने वाले लोगों को परिग्रह (धन) के बिना काम नहीं चल सकता । फिर परिग्रह को कैसे छोड़ सकते हैं ? यह प्रश्न उचित भी है ।

इस तरह के सारे प्रश्नों का हल जैन सिद्धान्त में मौजूद है । जैन सिद्धान्त के अन्दर अपरिग्रह को दो प्रकार से माना है । अर्थात् एक देश और सर्व देश । एक देश त्याग गृहस्थियों के लिए है । सर्वथा त्याग मुनियों के लिए है । गृहस्थी परिग्रह को अथवा परिग्रह के ममत्व को सर्वथा त्याग नहीं कर सकता । इसलिए उसे एक देश त्याग का उपदेश है । जैन सिद्धान्त के रहस्य की बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अत्याशा नहीं होनी चाहिए । दूसरी नीति यह है कि "अति सर्वत्र वर्जयेत्" इस सिद्धान्त के अनुसार गृहस्थों को आश तो हो सकती है परन्तु अत्याशा नहीं होनी चाहिए । अत्याशा सम्पूर्ण अनर्थ की जड़ है । अत: गृहस्थियों को चाहिए कि अत्याशा को छोड़ दे ।

इसी उद्देश्य को आधार शिला बना कर जैन सिद्धान्त में गृहस्थों के लिए कहा गया है कि परिमित परिग्रह नाम का पाँचवाँ अणुव्रत । इसका मतलब यह है कि परिग्रह को सीमित करना है । धन-धान्यादि में परिमित कर लें । धन की जितनी जरूरत है उतनी याने रुपये में पाँच लाख । एक-

दो घर इत्यादि, इस तरह सीमित कर दिया जाय तो लालच नहीं बढ़ेगा । व्यक्ति सीमत धन आदि के ऊपर कमाकर इकट्ठा करने का प्रयत्न नहीं करेगा । ऐसी परिस्थिति में समाज के अन्दर किसी तरह का झगड़ा नहीं होगा । दिक्कत भी नहीं रहेगी । यह परिमित परिग्रह गृहस्थों के लिए सुन्दर सुलभ उपदेश है । इसे सब लोग कम से कम जैन लोग अपनाने लग जायेंगे तो समाज में आनन्द का पारावार उमड़ पडेगा । लेकिन बात यह है कि इसे अपनाता तो कोई भी नहीं है न । यही सोचनीय बात है । इस तत्त्व को केवल जैन सिद्धान्त ने माना है । अन्य किसी भी सिद्धान्त में यह देखने को भी नहीं मिलेगा ।

इस परिमित परिग्रह नाम के सिद्धान्त को अपनाने से सन्तोष, शान्ति, समता भाव आदि का प्रादुर्भाव हो जाता है । पुण्य की प्राप्ति भी होती है । प्रथमानुयोग की कथा में लोगों ने सुना होगा कि षट् खण्डाधिपति भरत चक्रवर्ती महाराज परिमित परिग्रही थे । इसीलिए वे अन्तर्मुहूर्त केवली बने । उनके पास अगणित संपत्तियाँ थीं । परन्तु सीमित सम्पत्ति पर ही उनका मोह था । बाकी पर नही था । यदि संसार के सारे लोग इस सिद्धान्त को अपनाने लगेगे तो अशान्ति होने की सम्भावना ही नहीं रहेगी और लोगो की व धन की सुरक्षा के लिए पुलिस आदि की जरूरत भी नहीं पडेगी ।

अनेकान्त

अनेकान्त जैन सिद्धान्त की अमूल्य निधि है । अन्य लोगों के सिद्धान्त एकान्त है । अनेकान्त में क्या चीज है ? उसे सबसे पहले समझ लेना बहुत जरूरी है । प्रत्येक वस्तु के अन्दर परस्पर विरोधी अनेक धर्म (गुण) मौजूद हैं । इसे जैन धर्म ने अच्छे ढंग से माना है । जैन धर्म के सिवाय अन्य सारे धर्म वाले इसके महत्त्व को जाने बिना खण्डन करने लगते हैं । उन लोगों का कथन यह है कि एक वस्तु के अन्दर परस्पर विरोधी धर्म कैसे रह सकते हैं । जैसे उष्ण के साथ शीत । जहाँ उष्ण रहेगा वहाँ शीत नहीं रह सकता तथा जहां शीत रहेगा वहा उष्ण नहीं रह सकता इत्यादि । मोटी दृष्टि से देखा जाय तो यह बात ठीक सी मालूम होगी । वस्तुत: यह विचार गलत है ।

वास्तव मे वस्तु का स्वरूप ही अनेकान्तक है उसमें हम अनेकता को लगाते नहीं है । वही वास्तविक स्वरूप है । प्रत्येक वस्तु अनेक गुण और धर्मों से युक्त है । वैसे अनन्त धर्मात्मक अथवा गुणात्मक वस्तुओं के स्वरूप को समझाने वाली सापेक्ष कथन पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं । अनेकान्तात्मक कार्य कथन स्याद्वाद. लघीयस्त्रयी''-

इसका मतलब यह है कि अनेकान्त प्रमाणात्मक है और स्याद्वाद नयात्मक है । अनेक याने अनन्त धर्मात्मक वस्तु में से एक धर्म को जानना स्याद्वाद है । अनेकान्तकार्य और स्याद्वाद में द्योत्यद्योतक सम्बन्ध है ।

अनेकान्त शब्द अनेक और अन्त इन दो शब्दो से मिल कर बना है । अनेक का अर्थ होता है कि एक से अधिक । एक से अधिक दो भी हो सकते हैं और अनन्त भी । दो और अनन्त के बीच में अनेक अर्थ सम्भव है । तथा अन्त का अर्थ है धर्म और गुण । प्रत्येक वस्तु में अनन्त गुण विद्यमान है । अत: जहाँ अनेक का अर्थ अनन्त होगा, वहाँ अन्त का अर्थ गुण लेना चाहिए । इस

व्यवस्था के अनुसार अर्थ होगा अनन्त गुणात्मक वस्तु ही अनेकान्त है । किन्तु जहाँ अनेक अर्थ दो लिया जायेगा, वहाँ अन्त का अर्थ धर्म होगा तब यह अर्थ होगा कि परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले दो धर्मों का एक ही वस्तु में होना अनेकान्त है ।

एक वस्तु में परम्पर विरोधी धर्म एक साथ देखे जाते हैं । जमीन के नीचे पानी और आग एक जगह रहते हैं । जब भूकम्प होता है तब पानी उबल करके बाहर आता है । अतः परस्पर विरोधी धर्म एक जगह रहना असम्भव नहीं है ।

एक मनुष्य के अन्दर पुत्रत्व, पितृत्व, भ्रातृत्व आदि परस्पर विरोधी धर्म एक साथ पाये जाते हैं । यह प्रत्यक्ष बात है ।

इसके विषय में मनीषी संस्कृत के उद्भट विद्वान डॉ गंगानाथ झा का विचार द्रष्टव्य है-

''जबसे मैंने सकराचार्य द्वारा जैन सिद्धान्त का खण्डन पढ़ा है तबसे मुझे विश्वास हुआ कि इस सिद्धान्त मे बहुत कुछ है जिसे वेदान्त के आचार्य ने नहीं समझा और जो कुछ अब तक जैन धर्म को जान सका हूँ उससे मेरा दृढ़ विश्वास हुआ है कि यदि वे जैन धर्म को उसके मूल ग्रन्थो से देखने का कष्ट उठाते तो उन्हें जैन धर्म का विरोध करने की कोई बात नहीं मिलती ।''[1]

(1) तीर्थंकर वर्द्धमान पृष्ठ-९४

अध्यात्म -इस विशाल विश्व पर यदि हम अपनी दृष्टि डालते हैं तो सभी जीव किसी न किसी कार्य में लगे हुए दिखाई देते हैं । चाहे वे कार्य शारीरिक हों, मानसिक हों या आध्यात्मिक हो । उनका अन्तिम ध्येय यही रहता है कि आत्मा के लिए आनन्द अथवा शान्ति की खोज करनी है । परन्तु जब हम देखते हैं कि मानव अपने अनुकूल शारीरिक और मानसिक पदार्थों को पाकर सन्तुष्ट होता हो ऐसा नहीं दीखता ।

बहुत से ऐसे देखे जाते हैं और सुने जाते हैं कि भाई मुझे बड़ा आनन्द आया । इस तरह आनन्द पाने का कारण कई तरह से होते हैं-जैसे शारीरिक दृष्टि से कोई व्यक्ति कई दिन से भूखा हो, उसे यदि खूब मिष्ठान्न मिल जाय उससे, किसी को पुत्र सन्नति की प्राप्ति होने से, अपार धन की प्राप्ति होने से, नेत्र को आनन्द प्रदान करने वाले सिनेमा आदि को देखने से, शृंगार रस संभ्रान्त संगीत सुनने से । परन्तु यह आनन्द चिरस्थायी नहीं है । मनुष्य को मुग्ध करने वाला इन्द्र धनुष अपनी छटा के द्वारा प्रेक्षकों के मन को आनन्द प्रदान तो अवश्य करता है परन्तु अल्प काल के बाद इन्द्र धनुष विलीन हो कर उस आनन्द को धराशायी बना देता है । इसी प्रकार संसार के अनन्तपदार्थ के समूह जीवों को थोड़ा बहुत काल्पनिक संतोष तो अवश्य देते हैं किन्तु उसके भीतर चिरस्थायित्व का नाम निशान भी नहीं रहता है । इस बात को हम देखते हैं और अनुभव भी करते हैं ।

इस भौतिक पदार्थ के आनन्द में एक बड़ा संकट यह है कि जैसे-जैसे आनन्द प्रदायिनी सामग्रियाँ मिलती जाती हैं वैसे-वैसे उसमें तृष्णा की ज्वाला बढ़ती जाती है । उसे संसार के सारे के सारे पदार्थ मिल जाने पर भी परितृप्ति नहीं हो पाती ।

आचार्य गुणभद्र महर्षि कहते हैं कि :

आशागर्त प्रतिप्राणी यस्मिन विश्वमणूथमम् ।

कि कस्य कियदायाति वृथा वो विषमैषिता ॥

अर्थात् जगत के आशा और तृष्णा का गड्ढा बड़ा भयंकर है । वह इतना गहरा है कि उसे सारा संसार अणु मात्र दिखाई देता है । भला बताओ, इस जगत के अगणित प्राणियों की तृष्णा अथवा आशा की पूर्ति इस विश्व के द्वारा करें तो एक-एक प्राणी के हिस्से मे इस जगत का कितना हिस्सा मिलेगा कुछ हिस्सा मिलना भी कठिन है ।

अज्ञानी जीव चाहता है कि विश्व के वैभव से तृष्णा की प्यास को बुझा ले । कभी संभव है क्या ? कहते हैं कि सिकन्दर (सम्राट) सारे विश्व को जीत कर एकमात्र सम्राट बनना चाहता था । उसने आततायी के द्वारा विश्व के बहु भागों को जीत भी लिया था । परन्तु उसकी इच्छा पूर्ति होने के पहले काल ने उसे ग्रास कर लिया । जब उसका शव बाहर निकाला गया था तब उसके दोनों हाथ बिना बांधे छोड़ दिये गये थे । इसका मतलब यह था कि देखो विश्व विजय के रंग में रंगा हुआ मस्त सम्राट अपने साथ विशाल राज वैभव का एक कण भी नहीं ले जा रहा है । ऐसे शिक्षाप्रद उदाहरण से यह बात मालूम होती है कि बाह्य पदार्थों में सुख की धारणा करना मूल में भूल है ।

इस प्रकार भौतिक पदार्थों के पीछे सुखाभिलाषी जीव वास्तविक आत्मा के आनन्दामृत पान से यों ही वंचित रह जाता है । इस बात को हमें अच्छी तरह जानना अत्यावश्यक है ।

आत्मा का आनन्दामृत अपने को कैसे मिल सकता है ? इस पर विचार करना प्रत्येक आत्म हितेच्छु मानव का परम कर्त्तव्य है ।

पहले हमें इन्द्रिय निरोध के साथ भेद-विज्ञान को स्पष्ट रूप से जानना होगा । शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं । शरीर पुद्गल है, नश्वर है । अनेक रोगों और वासनाओं का निवास स्थान है । आत्मा चेतन, अनन्त शक्तिवान, मोक्ष प्राप्त करने की क्षमता रखने वाला है । चैतन्यमय आत्मा में अनन्तानन्त स्वाभाविक गुण के ढेर भरे हुए हैं ।

ऐसा जीव कर्मों के कारण अनादि काल से संसार सागर में डूबा हुआ आ रहा है । उसका कर्त्तव्य यह है कि इन्द्रिय निग्रह के द्वारा कर्मों को समूल नष्ट कर आत्म कल्याण प्राप्त करने का सदा सर्वदा प्रयत्न करते रहना चाहिए । भद्रं भूयात् ।

श्रीरस्तु

॥ श्री ॥

आचार्य कुन्दकुन्द और उनका व्यक्तित्व

कुन्द कुन्द शब्द के अन्तर्गत पुष्प जैसी सुरभि है, और यह भी प्रतिभाषित करता है, कि कुन्दकुन्द नाम का पुष्प अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करके अनन्त लोक के विस्तार को प्राप्त हो गया। कभी इसी कुन्दकुन्द ने पद्मनन्दी के अस्तित्व को पाया, कभी ऐलाचार्य की पदवी से विभूषित होकर आध्यात्मिक जगत में अपनी अपूर्व महिमा को स्थापित किया। गृद्धपिच्छाचार्य के रूप मे श्रमण संस्कृति की वास्तविकता का मूल्यांकन कराया, एवं वक्रग्रीवाचार्य के रूप में अपने शब्द अभिव्यक्ति के माध्यम से जन-जन को सर्वज्ञ वाणी का बोध कराया। यही एक ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने परमागम स्वरूप को सामान्य जन से लेकर मोक्ष-पथ पर गमन करने वाले लोगों के लिए चौदह-पूर्व और बारह अंगों की वास्तविकता पर मूल्यांकन करने के लिए स्वतः ही छोड़ दिया, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि स्वयं को अनुभव करने से ही अस्तित्व का बोध होता है। आध्यात्मिक शान्ति और सामाजिक क्रान्ति का जैसा अद्भुत संगम इस अपराजेय व्यक्तित्व में देखने को मिलता है, वैसा अन्यत्र असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है आचार्य पद प्राप्त करने के बाद जो कुछ भी कथन किया, वह सब अर्थ रूप में महावीर के द्वारा प्रतिपादित गणधरों के द्वारा सूत्ररूप में गूथित था, उसी को शब्द रूप में प्रतिपादित करने वाले आचार्य के रूप में इनका नाम लिया जाता है।

आचार्य कुन्दकुन्द बार बार कहते हैं, कि श्रुत केवली ने जो कहा, मैं वही कह रहा हूँ, इतने पर भी वे नि.संकोच कहते हैं, कि यदि फिर भी इसमें भूलचूक हो जावे, तो इसे छल नहीं समझना-"चुकेज्ज छलं णघेत्तव्वं" इतना बड़ा आचार्य और इतनी विनम्र ईमानदारी।

भगवान महावीर की मूल दिगम्बर परम्परा के सर्वमान्य श्रेष्ठ आचार्य होने के नाते आचार्य कुन्दकुन्द के समक्ष सर्वाधिक दो उत्तरदायित्व थे-एक तो श्रुतस्कन्धरूप परमागम को लिखित रूप में व्यवस्थित करना-और दूसरा शिथिलाचार के विरुद्ध सशक्त आन्दोलन चलाना, एवं कठोर कदम उठाना। दोनो ही उत्तरदायित्वों को उन्होंने बखूबी निभाया है। आत्मा के प्रति अत्यन्त सजग आत्मोन्मुखी वृत्ति एवं शिथिलाचार के विरुद्ध इतना उग्र संघर्ष आचार्य कुन्दकुन्द जैसे समर्थ आचार्य के वश की ही बात थी।

पं कैलाशचन्द्रजी "कुन्दकुन्द प्राभृत संग्रह" की प्रस्तावना में लिखते हैं-कि अध्यात्म के तो कुन्दकुन्द एकमात्र पुरस्कर्त्ता हैं। समयसार के द्वारा जो उन्होंने आत्मतत्त्व का निरूपण किया है, वह समस्त जैन बाङ्मय में अनुपम है। कुन्दकुन्द के द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ज्ञान आत्मार्थियों के लिए खास-तौर से पठनीय, और मननीय है। कुन्दकुन्द के ग्रन्थ रचना-शैली और वस्तु-प्रतिपादन शैली की दृष्टि से सरल और सुगम होते हुए भी गहन है, एवं विषय सरल है। उनकी एक-एक

गाथा एक-एक अनमोल रत्न है । गम्भीर से गम्भीर विषय का प्रतिपादन वे इतनी सरलता से करते हैं, कि पाठकों को उसे हृदयंगम करने में कठिनाई नहीं होती । उनके उपदेश माता के दूध के समान पवित्र एवं निर्दोष है । सचमुच में कुन्दकुन्द का साहित्य हमारे लिये उतना ही महान् है, जितनी भगवान महावीर की दिव्य-वाणी और गौतम-गणधर के द्वारा रचित द्वादशांग ।''

आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में वे सब विधियाँ हैं जो जीवन को संवारती हैं । कुन्दकुन्द ने अपने अनुभवों को अपने साहित्य द्वारा कालजयी बना दिया है । उनके साहित्य में आत्म कल्याण सर्वोपरि है, उसी में प्राणी कल्याण की भावना निहित है ।''

कुन्दकुन्दाचार्य ने आगमिक पदार्थों की दार्शनिक दृष्टि से तार्किक चर्चा प्राकृत भाषा में सर्वप्रथम की है, ऐसा उपलब्ध साहित्य सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है । इन्होंने आगमिक जैन तत्त्वों को तत्कालीन दार्शनिक विचारधाराओं के प्रकाश मे स्पष्ट किया है, इतना ही नहीं वरन् अन्य दर्शनों के मन्तव्यों को यत्र-तत्र निराश करके जैन मन्तव्यों की निर्दोषता और उपादेयता भी सिद्ध की है, जिससे जिज्ञासुओं की श्रद्धा और बुद्धि दोनो को पर्याप्त मात्रा में सन्तोष मिल सके । कुन्दकुन्द की रचनाएँ वास्तव मे भौतिकवाद की आंधी में उड़ते लोगों का सहारा बनीं ।

भौतिकवादी सम्प्रदायो मे जो प्रचलित लौकिक रूढियाँ प्रवेश कर चुकी थी, उन पर अकुश लगाया गया । आचार्य कुन्दकुन्द ने उस समय सर्वाधिक प्रचलित व प्रभावित करने वाले अनात्मवाद के प्रचारको पर प्रहार किये, क्योंकि समस्त शिथिलाचार का जन्म ही इस अनात्मवाद से हुआ । आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने के लिए उन्होंने ज्ञान और भक्ति दोनों मार्गों का समन्वय किया । आचार्य ने अपने पाहुड़ ग्रन्थो में आध्यात्मिक एवं चरित्र-निष्ठा के ही ज्ञान का प्रवाह प्रवाहित कर लोगो के भौतिक प्रवाह को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ा, भटके लोगों को पुनः जीवन मूल्यो को समझने का वातावरण प्रदान किया ।

आचार्य विद्यासागरजी कहते हैं कि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी केवल साहित्य लिखकर इस मुनि-मार्ग को जीवित नही रख पाये, अपितु उन्होने स्वय इस चर्या को निभाया । यदि आचार्य कुन्दकुन्द नहीं होते, तो हम अपनी आत्मा की आराधना कैसे करते ? आत्मा की बात भी स्वप्न में नहीं आ सकती थी । आचार्य स्वामी ने जीवन भर तत्त्वो का मन्थन, चिन्तन व मनन करके नवीनत रूप में साहित्य प्रस्तुत किया, यही कारण है कि अध्यात्म की ऐसी धारा बही है, कि कोई भी ग्रन्थ उठाये, कोई भी प्रसग उठायें, उन ग्रन्थों में से कोई गाथा ले लें, वह पाठक के लिए पर्याप्त होगा । उसमें से वह रस, वह संवेदन, वह अनुभूति पाठक को भी प्राप्त होगी, जो उन आचार्यों को प्राप्त हुई थी । आचार्य कुन्दकुन्द ने हमें जीवन के उद्धार की सामग्री प्रदान की है, इनका प्रत्येक अक्षर, चेतनामय है, उसे हमें आत्म अनुभव से ही पकड़ना होगा । कुन्दकुन्द ने हमें निसंग बनने की कला सिखाई है, जो शाश्वत सुख का प्रथम द्वार है । जो अनय, अनीति, अपच्यं से बचेगा, वही कुन्दकुन्द

तक पहुँचेगा। आचार्य विद्यासागरजी ने कुन्दकुन्द की एक-एक गाथा को चाकलेट के समान बतलाते हुए कहा है, कि जिसको संसार के भोगों की भूख है, वह इन गाथाओं को चाकलेट के रूप में काम न लेकर सीधा खा जावेगा, और कुन्दकुन्द स्वामी के द्वारा प्रस्तुत स्वाद को नहीं ले सकेगा। आज प्राय: यही हो रहा है, सारा समयसार मुखाग्र है, पर ज्ञान वैराग्य का पता नहीं। अरे ! समयसार को मुखाग्र करने की जरूरत नहीं, हृदयंगम करने की आवश्यकता है। आज समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार आदि का जो असर पड़ा है, मात्र सिर तक ही पड़ा है, यदि भीतर उतर जायेगा, तो आपको ज्ञात होगा कि बाहर दीखने वाला समयसार भार हो जायेगा। यह ग्रन्थ भी ग्रन्थ का रूप धारण कर लेगा।

प पू चारित्र चक्रवर्ती वर्तमान आचार्य श्री आदिसागरजी अंकलीकर महाराज की धारणा थी कि समयसार का अध्ययन कर यदि आत्म दर्शन नहीं किया व समाधि सिद्ध नहीं की तो उसने समयसार को न पढा न जाना।

आचर्य कुन्दकुन्द ने वीतरागता के धरातल पर खड़े होकर वास्तविकता को आंका। आचार्य अमृतचन्द व जयसेनाचार्य ने उनके मूल्यांकन के लिए उनके ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी एवं उन्हीं टीकाओं के माध्यम से अपने आपकी ज्ञान-चेतना की वास्तविकता को भी प्रतिपादित किया है। आचार्य कुन्दकुन्द को प्रकाश में लाने का श्रेय जयसेनाचार्य को है, वे टार्च दिखाने वाले हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचन सार में "जो जाणदि सोणाणं" इस गाथा में-"जो जानता है, वह ज्ञानी है, ज्ञानी का जो ज्ञान है, उसी से वह ज्ञायक है, ये पंक्तियां उनके ग्रन्थों में सर्वत्र ही व्याप्त है।

प्रवचनसार मे ही गाथा नं 7 मे दर्शन-ज्ञान प्रधान चारित्र को धर्म कहा है, इस विषय पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाय, तो चारित्र के यथार्थ को जीवन से जोड़ा जा सकता है।

चारितं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोति णिदिट्ठो-

मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥

(चारित्र ही धर्म है, और जो धर्म है, वह साम्य है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है, मोह, क्षोभ से रहित आत्मा का भाव है, वही समता भाव है।

जीवन की श्रेष्ठता का मूल्यांकन केवल ज्ञान की प्रधानता या दर्शन की प्रधानता से नहीं करे क्योंकि संसार में 3 प्रकार के प्राणी हैं :-

1 शुद्ध अवस्था, (2) शुभ अवस्था, (3) अशुभ अवस्था।

इन तीनों पर गम्भीरता से विचार करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द ने तीनों के अस्तित्व को अपने-अपने स्थान पर सही बतलाया है, परन्तु जब आत्मा के शुद्ध स्वरूप की और व्यक्ति को अग्रसर होते हुए देखा-तो उन्होंने-

नियमसार के माध्यम से चारित्र निर्माण के लिए-

5 व्रतों, 3 गुप्तियों 3 करण - रत्नत्रय, कर्मफल आदि के यथार्थ पर अलग-अलग बोध कराया।

''दयाविसुद्धोधम्मो'' कहकर एक ओर सामाजिक चरित्र निर्माण पर बल दिया है-वहीं दूसरी ओर समाज को वस्तु तत्त्व पर श्रद्धा रखने के लिए ''दंसण मूलो धम्मो'' के पाठ का बोध कराया है, एवं श्रमण संस्कृति के पथ पर गमन करने वाले प्राणियों को बोध देते हुए ''चारित्र खलु धम्मो'' का प्रतिपादन किया है, उन्होंने यह भी कहा कि धर्म को भोग के निमित्त मत बनाना।

आचार्य कुन्दकुन्द ने उसमे ''चरण करणस्स सारं'' अर्थात् चारित्र पालन सारभूत तत्व है, यह सारभूत तत्त्व कुन्दकुन्द के सभी ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

पंचास्तिकाय में-ज्ञान दर्शन एवं चारित्र के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए स्वसमय और पर समय की बात कही है, और उसी के आधार पर उन्होंने यह प्रश्न उपस्थित किया-कि स्वसमय का आचरण करने वाले कौन हैं ? उसका उत्तर एक ही शब्द में दिया-

''अविप्पं चरदि अप्पाटो'' जो निर्विकल्प रूप से अनुभव करता है, वही स्वसमय का आचरण करता है। जो जीव आत्म-स्वरूप मे चरण करता है, जानता है, एव उसके वास्तविक स्वरूप का मूल्याकन करता है, वही वस्तुतत्व का ज्ञाता है।

समयसार का सार यही है, जिसमें यह कहा गया है ''अहमिक्को खलु सुद्धो'' मैं एकमात्र शुद्ध हूँ, दर्शन ज्ञान रूप हूँ, एवं धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना मेरा कार्य है।

कुन्दकुन्द का दार्शनिक चिन्तन आगम, अनुभव और तर्क पर विशेष आधृत है। जब वे किसी भी वस्तु का विचार करते हैं तो उसमें सिद्धान्त के अलावा दर्शन का आधार अवश्य रहता है।

पचास्तिकाय-गा 10 में कुन्दकुन्द ने द्रव्य के दो लक्षण किये हैं, प्रथम सत् ही द्रव्य है। तथा सत् उसे कहते हैं, जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रोव्य ये तीनों युगपत पाये जायें।

दूसरा लक्षण यह है कि जो गुणों और पर्यायों का आश्रय है। अर्थात् गुण पर्याय वाला है।

पहला लक्षण जहाँ द्रव्य की परिणमन शक्ति को प्रकट करता है, वहाँ दूसरा लक्षण द्रव्य को गुणों और पर्यायों का समुच्चय सिद्ध करता है, तथा उसमें सहानेकान्त और क्रमानेकान्त इन दो अनेकान्तों को बतलाकर सभी वस्तुओं को अनेकान्तात्मक सिद्ध करता है।

कुन्दकुन्द का दूसरा नया चिन्तन यह है कि आगमों में जो "सिया अत्थि" (स्याद अस्ति-कथंचित है) और "सिया नत्थि" (स्यान्नास्ति कथंचित नहीं है) इन दो भंगों से वस्तु निरूपण है।

कुन्दकुन्द ने उसे सात भंगों (प्रकारो) से प्रतिपादित किया है, तथा द्रव्य मात्र को सात भंग रूप बतलाया है। (पंचास्तिकाय गा 14)

उनका यह चिन्तन एव प्रतिपादन समनन्तभद्र जैसे आचार्यों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ।

तात्विक विचारणा

कुन्दकुन्द की उपलब्ध सभी रचनाएँ तात्विक चिन्तन से ओतप्रोत है। समयसार और नियमसार मे शुद्ध आत्मा का जैसा विशद् और विस्तृत विवेचन है, वैसा अन्यत्र अलभ्य है।

आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परात्मा इन तीन भेदों का (मोक्ष-पाहुड़ गाथा 4-7) कथन उनसे पहिले किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है।

सम्यग्दर्शन के आठ अंगो का निरूपण जो समयसार में गाथा - 229 से 236

अणुमात्र राग रखने वाला सर्वज्ञ शास्त्रज्ञ भी स्वसमय का ज्ञाता नहीं (पंचास्तिकाय 167)

जीव को सर्वथा कर्मबद्ध अथवा सर्वथा कर्म-अबद्ध बतलाना नयपक्ष (एकान्तवाद) है, और दोनों का ग्रहण न करना समयसार है - (स सा गाथा 141-143)

तीर्थंकर भी वस्त्रधारी हो, तो वह सिद्ध नहीं हो सकता (दर्शन-पाहुड़)

आदि ये सब तात्त्विक विवेचन कुन्दकुन्द की देन है।

कुन्दकुन्द की लोक कल्याणी दृष्टि ·

कुन्दकुन्द की दृष्टि मे गुण कल्याणकारी है, देह-जाति, कुल आदि नहीं। (दर्शन-पाहुड़ 27) आदि निरूपण भी उनकी अनोखी लोक-कल्याण दृष्टि की देन है। इस प्रकार हम देखते हैं, कि आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने वाड्मय द्वारा मनुष्य मात्र के हित का मार्ग प्रदर्शित किया है।

कुन्दकुन्द की दृष्टान्त दृष्टि :

आचार्य कुन्दकुन्द गम्भीर से गम्भीर विषय को भी विभिन्न दृष्टान्तो, उपमाओं आदि के द्वारा श्रोता या पाठक को हृदयंगम करा देते हैं। कुन्दकुन्द के साहित्य में जितने दृष्टान्त प्रयुक्त हुए हैं, यदि उनका विश्लेषण और सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो कुन्दकुन्द की बहुश्रुतता तो प्रकट होती ही है, उनके साहित्य में भी नवीन अर्थ उद्घाटित होते हैं।

इन दृष्टान्तो का उपयोग आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने जैन दर्शन और साधना के विषय को अच्छी तरह से समझाने के लिए किया होगा, किन्तु इससे आचार्य कुन्दकुन्द के दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभूति के विकास को भी ज्ञात किया जा सकता है, कि उन्होंने कितनी सूक्ष्मता से जगत के स्वरूप को वस्तु के स्वभाव को जाना था, आचार्य कुन्दकुन्द के समकालीन भारतीय चिन्तकों और साहित्य के मनीषियों द्वारा प्रयुक्त दृष्टान्तों के साथ यदि कुन्दकुन्द के दृष्टान्तों का अध्ययन किया जाये तो भारतीय साहित्य की एक नई विद्या का इतिहास निर्मित हो सकता है। अनेक दृष्टान्तों के जन्मदाता कुन्दकुन्द सिद्ध होंगे।

आचार्य ने कृषि एवं प्रकृति सम्बन्धी दृष्टान्तों से जैन दर्शन को कई स्थानों पर हृदयंगम कराने का प्रयत्न किया है ।

इस प्रकार कितने ही दृष्टान्त सामान्य जीवन को महान् बनाने वाले दिये हैं ।

यहाँ एक दृष्टान्त का विश्लेषण किया जा रहा है ।

सुत्तम्मि जाणमाणो भवस्स भव-णासणं च सो कुणदि
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा-णोवि ॥
पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणसइ सो गओ वि संसारे ।
सच्चेयण-पच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ॥

आचार्य कहते हैं-जैसे सूत्र, डोरा (धागा) से युक्त सूई घर-बाहर कहीं भी पड़ी हुई हो, उसे धागे के द्वारा तुरन्त खोज लिया जावेगा, वह कचड़े में विलुप्त नहीं हो जावेगी । उसी प्रकार श्रुत (आगम), श्रुत स्वाध्याय से जुड़ा हुआ जीव इस चतुर्गति रूप संसार के मध्य स्थित होता हुआ भी उसमें खोकर नहीं रह जावेगा । श्रुत के सहारे आचार्य, उपदेशक साधु, सत्संग, संयम आदि का संसर्ग होते ही वह आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में लग जावेगा ।

धागे से संयोग से सुई जैसे अपनी पहिचान स्वय बना लेती है, वैसे ही श्रुत एवं सूत्र के संयोग से जीवन अदृश्यमान होता हुआ भी स्वात्मा के प्रत्यक्ष से संसार के अन्य जीवों के बीच अपनी पहिचान अलग बना लेता है, स्वप्रयत्न से वह आत्मा से परमात्मा बन सकता है ।

सुई एवं धागे के दृष्टान्त द्वारा कुन्दकुन्द ने बालक, महिला, पुरुष, गृहस्थ, साधु सभी के स्तर से इस बात को समझाने का प्रयत्न किया है, कि सुई धागे के द्वारा किसी न किसी कपडे के टुकड़ो को जोड़ती ही है, उन्हें अलग-अलग नहीं करती, यह काम कैंची का है । अतः सुई-धागा संगठन, एकता, योग, साधना का प्रतीक है, इस दृष्टान्त की जितनी व्याख्या की जाय कम है ।

ऐसे अनेक दृष्टान्त कुन्दकुन्द साहित्य मे भरे पड़े हैं । आचार्य सामान्य व्यक्ति को समझाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार धन को प्राप्त करने वाला कोई व्यक्ति पहिले राजा के विषय में जानकारी प्राप्त करता है, उसे जानता है, फिर उसका श्रद्धान करता है और उसके बाद प्रयत्नपूर्वक राजा की सेवा की जाती है, तब उसे इच्छित धन मिलता है ।

उसी प्रकार मोक्ष को चाहने वाले जीव के द्वारा यह जीव कभी राजा जानने योग्य है, श्रद्धान करने योग्य है, और फिर सेवा करने योग्य है ।

''जह णाम कोवि पुरिसो, रायाणं जाणिदण सदहदि ।
तो तं अणुचरदि पुणो, अत्थत्थीओ पयत्थेण ॥
एवं हि जीवराया, णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो ।
अणुचरिदव्वो य पुणो, सो चेव दु मोक्खकामेण ॥

कमल कुमार रांवका
एम फिल. (जैन विद्या एवं प्राकृत) सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

॥ श्री जिनाय नमः ॥

मेरी जानकारी

वे आचार्य परम तपस्वी थे और सात दिनो में एक बार आहार लेते थे और जब वे समायिक ध्यान आदि करते थे तब उनके पास शेर आया करता था। प्रायः दक्षिण भारत में इनका विहार हुआ। जगह जगह धर्म प्रभावना हुई है और चौदह दिन के उपवास के बाद उनकी समाधि हुई और उनकी समाधि के समय एक यातायात की व्यवस्था की गई थी। उस समय पर आचार्य शान्तिसागरजी महाराज एव आचार्य देशभूषणजी महाराज आदि इतने साधुओं का विशाल समुदाय नजर आता था कि जिधर देखो उधर साधु ही साधु थे। साधुओं की संख्या करीब ७० से ७५ तक की थी। ब्र सुरेन्द्र कुमारजी (वर्तमान मे श्रेष्ठ सन्त आचार्य विद्यानन्दजी) भी मौजूद थे। अग्नि सस्कार के समय नाना प्रकार के बाजे एवं आकाश में जयजयकार ध्वनि भी हुई। जिसका श्रमण उपस्थित समुदाय ने भी किया था।

आचार्य शान्तिसागरजी महाराज ने क्षुल्लक दिक्षा प. पू. आचार्य आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) से ली थी।

लक्षमणराव भरमप्पा आरवाडे सांगली से रेल द्वारा आकर आहार आदि व्यवस्था करते थे उनके आचार्य पद की प्रतिष्ठा जयसिंह में हुई। आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के शिष्य परम तपस्वी सरल स्वभावी श्री १०८ आचार्य पायसागरजी महाराज ने उनके प्रति विनय भाव रखते हुए उनकी जगह-जगह चरण पादुका विराजमान की। उनके द्वारा महाराष्ट्र प्रान्त में महती धर्म प्रभावना हुई थी। मैंने उनका दस ग्यारह वर्ष की उम्र में दर्शन किया था। उनके द्वारा महाराष्ट्र प्रान्त में विशेष धर्म प्रभावना एवं जीर्णोद्धार जगह-जगह हुआ। उनके द्वारा महाराष्ट्र प्रान्त में कोल्हापुर, सांगली, बेलगाँव जिल्हा आदि क्षेत्रों में अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई और आपकी ही प्रेरणा से अंकली ग्राम में आदिनाथ भगवान मन्दिर स्थापित हुआ है। आचार्य आदिसागर महाराज स्वयं दीक्षित थे। उनके पहले साधुओं का अभाव था।

उनका संस्कार प पू आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के ऊपर विशेष पडा क्योंकि उन्होंने आचार्य आदिसागरजी महाराज की मन-वचन-काय से सेवा की थी । आचार्य आदिसागरजी महाराज के चरण सानिध्य में उनका अधिकतर समय निकला ।

उनका चारित्र धवोज्वल था जिससे उनके चारित्र से भी प्रभावित हुए थे और साधुवर्ग भी उनका गुणगान करते थे ।

आदिसागरजी महाराज जी के साधु अभी तक दस पंद्रह हो चुके हैं प्रथम दीक्षित एव आचार्य तो परम पूज्य आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) ही थे ।

इनकी दीक्षा सिद्ध क्षेत्र कुथलगिरि में जिनेन्द्र देव की साक्षी मे मगरसर शुक्ला द्वितीय मंगलवार सन् १९१३ मे हुई ।

उनको आचार्य पदवी जयसिह पुर में १७ जून १९१५ में दी थी ।

आचार्य पद के साथ चारित्र चक्रवर्ती सिद्धान्त शास्त्र पारंगत सम्यक्त्व शिरोमणि इत्यादि अनेक पदो से विभूषित थे ।

इनकी समाधि ४ मार्च १९४३ फागुन कृष्णा तेरस महाशिवरात्री को ऊदगाँव कुंजवन मे हुई ।

प पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी महाराज का चतुर्विधसघ, सहित यरनाम, ऐनापुर जैनापुर हाथकलगला, आष्टा सांगली, बडगाँव, उत्तुर, चिंचवाड़, चिक्कोड़ी, कोल्हापुर, कोथली, उमणवाड, कुभोज, नेज मझले, साजण्य, कोन्नूर, नादणी, इचलकरंजी, आबडे, इगली कवठेपिराण सेडवाव अकली धामर्ण्य कुप्पवाड़ नसलापुर कोगनोली गलतगा इत्यादि गावो में आचार्य श्री ने धर्म प्रभावना की और अपने जीवन मे गोमटेश्वर बाहुवली (श्रवण वेलगोला) की भी यात्रा की है । आपका अन्तिम चातुर्मास उदगाँव (कुंजवन) मे हुआ ।

जिनचंद शास्त्री
मु पो अंकली
सा. मिरज जि सांगली (महाराष्ट्र)

पापनाशक और शक्तिवर्धक तपश्चर्याऐं

ताराचंद पाटनी 1132, मनिहारों का रास्ता, महावीर पार्क के सामने जयपुर

अग्नि की उष्णता से संसार के सभी पदार्थ जल, बदल या गल जाते हैं । कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसमे अग्नि का ससर्ग होने पर भी परिवर्तन न होता हो । तपस्या की अग्नि भी ऐसी ही है वह पापो के समूह को निश्चित रूप से गलाकर नरम कर देती है, बदलकर मनोभावन बना देती है अथवा जलाकर भस्म कर देती है ।

जो प्रारब्ध कर्म समय के परिपाक से प्रारब्ध और भवतव्यता बन चुके हैं जिनका भोगा जाना अमिट रेखा की भाँति सुनिश्चित हो चुका है, वे कष्ट साध्य भोग, तपस्या की अग्नि के कारण गलकर नरम हो जाते हैं । उन्हें भोगना आसाना हो जाता है । जो पाप परिणाम दो महीने तक भयकर उदरशूल होकर प्रगट होने वाला था, वह साधारण कब्ज बनकर दो महीने तक मामूली गडबडी करके आसानी से चला जाता है । जिस पाप के कारण हाथ या पैर कट जाते, भारी रक्त स्राव होने की सम्भावना थी, वह मामूली ठोकर लगने से या चाकू आदि चुभने से दस-बीस बूँद खून बहकर निवृत हो जाता है । जन्म जन्मातरो के संचित वे पाप जो कई-कई जन्मों तक भारी कष्ट देते रहने वाले थे, वे थोडी-थोडी चिन्ह पूजा के रूप में प्रकट होकर इसी जन्म में निवृत हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग, मुक्ति का अत्यन्त वैभवशाली जन्म मिलने का मार्ग साफ हो जाता है । देखा गया है कि तपस्वियों को इस जन्म में प्राय: कुछ असुविधाऐं रहती हैं । इसका कारण यह है कि जन्म जन्मान्तरो के समस्त पाप-समूह का भुगतान इसी जन्म में होकर आगे का मार्ग साफ हो जाय इसलिए ईश्वरीय वरदान की तरह हलके-फुलके कष्ट तपस्वियों को मिलते रहते हैं । यह पापो का गलना हुआ ।

पाप का बदलना इस प्रकार होता है कि जो सहना पडता है उसका स्वाद बडा स्वादिष्ट हो जाता है । धर्म के लिए, कर्त्तव्य के लिए, यश, कीर्ति और परोपकार के लिए जो कष्ट सहने पडते हैं, वे ऐसे ही हैं जैसे प्रसव पीड़ा, प्रसूता को प्रसवकाल में पीडा तो होती है, पर उसके साथ-साथ एक उल्लास भी रहता है । चन्द्र से मुख का सुन्दर बालक देखकर तो वह पीडा बिल्कुल भुला दी जाती है । राजा हरिश्चन्द्र, दधीचि, प्रहलाद आदि को जो कष्ट सहने पडे, वे उनके लिए उस काल से भी उल्लासमय थे और अन्तत: अमरकीर्ति और सद्गति की दृष्टि से तो वे कष्ट उनके लिए सब प्रकार मंगलमय ही रहे । दान देने में जहाँ ऋणमुक्ति होती है, वहाँ यश तथा शुभ गति की भी प्राप्ति होती है । तप द्वारा इस प्रकार उधार पट जाना और मेहमान जीम जाना दो कार्य एक साथ हो जाते हैं ।

पाप का जल इस प्रकार का होता है कि जो पाप अभी प्रारब्ध नहीं बने हैं, भूल अज्ञान या मजबूरी में हुए हैं, वे छोटे-मोटे अशुभ कर्म तप की अग्नि में जल-बलकर अपने आप भस्म हो जाते हैं । इस प्रकार की श्रेणी के पाप कर्म तपश्चर्या, प्रायश्चित करने और भविष्य में वैसा न करने के दृढ़ निश्चय से अपने आप नष्ट हो जाते हैं । तपस्वी अन्त:करण की प्रखर किरणों से पिछले

कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं और साथ ही उन कुसंस्कारो की छाया, दुर्गन्धि कष्टकर परिणामों की घटा का भी अन्त हो जाता है ।

तपश्चर्या से पूर्वकृत पापो का गलना, बदलना एव जलना होता हो सो बात ही नहीं है, वरन् तपस्वी में एक नई परम सात्विक अग्नि पैदा होती है । इस अग्नि को दैवी विद्युत शक्ति, आत्म तेज, तपोबल आदि नामो से भी पुकारते हैं । इस तेज बल से अन्त करण में छिपी हुए सुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं, दिव्य सतोगुण का विकास होता है । स्फूर्ति, उत्साह, साहस, दूरदर्शिता, संयम सन्मार्ग मे प्रवृति आदि अनेक प्रकार के गुण परिलक्षित होने लगती हैं । प्राचीन काल मे अनादिकाल से श्रीऋषभदेव से श्री महावीर तक, इसी तपश्चर्या से मुक्ति पाई है, मोक्ष गये हैं जो मानव से भगवान बन गये हैं जिन्हे हम नतमस्तक करते हैं । अपने को तपस्या के पत्थर पर घिसने से आत्म-शक्ति का उद्‌भव होता है । तपस्या द्वारा आत्म मन्थन से उच्च आध्यात्मिक तत्वों की वृद्धि का लाभ प्राप्त होता है । तप से तपा हुआ मनुष्य भी पाप-मुक्त, तेजस्वी और विवेकवान बन जाता है ।

नीचे कुछ पापनाशिनी और शक्तिवर्धक तपश्चर्याये शास्त्रो में बताई जाती है ।

(1) अस्वाद तप :

तप उन कष्टों को कहते है, जो अभ्यस्त वस्तुओ के अभाव मे सहने पडते हैं । भोजन मे नमक और मीठा यह दो स्वाद की प्रदान वस्तुएँ हैं । इनमें से एक भी वस्तु न डाली जाए, वह भोजन स्वादरहित होता है । प्राय लगो को स्वादिष्ट भोजन करने का अभ्यास होता है । इन दोनो स्वाद तत्त्वों को इनमे से एक छोड देने से जो भोजन बनता है उसे सात्विक प्रकृति वाला ही कर सकता है । जैसे जैसे स्वाद रहित भोजन मे सन्तोष पैदा होता है, वैसे ही सात्विकता बढ़ती जाती है । यह अस्वाद तप हुआ ।

(2) तितीक्षा तप :

सर्दी या गर्मी के कारण शरीर को जो कष्ट होता है उसे थोडा-थोडा सहन करना चाहिए । जाड़े की ऋतु मे धोती और दुपट्टा या कुर्त्ता दो वस्त्रों में गुजारा करना, रात्रि में सूती चद्दर ओढ कर काम चलाना, ताजे जल से स्नान करना, गरम पानी का प्रयोग न करना, अग्नि पर न तापना, यह सीत सहन के तप हैं । पखा, छाता, और बरफ का त्याग गर्मी की तपश्चर्या है ।

(3) उपवास तप :

जैन दर्शन मे, गीता मे विषय-विकारो से निवृत करने वाला बताया गया है । एक समय अन्नाहार और एक समय फलाहार आरम्भिक उपवास । उपवास का अर्थ है भगवान के समीप रहना । लगातार उपवास करने से आत्मशुद्धि के लिए और भी अच्छा है ।

(4) प्रदातव्य तप :

अपने पास जो शक्ति हो उसमें से कम मात्रा में अपने लिए रखकर दूसरों को अधिक मात्रा में दान देना है । धनी आदमी धन का दान करते हैं । जो धनी नहीं है, वे अपने समय, बुद्धि, ज्ञान, चातुर्य, सहयोग आदि को उधार या दान देकर दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हैं । शरीर का, मन का दान भी धनदान की ही तरह महत्त्वपूर्ण है । अनीति उपार्जित धन का सबसे अच्छा प्रायश्चित यही है कि उसका सत्कार्य के लिए दान कर दिया जावे । समय का कुछ न कुछ भाग लोक-सेवा के लिए लगाना आवश्यक तप है । दान हमेशा सुपात्र को करना चाहिए । मनुष्येत्तर प्राणी भी दान का अधिकारी है । गौ, चींटी चिड़िया, कुत्ते आदि उपकारी जीव-जन्तुओं को भी अन्न जाल का दान देने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । स्वय कष्ट सहकर, अभावग्रस्त रहकर भी दूसरो की उचित सहायता करना, उन्हे उन्नतिशील, सात्विक, सद्गुणी बनाने में सहायता करना, सुविधा देना दान का वास्तविक उद्देश्य है । शास्त्रों में लिखा हुआ है "सौ हाथों से कमा और हजार हाथो से दान कर"

(5) साधना तप :

णमोकार मत्र का चौबीस हजार जप नौ दिन में पूरा करना, सवा लक्ष जप चालीस दिन में पूरा करना, पूजन, स्तोत्र, विधान करना, सिद्धचक्र विधान करना आदि साधनाओं से पाप घटता है और पुण्य बढता है । णमोकार महामन्त्र से बढ़ी हुई शक्ति के द्वारा तपोबल के अधिकारी बन सकते हैं ।

(6) ब्रह्मचर्य तप :

वीर्य रक्षा, मैथुन से बचना, काम विकार पर काबू रखना ब्रह्मचर्य व्रत है । मानसिक काम सेवन, शारीरिक काम सेवन की ही भाँति हानिकारक है । मन को काम क्रीड़ा की ओर न जाने देने का अच्छा उपाय उसे उच्च आध्यात्मिक एवं नैतिक विचारों में लगाये रहना है । बिना इसके ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं हो सकती है । मन को भगवान में सत् तत्त्व में लगाये रहने से आत्मोन्नति भी होती है ।

(7) मौन तप :

मौन से शक्तियों का क्षरण रुकता है, आत्मबल का संयम होता है, दैवी तत्त्वों की वृद्धि होती है, चित्त की एकाग्रता बढ़ती है, शान्ति का प्रादुर्भाव होता है । बहिर्मुखी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होने से आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है । प्रतिदिन या सप्ताह में अथवा मास में कोई नियत समय मौन रहने के लिए निश्चित करना चाहिए । अपनी स्थिति, रुचि और सुविधा के अनुसार मौन की अवधि निर्धारित करनी चाहिए । मौन के समय का अधिकांश भाग एकान्त में स्वाध्याय, अथवा भगवान के गुणों की स्तुति में व्यतीत करना चाहिए ।

जैन सिद्धान्त एवं अध्यात्म

जैन धर्म एव जैन दर्शन मे ससारी प्राणियो के जीवन-उपवन का पूर्णरूपेण पुष्पित, विकसित तथा सौन्दर्यपूर्ण बनाने के लिए तीन प्रमुख सिद्धान्तो की त्रिवेणी प्रवाहित की, वे है- आचार मे अहिसा, विचारो मे अनेकान्त तथा जीवन मे अपरिग्रह, जीवन को सुखमय बनाने के लिए इन सिद्धान्तो की महत्ता, उपयोगिता और वास्तविकता असदिग्ध है ।

मानव जीवन आत्म-मूल्यो के साक्षात्कार के लिए इन मूल्यो की रक्षा और बढोत्तरी के लिए मिला है । स्वय अपने ही आत्म-कल्याण और व्यक्तित्व के विकास के लिए मिला है । मनुष्यो मे देवता की दिव्यताएँ भी साकार हो सकती हैं और दानव की दानवताएँ भी मनुष्य महावीर, बुद्ध, गाधी भी बन सकता है और नेपोलियन, हिटलर, चखेजखान भी ।

ससार मे सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दु ख से डरते है । सुख सबको अच्छा लगता है और दु ख बुरा । वध सबका अप्रिय है और जीवन प्रिय । अत किसी भी प्राणी की भूलकर भी हिसा नही करनी चाहिए ।

वस्तु स्थिति ऐसी है कि ससार मे सभी प्राणियो की भावना सुख प्राप्ति की है । सुख प्राप्ति की भावना होते हुए भी सुख के कारणभूत अहिसा धर्म की अवहेलना करते है, कैसी आश्चर्यजनक बात है ?

अहिसा का सर्वोपरि लक्ष्य है जियो और जीने दो, परन्तु वास्तविकता यह है कि हम न स्वय जीते हैं और न दूसरो को जीने देते हे । स्वय भी दुखी हैं और दूसरो को भी दु खी कर रहे है हम स्वय दुखी क्यो हैं ? समाधान निम्न प्रकार है-

एक माली ने गमले मे चिनार का पौधा लगाया, वह लगातार दो वर्ष लगा रहा । किन्तु बढा केवल $1\frac{1}{2}$ बालिस्त । देखने वालो को बडा अचरज हुआ, सोचने लगे, क्या कारण है ? कि यह वृक्ष नही बढ रहा है । छानबीन करने पर पता चला, नीचे उसकी जो जड़े फैलती थी, उनमें से अधिकाश माली काट देता था, इसीलिए वृक्ष बढने नहा पाता था । ठीक यही दशा हमारी है । हमने धर्म का पौधा जीवन मे लगाया किन्तु वह पनप नही रहा है । हम स्वयं उसकी जड़ो को खोखला कर रहे हे । उसकी मूल जड है-अहिसा धर्म, राग-द्वेष का अभाव, सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भावना, हम जीवन मे इन्हे पनपने नही देते । अत धर्म का वृक्ष बढने नहीं पाता है । फलस्वरूप दु:खी हैं ।

वर्तमान युग मे विज्ञान ने हमें कितनी सुविधाये प्रदान की है, जिसका कहीं अन्त नहीं है । सुविधा सुविधा है, सुख नही है । सुविधा और सुख मे मौलिक अन्तर है । सुख आत्मा की वस्तु है, सुविधा शरीरगत है । हमने सुविधाओ को सुख मान लिया है, इसीलिए हम दु:खी हैं ।

आज समाज और देश एक भयानक चारित्रिक सकट के दौर से गुजर रहा है । आजादी मिलने के बाद भारत मे आम चारित्र मे जो गिरावट आई है, उसने सभी नैतिक मूल्यो को ध्वस्त

कर दिया है । इसका स्वाभाविक दुष्परिणाम है कि देश निरन्तर रसातल में जा रहा है और हर व्यक्ति निहित स्वार्थों के दलदल में गहरा उतर चुका है ।

अहिसा धर्म के पालन से ही चरित्र निर्माण होता है । सुख-शान्ति आती है । उसी राष्ट्र मे सुख-शान्ति रहती है, जो अहिसा का मार्ग अपनाता है ।

यदि पाँचो इन्द्रयो मे से किसी एक इन्द्रिय मे भी विकार हो जाये तो उस मनुष्य की बुद्धि व बल-शक्ति वैसे ही क्षीण हो जाती है जैसे छेद हो जाने पर कलश मे से पानी निकल जाता है ।

मनुष्य को मन सयम, वाक्-सयम और काय संयम का पालन करना ही चाहिए । मन सयम से इन्द्रिय-निरोध होता है । वाकय-सयम से मिथ्या-भाषण दोष, निन्दा-निरोध तथा काय-सयम से असन्मार्ग-गमिता की निवृत्ति होती है ।

प्रमाद छोडकर सावधानीपूर्वक चलना फिरना, उठना, बैठना भी सयम है । चौराहे की लालबत्ती सयम को सिखाती है । जो उसकी उपेक्षा करते हैं वह जीवन को भी खतरे मे डाल देते है ।

क्रोध, मान, माया, लोभ ये ४ कषाय, मार्ग विरुद्ध भक्त गाथा स्त्री कथा, देश कथा और राजकथा ये ४ विकथाएँ, निद्रा, प्रणय (यह मेरा है इस प्रकार का ग्रह अथवा अभिनिवेश) और ५ इन्द्रियाँ ये सब मिलकर १५ प्रमाद होते है । जहाँ प्रमाद हैं, वहाँ निश्चित रूपेण हिंसा का पाप लगता है । अत इन्हे रोककर पापरूपी अन्धकार के नाश करने के लिए सूर्य की प्रभा के समान सर्वजीव कल्याणकारिणी अहिसा का पालन करना चाहिए ।

चार कषायो से युक्त आत्मा हिसक है । द्रव्य और भावरूप प्राण हिस्य कहलाते हैं । द्रव्य भावरूप प्राणो का वियोग करना हिसा है और पाप कर्मो का बन्ध हिसा का फल है । पुद्गलात्मक इन्द्रिय, बल और आयु को द्रव्यप्राण कहते है और चैतन्यात्मक इन्द्रियादिक को भावप्राण कहते हैं ।

अहिसा धर्म के पालन करने वालो को घरेलू सम्बन्धी सभी कार्य प्रमाद छोड़कर यत्नाचारपूर्वक देखभाल कर करने चाहिए, जिससे किसी भी जीव की हिसा न हो ।

दूसरे प्राणधारियो के साथ हमे वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा व्यवहार हम अपने प्रति उनसे चाहते हैं । उक्तं च-

''आत्मन प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।''

उन्मत्त ससार के काले कारनामो पर दृष्टिपात करे तो दिल दहल उठता है । इसका मूल कारण विश्व के समस्त देशो में मानसिक अनुदारता और पाशविक असहिष्णुता का नग्न तांडव नृत्य है । आये दिन हिन्दू और मुसलमानो के जान लेवा झगड़े और लड़ाइयाँ होती रहती है । कट्टर मुसलमान हिन्दुओ की हस्ती मिटा देने की और अनुदार हिन्दू मुसलमानों को नेस्तनाबूद कर देने की दिली ख्वाहिश रखते हैं और इस प्रकार दोनों ही जातियाँ अपने संकुचित, कट्टर, एवं अनुदार दृष्टिकोण द्वारा अपने ही मान्य धर्मशास्त्रों का गला घोटते रहते है । भिन्न-भिन्न जातियों के

महापुरुषो का धर्म यद्यपि संसार के समस्त मानवो के प्रति मित्रतापूर्ण उदार व्यवहार करने की शिक्षा देता है, किन्तु होता बिल्कुल इससे विपरीत ही है । प्राय· यही विचार कर मानव-समाज का अधिकाश भाग एक-दूसरे के कट्टर शत्रु बने हुए हैं और एक-दूसरे का प्राणो का अपहरण करने तक पर तुले हुए हैं । विश्व में सर्वत्र हिसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है । एक जाति दूसरी जाति से, एक देश दूसरे देश से, एक पार्टी दूसरी पार्टी से, एक भाई दूसरे भाई से, प्राय इसलिए लड़ता है कि उससे भिन्न जाति, देश, पार्टी या भाई के विचार भिन्न हैं और उसके अनुकूल नहीं हैं । जरा-सी विचार-विभिन्नता के कारण हजारो मनुष्य गोलियों से उड़ा दिये जाते हैं । दैनिक समाचारपत्रों के प्रिय पाठकों से यह भयावह स्थिति छिपी नहीं है, उन्हीं के लिए जैन धर्म का सदेश है कि-

''आत्मन प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।''

जैन धर्म का अहिसावाद सभी जीवो को मैत्री का सन्देश दे रहा है । ''सत्त्वेषु मैत्री'' या 'मित्ती मे सव्व भुएसु'' अर्थात् सब जीवों के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए । जब मैत्री इतनी व्यापक हो तो शत्रुता कहाँ रहेगी, किसके साथ वैर होगा ? प्राणी तंत्र की रक्षा का यह अहिसा दर्शन मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और सूक्ष्मातिसूक्ष्म कीडे-मकोडो तक तथा पांच प्रकार के एकेन्द्रीय स्थावर जीवो की रक्षा तक फैला हुआ है । सभी जीवो मे हमारे समान आत्मा है । मैत्री-सम्बन्ध रखने के लिए, मैत्री बढाने के लिए, राजदूत को भेजा जाता है, दूतावास स्तर पर सम्बन्ध गाढे व गहरे बनाये जाते है, जब कभी परस्पर किसी बात पर मतभेद होता है, तो सभी देश इसी दूतावास-स्तर पर वार्ता द्वारा उसे दूर कर लेते हैं । अमेरिका और भारत मे परस्पर मतभेद उभरे । अमेरिका ने तत्काल अपने उपमन्त्री महोदय को भारत भेजा । परस्पर वार्ता हुई और मतभेदो मे कमी आई । अभी हमारे प्रधानमत्री श्री नरसिहराव अमेरिका जा रहे हैं और भारत का दृष्टिकोण अमेरिका के समक्ष स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करेगे । इसी तरह भारत के अपने पडोसी देशों के साथ जब कभी कोई मतभेद होता है तो उसे मैत्री भाव से मैत्रीपूर्ण वातावरण में दूर कर लिया जाता है । यदि इसी प्रकार की मैत्री भावना को बनाये रखा जाये, एक सम्मानजन्य और समताजन्य वातावरण को सदैव स्थापित रखे तो वस्तुत ससार के सभी देशो मे शान्तिपूर्वक सम्बन्धो का विकास हो और उन्हें मजबूती मिले । परमपूज्य आचार्य श्री उमास्वामी महाराज ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' (५/२१) में कहा है- 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' अर्थात् जीवों का परस्पर उपकार । जैन सिद्धान्त का यह सूत्र अखिल विश्व को शान्ति एव सह अस्तित्व की प्रबल प्रेरणा देता है । मैत्री, उपकार या सह-अस्तित्व के आदर्श खोखले या अव्यावहारिक नहीं है, इनकी व्यावहारिकता असदिग्ध है । राजनीतिक स्तर पर राष्ट्रसघ की स्थापना (१९४५) का प्रमुख उद्देश्य यही था । पं श्री जवाहरलाल नेहरू ने वाण्डुंग सम्मेलन (१९५४) मे सह-अस्तित्व की बात कहकर जो पंचशील के सिद्धान्त स्थापित किये थे, उनके पीछे क्या जैन धर्म की अहिसा, मैत्री व 'परस्परोपग्रहो जीवानां' का महान् आदर्श काम नहीं कर रहा था ? गुट-निरपेक्ष राष्ट्रो के कर्णधारो श्री पं जवाहरलाल नेहरू, मिस्र के राष्ट्रपति कर्नल नासिर, यूगोसलावाकिया के राष्ट्रपति मार्शल टिटोने मैत्री और सह-अस्तित्व को बढ़ावा देने के लिए इस आदर्श गुट को स्थापित किया था और हम अनुभव करते हैं कि भारत की यह गुट-निरपेक्ष नीत बहुत सफल है । इसका आधार समानता के स्तर पर पूर्ण मैत्री भाव है ।

हिंसा के सभी प्रकारों-रूपों का विनाश जैन सिद्धान्त का सर्वोपरि मुख्य लक्ष्य है । मानव सबसे बड़ा हत्यारा है । इसी ने नागासाकी और हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराकर लाखों मनुष्यों का जीवन काल कवलित कर दिया था और असंख्य पशु-पक्षियों और असंख्य कीड़े-मकोड़ों को मौत की नींद में सुला दिया था ।

अहिसा की यह दिव्य शक्ति है जिसका श्री महात्मा गांधी ने राजनीति में क्रियात्मक प्रयोग करके अग्रेजो के छक्के छुडा दिये और भारत को स्वतंत्र कराया, फिर भी प्रत्यक्ष देखने में आ रहा है कि शस्त्रीकरण की होड लगी है । प्रत्येक देश सैनिक शक्ति जुटाने में लगा है, अरबों-खरबों रु गोलाबारूद, घोर घातक अस्त्र, अगुबम, हाइड्रोजन बम, राकेट बम आदि बनाने में पानी की तरह बहाया जा रहा है । मानव जिस डाल पर बैठा है, स्वयं उसी को काट रहा है। हम अपनी मौत अपने आप बुला रहे हैं ।

यदि सब देश ठण्डे मन से जैन धर्म की अहिंसा पर विचार करें और उसे अपने जीवन में ढाले, उस पर अमल करें तो विश्व में अशान्ति के और शीत युद्ध के बादल छट सकते हैं । याद रखो-

अहिंसा जीवन है और हिंसा मृत्यु है ।

हम कहते हैं कि प्रदूषण पर्यावरण में है, कभी जल-पर्यावरण की बात कही जाती है, कभी वायु के प्रदूषण की चर्चा की जाती है, यह सब तो है ही और इसका जिम्मेदार भी मनुष्य है, उसकी स्वार्थ भरी दृष्टि है । बागों, उपवनों, वनो का कटाव कितना घातक सिद्ध हुआ है यह किसी से छिपा नहीं, तभी मनुष्य की बुद्धि ठिकाने आई और उसने वृक्षारोपण या वन-महोत्सव का कार्य शुरू किया । परन्तु इससे भी अधिक घातक है विचारों का प्रदूषण विचारों में प्रदूषण के कारण हम दूसरे की निन्दा करते हैं, उनकी अवहेलना करते हैं, यदि जैन सिद्धान्त के अनेकान्तवाद पर पूर्ण दृष्टि डाली जाए तो यहाँ सभी प्रकार की विचार विभिन्नता समाप्त हो जाती है । यह एक आग्रहरहित दृष्टिकोण है । इसमें दुराग्रह या हठधर्मी के लिए कोई स्थान नहीं । जब भी कोई विकट समस्या उत्पन्न होती है तो उसका प्रमुख कारण हठधर्मी और दुराग्रह या एकान्त दृष्टि होती है । जैन धर्म ने दुराग्रहो को समाप्त करने के लिए एक उदार दृष्टिकोण दिया-'अनेकान्तवाद' । इस दृष्टि से विचारो मे सहिष्णुता का उदय होता है, किसी प्रकार का विचार द्वन्द्व नहीं रहता और संसार को मिलता है शान्ति का आलोक ।

जिसमें एक से अधिक धर्म मौजूद हो, वह अनेकान्त है, क्योंकि जो वस्तु सत् है, वही वस्तु असत् भी है। जो एक है वह अनेक भी है । जो नित्य है, वह अनित्य भी है । इस प्रकार के परस्पर विरोधी युगलों का समुच्चय ही अनेकान्त है । इस प्रकार वस्तु अनेक धर्म वाली स्वयं है ।

विरुद्ध धर्मों का एक जगह पाया जाना कोई नवीन बात नहीं है । यह तो प्रतिदिन सबके अनुभव में आती है । कौन नहीं जानता है कि एक ही मनुष्य में अपने पिता की उपेक्षा 'पुत्रपना' और अपने पुत्र की अपेक्षा 'पितापना' जैसे विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं । एक ही आदमी पिता भी है,

पुत्र भी है, पति भी है, भ्राता भी है, चाचा भी है, ताऊ भी है, मामा भी है, भानजा भी है फिर भी कोई विरोध नही है क्योकि ये सभी धर्म विविध अपेक्षाओ से है । हाँ, विरोध की शंका तब उचित हो सकती है जबकि एक ही दृष्टि से परस्पर विरुद्ध धर्मों का निरूपण किया जाता । अनेकान्त तो विरोध को समाप्त करने वाला है । आचार्य श्री सामन्तभद्र ने भगवान महावीर के उपदेश को सर्वोदय तीर्थ कहा है-सर्वान्तवत् तद्गुणमुख्यकल्पम्, सर्वान्तशून्य च मिथोऽनपेक्षम्, सर्वापदामन्तकर निरन्तम्, सर्वोदय तीर्थमिदं तवैव ।

हे भगवान् महावीर । आपका सर्वोदय तीर्थ सापेक्ष होने से सभी धर्मों को लिए हुए है । इसमे मुख्य और गौण की विवक्षा से कथन है । अत कोई विरोध नही आता किन्तु अन्य वादियो के कथन निरपेक्ष होने से सपूर्णत वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन करने मे असमर्थ हैं । आपका शासन (तत्त्वोपदेश) सर्व आपदाओ को अन्त करने वाला और समस्त ससारी प्राणियो को ससार-समुद्र से पार करने मे समर्थ है, अत सर्वोदय तीर्थ है । सभी जीवो की उन्नति के समान अवसरो की उपलब्धि ही सर्वोदय है ।

सन्मति सूत्र मे अनेकान्त सिद्धान्त की महत्ता को निम्न प्रकार अकित किया है-

जेण विणा लोयस्स विवहारो सव्वहाण णिव्वहइ ।

तस्स भुवणेक्क गुरुणो णमो अणेयतवायस्स ॥

जिसके बिना लोक का व्यवहार भी नही निष्पन्न होता है । उस तीन लोक के अद्वितीय (एकमात्र) गुरु अनेकान्तवाद के लिए नमस्कार है, वस्तुत· जितना भी वचन व्यवहार है वह सब अनेकान्त रूप हे ।

किसी भी वस्तु को उसके अनेक पहलुओ से देखना, जाँचना अथवा उस तरह की देखने की वृत्ति रखकर वैसा व्यवहार करना ही अनेकान्त है । वर्तमान युग मे अनेकान्तवाद को लक्ष्य में न देने पर व्यक्ति का अधिक से अधिक ज्ञान भी सीमित, अपूर्ण एवं एकागी ही है । और है झगड़े की जड । क्योकि वह वस्तु के विराट् स्वरूप का समग्र अनुभव एक साथ नही करता । आज का मानव एकागी ज्ञान प्राप्त कर अपने आपको अह मे डुबो लेता है, जबकि अनेकान्त उसे समन्वय की ही । शिक्षा देता है । यह विरोधपरिहारी सिद्धान्त विरोध परिहार के मार्ग को मजबूत बनाता है और किसी भी पक्ष को नकारता नही है । फलत वस्तु स्वरूप को स्वीकार कर विवादों को बड़ी सरलता से समाप्त किया जा सकता है ।

वस्तुत ससार के विविध विरोधो, विवादो एव लडाई झगडो का प्रबल कारण वस्तु का एकागी ज्ञान हे । इसी से मत असहिष्णुता पैदा होती है और यही है विचारो का प्रदूषण, उसी के फलस्वरूप संसार मे भीषण रक्तपात भी होता है ।

मत असहिष्णुता के कारण विश्व मे जितनी अशान्ति फैली है उतनी अन्य किसी के द्वारा नही । विश्व के धर्मों का इतिहास हत्या, रक्तपात और रक्तपिपासा का इतिहास है । इसी धर्म के नाम पर बडे-बडे युद्ध हुए । अगणित मनुष्यो का रक्तपात हुआ । हजारो गाँव जला दिये गये एवं

लाखों सतियों का सतीत्व अपहरण किया गया । विश्व में कोई ऐसा देश नहीं मिलेगा, जिसमें धर्म के नाम पर भीषण से भीषण अत्याचार न हुआ हो ।

योरोप की इन्क्वीजीशन (Inquisition) नामक धार्मिक अदालत एवं स्टार चैम्बर न्यायालय (Court of star Chamber) की रोंगटे खड़े कर देने वाली घटनाओं को सुनकर कौन ऐसा सहृदय व्यक्ति होगा, जिसका हृदय दहल न उठे । 'रैंक' 'कालर आफ टौरचर' तथा 'स्कैवैंजर्स रौटर' जैसे भयानक एव भीषण यन्त्र जिस सभा मे निरपराध अपराधियों को बलात् अपराध स्वीकार कराने में प्रयुक्त किये जाते थे और तत्पश्चात् व जीते जी दहकते अग्निकुण्ड मे होम दिये जाते थे या कभी-कभी तीक्ष्ण तलवार से उनका काम तमाम कर दिया जाता था । लौण्टी ने लिखा है कि अकेले टौर्कोटिडा नामक राजा ने अपने राज्य शासन के १८ वर्ष के समय मे एक लाख चौदह हजार चार सौ एक कुटम्बों का सर्वनाश किया, कहाँ तक कहा जाय, केवल इन दोनो अदालतों से लगभग एक करोड़ मनुष्यो ने मृत्यु की सजा पाई । यह केवल योरोप का इतिहास है । भारतवर्ष में भी धर्म के नाम पर जो घोर सग्राम और भयकर मानव हिसा व पशुहिंसा हुई, वह भी योरोप से कम नहीं है । इन धर्मों के नाम पर होने वाले भयकर अत्याचारो का वर्णन सुनकर एक दफा तो शैतान की आत्मा भी दहल उठती है । अस्तु-

यह सब लिखने का आशय यही है कि मत सहिष्णुता के अभाव के कारण ही संसार को यह सब दिल दहला देने वाले दृश्य देखने पड़ते हैं ।

वस्तुत धार्मिक सकीर्णता ऐसी ही है, वह मनुष्य के हृदय मे निवास करने वाले सहानुभूति, प्रेम और शान्ति के भव्य विचारो को समूलतः नष्ट कर देती है एव उसके अन्त करण को कुटिलता, निष्ठुरता तथा उद्दण्डता के भावों का निवास स्थान बना देती है । भूतकाल में इसी सम्प्रदायवाद का दौर-दौरा रहा और इसी के फलस्वरूप भीषण से भीषण अत्याचार दुनिया को सहने पडे तथा अब भी जब तक संकीर्णतावाद का अस्तित्व है, विश्व मे शान्ति की आशा करना पाषाण पर अंकुर उगाने के समान है । अत यह कहना अनुचित न होगा कि किसी भी धर्म के आशिक सिद्धान्त पारस्परिक उलझनो को सुलझाने मे समर्थ नहीं है । केवल अपना दृष्टिकोण दूसरों पर नहीं लादना चाहिए बल्कि दूसरे के दृष्टिकोण को भी समझो और तब निर्णय लो ।

अनेकान्त सिद्धान्त की व्यवस्था करने वाला सिद्धान्त स्याद्वाद है, जिस पर जैन दर्शन का महल खडा हुआ है । स्याद्वाद भी दो पदो के परस्पर मेल से बना है-स्यात् और वाद । स्यात् पद अनेकान्त का द्योतक है और वाद उसे कथन करने वाला है । अर्थात् 'स्यात्' (अनेकान्त) को लेकर कथन करने वाला सिद्धान्त स्याद्वाद है । जहाँ एकान्तवाद एक-एक अन्त-धर्म को पड़कर वस्तु का कथन करते हैं, वहाँ स्याद्वाद एक धर्म को मुख्य और अन्य सभी धर्मों को गौण करके अनेकान्त का प्रतिपादन करता है, किसी भी धर्म का वह तिरस्कार नही करता, जबकि एकान्तवाद आग्रही बनकर अन्य सभी धर्मों का तिरस्कार करते हैं और तभी झगड़े जन्म लेते हैं ।

सन्त विनोबा कहते हैं कि "बुद्ध ने मध्यम मार्ग का निर्देश किया, महावीर ने अनेकान्त का अनेकान्त अर्थात् अन्तर की उदारता अस्वार मे अहिसा और विचार मे अनेकान्त, यही जैनधर्म

और जैनदर्शन का सार है । आज हम देखते हैं कि चारो ओर अशान्ति है, हिसा है, लूटपाट है । संसार अणुयुद्ध की ओर-सर्व विनाश की ओर बढ़ रहा है, शीत युद्ध के प्रलयंकारी मेघ छारहे हैं, सघन हो रहे है । लोगो के विचारो मे, मतो मे, दृष्टिकोणो में भारी अन्तर है, इसलिए सघर्ष है, हिंसा और अत्याचारो की दुर्गन्ध से सारा वातावरण प्रदूषण का शिकार है, ऐसे अशान्त और संघर्षाकुल ससार को शान्ति की ओर ले जाने मे महावीर का अनेकान्तवाद बहुत सहायक है । यह हमारी वैचारिक विषमता को नष्ट करके हमे स्वभाव की ओर ले जा सकता है । यह अज्ञानजन्य मताग्रह के अन्धकार को चीरकर सापेक्षभाव या समानता के विचार का आलोक प्रदान कर सकता है । हमे नया ज्ञान एव नई दृष्टि प्रदान कर सकता है ।

अनेकान्त के इस सिद्धान्त को कई दृष्टान्तो से समझा जा सकता है । एक बार कई अन्धे हाथी देखने पहुँचे तो कोई उसकी सूंड पकडकर उसे हाथी कहता, कोई पैर पकडकर उसे ही हाथी समझता । कोई पैर के आधार पर हाथी को खम्भे के समान कहता,कोई हाथी को पेट पकडकर उसे दीवार जैसा कहता, जिसने पूँछ पकड़ी, वह हाथी को रस्सी के समान समझता, लेकिन आँखो वाला इन अन्धो की बातो को, उनके व्यवहार को देख-सुन रहा था, वह बोला, 'तुम हाथी के एक-एक अग को पकडकर ही उसे हाथी समझ बैठे हो, हाथी तो इन सबसे मिलकर बना है, ये सर्व अग मिलकर हाथी को पूर्ण स्वरूप निर्मित करते हैं ।"

अग्नि का स्वभाव जलाना है । देखते-देखते वह सब कुछ जलाकर राख कर देती है, मगर वही अग्नि हमारा भोजन तैयार करती है, पेट का भोजन पचाती है, बडवाग्नि समुद्र के जल को जलाती है, कमरे को गर्म रखती है, चोट की सिकाई की जाने पर दवा का काम करती है । इस प्रकार प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है ।

अनेकान्त का सिद्धान्त विचारो मे विरोध नहीं, समता प्रकट करता है । इस सिद्धान्त को 'स्याद्वाद' की भाषा मे व्यक्त किया जा सकता है ।

और उदाहरण लीजिए, एक स्त्री दूध बिलौती है, दोनो हाथों में पकड़ी हुई रस्सी को बारी-बारी से आगे-पीछे खींचकर वह मथानी चलाती है । वह एक हाथ की रस्सी खींचने पर दूसरे हाथ की रस्सी को ढीला देती है, यही सापेक्षता है । ऐसा करने पर नवनीत की प्राप्ति हो जाती है ।

अनेकान्त दृष्टि सभी प्रकार के विरोधो को नष्ट करके समदृष्टि का प्रतिपादन करती है । सत्य उसी समय असत्य नजर आता है, जब उस दृष्टिकोण को या अपेक्षा को भुला दिया जाता है जिस दृष्टिकोण से वह कहा गया है । विवाद-संघर्षों का बीज-वपन यहीं होता है । अनेकान्त दृष्टि मताग्रह को नष्ट कर अनाग्रह दृष्टि को प्रकट करती है । उक्तं च,

"सर्वथैकान्त प्रतिक्षेपलक्षणोऽनेकान्त·", एकान्तवाद का निरसन करके अपेक्षाओं द्वारा वस्तु तत्त्व के स्वरूप का निर्धारण करना अनेकान्तवाद है । सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सभी प्रकार के भेद-भाव को, विषमता को, संघर्ष को नष्ट करने का उपाय

अनेकान्त दृष्टि में खोजा जा सकता है। इसमे लोकहित और लोकसंग्रह की भावना सन्निहित है। यहाँ समन्वयवाद के द्वार खुलते है। हम अपने ही दृष्टिकोण के सम्मान के साथ दूसरे के दृष्टिकोणों को उदारभाव से समझकर उसका भी आदर करना सीखते हैं। संघर्षों का, युद्धों का मूल है दुराग्रह। आज हमे दुराग्रही और एकांगी नहीं बनना चाहिए, विचारों में निष्पक्षता और उदारता परम आवश्यक है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि, विश्वशान्ति के लिए यह सर्वोदयी सिद्धान्त रामबाण सिद्ध हो सकता है और सिद्ध हो सकती है एक अव्यर्थ-अचूक औषधि, व्यावहारिक रूप मे अनेकान्त का सिद्धान्त विश्वशान्ति के क्षेत्र में तीन प्रकार से योग दे सकता है-

(१) वैचारिक संघर्षों का निराकरण।

(२) वैचारिक समन्वय। सत्य विषेयक व्यापक दृष्टि।

(३) वैचारिक उदारता।

मनुष्य अहवादी है, वह अपने व्यक्तित्व और अपने विचार को जरा भी ठेस पहुँचने नहीं देता, उन्हे ठेस लगते ही वह अपना अलग अखाड़ा या सम्प्रदाय बना लेता है। कांग्रेस और जनता दल के पुन पुन· विभाजन आपके सामने ही उदाहरण पेश कर रहे हैं। वस्तुतः ईर्ष्या-द्वेष, यशोलिप्सा, मतागृह, विचार-भेद, अपमान आदि के कारण वर्ग या सम्प्रदाय बनते-बिगड़ते हैं। सामाजिक स्तर पर, पारिवारिक क्षेत्र मे, अनेक संघर्षों का मूल विचार-संघर्ष है। सास-बहू के झगडो की जड भी मताग्रह ही है, अनुदार भावना है। बहू को तरह-तरह की यातनाएँ देकर उससे, उसके मायके वालों से अधिक धन-दहेज लूटना, परिग्रह संचय और हिंसा तक ले जाता है। मेहंदी लगे हाथो वाली नव-वधू को आत्मदाह करना पडता है या उसे ससुराल वाले स्वयं ही जला डालते हैं या मार डालते हैं। नतीजा यह होता है शासन द्वारा भीषणतम दण्ड भोगना पडता है। इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र मे जो लूट-खसोट मची है, जो आपा-धापी और परिग्रह-प्रवृत्ति देखने को मिलती है। धन लिप्सा के कारण जो आर्थिक सघर्ष देखने को मिलते हैं, वहाँ भी अनेकान्त दृष्टि से काम लेकर उन आर्थिक समस्याओ को सुलझाया जा सकता है। विकसित और विकासशील देशो मे अर्थ-भेद बढ़ता जाता है और उससे देश-समाज की आर्थिक प्रगति मे बाधा पड़ती है, समाज को महगाई से अजगर से सामना करना होता है, हम चाहे तो अपनी आर्थिक प्रगति को निर्बाध रूप से बढाने के लिए अनेकान्त दृष्टि को अपना सकते है। महावीर सर्वोदय तीर्थ है, उनके महत्त्वों, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का अनुगमन करते हुए अनेकान्तवाद और स्याद्वाद को अपनाकर हम विश्व शान्ति में योग दे सकते हैं। आर्थिक क्षेत्र में जैसे जैन धर्म एवं जैन दर्शन का अपरिग्रह मानवीय एकता का महान् सिद्धान्त है, वैसे ही अनेकान्त मानवीय एकता का महान् सिद्धान्त है। विश्व की समस्याओं का समाधान इस सिद्धान्त में खोजा जा सकता है।

महाकवि दिनकर ने अपने ग्रन्थ 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है-इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनेकान्त का अनुसन्धान भारत की अहिंसा-साधना का चरम उत्कर्ष है और सारा संसार इसे जितना ही शीघ्र अपनायेगा, विश्व में शान्ति भी उतनी ही शीघ्र स्थापित होगी।

जैन धर्म और जैन दर्शन ने हमें अहिसा और अनेकान्त द्वारा सहिष्णुता का राजमार्ग दर्शाया, जिस पर चलकर सभी अपनी उन्नति प्रगति करने के अधिकारी हैं । सबको समान रूप से जीवित रहने का अधिकार है, यही 'सह-अस्तित्व' का सिद्धान्त है । अनेकान्त दृष्टि मे सहिष्णुता और सह-अस्तित्व के परम उदार भाव गर्भित हैं । मेरा सबके प्रति मैत्री भाव है, किसी के प्रति भी मेरा शत्रुभाव नही । अनेकान्त को जीवन मे चरितार्थ करने की अपरिहार्य आवश्यकता है ।

अपरिग्रहवाद

परिग्रह का निरुक्ति सिद्ध अर्थ है ''परि-समन्तात् गृह्यते/बध्यते प्राणी अनेन इति परिग्रह:, ''जिसके द्वारा प्राणी चारो ओर से पकडा जाता है, जकडन मे आता है, उसे परिग्रह कहते है'' व्यावहारिक दृष्टि से बाह्य वस्तुओ को आम लोग परिग्रह मानते है । उन्हे त्यागने वाला अपरिग्रही की कोटि मे आ जाता हे, परन्तु भगवान् महावीर की पैनी दृष्टि बहुत गहराई तक पहुँचती है, मूल को पकडती है ओर मूल कारणो की नूतन दिशा देती है ।

आचार्य श्री उमास्वामी गहाराज तत्त्वार्थ सूत्र के सातवे अध्याय मे परिग्रह का लक्षण कहते है-''मूर्च्छा परिग्रह '' अर्थात् ''मूर्च्छा परिग्रह हे,'' श्री पूज्यपाद स्वामी मूर्च्छा का लक्षण बतलाते है-''बाह्याना गोमहि षमणिमुक्ताफलादीना चेतनाचेतनानामाभ्यन्तराणा च रागादीनामुपधीना सरक्षणार्जन सस्कारादिलक्षणाव्यावृत्तिर्मूर्च्छा'', अर्थात् ''गाय, भैस, मणि और मोती आदि चेतन अचेतन बाह्य उपाधि का तथा रागादिरूप आभ्यन्तर उपाधि का सरक्षण, अर्जन, और सस्कार आदि रूप व्यापार ही मूर्च्छा हे ।'' बाह्य परिग्रह के न रहने पर भी 'यह मेरा है' ऐसे संकल्प वाला पुरुष परिग्रह रहित ही होता है । मब दोष परिग्रह मूलक ही होते है । 'यह मेरा है' इस प्राकर के सकल्प के होने पर सरक्षण आदि रूप भाव होते हैं ।

वस्तुत वस्तु परिग्रह नही, मूर्च्छा ही परिग्रह है । वस्तु तो अपने स्वरूप मे उपस्थित है, वह परिग्रह और अपरिग्रह क्या ? उससे सम्बद्ध हमारी आमक्ति ममता ही परिग्रह है ।

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहवाद आत्मा का स्व-स्वरूप है, जितने अश मे इनकी प्राप्ति होगी, जीव उतने ही अशो मे सुख, शान्ति, सन्तोष, आनन्द और अनाकुलता का अनुभव करता है ।

यदि परिग्रह राचय सुख-समृद्धि का द्योतक होता तो आचार्य श्री उमास्वामी स्वर्णसुख के निरूपण मे 'गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतोहीना ' यह क्यो लिखते ? अर्थात् गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा ऊपर ऊपर के देवहीन हैं । लोभ कषाय के उदय से विषयो के सग को परिग्रह कहते हैं । वह ऊपर के देवो मे क्रमश घटता चला जाता है । परन्तु इसके विपरीत ऊपर-ऊपर देवो के सुखादि वृद्धिगत होते जाते है । यथा-''स्थिति प्रभाव सुख द्युति लेश्याविशुद्धीन्द्रियावधि विषयतोऽधिका '' अर्थात् स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्याविशुद्धि भाव विशुद्धि इन्द्रिय विषय और अवधि विषय इन सबकी अपेक्षा ऊपर ऊपर के देव उत्तरोत्तर अधिक अधिक हैं । अर्थात् ऊपर ऊपर के देवो मे परिग्रह कमती-कमती होता है और पुण्यातिशय अधिक-अधिक । इससे पता चलता है कि बाह्य परिग्रह का सचय पुण्य का फल न होकर मूर्च्छा का फल है । ऊपर ऊपर

मूर्च्छा न्यून होती है जो उनके पूर्वभव के संस्कार का फल है । इसलिए परिग्रह भी न्यून-न्यून होता है ।

आत्मा का स्वरूप अकिचन है, 'ममेदं' भाव का सर्वथा त्याग करने से ही अकिंचनत्व की प्राप्ति होती है । अकिचनत्व की प्राप्ति के लिए एकत्वानुप्रेक्षा, अन्यत्वानुप्रेक्षा और अशुचि-अनुप्रेक्षा का पुन पुन चिन्तन-मनन परम आवश्यक है, तभी 'ममेदं' का संस्कार नष्ट होता है । अर्थात् जन्म, जरा और मरण की आवृत्ति रूप महादुख का अनुभव करने के लिए अकेला ही मैं हूँ, न कोई मेरा स्व है और न पर है, अकेला ही मैं जन्मता हूँ और अकेला ही मरता हूँ । मेरा कोई भी स्वजन या परजन व्याधि, जरा और मरण आदि दुखो को दूर नहीं करता, बन्धुजन और मित्र श्मशान से आगे नही जाते । धर्म ही मेरा कभी साथ न छोडने वाला सदा काल सहायक है । इस प्रकार चिन्तवन करना एकत्वानुप्रेक्षा है । इस प्रकार चिन्तवन करने वाले इस जीव के स्वजनों मे प्रीति का अनुबन्ध नही होता और परजनो मे द्वेष का अनुभन्ध नहीं होता । शरीर से अन्यत्व का चिन्तन करना अन्यत्वानुप्रेक्षा है । इन सभी अनुप्रेक्षाओ का स्वरूप सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए ।

मनुष्य का सबसे अधिक राग अपने शरीर से होता है । स्त्री पुत्र तथा मकान आदि वैभव से जो राग है वह शरीर को आराम पहुँचाने वाले होने से शरीर मूलक ही होता है । यह शरीर पुद्गलरूप जड पदार्थो से निर्मित होने के कारण स्वय गति रहित है किन्तु शरीर मे स्थित जीव के द्वारा गतिशील होता हे । हे आत्मन् ! तू चेतन द्रव्य है और शरीर अचेतन जड़ द्रव्य है । यह शरीर मलमूत्र से युक्त होने के कारण अत्यन्त घृणित है, दुर्गन्धित है, गलनरूप होने से विनस्वर है और भोगाकाक्षाओ का पूरक न होने से सन्ताप उत्पन्न करने वाला है । अत· इसे अपना समझना सर्वथा व्यर्थ है । यह तो रही सैद्धातिक चर्चा । जरा इसे व्यावहारिक जीवन में भी तो विचार कर देखे ।

वर्तमान युग भौतिक युग है । भोग विलास की दल दल मे आपादमस्तक डूबकर आज का मानव कराह रहा है । विज्ञानद्वारा बाह्य सुख-सुविधाओ के साधन उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढ़ते जा रहे है । जैसे वर्षा ऋतु मे पतगो की बढवारी होती है । प्रतिदिन तार, बेतार, रेडियो, टेलीविजन, टेलीग्राम, सिनेमा, बिजली आदि के नये नये आविष्कार हो रहे हैं । भू सम्बन्धी, आकाश सम्बन्धी, समुद्र सम्बन्धी, मशीनरी सबधी आदि-आदि सर्वत्रनाना आविष्कारों के चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहे हैं । विचार करो, इन असंख्य साधनो के बीच रहने वाला मानव क्या सुखी है ? कथमपि नहीं । क्योंकि सुख सुविधा के साधनो की प्राप्ति हेतु ससार में होड़ मची हुई है, परिग्रह संचय की तृष्णा आकाश का स्पर्श कर रही है । अन्याय, अत्याचार और दुराचार का खुला प्रदर्शन हो रहा है । मानव दानव बना जा रहा है । मोह ग्रस्त होने के कारण कर्त्तव्याकर्त्तव्य वा विवेक नष्ट हो चुका है ।

वस्तुत· लोभ पाप का बाप है । जिस प्रकार अग्नि की संगति से लोहा पिटता है, उसी प्रकार लोभ की सगति से यह आत्मा पिट रहा है । आत्मा के ऊपर कभी नरक के हंटर, कभी तिर्यंच पर्याय की त्रास, कभी देवगति की वासना और कभी मनुष्यगति में लालसा रूपी धन निरन्तर

पड़ते जा रहे हैं । जिस प्रकार अग्नि की सगति करने वाले लौह को शीतलता नहीं मिलती, उसी प्रकार लोभ की सगति के कारण यह आत्मा रातदिन निरन्तर पिट रहा है । अशुचिता का मूल लोभ है । खाद्य पदार्थों मे मिलावट, दूध मे पानी की मिलावट, सीमेन्ट मे मिट्टी की मिलावट और प्रत्येक क्षेत्र मे मिलावट की प्रवृत्ति बढने का मूल कारण लोभ ही है । लोभ की अजुलि मे सातों समुद्र के रत्न भी थोडे हैं । सचमुच सम्पूर्ण आकुलताओ का मूल लोभ है, लोभ के विषय मे कहा है-

नख बिना कटा देखै, शीश भारी जटा देखै, योगी कनफटा देखै, क्षार लगाये तन मे ।

मौनी अनमोल देखै, करत किलोल देखै, सेवड़ा सिर छोड़ देखै, बन खण्डी बन मे ॥

वीर देखै सूर देखै, गुणी देखै धनी देखै, माया के भरपूर देखै, भूल रहे धन मे,

आदि–अन्त के सुखी देखै, जन्म हू के दुखी देखै, पर ऐसे न देखै, जिनके लोभ नाहीं मन मे ॥

यदि मोह-ममता नहीं छूटी, तो शरीर धोने से क्या लाभ ? मदिरा से भरा हुआ घट यदि बाहर से धो दिया गया, तो शुद्ध नही माना जाता ।

गृहस्थी की तो चर्चा छोडो अब तो अनगार भी शानदार आगारो मे राजाओं की तरह जीवन सुख-सुविधाओ से भरपूर निर्मित कर रहे है । फिर भी अपने को अनगार बड़ी शान से कहते हैं । यह कलियुग की महिमा है ।

अनावश्यक धन, धान्य, स्त्री, परिवार से मूर्च्छा भाव नही रखना, ममत्व त्यागना, मर्यादाकृत परिग्रह परिमाणाणुव्रत है और दश प्रकार का बाह्य परिग्रह और चौदह प्रकार का अन्तरग परिग्रह का सर्वथा त्याग करना परिग्रहत्याग महाव्रत है ।

यदि रत्न चाहिए तो ऐसे आत्मा के रत्नों का संचय करो जिनकी कान्ति कभी फीकी न पडे । सच्चे आत्मा के जौहरी बनो । ककड-पत्थरो का सचय करते बहुत दिन बीत गये, पचेन्द्रिय विषय रूप विषवृक्ष का सिचन करते हुए, बहुत काल से अनन्त जन्म-मरण करते हुए अनादि काल से ससार मे घम रहे हो । अब तो मोहनिद्रा को छोडो । अपने अन्त करण रूपी चित्रपट को स्वच्छ करो, धूल धूसरित गन्दे कागज पर चित्र अकित नहीं किये जा सकते हैं उसी प्रकार आशा-तृष्णा से विकृत चित्तभूमि पर सद्गुणो का प्रवेश नही हो सकता ।

आज ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह भाव प्राय उड सा गया है । गृहवासियों की क्या चर्चा, आश्रमवासियो मे भी इनका पूर्ण सद्भाव पाना दुर्लभ प्राय: हो गया है । उक्तं च-

जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ।

मूल दुहून को कहयो, जाग सके तो जाग ॥

अध्यात्म

भारत प्रारम्भ से ही अध्यात्म प्रधान देश रहा है । यहाँ के अध्यात्म प्रेमी मुमुक्षु धर्म बन्धुओं ने हमेशा से ही आत्म-चिन्तन पर ध्यान केन्द्रित किया । क्योकि यह मानव-जीवन आत्म-मूल्यो के

साक्षात्कार के लिए, इन मूल्यो की रक्षा और बढ़ोत्तरी के लिए मिला है । स्वय अपने ही कल्याण और व्यक्तित्व के विकास के लिए मिला है । मनुष्य में देवता की दिव्यताएँ भी साकार हो सकती है और दानव की दानवताएँ भी । मानव महावीर, बुद्ध, गाधी भी हो सकता है और नेपोलियन, हिटलर, चंगेजखान भी ।

क्या कभी इस जीव ने यह भी विचारा है कि "मैं किस वश का हूँ ।" आप तीर्थंकरों के, सिद्धो के वश मे हुए है । इसके लिए भगवान को धन्यवाद दीजिए । यह सोचकर कि मैं वह हूँ, जिनकी परम्परा में मेरे कोई दादा, परदादा, पूर्वज सिद्ध हुए हैं । इसलिए यह कहिये कि मैं सिद्धो की बस्ती मे रहने वाला हूँ, सिद्धों के वंश का हूँ । मनुष्य होना ही सर्वोत्तम उपलब्धि है । मानव जीवन द्वारा ही सिद्धत्व की प्राप्ति होती है । मुझे आत्मा और शरीर के स्वरूप का चिन्तन-मनन करके अपने आत्म-स्वरूप मे रमण करना चाहिए । आइये, आत्मा और शरीर के स्वरूप का चिन्तन- मनन करे ।

शरीर अलग है, मै अलग हूँ । दोनो द्रव्य अलग-अलग हैं । इस जीव को अद्यावधि इनका भेदज्ञान नही हुआ और भेद विज्ञान न होने के कारण परद्रव्य को अपना मानकर राग द्वेष की दलदल मे फँसा रहा, कहा भी है-

सब व्यवहार क्रिया का ज्ञान, भयो अनन्ती बार प्रधान ।

निपट कठिन अपनी पहचान, ताको पावत होत कल्याण ।।

सासारिक व्यवहार क्रिया के ज्ञान की अनन्तीबार कुशलता प्राप्त की । अपनी ही पहचान न हुई ।

प भूधरदासजी बारह भावना में यही कह रहे हैं-

धन कन कचन राजसुख, सबहि सुलभ कर जान ।

दुर्लभ है ससार में, एक जथारथ ज्ञान ।।

अर्थात् ससार में यदि कोई वस्तु दुर्लभ है तो वह है सच्चा आत्मज्ञान ।

परमपूज्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी समयसार मे कहते हैं-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स विकामभोगबंध कहा,

एयत्तस्सुवलंभो णवरिण सुलहोविहत्तस्स ।। ४ ।।

काम-भोग (पांचो इन्द्रियो) की कथा तो सबको सुलभ है । क्योंकि अनादि काल से उसी को सुना है, उसी का परिचय किया है और उसी का अनुभव किया है । परन्तु निर्मल भेदविज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट दिखाई देने वाला भिन्न आत्मा का जो एकत्व है, वह यद्यपि सदा प्रकट रूप से अन्तरंग मे प्रकाशमान है, तो भी वह कषायों के साथ एक रूप सरीखा हो रहा है, इसलिए उसका अत्यन्त तिरोभाव हो रहा है-आच्छादित है । इस कारण अपने मे अनात्मज्ञता होने

से न अपने को स्वय भी जाना और दूसरे आत्मा के जानने वालों की संगति सेवा भी नहीं की, इसलिए वह एकत्व न कभी सुनने मे आया, न परिचय मे आया और न कभी अनुभव मे ही आया। यही कारण है कि भिन्न आत्मा के एकत्व की सुलभता नही है।

चैतन्यचमत्कार स्वरूप अपने आत्मा की कथा का न तो स्वयमेव कभी ज्ञान हुआ, और न वह कभी सुनी और न वह कभी परिचय और अनुभव मे ही आई। इस प्रकार आत्मा के एकत्व का पाना सुलभ नहीं है, बड़ा दुर्लभ है।

वस्तुस्थिति यह है कि कामभोगबन्ध की दशा बड़ी कष्टकारिणी है। इस कारण आनन्द-निधान सहज अन्तस्तत्त्व की चर्चा सुनने व इस एकत्व को अनुभवने के लिए पूर्ण पुरुषार्थ हो। ज्ञान से ज्ञान मे ज्ञान ही हो। इस पुन· पुन अभ्यास से निज सहज एकत्व स्वरूप की सुलभता हो जावेगी, और भेद ज्ञान हो जायेगा। भेदज्ञान की अचिन्त्ता महिमा है। कहा भी है-

भेदज्ञानत· सिद्धा., सिद्धा ये किल केचन।

तस्याभावतो बद्धा , बद्धा· ये किलकेचन ॥

अर्थात् जितने भी सिद्ध परमेष्ठी हुए है, वे भेदज्ञान द्वारा ही सिद्ध हुए है, उसी के अभाव से शेष संसारी जीव कर्मबन्धन से बद्ध है।

आत्मज्ञान गुण से रहित जीव सहज ज्ञानमय आत्मपद नही पाते, अत· मोक्षाभिलाषी आत्मा इस सहज ज्ञान मात्र भाव को ग्रहण करे। वस्तुत सहज ज्ञान स्वभाव मे रमने वाले ज्ञानी स्वतत्र सहज आनन्द का अनुभव करते हैं। आत्मपद से अनभिज्ञ अज्ञानी जीव ही कर्मरस विषयक विकल्पो मे रमण करके सदा आकुलता का अनुभव करते हैं। सहज ज्ञानमात्र आत्मपद में रमने, सतुष्ट होने व तृप्त होने पर आत्मा का अनन्त उत्तम आनन्द प्राप्त होता है। आत्मा का सर्वस्व यह स्वय आत्मा है।

प्रत्येक मुमुक्षा आत्मा को पुन· पुन. चिन्तन-मनन करना चाहिए कि मैं अचेतन नहीं हूँ, अन्य द्रव्य रूप नहीं हूँ, मैं ज्ञानमात्र हूँ, अत मैं मात्र ज्ञाता ही रहूँगा। मैं किसी भी परद्रव्य को ग्रहण न करूँगा, ऐसा अपना दृढ निर्णय रखकर परद्रव्यो के विकल्पो से सर्वथामुक्त होकर अपने मे ज्ञानमात्र रहकर आत्मीक अनन्त आनन्द प्राप्त करने का पूर्ण पुरुषार्थ करें। श्री समयसारजी मे आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं-

अहमिक्को खलु सुद्धो दसणणाणमइओ सदारुवी।

णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं पि॥

मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, अरूपी हूँ, सदा दर्शनज्ञानमय हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है।

मुमुक्षु बंधुओं को निरन्तर चिन्तनीय भावना

प्रश्न–

को मैं ? यहाँ कहाँ से आया ? और कौन थल जाता हूँ ।
कौन हितू मेरा ? मै किसको सत हित पंथ लगाता हूँ ॥
इन प्रश्नो का उत्तर जो नर सदा चिन्तवन करता है ।
सो नर 'द्वीप' शीघ्र विधिक्षय कर शिवरमणी करता है ।

उत्तर–

में सतचित आनन्दरूप हूँ, ज्ञाता दृष्टा सिद्ध समान ।
द्रव्य भाव नो कर्म बिना हूँ, अमूर्तिक निर्मल गुण खान ॥
यद्यपि द्रव्यशक्ति से हूँ इम, पै अनादि विधि बध विधान ।
लखचौरासी रग भूमि में, नाचत पर मे आपामान ॥
सद्‌गुरु देव धर्म बिना जग मे, हितू न कोई किसी का जान ।
पुत्रकलत्र मित्र गृह सम्पत्ति, ये मम मोह कल्पना मान ॥
इम विचार निजरूप चितारै, पावे सम्यक बोधि महान् ।
पुनि कर नष्ट अष्ट विधि पावे शीघ्र 'दीप' अविचल निर्वान ॥

अत सभी पाठक बन्धुओं से पुन पुन नम्र निवेदन है कि वे अपने जीवन को अहिसा, अनेकान्त, स्याद्वाद, अपरिग्रहवाद, सहिष्णुता से, जो जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त है, अलंकृत करें और भावना भावे

मैं हूँ चेतन चिद्रूप चिदानन्दरूप, जगत दु.ख कूप, हमे क्या करना अब लिया सिद्ध परमेष्ठी तुम्हारा शरण ॥

भूतपूर्व प्रधानाचार्य
श्री दि जैन गुरुकुल,
हस्तिनापुर (मेरठ) उ प्र

श्रुत पारंगत, विद्याभूषण,
श्रेयांस कुमार जैन, एम ए
सिद्धान्त–न्याय–साहित्यशास्त्री, साहित्यरत्न
किरतपुर (बिजनौर) उ प्र

ढूंढाडी भाषा का एक अचर्चित कवि—अजयराज

डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल

ढूंढाडी भाषा राजस्थानी भाषा की ही एक उपभाषा है । पूर्व जयपुर राज्य ढूंढ़ार प्रदेश का ही एक भाग माना जाता है । इसलिए आमेर एवं जयपुर के राजा को ढूंढ़ार नरेश कहा जाता था । आमेर, सांगानेर, चाकसू, टोडारायसिंह, दौसा एवं मालपुरा के अन्तर्गत आने वाले गांव ढूंढ़ार राज्य की सीमा बनाते थे । यह ढूंढ़ार प्रदेश कभी साहित्य, इतिहास एवं पुरातत्व के लिए प्रसिद्ध था और आज भी इस दृष्टि से समृद्ध माना जाता है । इन नगरों में ढूंढ़ारी भाषा के अनेक कवि, गद्य लेखक, टीकाकार, टव्वा टीकाकार हुए हैं, जिन्होंने इस भाषा में स्वयं साहित्य सृजन करके उसे समृद्ध भाषा बना दिया । इस भाषा के प्रसिद्ध कवियों में ब्रह्म रायमल्ल, दीपचन्द कासलीवाल नेमिचन्द, अजयराज, टोडरमल, जयचन्द छाबड़ा, पं सदासुख जैसों के नाम उल्लेखनीय हैं । इन कवियों ने ढूंढारी गद्य एवं पद्य में अनेक कृतियाँ लिखने का सुअवसर प्राप्त किया और अपने ढूंढ़ारी भाषा प्रेम को प्रदर्शित किया ।

ढूंढ़ारी भाषा के कवियो में अजयराज ऐसे कवि हैं, जिन्होंने बीस से अधिक कृतियाँ निबद्ध करने का गौरव प्राप्त किया । वे ढूंढार प्रदेश की राजधानी आमेर के रहने वाले थे । उनके युग में आमेर अपने चरम वैभव पर था । महाराजा सवाई जयसिंह आमेर के शासक थे, जिन्हें ढूंढ़ार नरेश कहा जाता था । लेकिन जब महाराजा सवाई जयसिंह के स्वप्नों को आमेर साकार नहीं कर सका तो उन्होंने जयपुर नगर को बसा कर उसे राजधानी बनाया और अपने इस ऐतिहासिक कार्य से विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त की ।

अजयराज आमेर रहने में ही सन्तुष्ट थे । जब सारा शासनतन्त्र जयपुर स्थानान्तरित हो गया, वे फिर भी आमेर मे ही रहते रहे और वहीं रहते हुए अपनी लेखनी चलाते रहे । अजयराज खण्डेलवाल जैन थे । पाटनी उनका गोत्र था लेकिन ये अपना नाम का ही अधिक प्रयोग करते थे । अपनी एक रचना आदि चरित्र की प्रशस्ति के अनुसार इनके पूर्वज खण्डेला में रहते थे । खण्डेला से इनके पूर्वज सागानेर आये । सागानेर में कवि के पूर्वजों ने एक मन्दिर का निर्माण करवाया । सांगानेर से आमेर आकर रहने लगे और फिर वहीं के हो गये ।

अजयराज पूजापाठी कवि थे । वे आमेर के सांवलाजी के मन्दिर में प्रतिदिन पूजा करते थे, इसलिए सन् 1739 में इन्होंने नेमिनाथ चौपाई नामक प्रबन्ध काव्य लिखकर भगवान नेमिनाथ के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की-कवि ने नेमिनाथ की भक्ति में निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं-

तामै जिन मन्दिर इक सार, तहाँ विराजै श्री नेमिकुमार ।
स्याम मूर्ति सोभा अति घणी, ताकी ओपमा जाइ न गणी ।
जाकै भाग उदै सुभ होई, करि दरसण हरशै भेंट सोई ।
आवै जावै सरावग घणा, काटे कर्म सबै आपणा ॥ 26 ॥
अजैराज तहां पूज कराई, मन बच तन अति हरष धराई ॥
निति प्रति वंदै ते बारम्बार, तारण तरण कहै भव पार ॥ 262 ॥

अजयराज पाटनी ने सर्वप्रथम संवत् 1781 में चार मित्रो की कथा लिखकर साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया । इसके पश्चात् वे बराबर छोटी-छोटी रचनाये लिखते रहे । सन् 1735 में यशोधर चौपाई नामक एक प्रबन्ध काव्य लिखा । सन् 1739 मे नेमिनाथ चरित्र, जिनजी की रसोई एवं पार्श्वनाथ का सहेला जैसी कृतियो को निबद्ध करने का गौरव प्राप्त किया । जिनजी की रसोई पाक शास्त्र से संबधित रचना है, जिसमे विविध प्रकार के व्यंजनो का वर्णन किया है । भगवान की बाल लीला के वर्णन के साथ, भोजन के पश्चात् वन विहार का वर्णन किया है । पूरा रसोई वर्णन 53 पद्यों में पूर्ण होता है । प्रारम्भ मे कवि ने रचना को निम्न प्रकार प्रारम्भ किया है-

श्री जिनजी की कहूं रसोई, ताको सुणत बहुत सुख होई ।

तुम रूसो मत मोरे चमना, खेलौ बहुविधि घर के अंगना ।

देव अनेक बहोत खिलौने, माता देखि बहुत सुख पावै ।

इसके पश्चात् मिस्सी रोटी का वर्णन हुआ है-

छिमक चणा किया अति भला, हलद मिरच दे घृत मे तला ।

मेसी रोटी अधिक बणाई, आरोगो त्रिभुवतन पति राई ॥ 24 ॥

ऐसा लगता है कि भट्टारकीय युग मे जेन मन्दिरो मे ही भगवान के लिए पकवान बनने लगे थे और पकवान बनने के पश्चात् उनको मूर्ति के सामने रख दिया जाता था । लेकिन समाज के विरोध के कारण भगवान को पकवान खिलाने की भट्टारकीय परम्परा अधिक दिनों तक नहीं चल सकी ।

कवि की एक बसत पूजा भी मिलती है, जो लघु रचना है लेकिन महत्त्वपूर्ण है जो कवि के रंगीले स्वभाव की ओर सकेत करती हे । कवि ने इस रचना की निम्न प्रकार समाप्ति की है-

आबैर सहर सुहावणु रति बसत कू पाय ।

अजैराज करि जोरि के, गावै ही मनबच काय ॥

आदिचरित्र भाषा कवि की अतिम रचना है, जिसे उन्होने सवत् 1797 (सन् 1740) मे समाप्त करने का सौभाग्य प्राप्त किया था । इस रचना का दूसरा नाम आदिपुराण भाषा भी है । यह एक विशालकाय प्रबन्ध काव्य है, जिसके दो भाग हे । प्रथम भाग मे 75 ढाल हैं, जिनकी पद्य संख्या 2900 है । इसका दूसरा भाग सर्गों के अनुसार छन्दोबद्ध हे, जिनमे 2220 पद्य हैं । इस प्रकार पूरा काव्य 5120 छन्दो मे पूर्ण होता है ।

कवि के समय भट्टारको का बहुत प्रभाव था । सभी कवि, लेखक, टीकाकार अपना सम्बन्ध भट्टारको से रखते थे और इनके आशीर्वाद से काव्य रचना किया करते थे । अजयराज के समय आमेर में भट्टारक महेन्द्र कीर्ति का शासन था । कवि ने महेन्द्रकीर्ति के प्रति अपनी कृतज्ञता निम्न प्रकार प्रकट की ।

धर्मवीर विद्या कौ धाम महेन्द्रकीरति नामै भट ताम ।

ता परतापि ग्यांन महि भयौ, भाषा आदि पुराण नु थयो ॥

कवि ने महाराजा सवाई जयसिंह का भी नामोल्लेख किया है, जिनका प्रताप चारों ओर फैला हुआ था-

सवाई जयै स्यद्य तपै दिनेस, ताके पुन्य वृधि होय गनेस ।

अजैराज के पिता का नाम मनीराम था जिसका प्रशस्ति मे निम्न प्रकार उल्लेख हुआ है ।

मनीराम के अजैराज लायक लखण दश पालै लाज ।

आदि चरित्र ढूंढ़ारी भाषा का महत्त्वपूर्ण काव्य है, जिसमें कवि ने आचार्य जिनसेन के आदिपुराण को पूरा ढूढ़ारी भाषा में छन्दोबद्ध किया है । प्रारम्भ में कवि ने सर्गों को ढालों में परिवर्तित किया है । इन ढालों में (1) हो मैं गाऊं मदन कुमार ए (2) जगत गुरु सोभा नौ जी ए (3) बनसत भामा केरो जानी (4) कुवर गुणवतो बुधिवंतो ए (5) चेत सयानों चेतना ए (6) नारद रिषि आयै हो भले (7) भूलौ मन समझानैरै जैसी तत्कालीन प्रचलित ढालों में पद्यों को छन्दोबद्ध किया है । ढालो मे राग परिवर्तित हो जाती है । जिससे गाने वालों में अधिक आकर्षण पैदा होता है ।

आदिचरित्र में पूरी कथा जिनसेन के आदिपुराण के अनुसार चलती है । आदिपुराण संस्कृति का काव्य है, जिसका पठन-पाठन सामान्य पाठकों के समझ से बाहर है । कवि अजयराज ने इस आदिपुराण को ढूंढारी भाषा मे निबद्ध करके पाठको के लिए सरल एवं सरस बना दिया है । राज्याभिषेक का ही एक वर्णन देखिए-

आनन्द भेरि बजाई सार, घरा बारि बहौ मंगलाचार ।

देवागना नृत्य बहो साजि, सुर बेताल मंगल पढ़े गाजि ॥ 951 ॥

कलपवासी सुर जै जै कार, जीवो जैनन्द इम कहै सार ।

आनन्द मडप रचना करी, रतन चूर रंगे अनुसगी ॥ 661 ॥

मणि मै पिरथी सोम अपार, कही–कही मोत्या माल झूमकार ।

मंगल द्रवि संपदा धनी, मंडप आगै सोभा बनी । 671 ॥

इस प्रकार पूरा आदि चरित्र सरल एवं बोलचाल की भाषा मे लिखा हुआ एक प्रबन्ध काव्य है । यह प्रबन्ध काव्य अभी तक अप्रकाशित है, जिसके प्रकाशन की बहुत आवश्यकता है । इसके प्रकाशन से कितने ही नये तथ्य सामने आ सकेगे । भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी इस काव्य का प्रकाशन उत्तम रहेगा और राजस्थानी भाषा विशेषत. ढूंढ़ारी भाषा के विकास एवं स्वरूप की इस काव्य के अध्ययन से विशेष जानकारी मिल सकेगी ।

867, अमृत कलश,
बरकत नगर, किसान मार्ग,
टोंक रोड, जयपुर ।

डॉ कस्तूर चन्द कासलीवाल

प्रथम चारित्र चक्रवर्ती 108 आ. आदिसागरजी अंकलीकर

बा. ब्र. चेलना

संघस्थ श्री १०८ आ. सम्भवसागरजी

संसार विषय कषायों से भरा हुआ है । ऐसी परिस्थिति मे भी आत्म साधना के अग्रदूत बनकर भारतवर्ष विश्व में सदा काल से ऋषि महर्षियों की जन्मभूमि रहा है । यहां पर अनन्त तीर्थंकर महापुरुषों एवं अनन्तानन्त दिगम्बर श्रवण महापुरुषों ने तीर्थंकर देव प्ररूपित वीतराग जिन धर्म की छत्रछाया में अपनी आत्म साधना करके शाश्वत मुक्ति सुख को प्राप्त किया है । उसी अक्षुण्ण-श्रमण परम्परा में अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के बाद उनकी वाणी का अनुगमन करने वाले अनेक ऋषि एवं महान आचार्य हुए हैं । श्रमण संस्कृति की वह अक्षुण्ण परम्परा आज भी बिना किसी बाधा के प्रवाहित हो रही है । ये हमारे सौभाग्य की बात है ।

गौतम स्वामी गणधरादि जबू स्वामी अतिम अनुबद्ध केवली, भद्रबाहु अंतिम श्रुत केवली हुए तदनन्तर गुणधराचार्य, धरसेनाचार्य, पुष्पदंत, भूतबली, कुंदकुद देवाचार्य, उमास्वामी समंतभद्र, पूज्यपाद, अकलंकदेव, विद्यानन्द स्वामी, वीरसेनाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य जयसेनाचार्य आदि अनेक श्रमण ऋषिराज हुए हैं जिन्होंने अपनी ज्ञान वैराग्य शक्ति को व्यक्त कर मोक्ष मार्ग में पदार्पण किया एवं क्षायोपशमिक ज्ञान वैभव से अनेक ग्रन्थो का प्रतिपादन करके ज्योतिर्मय वीर शासन की प्रभावना में लुप्त प्राय: श्रमण सस्कृति दिगम्बर मुनि धर्म के पुन: जन्मदाता परम पूज्य विश्ववद्य चारित्र चक्रवर्ती वीतरागी आचार्य परमेष्ठी श्री आदिसागरजी 'अंकलीकर' हुए हैं । जिनके पुण्य प्रभाव से आज सम्पूर्ण भारतवर्ष मे मुनिधर्म प्रकट हुआ और यत्र-तत्र सर्वत्र दिगम्बर मुनियो आर्यिकाओं, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं के दर्शन व धर्मोपदेश श्रवण आदि का लाभ धर्मपरायण समाज को प्राप्त हो रहा है ।

आचार्य श्री आदिसागरजी 'अकलीकर' श्रमण सूर्य का उदय हुआ था, जो सबके लिए आदर्श बने ।

पूर्व जन्म के और घर के संस्कारों ने श्री शिवगौड़ा को बचपन में ही धर्मानुरागी बना दिया । बचपन से ही आपको आहार एव शुद्ध संस्कारों की शिक्षा प्राप्त होने लगी । आयु की वृद्धि के साथ तेजबल बढ़ने लगा । बाल्यकाल में ही एक सुभट्ट जैसे वीरवर महापुरुष थे । 'होनहार वीरवान के होत चीकने पात' की कहावत को चरितार्थ कर दिया था । किवाड़ों को मुक्कों से तोड़ना तथा कच्चे कद्दू तोड़कर खाकर पचा जाना इत्यादि अनेक बाल क्रीड़ाएँ उनके तेजबल का प्रतीक था जो परिवार को भी आश्चर्यान्वित करता था । आरम्भ से ही पराक्रमी एवं स्वाभिमानी थे । आपने अपने पराक्रम का उपयोग कर्मों के साथ युद्ध करने मे स्पष्ट रूप से प्रयोग किया जिससे अनन्त सुख भूमि सिद्धालय साश्वत शासन प्राप्त होगा जो सारभूत है ।

आप विवाहित होकर भी मोहजाल मे नहीं फँसे तथा सिद्धालय का शासन प्राप्त करने हेतु अपने पराक्रम का निरन्तर उपयोग करते रहे । आपके उदर में घटसर्प था, जिसकी वेदना आप शान्ति से सहते रहे । फिर माता-पिता के स्वर्गवास ने संसार की असारता का ज्ञान कराया । आप एकान्तर, अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास रखते थे । इस तरह आप गृहस्थ होते हुए भी जल में कमल के समान स्वाधीन एवं धर्म में लवलीन रहते थे ।

वैराग्य रूपी उदित सूर्य के समान ४० वर्ष की आयु में श्री भट्टारक स्वामी श्री जिनप्पा से नांदनी ग्राम में स्वाति नक्षत्र की शुभ घड़ी में क्षुल्लक दीक्षा ली थी । आपका आदिसागर नाम रखा गया । संसार शरीर भोगों की क्षणभंगुरता को माना । अतैव वैराग्य की शक्ति का विकास प्रारम्भ क्षुल्लक श्री आदिसागर बन गया । वैराग्य के बढ़ते कदम के साथ उनकी धीरे-धीरे साधना एवं मनोबल बढ़ा । सयम को भी आत्मबल से बढ़ाकर ऐलक पद श्री जिनेन्द्र की साक्षी में तीन महीने के बाद धारण कर ली, उस समय नग्न दिगम्बर साधुओं का अभाव था, पूर्णसाधना करने के लिए नग्न दिगम्बर अवस्था धारण करने का विचार किया ।

आत्म-साधना की अभिवृद्धि रूप तीन-तीन उपवास के बाद आहार करते थे । इसकी साधना की दृढ़ता का अभ्यास हो जाने पर ४७ वर्ष की आयु में कुंथलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर जिनेन्द्र देव की साक्षी में स्वात्मोपलब्धि के लिए मुनि दीक्षा ग्रहण की, यह एक महान आश्चर्य की बात हो गई । क्योंकि कहा है-

काले कलौ चले चित्ते, देह चान्नादि कीटको

एलद्यापि महादचित्रं, जिनरूप धरा नराः ।

आज इस पापमय समय में मनुष्यों के मन चलायमान हो जाते हैं, आज मनुष्य अन्न का कीड़ा बना हुआ है ऐसे कलिकाल मे भी जो आचार्य श्री सात दिन के बाद आहार करते थे, आहार मे भी एक ही वस्तु लेते थे । अपना अधिक समय ध्यान में ही व्यतीत करते थे यह उनका सद्व्यसन था । आपकी भारतीय संस्कृति में अध्यात्म की प्रधानता तीर्थंकरों की परम्परा की परायणता रही ।

श्रमण सस्कृति का परिवर्धन, पुरातत्त्व तीर्थों का विकास, साहित्य निर्माण इत्यादि की बहुत कुछ पूर्ति हुई । सुख सम्पन्नता का राष्ट्र को आपका योगदान रहा ।

विवाद में पड़ना अज्ञान है

१०८ आचार्य श्री सम्भवसागरजी

आचार्य कुदकुद स्वामी कहते हैं कि-

णाणा जीवा णाणाकम्मं णाणाविंह हवे लद्धी ! (नियमसार)
तम्हा वयणविवादं सगपर समराहिं वज्जिजो ॥ १५५ ॥

अर्थात् इस संसार में नाना प्रकार के जीव हैं, नाना प्रकार के उनकी लब्धियाँ हैं अर्थात् कर्मोदय से भिन्न-भिन्न अभिप्राय के प्राणी हैं । अतः स्वपर आत्मा का हित चाहने वालों को निज अभिप्राय से भिन्न विचार वालों से वचन से विवाद में नहीं पड़ना चाहिए । बुद्धिमानों को इसारा काफी है । आज सभी श्रावक-श्रमणों मे पंथभेद-मतभेद-मनभेद के कारण अपनी बातों पर हठी होकर सत्यवचन पर विश्वास न कर धर्मध्यान छोड़कर आर्त-रौद्र ध्यान में पड़ते हैं । ऐसे श्रावक-साधु अधिक हैं । इस युग में आत्मकल्याण की सद् भावना वाले विरले हैं । भले हीरा आदिरत्न थोड़ा है परन्तु उसकी कीमत अधिक है । उसी प्रकार बुद्धिमान-श्रावक-श्रमणों को विवाद में न पड़कर रत्नत्रय मार्ग में उपयोग लगाना चाहिए । आज आदिसागर-शांतिसागर दोनों महान् आचार्य स्वर्ग में हैं । उनको मानने वाले भक्त श्रावक-श्रमणों का विवाद क्यों ? दो आचार्यों की दो परम्परा हैं । जो जिस परम्परा के हैं, वे उस परम्परानुसार अपने गुरु का नाम लेते हैं तो इसमें दूसरे परम्परा वाले का विरोध करना अज्ञानता है । दोनों परम्परा वाले दोनों आचार्यों का नाम लेने से विवाद समाप्त होगा और मैत्री भाव बढ़ेगा । वीरसेन जैसे महान् आचार्य श्री ने भी धवला में जहाँ दो आचार्यों का मत का प्रकरण आया वहां पर दोनों आचार्यों के कथन को सत्य मानने को कहा है ।

उसी प्रकार आप श्रावक-श्रमण विवेकी हैं तो छोटो-बडे का विवाद को छोड़कर दोनों गुरुओं पर श्रद्धा-भक्ति करना हितकारी है । उनको विवाद में लेकर परस्पर कषाय करोगे तो आप लोगों की हँसी होगी । ऐसा न हो । प्रमाण हेतु मेरे पास मे भी है । किन्तु विवाद को बढ़ाना नहीं है । अपना-अपना प्रमाण अपने पास ही रहे । धर्म प्रभावना हेतु मिलकर चलें तभी सम्यग्दृष्टि हैं । सभी श्रावकों को विवाद से दूर रहने हेतु शुभआशीर्वाद है ।

उत्तम त्याग धर्म

लेखिका–स्याद्वादमतीजी

एक खानि से निकला स्वर्ण पाषाण अशुद्धियों को त्यागकर चमकता हुआ हार बन गया । एक चट्टान का पत्थर अशुद्धियों (अप्रयोजनीय पाषाण) को त्यागकर वीतराग मूर्ति बन गया, गुलाब कांटों का त्याग कर भगवान के चरणों पर चढ़ गया । तात्पर्य है-हाथी मद से, पानी कमल से, रात्रि चन्द्रमा से, वाणी व्याकरण से, नदियाँ हस से, सभा पण्डितो से, स्त्री शील से, अश्व दौड़ने से, मदिर जिनदेव से, पृथ्वी राजा से शोभा पाते हैं वैसे ही तीन लोक अथवा मानव जीवन दान से शोभा पाता है । पूर्व के सारे धर्म त्याग धर्म से सुशोभित होते है ।

त्याग–त्यजतीति त्याग. - छोड़ना त्याग है ।

अथवा संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानत्याग. - सयत (मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक) के योग्य पिच्छी-कमण्डलु शास्त्रादि का दान करना त्याग कहलाता है ।

अथवा

'अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्'

अपने और पर के उपकार के लिए धनादिक का देना दान है । दान देने मे अपना उपकार तो यह है कि पुण्य का बन्ध होता है और पर का उपकार यह है कि दान लेने वाले को धर्मसाधन मे सहायता मिलती है ।

त्याग और दान–

त्याग किया जाता है, दान दिया जाता है ।

त्याग निश्चयवृत्ति है, दान व्यवहार क्रिया है । दोनों का अविनाभावी सम्बन्ध है । दान करने वाला त्याग करता है जिसने आहार दान दिया है वह आहार त्याग करता है । आचार्य आदिसागर महाराजजी के शब्दों में- दान करने वाला त्याग करता है । दान आधार है, त्याग आधेय है । जो सयतों को पिच्छी देता है वह एक दिन संसार का त्याग करता है ।

जीवन का हर सुख त्याग पर अवलम्बित है । बिना त्याग के एक क्षण भी नहीं बीतता- एक बालक मां के प्यार का त्याग कर-पढ़ने का आनन्द या ज्ञान प्राप्त करता है, एक वृक्ष फलों का त्याग कर नवीन फल पाता है, पुत्री मा का त्यागकर पति का प्रेम पाती है, व्यापारी पैसों का त्याग करके पैसा पाता है, गुरु विद्या का त्याग करें तब शिष्य पाते हैं । घर का त्याग करें तब उपदेश सुनते हैं । अरे ! बिना पैसों का त्याग किये तो सिनेमा, टी वी भी नहीं देख सकते विचारणीय स्थिति है त्याग जीवन में कितना उपकारी है । प्रतिक्षण त्याग जीवन का सहचारी बनकर साथ में चलता है ।

दान के लिए आचार्यो ने कहा-''सप्तक्षेत्रों में दान करना चाहिए'' सप्तक्षेत्रों में दिया गया दान समय पाकर जीवो को इष्टफल की सिद्धि में सहायक बनता है ।

सप्तक्षेत्र- (१) जिन चैत्य (२) जिन चैत्यालय (३) जिन पूजा (४) जिन प्रतिष्ठा (५) श्रुतलेखन (६) तीर्थयात्रा और (७) चार प्रकार के दान में । श्रावक के छह कर्त्तव्यो में सर्वप्रथम दान को लिया गया है । अत· जिनमूर्ति मंदिर, पूजा, प्रतिष्ठा, शास्त्र छपवाना, चारों प्रकार के

दानादि शुभ कार्यों में दान करना चाहिए। प्रत्येक गृहस्थ को अपनी कमाई का चौथा अथवा जघन्य दसवां हिस्सा दान में लगा देना चाहिए। जो व्यक्ति या जिस घर मे अपनी कमाई का हिस्सा सप्तक्षेत्रों में दान या दयादत्ती, पात्रदत्ती, समदत्ती और अन्वयदत्ती आदि में नहीं लगाया जाता है वह घर कभी भी खुशहाल नहीं बनता। वहाँ सदैव दरिद्रता का वास रहता है। सुख चाहते हो तो छोड़ो। जोड़ो नहीं "जोड़ेगा वही जो छोडेगा"। जो छोड़ता गया ऊँचा उठता गया और जो जोड़ता गया वह डूबता गया। एक त्याग करना नहीं चाहता है पर हो जाता है, जोड़ना चाहता है पर जुड़ता नही है।"

गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा-त्याग क्या है ?

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया-

"कार्यभित्येवयत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुनं।
सग त्यक्त्वा फलं चैव स त्याग: सात्विको मत: ॥"

"त्याग मेरा कर्त्तव्य हे" ऐसा समझकर शास्त्रविधि से नियत कर्त्तव्य कर्मों को स्वरूप से न छोड़ उसमे आसक्ति और फल का त्याग सात्विक त्याग है।

' दान चार प्रकार के बनाये (१) आहार दान (२) औषधिदान (३) शास्त्र दान और (४) अभयदान।

ध्यानेन शोभते योगी, संयमेन तपोधना।
सत्येन वचसा राजा, गेही दानेन शोभते ॥

एक समय की बात है। एक बुढ़िया भूखी प्यासी एक कूप के समीप पहुँची। वहाँ चार महिलाएँ अपने-अपने सौन्दर्य की प्रशंसा कर रही थीं। आपस में विवाद चल रहा था कि महिलाओ ने निर्णय बुढिया पर छोड दिया। वृद्धा मा बताओ किसके हाथ सबसे सुन्दर हैं। वृद्धा चतुर थी। उसने कहा-मुझे भूख लगी है पहले भोजन करा दो फिर उत्तर दूँगी। अब ! सब चुप। गोरा-गोरा शरीर। मुलायम हाथ कैसे रोटी बनाये ? एक काले-काले (शरीर) हाथ वाली महिला वृद्धा को अपने घर ले गई भोजन बनाया और प्रेम से उसे खिलाकर उसी कूप पर वृद्धा को लेकर आ गई। गोरे-गोरे, कोमल-कोमल हाथो में अंगूठियाँ, कंगन पहने तीन महिलाएँ फिर पूछने लगीं बताओ किसके हाथ सुन्दर है। "वृद्धा ने कहा-सबसे सुन्दर हाथ (जो काली कलूटी महिला थी) इसके हैं। वे तीनो गरजने लगी-झूठ क्यों कहती हो उसके काले कठोर हाथ कितने बदसूरत हैं और तुम सुन्दर कहती हो ? वृद्धा ने कहा-बेटा ! हाथो की शोभा गोरापन, कोमलता कंगनादि से नहीं होती। हाथों की शोभा दान से है। मुझ तीन दिन की भूखी को इसने भोजन बनाकर खिलाया इसके हाथ सबसे सुन्दर हैं। जो हाथों से दान नहीं देता उसके हाथ तो डण्डे हैं। इसीलिए कहा है ध्यान से योगी, संयम से तपस्वी, सत्य वाणी से राजा और दान से गृहस्थी शोभा पाता है। दान के अभाव मे हाथो की या गृहस्थी की कोई शोभा नहीं रहती। भूखे को अन्न दो, प्यासे को पानी दो, डूबते को सहारा दो ज्यादा नहीं कुछ है तो सहानुभूति दो, वात्सल्य दो।

आहार दान देना उत्तम बताया। कारण कि आहार दान देने वाला चारों दानों की सिद्धि कर लेता है। आहार से शरीर टिकता है, शरीर से तप, तप से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। योग्य विधि से श्रद्धावान, तुष्टिवान, भक्तिवान, निर्लोभी, क्षमावान, विवेकवान दाता के द्वारा प्रदत्त दान दाता और पात्र दोनों का उपकार करता है।

भुक्तिमात्रप्रदानेषु का परीक्षा तपस्विन:
ते सन्तवासन्तोऽवा गेही दानेन शुद्ध्यति।

हे श्रावकों ! मात्र रोटी के दो टुकड़ों के दान करने के लिए साधु की परीक्षा मत करो कि वे सन्त हैं या नहीं ? वे भावलिङ्गी हैं या द्रव्यलिङ्गी ? पिच्छी-कमण्डलु, नग्नता, केशलोंच और संस्कार (शृगार) रहित शरीर देखकर तपस्वी को आहार दो। 'गृहस्थी तो दान देने से शुद्ध हो जाता है'। परीक्षा या टीका टिप्पणी करने वालों को शुद्धता कहां बनती है ?

औषधि दान देने से शरीर निरोग बनता है । औषधालय खुलाकर शुद्ध औषधियों से रोगियों के रोग दूर करना चाहिए । राजवार्तिक में कहा-आहार दान क्षुधाशान्ति के पश्चात्, औषधिदान रोग शांति के पश्चात्, अभयदान भयमुक्ति के पश्चात् अल्पप्रभावी हो जाते हैं । परन्तु ज्ञान दान भव-भवान्तर तक साथ चलता है । सतत प्रभावी रहता है । अत· ज्ञानियों के ज्ञान की वृद्धि का प्रयत्न करना, पाठशालाएँ खुलवाना, स्वयं पढ़ना या पढ़ने वालों को साधन जुटाना, कापी, पेन्सिलें बाँटनादि सब ज्ञान दान कहलाते हैं ।

प्राणी मात्र की रक्षा करना, शरणागत की रक्षा करना अभयदान है । आचार्य कहते हैं-

त्यागो एको गुणोश्लाघ्यः किमन्यैः गुणराशिभि.
त्यागाज्जगति पूज्यन्ते पशुपाषाणपादपाः ।

एक त्याग गुण ही महान है अन्य अनेक गुणों की राशि से भी क्या प्रयोजन । त्याग से ही जगत् में पूज्यता होती है । गंगाधर तिलक ने गीता में लिखा-जैन धर्म अविच्छिन्न रूप से चलता आ रहा है इसका कारण उसका त्याग चरम सीमा पर पहुँच चुका है'' । जिस धर्म में त्याग का महत्त्व नहीं वे समय पाकर काल कवलित हो गये । जैन धर्म में अरहन्त को त्याग के कारण ही प्रथम नमस्कार किया है ।

''उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा ।
निहचै राग-द्वेष निरवारे, दाता दोनों दान सम्हारे ॥''

जिस प्रकार कोई पुरुष यह पर द्रव्य है ऐसा जानकर दूसरो की वस्तु को दूर से ही छोड देता है उसी प्रकार समस्त विभाव परिणामो को 'पर' जानकर ज्ञानी उनको छोड़ देता है । निश्चय से रागद्वेष का त्याग धर्म है । तात्पर्य है कि बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से निवृत्त हो निजशुद्धात्मा में लीन हो समस्त विभाव भावों का त्याग करना उत्तम त्याग है । दान उसका व्यावहारिक रूप है । व्यवहार में दान ही त्याग है ।

शतेषु जायते वीरा, सहस्त्रेषु पंडिता
वक्ता शतसहस्त्रेषु, दाता भवति वा न वा ।

सैकड़ों में वीर, सहस्त्रों मे पंडित, लाखों में वक्ता मिलना सरल है परन्तु करोड़ों में योग्य दाता मिलना कठिन है । अत: दान करते समय तुरत दे दो कभी कल का इन्तजार मत करो-

युधिष्ठिर के पास एक भिक्षुक भिक्षा लेने आया । युधिष्ठिर काम में व्यस्त थे । कहा-कल आ जाना । मैं कल दान दूँगा । अर्जुन ने आश्चर्य युक्त हो विचारा कल किसने देखा है ? भैय्या, इतनी बड़ी गलती क्यों कर रहे हैं ? पर हिम्मत नहीं थी कि बड़े भाई से कुछ कहें । तुरन्त अर्जुन ने नगाड़ा बजवा दिया । चारों तरफ लहर मची । क्या खुशी की खबर है ? हा हां अर्जुन नाच उठे । ''आज बड़े भाई साहब ने कल को जीत लिया है ।'' युधिष्ठिर पछताये कल का क्या भरोसा-तुरन्त भिक्षुक को बुलाकर भिक्षा दी । अरे दान देते समय एक क्षण भी विलम्ब मत करो । दाहिने बायें हाथ का भी विचार मत करो । पता नहीं लोभी मन एक क्षण में क्या करेगा ।

जो है मंजूर धन रक्षा, तो धनवानों बनो दानी ।
कुए से जल न निकलेगा, तो सड़ जायेगा सब पानी ॥
दिया जल बादलों ने हमें, ऊँचा हो गया बादल ।
रहा नीचा ही सागर है अदाता को पशेमानी ॥

खाओ और खिलाओ । पेट भरो पेटी ना भरो । धन की तीन ही गतियां है दान, भोग और नाश । हंसते-हंसते जीते-जी छोड़ दो नहीं तो छोडकर जाना पड़ेगा । जो तजेगा वो भजेगा ।

जिनश्रुत

उपाध्याय मुनि भरतसागर

संसार दुःखों से सतप्त प्राणी के लिए दुःख का एकमात्र कारण अज्ञान तथा रागद्वेषादि विकारी भाव हैं । उस भीषण संतप्तता से दुःखी जीवन को शांति देने वाली अमरदायिनी वस्तु क्या है ? आचार्य श्री समन्तभद्रस्वामी कहते हैं-

न शीतलाश्चंदनचन्द्ररश्मयो न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः ।

यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम् ॥

संसार में शीतलतम वस्तु कौनसी है ? चन्दन, नहीं । चन्द्रमा की शीतल ललित किरणें, नहीं । गंगानदी का शीतल जल, नहीं । मोतियों का हार, नहीं । आचार्य कहते हैं-वीतराग अर्हन्त के मुखारविन्द से उद्घाटित निर्दोष वचन रूपी किरणें जो कि शान्तिरूपी जल से मिश्रित हैं उनसे भिन्न कोई पदार्थ इस पृथ्वीतल पर शीतल नहीं है । आपके निर्दोष वचनों को सुनकर विवेकी जनों को जो शान्ति प्राप्त होती है जो आह्लाद उत्पन्न होता है वह चन्दन और चन्द्रमा की किरणों, गंगानदी के जल से तथा मोतियों की मालाओं से प्राप्त नहीं होता क्योंकि ये सब वस्तुएँ मात्र शारीरिक सताप को नष्ट कर क्षणिक सुखाभास को देती हैं और आपके वचन मानसिक सताप को नष्ट कर शाश्वत सच्चा सुख देने वाले हैं ।

३३ व्यञ्जन, २७ स्वर और ४ योगवाह = मूल वर्ण ६४ होते हैं

पण्णवणिज्जाभावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं

पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो ॥ ३३४ जी. का. ॥

अनभिलप्य पदार्थों के अनन्तवें भाग प्रमाण प्रज्ञापनीय पदार्थ होते हैं और प्रज्ञापनीय पदार्थों के अनन्तवें भाग प्रमाण श्रुत में निबद्ध हैं ।

जो केवल ज्ञान के द्वारा जाने जाते हैं ऐसे पदार्थ अनन्तानन्त हैं किन्तु वचन के द्वारा निरूपण नहीं किया जा सकता है, इस तरह जिनका वचन के द्वारा निरूपण हो सके ऐसे पदार्थों के अनन्तवें भाग प्रमाण प्रज्ञापनीय भाव हैं जितने प्रज्ञापनीय पदार्थ हैं उनका अनन्तवां भाग श्रुत में निबद्ध है । बुद्धि आदि ऋद्धियों के धनी गणधरों ने अर्हन्त सर्वज्ञ देवरूपी हिमाचल से निकली वचनरूपी गंगा के अर्थरूपी निर्मल जल से प्रक्षालित अन्तःकरण द्वारा समस्त श्रुत को ग्रन्थ रूप से निबद्ध कर भव्यात्माओं का अनुपम उपकार किया है ।

"केवलणाणदिवायर" केवल ज्ञान रूपी सूर्य जिनके भासमान हो चुका ऐसे अर्हन्त सर्वज्ञ देवरूपी हिमाचल पर्वत से निकली हुई वचनरूपी गंगा के अर्थरूपी जल से प्रक्षालित है अन्तःकरण जिनका ऐसे बुद्धि आदि ऋद्धियों के धनी गणधरों ने जिन वचन रूप मोतियो की श्रुत रूप माला गूंथी । समस्त श्रुत के अक्षर १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ बीस अंक प्रमाण है । ये अपुनरुक्त अक्षर श्रुत के हैं । इस मूल वर्ण राशि में मध्यम पद के अक्षर १६३४८३०७८८८ से भाग देने पर जो लब्ध आया श्रुत की अप्रविष्ट संज्ञा हुई, शेष जितने अक्षर रहे वे अंगबाह्य कहलाये ।

अंग प्रविष्ट श्रुत आचारंग आदि बारह अंगों रूप है । बारह अंगों के नाम व वर्णित विषय अग्र प्रकार हैं-

१. आचाराङ्ग–आचाराङ्ग में आठ प्रकार की शुद्धि, पाँच समिति, तीन गुप्तिरूप चर्या का विधान है। इसमें पदो की संख्या १८००० है [एक-एक पद का प्रमाण मध्यम पद के अक्षर रूप है]

२. सूत्रकृताङ्ग–इस अंग में ज्ञान विनय, प्रज्ञापना, कल्प्य-अकल्प्य, छेदोपस्थापना आदि व्यवहार धर्म की क्रियाओं का निरूपण है। इसमे ३६००० पद हैं।

३. स्थानाङ्ग–इसमें अर्थों के एक-एक दो-दो आदि अनेक आश्रय रूप से पदार्थों का कथन किया जाता है। इसमें पदों की संख्या ४२००० है।

४. समवायाङ्ग–समवायाङ्ग में सर्वपदार्थों की समानता रूप से समवाय का विचार किया गया है। वह समवाय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार प्रकार का है जैसे धर्म-अधर्म, लोकाकाश और एक जीव के तुल्य असंख्यात प्रदेश होने से इन्हें द्रव्यरूप समवाय कहा जाता है। जम्बूद्वीप सर्वार्थसिद्धि, अप्रतिष्ठान नरक, नन्दीश्वर द्वीप की वापिका ये सब एक लाख योजन विस्तार वाले होने से इनका क्षेत्र की दृष्टि से समवाय है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दोनों दस कोड़ा-कोड़ी सागर प्रयाण होने से इनका काल की दृष्टि से समवाय है। क्षायिक सम्यक्त्व केवल ज्ञान केवलदर्शन, यथाख्यात चारित्र ये सब अनन्त विशुद्धि रूप से भाव समवाय वाले हैं। इसमें कुल पद १६४००० हैं।

५. व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग–इस अंग में "जीव है या नहीं" इत्यादि साठ हजार प्रश्नों का उत्तर निरूपण है। इसके पदों की संख्या २२८००० है।

६ ज्ञातृधर्मकथांग–इस अंग मे अनेक आख्यान और उपाख्यानों का वर्णन है। पदों की संख्या ५५६००० है।

७. उपासकाध्ययनाङ्ग–यहाँ श्रावक धर्म का विशेष रूप से विवेचन किया गया है। पदों की सख्या ११७०००० है।

८. अनन्तकृद्दशाङ्ग–ससार का अन्त जिन्होने कर दिया है वे अन्तकृत हैं-जैसे वर्द्धमान तीर्थंकर के तीर्थ मे नीम, मतग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, निष्कम्बल, पाल और अम्बष्ठपुत्र ये दस मुनि घोरोपसर्ग सहन करके सम्पूर्ण कर्मों का नाश कर अन्तकृत केवली हुए। उसी प्रकार ऋषभादि तेईस तीर्थंकरों के समय मे दस-दस मुनि घोरोपसर्ग सहन करके अन्तकृतकेवली हुए हैं। उन दस मुनियों का विवरण जिसमे है उसको अन्तकृद्दशांग कहते हैं। अथवा अन्त कृतों की दशा अन्तकृत दशा, उसमें अर्हद् आचार्य होने की विधि तथा सिद्ध होने वालों की अन्तिम विधि का वर्णन है। इस अग में २३२८००० पद हैं।

९. अनुत्तरोपपादिकदशांग–विजय, वैजयन्त, जयन्त अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नामक पाँच अनुत्तर हैं। उन अनुत्तरों में उत्पन्न होने वालों को अनुत्तरोपपादिक कहते हैं। भगवान महावीर के समय में ऋषिदास, वान्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण और चिलातपुत्र ये दस मुनि घोर उपसर्ग सहन करके विजय वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार ऋषभादि तेईस तीर्थङ्करों के समय में अन्य-अन्य दस-दस मुनिराज दारुण उपसर्ग सहन कर विजयादि अनुत्तरों में उत्पन्न हुए। उन अनुत्तरौपपादिक की दशा का वर्णन जिसमें पाया जाता है उस अंग का नाम अनुत्तरौपपादिक दशा है। इसमें विजयादि अनुत्तर विमानों की आयु, विक्रिया, क्षेत्र आदि का वर्णन है। इसकी पद संख्या ९२४४०० है।

१०. प्रश्न व्याकरणाङ्ग–इस अंग मे युक्ति और नयों के द्वारा अनेक आक्षेप-विक्षेप रूप प्रश्नो का उत्तर है तथा उसमे सभी लौकिक और वैदिक अर्थों का निर्णय किया गया है। पद संख्या ९३१६०० है।

११. विपाक सूत्राङ्ग–इस अंग मे पुण्य और पाप के विपाक का विचार (कथन) है। पद सख्या १८४००००० है।

१२. दृष्टिवाद अंग–इसमे ३६३ कुवादियो के मतों के निरूपण पूर्वक खण्डन पाया जाता है। क्रियावादियों के १८० भेद अक्रियावादियो के ८४ भेद, अज्ञानवादियो के ६७ तथा वैनयिकों के 32 भेद हैं। इसमें कुल पद १०८६८५६००५ हैं।

दृष्टिवाद अग के पाँच भेद हैं (१) परिकर्म (२) सूत्र (३) प्रथमानुयोग (४) पूर्वगत (५) चूलिका।

पूर्वगत के १४ भेद है- उत्पादपूर्व, अग्रायणी, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवाद, कल्याणवाद प्राणावाय, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार।

(१) उत्पाद पूर्व- [illegible] पुद्गल काल आदि की जिस काल में, जिस क्षेत्र में पर्याय से उत्पत्ति होती है उन सबका वर्णन करने वाला यह उत्पादपूर्व जानना चाहिए। पद संख्या ९६ लाख है।

(२) अग्रायणी- जिसमे क्रियावादी की प्रक्रिया अग्रणी के समान अंगादि तथा स्व समय के विषय का विवेचन किया गया वह अग्रायणी पूर्व है। पद संख्या १ करोड़ है।

(३) वीर्यवाद–इसमे छद्मस्थ और केवलियों की शक्ति, सुरेन्द्र, असुरेन्द्र आदि की ऋद्धि वा नरेन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव आदि के सामर्थ्य और द्रव्यों के समीचीन लक्षणादि का वर्णन है। पदसख्या [illegible] लाख है।

(४) अस्तिनास्तिप्रवाद–इसमें पाँचों अस्तिकायों का और नयों का अस्ति-नास्ति आदि अनेक पर्यायों का विवेचन है। पदसख्या ६० लाख है।

(५) ज्ञान प्रवाद–जिसमे प्रादुर्भाव विषयों के आयतन स्वरूप ज्ञानियों के पाँचो ज्ञानों का और अज्ञानियों के विषयो के आयतन इन्द्रियों का विभाग किया जाता है, वह ज्ञान प्रवाद है। पदसंख्या १ कम १ करोड है।

(६) सत्यप्रवाद–जिसमें वाग्गुप्ति, वचन संस्कार के कारण, वचन प्रयोग, बारह प्रकार की भाषा, वक्ता के अनेक प्रकार मृषाभिधान और दस प्रकार के सत्य के सद्भाव का वर्णन है वह सत्यप्रवाद है। पद सख्या १ करोड छ लाख है।

(७) आत्मप्रवाद–इसमें आत्मा के अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि धर्म और षट् जीवनिकाय के भेदों का निरूपण है पदसंख्या २६ करोड़ है।

(८) कर्मप्रवाद–जिसमे कर्मो के बंध, उदय, उदीरणा, उपशम आदि दशाओं का तथा जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट आदि स्थिति का तथा प्रदेश समूहों का वर्णन किया जाता है वह कर्मप्रवादपूर्व है। पद संख्या १ कम ८० लाख।

(९) प्रत्याख्यान पूर्व–इसमें व्रत नियम, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, तप, कल्प, उपसर्ग आचार आराधना विशुद्धि का उपक्रम आदि व मुनियों के आचरण का कारण तथा परिमित अपरिमित द्रव्य के प्रत्याख्यान आदि का वर्णन है। पद संख्या ८४ लाख है।

(१०) विद्यानुवाद–इसमें समस्त विद्याएँ, आठ महानिमित्त उनका विषय रज्जु राशिविधि, श्रेणी, क्षेत्र, लोक प्रतिष्ठा, समुद्घात आदि का विवेचन है। पद १ कम १० लाख है।

(११) कल्याणवाद–जिसमें सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारागणों का गमनक्षेत्र उपपादक्षेत्र शकुन आदि का वर्णन है तथा अर्हत् कामदेव, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव आदि का एवं गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान एवं मोक्ष कल्याणकों का वर्णन है वह कल्याणपूर्व कहलाता है । इसमें २६ करोड़ पद हैं ।

(१२) प्राणवादपूर्व–कायचिकित्सा आदि आठ अग, आयुर्वेद, भूतिकर्म, जांगुलिप्रक्रम, प्राणापान के विभाग का इसमें विस्तार से वर्णन है । पद संख्या १३ करोड़ है ।

(१३) क्रियाविशालपूर्व–लेखनक्रिया आदि पुरुषों की ७२ कलाओं का, स्त्रियों की ६४ कलाओं का तथा शिल्प काव्य गुण दोष, छन्द, क्रिया का फल व उसके भोक्ता आदि का इसमें विस्तारपूर्वक वर्णन है । पदसंख्या ९ करोड़ है ।

(१४) लोकबिन्दुसार–आठ प्रकार का व्यवहार, चार बीजराशि, परिकर्म आदि गणित तथा सारी श्रुतसम्पत्ति का वर्णन जिसमें है वह लोकबिन्दुसार है । पदसंख्या १२$\frac{१}{२}$ (साढे बारह) करोड़ है ।

सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग के पदो की संख्या ११२८३५८००५ (एक सौ बारह करोड तिरासी लाख अट्ठावन हजार पाँच है)

आरातीयाचार्यकृताङ्गार्थप्रत्यासन्नरूपभङ्ग बाह्यम् ॥ १/२०/९३/त रा ॥

आरातीय आचार्यकृत अंग अर्थ के आधार से रचे गये अग बाह्य है । श्रुत अर्थ के ज्ञाता गणधर देव के शिष्य-प्रशिष्यों के द्वारा कालदोष से अल्प आयु बुद्धिवाले प्राणियो के अनुग्रह के लिए अंगों के आधार से रचे गये संक्षिप्त ग्रन्थ अङ्ग बाह्य हैं ।

वर्तमान में ग्यारह अंग चौदह पूर्व की उपलब्धि नहीं है । जितना भी श्रुत उपलब्ध है अंग बाह्य है । हमारे लिये पूज्यनीय, वन्दनीय मननीय और चिन्तनीय है । श्रुतज्ञान स्व-पर उपकारी ज्ञान है ।

श्रुतज्ञान का महात्म्य–

सुदकेवलं च णाणं, दोण्णि वि सरिसाणि होंति बोहादो ।
सुदणाण तु परोक्खं, पच्चक्खं केवलं णाणं ॥ जी. का. ३६९ ॥

ज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान व केवलज्ञान दोनों ही सदृश हैं । परन्तु दोनों में अन्तर यही है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है । जिस तरह श्रुतज्ञान सम्पूर्ण द्रव्य और पर्यायों को जानता है उसी तरह केवल ज्ञान भी सम्पूर्ण द्रव्य और पर्यायों को जानता है । विशेषता इतनी ही है कि केवल ज्ञान निरावरण होने से समस्त पदार्थों को उनके सम्पूर्ण गुण व पर्यायों को स्पष्ट रूप से विषय करता है जबकि श्रुतज्ञान आवरण सहित होने से अस्पष्ट रूप से विषय करता है । श्रुतज्ञान पिता है केवलज्ञान पुत्र है ।

सम्यग्दृष्टि सम्पूर्ण द्वादशांग की श्रद्धा निर्दोष रूप से करता है यदि एक अक्षर की श्रद्धा न करे और पूरे श्रुत की श्रद्धा भी करे तो सम्यक्त्व दूषित हो जाता है ।

आचार्य आदिसागर (अंकलीकर)
अभिनन्दन ग्रन्थ

पंचम खण्ड

व्याख्यान माला

चयन—सुमन

१ मनुष्य की शोभा ज्ञान से है, ज्ञान की महत्ता सम्यक्त्व से है और सम्यक्त्व से चारित्र की महिमा है । चारित्र से निर्वाण की सिद्धि होती है ।

२ मीठी रोटी की भाति धर्म सर्व काल, द्रव्य, क्षेत्र मे सर्वत्र सर्व ओर से सर्वभागो से मधुर होता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की आड लेकर धर्म से हटना सबसे बडी भूल है ।

३ राग चिपकता है, द्वेष आख दिखा झटका मार भाग जाता है । द्वेष प्रथम नष्ट होता है पुन रागाभाव ।

४ धर्म की विविध प्रकार से व्याख्या की है परन्तु "अहिसा" सर्वत्र व्याप्त है, कही भी नहीं छोडी गई है । जहाँ अहिसा न हो वहाँ क्षोभ है । अधर्म है । अत "जीवाण रक्खण धम्म" सर्वोपरि व्याख्यान है । दया ही धर्म है ।

आचार्य भगवान् कुन्दकुन्द की देन

आर्यका विजयप्रभा माताजी

हमको कुन्दकुन्द स्वामी के विषय में ज्यादा जानकारी नहीं है । हमने उनके ग्रन्थों का विशेष रूप से अध्ययन भी नहीं किया है जो कुछ पढ़ा है सुना है उसी के माध्यम से हम आपको कुछ बता सकते हैं हमारी भारतीय संस्कृति मे श्रमण परम्परा अधिक प्राचीन है श्रमण संस्कृति में गुणो की वन्दना का विधान है । हमारे जैन-धर्म मे गुणों का समन्वय पंच परमेष्ठि में किया गया है । श्री अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु मिलकर पंच परमेष्ठी होते हैं आचार्य परमेष्ठी सुधी साधक होते हैं उनकी गरिमा तीर्थंकर के समान होती है । जब तीर्थंकर का अभाव होता है तो आचार्य द्वारा धर्म तीर्थ का प्रवर्तन हुआ करता है । मतलब आचार्य ही एक साक्षात्त तीर्थंकर के समान होते है क्योकि तीर्थंकर तो समोशरण में विराज कर जब उनकी आयु पूर्ण हो जाती है तो वो सिद्धालय में जाकर विराजमान हो जाते है । लेकिन आचार्य परमेष्ठी तो हमारे लिये साक्षात् अरिहंत के समान है चलती-फिरती जिनवाणी के समान हैं हमारे जैन परम्परा मे आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का स्थान सर्वोपरि रहा है । उसी प्रकार इस बीसवीं शताब्दी में प्रथमाचार्य श्री १०८ आदिसागर जी महाराज का स्थान सर्वोपरि है । उनको भी यदि कुन्दकुन्द के समान कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का जन्म कुन्दकुन्द नगर मे हुआ था । उत्कल देश के रेलवे स्टेशन दक्षिण की ओर करीब चार किलोमीटर पर एक गोलकुण्डा नामक स्थान है वहीं पर उनका जन्म हुआ था जिस समय आचार्य श्री का जन्म हुआ था उस समय उस गाँव में १५० जिनालय थे और 200 कुएँ थे और दो हजार जैनियों की बस्ती थी लेकिन अब वहाँ पर कुछ नहीं है । आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी एक अभूतपूर्व प्रतिभाशाली थे । अपूर्व ज्ञानी थे प्रौढ़ थे रचनाकारक थे और उन्होंने हमको बहुत योगदान दिया । यदि वे ग्रन्थ की रचना नहीं करते तो हमको आज कुछ भी पढ़ने लिखने के लिए नही मिलता जैसाकि आप लोगों ने सुना कि उन्होंने चौरासी पाहुड़ लिखे नियमसार, प्रवचनसार, समयसार, बहुत से ग्रन्थो की रचना की आचार्य सार में मूलाचार, भगवती आराधना की रचना की ऐसे अनेक ग्रन्थों की रचना की जिससे आज हमारा कल्याण हो रहा है । हमको जिनवाणी सामने पढ़ने को मिल रही है । आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने तप, ज्ञान, चारित्रिक सयम से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा दर्शन, चारित्र पाहुड़ में लिखा है । आजकल लोग कहते हैं कि उन्होंने केवल ज्ञान को ही जोर दिया नहीं उन्होंने कहा है कि बिना तप और चारित्र धारण किये मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि जब तक तप और चारित्र साथ में नहीं है तो आप कितना भी ज्ञान कर लो वो सब कोरा एक ढोंग है वो कभी भी निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकता है । यदि आपको निर्वाण जाना है तो कुन्द कुन्द के शास्त्रो को पढ़िये और उनको अपने

हृदय में धारण करिये लेकिन अगर आपको सही ज्ञान करना है तो उनके शास्त्रों को गुरुओं के सामने पढ़िये । क्योंकि जैसा माताजी ने कहा था कि प्रवाल पिष्टी, मुक्ता पिष्टी, हर व्यक्ति हजम नहीं कर सकता है उसके लिए शक्ति चाहिए उसको पचाने के लिए, उसी प्रकार समय सार, प्रवचन सार, नियम सार आदि ग्रन्थों को पढ़ने के लिए शक्ति चाहिए अगर अर्थ अनर्थ हो गया तो मिथ्यात्व हो जायेगा इसलिए आचार्यों ने कहा है कि इसको गुरुओ के समक्ष ही पढ़ना चाहिए ।

आचार्य भगवान् कुन्दकुन्द की देन

डॉ. शीतलचन्द्रजी जैन

नयों की चर्चा चल रही थी सुबह नयों की चर्चा मे यह बात थी कि निश्चय नय और व्यवहार नय से पचास्तिकाय में अपेक्षायें बतला रहा हूँ कि कुन्दकुन्द स्वामी ने ऐसी चर्चाएँ दी हैं जो हमारी समझ में ऐसी आती हैं कि उन्होंने कह दिया कि निश्चय नय में न राज है न राजा यह सुनकर किन्हीं लोगों को ऐसा लगने लगता है कि उन्होंने निश्चय से कोई प्रधान नहीं कहा परन्तु जैसे हम गृहस्थ अवस्था में व्यवहार में कहते हैं कि दाहिना हाथ शुभ है तो क्या दाहिना हाथ प्रधान हो गया अथवा दाईं आँख शुभ है तो इस प्रकार से कुछ व्यवहार में चीजे हैं जो कि कथन में आ जाती हैं, परन्तु आँखें तो दोनों ही बराबर हैं दाईं आँख भी बराबर है बाईं आँख भी इसी प्रकार हाथ भी दाया और बाया बराबर ही है ठीक है व्यवहार मे हम कहते हैं, इसी प्रकार से आचार्य कुन्दकुन्द ने पचास्तिकाय मे निश्चय नय को न राज कहा न राजा । उनके दार्शनिक विवेचन में आपने देखा होगा कि उन्होंने दो लक्षण किये है द्रव्य के लक्षण सर्वप्रथम कुन्दकुन्द स्वामी ने ही किये हैं इसके पहले द्रव्य के लक्षण नहीं थे जैसे "सत् द्रव्य लक्षणम्" और वह सत् जो है वह उत्पाद द्रव्य होना चाहिए दूसरा "गुण पर्यय वद् द्रव्य" यह भी पंचास्तिकाय में कुन्दकुद स्वामी ने ही कहा है ये दो लक्षणो के कहने का भी उनका कोई प्रयोजन है । उन्होंने स्वयं इस प्रयोजन को बतलाया "मिथोऽनपेक्षात्वापंचास्तिकाय" मे ही द्रव्य की क्रियात्मक शक्ति का प्रतिपादन करने के लिए हमें "सत्द्रव्य लक्षणम्" "उत्पाद व्यय धौव्यलक्षणम्" ये कहना पड़ा और "गुणपर्ययवद्लक्षणम्" यह दूसरा लक्षण इसलिए कहना पड़ा क्योंकि गुण स्वभाव है और पर्याय स्वाभावी है इसलिए वो दूसरा लक्षण "गुण पर्ययवद्रत्यम" कहना पड़ा कहने का तात्पर्य यह है कि कुन्दकुन्द स्वामी ने दो लक्षण कहे बाद में उमा स्वामी आचार्य ने कुन्दकुन्द के लगभग सभी ग्रन्थों का दोहन किया । कुन्द कुन्द का पंचास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार और नियमसार इन सभी ग्रन्थों का उमास्वामी आचार्य ने किया और साथ में भूतबलि पुष्पदंत का षट्खंडागम् इन ग्रन्थों को भी देख करके उन्होंने पूरा तत्वार्थ सूत्र की रचना की मानो उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थ सूत्र की जो रचना की है वो विशुद्ध रूप से यह कहना चाहिए कि आचार्य कुन्कुन्द और षट्खण्डागम् भूतबली पुष्पदंत के ग्रन्थों को लेकर के ज्यों की त्यों गाथा है । इसी प्रकार से ऐसे कई सूत्र हैं जो कि पूज्य आचार्य उमास्वामीजी ने आचार्य कुन्दकुन्द के ही ले लिए अर्थात् कहने का अर्थ यह कि आचार्य

कुन्दकुन्द इतने प्रभावशाली आचार्य बने कि बाद में जितने भी आचार्य हुए उन सभी ने कुन्दकुन्द को अपनाया और अपने ग्रन्थों का सृजन किया। मैंने करीब दो सौ सूत्र के करीब मिलान किये कि आचार्य कुन्दकुन्द और भूतबली का जो षट्खण्डागम् पुष्पदन्त का षट्खण्डागम् इन दोनों को मिला करके तत्त्वार्थ सूत्र की रचना की गई और एक से शब्दों को लिया गया तो ये तो उनकी दार्शनिक दृष्टि थी। कुन्द कुन्द स्वामी ने जो द्रव्य के दो लक्षण किये फिर इसके पश्चात् सप्तखण्ड में जो अपना प्रधान सिद्धान्त है सप्तभंगी अस्ति, अस्तिनास्ति, इन दो ही भंगों का उल्लेख सप्तखण्डागम में दो ही भंग उसमें उपस्थित किये गये अस्ति अस्तिनास्ति बाद में कुन्दकुन्द स्वामी ने सात भंग दिये तो ये भी कुन्द कुन्द की देन है। एक तो द्रव्य के दो लक्षण कुन्द कुन्द स्वामी ने दिए उनकी नई विचारणा है-दूसरा यह है कि उन्होंने सियानत्थि सियानत्थि ये सतखण्डागम् में उल्लेख दो भंगों का शेष जो सात भंग बनाये अर्थात् पाँच भंग अपने दिये अर्थात् उन्होंने बनाये ये कुन्दकुन्द की देन है। वैसे तो जिनवाणी ही उनकी देन है, उसके बाद जब हम विचार करते हैं तो आचार्य कुन्दकुन्द ने द्रव्य के लक्षण सप्तभंगी और साथ में एक जगह उन्होंने कहा कि सत् का कभी नाश नहीं होता और असत् का कभी उत्पात नहीं होता है दूसरी जगह उन्होंने कहा कि सत् का नाश होता है असत् का उत्पाद होता है, फिर से कह रहा हूँ कि कुन्दकुन्द स्वामी ने अपने ढंग से अपनी बात कही सत् का कभी नाश नहीं होता है असत् का कभी उत्पाद नहीं होता है ये तो हम सब सुनते हैं परन्तु कुन्दकुन्द स्वामी ने एक बात यह भी कही कि सत् का नाश होता है असत् का उत्पाद होता है तो पूछा महाराज आपने ये दोनों बातें ऐसी क्यों कही हैं तो उन्होंने स्वयं उत्तर देते हुए कहा कि एक तो हमने द्रव्य की अपेक्षा से कहा और एक पर्याय की अपेक्षा से कहा दोनो में उनको जो विरोध सा दिखाई दे रहा था उसको उन्होंने समाप्त कर दिया। तो इस प्रकार से पच्चीस मिनट में क्या बताऊँ तो आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने ऐसे कई रहस्य खोले हैं जो हमारे लिए ग्राह्य हैं अनुकरणीय-विचारणीय है उनके ऊपर चलने के लायक कुछ मातायें-बहने यहाँ उपस्थित हैं तो उनके लिए भी मैं यह बात कहना चाहता हूँ क्योंकि सारी खोज हम उनको बता देंगे तो वे चिन्तन करते-करते कहाँ तक विचारेंगे।

अष्टमूल गुणों पर जब हम चर्चा करते हैं तो आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने कई अष्टमूल गुणो की चर्चा अपने ग्रन्थों में नहीं की है-फिर बाद वाले आचार्यों ने अष्टमूल गुणो की चर्चा की है क्योंकि यह मेरे मन ने कुरेदा कि आ. कुन्दकुन्द को अष्टमूल गुणो की चर्चा नहीं करनी पड़ी और जो अष्ट पाहुड़ है उसमें मुनिराजों के लिए खूब उपदेश दिया है, आचार्य के लिए उन्होंने खूब अच्छी तरह से प्रतिपादन किया ये दो बातें अपने आप में चिन्तन के लिए बाध्य की कि श्रावकों के लिए अष्टमूलगुणों की चर्चा नहीं की, और मुनिराजों के लिए आप चाहे भावपाहुड़ शील पाहुड़ ले लीजिए उसमें खूब प्रथमानुयोग भरा पड़ा है। प्रथमानुयोग, दर्शनानुयोग सभी पाहुड़ों में उन्होंने मुनिराजों पर चर्चा की है। मैंने खूब सोचा विचारा, आचार्यों से भी चर्चा हुई कि कुन्दकुन्द के समय श्रावकों में इतना शिथिलाचार नहीं था, जो आज वर्तमान में देखने को मिल रहा है। श्रावकों की बात कर रहा हूँ जो जल छान कर पीना रात्रि भोजन नहीं करना ये कुन्दकुन्द के समय पूछने की बात नहीं थी। किसी श्रावक के घर जाओ और यह पूछो कि पानी छना हुआ है या नहीं तो

बड़ी शर्म की बात थी, इस कारण उनके समय में श्रावकों की चर्चा नहीं की उनके अष्टमूल गुणों को भी चर्चा नहीं करनी पड़ी । उनको मद्य, मांस, मधु, पाँच उदम्बर फलों का त्याग करो ऐसा उपदेश देने की स्थिति नहीं थी । कोई श्रावक इन वस्तुओं का सेवन नहीं करते थे । अन्यथा यह बात नहीं कि उन्होंने अपने ग्रन्थों में चार बातें न कही हो । शील पाहुड़ में शील की बातें कहीं, अन्य जगह जहाँ-जहाँ उनको जो मिला प्रवचन सार देख लीजिए चारित्र उद्गार मे यद्यपि मुनिराजों की चर्चा ज्यादा की क्योंकि उनके चित्त मे बहुत सारी बातें रही, लेकिन ऐसी बात नहीं है कि गृहस्थों को छोड़ देते । एक बार गणेशशाह वर्णी आहार लेकर आये, और रात्री में जब वे सोये, तो जब सुबह उठे तो उन्होंने श्रावकों से कहा कि भइया आज रात्रि में मुझे बहुत बुरा स्वप्न दिखा । स्वप्न में दिखा कि मेरे सामने कुछ लोग बैठे हैं और चप्पले बना रहे हे और बेच रहे हैं । वरणी जी ने कहा मुझे कभी ऐसा स्वप्न आता ही नहीं है कि कोई चप्पलें बना रहा हो या कोई बेच रहा हो, मैंने तो स्वप्न देखे तो इस ढंग के देखे कि मुनिराज को आहार करता हुआ देख रहा हूँ । स्वाध्याय कर रहा हूँ या तत्त्व चर्चा कर रहा हूँ आदि परन्तु पहली बार आज मैंने ऐसा स्वप्न क्यो देखा ? श्रावक बोले कि महाराज आपको ऐसा स्वप्न इसलिए दिखा कि जिस श्रावक के यहाँ आहार हुआ उस श्रावक के घर चप्पलों का ही धन्धा है उसी का व्यापार करता है, इस कारण उसके घर का सारा वातावरण चप्पलों में है उसकी चप्पलो की ही कमाई है, इस कारण आपको भी उस वातावरण में स्वप्न में चप्पलें बनाता बेचता दिखा है । आप समझ गये होगे कि कुन्दकुन्द के समय से आज तक समय कितना गड़बड होता जा रहा है श्रावको का । श्रावक मुनिराज को आहार भी देते हैं मन शुद्धि वचन शुद्धि, काय शुद्धि एवं कार्य शुद्धि यह कह देते हैं अब आपकी ये तीनों चारो शुद्धि हैं या नहीं । हम तो इसलिए जयपुर मे चतुर्मास करवाते हैं तो कई को हमने देखा है कि काय की और कार्य की शुद्धि का माता बहनो को ज्ञान भी नहीं, क्योंकि स्वाध्याय तो करती नहीं है । आहार कार्य की क्रिया का भी अध्ययन नहीं करती, इस कारण कई महिलाओं को तो निश्चित रूप से कार्य की शुद्धि का रंचमात्र भी ज्ञान नहीं होता है । मुनिराज तो जब तक आप मन, वचन कार्य शुद्ध है घर में प्रवेश करो, ऐसे नहीं बोले जब तक आते नहीं है और यदि सब कार्य की शुद्धि न होने पर भी आपने शुद्ध है सब ऐसा बोल दिया तो सारा पाप का भार आप लोगों पर हो जाता है, उसका परिणाम मुनिराजो को भी भुगतना पड़ता है कि उनका आत्म् चिन्तन ध्यान सही नहीं बनता है तो मैं यह कहना चाहता था कि कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में ये कोई प्रमेय नहीं मिलता श्रावकों में इस प्रकार का कोई भी शिथिलाचार नहीं रहा होगा ।

वर्तमान में यह स्थिति बन गई तो दूसरी शताब्दी मे समन्तभद्र ने अष्ट मूलगुणों का उल्लेख सर्वप्रथम किया वे अष्ट मूल गुण दूसरे है । बाद में आशाधरजी ने दूसरे अष्टमूल गुण बताये । मद्य, मांस, मधु, पंचाणु व्रत ये आठ । उसके बाद दसवीं शताब्दी में अमृत चन्द्राचार्य ने तीन मकार पाँच उदम्बर फल ये आठ कहे । शिव कोटि आचार्य और आशाधर आ. जी ने तो बिल्कुल कह दिया कि प्रागटम आचार्य ही कथतमन और पूर्ववर्ती आ के थे उन्होंने यह भी कहा है, कह कर कह दिया कि जीवों पर दया करना, पानी गालन करना, रात्रि भोजन नहीं करना, देव दर्शन करना और बाद में ले आये ५ अणुव्रतों की बात तो दूसरी तरफ जाने दें । जब देखा कि श्रावक बिल्कुल ही

हटते जा रहे हैं कि रात्रि भोजन करने का बिल्कुल विचार (निषेध) नहीं रह गया, जल छान कर पीने का भी विचार नहीं, जाति-पांति का भी कोई निषेध नहीं रह गया तब यह अष्टमूल गुणों में सम्मिलित कर लिया, तो कुन्द-कुन्द के साहित्य की एक बड़ी भारी देन यह भी मिलती है कि उनके समय में श्रावकों का कितना व्यवस्थित जीवन था यदि थोड़ी-थोड़ी बात आती है साधुओं के प्रति तो जो कि देवाचार्य ने कहा कि यदि कुन्दकुन्द ग्रन्थ नहीं होते तो मुनिराजों के लिए जो आचार संहिता जो कुन्दकुन्द ने दी है वो वस्तुतः कैसे हमें आगे जाकर के मिलती, आज भी यही स्थिति है कि यदि कुन्द-कुन्द आचार सहिता को आगे रख करके एक बार हम सामूहिक रूप से वाचन करे तो गृहस्थो के ध्यान में भी आ जाय और मुनिराजों के ध्यान में भी पूरी बात आ जाय। यह मानता हूँ कि अच्छी तरह से मुनिराजों को पहले आचार्य वर अध्ययन कराते हैं उनकी आचार-विचार क्रिया का। परन्तु कई चीजें ऐसी हैं जैसे अष्ट पाहुड़ में कुन्दकुन्द ने जो बातें कहीं वो सबके ध्यान मे नही आ पाती हैं, मूलाचार में जो बातें कही हैं, वो सबके ध्यान में नहीं आ पाती हैं। तो निश्चित रूप से इस गोष्ठी से यह उपलब्धि तो आती है कि अपने लिये ऐसी वाचनाएँ तो करना चाहिए जिससे मूलाचार या मूलाराधना या भगवती आराधना है, इन सबकी अन्त में एक बात कह करके मै अन्तिम वक्तव्य की ओर आऊँगा, कि कुन्दकुन्दाचार्य को समझने के लिए भूतबलि आचार्य का करुणानुयोग और सत् खण्डागम पढ़ना बहुत जरूरी है। कुन्दकुन्द की व्याख्याये हमे एकान्तपरक लगेगी। जैसे-उदाहरण के तौर पर यह गाथा कहूं उन्होंने कहा पुण्यासव भूदा अनुकम्पा उदजीवों उदयोगा विभायो पापस्य पुण्यस्या अर्थात् यह धवल में वीरसेन आचार्य ने यह कहा कि पुण्यास्रव कौन है तो पुण्यास्रव के कारणों में अनुकम्पा और शुद्धोपयोग को भी ले लिया। नियमसार धवल में शायद पहली १९६ पृष्ठ है पर कहा कि ये पुण्यास्रव के कारण है और यह भी कहा कि पुण्याश्रव से बंध नहीं होता।

अब देखिये मैं इस विचार को दे रहा हूँ इस गाथा को भी उपस्थिति मैंने कर दिया है और इस गाथा के आधार मे अभी और कह रहा हूँ कि उनमे बहुत ध्यान की चर्चा है कर्म सिद्धान्त की चर्चा है, मैंने तो इसलिए उठाई है कि जिससे चर्चा का विषय बने और आपके स्वाध्याय के भी चर्चा का विषय बने। फिर कभी मिथ्यात्व की भी बात करूंगा। यह आश्चर्यजनक लगी, फिर उन्होंने कहा कि बध तो कषाय से होता है पुण्य की व्याख्या करते हुए कि पुण्य तत्त्व अलग है, पुण्य बन्ध अलग है, पुण्यास्रव अलग है ये तीन पुण्य कहे। उनमें पुण्य तत्त्व की जब व्याख्या की तो कहा कि "पुण्याति आत्माति पुण्यम" जिससे आत्मा पवित्र होती है वह पुण्य होता है। उन्होंने कहा कि कषाय से आत्मा पवित्र होती है कि अपवित्र, तो कहा कि कषाय से आत्मा पवित्र और पुण्य से आत्मा अपवित्र होती है। क्या ? तो कहा नहीं कि पुण्य से तो आत्मा पवित्र होती है, इसलिए पुण्य को पर्याय वाचियों ने मंगल शब्द से पुकारा। पुण्य मगल ऐसे १० पर्यायवाची शब्द दिये हैं। उन्होंने मंगल शब्द की उत्पत्ति की तो कहा कि मंगलगालति तो मंगल जो मल को नष्ट करे वो मंगल वही हुआ पुण्य, इससे सिद्ध होता है कि पुण्य से तो पाप का क्षय होता है, तो आत्मा पवित्र होती है। तो उन्होंने दो कार्य बताये, इससे कहा कि पुण्य से पाप क्षय भी होता है और आत्मा में विशुद्धि भी आती है। तो दो कार्य बताये वह कैसे कर सकता है ? अभी तक कहते

आये कि पुण्य से बंध ही बंध होता है, तो उन्होंने कहा कि बंध केवल स्थिति बंध ही बंध कहलाता है । प्रदेश बंध और अनुभाग बंध, प्रकृति बंध ये सब इस स्थिति बंध पर टिके हुए हैं, और जो स्थिति है वह प्रदेश बंध पर मानी, अनुभाग जो है पुण्य प्रकृतियों को बढ़ाता है, जब स्थिति बंध पाप का ज्यादा होता है, तब पुण्य की स्थिति घटती है । पुण्य बढ़ेगा तो पाप घटेगा पाप बढ़ेगा तो पुण्य घटेगा । केवल मात्र बंध तो स्थिति बंध ही है प्रदेश बंध प्रकृति बंध कोई मायने नहीं रखते हैं और अनुभाग पुण्य प्रकृतियों का हो चाहे पाप-प्रकृतियों का हो, बिना कषाय से नहीं हो सकता है । उन्होंने स्पष्ट डंके की चोट यह बात कही है कि प्रदेश भी टिकेगा जब ही जब स्थिति बंध होगा । आगे चलकर समयसार में नवद्या-आत्मा न बंधी हुई है न अवद्य है, फिर क्या है दोनों से परे है । बंद्य और अवद्य की चर्चा से परे हो जाये तो समयसार है ऐसा कहा तो मुझे लगता है कि आचार्य कुन्दकुन्द देव ने भूतबलि, पुष्पदन्त को भी अच्छी तरह पढ़ा था, तभी उनका जो उल्लेख आता है कि सत् खण्डागम् के ऊपर भी कुन्दकुन्द ने टीका की है, यह बात तथ्यपरक है । अब ये बात जरूर है कि जो ग्रन्थ आ विद्यानन्द द्वारा लिखे गये वे महोदय उपलब्ध नहीं हैं समन्तभद्र द्वारा लिखित ग्रथ हस्ती महावास भी उपलब्ध नहीं है । ऐसे महान् ग्रन्थ जो अनुपलब्ध हो गये वो रहस्या रहस्य ही रह गये वैसी स्थिति में हमारे लिये भूतबली और पुष्पदन्त के ऊपर भी ये गोष्ठी कभी करना चाहिए, उससे एक बात समझ में आयेगी कि इन दोनों का योग दान कुन्दकुन्द के लिए कितना अधिक रहा है । इनने उन दोनों को पढ़कर अपने ग्रन्थों में जो यह चार विवन्द के कारण बतलाये पाँच को हटा करके १ प्रमाद को हटा दिया । कुन्दकुन्द ने बंध के चार ही कारण बताये । परन्तु उमास्वामी ने सत्खण्डागम को पढा, पढ़कर उन्होंने अपना मत लिया, कि उन्हें सत्खण्डागम् के कार्य अच्छे लगे । कुन्दकुन्द की परम्परा को उन्होंने थोड़ा प्रमाद को लिया । बंध तो होता ही है, जो उन्होंने चार ही बंध के कारण बताये, कुन्दकुन्द ने तो । उमा स्वामी भी चार ही कह देते, परन्तु उन्होने प्रमाद को लिया, इससे सिद्ध होता है कि सत्खण्डागम् काव्य को उन्होंने पूरीतरह से पढ़,, फिर पढ़करके तदनुसार गर्भित करना अलग बात है । प्रश्न ऐसा है कि पाँच बध के कारण बतला देवे तो कुन्दकुन्द को भी कोई बड़ी भारी दिक्कत नहीं थी । इस ढंग से भूतबली पुष्पदन्त को पढना बहुत जरूरी है और धवला, महाधवला जय धवला ये नहीं पढ़ते हैं तो निश्चित रूप से द्रव्यानुयोग पूरा समझ नहीं आ सकता, उससे एकान्त यानि निश्चयावासी बनने के ज्यादा खतरे रहते हैं । जैसे बनारसी दासजी पहले बन गये थे फिर बाद मे उनको पंडितजी ने समझाया, तब जाकर के लाइन पर आ गये ।

कुन्द कुन्द व्यक्तित्व

पंडित हेमचन्द्रजी शास्त्री

भारत वर्ष में श्रावकों एवं त्यागी गणों में सब जगह समय सार की धूम मच रही है, परन्तु मैंने वह पढा नहीं है उसको छोड़कर मैंने विषय चुना है कुन्दकुन्द व्यक्तित्व कृतित्व । हम इस

दायरे में २५ मिनट में मैं अपने स्वयं के विचार रखूंगा । इसमें भी व्यक्तिगत विशेष नहीं है । अध्ययन करने पर जो समझा, अच्छा लगा, यह मेरे स्वयं के विचार हैं, दूसरों के नहीं । साहित्य का अवलोकन करने के उपरान्त विद्वानों की राय रही है कि जिस व्यक्ति को आपको परखना है तो सबसे पहले उसके व्यक्तित्व की जाँच करो । परिस्थितियों से उसका संतुलन करो । एक बात और मिलती है क्योंकि साहित्य की रचना समय के मान के हिसाब से होती है । साहित्य में सारे समाज की दर्पण सरीखी चमक आया करती है । विशेषत: पार्श्वनाथ और महावीर का जो अवतरण हुआ उस अवतरण में बिहार भूमि आती है । बिहार की भूमि के ऊपर बीसीयों बार जाने का मौका पड़ा है, कई बार विहार के कारण ही बिहार हो गया है । लेकिन वहाँ मुझे बड़ा अटपटा सा लगा कि पार्श्वनाथ का जितना जो भी विवरण वहाँ पाया जाता है, उनके अनुयायी आज भी मौजूद है जो कि सवाशरास्त जाति के नाम से पुकारे जाते हैं, परन्तु महावीर के ढाई हजार वर्ष बाद में ही बहुत कम मान पाया जाता है । नालन्दा विश्वविद्यालय की बड़ी-बड़ी दीवारें आज पार्श्वनाथ का सम्प्रदाय वहाँ चला उनकी मूर्ति वहाँ बनी । जहाँ तक हम देखते हैं कि सूरज पहाड़ जो गोहाटी तक है वहाँ भी उनकी मूर्ति मिली वह पाँच हजार वर्ष पुरानी मानी जाती है । कहाँ तक इतिहास देखा जाय, मेरी तो कुछ ओर ही धारणा है कि ये तीर्थंकर धर्मचक्र के प्रवर्तक नहीं होते सुनकर कहेंगे ये क्या नई बात कह रहे हैं, मैं प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ कि गणधर देव नहीं आये तब तक भ. महावीर की वाणी चिन्तक रूपी रही, उसका कारण क्या है ? हमारे यहाँ जितने भी तीर्थंकर हैं उनका चीफ कमाण्डर इन्द्र होता है । तीर्थंकर किसी को दीक्षा नहीं देते, बोलते नहीं हैं । यह प्रमाणित है कि जिस दिन वैराग्य लिया उस दिन से ही मौन धारण कर लिया और जब केवलज्ञान हो जाता है दिव्य ध्वनि खिरती है, शब्दावली नहीं होती है जिसे कि सब अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं ऐसी दिव्य ध्वनि होती है उस ध्वनि का अर्थ लिया जाय जिसे मैं सम्बोधित करता हूँ, गौतम गणधर से गणधर लोग समवशरण आये और कहते हैं कि इन्द्र वहाँ बुलाने की वेश बदल कर गया, बुलाकर लाकर भगवान का सामना करवा दिया भगवान का समवशरण देखते ही उसे तत्काल वैराग्य हो गया । बड़ी-बड़ी दाडी थी जटाएँ बड़ी हुई थीं सब उखाड़ फेकें, इस प्रकार गौतम गणधर प्रधान शिष्य तत्पर विराजमान हो गये, तभी भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि खिरना प्रारम्भ हुई ।

विचित्र हालत है कि तीर्थंकरों को तीर्थंकर बनने के लिए कितने जन्मजन्मातर तक कितने ही प्रयासों के द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं । यह वह पूर्ण प्रकृति है कि जिसके बाद कोई प्रकृति बांधना शेष नहीं रहा । चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदि के लिए कोई प्रकृति नहीं बांधनी पड़ती है, लेकिन तीर्थंकर प्रकट होने के लिए प्रकृति है । वह सर्वोत्कृष्ट प्रकृति है, इसमें ऐसा जिद्दीपन है कि एक बार बंध जाय तो फल दिये बिना नहीं छोड़ती है, इसलिए इसे निकायचित्त कर्म प्रकृति कहा जाता है तीर्थंकरों के पूर्व भावावली जो है और आ. कुन्दकुन्द के सम्बन्ध में थोड़ा-सा प्रसंग जोड़ता हूँ ।

आ. कुन्दकुन्द कुन्दकुन्दनगर में पैदा हुए थे हमें उसका असली नाम जानते नहीं हैं, मालूम नहीं हमको न जाने क्या नशा सा चढ़ जाता है कि जहाँ अतिशयवाद की बात आती है वहाँ हमारे

पेट में उछलकूद पैदा हो जाती है चमत्कार, लेकिन तीर्थंकरों के चमत्कार उनने स्वयं ने किये या आप हमने किये या अन्य लोगों ने किया। नहीं, वह तो स्वयं उनकी कर्म प्रकृति देव आकर करते हैं। कर्म प्रकृति फल देती है और उस पुण्य से भक्त लोग उसे ऊँचा उठाते हैं, अन्त में जाकर अपना अराध्यदेव सर्वोत्कृष्ट बनाने की प्रेरणा उन शिष्यो की होती है जो उनके महात्म्य को जानते हैं। मैं इसलिए यह बात कह रहा हूँ कि कुन्दकुन्द क्या जन्म से थे या किसी ने बनाया ? पूर्व पुण्य प्रकृति काम की थी, मेरी ऐसी धारणा है कि शायद कि कुन्दकुन्द पूर्व भव में अवश्य ही जैन मुनि रहे होंगे, वे स्वर्ग से आये होंगे। उनके माता पिता भी होगे जिनके ये पुत्र हुए। हाँ ! कुन्दकुन्द की माँ ऋषि कुक्षी कुन्दकुन्द को ही शायद पैदा कर सकी, जब ये माँ के गर्भ में आये उसकी तुलना उन तीर्थंकर से कर सकता हूँ कि जब तीर्थंकर गर्भ मे आते हैं तो बड़े सुन्दर स्वप्न उन्हे दिखाई देते हैं। उसी प्रकार जब कुन्दकुन्द गर्भ मे आते हैं तो जमाना पलट जाता है, सब जगह हरियाली नदियों में पानी आ जाता है, बादल बरसने लगते है, सब प्रकृति का परिवर्तन हो जाता है। यह नाम कर्म की पुण्य प्रकृति का फल है, जब ये पैदा होते हैं तो उनका नाम पद्मनन्दी रखा। पद्मनन्दी जब झूले में झूलते हैं तब उनकी माँ उन्हे लोरियाँ सुनाती हैं। ''शुद्धौसि, बुद्धौसि निरंजनोसि समस्त माया पर वेर तोसि'' ये उनके कानों में सुनाया जाता है। तब कुन्दकुन्द पूर्व कर्म के उदय से बढने लगते हैं। दक्षिण को भाग्यशाली मानता हूँ कि जहाँ सारे के सारे आचार्य ग्रन्थ की रचना करने वाले यहाँ हुए है। उत्तर प्रदेश मे तीर्थंकर हुए हैं। जब बारह वर्ष का अकाल पड़ा तब दिगम्बर शब्द के साथ मे बगल में ही रक्ताम्बर और श्वेताम्बर ये पैदा हो सके थे और इस संघर्ष के बीच मे क्योंकि शासन बदलने के साथ अकाल पडा। अकाल पडने के बाद मे जो है उत्तर प्रदेश आक्रान्त होने के कारण आदमियो के रहने के लायक नहीं रहा हो सकता है कि भद्रबाहु महाराज के बारे में जो कि वर्णन लिखा हुआ है चौबीस हजार साधु चले बारह हजार उधवी तक आये बारह हजार आगे गये और आगे जाने के बाद वह दक्षिण में पहुँच गये आज मैं यह दावे के साथ आपको कहता हूँ दक्षिण मे साधुओं का गुजारा बहुत आसानी से होता था और आज भी होता है उत्तर प्रदेश मे साधुओ का निर्वाह कैसे होता यह तो अजमेर वाले जानते हैं और अजमेर में जो हवा है जिन्होंने भी निवास किया वह अच्छी तरह समझते हैं उधर का जलवायु बडा अच्छा है और वहाँ उपवन और वन प्रदेश गली गली में मैं तो कई बार घूम कर आया हूँ कई बार वहाँ की घाटियाँ जो है सारे के सारे स्तर का प्रसग है वहाँ मूलधर्म की पालना हो सकता है वह मूल धर्म वहा पहुँचा और ये लोग रहते थे वन प्रदेशों मे उपवन प्रदेशो में और गृहस्थ के साथ इनके सम्पर्क थे वह केवल दिनचर्या करने के थे चर्या करने गये और आये और अपने ध्यान में मग्न हो गये। मैं इसलिए भी अदाज लगाता हूँ कि करणानुयोग की चर्चा और भूतबली पुष्पदन्त जिनका कि पंडितजी महाराज ने बहुत सारा वक्तव्य कहा वो चर्चा करते-करते इनका समय यापन होता था ग्रन्थ रचनाये होतीं थीं बड़ी कठिनता थी ताड़ पत्र के ऊपर सुइयों से छेद करके ग्रन्थों को लिखना यह कोई तमाशा नहीं हे, डायरियाँ बनाई जा सकती हैं बढिया से बढ़िया टाइप बनाया जा सकता है लेकिन त्यागी वर्गों को कहूँगा कि एकाध ताड़ पत्र भी बना डालो लिखो अपनी जिन्दगी में लिखो मेरे पास रखा हुआ है मैं आपको नमूना दे दूँ भक्तामर मेरे पास रखा हुआ है मैं उसका

नमूना दे दूँ मेरे पास सोने के अक्षरों में तत्त्वार्थ सूत्र और क्या भक्तामर लिखा हुआ है उनको दे दूं- लेकिन सोने के भक्तामर रईसी के द्योतक हैं और ताड़पत्र है वह शायद साधना की द्योतक है । वह चर्चा चलती रहती थी श्रावकों का प्रसंग आता है मैं नहीं समझता साधु जो है वह आहार के अलावा गृहस्थों को गाँव-गाँव जाकर के उपदेश देने जाते थे या गृहस्थ जो है वह साधुओं के पास आकर के जो धर्म उपदेश सुन आते थे । आपको क्या कहूँ-कुन्दकुन्द ग्यारह वर्ष के थे आज का बच्चा पेन्ट के बटन नहीं लगाना जानता और कुन्दकुन्द वह एक दिगम्बर साधु के समक्ष बैठे हैं और बैठने के बाद उन्हे देखकर के ध्यान मग्न हो गये गुरु ने भापा यह लड़का कैसा है यह क्या होगा आगे ये गुरुओं के आशीर्वाद और गुरुओं के छायायें जिसके ऊपर पड़ गई मैं समझता हूँ वो कृतार्थ हो गया जीवन रास्ता उसका पलट जायेगा प्रसंग आया ये कि कुन्दकुन्द ग्यारह वर्ष की उम्र में चिन्तनशील हो गया पहली चोट गर्भ से लेकर के ग्यारह वर्ष तक की माँ की लगी और अब आकर के जो है गुरु का साया मिल गया कुन्दकुन्द बालक परमानन्दी बालक अब आगे बढ़ा और उनके साथ-साथ में मुझे कोई अच्छे प्रमाणिक तथ्य नहीं मिले लेकिन इतना जरूर जानता हूँ कि कुन्दकुन्द जो है कुमार अवस्था में ही दीक्षित हो गये थे क्या तेरह वर्ष का बच्चा या पंद्रह वर्ष का बच्चा मुनि बनकर के आपके सामने आ जाय तो आप दाढी मूंछ वालों के बूढों के और जवानों के दिमाग में एक ऐसी सिहरन पैदा हो जायेगी कि इसे क्या हुआ । मैं कहता हूँ कुन्दकुन्द दीक्षित हो गये । दीक्षित होने के बाद मुनि दीक्षा का काल काफी लम्बा तो नहीं रहा । लेकिन फिर भी बहुत लम्बा था और ऐसे धर्म उपदेश पढ़ने को मिले फिर उन्होंने छप्पन साल तक आचार्यत्व जो है वह किया और वे दीर्घ जीवी रहे । दो घटनायें और उनके साथ जुड़े हैं एक घटना जो है वह है क्या कहू गिरनार से आने के बाद दूसरी घटना है कुन्दकुन्द स्वामी के समवशरण में जाने के बाद दोनों ही घटनाओं को मैं कहता हूँ कोई असम्भव विषय नहीं है गिरनार क्या आये वो और क्यों जो है, वो घर से आकर के यहाँ रहे जो है यहाँ शास्त्रार्थ क्यों हुआ और अम्बिका की आवाज क्यों की गई उसके बाद दिगम्बर शब्द जो है वह बोला गया यह सब जो है वह उस समय के धार्मिक परिवर्तन या यों कहिये कि उस देश की परिस्थिति में साधुओं में जो शैथिल्य जो आया उस शैथिल्य को बड़ा शैथिल्य तो वस्त्र धारण का है बाकी का शैथिल्य जो आया उस शैथिल्य को दूर करने के लिए दोनों पक्ष जो है वह उसी प्रकार खड़े हो गये जिस प्रकार से आज कहा जाता है "मंगल भगवान वीरों मंगलम् गौतमोगणी मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं" क्या है एक ही बात को जो है वो दो जने बाँट करके खा रहे हैं इस बात को अगर आप सोचेंगे तो मैं उनके साहित्य की थोड़ी-बहुत जो हवा है वह लेकर के मैं दावे के साथ आपको कह सकता हूँ कि जो दिगम्बरत्व की स्थापना श्वेताम्बरत्व में जिस महान् व्यक्ति ने की वह व्यक्ति जो है वह कुन्दकुन्द है इसलिए ये दो पत्ते के टूंड है ना वह तीन व्यक्ति के साथ में मिल जाते हैं एक व्यक्ति के लिए परिवर्तन क्यों किया गया कुन्दकुन्दाद्यों स्थूल वदाद्यों यह क्या होता है सही बात जो है जब हम अपने पक्ष पर अड़ जाते हैं तो दूसरी-दूसरी दुकान को गंदा कहते हैं चीज एक ही है लेकिन हमारे मन की कलुषता इस बात के लिए बाध्य करा देती है हम जो हैं वह यह कहे शास्त्रार्थ होना ज्ञानियों का बड़ा भारी काम था पहले राजा लोग विद्वानों को पाला करते थे पूरा ध्यान रखते थे एक बार मैंने

भी एक लेख लिख दिया था। मैंने कहा पंडित बना हाथी तो लोगों ने कहा क्या कह रहे हो ? मन में आ गई थी लिख दी हाथी साल में एक दिन दशहरे के दिन निकलता है। पंडित वो केवल पर्यूषण में दस दिन बाहर आते हैं जैसे हाथी झूमता है खाते-खाते वैसे ही पंडित लोग झूमते रहते हैं लेकिन उनको रखना राण्य का भूषण था। कुन्दकुन्द स्वामी की जीत हुई उन्होंने दिगम्बरत्व की स्थापना कर दी इस बीच एक और घटना घटी लोग कह रहे हैं कुन्दकुन्द विदेह क्षेत्र गये थे, किसी देव के सहारे सीमंधर स्वामी के पास पहुँच गये और पहुँच जाने के बाद में वहां के लम्बे चौड़े हाथ को देखकर के कुन्दकुन्द स्वामी यह ही नहीं समझ पाये कि मैं बच्चा हूँ या बूढा हूँ या छोटा हूँ। और यह भी कथन आता है सात दिन तक वो वहाँ रहे वहाँ का चक्रवर्ती दर्शन करने आया छः इंच ऊँचे जो हथेली थी उस हथेली पर रख लिया हथेली पर रख करके देखा और दिखाया फिर भगवान् सीमधर स्वामी से प्रश्न किया कि यह कौन सा मनुष्य जाति का कीड़ा है तब दिव्य ध्वनि हुई थी यह भरत क्षेत्र का प्रसिद्ध आचार्य कुन्दकुन्द है इन्होंने ही दिगम्बर की स्थापना की है उन सीमंधर स्वामी के प्रभाव से उनकी ग्रन्थ रचना चालू की कुन्दकुन्द की रचनायें कुछ कलात्मक हैं और कुछ भक्तात्मक। केवल बाईस रचना आज तक अपने को प्राप्त हुई जिसमें समयसार नियमसार और पंचास्तिकाय, प्रवचनसार। नियमसार एक ग्रन्थ अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। इस तरह से उनका साहित्य मिला मैं कुछ इस दृष्टि से भी सोचता हूँ कि कुन्दकुन्द की सबसे पहली जो पुस्तक है वह कौनसी है जो उन्होंने लिखी वो कहाँ से लिखी कैसे लिखी, इस बात कि मुझे चिन्ता नहीं है कौनसी पुस्तक पहली है क्या समयसार सबसे पहला है या जो सबसे पीछा है या कौन बीच में है नियमसार कब लिखा गया ? पंचास्तिकाय कब लिखा गया आलोचना का जब विषय आया तब लोगों ने जो कह दिया पंडितजी समयसार जो है यह सम्यक् दर्शन प्रधान है पंचास्तिकाय कार्य है वह सम्यक् ज्ञान प्रधान है और प्रवचनसार चारित्र प्रधान है शुद्ध भक्तियोग क्या प्रधान है यह आपके चारित्र भक्ति आश्चर्य होता है, पाहुड़ आठ ही क्यों लिखे, लश्कर में लक्ष्मीचन्द्रजी रहते हैं उन्होंने यह लिखा कि उन्होंने ८४ पाहुड़ जो लिखे थे उनका भी उल्लेख किया महाराज श्रुतसागरजी कलकत्ते वाले उनके साथ में काफी घुटी और घटन के साथ-साथ मैंने कहा महाराज टुकड़े कर करके किसी तरह ८४ बनाओ निर्ग्रन्थों के भी टुकड़े किये समयसार के भी टुकड़े किये प्रवचन सार के भी तीन टुकड़े कर दिये। पंचास्तिकाय के अध्याय गिन लिये आठ पाहुड़ भी गिन लिये टीका में भी देख ली और पता नहीं चल पाया वो सारे छठबीस से ज्यादा आगे बढ़े ही नहीं। क्या है ये उनका साहित्य है और साहित्य के बारे में बहुत करीब है और मैं नहीं चाहता हूँ समयसार केवल आत्मा की याद दिलाता है और कुछ अन्तिम बात आपको कह रहा हूँ समय सार केवल आत्मा की याद दिलाता है और कुछ नहीं जो भी उनकी पहली गाथा या दूसरी है "शुदपरिचिदानभूदा" इस ग्रन्थ में सारे समय सार का सार आ जाता है दो शब्द आगे जाकर मिलते हैं कुन्दकुन्द जगह-जगह पर बात करते हैं, स्वसमय पर समय मेरी स्थूल बुद्धि में एक ही बात आई स्वसमय क्या है शुद्ध आत्मा पर समय क्या है इससे सम्बद्ध कोई भी चीज समयसार केवल दर्शन को आत्मा के घेरे में लेकर के चलता है और चिल्लाने के साथ उस समयसार को हम पढ़ते हैं सबसे बड़ा जो कष्टकर विषय वह यह हुआ कि हमारे यहाँ समयसार के ऊपर दो टीकायें मिली

अमृतचन्द्र की और जयसेन की । उसके बाद पंडित बनारसी दासजी ने समय सार नाटक और उसके बाद में तो न जाने कितनी-कितनी टीकायें एक दर्जन तो होंगी कम से कम वे सारी की सारी लिखी और उसके बाद में प्रवचन चले समय सार रह गया पीछे और प्रवचन आ गये आगे । लोगों ने देखा कि यह क्या है यह क्रान्ति आई और क्रान्ति आने के बाद में समयसार का अबलम्बन लेकर के व्याप्त हुई लेकिन मैं दुख के साथ यह कहता हूँ कि दोनों ही को समयसार का पाचन हुआ ही नहीं समयसार के पाचन को जो शुद्ध दृष्टि से देखते हैं उनके आचारों में कोई उत्कृष्टता नहीं आई और जो अपने आपको आचार विचार का अधिकारी समझते हैं उन्होंने समयसार को टटोलने की कोशिश ही नहीं की । मैं आपको सूचना दे दूँ कि विचक्षण साध्वी बहुत अच्छी थी एक बार उनसे जो मिलने का मौका पड़ा उस साध्वी ने सबसे पहले ये वाक्य बोला कि आप जो मुझे देख रहे हैं वह सब जो है समयसार की कृपा है । मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ ।

मैंने कहा-परम्परा कैसी परम्परा और उसमें जो विनयशील साध्वी समयसार की प्रशंसा करे मैं जब वहाँ भी गया जिसके कि बारे में मुझे नाम लेने की जरूरत नहीं वहां मैंने जाकर के स्वाध्याय किया वहाँ पर जो है वह दिव्य दृष्टि से कहते हैं ये द्रव्य दृष्टि होती क्या है, द्रव्य दृष्टि है क्या ? यह द्रव्य अकेला कोई पदार्थ है क्या ? नहीं हैं, क्या उत्पाद द्रव्य पुरुष योगार्थ नहीं है क्या ? इन सब बातो का अगर तथ्य पैदा किया जाय तो केवल एक ही बात आती है । कि बड़ा विचित्र हो गया जो चीज आत्मा के अनुभव करने की वीतराग साधुओं की थी वह जो है पहुँच गई कहीं और । वहाँ की जो चीज आई उसका पाचन हमारे यहाँ वालों को नहीं हुआ यह विषमता कैसे दूर हो ? उसका उत्तर मैं आपको थोड़ा-सा देकर के खत्म ही कर दूँगा अपनी चीज को अगर समयसार पढ़ना हो तो किसी विद्वान के पास में पहले अमृतचन्द्र की पुरुषार्थ सिद्धि का आप पहले गहरा अध्ययन करिये अगर आपको आप नहीं समझ आये तो समयसार का पूरा लेख पढ़ लीजिए और पढ़ने के बाद मे अमृतचन्द्र ठाकुर है वह जो है एक पक्षी में व्यवस्था है वह किसी भी एकान्ती के गले को काट सकती है, मस्तक को काट सकती है दूसरी चीज अगर हम आ गये तो आ जाने के बाद अपना पदस्थ देखो हमारा पदस्था क्या है हम समयसार की बातें जानते नहीं और कहते हैं आचार-विचार में शिथिल हो गये यह बड़ी भारी बात है । जो आदमी जो हवा आचार-बिचार में दृढ़ है और वो संयम करके कषाय और समयसार उनका जो है पाचन हो जाने के बाद उनकी आत्मा का कल्याण कर सके । ये निष्कर्ष मेरा स्वयं का है वह यह है कि क्रमवद्ध अध्ययन होना चाहिए । शास्त्र की भाषा को समझने के लिए धैर्य धारण करने की जरूरत है, इनका पकड़ा और किसी के ऊपर अड़ जाना और किसी पंथ और आम्नायवाद के चक्कर में पड़ जाना हमारी आम्नायें ये है हमारी परम्परा ये है । मैं इन सब चीजों के ऊपर कोई ज्यादा बल यो नहीं देता, ये परम्परायें सब कषाय से सम्बद्ध है और समय सार आत्मा को निष्कषाय बनाने का प्रयत्न करता है । भगवान् हमें बुद्धि दीजिए भगवान् कुन्दकुन्द हमारे हृदय में विराजे और हम निष्पक्ष होकर उनके लिखे आगम के सार को जिन्दगी के सार को आत्मा के सार को अच्छी तरह से अध्ययन कर सके यही हमारी भावनाएँ हैं मैं जानता हूँ इसमें किसी का तर्क नहीं हैं और कोई भी बाधा होवें तो महाराज समयसार लेकर के मेरे पास मत आइयेगा मैं समयसार जानता नहीं हूँ क्योंकि मैं अभी भी रागद्वेष में फंसा हुआ हूँ और रागद्वेष जो करने वाले हैं उनको समयसार कहीं अजीर्ण न पैदा कर दें इन्हीं भावनाओं के साथ कुन्दकुन्द हृदय में विराजे रहे ।

श्री कुन्दकुन्द की देन

आर्यिका गणिनी विजयमती माताजी

आचार्य परमपूज्य कुन्दकुन्द देव कुन्दकुन्द आचार्य क्या दे गये और हमने उसका क्या उपयोग किया ? एक विचारणीय प्रश्न है । देने वाला देता है परन्तु लेने वाला यदि उसको सम्भाले नहीं तो क्या होता है ? धर्म एक सनातन वस्तु है और हमारे सिद्धान्त के अनुसार यदि मैं कहूँ कि उसी प्रकार आगम भी सनातन है, अनादि अनन्त है, फिर कुन्दकुन्द ने दिया क्या आगम के पास कुछ भी नहीं रह जाता है । द्वादशांग से बहिर्भूत कुछ भी नही है आचार्य कुन्दकुन्द ने हमें वही दिया जो द्वादशांग मे है, जो सर्वज्ञ की वाणी मे है, जो जिनवाणी में है । लेकिन हमे उसे कुन्दकुन्द की देन कहे या कहते हैं इसका अभिप्राय क्या जिस वस्तु को हम भूल चुके थे जिसके लिए हम भ्रमित हो गये थे जिसको हम अपनी अज्ञानी बुद्धि के कारण समझ नही पा रहे थे । भगवान कुन्दकुन्द ने हमको वह समझ दी, वह बुद्धि दी, वह मार्ग दिया, वो राह दी कि जिसके कारण हम सत्य और तथ्य के पास पहुँच सके । लेकिन सबकी बुद्धि एक समान होती नहीं लेकिन देने वाले ने जो दिया उसका उपयोग करने वाले पर निर्भर रहता है यदि हमने सच्चा सही मार्ग में उसका उपयोग नहीं किया तो निश्चित है हमें भटकना पडेगा । यही कारण है कि आचार्य कुन्दकुन्द को लेकर के लोग कहते है कि कुन्दकुन्द ने उलझन मे डाल दिया । उनके साहित्य को उलझन मे डाल दिया । लेकिन मैं कहती हूँ कि सुलझे को उलझन मे कौन डाल सकता है ? लेकिन जो स्वयं उलझा हो वह सुलझा भी तो नहीं सकता । तो हम स्वयं उलझे हुए है यह हमारी बुद्धि का दोष है । सूर्य उदय होता है सबको प्रकाश में आनन्द मिलता है, सभी प्रफुल्ल हो जाते हैं, यहाँ तक कि वनस्पतियाँ भी प्रफुल्लित हो जाती है, कमल खिल जाता है, लेकिन अगर उल्लू उलटा मुँह करके अपनी मांद में बैठ जाता है तो यह क्या सूर्य का दोष है ? उसे नही दिखता है वह अधा हो जाता है । सूर्य क्या करेगा ? उसी प्रकार कुन्दकुन्द ने जो हमको दिया वह सुलझा हुआ है, वह अमृत है, वह अमृत से भरा घड़ा है, हमारे पीने की हमारा डाइजेशन करने की हमारे पचाने की योग्यता जितनी हो उसके हिसाब से हम उसको ग्रहण करेंगे तो हमको सुपाच्य बन जायेगा । अगर हमने लालायित होकर के व्यग्रता के वशीभूत होकर के उसको अधिक मात्रा मे पान कर लिया तो, तो वह हमारे लिये विष का काम ही करेगा । आज हमने कुन्दकुन्द के साहित्य को केवल बाह्य दृष्टि से देखा, उन्होंने किस दृष्टि से कहा और किस दृष्टि से हमारे हृदय में पहुँचाने की बात कही उस दृष्टि से हमने चेष्टा नहीं की, यही कारण है कि हम बीच मे ही उलझ गये आचार्य परमदयालु होते हैं वो अपने हृदय की वस्तु को दूसरे के हृदय तक पहुँचाने की कोशिश करते हैं । धरषेणाचार्य ने जब देखा कि मेरी समाधि का काल आ गया उन्होंने विचार किया मेरे हृदय के अन्दर जो घडा भरा हुआ है कहीं यही न रह जाय आगे क्या होगा ? श्रुत का विच्छेद न हो जाय इस भय से उन्होंने पुष्पदन्त और भूतबली को अपने हृदय का सारा रस उडेल दिया । उन्होंने अपनी योग्यता के अनुसार सही दृष्टि से सही मापदण्ड से उसको ग्रहण किया तो हमारे सामने आज यह धवला, जयधवला, महाधवला के रूप मे हमें प्राप्त हो रहा है । ये उपलब्धियाँ उनकी योग्यता से मिली हैं ।

आज की बात नहीं है यह बात तो हजारो वर्ष पुरानी है तो जब हम इन ग्रन्थो को देखते हैं तो ऐसा लगता है कि उस समय केवल करणानुयोग की चर्चा ज्यादा होगी अब द्रव्यानुयोग कुछ दबने लगा और कुन्दकुन्द आचार्य ने उस दबती हुई शृंखला को ऊपर लाने के लिए द्रव्यानुयोग की चर्चा उठाई । चर्चा ही नहीं की उन्होंने उसको लिपिबद्ध किया जो हमारे लिये आत्म पुष्टि का एक साधन प्रदान किया । किन्तु वर्तमान में पाठक गण इसी द्रव्यानुयोग को आधार बनाकर एकान्तवाद को प्रश्रय देते हुए झगडा पैदा कर रहे हैं । इन विवादो व झगडो का कारण यह है कि हम नय विवक्षा को नहीं समझ रहे हैं । समन्तभद्र स्वामी ने स्पष्ट कहा है कि "निरपेक्षा: नया: मिथ्या, सापेक्षों वस्तुत अर्थकृत" जितने निरपेक्ष नय होगे वे उलझन में डालने वाले होंगे, जो सापेक्ष होंगे वे सब हमारी उलझनो को मिटाने वाले होगे । सत्य के ऊपर चलकर हमको तथ्य के दर्शन कराने वाले होगे । आपको दो नैन है नयन दृष्टि यदि बराबर है तो आपको सभी पदार्थ दिखाई सही पड़ेगा एक मे भी विकार हो गया तो सही पथ हमको दिखाई नहीं पड़ेगा । ट्रेन जा रही है यदि दोनों पटरियाँ समान हैं समानान्तर हैं तो हमारा मार्ग आसानी से तय हो जायेगा और एक में भी कमी आ गयी तो ट्रेन या तो खडी हो जायेगी या विपरीत हो जायेगी, उलट जायेगी तो इसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने न निश्चय को प्रधान किया और न व्यवहार की उपेक्षा की । दोनों को लेकर के चले और दोनो के द्वारा ही हम लक्ष्य पर पहुँच सकते हैं वरना कभी भी नहीं पहुँच सकते हैं । उन्होंने कहा कि ये जो आध्यात्मिक चर्चा है सामान्य चर्चा नहीं है । यह बड़ी विकट है लेकिन जब समझ मे आ जाती है तब उतनी ही सरल भी हो जाती है । साधक जाता है गुरु के चरणों में और कहता है कि भगवान मैं आत्मा को जानना चाहता हूँ । कुन्दकुन्द ने हमको स्वयं का दर्शन कराया । कुन्दकुन्द ने हमें आत्मा दिखाई । कून्दकुन्द ने हमें आत्मा बताई । मैं कहती हूँ इसमें कोई फर्क नहीं हो सकता है । हमें आत्मा कोई दिखा नहीं सकता है । साक्षात् भगवान् भी समवरशरण मे बैठकर अपनी हथेली पर रख आत्मा के दर्शन नहीं करा सकते हैं । वो मार्ग बतला सकते हैं केवल, वे आपको यह बतला देगे कि इस मार्ग पर चलो आपको आत्मा का दर्शन होगा । आत्मा का दर्शन हम स्वय करेगे अपनी अनुभूति से करेंगे और अपने अन्दर अपने द्वारा अपने ही लिये उसको देख सकते हैं । समझ सकते हैं । आनन्द ले सकते हैं । यह कुन्दकुन्द भगवान ने हमको बताया और उस मार्ग पर चलने के लिए हमको कहा तो जब वह मार्ग हमारा है । हमें उस पर चलना है और निश्चय भी नय है और व्यवहार भी नय है और जहा आत्मा की बात आती है आध्यात्म की बात आती है ओर जहाँ साधनों की बात आती है, उपलब्धि की बात होती है तो वहाँ पर नय का कोई स्थान नहीं है । फिर क्यो हम झगड़ें कि यह व्यवहार और यह निश्चय दोनों ही मार्ग हैं दोनों ही सीढ़ियाँ है हमको चलाने के लिए अभी जैसाकि आपको बतलाया नाव व किनारे पर आने की बात । यह नाव बडी अच्छी है क्योंकि मेरे को लेकर के आई है मुझे पार कर दिया ऐसा समझकर यदि हम नाव से अपने कदम आगे न बढ़ायें तो किनारे का हमको आनन्द मिल नहीं सकता है । तो दोनों ही अपने अपने स्थान पर दोनों ही नय रह जाने वाले हैं । कोई भी आत्मा के साथ जाने वाला नहीं है । दोनों ही साधन हैं लेकिन क्रम-क्रम से । आज जो साधन वह कल साध्य बन जाता है और साध्य भी आगे की अपेक्षा से साधन बन जाता है । बड़ी गहन गुत्थी है

इस बात को समझना होगा । मैं कह रही थी कि साधक आकर के यह कहता है कि मुझे आत्मा का दर्शन करना है आचार्य परमेष्ठि कहते हैं कि भैया आत्मा का ध्यान करो । सारे संसार के विकल्पों को छोड़ दो । संसार की ओर से अपनी दृष्टि को फेर लो । संसार को छोड़ दो । संसार है क्या ? हमारे दोषों का फेर ही संसार है हम सड़क पर जाते हैं एक स्टोन मिलता है आप कहाँ जा रहे हैं ? जयपुर जा रहे हैं एक स्टोन मिला लिखा हुआ है जयपुर इतने किलोमीटर आपका लक्ष्य इधर है न । जयपुर की ओर है क्या लिखा है, जयपुर । इतने किलोमीटर । आपने मुख फेर लिया क्या लिखा है अजमेर इतने किलोमीटर पर । पत्थर दो हैं क्या ? पत्थर एक है फिर यह उलटफेर क्यों हो गया ? इधर जयपुर और इधर अजमेर ? क्यों हो गया केवल हमारी दृष्टि फेरने से हो गया । पत्थर जहाँ का तहाँ है जैसा है वैसा है । दिशा दिखा रहा है । इसी प्रकार यह मार्ग भी एक है हमारी दृष्टि फिर गई तो हमारे सामने सृष्टि है और हमारी दृष्टि जब तक इधर है तब तक हमारे सामने संसार ही ससार है तो तुम दृष्टि फेरो । साधक को गुरुदेव कहते हैं ध्यान करो । आत्मा का ध्यान करो स्वयं ध्यान करो । ठीक है ध्यान करने के लिए बैठ गया । एकान्त में, क्योंकि गुरु महाराज ने कहा है कि संसार से पृथक् हो जाना संसार के बागजाल से बच जाना । प्रियजनो का सम्पर्क भी तुम्हारी एकाग्रता को नष्ट कर देने वाला है । जितना जन-सम्पर्क हमारे मन मे बढ़ेगा हमारा विकल्पजाल भी बढ़ेगा और जितना हम इससे हटेंगे उतना ही हमारे अन्दर में एकाग्रता आयेगी । इधर मुँह या उधर मुंह । बैठ गया शिष्य एक छोटी सी कुटिया में । एक छोटी सी गुफा में ध्यान कर रहा है गुरु महाराज ने कहा है कि मेरी आत्मा शुद्ध-विशुद्ध है जैसी परमात्मा की है । जो वह है वही ही मैं हूँ । ध्यान में एकाग्र हो गया लीन हो गया लेकिन हुआ क्या सोहं की जगह मेषोऽहं हो गया । भूल गया बेचारा सोह के स्थान पर "मेषोऽहम्" का ध्यान कर रहा है । मैं वही हूँ जो मेरी आवाज निकल रही है जो मेरे कंठ से स्वर निकल रहा है मैं वही हूँ यही सोचकर के बैठा था लेकिन वो क्या जाने कि सोहम् मेषोऽहम् हो गया । मेषोऽहम् कहते कहते इतना लीन हो गया कि वास्तव में समझ रहा है कि मैं भैंसा हो गया और मैं सींग वाला बन गया घबरा गया, दरवाजा छोटा है । गुरुदेव ! क्या करूं ? कैसे निकलूँ ? मैं तो भैंसा हो गया गुरुदेव ने समझ लिया । समझा नहीं गलत समझ गया है, भ्रम में पड गया है । तब उसको गुरु ने कहा कि मनुष्योऽहम् ऐसा ध्यान करो । अब उसने वैसा ही किया और अपने को मनुष्य रूप में पाया । इसका नाम है ध्यान एकलयता एकाग्रता । पात्रता के अनुसार देशना फलीभूत होती है । प्रथम क्लास वाला विद्यार्थी को अगर एम ए की क्लास का विषय समझाया जायेगा तो बेचारा क्या करेगा ? पागल ही बनेगा और जो गाँठ का है वह भी खो बैठेगा । यही दशा उसकी हुई जैसी कि आज आपकी हमारी भी और सबकी हो रही है । समयसार को लेकर के हम पागल बन रहे हैं । गुरुजन कहते हैं भैया ज्ञानकर हम मनुष्य है हमें ध्यान करने लगा हाँ गुरुदेव अब मुझे सही सही रूप में आ गया मनुष्य हूँ वो वासना बैठी हुई थी कि मनुष्यत्व की तो जल्दी आ गया इसीलिए कुन्दकुन्द स्वामी ने कह दिया अगर हमें म्लेच्छ को समझाना है तो म्लेच्छ की भाषा में ही समझाना पड़ेगा । आर्य को समझाना है तो आर्य की भाषा में ही समझाना पड़ेगा । तभी उसकी समझ में वो तथ्य बैठेगा अन्यथा नहीं । हो सकता है कुन्दकुन्द स्वामी शुद्ध निश्चय नय का निर्देश किसको देना चाहा जो शुद्ध की

ओर जा रहे हैं । अपरम् भाव में पहुँचे हुए हैं । श्रेणी आरोहण करने वाले हैं उन साधुओं के लिए वे शुद्धात्मा की बात-चर्चा कर रहे हैं । अभी से अगर शुरू कर दिया पहले व्यवहार बताओ अभी आपके सामने घट की बात आई थी पहले हम घट को समझा दें कि घड़ा किसको कहते हैं ? किस चिड़िया का नाम घड़ा होता है ? फिर उसकी उपाधियों के साथ घड़ा हमारे को समझ में आ जायेगा । और घड़ा नाम की वस्तु ही नहीं समझी और पहले ही हम तर्क-वितर्क करने लग गये तो सोने का है कि चांदी का है कि घी का है कि शक्कर का है क्या समझ में आयेगा । नहीं आयेगा । कुन्दकुन्द स्वामी ने हमें यह बताया कि तुम इस प्रकार से चलो । श्रेणी के अनुसार बढ़ो पहले अपनी योग्यता को देखो । देखकर के आगे बढ़ोगे तो आपको कहीं ठोकर खानी न पड़ेगी और अगर मुँह उठाकर चलोगे तो ठूंठ से भी टकरा सकते हो और कहीं जाकर गड्ढे में भी पड़ सकते हो । तो हमें क्या करना है ? कुन्दकुन्द को समझने के लिए पहले अपना बैलेन्स बनाना है उसी प्रकार से यदि हम आगे बढ़ेंगे तो हम कुन्दकुन्द के हृदय को टटोल सकेंगे । कुन्दकुन्द स्वामी ने अपने साहित्य की भाषा को काव्य में निबद्ध किया क्योंकि काव्य हृदय का उद्गार होता है हृदय की वस्तु हृदय में पहुँच सकती है, और उनको जनजन में अपनी बात को पहुँचाना था । इसीलिए सरल सुबोध गाथाओं के रूप में उस समय की प्रचलित भाषा उसके अन्दर उन्होंने अपने अन्तरंग के विचारों को लिपिबद्ध किया । हम तमिल में गये थे वहाँ हमने देखा कुन्दकुन्दमलय, मलय कहते हैं पर्वत को । कुन्दकुन्द स्वामी का पहाड़ वहाँ के लोगों की धारणा है या यह किंवदन्ती है कि कुन्दकुन्द आचार्य चारण ऋद्धिधारी थे और उस पर्वत के ऊपर तपस्या करते थे और वहाँ से उन्होंने विदेह क्षेत्र में प्रयाण किया था । जहाँ साक्षात् श्री सीमन्धर भगवान् का दर्शन किया और वहाँ से आने के बाद उन्होंने अपने साहित्य का निर्माण किया । 84 पाहुडों में उनको गूंथा, अभी हमारे पास में इने गिने दस पंद्रह काव्य पाहुड़ उपलब्ध हैं । कुन्दकुन्द स्वामी ने कुरल काव्य लिखा है कुरल काव्य तमिल भाषा में है जिसका कि अनुवाद मैं समझती हूँ कि प्रत्येक भाषा में जो हमारे देखने में आती है हो चुका है ।

संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़ सभी भाषाओं में तमिल तो है ही मूल । वो ग्रन्थ इतना पापुलर, इतना प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है कि वहाँ के हर धर्म के नेता कहते हैं कि कुन्दकुन्द हमारे थे और उन्होंने अपना साहित्य हमारे लिये लिखा हर व्यक्ति उस साहित्य को अपनी दृष्टि से समझता है । उसका अनुवाद करता है और अपने अपने जीवन में उसको उतारने की चेष्टा करता है और हम जो हमारे बीच में कुन्दकुन्द हुये और उन्होंने हमको यह दिशा दी कि हमारी आत्मा को जो भौतिकवाद और संसार के दलदल में घूम करके चीख रही थी दब रही थी पीड़ित हो रही थी उसको उठाने के लिए उसे सचेत करने के लिए उसके अन्दर नवजीवन फूंकने के लिए आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रयास किया और आज सचमुच उनकी ही दैन से हम जीवन्त हैं । देखिये, कुन्दकुन्द आचार्य ने केवल द्रव्यानुयोग की केवल चर्चा ही की या दिव्यज्ञान का ही कथन किया यह कहना नितान्त भूल है उन्होंने चारों अनुयोगों को हमारे सामने रखा है मैं कहती हूँ कि हमारा कोई अनुयोग एक-दूसरे के बिना रह ही नहीं सकता । चार पाये रहते हैं तो खटिया रहती है । चार खम्भे होते हैं तो मकान बनते हैं । एक भी नहीं रहा तो क्या मकान का अस्तित्व रह जायेगा । क्या

खटिया का अस्तित्व रह जायेगा । उसी प्रकार एक को हम कथन करने जा रहे हैं तो तीन बाकी के आते हैं हाँ बाकी के गौण रह जाते हैं और जिसको लेकर के हम चलते हैं वो मुख्य हो जाता है । कुन्दकुन्द आचार्य ने भी यही किया हम समयसार को लेकर के व्यवहार में लगने लगे अरे भाई उन्होंने व्यवहार की बात कहाँ कही वो भी तो देखो क्या प्रवचन सार कुन्दकुन्द स्वामी का नहीं है, समयसार कुन्दकुन्द स्वामी का नहीं है, नियम सार और रयणसार कुन्दकुन्द स्वामी की नहीं है क्या उनका लिखना व्यवहार नही है ? जब निश्चय मे ही है तो आँख बन्द करके बैठने में ही कल्याण होता और वही मात्र उनका उद्देश्य होता तो लेखनी चलाने की आवश्यकता क्या थी ? उनको जिसने लेखनी चलाई कौन मुनि सामने आया, क्या छठे गुणस्थान में नहीं आना पड़ेगा ? आना ही पड़ेगा जो कुछ सम्बोधन है वो सब आत्मा का द्योतक है हमारे भव्य प्राणियो के लिए । उनका यह अनुराग है और आध्यात्मक प्राणी अनुराग मे आकर के भी अपने को भूलता नहीं है ये उसकी विशेषता रहती है । जल मे खिलने वाला कमल कीचड मे खिलने वाला कमल कभी भी जल और कीचड को स्पर्श नहीं करता लेकिन वो जानता है कि इसके साथ ही मेरा अस्तित्व है इसको भी भूलता नहीं है तो कुन्दकुन्द आचार्य की दृष्टि इतनी तीक्ष्ण दृष्टि थी कि उन्होने सब चीज को समझा उनके गर्भ मे गये सिद्धान्त के हार्ट-हृदय को समझा और जिन जिन ने समझा उन उन ने उनके यथार्थ स्वरूप को यथार्थ को प्राप्त किया आध्यात्म का प्रेमी अपनी आत्मा से प्रेम करने वाला व्यक्ति शरीर के पोषण पर दृष्टि नहीं रखेगा । हम समयसारी बनना चाहते हैं लेकिन शरीर से अपनी दृष्टि को हटाना भी नहीं चाहते हैं तो क्या कुन्दकुन्द ने कहा कि भोगों में पड़े रहो पंचेन्द्रिय विषयो का परित्याग मत करो । मरने से इतने डरो कि जसलोक मे जाकर पहुँच जाओ अभक्ष का भक्षण कर लो ? समयसार को उन्होने समझा आचार्य आदिसागरजी महाराज अंकलीकर जी ने जिन्होने शेर की दहाड मे कह दिया मै चौदह दिन की समाधि करूँगा । आज से अन्न पानी का मुझे त्याग है और नियम से चौदह दिन के अन्दर उनकी समाधि हुई यह समयसार को समझने वाले का यह अधिकार होता है । अपने आत्मा के ऊपर वह समयसार को समझा उन आचार्य शान्तिसागर ने समयसार को समझा जिन्होने छत्तीस दिन की सलेखना लेकर के कुंथलगिरि की पवित्र भूमि पर चार चांद लगा दिये । आचार्य आदिसागरजी महाराज ने सबसे पहले समयसार के माध्यम से स्वर्ग का द्वार खोला समाधि का द्वार खोला और सच्चे कुन्दकुन्द को अपने जीवन में उतारने वाले बन गये । जैसे उनके सामने कुन्दकुन्द बैठे हुए हैं । वार्तालाप कर रहे हैं और उन्हें सम्बोधन कर रहे हैं कि बेटा घबराना नहीं आत्मा अमर है अजर है इसमे तेरे को कभी भी कष्ट नहीं हो सकता है । एक क्षण के लिए अगर तू इस स्थिति को जीत लेगा तो तू सदा के लिए अमर बन जायेगा । इसी प्रकार हम समयसार को पढ़ें समझें और गुरुओं के चरणों में आकर के हम उसकी गुत्थियो को सुलझाये नहीं तो पागल बन जायेगे और वही हमारी दशा होगी मैं नहीं कहती हूँ कि आपको जसलोक में जाना पड़ेगा परन्तु आप उससे घबराये नहीं । वहाँ दौड़ में तो जरूर लग जायेंगे तो वे दौड़ नहीं है हमारी दौड़ शरीर की और मोक्ष की ओर है इस प्रकार हम कुन्दकुन्द को समझें और कुन्दकुन्द के जीवन से हम लाभान्वित हो उनके साहित्य को समझने की चेष्टा करें ।

श्री कुन्दकुन्द की देन

पंडित वारिषेणजी

धर्मप्रेमी बन्धुओ ! श्री कुन्दकुन्द की देन विषय पर दो शब्द बोलने के लिए मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ । इस विषय पर आचार्य श्री, अन्य त्यागी वर्ग एवं विद्वानों ने आपको बहुत कुछ बताया है मैं इसी सन्दर्भ मे सर्वप्रथम भूमिका के रूप में यह बताना चाहता हूँ कि कुन्दकुन्द से पूर्व अन्तिम श्रुत केवली श्री भद्रबाहु स्वामी के काल मे दुर्भिक्ष पड़ा । गुरु आज्ञानुसार जो साधुवर्ग दक्षिण भारत मे आ गये उनके जीवन और संयम की पूर्ण सुरक्षा रही पर जो गुरु आज्ञा से विपरीत चले, लौकिक जनो के वचन प्रलोभन में पड़कर वहीं रह गये, उनका जीवन विपत्तिग्रस्त हो गया, निर्ग्रन्थ वेश भी उन्हे छोड़ना पड़ा । कई मुनियो ने श्वेत वस्त्र-धारण कर लिये,कई मुनि उस समय मुनि चर्या से हटकर राजाओ की सेवा में लग गये, कुछ ज्योतिष विद्या मे लग गये, इस प्रकार मुनिचर्या मे शिथिलता आ गई । यह शिथिलता उत्तरोत्तर बढती गई सभी श्वेत वस्त्रधारी, पीतवस्त्रधारी उत्तर भारत मे नजर आते । उस बढ़ती हुई शिथिलता को रोकने के लिए मानो धर्म सरक्षक के रूप में भारत की पावन धरा पर प्रात:कालीन सूर्य के समान अपनी ज्ञान रश्मियो को बिखेरते हुए अभूतपूर्व संत महान् तपस्वी श्री कुन्दकुन्द ने अवतार लिया । आपके जन्म से भारतभूमि अपूर्व शोभा से युक्त बनी । आपने जैन दर्शन का गहरा अध्ययन किया और श्वेत वस्त्र लाल वस्त्रधारी उन साधुओ से शास्त्रार्थ कर उन्हे पराजित किया, यथार्थ मुनिचर्या बताई । कुछ लोगो ने प्रायश्चित लेकर यथार्थ मुनिचर्या स्वीकार कर अपना स्थितिकरण कर लिया । यथार्थ मुनि धर्म को हम अधिक से अधिक लोग समझ सके इसके लिए आपने आर्ष परम्परानुसार ग्रन्थ रचना प्रारम्भ की । साक्षात् समवशरण में विराजमान विदेह क्षेत्रस्थ सीमन्दर स्वामी का प्रवचन सुनकर तत्त्व परिज्ञान कर 84 पाहुडों की रचना की जिनकी प्रत्येक गाथायें 'गागर में सागर' के समान महत्त्वपूर्ण हैं, गम्भीर अर्थों से युक्त हैं उनमे तथ्य और सत्य का सांगोपाङ्ग विवरण है । आपने रयणसार, श्रावकाचार आदि ग्रन्थों में श्रावक धर्म को भी दर्शाया है । यद्यपि श्री कुन्दकुन्द स्वामी के अधिकांश ग्रन्थों में मुनि धर्म का वर्णन है उसका कारण यह रहा कि उस समय मुनि चर्या मे बहुत अधिक शिथिलता आ गई थी । उस परिस्थिति और वातावरण को ध्यान में रखकर ही जिनधर्म की सुरक्षा हेतु मुनि धर्म का प्ररूपण आचार्य श्री ने परम आवश्यक समझा और उसी प्रकार के ग्रन्थों की रचना की । पर बन्धुओं ! वर्तमान में उन्हीं श्री कुन्दकुन्द स्वामी के साहित्य को आधार बनाकर कुछ लोग मुनि सेवा से विचलित हो रहे हैं । अर्थ का अनर्थ कर एकान्त दृष्टि को पकड़कर शिथिलाचार को प्रश्रय दे रहे हैं, यह बड़े खेद की बात हैं । उन्हें गुरु सानिध्य में रहकर यथार्थ को समझने की चेष्टा करनी चाहिए, प्रायश्चित लेकर अपनी शुद्धि करनी चाहिए ।

आज भी "मगल भगवान् वीरो मगल गौतमोगणी मंगल कुन्दकुन्दाचार्यो जैन धर्मोस्तु मगलम्" इस मगलाचार वाक्य के द्वारा श्री कुन्दकुन्द स्वामी का विशेष श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं उसका कारण यह है कि उन्होंने श्री भद्रबाहु स्वामी के 2 हजार वर्ष पश्चात् जो मुनियों में शिथिलता आ रही थी उसका उन्होंने निवारण किया था । बन्धुओ मैं ज्यादा समय न लेकर अन्त में इतना और कहूँगा कि जिस प्रकार श्री भद्रबाहु स्वामी के काल में दुर्भिक्ष के कारण उत्पन्न हुई शिथिलता को श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने दूर किया था उसी प्रकार 20वीं शताब्दी में जब शिथिलता आ गई, मुनि धर्म की निर्दोषचर्या न रही तब उस शिथिलता का निवारण चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री आदिसागरजी (अकलीकर) ने किया था, उनका भी हम पर बहुत बड़ा उपकार है, वह उपकार श्री कुन्दकुन्द की शृखला से जुड़ा हुआ है, प्रत्येक भव्यप्राणियो के लिये स्मरणीय, विचारणीय है तथा लाभप्रद है । उनके पदचिह्नों पर चलकर हम अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के कार्य मे लगें यही श्री कुन्दकुन्द की देन का सार है ।

श्री कुन्दकुन्द की देन के सन्दर्भ में

प. पू आचार्य रत्न श्री १०८ सन्मतिसागरजी महाराज का आशीर्वादात्मक प्रवचन

आचार्य श्री कुन्दकुन्द की देन सामान्य विषय नहीं है इसकी चर्चा यदि वर्षों तक चलती रहे तो भी पूरी न पडेगी । यदि बीज दृष्टि को लेकर चलें तो श्री कुन्दकुन्द के अनुसार 'अ' वर्ण में सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग गर्भित है । चिन्तन और मंथन की आवश्यकता है जितना मंथन करेगे उतनी ही गहराई से तत्त्व का हृदय प्राप्त होगा । वर्तमान मे, द्रव्यानुयोग मे विशेष अभिरुचि रखने वाली जनता का श्री कुन्दकुन्द के प्रति उच्चकोटि की आस्था है, श्रद्धा है । श्रद्धा का भाव ही, विद्वज्जनो को अनुसधान की ओर ले जाता है । श्री कुन्दकुन्द की देन क्या-क्या है ? इसे जानने की आकाक्षा भी जागृत होती है । श्री कुन्दकुन्द स्वामी वे प्रथम ऋषि थे जिन्होंने पंचम काल में भी भरत क्षेत्र से विदेह क्षेत्र पहुँचकर सीमन्धर स्वामी का दर्शन किया और उनकी वाणी भी सुनी । उन्होंने अपने ध्यान और तपश्चरण की निर्मलता से यह बात सिद्ध की कि वर्तमान मे भी साधु अपने अपने ध्यान के बल से विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकर सीमंदर स्वामी का प्रत्यक्ष आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं । पर इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तदनुकूल पुरुषार्थ करना होगा । हम तो अपने-अपने स्वार्थ सिद्धि में लगे हैं । तथ्य और सत्य को पाने की अभिलाषा छोडकर हठग्राहिता ने अपना स्थान इस प्रकार ग्रहण कर लिया है कि समाज विघटित होता जा रहा है, विभाजन तेजी से बढ़ रहा है । धार्मिक क्षेत्र में भी विद्रोह की भावना प्रविष्ठ हो गई है । विद्वज्जनों को श्री कुन्दकुन्द की देन पर बल डालते हुए अपनी पवित्र सस्कृति और साम्यवाद को स्मरण दिलाकर फैलती हुई विद्रोहाग्नि को शमित करने का प्रयास करना चाहिए । निर्ग्रन्थ वेश जिनमुद्रा का प्रतीक है । उस मुद्रा का सम्मान आदर पूजा भक्ति का भाव प्रत्येक व्यक्ति में बढे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए । श्री कुन्दकुन्द के आध्यात्मिक ग्रन्थों

का फल त्याग, वैराग्य और संयम की प्राप्ति पुष्टि और वृद्धि है, निज शुद्धात्मा की परख निर्ग्रन्थ अवस्था के बिना अशक्य है । रत्नत्रय की पूर्णता, शुद्धोपयोग की प्राप्ति के लिए भी निर्ग्रन्थवेष निमित्तकारण है । हम सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के स्वरूप को सम्यक् नय-निश्चय और व्यवहार नय के माध्यम से समझें । जिससे विवादों का शमन हो वही सम्यक्नय कहलाता है जो विवाद और झगड़ों को उत्पन्न करता रहे वह मिथ्यानय है । जो विद्यार्थी जिस कक्षा का है उसी कक्षानुसार दिया गया शिक्षण उसके ज्ञान का समुचित विकास कर सकता है । प्रथमानुयोग चरणानुयोग, करणानुयोग द्रव्यानुयोग के विषय में भी प्रत्येक मुमुक्षु पात्रता का ध्यान रखे । प्रथमतः हम व्यवहार को सुसस्कृत करे फिर निश्चय के विषय को जीवन में लाने की चेष्टा करें । शुभोपयोग की भूमिका तक व्यवहार नय प्रधानता रखता है, निश्चय दृष्टि गौण रहती है । शुद्धोपयोग की भूमिका पर आने के बाद अर्थात् श्रेणी आरोहण होने पर निश्चय नय प्रधानता पा लेता है और व्यवहार की भूमिका छूटती जाती है ।

श्री कुन्द कुन्द स्वामी ने अपने वचनों से सर्वत्र हमें कर्त्तव्यशील बनाने की चेष्टा की है । ग्रहस्थ हो वा साधु, सभी अपने अपने षडावश्यकादि कर्त्तव्यों का भली प्रकार पालन करते हुए लक्ष्य प्राप्ति का उपक्रम करें । कर्त्तव्य पालन के बिना अधिकार की प्राप्ति अशक्य है । कहा है- Duty is Duty, Rights is Rights कर्त्तव्य कर्त्तव्य ही है, अधिकार अधिकार ही है दोनों अपने अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है पर प्राथमिकता कर्त्तव्य की है अधिकार का स्थान बाद में है ।

सर्वप्रथम १८ दोषों से रहित हमारा जो देव है वह परम आदरणीय होता है, जिन मुद्रा हमारे लिए श्रद्धेय है । उनकी जो वाणी है वह श्रद्धा करने योग्य है । आप अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहे, अधिकार स्वतः प्राप्त हो जायेगा, अलग अलग कोई पुरुषार्थ नहीं करना होगा । आप दूसरो का सम्मान करेंगे तो आपको भी सम्मान मिलेगा । तो श्री कुन्द कुन्द स्वामी ने क्या दिया ? यह चर्चा चल रही थी, भव्यजीवों । श्री कुन्द कुन्द स्वामी की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होने हमको हमारे कर्त्तव्यों को सिखाया । गृहस्थो के लिये यह कहा-दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मोण सावया तेण बिणा'' दान पूजा करो, दान पूजा के बिना तुम श्रावक कहलाने के अधिकारी नहीं । इसी प्रकार साधुओं को ध्यान अध्ययन करते रहने की प्रेरणा दी है । निज शुद्धात्मा तक पहुँचने का यही उपाय है । जब तक परमात्म पद प्राप्त नहीं होता तब तक अपने कर्त्तव्यों का पालन करना ही होगा । गुरुजनों के द्वारा बताये मार्ग पर यदि हम चलते रहेंगे तो परमात्म पद की प्राप्ति भी हो जायेगी । परिणामों में सरलता रखें । श्री कुन्दकुन्द की देन को मन वचन काय की सरलता से पढ़ें, जाने और आचरण में लायें, जिससे नियम से हम परमात्म पद को प्राप्त कर सकेंगे ।

श्री कुन्दकुन्द की देन

पंडित शीतलचन्दजी

भगवान् महावीर के निर्माण के पश्चात् 683 वर्ष तक शुद्ध श्रुत परम्परा चलती रही उसके पश्चात् भूतबलि और पुष्पदन्त आचार्य ने षट्खण्डागम की रचना की जिसमें करणानुयोग का विषय अधिक है श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने भी उन ग्रन्थो को पढ़ा ही होगा क्योंकि ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि आ कुन्दकुन्द ने षट्खण्डागम पर भी टीका लिखी है पर वह उपलब्ध नहीं है । करणानुयोग उस समय चर्चित विषय विद्वानो के बीच में बना रहता, श्री कुन्दकुन्द ने तब अनुभव किया कि द्रव्यानुयोग भी उपस्थित होना चाहिए । आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने फिर द्रव्यानुयोग के अनेक ग्रन्थ लिखें उसमें से चार बातें मैं उपस्थित करता हूँ ।

(१) साहित्यिक भावनाये (२) तात्विक दृष्टि (३) दार्शनिक दृष्टि (४) लोक कल्याण की भावना । वर्तमान मे स्थिति बहुत विकृत हो गई है । द्रव्यानुयोग में रुचि रखने वाले को लोग निश्चयवादी कहते हैं । समयसार की गाथा को उदाहरण के रूप मे दिखाते हैं-

समयसार की ११वीं गाथा मे श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है-

ववहारोऽभूदत्थो भूंदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।

भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥''

इस गाथा के माध्यम से लोगो ने यह समझा कि व्यवहार अभूतार्थ-असत्यार्थ है और निश्चय नय भूतार्थ सत्यार्थ है । पर इस प्रकार उसका अर्थ है नही भूतार्थ और अभूतार्थ शब्द एक विलक्षण गहरे अर्थ को लिये हुए है । जो गुणधर्म वस्तु के स्वरूपस्तित्व में निहित है । वस्तु का निज स्वाभाविक गुण है, धर्म है, वह भूतार्थ कहा जाता है और जो वस्तु का निज स्वाभाविक स्वरूप नहीं पर अन्य निमित्तों के संयोग से हुई है उन पर्यायो अवस्थाओ का जो उल्लेख करे वह अभूतार्थ या व्यवहार नय है । पर जो अभूतार्थ है वह मिथ्यावचन नहीं है । आकाश कुसुम वा गदहे की सींग के समान असत्य रूप वचन नहीं है । निमित्त नैमित्तिक, धर्म धर्मी, अश अंशी आदि से होने वाली अवस्था विशेष है ।

उन्हें यदि सर्वथा अमान्य असत्यार्थ कहा जायेगा तो संसार का अभाव हो जायेगा । संसारपूर्वक ही मोक्ष होता है अत· मोक्ष की सिद्धि भी नहीं हो सकेगी । श्री कुन्दकुन्द से पूर्व, द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय के रूप में जो कथन व चर्चा चल रही थी उन्हीं को आपने अपने ग्रन्थ में निश्चय और व्यवहार नय ये 2 नाम दिये । आपने (श्री कुन्दकुन्द ने) व्यवहारनय से आत्मा को सर्वज्ञ कहा और निश्चय नय से आत्मज्ञ । सर्वज्ञ और आत्मज्ञ दोनों ही आत्मिक गुणों को प्रगट करते हैं । मात्र अपेक्षा भेद है । यदि व्यवहार नय श्री कुन्दकुन्द की दृष्टि में सर्वथा हेय होता तो समयसार में आगे यह न लिखते-

सुद्धोसुद्धादेसोणादव्वो परमभावदरिसीहिं ।

ववहार देसिदापुण जे दु अपरमेठिदा भावे ।।

जब तक परम भाव-शुद्धोपयोग की भूमिका प्राप्त नहीं होती है तब तक व्यवहार नय से प्रतिपादित विषय का भी वह आलम्बन ग्रहण करे । जो अपरम भाव में स्थित है अशुभ और शुभ भावों की धारा में चल रहे हैं उनके लिए व्यवहार नय का उपदेश है और जो शुद्धोपयोग की भूमिका में स्थिर हो गये उनके लिए शुद्ध नय-निश्चयनय का उपदेश है ऐसा श्रोता गण समझें ।

इन उक्तियों से व्यवहार नय भी अपेक्षा से सत्य है और निश्चय नय भी सत्य है यह बात स्पष्ट होती है । यदि व्यवहार नय मिथ्यानय होता तो फिर व्यवहाराभास इस शब्द का अलग से प्रयोग क्यो किया गया ? पृथक्-पृथक् दो शब्दों का सद्भाव भी इस बात को स्पष्ट करता है कि व्यवहार नय तो सम्यक् नय है, सत्यार्थ है और व्यवहाराभास मिथ्यानय है । निश्चयनय और निश्चयाभास इनमे भी निश्चय नय सम्यक् नय है पर निश्चयाभास मिथ्यानय है । निश्चयनय और व्यवहार नय दोनो सम्यक् एकान्त हैं क्योंकि वस्तु के स्वरूप को उसकी पर्यायों का सम्यक् बोध उनसे प्राप्त होता है ।

भूताथ और अभूतार्थ नय-निश्चयनय और व्यवहार नय परस्पर विरोधी नहीं हैं, बाधक भी नहीं क्योंकि वस्तु अनेक धर्मात्मक है । दोनों नय परस्पर सापेक्ष दृष्टि रखते हुए वस्तु में रहने वाले उन धर्मों की समीचीन व्याख्या करते हैं और स्पष्टीकरण के लिए ऐसा कह सकते हैं कि भूतार्थ और अभूतार्थ मे केवल इतना ही अन्तर है जितना अन्तर सत्य और तथ्य में है । सत्य और तथ्य क्या है इसे उदाहरण से समझें-

जैसे किसी ने नियम लिया कि मैं नमक नहीं खाऊँगा । अब वह मात्र नमक का भोजन में प्रयोग नहीं कर सकता है सो यह तो सत्य हुआ । तथ्य क्या है ? तथ्य को वैज्ञानिक दृष्टि से समझिये । विज्ञान की दृष्टि से फल में भी क्षार होता है और जब उसमें क्षार है तो नमक का भी सद्भाव है जब हम उस फल में मौजूद सभी तत्त्वों को निकालेंगे तो उसमें क्षार भी आ जायेगा मीठा भी आ जायेगा और भी कई चीजें प्राप्त होंगी । तथ्य दृष्टि से नमक का त्यागी फल भी नहीं खा सकता है क्योंकि उसमें भी क्षार है । तो दृष्टि भेद से व्यवस्था में भेद पड़ता है पर दोनों सही हैं । जो सत्य का विषय है तथ्य का विषय मात्र उतना ही नहीं अतः सत्य और तथ्य दोनों में अन्तर है । तथ्य तो निश्चय दृष्टि है और सत्य व्यवहार दृष्टि है । त्याग करने वाले ने व्यवहार दृष्टि से नमक का त्याग किया था अतः वह मात्र नमक नहीं खायेगा, फलादि खा सकता है । तथ्य सामान्य क्षार का बोधक है और सत्य नमक में रहने वाले क्षार का बोधक है । दूसरा उदाहरण और भी मैं देता हूँ जिससे विषय और भी स्पष्ट होगा-

किसी ने कहा कि यह मेरी पत्नी है तब तथ्य दृष्टि वाला व्यक्ति कहने लगा नहीं, यह तो हड्डी, मांस, चमड़े का पिंड रूप शरीर है । दोनों बातें विरोधी प्रतीत होती हैं पर ये विरोधी नहीं अपेक्षा दृष्टि से दोनों एक ही स्त्री में भली प्रकार घटित हो जाती हैं । सत्य दृष्टि-व्यवहार दृष्टि से

वह पत्नी है और तथ्य दृष्टि-निश्चय दृष्टि से हड्डी मांसादि सप्तधातुओं का पिंड रूप शरीर है। कहीं कोई विरोध नहीं। दोनों में ऐसा सामंजस्य है जो वस्तु स्वरूप को स्पष्ट-प्रकट करता है। ज्ञान में प्राञ्जलता-विशदता लाता है।

कोई व्यक्ति घी की दूकान पर पहुँच कर कहने लगा मुझे घी का घड़ा चाहिए, दुकानदार तुरन्त घी से भरा मिट्टी का घड़ा उसे पकड़ा देता है। ग्राहक महोदय उस घड़े को देखकर बोल पड़े यह तो मिट्टी का घड़ा है घी का घड़ा नहीं तब दुकानदार ने कहा कि कहीं तुम पागल तो नहीं हो गये क्या घी का भी घड़ा होता है। घडा मिट्टी का है पर इसमे चार किलो घी भरा है। घी के सद्भाव से घडे को घी का घडा कहते हैं मैं तुमसे मूल्य मिट्टी का नहीं घी का लूँगा। वही व्यक्ति कुम्भकार के घर पहुँचकर घी का घड़ा मांगने लगा उसने कहा कि मेरे पास तो मिट्टी का घड़ा मिलेगा, घी का घड़ा नहीं बनता है। घड़ा तो मिट्टी से बनता है। यहाँ भी सत्य दृष्टि और तथ्य दृष्टि है। घी का घडा कहना यह सत्य दृष्टि-व्यवहार दृष्टि है और मिट्टी का घड़ा कहना-यह तथ्यदृष्टि-निश्चयदृष्टि है। सैद्धान्तिक ग्रन्थों में इसी व्यवहार और निश्चय दृष्टि (नय) को अभूतार्थ और भूतार्थ नाम दिया है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से वैय्याकरण कहते हैं-तथा शब्द से तथ्य बना है और सत् शब्द से सत्य बना है। तथा शब्द में सत् प्रत्यय लगाने से तथ्य शब्द बनता है। तथ्य का मतलब है जैसा है वैसा ही कहना सत् + यत् = सत्य। त् का लोप हुआ है। सज्जन पुरुषों की भलाई के लिये जो वचन कहे जायें वे वचन सत्य हैं। सत्ये हिते इत्यर्थः। व्याकरण की दृष्टि से बताई गई उक्त व्याख्या भी दोनों पदों की समीचीन विषय का प्रतिपादक बताती है अतः जो लोग अभूतार्थ का अर्थ, असत्यार्थ, मिथ्यावचनादि मानते हैं वे भ्रम में हैं। अर्थ का अनर्थ कर समाज को वञ्चित करने वाले भ्रमित करने वाले सदस्य हैं उनसे सावधान होना चाहिए।

व्यवहार नय को नौका के समान बताकर सर्वत्र उसकी उपयोगिता दिखाई भी है। कल्पना कीजिए कि एक साधु व्यवहार रूपी नौका मे सवार होता है और निश्चय रूपी तट पर पहुँचना चाहता है। पूजा मे भी "भक्तिवर नौका सही" इत्यादि शब्दों का प्रयोग मिलता है। नौका पर सवार होकर प्रस्थान कर दिया गया और नाव तट पर पहुँची नहीं, बीच धारा में थी तभी कोई व्यक्ति यदि यह विचार ले कि तट आ गया और नौका को बीच धारा में छोड़ दे तो क्या होगा? निश्चय से डूबेगा, यदि तैरना नहीं आता और आलम्बन भी किसी का न लिया गया। ठीक इसी प्रकार साधु वर्ग व्यवहार रूपी नौका को निश्चय रूपी तट पर पैर जमाने से पूर्व ही छोड़ दिया तो वह भी गिरेगा, सुरक्षित नहीं रह सकता। दूसरा पैर उठाने से पहले आप अपने पहले पैर को सम्हाल लो कि वह अच्छी तरह जमा है या नहीं। यदि जमा नहीं और दूसरा पैर भी उठा लिया तो फिसल जाओगे। शुद्धोपयोग की भूमिका पर पैर जमा नहीं और शुभोपयोग की भूमि को भी छोड़ दिया तो फिर अशुभोपयोग के गहरे गर्त मे गिरोगे, अन्य कोई गति नहीं है।

अभिप्राय यह है कि निश्चय रूपी तट पर पूरी तरह पैर जम जाय तब व्यवहार रूपी भूमि से पैर अलग करें, हटायें, अन्यथा पतन होगा? लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

समयसार ग्रन्थ में श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है मैं इस ग्रन्थ में आत्म तत्त्व का स्वरूप कहूँगा उस कथन में यदि मैं कहीं चूक जाऊँ तो उसे आप छल मत समझना उसे सुधारकर आगमोक्त अभिप्राय को ग्रहण करना । यह श्री कुन्दकुन्द की तात्त्विक दृष्टि रही । इसी ग्रन्थ की टीका में जयसेनाचार्य ने श्री कुन्दकुन्द की दार्शनिक दृष्टि भी दिखाई है उन्होंने व्यवहार, व्यवहाराभास, निश्चय और निश्चयाभास के स्वरूप को स्पष्ट किया है और दार्शनिक विचारों से आत्मा की वास्तविक युक्तिसगत चर्चा की है । टोडरमलजी ने भी इस विषय को स्पष्ट किया । श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने जो कुछ हमें दिया है वह वस्तुतः प्रत्येक भव्यात्माओ के लिए पाथेय स्वरूप है, पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्धक है यदि उन वचनो का सही अर्थ ग्रहण करते हुए पक्षपात और एकान्तवाद, हठग्रहिता को छोड़ते हुए उपयोग किया गया । अन्त मे इतना ही कहूँगा कि-साक्षात् सीमन्धर स्वामी की वाणी को सुनकर श्री कुन्दकुन्द ने अपनी वाक् गगा से भव्यजीवों को वह दृष्टि प्रदान की है, वह तत्त्व प्रदान किया है जिसे युगान्तरो तक नहीं भूला जा सकता है ।

अहिंसा, शाकाहार और भारतीय संस्कृति

धर्मचन्दजी मोदी–

मैं जब आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज के सम्मुख दृष्टि देता हूँ तो सहसा मेरी आत्मा में एक ऐसे भाव उत्पन्न हो जाते हैं मानो मैं चतुर्थकालीन तपस्वीराज का दर्शन कर रहा हूँ । वर्तमान विषम परिस्थिति मे मानव का जीवन विषयाकांक्षा व मोहान्धकार की गहरी कालिमा से व्याप्त है । इस समय आप जैसे सन्त वस्तुत प्रात कालीन सूर्य रश्मियो के समान उनका उद्धार करने वाले जन-जन के लिए परम उपकारी है । संघस्थ प्रथम गणिनी आर्यिका श्री १०५ विजयमती माताजी की वाग्रूपी गगा जब भव्य जनो के हृदय मे प्रविष्ट होती है तो उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो उसने किसी शीतल चन्दन के द्रह मे प्रवेश किया हो और यहाँ पर उन दोनो महानात्माओ का संगम और उनकी चेतना स्वरूप वाणी जो हृदयस्पर्शी हैं, वात्सल्य भाव को लिए हुए परमोपकारी है, इत्यादि तत्त्वों का समागम महान् पुण्योदय से ही उपलब्ध हुआ है । जिस प्रकार जैसे गडबड करते हुए बच्चे को माँ थप्पड़ मारकर उसे मार्ग दिखाती है, कुपथ से रोकती है । वह कठोर शब्द कहती है लेकिन उस समय उस बच्चे के प्रति वात्सल्यता है । मै अपने वास्तविक अनुभव के आधार पर ये तीन वचन आपको सामने वोले हैं परन्तु ये महावीरकीर्तिजी महाराज जो ब्यावर में महासभा के कार्यकाल मे उस समय जब वहाँ पर धार्मिक पढ़ाई का कार्य होता था । उस समय महावीरकीर्तिजी महाराज ने वहाँ पर उस महाविद्यालय में थे और वहाँ पर वह अध्ययन उन्होंने किया था । मैं समझता हूँ कि आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज ने ब्यावर में पदार्पण किया था और शिक्षा ग्रहण की थी । ये मेरे को दो चार दिन मे ही देखने को मिला है । महावीरकीर्तिजी महाराज उन श्रेष्ठतम मुनियों में से एक हैं जिन्होंने संसार के प्राणियों को संसार मे रहकर के किस प्रकार से जीना सिखाया है और उन्होंने सारे भारत वर्ष में भ्रमण कर अपने योग साधना को चरम सीमा पर पहुँच कर मानव के कल्याण मात्र के लिए संसार का उद्बोधन किया है । ऐसे महावीरकीर्तिजी महाराज के इस पुण्य तिथि के ऊपर जो विभिन्न कार्यक्रमों के साथ एक सप्ताह के समारोह

आयोजित किये गये हैं वह वास्तव में ऐसे गुरु के प्रति हमारी श्रद्धा तो है ही लेकिन हमें वास्तविकता को जागरूक करने के लिए एक बहुत अच्छा स्वर्ण अवसर मिला है । वस्तुतः जब इस प्रकार की प्रक्रियाओं के अन्तर्गत हम सुनते है, नीरस जरूर लगता है, लेकिन उस नीरसता में रसास्वादन हो रहा है क्योंकि उसमें वास्तविकता झलक रही है । आध्यात्मिक केन्द्र की स्थापना हो रही है । आज प्रसंग है भारतीय सस्कृति, अहिंसा और शाकाहार । भारतीय संस्कृति की हम बात करते है तो अहिंसा और शाकाहार का उसमें स्वतः ही प्रवेश हो जाता है । भारतीय संस्कृति का मूलाधार ही अहिसा और शाकाहार है और जैन सस्कृति ही भारतीय सस्कृति है क्योकि जैन दर्शन के भव्य प्रागण मे आर्य-अनार्य गोरे काले धनी निर्धन सभी अपना पुरुषार्थ व्यक्त करते हुए मिले हैं । वहाँ कही किसी के लिए न वर्गवाद है न जातिवाद है और वहाँ केवल वाद है प्राणीवाद और प्राणीवाद की रक्षा करना प्राणी मात्र के प्रति अपनी भावनाओं को समर्पित करना उसी को दृष्टिगत रखकर अपना जीवन यापन करना यही जो है जैन धर्म का लक्ष है क्योकि आजकल युग बुद्धिवादी है उसे बुद्धि ग्राह्य और तर्क सिद्धान्त की आवश्यकता है उसे उन सिद्धान्तों की आवश्यकता है जिनसे वह अपनी समस्या को हल कर सके । जैन दर्शन का ज्ञान सुलभ नहीं है लेकिन इसके जानने के लिए उत्सुक हैं क्योकि जैन दर्शन मे आज की समस्याओ का हल अन्तर निहित है जैन वो वाणी है जिसकी आधारशिला अहिंसा है । भगवान महावीर के समय मे हिसा का नग्न ताण्डव हो रहा था और उसी समय भगवान् महावीर ने अवतार के रूप में इस भारत की भूमि पर अवतार लिया और जन-जन को अहिसा की विचारधारा से अवगत कराया अहिंसा का मार्ग-पथ प्रदर्शन किया इस युग मे भी महात्मा गाधी ने उन्हीं भगवान् महावीर के सिद्धान्तों को अपने जीवन मे आश्रय दिया अपने जीवन मे स्थान दिया और आज ही लोकतन्त्र की धरा पर जहाँ घूम रहे हैं विचरण कर रहे हैं वह अहिंसा के अमोघ अस्त्र के द्वारा महात्मा गाधी के नेतृत्व मे भारतवर्ष मे लोकतत्र की स्थापना हुई । अंग्रेजो को यहाँ से खदेड़ा गया और आज हम स्वतंत्र भारत मे विचरण कर रहे हैं यह उसका प्रताप और यही है अहिंसा की सच्ची अहिंसा और अहिंसक बनने के लिए वास्तव में जहाँ शाकाहार के रूप का प्रयोग होता है वहाँ तीन प्रकार के भोजन बताये हैं वहाँ राजसिक भोजन, तामसिक भोजन और एक सात्विक भोजन । राजसिक भोज मे तो मेवा मिष्ठान । तामसिक भोजन में मद्यमांस और मदिरा जिससे बुद्धि नष्ट होती है और जीवन भ्रष्ट होता है मनुष्य पतन के द्वार की तरफ उन्मुख होता है और जहाँ सात्विक भोजन की बात करते हैं जीवन मे उल्लास और आनन्द होता है और जीवन निष्ठान्त होकर के अनेकों थपेड़े खाकर के वह बडी सहनशीलता की तरह से आगे बढता है यह बात तुलसीदास जी ने भी कहा है अहिंसा का दूसरा पर्यायवाची शब्द दया । अरे "दया धर्म का मूल है और पाप मूल अभिमान, तुलसी दया न छोडये जब तक घट मे प्राण," यदि आपके हृदय में करुणा है और दया है तो निश्चित रूप से वह अहिसक बनेगा हिसा की प्रवृत्तियाँ उसके जीवन मे घर नहीं कर सकती लेकिन आज सारा ससार हिसा की दौड़ मे आगे बढ रहा है इसी हिसा की दौड में जो आगे बढ़ रहा है सारे पाश्चात्य देशों की और हमारी वह स्थिति भी जा रही है । हमारा प्रशासन भी पाश्चात्यभेष भूषा का अगीकार कर रहा है पाश्चात्य पद्धति को अंगीकार कर रहा है । कल डॉक्टर शंकरदयाल शर्मा ने कहा था जीवन में परिवर्तन जरूर ला सकते है लेकिन हमारी मूलभूत सिद्धान्त और मूल आकार को आपको छिन्न-भिन्न करने का अधिकार नहीं है । जिस मूल पर हम खडे हैं वही अहिंसा हमारा मूल है वही अहिंसा हमारा अमोघ अस्त्र है, जिसको अपने जीवन में उतारना है । अगर

वास्तव मे अहिसा को जीवन में उतार लिया तो इस संसार की जितनी भी वैभवता जितनी भी ऐश्वर्यता और जितना भी अपने अधिकार में लेने की होड़ में जो आदमी आगे बढ़ रहा है वह सब कुछ अपने आप समाप्त हो जायेगा । ऐसी स्थिति में बंधुओं हमें सोचना है और विचार करना है हमे अहिंसक बनना है और शाकाहारी बनना है मद्य, मांस और मदिरा का त्याग कर अपने जीवन को उन्नत बनाना है लेकिन ये हमारे शास्त्रों में तो यहाँ तक कह दिया प्रमाद के वशीभूत होकर वह कार्य करता है तो वास्तव में वह हिसा है लेकिन हिंसा केवल वध करने का कार्य नहीं है आज हर क्षेत्र में हिसा का नग्न ताण्डव हो रहा है चाहे आप व्यापार में ले ले, चाहे राजनीति में ले लें, चाहे सामाजिक क्षेत्र में ले लें, आज हमारी सारी-सारी प्रवृत्तियाँ हर क्षेत्र में हिंसात्मक हो रही है हमें उससे बचना है, अपने आपको बचाना है, समाज को बचाना है, राष्ट्र को बचाना है और भारतीय सस्कृति की अक्षुण्णता को बचाये रखने के लिए एक झण्डे के नीचे लाने के लिए वह झण्डा है । अहिंसा वह झण्डा है जैन दर्शन, जैन धर्म का अर्थ है विश्व धर्म लेकिन आज क्या है पुस्तके है पुस्तक से शास्त्र का ज्ञान हो नहीं सकता देव सो रहे हैं । बोलते नहीं हैं । मंदिर बने हुए है तो जब देव बोलते नहीं शास्त्र जानते नहीं तो आपको यह मार्ग कौन बतायेगा । जो जीवन मे अपने आपको सयमित रखेगा जीवन को अपने आप को आचरणमय बनायेगा । उसी का उपदेश आपके लिए सकारात्मक होगा । मेरे जैसे कार्य करने वाले के उपदेश का आज जनता पर उसका असर नही हो सकता । इसीलिए हमारे सामने केवल प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक जिनका दर्शन जिनका ज्ञान और जिनका आचरण जो कुछ उन्होंने शास्त्रों में पढ़ा है जो कुछ देव की वाणी से उन्होने सुना है, उसको इन्होंने अपने जीवन में उतारा है, और अपने जीवन में उतारकर आम जनता के सामने अपने उपदेशामृत जन जन का कल्याण करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं । धन्य है यह ब्यावर की भूमि जहाँ पर तपोऋषि हैं और जहाँ महर्षि हैं और वहाँ देखिये आप चाणक्य का समय जब भारत का प्रधानमंत्री चाणक्य था तो किस प्रकार का शासन चलता था ? जनता कष्टमय तो नहीं है वह दीपक की बत्ती लेकर के अपने जनता के कष्ट को दूर करने के लिए आज की जनता का जीवन और आज के सत्ता जो ऐश के आधार पर, वैभव के आधार पर युक्त हो गई है वहाँ अगर हम समाजवाद की बात करते हैं जितने हम समाजवाद की बात करते हैं उतना ही अधिक से अधिक हमारी दृष्टि अर्थ की ओर जा रही है हमारी दृष्टि को बदलना होगा । उसे बदलने के लिए त्यागी और तपस्वियो के सानिध्य में आना होगा तभी हमारा कल्याण सम्भव है । इसी भावना के साथ मैं समझता हूँ कि आपके और हमारे बीच सन्तों का आगमन निश्चय ही कल्याणकारी है और हमें समीचीन मार्ग के नेतृत्व करेंगे ।

जो आजकल वातावरण चल रहा है कि आचार्यजी १०८ शान्तिसागरजी महाराज की छवि को धूमिल किया जा रहा है जो इस प्रकार की धारणा बनाए हुए हैं वे नितान्त भूल में हैं । श्री १०८ आ आदिसागर महाराज अपनी जगह पर हैं उनका सही प्रचार हो रहा है व्यर्थ में ही उनके प्रति विरोध करके समाज में वातावण को दूषित कर रहे हैं यह ठीक नहीं है ।

अहिंसा, शाकाहार और भारतीय संस्कृति

आ. सुबुद्धिमती माताजी

अहिंसा शाकाहार और भारतीय संस्कृति का जो विषय चल रहा है इसमें यदि आप अपना कल्याण करना चाहें तो सबसे पहले अहिंसा को अपनाये जिस प्रकार अहिंसा कहा गया है यह अपना व दूसरों का दिल दुखाना भी हिंसा कहा गया है । मेरी बहनें जो कुआरी बहनें हैं जिनके ऊपर आज इतना आघात हो रहा है । भारत वर्ष किससे बना है । भगवान आदि नाथ स्वामी के पुत्र भरतजी से भारत बना जब भारत वर्ष बना तो भरतजी की बहने जो थीं वो आदिनाथ भगवान् तीर्थंकर की पुत्रियाँ थीं तीर्थंकर जैसे हुए पुत्रियाँ हुईं तो वो तीर्थंकर हो या कोई भी हो वह भी अपनी पुत्री का विवाह करेगा तो उसको समधी के आगे जंवाई के आगे सिर झुकाना पड़ेगा तो यह कृत्य उनकी कन्याओं ने देखा कि हमारे पिता तीन लोक के नाथ हैं और उनको हमारे कारण सिर झुकांना पड़े तो हम ऐसा कार्य नहीं करेगे तो उन्होंने क्या किया ? अपनी आत्मा को नहीं दुखाने के लिए और अपने पिता का भी दिल नहीं दुखाने के लिए और देश का भी सम्मान और भारत की संस्कृति का सम्मान रखने के लिए उन्होने क्या किया । दीक्षा लेकर के अपने स्वय का कल्याण किया, तो मेरी बहनों यदि आपको पिता समर्थ न है आपके पिता के पास इतनी दौलत नहीं है कि आपको किसी पैसेवाले को देकर के अपनी इच्छा पूरी कर देवें । मेरी बहनों आप अपने पैरो के ऊपर खडी होकर के और अपना जीवन इस प्रकार से बनाये कि आपके आगे आर्थिक खुशियाँ आपके चरण चूमती जावें लेकिन आप किसी के शिकारी नहीं बने । इसके लिए कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं वो आपके सामने पेश करती हूँ ।

आदिनाथ के युग से चली आ रही भारतीय सस्कृति बेटी पिता की लाज रखती रही है, ऐसा करके प्रवृत्ति तीन लोक के नाथ अधर जो कन्या विवाह करते हैं समधी दामाद के आगे उनको शीष झुकाना पडता है । कन्याओ ने सोचा हमारे पिता तीन लोक के नाथ हैं हमको उनसे शिर नहीं झुकवाना है । किसी के आगे माता है दीक्षा ले लिया । जिनमें अपना आत्म कल्याण है मनुष्य जन्म सार्थकता का यही श्रेष्ठ उपाय है । गरीब घर की बहनों सुन लो, तुम्हें यह सीख देते हैं शादी न हो तो आत्मदाह कर अग्नि में नही जलते हैं । अपने पैरों पर तुम खड़ी हो भार न किसी का बनना तुम । षट् कर्म पालन करके धर्म मार्ग पर बढ़ना तुम जग में फैली कुरीतियों में अपने को न गिराना तुम, सादी न हो तब तक तुम अपना ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना तुम, दहेज मांगने वालो के सग शादी कभी नहीं करना । सुख की काया वृक्ष को देकर दुख में जीवन यापन नहीं करना । पढ़ो-पढ़ाओ, धर्म सम्भालो । शास्त्र की रक्षा करना तुम, शिक्षा पाकर दीक्षा लेकर समाधि पूर्वक मरन करना तुम । बेटों वालो को दिखा दो कि नारी का गौरव किसमें है ।

आज का विषय है अहिंसा, शाकाहार और भारतीय सस्कृति हिन्दू, मुस्लिम, सिख इसाई, जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि विश्व के सभी प्रमुख धर्मों में धर्म के प्रणेता एवं महापुरुषों ने हिंसा, क्रूरता असत्य राग-द्वेष, क्रोध, अकारण जीवों को सताने पीड़ा पहुँचाना हिंसा बताया है । अन्याय बताया है, अधर्म बताया है । तथा अहिसा सत्य क्षमा करुणा आदि को न्याय बताया है, धर्म बताया है,

भगवान् महावीर ने संदेश दिया । लिव एण्ड लेट लिव, जीओ और जीने दो । भगवान् महावीर ने श्रावक के पाँच अणुव्रत बताये उसमें भी पहला अणुव्रत अहिंसा अणुव्रत रखा । महात्मा गांधीजी ने अहिंसा के बल पर ही अपने देश को आजादी दिलवाई थी । उन महात्मा पुरुषों ने ना केवल हिंसा की निंदा की है बल्कि जीव जन्तुओं को पशु-पक्षियों को उन पर दया भाव रखकर उनको अनाज खिलाकर पालन पोषण करने का कार्य बताया है । प्रकृति ने भी यहाँ मानव के अहार के लिये अनेक प्रकार की वनस्पति व सुस्वादिष्ट पदार्थ उत्पन्न किये हैं और उसकी सेवा के लिए विभिन्न जाति के पशु-पक्षी की सृष्टि की है । वह पशु-पक्षी एक और प्रकृति का संतुलन बनाये रखने में सहायक होते हैं और दूसरी ओर मानव की थोड़ी-सी दया व प्रेम पाकर उसके मनुष्य से अति स्वामीभक्त बनकर उसकी सेवा करते हैं । जैसे कि हाथी कुत्ता घोड़ा आदि वहीं मानव की शरीर की रचना प्रकृति ने मांसाहारी प्राणी की न बनाकर शाकाहारी प्राणियों जैसी बनाई है । फिर भी अगर मनुष्य प्रकृति, धर्म व महापुरुषों के संदेशों का उल्लघन कर मांसाहार करता है तो वह उसका दुष्कर्म है । संसार में मनुष्य को सबसे प्रिय अपने प्राण होते हैं । हर मनुष्य जीना चाहता है । आप किसी को कहो कि तुम मर जाओ मैं तुमको धन दौलत दूँगा एवं स्वर्ग आदि की विभूति दे दूँगा तो भी वह व्यक्ति मरना नहीं चाहेगा । भले ही वह भूखा क्यों न मर रहा हो तो भी वह मरना स्वीकार नहीं करेगा । जीवों की रक्षा करना दया करना यही तो अहिंसा है । मेघदूत का पूर्व का जीवन हाथी जीवों की रक्षा करने की भावना से तीन दिन तक एक पैर उठाकर खड़ा रहा । भगवान नेमीनाथ बिना शादी किये वापस क्यों लौटे ? उनके मन में दया का करुणा का स्रोत बह रहा था । उन्होंने सुना कि इन पशुओं को मारकर बारातियों के लिए भोजन तैयार किया जायेगा । तुरन्त ही रथ से उतरकर बंधे हुए मूक प्राणियो को अपने साथ में बंधन से मुक्त किया और गिरनार पर जाकर दीक्षा ले ली । आज के मानव में करुणा वात्सल्य देखने को मिलता नहीं है । एक वो जमाना था । जब भाई-भाई के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देते थे । अयोध्या में शहनाई बज रही थी, क्यों बज रही थी ? प्रात: होते ही श्री राम को राजगद्दी मिलने वाली थी और प्रात: हुआ तो श्री राम बनवास को जा रहे हैं और अपने छोटे भाई भरत को राजगद्दी सौंप कर जाते हैं और आज अगर एक भाई के पास ज्यादा धन हो गया तो वह दूसरा भाई उसको मार डालने में भी संकोच नहीं करता । इसलिए आज भाई-भाई का, पति-पत्नी का विश्वास नहीं करते । हमसे तो वही पशु अच्छे हैं जो हिलमिल कर रहते हैं । विदेशी जब भारत में आते थे तो यही कहा करते थे कि भारत में दूध की गंगा बह रही है लेकिन आज उससे विपरीत देखने को मिलता है । भारत में दूध की नहीं बल्कि खून की नदियाँ बह रही हैं । घरों में मक्खन की मटकियाँ लटकाई जाती थी लेकिन आज फ्रिज में अण्डा, शराब की बोतलें रखी हुई मिलती हैं । शहर-शहर गाँव-गाँव में बूचड़खाने खुल गये हैं । जब रक्षक ही भक्षक बन रहा है तो दूसरों की बात ही क्या सरकार बूचड़खाने खुलवाने के लिए लोन देती है । लाइसेन्स देती है । भारतीय लोग अपनी भारतीय संस्कृति को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति अपना रहे हैं और वो पाश्चात्य संस्कृति वाले अपनी संस्कृति को छोड़ कर भारतीय संस्कृति अपना रहे हैं । अमरीका में पांच करोड़ से भी ज्यादा लोग शुद्ध शाकाहारी हैं और आज अपना धर्मप्राण देश मांसाहार बनता जा रहा है । अभी पेपर में निकला

था कि एक जैनी महिला विदेशों में मांस का निर्यात करने का व्यापार करती है। कितनी शर्मजनक बात है कि एक जैनी होकर हिंसा को स्थान देती है। जैनी में आज दया करुणा का अभाव देखने को मिलता है। आज जितनी भी सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री बनती हैं। वह सभी पचऐन्द्रीय जीवों की हिंसा कर उसको बनाया जाता है। अपने को शाकाहारी कहलाने वाले जैनी शैम्पू, पावडर, चमड़े के जूते, लिपिस्टीक, नैल पालिस आदि चीजो का उपयोग करते हैं। इन चीजों को बनाने में किन चीजों को काम में ली जाती है। फिर भी वे इन चीजों को छोडने के लिए तैयार नहीं होते हैं अगर वो हम बोलते हैं उनको कि त्याग कर दो। तो कहते हैं पार्टियों में जाना पड़ता है। अगर हम लगाकर नहीं जाये तो हमारी हंसी उड़ाते हैं, लोग। मैं उनको यह पूछती हूँ कि क्या लोगो के डर से अपने धर्म को छोडना चाहिए ? लिपिस्टीक होठ में लगाने से वह पेट मे जाती है तो श्रावक के अष्टमूलो का भी पालन नहीं होता है। दहेज की भूख से आज गृहिणयाँ अपनी बहू को जला देतीं हैं। जहर पिला देते है कहाँ गया वो जैनियों का दया धर्म वो यह भी नहीं सोचते कि जिस तरह मेरी बहू को जलाकर मार देते हैं वैसी ही कभी मेरी बेटी का भी नम्बर आयेगा। जैसा करोगे वैसा ही भोगना पडेगा और कभी अकस्मात अपने बेटे की मृत्यु हो जाय तो बहू की दूसरी शादी करा देते हैं। क्योंकि उसका भरण पोषण कौन करेगा ? यह प्रश्न सामने खड़ा हो जाता है। आज मानव मानव नहीं लेकिन दानव बनने जा रहा है। आपस में एक-दूसरे के प्रति भक्षण कर रहे हैं। रक्षण करने की भावना नहीं रही। जयपुर नरेश के दीवान अमरचन्द की कहानी सुनाती हूँ।

जयपुर का नरेश हिंसक शिकारी था और अमरचन्द दीवान जैनी था। अहिंसा ही जिसका प्राण है वह अमरचन्द दीवान को जयपुर नरेश कहता है कि कल सुबह हमारे साथ शिकार खेलने के लिए आना पड़ेगा। अपनी इच्छा न होते हुए भी वह उनके साथ शिकार खेलने के लिए जाता है। घने जंगल मे पहुँच जाते है। हिरणो का झुण्ड चलता हुआ दिखता है और राजा अपना निशाना लगता है। हिरणों मे भगदड़ मच जाती है। दिन निकल गया। दोपहर भी निकल गई। फिर भी एक भी शिकार हाथ में नही आता है। सब मन ही मन उस दीवान जी को कोस रहे हैं। किसको लेकर आ गये इसकी वजह से हमको शिकार भी नहीं मिल रहा है और एक मंत्री ने अमरचन्द दीवान पर व्यंग्य किया। अगर अहिंसा मे कुछ चमत्कार है तो आप हमको चमत्कार दिखाईये तब अमरचन्द दीवान ने हिरणों को ललकारा कि हे हिरणो कहाँ भाग रहे हो। जब तुम्हारा रक्षक ही भक्षक बन रहा है तो कहाँ तक जाओगे। क्या तुम्हे अपने पिता के हाथ से मरना अच्छा नहीं लगता अमरचन्द दीवान की आवाज मे स्नेह था। करुणा की आवाज थी। न्याय की आवाज था। सुनते ही हिरणों का झुण्ड चित्रलिखित की तरह खड़ा हो गया। जयपुर नरेश यह देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। कि यह क्या हो गया। उन्होंने पूछा यह कैसे खड़े हो गये, तुम्हारी आवाज से। तब अमरचन्द दीवान ने कहा कि यह अहिंसा धर्म का चमत्कार है और राजा के हाथ से बंदूक छूट गई और आँखो में से आंसुओं की धारा बहने लगी और वह कहने लगा कि आज से मेरी आँखें खुल गईं और अब मैं जीवन में कभी भी हिंसा नहीं करूँगा। तो हे बंधुओं अपने जीवन में अहिंसा धर्म अपनाइये। रात्रि भोजन कन्दमूल आदि का उपयोग मत करो। अपने आचार्यों ने बताया है-रात्रि भोजन करना मासाहार के बराबर है। इसलिए रात्रि भोजन का त्याग करिये। कन्दमूल का त्याग करिये और अपने जीवन को सफल बनाइये।

अहिंसा

लहरी बाबा

भारत में विदेशों में मुनि सुशील कुमार के साथ हम बहुत घूमे । विनोबा जी के साथ भी बहुत रहे और यहाँ भी बहुत प्रवचन हुए हैं । राम, रामश्री सम्प्रदाय के सन्तों के साथ में जब आये थे । रामसुखदासजी महाराज का यहाँ चातुर्मास भी हुआ । पचास-पचास हजार आदमी प्रवचनों में रह चुके हैं । अजमेर के प्रवचन लहरी बाबा की वाणी में यहाँ पुस्तके रखी हुई हैं । धार्मिक, सामाजि, आध्यात्मिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक जो कुछ मुझे जचा मैंने दुनिया के सामने रख दिया है । अभी भी कुछ पुस्तके पुस्तक विक्रय के लिए नहीं है । पुस्तक पढ़ने के लिए हैं । पढ़ने लायक हो वो ले जा सकता है । पढ़ने के लिए अभी आपके सामने बहुत ज्यादा विचार कहने का नहीं है क्योकि आज सुबह के प्रवचन मे कॉलेज में यह बताया था शाकाहार की क्या जरूरत होती है ? मै ज्यादा करके विद्यार्थियो से बोलता हूँ । कॉलेजों में बोलता हूँ । महाराज के स्नेह से मैं यहाँ आया हूँ । मुनिराज का दर्शन करने कल मैं आया क्योंकि दिल्ली में भी सन्तकृपाल सिंह जी की जयन्ति थी और सन्त कृपाल सिंह जी विश्वधर्म संचालक के रूप में कार्यकर्त्ता रहे हैं हमारे विश्व हिन्दू परिषद् का जो आज सुबह मीटिंग थी उसमें कुछ बातें मैंने दुनियां के सामने रखने की कोशिश की । अभी जो बहनें आई हैं, भाई आये हैं । कुछ बातें आपके सामने रखुँगा । आप लोग थोड़े ऐसे बेठ जावे । इस तरह और धर्म सभा में बैठने की भी अक्ल और कला होती है । मैं अपना प्रवचन व्रतो से शुरू करता हूँ । यद्यपि अजमेर की बहनें बहुत अच्छे स्वभाव की हैं । फैंशन नहीं करती, पावडर नहीं लगाती । आपको पता है जब गायें मर जाती हैं, कुत्ते मर जाते हैं, इनकी हड्डियो से पावडर बन जाता है । इसलिए जो खानदानी बहनें हैं वो कभी पावडर नहीं लगाती हैं और कभी कभी कोई बहन को मैं देखता हूँ तो पावडर भी लगाती हैं और होठों पर लिपिस्टिक लगाती है । बाजार मे निकलती है तो ऐसी लगती हैं जैसे लाल मुँह की बंदरिया आ गई है । भारत की देवियाँ इंगलैण्ड की लेडियां बन रही हैं । बेचारी ये तो बहनें पैंशन छोड़ें, आदमी व्यसन छोड़ें, घर मे क्लेश न करे, अतिथि सत्कार करें । किसी धर्म की बुराई करेंगे तो बुरा ही पल्ले पड़ेगा । किसी के पल्ले नहीं पड़ेगा कि धर्म है क्या । वास्तव मे धर्म के नाम पर पाखण्ड बहुत है । धर्म के नाम पर आदमी जितना दुख उठाता है जितना परेशान है जितना एक-दूसरे की गर्दन काटता है आदमी धर्म के नाम पर अगर उतना ही उसमें विवेक आ जाता और विवेक उसके जीवन में आ जाता तो आज धर्म उसके जीवन मे सुख देने वाला बन जाता । धर्म का मतलब है चित्त की शुद्धी अच्छे गुणों की वृद्धि । ये दो धर्म हैं चिन्ता की शुद्धि कैसे होती है । दस धर्मों का वर्णन अभी आपने पढ़ा है । अभी दस धर्मों में दस लक्षण में गोकुल में एक सार्वजनिक सभा दस लक्षण पर्व पर हो रही थी उसमें मैंने यह बाते बतलाई थी । दस दिन तक वहाँ प्रवचन माला चली । जबलपुर में भी चली । मैं वहाँ पर भी गया था । परन्तु मैं 18 दिन तक पर्व मनाता हूँ । आठ दिन श्वेताम्बरों के 10 दिन दिगम्बरों के ऐसे 18 लक्षणी पर्व मैं मनाता हूँ और 18 पाप को दूर करने के लिए तो आज बहुत लम्बी बातें कहूँगा तो आपके पल्ले कुछ पड़ने को नहीं है । तो आप इतनी सी बातें याद

रखिये क्योंकि लोग आज सुनने वाले और सुनाने वाले लोग दोनों ही थक चुके हैं । सुनते-सुनते बेचारे लोग इतने दुखी हो गये हैं कि बाबाजी हमको कितना ही सुनाओ आखिर करना तो हमको वो ही है जो हमारे मन में है यह सुनाने वाले सुना-सुना कर दुखी हो गये । नहीं हमतो सुना के ही मानेंगे जो बैठे हैं । उनको हम तो मोक्ष भेजेंगे । इसलिए दोनों ही दुखी हैं और दोनों को सुखी बनाने के लिए भगवान महावीर ने एक मंत्र दिया वह महावीर का मंत्र हम लोग भूल गये । दुनिया के अन्दर तीन प्रकार के देव हैं एक व्यक्ति देव है, राम कृष्ण महावीर बुद्ध ये व्यक्ति देव हैं, दूसरा गुण देव हैं सत्य, अहिंसा, क्षमा, शान्ति, उत्तम क्षमा ये गुण देव हैं । ये गुण जब व्यक्ति में उतर जाता है, बस वो व्यक्ति देव बन जाता है और तीसरा रूपक देव है । उत्पत्ति स्थिति और लय जिसको पौराणिक भाषा में ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं । देव-देव अहिंसा के दो रूप हैं । एक भगवान् महावीर और बुद्ध की अहिंसा कहते हैं । जि॰१॰ । प्रमोद अहिंसा कहते हैं । प्रमोद देकर के दुनिया को सुधारना । एक राम कृष्ण की अहिंसा है । राम और कृष्ण कोई हिंसक नहीं थे । वो भी अहिंसक ही थे पर उनकी संहारिणी अहिंसा थी उन्होंने देखा कि दुष्ट नहीं मानता है । संहार कर दो महावीर ने कहा संहार नहीं करो उसका हृदय परिवर्तन कर दो । प्रबोधनी अहिंसा संहारिणी अहिंसा दोनों अपनी-अपनी जगह पर है । प्रबोधिनी क्या है ? सहारिणी क्या है ? वैसे तो जैन शास्त्रो में अहिंसा के १०८ नाम हैं जहाँ मैं बोल सकूँ, सबकी व्याख्या कर सकूँ । इतना समय नहीं है । सम्यग्दर्शन सम्यकज्ञान चारित्र दर्शन की बात कहकर मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ । इसी में शाकाहार है । इसी मे अहिसा है । सम्यग् ज्ञान का मतलब है जानना । मैं कौन हूँ ? जगत क्या है ? परमात्मा क्या है ? इसको जो जानते हैं उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं । सम्यग् दर्शन का मतलब यह है कि मानना देव को मानना, गुरु को मानना, धर्म को मानना, शास्त्रों को मानना, इसका नाम है सम्यग् दर्शन । मानने का नाम है सम्यग् दर्शन जानने का नाम है सम्यग् ज्ञान करने का नाम है सम्यग चारित्र है । क्या करें ? जिससे समाज में, राष्ट्र मे, परिवार में बुराइयां कम हो वो करना । ज्योतिष शास्त्र में एक नियम है ज्योतिष शास्त्र मे दो तरह के ग्रहों का वर्णन है एक जन्म पत्री देखते हैं तो उसमें दो बातें आती है-शुभ ग्रह के उदय से यह आदमी अमुक उम्र में सुखी हो जायेगा । नीचे फिर लिखते हैं यह आदमी अमुक अशुभ कर्मों का उदय आवेगा और यह आदमी दुखी हो जायेगा । उस समय इसको क्या जाप करना चाहिए । उस समय यह सुखी हो जायेगा । धर्म पर, ज्योतिष पर, राजनीति पर, परमात्मा पर, मोक्ष पर, ज्ञान दर्शन चारित्र पर, सब पर बातें करेंगे । कोई फायदा नहीं होगा अब एक मिनट शान्तिनाथ मंत्र का जाप करेंगे ।

ओम शान्ति, ओम शान्ति देवा ।

व्रतों को धारण करें, बुराई को छोड़ें और भले आदमी बनें । निश्चय और व्यवहार के झगड़े में न पड़कर समाज की एकता लाना । निश्चय नय ना तो लोग निश्चय नय को समझ पाये अभी तक ना लोग व्यवहार नय को समझ पाये खाली लड़ रहे हैं और निश्चय नय वालों का सम्मेलन हुआ । उसमें भी मैंने कहा व्यवहार नय का पर दोनों लड़ रहे हैं । जैन दर्शन अलग चीज है ।

अहिंसा शाकाहार एवं भारतीय संस्कृति

आचार्य सन्मति सागर

आज के इस समुदाय मे और आज के समाज में वास्तविकता से अनुभव किया जाय तो इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज के समय में हमें इस प्रकार के समारोह की, धार्मिक समारोह की त्यागी और तपस्वियों के सानिध्य की अत्यन्त आवश्यकता है । ऐसी आवश्यकता है कि हमारा जीवन जो मृत्यु की ओर आगे बढ़ रहा है, उस जीवन में वास्तविकता लाने के लिए उस जीवन मे सरलता लाने के लिए इस जीवन के रस का रसास्वादन करने के लिए, हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं । हमें आपको मानकर चलना चाहिए । इस विषय के अन्तर्गत आचार्य परम्परा के अन्तर्गत एक विषय निर्धारित किया गया है और इसी विषय के अन्तर्गत आज मै अपने विचार व्यक्त करने जा रहा हूँ । मैं यही कहता हूँ कि वास्तव में मनुष्य जब से जन्म लेता है और मृत्यु पर्यन्य स्वाधीनत्व का वही अनुभव करता है । प्रवाहित होता रहता है । वही आस्तिकता का केन्द्र अस्तित्व का दर्शन ही उसका धर्म है । जिस प्रकार दूध में घी, अग्नि में अग्नि और चन्द्र मे चांदनी विद्यमान होती है उसी प्रकार से इस जीवन में आत्मा में धर्म विद्यमान होता है । इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द देव ने यही कहा है कि "बत्युस्वभावोधम्मो" वास्तव में वस्तु का स्वभाव ही धर्म है इसे समझें लेकिन साथ-साथ ही वह व्यावहारिक दृष्टि से व्यवहारिक जीवन मे हम अपने जीवन में इतना ही नहीं हमारे धार्मिक पंडित विद्वान भी पद से, प्रण से बहुत दूर हो गये हैं । जितने ये हमारी वेष-भूषा देखी जा रही हैं । जितना कर्णेन्द्रिय का विषय बना हुआ है । जितने सुनने के साधन जुटे हुए हैं । जितनी खाने पीनेकी लालसायें बढ़ रही हैं । हम भक्ष-अभक्ष के विचार को छोड बैठे हैं । उतने हम पतन की ओर चल रहे हैं । दुखी बन रहे हैं । अवलोकन करिये हमारी वेष-भूषा क्या भारतीय वेष-भूषा है । क्या हमारा खाना-पीना भारतीय है । जैनियो मे शाकाहार क्या बात है ? ये अभी आपको सभी बातें बता दी गई कि किस-किस की क्या दशा हो रही है । हम जितने-विषयों में उलझते जाते हैं । उतने ही हम दुख के साधन को जुटाते हैं और अपने को दुखी बनाते हैं । अहिंसा प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है । दया धर्म का मूल है । अहिंसा परमोधर्म का नारा बुलन्द करते हैं । जय हिन्द समझ में आया क्या है ? हम केवल नारा बुलन्द करते हैं, हम अन्तस्तत्व मे कितने यह समझना चाहिए । देखिये हिंसा में मांसाहार-मांसाहार बिना हिसा के होता ही नहीं । मांस किसको कहते हैं ? जहाँ रक्त का संचार होने लगा । जहाँ रक्त की उत्पत्ति होती है । उसका कलेवर है । उसका जो अन्तस् भाग है वह मांस कहलाता है । भव्य जीवों दो इन्द्रिय आदि को मारकर बहुत कम खाने वाले हैं लेकिन मैंने यह आपको बता दिया क्योंकि देखने और सुनने मे नहीं आता करने में खूब आता है । चक्की पर आटा पीसते हैं । पीसते हैं कितना शोधन करते हैं । उसमें जीव पिस जाते हैं । पता नहीं लगता क्या खाया दो इन्द्रिय आदि लट आदि जीव जो उसमें पिस गये उसको किसने खाया ? क्या खाया ? ध्यान में रहा कुछ । नहीं रहा इसके अलावा शाकाहार साग-सब्जी उसमें कीड़े अन्दर पड़ गये, कट गये, पक गये, और

खा गये। इसके अलावा और देखिये पत्ती वाले जो साग आते हैं उनके ऊपर उड़ने वाले छोटे-छोटे जीव पाये जाते हैं। हम उसका कितना शोधन करते हैं। कितना परिहार किये, सोचने की बात हैं। इसलिए हम इस बात का प्रण करें, संकल्प करें कि हम किसी भी जीव की हिंसा नहीं करेंगे। भव्य जीवों गृहस्थ जीवन में अगर इतना निर्वाह हो गया। हमारा जीवन हमारी आत्मा पवित्रता की ओर चलने लगेगी। मोटा-मोटी देखिये, हम आपस में हिसा का पालन करते हैं। अपने भाई-भाई से भिड़ जाते हैं। बाप को छोडते नहीं मा को छोडते नहीं और दूसरे की बात क्या है कि कई व्यक्ति ऐसे पाये जाते हैं जो अपने आप मर जावे उसका मास खाते है। और मारकर नहीं खाते हैं। अमृतचन्द्र आचार्य ने यह कहा कि इस मांस में प्रति समय उसी के आकार के जीवों की उत्पत्ति होती रहती है और वे मरते रहते हैं हम आपको यह मूल बात बताना चाहते हैं जहाँ हमारा विवेक चला गया, हमारा जीवों के बचाने का संरक्षण करने का उपयोग हट चुका है। वहाँ हिंसा ही हिंसा है जहां हम वस्तुओं के शोधन मे लगे हुए हैं। जब हम दूसरे जीवो को सताते नहीं। जहाँ हम किसी जीव को मारते नही अथवा मारने के आदेश नहीं देते हैं। मारने वाले की अनुमोदना नहीं करते हैं। तब कहीं हमारा अहिसा धर्म का नारा बुलन्द होता है। भव्य जीवों हम बोलते कुछ हैं, करते कुछ हैं, सोचते कुछ हैं, यह हमारी प्रवृत्ति संस्कृति को दूषित करती है। शाकाहार मे अभी शक्ति के सदर्भ में बताया गया। हमें वास्तव मे शाकाहारी बनना ही चाहिए। जो जीवो की हिंसा से बचेगा, तो वह अपने को भी सुरक्षित रखेगा। कर भला होगा भला। आप दूसरे की रक्षा करेंगे तो आपकी भी रक्षा होगी और अगर आप दूसरो को मारेंगे तो स्वयं भी मारे जाओगे। इसीलिए अपने को दूसरे की रक्षा मे अपना उपयोग लगाना चाहिए। उनकी रक्षा करनी चाहिए तो हमारी रक्षा होगी। हमारी आत्मा की रक्षा होगी और वह आत्मा परमात्मा बन जायेगी।

भारतीय संस्कृति, अहिंसा और शाकाहार

प. पू. प्र. ग. आ. 105 विजयमती माताजी

अभी तक हम लोगो ने भारतीय संस्कृति, अहिंसा और शाकाहार के गीत गाये हैं, गाते चले आ रहे हैं, सुन रहे है, सुना रहे हैं। जीवन में यह कहा जा रहा है, यह अपने-अपने को मालूम है, सुनकर किधर जा रहे हैं। यह टटोल लें। एक कहावत है-"घर का जोगी जोगन्ना आन गाँव का सिद्ध", यह भारत भूमि धर्म का उद्यान रहा है और उद्यान की शोभा किसी एक वृक्ष का एक प्रकार के पुष्प, किसी एक प्रकार के फल के द्वारा नहीं होती अपितु नाना प्रकार के फल, पुष्प, वृक्षो के द्वारा ही उपवन शोभायमान होता है तो इस सार्वभौम, सर्वव्यापी सनातन सिद्धान्त के

परिप्रेक्ष्य में अगर धर्म है तो भारत का अहिंसा धर्म है । जैन सिद्धान्त में, जैनागम में, जिन गुरुओं ने अहिंसा की परिभाषा करते हुए लिखा है "अत्ता चैव अहिंसा" आत्मा ही अहिंसा है और अहिंसा ही धर्म है । धर्म और अहिंसा जब पृथक नहीं है जीवन से घुली मिली है तो हमारा जीवन ही अहिंसा है और प्रत्येक प्राणी को हम जीव कहते हैं तो हर जीव के अन्दर अहिंसा है । अगर हम प्राणी का घात किये तो अहिंसा का घात हुआ और अहिंसा का घात हुआ तो धर्म का संहार हुआ । धर्म का संहार करने वाला चाहे कि मैं सुखी हो जाऊँ, मेरे जीवन में शान्ति आ जाये, मेरे संताप और विपत्तियाँ दूर हो जायें तो यह कभी भी संभव हो नहीं सकता । जिस प्रकार अग्नि से उष्णता को हटाकर हम चाहें कि अग्नि का अस्तित्व रह जाये तो यह इम्पोसीवल है, असम्भव है । उसी प्रकार धर्म को हटाकर, अहिंसा को हटाकर जीवन, जीवन कभी भी रह नहीं सकता । हम सोचते हैं कि हमने पर पीडा दी, पर का संहार किया, दूसरे के प्राणों का हनन किया लेकिन वास्तव में पर का हनन नहीं किया, हमने अपना ही हनन किया है । आग लेकर के किसी को जलाने वाला हथेली पर आग रखें कि मैं उनको जलाऊँगा क्या वह उसको पहले जलायेगा कि स्वय जलेगा ? अपने ही उसको पहले जलना होगा, जले बिना रह नहीं सकता । उसी प्रकार पर की हत्या करने वाला पर को सताने वाला पहले अपना ही अहित करता है । इसीलिए आचार्यों ने हमारे यहाँ पर हिंसा के दो भेद किये । द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा । द्रव्य हिंसा की अपेक्षा भाव हिसा को विशेष महत्त्व दिया है ।

महात्मा गांधी ने यह संकल्प किया कि अगर मुझे देश को आजाद कराना है तो एक जैनधर्म की अहिसा ही मेरे लिए अस्त्र रूप मे पर्याप्त होगी और उन्होंने अपने जीवन में उसको साकार रूप देकर के आपको स्वातंत्र्य दिया लेकिन आश्चर्य की बात है, दुख की बात है कि जिस सत्ता को हमने अहिंसा के बल पर, अहिंसा के आधार पर अहिंसा के द्वारा हस्तगत किया । वही सत्ता आज हिंसा के ताण्डव नृत्यका शिकार बन समाज, देश और राष्ट्र को नाश के कगार पर खड़ा कर रही है । कितनी भीषण और भयकर दशा है । हमारे जीवन का एक-एक क्षण हिंसा के साथ जोड़ा जा रहा है और एक हम हैं कि हमारे ऊपर से ऐसी "उल्लू की लकड़ी फिराई जा रही है ।" जादूगर जब जादू कर देता है तो आदमी का मस्तिष्क फिर जाता है और वह उसी के पीछे दौड़ने लगता है । वही दशा आज हमारी इस वैज्ञानिक युग में विज्ञान के चकाचौंध में पड़कर के हो रही है । हम अपनी वस्तु को भूलकर दूसरे के पीछे बेहताश दौड़ रहे हैं । क्या भैया किसी ने यह कह दिया कि तुम्हारा कान कौआ लेकर उड़ गया, कौन-कौन ले गया, काग ले गया । हम दौड़ने लगे । किस के पीछे, कौवे के पीछे । दौड़ रहे हैं, दौड़ रहे हैं, दौड़े रहे हैं । लेकिन अपना कान टटोल करके नहीं देख रहे हैं कि है या नहीं आज यही दशा हमारी हो रही है । हम पाश्चात्य संस्कृति के पीछे दौड़े चले जा रहे हैं और सरकार ने हमको, विज्ञान ने हमको इस प्रकार की चीज दे दी हैं । इस प्रकार का प्रदर्शन दे दिया है । इस प्रकार का एक साकार चित्र हमारे सामने खींच दिया है कि हम अन्धे होकर के उसका अनुकरण करते चले जा रहे हैं और इससे क्या हो रहा है कि हमारे देश की संस्कृति नष्ट-भ्रष्ट और ध्वस्त होती चली जा रही है और उसके साथ-साथ में हमारा पतन होता चला जा रहा है । समाज वही जीवन्त रहता है जिसकी संस्कृति

जीवन्त रहती है । याद रखिये संस्कृति वही जीवन्त रहती है जिसके अन्त में सदाचार रहता है । सदाचार वहीं टिकता है जहाँ पर धर्म रहता है और जहाँ धर्म रहता है वहीं पर राजनीति टिकती है । अगर धर्म से राजनीति को पृथक् कर दिया जाय तो राज सत्ता भी टिक नहीं सकती । आज के सत्ताधारी जो यह समझते हैं कि हम धर्मविहीन होकर के अपनी सत्ता की उन्नति कर लेंगे, अपनी सत्ता को कायम रख लेंगे । यह उनका कोरा स्वप्न है । कभी भी वह सत्ता टिक नहीं सकती । आप जरा रावण की ओर देखिये, रामायण काल में जरा जाकर के झाँकिये जब तक रावण न्याय पर रहा, नीति पर रहा जब तक धर्म का प्रश्रय लिया । उसकी सोने की लंका बनी रही । उसकी राज सत्ता टिकी रही और जहाँ अन्याय पर दृष्टि डाली कि क्षण भर में लका मिट्टी का ढेर हो गई । उसी प्रकार हम देखें हमारे एक नहीं अनेकों इस प्रकार के उदाहरण हमारे सामने हैं कि जब-जब हमने अपना चाल-चलन अपना खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा और भाषा इसके ऊपर आघात किया । इसको विकृत किया, हमारा जीवन खतरे में पड़ गया और वही दशा आज भी हो रही है । हम सब कुछ अपना फैशन परस्ती में झोंके चले जा रहे हैं । आज हमारी नारियाँ अपना नारीत्व को खो रही हैं और पुरुष पुरुषत्व से हाथ धो रहे हैं । यह हमारी अहिंसा नहीं है यह हमारा शाकाहार नहीं है । हम शाकाहार मे पनपने वाले, शाकाहार में जीवन्त रहने वाले यदि मांसाहार की ओर दृष्टि डालेगे तो सुनिश्चित है कि हमारा धर्म तो नष्ट होगा ही, जीवन बर्बाद हो जायेगा । यह शरीर भी नहीं टिक सकेगा । आप जैसा कि रोज पेपरों में पढ़ रहे हैं, देख रहे हैं और डॉक्टरों के द्वारा सुन रहे हैं कि मासाहार ने कैंसर को जन्म दिया । मांसाहार ने नाना प्रकार के हार्टफैल जैसे रोगो को जन्म दिया । पारलेसिस' जैसे रोगो को जन्म दिया और न जाने किन-किन रोगों को जन्म दिया है । जिनके आप साकार बन रहे हैं और साकार बनकर के इतने आदि हो रहे हैं कि उसी का अनुकरण करते चले जा रहे हैं । यह मानव हमारे लिए दुख और आश्चर्य की बात है । भव्य जीवों हमारा सिद्धान्त क्या कहता है । आपने कल भी सुना होगा और आचार्य महाराज हमेशा बोलते हैं "बोली का घाव भरता नहीं है, तलवार का भर जाता है" तो इसका मतलब क्या हुआ कि हमारी बोली मे, हमारे वचन मे वो शक्ति है कि हम एटम बम और अमृत बम दोनों ही उत्पन्न कर सकते हैं जो संघार करने वाली चीज है उसी वचन को न बोलकर के यदि हम अमृत कंठ से भरे हुए अमृत रूपी वचन का प्रयोग करें तो यह सबसे बड़ी हमारी अहिंसा होगी । हम भाव हिसा से बचेगे जो हमारे आध्यात्मिक जीवन की घातक है । हमारे यहाँ तो भय, दुर्दशा, काम, क्रोध, कर्ज भावनाये अगर पैदा होंगी तो वह हिंसा की कोटि में सब गर्वित है । एक ही शब्द में आचार्य कह रहे हैं "प्रमत योगातप्राण व्यपरोपणम् हिंसा" प्रमत योगा बना दिया, प्राणों का व्यपरोपन करना, नाश करना ही हिंसा नहीं है । जहाँ जहाँ प्रमाद है वहाँ वहाँ हिंसा है । अब कहेंगे कि प्रमाद किस चिडिया का नाम है अपने आत्मोत्थान के प्रति अनुकशाकार का होना यही प्रमाद है । अपने जीवन कल्याण की प्रितियाँ, कार्यों, व्यवहारों के प्रति हमारी अनुकांशा होना उदासीनता होना इसी का नाम प्रमाद है और यह प्रमाद आज हमारे सभी के समाज और देश के अन्दर पैर तोड़कर के बैठा हुआ है । हमारी सारी संस्कृति की रीढ़ को उसने तोड़ दिया है । हमारी अन्तःकरण की कोमल भावनाओ को कुचल दिया है । हमारी जो सहिष्णुता, हमारा जो

वात्सल्य, जो सम्यक दर्शन का प्रमुख अंग है उसको नष्ट कर दिया है । कहां हमारा वात्सल्य, एक भाई कहता है मुझको राज नहीं चाहिए । मैं राज का अधिकारी नहीं हूँ ज़िसका अधिकार है वो करेगा । अनाधिकार चेष्टा पाप है । हिंसा है । मैं ऐसे कार्य करूंगा और एक आज का युग है भाई की छाती पर बैठकर के भाई-भाई का रक्त पीने में नहीं चूक रहा है । क्या यह हमारी संस्कृति है ? यह हमारा धर्म है ? यह हम शाकाहारियों का कर्त्तव्य है ? हमारे पास हमारा रहा क्या । आपकी दशा को देखकर के कोई भारतीय कह सकता है । आपकी पहचान है क्या, सबसे ज्यादा बिगड़ा है तो यह दिगम्बर समाज बिगड़ा है ।

मै एक स्वर मे कह सकती हूँ, बहुत सुन्दर देखिये वह सिक्ख महाराज खड़ा हुआ है उनके सिर की ओर ताकते ही हमको समझ आ रही है कि यह सिक्ख है जो उनका चिह्न है हाथ मे कड़ा देखते ही हमको आ जाता है, मालूम पड़ जाता है कि यह सिक्ख है । उनके गुरुद्वारों के दरवाजे पर जाते ही हमको मालूम पड जाता है कि यह सिक्खों का गुरुद्वारा है । आप यहाँ बिना टोपी के बेठे हुए हैं जातो भूतों जाओ बन्दर पड़े, किधर इशारा कररहे हैं । दोनों तरफ इशारा कर रही हूँ । वो विवश, ये दवेष, क्या हमारी/संस्कृति है । यह शाकाहारियों का वेष है जब वेष बदल गया इसीलिए तुम्हारा आहार भी बदल गया । खान-पान भी बदल गया और जो कुछ बदल गया उसने आपके सारे जीवन को बदल दिया और आप आज धर्मात्मा के जगह पर एक अधर्मात्मा कहलाने के योग्य बन गये । जब अहिसा परमो धर्म कहेंगे लेकिन आपका अहिंसा परमो धर्म कहां गया ? हम मुनैरा में थे, मैं रात्रि को थोड़ा विश्राम कर रही थी । एक लड़की आकर के मेरा पैर दबाने लगी, मेरी नींद खुली अचानक चौंक करके मैंने कहा कि हूँ, हूँ, अलग हट जाओ । वह कहने लगी क्यो माताजी, मुझको क्यो हटाती हो । जब वह बोली तो मुझको समझ में आया कि यह लड़का नही लड़की है । मैं समझ रही थी कि यह लड़का आकर के मेरे पैरों को पकड लिया । यह हमारी पहचान है । यह हमारी वेशभूषा है । हम बाल कटाने में अपना गौरव समझते हैं । हम बड़ी सुन्दरी बन गये । हमारे चेहरे के ऊपर वो लटकते हैं, झूमर के जैसा तो हम समझते हैं कि हमारा यह गौरव है लेकिन माताओं-बहिनो मुझे क्षमा करेंगी । मैं आपके सौन्दर्य प्रसाधन के लिए निषेध नहीं करती । आप सौन्दर्य प्रसाधन करने की योग्यता रखती हैं तो जरूर करिये । सौभाग्यवती का चिह्न है वो चिह्न आपको नहीं छोड़ना है लेकिन मेरा यह कहना है कि जिन चीजो के अन्दर हिसा होती है उन चीजो का उपयोग ना करें, उनका प्रयोग आप ना करें । उनसे आप हट जावे । दूर हो जावें । क्या सैम्पू लगाने से आपके बालों की शोभा होगी ? जिसके अन्दर पंचेन्द्रिय जीव अण्डा पड़ता है और अण्डे को हम क्या कहते हैं ? यह शाकाहार है । सवेरे आचार्य महाराज ने आपको बता दिया कि अण्डा कभी भी तीनकाल में भी शाकाहार नहीं हो सकता और यही कारण है कि बुद्धि विपरीत हो रही है जो शुद्ध वस्तुएँ हैं जो बच्चे हैं जो सही है उनको हम गलत कहते हैं । आज के नव युवक नव युवतियाँ, विद्या और अध्ययन के चकाचौंध में पढ़ने वाले बोलते हैं कि दूध पीना भी तो मांसाहार है । आप दूध क्यों पीते हैं ? लेकिन मेरे पास

अभी ज्यादा समय नहीं है कि रक्त और दूध में क्या अन्तर है ? मैं आपको बताऊँ, लेकिन एक उदाहरण मैं आपको देती हूँ। आपके शरीर के अन्दर रक्त है और एड़ी से लेकर के चोटी तक कहीं पर भी आपको एक सुई लगाकर के देखा जायेगा तो हर स्थान से हर पोरशन से रक्त निकलेगा। किसी के भी शरीर से कहीं से दूध निकलेगा क्या ? निकलेगा ? नहीं निकलेगा और जब बच्चा गर्भ मे आता है और माँ का प्रेम, माँ का वात्सल्य जब बच्चे के प्रति फूटता है तो उसके स्तन में कोई इंजेक्शन से दूध नहीं भरा जाता है। अपने आप आ जाता है। वो दूध पिलाती है और बच्चे का पोषण करती है। कोई माँ अपना रक्त पिलाकर के बच्चे का पोषण कर सकती है क्या ? नहीं अगर दूध पिलाना बंद कर दे तो क्या बच्चा जीवन्त रहेगा। वो भी जीयेगा नहीं और जीयेगा तो उसकी नशों में वो शक्ति और ताकत नहीं आयेगी जो माँ के दूध से आती है। कितना बड़ा अन्तर है। आप गाय-भैंस को कहेंगे उसके भी बच्चे के लिए दूध होता है फिर मनुष्य को वो नहीं पीना चाहिए। वह भी हिंसा है। मैं पहले आपको बता चुकी हूँ हिंसा वो है जिससे कि किसी को पीड़ा पहुँचती है, किसी का दिल दुखता है। किसी को कष्ट अनुभव होता है। यदि आप गाय-भैंस का दूध निकालना बन्द कर दें और कहें कि इसका बच्चा ही पियेगा तो मैं समझती हूँ वह बच्चा और माँ दोनों खतरे में पडे बिना नहीं रहेंगे अगर बच्चे ने पी लिया तो उसका पेट फूलेगा और अगर नहीं पिया तो माँ के स्तनों मे गाँठें हो जायेंगी और कैंसर जैसा रोग भी पैदा हो जायेगा। दूध नैसर्गिक चीज है, स्वाभाविक चीज है और हमारे आचार्यों ने कहा है स्वभावो अतर्क गोचरा, स्वभाव में तर्क नहीं होता है। आपसे कहे कि नींव कड़वा क्यो होता है, नीबू खट्टा क्यो होता है, मिर्च चिरपरी क्यों होती है ? आपके पास में कोई उत्तर नहीं है, हो कोई हो तो दिखाइये। मेरे को दे दीजिए। मैं लेने को तैयार हूँ। उसी प्रकार मानव का स्वभाव है किसी को नहीं सताना, दुख नहीं देना, किसी के ऊपर खजर नही चलाना, चाहे वो सौ अपराध ही क्यों न करे, निरअपराधी की बात तो छोड दीजिए। अपराधी भी है तो आपका कर्त्तव्य है कि उसको क्षमा के द्वारा उसके हृदय को परिवर्तन कीजिए। न कि उसके जीवन को परिवर्तन कर दे। जीवन आपने दिया नहीं, फिर आपको लेने का अधिकार भी क्या हो सकता है ? जो देता है वो देने के बाद सच्चा दानी है तो मांगता नहीं है। फिर हमतो दिये ही नहीं हैं फिर हमको मागने का अधिकार क्या है ? आज कितने पशु काटे जा रहे हैं ? हम छोटे-छोटे थे तो मुझको याद है हमारे गाँव मे एक ऐसा स्थान था कि जहाँ पर कोई व्यक्ति नहीं जा सके। वहाँ पर मांसाहारियों का अलग से निवास था। वहाँ वे ही जायेंगे, दूसरा कोई नहीं जा सकता। आज हमारी सरकार सत्ताधारी, आज हमारा राज्य सरे आम शराब और मांस का विक्रय करने के लिए क्या-क्या कर रखा है। सब जगह हमारे यहाँ पर एक-एक स्थान पर ये सब दुकाने लगी हुई हैं। साग-भाजी जैसे बिकती है उसी प्रकार आज मांस और अण्डा का विक्रय हो रहा है और यही नहीं आपको याद होगा। मुझे सन् तो याद नहीं है एक बार एक्ट बनवाया था। दिल्ली की लोकसभा में छोटे बच्चों के लिए स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों को दो अण्डा कम्पलसरी खाना ही पडेगा, 89 मे। उसी समय हमारे दिगम्बर जैन समाज ने

इसका जी तोड़ कर पूरा-पूरा विरोध किया और उस एक्ट को रिजेक्ट करवा करके ही छोड़ा। सब बच्चों को स्कूल जाने से बन्द कर दिया लेकिन वह जहर अब उसी रूप में न दिया जाकर के उसको पीयूरीफाई ये परिभाषा देकर के जैसाकि हम मुँह से रक्त को नहीं पीते हैं लेकिन इंजेक्शन से चढ़ाया जा रहा है। क्या पहले के लोग यूं ही म' गये। उनके रोगों की शान्ति नहीं हुई। वो रोगी ही नहीं होते थे। शाकाहार में यह दम है, यह शक्ति है, यह योग्यता है कि वह रोग का उत्पादन नही करता है। कर्मवशाद, असाता कर्म के उदय से यदि किसी को रोग हो गया तो उन्हीं औषधियो के द्वारा वनस्पतियो के रसों के द्वारा उन रोगों की निवृत्ति भी हो जाती है। आज आप इजेक्शन लेते हैं, अपने नव निहाल बच्चों को भी देते हैं और आपके बच्चे जब गर्भ में ही रहते हैं तभी से उनको वो सूईयाँ घुसाना शुरू कर देते हैं। बड़े होने के बाद जब वह आँखें खोलते हैं तो उनके अन्दर से वही भावनायें जागृत होती है और अहिंसा की जगह हिंसा को ही अपना कर्त्तव्य मान बैठते हैं। माताओं और बहिनो और 'ाइयो मेरा एक ही इस मंच से आप लोगों के लिए आह्वान है कि आप अपने-अपने को बनाने की चेष्टा कीजिए। हर व्यक्ति आज यह प्रतिज्ञा ले कि जिन वस्तुओ के अन्दर हिसात्मक प्रक्रिया होती है। हिंसात्मक जिन का प्रोडेक्शन हो रहा है। जिनको हिसात्मक प्रक्रिया से तैयार किया जा रहा है। उन चीजों का हम इस्तेमाल नहीं करेंगे। अपने जीवन मे उनका प्रयोग नहीं करेंगे। आप क्या खाते हैं वो लम्बे-लम्बे आते हैं ना क्या बोलते है केप्सूल, क्या बोलते है जो भी बोलते हैं। क्या है वो क्या है उसमें क्या लगा हुआ है जिसको आप शॉफ्ट कहते है, चमक कहते हैं, दमक कहते हैं। आप जूते पहनते हैं कॉफ लेदर, क्रम लेदर, फलाना लेदर है। चमड़ा नहीं बोलते हैं। हम लेदर बोलते हैं, लेदर हैं वो दर-दर पर ये ठोकर खाओ। लेदर का अर्थ यही होता है। ये सारी चीजे क्या हैं ? यह हमारा जीवन नष्ट-भ्रष्ट करने वाली चीजे हैं। आप लोग सावधान होवे। अपनी सस्कृति सभाले, अपने वेशभूषा संभालें, अपने आहार को सभालें। एक कहावत है जैसा खावे अन्न वैसा होवें मन, जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी।'' समय हो गया।

बस मैं अन्त मे आपको बताऊँगी कि दीपक अंधकार को खाता है तो उससे काला अंजन ही पैदा होता है क्योंकि अंधकार भी काला है, आप भी अगर मासाहार सेवन करेंगे तो आपके अन्दर से वही क्रूरता, वही नृशंसता वही पापाचार, आत्मा, अनाचार की भावनायें जागृत होती हैं और आप दूसरों को बर्बाद करने की जगह आप स्वयं बर्बाद हो जायेंगे और आप दोनों इस प्रकार के इस संसार से पलायन करेंगे कि किसी घोर दुख के गर्त में पड़ जायेंगे। जहाँ से निकलना इम्पोसिबल नहीं हो तो महाकठिन तो अवश्य ही है तो उन दुर्दशाओं से हम बचें और इस चकाचौंध में हम नहीं आवें, ठीक है। कुछ क्षण के लिए हम को शारीरिक आराम मिलता है और हम अपने को गौरवान्वित करते हैं। हम समझते हैं आज "Every man is the king and every woman is the queen" हम सब राजा/रानी हैं, महाराजा/महारानी हैं। क्योंकि हम भी आराम के साथ बैठे रहते हैं। हमको कोई कामधाम करने की आवश्यकता नहीं है लेकिन इसी भावना ने

आपके जीवन को बर्बाद किया है । आपने देखा होगा । लकड़ी में जब घुण लगता है तो ऊपर से लकड़ी सॉफ्ट रहती है । सुन्दर दिखती है, गोलमटोल दिखती है लेकिन अन्दर-अन्दर से अरण्डी की लकड़ी की जैसी पोली हो जाती है तो आपका जीवन भी पोला होता जा रहा है । आपका धर्म भी पोला होता जा रहा है । आपके आध्यात्मिक भावनायें भी पोली होती जा रही हैं । इस पोल से बचने के लिए आप प्रयत्नशील हो जाइये । जल्दी जग जाइये नहीं तो आपका क्या होगा । वो कहा नहीं जा सकता । आपको जागरण के लिए यह दीपक रखा गया है । आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज जी एवं चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागर महाराज के जीवन से हम शिक्षा लें और जिन्होंने अपनी संस्कृति को रक्षण करने के लिए अपने जीवन को दे दिया । उनकी इस महापुण्य तिथि के अवसर पर कम से कम हम यह नियम करें कि इस प्रकार की घिनौनी चीजों को जिनको स्पर्श करना भी नही चाहिए । उनका हम त्याग करे और अपने जीवन को सात्विक, सरल और महा पवित्र बनाने की चेष्टा करें ।

अहिंसा शाकाहार और भारतीय सस्कृति, क्या बतायें आपको गुरु इस प्रकार की शिक्षा देते हैं । बहिनों किसी भी तरह अहिसा को मत अपनाओ । भाईयों सभी अपनी बहनों को अपनी बेटी के समान समझो । फैशन को तिलांजली देकर सभ्य व्यवहार कर देश की कुरीतियो को नही अपनाये । अपनी भारतीय सस्कृति पवित्र सस्कति है । इसमे अपना जीवन ढालें और इस प्रकार से भारतीय सस्कृति को अपना कर अपना जीवन सुखमय बनाकर गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करें और मुक्ति के मार्ग पर आगे बढे । इतना कहकर मैं अपना प्रवचन समाप्त करती हूँ ।

कुरीतियों से बचाव

प. पू सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ सन्मतिसागरजी महाराज

आज अभी आपके सामने समाज मे फैली हुई कुरीतियाँ और नारी शोषण की बात चल रही थी । साधुओं के विचारो से आप अवगत हुए । प्रायः मनुष्य पाप करता है तो उसे समझ में आता है कि उसने पाप किया, भले ही वह अपने मुख से न बोल सके कि वह किस कारणवश हुआ । जब हम जिन प्रतिमा का दर्शन करते हैं तो दर्शन करते ही हमें हमारी आत्मा की याद आती है । ठीक इसी प्रकार अपने जीवन में हम क्या कर रहे हैं ? यह बात भी समझ में आती है । तीर्थंकरों ने जो भी कहा वही सत्य है । आगम में जो आचार्यों के द्वारा लिपिबद्ध हुआ वह भी सत्य है, यदि तदनुसार आचरण नहीं बनता तो श्रद्धा अवश्य रखें । यदि श्रद्धा बनी रही तो मार्ग विभ्रम

नहीं होगा । कोई विषय समझ में नहीं आया तो अर्थ का अनर्थ कर दूसरे को भ्रमित करने की चेष्टा न करें । आगम को पढ़ते समय अनेकान्त दृष्टि रखें और चारित्र विशुद्धि पर बल दें, अपनी शक्ति को न छिपाते हुए नियम व्रतों का पालन करें । जिसको भी कल्याण करना है, वह अपने को देखे, अपने को सम्भाले, तब यह जीव अपनी आत्मा के हित में लग सकता है । अन्यथा पर प्रपञ्च में फँसा हुआ वह स्वयं भी डूबता है और दूसरे को भी डुबो देता है । तीर्थंकर की वाणी, आगम का शब्द किसी को डुबोने के लिए नहीं है । एक संदर्भ में मोक्ष मार्ग प्रकाशक ने बताया कि अध्यात्म तो आत्म कल्याण के लिए है, आत्मा को शुद्ध बनाने के लिए है, यदि कोई अध्यात्मक शास्त्र को पढकर नरक चला जाय तो यह दोष अध्यात्म का नहीं । नरक स्वकीय अपराध से गया, अध्यात्म को पढने से नहीं । यहाँ, अध्यात्म को पढ़ने वाले नरक जायेंगे ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं बना सकता । ठीक इसी प्रकार से आगम में सर्वत्र कर्त्तव्यों का निर्देश किया है, यदि हम कर्त्तव्यों का पालन न करें । कर्त्तव्य च्युत हो जायें तो इसमें आगम का क्या दोष है ? हमें अपने कर्त्तव्यों में इस प्रकार निष्ठ होना चाहिए, जिससे हमारा जीवन उन कुरीतियों से और दूसरे के शोषण करने से बच सकें । आप सोचते हो कि हमने अमुक व्यक्ति को ठग लिया पर आगम कहता है कि नहीं आपने अपने आपको ठग लिया । यदि आपने किसी गरीब का शोषण किया तो वस्तुतः आपने उसका नहीं, अपना ही शोषण किया । संसार में कोई व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट है कोई दुबला पतला, क्या कारण है ? विचार करिये । गहराई पूर्वक चिन्तन करिये । कोई लम्बा है कोई ठिगना, यह सब नाम कर्म का प्रभाव है । हमने जैसे-जैसे जिन-जिन परिणामों को बनाया है तदनुरूप कर्म आता गया, इकट्ठा होता गया और यथाकाल फल देता हुआ किसी को स्वस्थ किसी को रोगी कर देता है । यदि हम कर्मानुसार प्राप्त पुण्य पाप की शृंखला में चलते रहेंगे तो संसार बन्धन से कभी छूट नहीं सकते । जो होना है वही होगा ऐसा एकान्त पकड़कर मत बैठें । वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नित्यरूप नहीं । कूटस्थनित्य मानने पर कोई भी जीव पाप से पुण्य में अथवा पुण्य से पाप में नहीं पहुँच सकेगा । मनुष्य पर्याय में हमें ज्ञान का वैशिष्ट्य प्राप्त हुआ है निज पुरुषार्थ से कर्म शृंखला को तोड़ने की शक्ति प्राप्त हुई है । हम उस शक्ति का समुचित उपयोग करें तो रूढ़ियों और कुरीतियों के दुष्प्रभाव से अपने को बचाते हुए शीघ्र संसार बन्धन से मुक्त भी हो सकते हैं ।

रूढ़ियाँ और कुरीतियाँ

प. पू आचार्य श्री १०८ सन्मतिसागरजी महाराज

आपको जय बोलने के लिए कितना बाध्य किया गया, आपको बोलना ही पड़ा। जय क्यों बुलवाई गई ? इसलिए कि जो पूज्य पुरुषो की जय बोलता है, उनका अनुगमन करता है वह भी पूज्य बन जाता है। अभी डॉक्टर साहब ने साहित्य के ऊपर बहुत जोर दिया। हम समझते हैं कि यह तो विषय से विषयान्तर हो गया, पर नहीं, ध्यान रखिये। अग्नि जली ही नहीं तो भस्म कहां से आयेगी। हमारे बीच जो कुरीतियो और नारी शोषण की बात चल रही है वह भी अति विचारणीय है। सुनिये-चिन्तन करिये भय को छोड़कर आत्म कल्याण मे लग जाइये। यही जिनवाणी का सार है। सिंह को धोबी कान पकड़कर ले जा रहा था। दूसरा सिह उसे देखकर कहने लगा अरे। तुझे क्या हो गया ? अपनी जाति के गौरव को भूल गया ? तब भय से काँपते हुए उसने उत्तर दिया, अरे ! चुप रह, नहीं तो तू भी पकड़ा जायेगा। भय के दुष्प्रभाव से वह अपनी शक्ति को भूल गया था। हम भी आत्मशक्तियों को भूले हुए इन कुरीतियों के चक्र मे फँसे हुए हैं। अपने मित्र को बन्धन से मुक्त कराने के लिए आगत सिंह ने जोर से गर्जना की। उसकी गर्जना को सुनकर गदहों के साथ चलता हुआ शेर भी गर्जा जिससे धोबी डरकर भाग गया और शेर को वस्तु स्थिति का ज्ञान हो गया, बन्धन से छूट गया। ठीक इसी प्रकार जिनवाणी का उद्घाटन करने वाले दिगम्बर गुरुजन मित्र के समान कर्म बन्धन में पडे भव्यजीवो को दु ख से मुक्ति दिलाने वाले हैं पर हम उनकी गर्जना जो युक्ति, नय और प्रमाण से मडित है। उसे सुनना नहीं चाहते, अत दुःखी हैं। आप जिनवाणी के वचनो पर श्रद्धा रखे। जिनवाणी माता के द्वारा ही आपका भय दूर होगा। माता अपने बच्चे को पुत्र को निर्भय बनाती है। डरो मत तो श्रद्धावान् वह बालक भी निर्भय हो जाता है। जिनवाणी के अध्ययन से हमको मालूम होगा कि हमारे अन्दर अनन्त शक्ति है। यदि हम आगम को पढे ही नहीं तो अपनी आत्मशक्तियों की पहचान भी कैसे होगी ? जीवन को सुखमय और स्वतत्र बनाने के लिए जिनागम का अध्ययन अनिवार्य है। देखिये-आगरा मे जब मेरा प्रवास रहा उस प्रवास के दौरान मे श्री नेमिचन्द जी पाटनी दर्शनार्थ पहुँचे, पाटनी जी बड़े अच्छे विचार के व्यक्ति है और विद्वान भी हैं। मैं समयसार पढ रहा था, पुण्य पापाधिकार चल पड़ा। प्रश्न हुआ कि पुण्य पाप दोनों को समान बताने से स्वच्छन्दता बढ़ती है ? उन्होंने कहा नहीं, जिन शासन, जैन दर्शन अनेकान्तवाद से अनुशासित है, सुसंस्कृत है। स्वच्छन्दता का कारण अज्ञानता है, कुतर्क और एकान्तवाद है। हठग्राहिता से विरोध बढ़ता है। जैन दर्शन को एक उच्चकोटि का विज्ञान कहे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। जैसे भौतिक विज्ञान, प्रयोगशाला में अपनी प्रयोग क्रिया के द्वारा वस्तु स्वरूप का स्पष्टीकरण करता है उसी प्रकार स्याद्वाद रूपी प्रयोगशाला में विधिवत्

नय और प्रमाण विधि से तत्त्व का वास्तविक स्वरूप प्रगट होता है । एक समय था जब आचार्य श्री अकलंकदेव स्वामी, आ समन्तभद्र स्वामी ने बौद्धादि सभी एकान्तवादियों को चैलेन्ज दिया था कि आओ शास्त्रार्थ करो ।

''पलायध्वं पलायध्वं रे रे तार्किक दिग्गज:

समन्तभद्र: समायात. स्याद्वाद वन केशरी ॥''

श्री समन्तभद्राचार्य की विद्वत्ता से भयभीत होकर विद्वत् मंडली में यह शोर मच गया ओ ! तार्किक दिग्गजों ! अब भागो भागो क्योंकि स्याद्वाद वन केशरी समन्तभद्र पहुँच गया है । वनकेशरी का अर्थ है सिंह । जैसे सिह के सामने सुभट हाथी भी भय से काँपने लगता है । वैसे श्री समन्तभद्र की विद्वत्ता से भयभीत होकर तार्किक विद्वान भी काँप उठे और पराजय को स्वीकार करते हुए भागने लगे ।

आज हम जैनी उस स्याद्वाद रूपी निधि को भूल रहे हैं, उसकी कीमत नहीं समझ रहे है, पाश्चात्य सस्कृति के रग में रंगे हुए अत्यन्त दु:खी हो रहे हैं । हम रूढ़ि और कुरीतियों की साकल मे बंधे हुए अपनी शंकाओं और अपने कुतर्कों से अपने को भी दु:खी बना रहे हैं । हम यथार्थता को समझना नही चाहते, सुनना नहीं चाहते । उस स्थिति में हम अपने जीवन को दु:खी ही बना सकेगे सुखी नहीं । सामाजिक कुप्रथायें पारिवारिक सुख स्वातंत्र्य का अपहरण करने वाली हो गई है । मुझे दुर्ग की एक महिला की बात याद आती है-जिसके आदमी को मरे हुए एक महीना हुआ वो महिला कहती है कि मुझे चौका लगाना है पर समाज बाधा डालती है कि तू चौका नहीं लगा सकती क्योंकि पति की मृत्यु को मात्र १ महीना हुआ है । आगम को भी देखना चाहिए । मृत्यु के सूतक मात्र १२ दिन का होता है । फिर १ महीना पूरा होने पर भी रुकावट लाना क्या अन्याय अनीति नहीं ? ये सब कुरीतियाँ और कूरिढियाँ हैं तथा पापास्रव का कारण हैं, दानान्तराय कर्म का तीव्र बन्ध कराने का उपक्रम है ।

श्री गुणभद्राचार्य ने लिखा है कि राजा का दिगम्बर साधुओं पर कन्ट्रोल नहीं है पर समाज व देश के प्रत्येक नागरिक पर उसका शासन होता है । शासक वर्ग को फैलती हुई कुरीतियों और कुरीढ़ियों पर रोक लगाना चाहिए । प्रत्येक समाज में स्वच्छन्दता बढती जा रही है, वैज्ञानिक आविष्कारों की चकाचौंध में हम अपने मानवीय कर्त्तव्यों को भूल रहे हैं । पर ये भौतिक युग की सुख सुविधाएँ खतरे की ओर ले जाने वाली हैं । मानवता को दानवता का रूप देने वाले भौतिक प्रलोभनो से हटकर रूढ़ि और कुरीतियों पर रोक लगाते हुए आत्म विकास में लगना चाहिए । अध्यात्म के बिना मानव जीवन का कोई मूल्य नहीं । मानवीय कर्त्तव्यों का पालन करते हुए ही आप अपने साथ साथ परिवार देश व समाज को भी सुखी बना सकते हैं । धर्म सर्वांगीण विकास का मूल आधार है ।

रूढ़ियाँ और कुरीतियाँ

आर्यिका १०५ विनयप्रभा

जहाँ तक रूढ़ि और कुरीतियो का प्रश्न है इस विषय पर पूर्व वक्ताओं से आपको मार्ग दर्शन प्राप्त हो चुका है । अन्य लौकिक क्षेत्रो की तो बात दूर रही । धार्मिक क्षेत्र में भी रूढ़ियाँ कुरीतियाँ प्रवेश कर गईं हैं । जो नारी तीर्थंकर को पैदा करती है, जन्म देती है उसी नारी को आज तीर्थंकरो की भक्ति से वंचित किया जा रहा है । यहाँ विद्वत् सम्मेलन में पधारे हुए विद्वानों में से कुछ लोगो ने नारी को जिनाभिषेक करने से रोका है, पचामृत अभिषेक, चन्दन, फूल हरे फल चढ़ाने का भी पूर्ण निषेध बताया है लेकिन ये सब आगम प्रमाण के अनुकूल न होने से रूढि स्वरूप हैं, सामाजिक एकता का विघटन करने वाले आगम विरुद्ध उक्त रूढियो का उन्मूलन करने के लिए प्रत्येक श्रावक श्राविकाओ को सावधान होना चाहिए । उन्हें आगम का अध्ययन कर आर्ष परम्परानुसार जो सही आम्नाय है उसे स्वीकार करना चाहिए । हमारे पास विवेकशक्ति है । हम उस विवेक शक्ति का उपयोग करें । मैं पुरुष समाज से पूछती हूँ कि अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर जब मुनि थे और आहार के लिए निकले तब नवधा भक्ति से पड़गाहन किसने किया ? पाद प्रक्षालन किसने किया ? बन्धुओं ! आपको कहना होगा कि चन्दन बाला ने ही नवधा भक्ति की थी और चरण स्पर्शपूर्वक पद प्रक्षालन भी किया था । यही चन्दन बाला भगवान् महावीर के समवशरण में मुख्य गणिनी आर्यिका के रूप में उपस्थित थी । मैं नवीनता के उपासको उन विद्वानों से पूछना चाहती हूँ कि तुम्हारे विचारानुसार क्या भगवान महावीर और चन्दनवाला दोनों धर्मभ्रष्ट थे ? यदि नही तो फिर व्यर्थ के विवाद क्यों उठाये जाते हैं । नारी के उपकार से समाज कभी उऋण नहीं हो सकता । भोजन भी नारी ही बनाती है, उत्तम संस्कारों से बालक को त्यागी और वैरागी बनाने वाली भी नारी है अत: उस नारी वर्ग से घृणा करना कुरीति ही है । इससे समाज को लाभ नहीं हानि ही प्राप्त होगी । हम भारत के प्राचीन इतिहासों को देखें और फैलती हुई कुरीतियों को निकालें । भारतीय संस्कृति आदर्श परम्परा की संहिता पर खड़ी है । भारत धर्म प्रधान देश है । यहाँ दान पूजा की प्रथा अनादिकाल से चली आ रही है । दाता, पात्र आदि की विशेषता से दान में विशेषता आती है । कुपात्र, अपात्र और सुपात्र के भेद से पात्र के ३ भेद हैं । आहार दान, औषधदान, ज्ञानदान, अभयदान तथा करुणादान, कन्यादान, दयादान आदि अनेक प्रकार का दान है । दाता भी परिणामो के अनुसार अनेक भेदवाले हो जाते हैं । दान करना धर्म है भले ही वह लौकिक पक्ष हो, धर्म हो या न हो पर उसका नाम तो धर्म ही रहेगा । कन्यादान सामाजिक दृष्टि से देखें तो बहुत बड़ा दान है । पवित्र जीवन की एक निशानी है । कन्या का अपने स्वजातीय योग्य वर के साथ विवाह किया जाता है । वर वधू एक नव-जीवन में प्रवेश करते हैं और एक-दूसरे के प्रति जिम्मेदारी निभाते हैं । इस अवसर पर कन्या के माता-पिता प्रेम से, स्वेच्छा से वरवधू को जो द्रव्य वस्त्राभूषण देते हैं वह दहेज है । इस रूप में दहेज प्रेम और त्याग की भावना का प्रतीक है

पर जब भोगाकांक्षा की ज्वाला में जलता हुआ पुरुष पक्ष प्रेम और वात्सल्य को ठुकरा कर कन्या पक्ष से जबर्दस्ती माँगकर विपुल धनराशि को पाने का प्रयत्न करता है तब वह दहेज समाज के बीच भयंकर संक्रामक रोग के समान, किंवा दानव के रूप में उपस्थित होता है । जो अधिक द्रव्य दे सकता है वही वर का खरीददार होता है । कन्या की जाति, पाँति, कुल परम्परा रूप धर्म और गुण नहीं देखे जाते हैं, बल्कि एक ही देखा जाता है कलदारम । आज इस कुप्रथा की भयंकर ज्वाला ने भैरवी का रूप धारण कर लिया है । जिसकी लपटों में सुहाग झुलस-झुलस कर नष्ट हो रहा है । पुरुष वर्ग लोभ वश अपने पुरुषत्व को खो रहे हैं, भीख माँगना उन्होंने अपना पेशा बना लिया है । बेचारे गरीब परिवार टूटते चले जा रहे हैं, दूकान, मकान, माल, कपड़ा बेचकर दहेज का भाडा जब नहीं दे पाते हैं तब कन्यायें आत्महत्या कर लेती है; जल जाती हैं, कुएँ में गिर जाती है, जहर पी लेती हैं । इस लोभ कषाय ने विजातीय अन्तर्जातीय विवाह जैसी घिनौनी कुरीतियों को पैदा कर दी हैं जिससे सम्पूर्ण भारतीय सस्कृति दूषित होती है । दहेज के भय से मातायें गर्भस्थ बालिका को गर्भपात के द्वारा मार डालती हैं । इस प्रकार दहेज की प्रथा ने भ्रूण हत्याओं को भी जन्म दिया है । गर्भ में पुत्र है या पुत्री ? मशीन से ज्ञात कर अवोर्शन (गर्भपात) करवाते हैं जो हिसा को प्रोत्साहन देने वाला है । क्या यह अहिसा प्रधान देश के लिए शोभ्न युक्त है ? अत्यन्त घृणित ऐसी आत्म हत्याओं पर शासक वर्ग को रोक लगानी चाहिए । शासक वर्ग भी हिंसा के रंग में रंगते जा रहे हैं, जब रक्षक ही भक्षक बन रहा है तो नारियाँ कहाँ जायेंगी । सास भी बहू को धन के लोभ में जला देती है । नारी ही नारी का शोषण कर रही है । अत: उक्त कुप्रथाओं के उन्मूलन हेतु नई पीढी को दत्तचित्त होना चाहिए । पतन के गड्ढे मे गिरती हुई समाज की सुरक्षा उक्त कुरीतियों के उन्मूलन के बिना अशक्य है ।

रूढ़ि और कुरीतियाँ

प्र. ग. आ. विजयमती माताजी

एक बात मेरी समझ में आती है कि यह कहा जा रहा है कि नारी का शोषण हो रहा है । नारी पर अत्याचार हो रहा है । नारी को घृणित दृष्टि से देखा जा रहा है या पतन की ओर ले जाया जा रहा है । इसके पूर्व अन्य विचार करें कि आखिर सृष्टि क्या है समाज है क्या समाज का नाम और रूप क्या है और कहावत ''मनुष्य सामाजिक प्राणी है'' और जब हम इस परिभाषा को देखते हैं तब स्त्रियों और पुरुष दोनों ही का नम्बर आ जाता है । हम प्रतिदिवस अपने जीवन में देखते हैं और बोलते भी हैं और कहते भी हैं । एक पहिये से गाड़ी नहीं चला करती तो नारी और नर इन दोनों का सामंजस्य इन दोनों का एकीकरण सृष्टि का निर्माणकर्त्ता होता है । इस दशा में हम किसको अधिक और किसको कम नम्बर दें । जबकि दोनों का बराबर का पलड़ा है । बैलेन्स बराबर रहेगा तो कार्य की सिद्धि रहेगी । आपने देखा होगा एक महिला पनिहारिन बनकर पानी लेने जाती है । अभी तो कुएँ पर जाने की आवश्यकता नहीं है । वैज्ञानिक युग है कोई कार्य करने की हमें आवश्यकता ही नहीं रह गई है लेकिन कुछ और अभी भी ग्रामीण बस्तियों में हम देखते

हैं । महिलाएँ जब कुएँ से पानी लेकर आती है, दो तीन घडे सिर के ऊपर रखती हैं, हाथ में रखती है दोनों हाथों को छोड देती हैं । घडा अगर रखा हुआ है बाते भी कर लेती हैं और मार्ग भी तय कर लेती हैं । यह किसके बल पर हो रहा है । कभी विचार किया ? यह मात्र एक ही योग्यता कि बैलेन्स बराबर रखा हुआ है । गर्दन का बैलेन्स बिगड न जाये यह ध्यान रख करके चलती हैं तो उनके कार्य में उन्हें सफलता मिलती है । एक छोटे से कार्य के लिए भी बैलेन्स आवश्यक है । उसी प्रकार यह जीवन नौका को चलाने के लिए संसार की गाडी को चलाने के लिए नर और नारी पुरुष और स्त्री इन दोनों का भी बैलेन्स रखना चाहिए । आज यह विषमता जो हो रही है । इसका कारण क्या है ? इसके पीछे क्या छिपा हुआ है ? ये हमारी यशोलिप्सा ऐश्माये और नाना प्रकार के अपने को दिखाने का या अपने अह का पोषण करने का एक भाग छिपा हुआ है । हम चाहे पुरुष हों या नारी अधिकार चाहते हैं लेकिन पालन करना नही चाहते । बहुत धूम मच रही है । नारी को शिक्षित होना चाहिए । क्या पुरुष का शिक्षा की जरूरत नहीं है ? पुरुष जिस प्रकार कचहरियो मे जा सकता है, मिनिस्टर बन सकता है, जज बन सकता है, वकील बन सकता है । नारी भी बनना चाहिए । कोई दोहराध नही है, कोई आगम विरोध नहीं है, कोई यह कुरीति नहीं है, कोई यह रूढि नहीं है लेकिन उसकी सीमा होना चाहिए । कर्त्तव्य से च्युत होकर यदि कोई जज और मिनिस्टर बनना चाहे तो मैं उसको नही पसन्द कर सकती । घर की चार दीवारी के अन्दर नारी बन्द रहे यह मैं नहीं चाहती लेकिन मर्यादा का उल्लघन करके आगे बढ़ना चाहेगी तो वो भी मुझे स्वीकार नहों है । हम देखते हैं जब हम धर्म के क्षेत्र मे आते है तो नारी को भी उतना ही अधिकार है जितना कि पुरुष को आप लोग सभी शादी करने वाले बैठे हैं । कुछ लोगों की नहीं भी हुई होगी । मेरे को तो मालूम नहीं है सभी लोगो ने विवाह किया जिस समय पाणिग्रहण संस्कार होता है । उसमे वह पुरोहित जो मत्रो का उच्चारण करते हैं । उसके साथ में नियम दिलाते है और बहुत से वो नियम रहते हैं, कौन-कौन नियम है । मुझे मालूम नहीं है परन्तु एक नियम है जो मुझे मालूम है वो यह नियम है कि पुरुष स्त्री को कहता है, अपनी पत्नी को कहता है कि "मैं तेरे धर्म के कार्य मे विघ्न नही डालूँगा और पत्नी कहती है कि मैं तुम्हारे किसी भी धर्म के कार्य मे बाधा नहीं डालूँगी" तो जब धर्म का क्षेत्र दोनो का बराबर है और दोनो ही एक-दूसरे को निर्बाध रूप से चलने के लिए प्रेरणा देने वाले हैं तो ये कहाँ से रूढियाँ पैदा हो गई कि जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक पुरुष ही करे नारी न करे । मेरे कुछ समझ मे नहीं आता और बड़ा आश्चर्य भी होता है । शायद अभी जैसा माताजी ने कहा कि पुरुष समाज कुछ अपने कर्त्तव्यो से च्युत हो रहा है । उसका मुख्य उद्देश्य जो धनार्जन करना धनमार्जन करना । वैसे चार पुरुषार्थ है । उन पुरुषार्थों की सिद्धि करना तो वो धर्म और अर्थ इन दोनो से हटता जा रहा है और इसकी बुजदिली ने इसकी कमजोरी ने या उसके क्या कहूँ शक्तिहीनता ने दहेज प्रथा को जन्म दिया है । यह कोई आगम की चीज नहीं है । कोई ग्रन्थ की चीज नहीं है । यह हमारी ही देन है । हमने ही दिया है हमने ही बनाया है और हम ही इसको बिगाड रहे हैं । जो आगमों की चीजें होती हैं उनमें कमी बेशी नहीं हुआ करती उनके अन्दर कुछ कमियाँ और बुराइयाँ आ जाती हैं लेकिन उनका परिशोधन भी कर लिया जाता है लेकिन जो हमारी भूख बढ रही है इस भूख को हम ही कम कर सकते हैं । दूसरा कोई

भी नहीं कर सकता है । एक कहावत है कि "भूख को मिटाया जा सकता है, परन्तु मन की भूख किसी की भी नहीं मिटती है" तो आज मन की भूख बढ रही है । तन की भूख नहीं है और आज हमारे भाई पुरुष समाज एक नपुंसक का रूप धारण करती जा रही है । हमारे आगम में दान की प्रथा है पूजा की प्रथा है । दान और पूजा को कर्त्तव्य कहा है और आहार दान औषध-दान, ज्ञान दान, अभयदान, करुणादान और उसके साथ ही एक और दान के साथ मे कन्या दान भी एक दान है ? क्या कन्या दान दान है ? अब आप विचार कीजिए दान किसको कहा जाता है ? दान वही है कि दाता अपनी इच्छा से मन की प्रसन्नता से, उल्लास से जिसको जो आवश्यक है, उसको वह वस्तु प्रदान करे । उसकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह दहेज कौन सा दान है मेरी समझ में नहीं आता । ये दान है कि भिक्षा है और भिक्षा लेने वाला भिखारी होता है और मांगने वाला भिखारी कभी अपना कल्याण करने में समर्थ नहीं हो सकता । क्योंकि उनके अक के अन्दर दीनहीनता की भावना जागृत होती है और वो दीनता और हीनता की भावना उसको स्वयं को कुचल डालती है तो मैं यह समझती हूँ कि दहेज प्रथा जितना नारी का अकल्याण कर रही है उससे ज्यादा पुरुष समाज का अकल्याण कर रही है । शेर-शेर होता है और गीदड़-गीदड़ होता है । गीदड़ अगर गीदड़ की क्रिया करता है तो किसी को आश्चर्य नहीं होता है परन्तु शेर अगर गीदड़ की क्रिया करने लगे तो उसके लिए वह शर्म की बात होती है । तो हम मांगने वाले अपने को देखें कि हमे भिक्षावृत्ति में, हम भिखारी बन करके कितना अपनी आत्मा का कल्याण कर सकते हैं । कितना धर्म का कल्याण कर सकते हैं । कितना समाज का कल्याण कर सकते हैं । कितना हम देश और राष्ट्र का कल्याण कर सकते हैं । जो स्वयं भिखारी बना हुआ है वह दूसरों को क्या देगा और भिक्षुक छोटा सा एक भिक्षान्त है । किसी ने कहा कि यहाँ का राजा बहुत दानी है जो चाहो वह देता है । एक भिक्षुक के मन में आया कि मैं भी जाकर के आज उससे कुछ ग्रहण कर लूँ । वह जाता है दरबान बोलता है अभी हमारे महाराजा के पास कोई नहीं जा सकता है । वे ईश्वर आराधना कर रहे है । भगवान की भक्ति कर रहे हैं । पूजा कर रहे हैं, इसके उपरान्त ही आपका मिलना होगा । उसके बाद आप जाकर के ले सकते हैं । ठीक है मेरे को बैठने को तो स्थान दे दो । बैठ जाइये । बैठ गया । महाराज पूजा कर रहे हैं । भगवान के सामने वो सुन रहे हैं । राजा साहब कह रहे हैं । मेरा राज इतना बड़ा हो जाये मेरी सल्तनत इतनी हो जाये मेरे को ये मिल जाये मेरा यश यहाँ तक फैल जाये भिक्षुक सुन रहा है । जब राजा की पूजा समाप्त होने लगी । वह उठकर जाने लगा । दरबान कहता है अरे तुम लेने को आये और अभी महाराजा आने ही वाले हैं उठ ही रहे हैं, आप कहाँ जा रहे हो ? कुछ लेकर तो जाओ । वो कहने लगा देख लिया तुम्हारा राजा जो स्वयं भिखारी बना हुआ है । भगवान से मांग रहा है । वो मुझको क्या देगा । आज हमारी यही दशा हो रही है और यही कारण है कि हमारी दान और पूजा की भावनायें बिखर गई । विखरने के स्थान पर खो गई और मिट्टी में मिल गई और हम साधुओं के प्रति एक घृणा का भाव अपने हृदय में बैठा करके बैठ गये कि हम क्या करें कि क्या नहीं करें । क्योंकि हम स्वयं आज भिखारी बन गये और यह भिक्षा का दान हम पवित्र साधुओं को किस प्रकार दें । इसके लिए नहीं देना ही अच्छा है और हम लोग इतने कर्त्तव्य च्युत होते चले जा रहे

हैं । अभी मेरी बहन ने एक बात कही थी । उसके बीच मैं आपको बताऊँ कि भगवान का अभिषेक नारी करेगी तो उसका शील संयम नहीं रहेगा । जब हमारी बहनें क्लब में जाती हैं, जब हमारी बहनें बाजार में जाती हैं । जब हमारी बहनें सैर सपाटा करने के लिए जाती हैं और वहाँ पर पुरुषों की बराबर की कुर्सियों पर बैठ करके रंगरेलियाँ करती हैं, उस समय हमारी पुरुष समाज की आँखें क्या बन्द हो जाती हैं । वो नहीं देखते जब विडियो के सामने बैठकर के टी. वी के सामने बैठकर के बहन और भाई पिता और पुत्री साथ में लेकर बैठते हैं और जैसा वहाँ भाव हो रहा है, वहाँ आव भाव भोग विलास की क्रियाये सब कर रहा है । कहाँ गया आपका शील और कहाँ गया आपका संयम ? कहाँ गई आपकी वो इच्छायें जिनका दमन करना हमारा कर्त्तव्य है । क्यों नहीं उस समय करते हैं और क्यो इस प्रकार का ये नंगा नृत्य दिखाकर के आप अपने जीवन को खोखला बना देते हैं । क्या हमारी नारियाँ सीता जैसी नहीं थी । अजना और मनोरमा चदना सुन्दरी से लेकर के चदना जैसी नारियो का इतिहास देखते हैं तो क्यों उन्होंने भगवान की पूजा नहीं की, अराधना नहीं की मैना सुन्दरी पढ़कर के आई पिता को ताककर के भगवान के अभिषेक का गंदोदक देती है और उस समय पिता देखता है कि मेरी पुत्री विवाह के योग्य हो गई । क्या उसने अभिषेक नहीं ? तो लाई कहां से कहां से दिया और पिता कहता है कि तू अपना वर मांग ले, पुत्री कह रही है कि मेरा कर्त्तव्य नहीं है ये सज्जनता नहीं है यह सद्प्राणी का कार्य नहीं है । यह कुलांगनाओं का लक्षण नहीं है कि अपना वर अपने आप चुनें । आज आप लोग प्रदर्शनी लगाते हैं कन्याओं की, बडे शर्म की बात है । आपके यहाँ प्रदर्शनी लगती है । बेचारी कन्यायें शर्मिन्दा होकर के अपना जीवन समर्पित करने को तैयार हो जाती है । एक आती हैं दो आती है हमको पसन्द नहीं है । इसका नाक ऐसा इसकी नाक ऐसी, इसका मुँह ऐसा, इसका रग ऐसा, इसका रूप ऐसा, इसका वो ऐसा आप कैसे सुन्दर हैं । आपके नाक कान कोई साँचे में ढल कर के आये हैं । क्या अरे वह भी नाम कर्म के उदय से बने हैं । इसी प्रकार से लोग हैं । यह कठपुतलियों का नाच हो रहा है । आप और हम धर्म के ठेकेदार बनने के लिए तैयार बैठे हुए हैं । क्या यह हमारी सूझ है ? क्या हमारी यह बूझ है ? क्या हमारा यह पांडित्य है ? क्या हमारी यह पंडिताई है या हमारा यह गौरव है, यह क्या है ? इसके सबके पीछे मैं वो भज कल दारम् की मौत छिपी हुई है । जब हमारे नेत्र बींद जाते हैं तब हमारे नाक कान सब काम करना बन्द कर देते हैं और बस गड्डियाँ गिनने में लग जाते हैं और सारा भूल जाते हैं भले ही उनका दम्पति का जीवन खतरे में पड़ जाये । लेकिन हमारी तिजोरी का अन्दर तो खाना भर ही जाना चाहिए । यह हमारी दुर्दशा हो रही है । इस प्रकार की हमारी परिणतियाँ जो हमारे जीवन का कल्याण करने वाली होगी । मैं आपको एक ही बात बताती हूँ कि भगवान जिनेन्द्र का अभिषेक करना ही एक मात्र नारी के लिए इस स्त्री पर्याय का छेदण करने का उपाय है । जो जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करती है वो स्त्री पर्याय का छेद करके ही पुरुष पर्याय को प्राप्त करेगी । आप कहेंगे कि अभी तो पुरुष पर्याय को आप कोस रहे हैं और फिर पुरुष पर्याय प्राप्त करके करेगी क्या ? वो ऐसी पुरुष पर्याय प्राप्त करेगी कि जो बुराइयाँ मैं बता रही हूँ वह बुराइयाँ उसके अन्दर नहीं आयेगी । वो तपस्या करके ऐसे पुरुष बनेंगे और अपनी आत्मा का शोधन करके हमेशा के लिए अमर बन जायेंगी । ऐसे पुरुषत्व को वो प्राप्त

करेगी और इसका एकमात्र उपाय है कि भगवान जिनेन्द्र प्रभु का अभिषेक करना सभी शुद्धियों में भारी शुद्धि प्रमुख है । एक नारी जिस समय ससुराल को प्रयाण करती है । अपने पिता के गले में लिपट करके मिलती है । भाई का आलिंगन करती है । अपने परिवार के सभी जनों का आलिंगन करती है । किसे करती है, बड़े प्रेम से अनुराग से और वो जब अपने नारीत्व को पा जाती है तो पति का भी आलिंगन करती है । क्या कोई भी बता सकता है कि ये दोनों एक ही चीज है ? हाथ उठाकर के कोई यह कह दें कि यह दोनों मिलन एक प्रकार का है । क्या उसको हम घृणा की दृष्टि से कह सकते हैं ? उसको घृणित कह सकते हैं ? उसको पतित कह सकते हैं ? उसको व्यभिचारिणी कह सकते हैं ? नहीं । वो पवित्रता वो पावनता जो पिता के प्रति है वो पति के प्रति नहीं है वहाँ वो पवित्रता वासना का रूप धारण कर लेता है । वासना है वहाँ और यहाँ पावन प्रेम है, वात्सल्य है, निर्मल प्रीति है, कितना डिफरेन्स है । कहाँ आपकी बुद्धि जा रही है । तीन लोक के नाथ के प्रति इस प्रकार की खोटी भावना करके और हम किसी के अधिकारों पर कुठाराघात करें यह कोई हमारा पौरुषत्व नही है तो मैं कहूँगी कि हम दोनों के अन्दर ही सुधार की आवश्यकता है । अगर हमको समाज को सुस्थिर करना है । मेरे को डर लगा रहता है । बगल में महाराज जी बैठे हैं । कहीं चिट्ठी न भेज दें । यह भी एक इन्सल्ट का ही द्योतक होता है तो मैं क्या कह रही थी कि हमारी यह समाज रूढ़ियाँ कुरीतियाँ बुरी हैं जो रीतियां हैं तो सही है । उनको करने मे कोई दोष नहीं है । लेकिन उसके पीछे जो क्रूरता है वही निकाल देना है इसमें कोई हमको देर नही लगेगी । आगम का सर्वेक्षण करें । आगम को देखें । अपने सिद्धान्तों को देखें, अपनी संस्कृति को देखें । अपनी भारतीय आचरणों की अगर विचार करें तो हमको मालूम होगा कि हमारी गलतियाँ कहाँ-कहाँ पर हो रही हैं । जिस समय दशरथ महाराज युद्ध में और घोडे पर सवार थे और रथ का धुरा टूट गया । वहाँ पर नारी अपने अंगूठे को लगाकर रथ का संचालन करती है और दशरथ की विजय करा देती है । यह भी नारी को अधिकार है कि वह भी संग्राम कर सकती है । वो भी युद्ध की कला को सीख सकती है । यह भी नारी को अधिकार है कि वो हर क्षेत्र में जाकर के पुरुष की सहयोगिणी बन सकती है लेकिन मेरे को समझ में नहीं आता कि पुरुष उसके इस सहयोग से वंचित क्यों हो रहा है । इससे कोई मान हानि की बात नहीं है । तो हमें हर क्षेत्र में जाने के अधिकार हैं । परन्तु हमारा मुख्य जो क्षेत्र है । वह क्या है ? पुरुष समाज का निर्माण करना । यह नारी के हाथ में है । जिस समय अभिमन्यु गर्भ में था उस समय चक्रव्यूह प्रविष्ट होने की कला सुन ली थी । किसके बल पर अपनी मां के, एक इस प्रकार की भावना जो उसने सुन करके अपने हृदय में उतारी थी वो भावना उस बच्चे के पेट में जाकर के पहुँच जाती है और उसको महावीर बना दिया तो नर का निर्माण नारी के गोद में होता, नारी के गर्भ में होता, नारी के हाथों में होता है और पाल पोसकर के वो ही अगर उसका शोषक होता है तो शायद यह उचित नहीं होता है । यह उसका अज्ञान हो सकता है । उसकी अजानकारी कह सकते हैं और कुछ कर्त्तव्यों और अधिकारों की लालसा लोलुपता हम कह सकते हैं या यह कह दें कि मान कषाय का पर्वत है जो उसके ऊपर उसी का सवार होकर के उसी को दबा रहा है अपने बोझ से पुरुष समाज । मैं तो यह कहूँगी कि स्वयं ही दबा हुआ है और वह चाहे तो अपने बोझ को हटा करके

बाहर निकल सकता है और फिर दोनों मिल करके इस समाज की गाड़ी को धर्म की गाड़ी को इस राष्ट्र और देश की गाड़ी को बराबर का बैलेन्स बनाकर चला सकता है और यहां पर फिर रामराज्य आ सकता है। वही मर्यादा पुरुषोत्तम यहाँ पर उत्पन्न हो सकते हैं उसी प्रकार का धर्माचरण यहाँ पर हो सकता है। हम नारियो को सीता बनाना चाहते है तो मैं कहूँगी कि पुरुष समाज को राम भी बनना ही पडेगा। बिना उसके उसकी शोभा नहीं और बिना उसके तुम्हारी भी शोभा नहीं हो सकती। तो हमारे अन्दर मे जहाँ जहाँ पर हमारा बैलेन्स बिगड़ रहा है। हम अपना अपना सुधार करें और एक-दूसरे की उन्नति में साधक नहीं बने तो कम से कम बाधक तो नहीं बनें ऐसा हम संकल्प ले और हम देखते हैं कि नारियों में भी इस प्रकार की कुछ त्रुटिगँ आ गई हैं कि वो स्वयं ही एक दूसरे का उत्थान नहीं चाहती हैं। बल्कि पतन करने की चेष्टा मे लगी हुई हैं। सत्य सत्य ही होता है। सत्य में विभेद नहीं होता तो हमारी माताओ और बहनो को भी चाहिए कि वे सब द्वेष की भावना को छोड़ दें। कुत्सित भावनाओं को छोड दें। हिसा की भावनाओं को हृदय से निकाल दे।

आज उस मानव समाज के शोषण के भय से इतने अबोर्शन हो रहे हैं मैं सुनती हूँ अखबारों में पढ़ती हूँ, किताबों में पढ़ती हूँ कि पहले नरमेघ यज्ञ हुआ करते थे। अश्वमेघ यज्ञ हुआ करते थे। पशुमेघ यज्ञ हुआ करते थे। उनकी ज्वालायें जलती थीं। लोगों की दृष्टि में आता था लेकिन आज प्रच्छन्न रूप में नरमेघ यज्ञ हो रहा है। कई मातायें जाती हैं गर्भ में रहता है बच्चा, डॉक्टरों के पास जाती हैं और वहाँ पर परीक्षण कराती हैं कि उसके गर्भ में कन्या है कि पुत्र है। अगर कन्या है तो मुझको नहीं चाहिए। मैं आपसे एक प्रश्न करती हूँ। अगर सभी महिलायें इस प्रकार का करने लगे और पुत्र ही पुत्र उत्पन्न हो जायें तो आपकी पुत्रवधू कहाँ से आयेगी। क्या मिट्टी की बनाओगे। लकड़ी की बनाओगे क्या कोई इंजेक्शन पैदा होगा और क्या एक पुरुष अकेला कभी भी आज तक एक पुत्र को पैदा कर सका है। एक पुत्री कौ पैदा कर सका है किसी ने इन्हें जन्म दिया है। शायद तीर्थंकर ने दे दिया होगा। किसको दिया भाई आज तक तो तीर्थंकर ने नहीं दिया। कलियुग में कोई तीर्थंकर हुआ होगा वो पैदा हो गया होगा तो इस प्रकार की ये घिनौनी और यह नरसंहारक प्रथायें और कुरीतियाँ भी हमारे अन्दर में घर कर रही हैं। हमको इन्हें तिलांजली देना ही पड़ेगा। हम लोगो ने अपने सौन्दर्य के प्रसाधन के साधन बना रखे हैं। नैल पालिश लगाना। लिपिस्टीक लगाना। पाउडर लगाना। अरे पहले किसी से झगड़ा हो जाता था तो घर में जाकर के हड्डी रख देते थे। जिससे झगड़ा बढ जाय, जिससे खुरापात बढ़ जाये और हम अपने हाथों से ही हड्डी मांस चर्बी इनको अपने आप पर पोत रहे हैं। घर में दीवार गंदी हो जाती है तो कलई पोती जाती है और आपका शरीर गंदा हो गया तो ये पोतते हो और पुरुष समाज सोचता होगा कि अभी तो माताजी ने नारियों की खबर ली लेकिन ये पुरुष समाज उससे ज्यादा बेईमान है। यह भी वही पोतते हैं। हमारे गुरुमहाराज कहा करते थे कि कुन्द कुन्ददेव स्वामी का यह निष्कर्ष है। यह सब स्त्री पर्याय के आश्रय के कारण है और इसलिए आजकल के जो मिनिस्टर बैरीस्टर आदि जो लोग हैं ये सब पाउडर लगाकरके स्नो लगाकरके अपने को सजा करके ही और नाना प्रकार के एक्सीडेन्ट करके मर रहे हैं। क्योंकि साइकिल में और उनके

स्कूटर में भी मिरर काँच चाहिए, चेहरा देखने के लिए और ये सब मर मर के स्त्रियाँ हो रहे हैं और ये सब स्त्री पर्याय को प्राप्त करके आज समाज के अन्दर में खोटी कुरीतियों को बढ़ा रहे हैं। मैं इतना ही कहूँगी कि आप हम सब मिलकरके अपनी अपनी कमजोरी को दूर करने की चेष्टा करें और अपने जीवन को एक सामंजस्य के रूप में लायें और हमारे यहाँ पर हमारे देश में और हमारे समाज में एक आदर्श पैदा हो कि दुनिया हमको देखे और हमसे कुछ लेकर के जाये। हम दूसरों का अनुकरण करना छोड़ दें। हम पाश्चात्य शिक्षाओं पाश्चात्य पद्धतियों का अनुकरण छोड़ दें। फिर सारी हमारी बीमारियाँ दूर हो जायेंगी और फिर हम स्वस्थ जीवन बिताने में समर्थ हो सकेंगे।

आचार्य परम्परा

पण्डित टीकमचन्दजी जैन

हम आचार्य परम्परा पर विचार करने से पूर्व त्याग और त्यागी के महत्त्व को समझें। स्वकीय जीवन को त्याग वैराग्य की ओर ढालने में पुरुषार्थशील बने तब दृष्टि में प्राञ्जलता और पवित्रता आयेगी और आचार्य परम्परा की रूप रेखा भी यथावत् जानने का अवसर प्राप्त हो सकेगा। आज हम त्यागी की जय बोलते हैं पर त्यागी की जय चाहते नहीं। यह मायाचारी है। त्यागी के प्रति श्रद्धा और भक्ति हृदय में जगती नहीं जिन्हें त्यागी वर्ग छोड़ते हैं उन्हीं क्रोध मान माया लोभादि को हमने अपने हृदय का सम्राट् बना रखा है। तो क्या हम वास्तव में उनकी जय चाहते हैं। जिन्होने भोग प्रधान युग मे भी त्याग की पराकाष्ठा को प्राप्त किया है ऐसे त्यागी वर्ग की आलोचना प्रत्यालोचना अज्ञानता का परिचायक है, जीवन को दुखी बनाने का उपाय भी है। त्यागी का जीवन सुख प्रदायक दुःख निर्मूलक होता है। वह आत्मचिन्तक होता है। जब आत्म चिन्तन के द्वारा निज अनुपम निधि की पहचान हो जाती है तब नश्वर चीजो का त्याग सहज हो जाता है पर द्रव्य जो क्षणिक हैं, जिनका संयोग अल्पकालीन हैं, उनके प्रलोभन में वह फँसता नहीं। एक बार खेल के आयोजकों ने दौड़ का आयोजन किया और यह बताया गया कि दौड़कर निश्चित मंजिल पर जो पहले पहुँचेगा उसे एक लाख रुपये इनाम दिये जायेंगे। सभी प्रतियोगियों ने जीतने के लिए इस दौड़ में भाग लिया। लेकिन आयोजक बड़ा चतुर था। उसने रास्ते में दस पाँच नोट जो सौ-सौ के थे, बिखेर दिये, जो लोभी थे वे रास्ते में पड़े उन रुपयों को उठाने में लग गये फलतः मंजिल पर देर से पहुँचे और जो रास्ते के प्रलोभनों को ठुकराता गया वह मंजिल पर जल्दी पहुँच गया और उसे एक लाख रुपये का इनाम मिल गया। त्यागी वर्ग भी वस्तुतः उस खिलाड़ी की कोटि में आते हैं जो रास्ते के प्रलोभन में नहीं फँसा। सांसारिक पंचेन्द्रिय भोग जो अल्पकालीन और विरस हैं, तुच्छ हैं, उन्हें ठुकराते हुए अतीन्द्रिय आत्मिक सुख के लिए, उसकी प्राप्ति हेतु जो निरन्तर प्रयत्नशील हैं। उन्हें शीघ्र मोक्ष सुख प्राप्त हो जाता है। हम भी यदि मुक्ति सुख के इच्छुक हैं तो भोगासक्ति को छोड़ें आत्मिक सुख की पहचान करें और उसकी प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ करें।

थोड़े से सांसारिक सुख के लिए मोक्ष मार्ग को छोड़ देने वाला कभी भव समुद्र से पार नहीं हो पाता है। जिन्होंने हमें त्याग का मार्ग सिखाया, बताया उनके प्रति हमें कृतज्ञता प्रगट करनी चाहिए, वे हमारे परम उपकारी हैं ऐसी मन में श्रद्धा रखनी चाहिए। जिनको हमने देखा नहीं ऐसे तीर्थंकरों को वा पूर्वाचार्यों को आज भी हम श्रद्धा से याद करते हैं, इसका मतलब यह कि उनके द्वारा किये गये अनन्त उपकारो के प्रति हम कृतज्ञता ज्ञापित कर रहे हैं।

बुधजन किसी क्रिया विशेष या घटना विशेष को लेकर किसी को नमन नहीं करते हैं। वे सदा त्याग और त्यागी को नमन करते हैं। रामायण को देखिये। राम ने कैकयी की बात मानी और भरत ने कैकई की बात नहीं मानी, कैकई के वचनो से उन्हें क्षोभ हुआ था और कैकयी के वचनों को बुरा बताया। दोनों के विचार और कार्य मे विपरीतता है पर जय दोनों की बोली जाती है ऐसा क्यों ? इसलिए कि राम ने कैकयी की बात को मानकर राज्य का त्याग किया था और भरतजी ने कैकयी की बात को ठुकरा कर राज्य का त्याग किया था। त्याग के कारण हम दोनों को श्रद्धा से नमन करते हैं। नमन त्याग को है, नमन जिन मुद्रा को है चाहे वह किसी नाम का, किसी देश का हो। दीक्षा के बाद व्यक्ति का नाम बदल दिया जाता है। क्योकि नये जीवन का प्रारम्भ हुआ, जीवन त्यागमय बना, पूर्व अवस्था से भिन्न अवस्था हो गई। णमोकार मत्र मे हम सिद्ध से पूर्व अरहन्त को नमन करते हैं। उसका कारण यह है कि लोकहित का कार्य अरहन्त के द्वारा होता है सिद्ध के द्वारा नहीं। त्याग की अपेक्षा गुणो की अपेक्षा सिद्ध बड़े हैं पर सिद्धावस्था को पाने का उपाय जगत् को अरहन्त बताते हैं। अत: हितोपदेशित्व गुण को प्रमुखता देकर अर्हन्त को पहले नमन न्यायसगत है। गुरु का ज्ञान कराने वाले, शास्त्रों का ज्ञान कराने वाले, मोक्ष मार्ग को बताने वाले अरहन्त हैं। उनकी दिव्य देशना परम्परागत आचार्यों के माध्यम से प्राप्त होती रही है और उससे भव्यात्माओ का अतुल उपकार हो रहा है।

आज का विषय आचार्य परम्परा है जिस पर अन्य वक्ताओं से आप लोगों को जानकारी प्राप्त हुई है। २०वीं सदी के प्रथमाचार्य श्री आदिसागरजी महाराज के पट्टशिष्य श्री १०८ आ महावीर कीर्तिजी महाराज, उनके पट्टशिष्य आचार्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज आपके सामने मौजूद हैं। उनके तप, त्याग, ज्ञान गरिमा को आप प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं। ऐसे त्यागियों के प्रति यदि हम नमन न करते हुए आक्षेप विक्षेप करते हैं तो यह हमारी भूल है। मैं आपको इस बीच एक घटना बताना चाहता हूँ। देश मे जब हरियाणा और पंजाब के विभाजन की बात ठठाई गई तब नेता लोग सोचने लगे कि अविभाजित पजाब में तो मैं मुख्यमंत्री नहीं बन सकता। अगर इसको दो भागो में बाँट दूँगा तो शायद हरियाणा में मुझे मुख्यमत्री या अन्य मंत्री का पद मिल जाय। यही विचारधारा सम्भवत धर्म के क्षेत्र में भी घुस गई है। पंडितों के बहकावे में पड़कर कुछ साधु लोग भी सोचने लगे कि एक आचार्य परम्परा पूरे भारतवर्ष मे यदि अक्षुण्ण रही तो आचार्य और उपाध्याय होने मे मेरा नम्बर नहीं आयेगा और मैं उनके शिष्य के रूप में ही सदा बना रहूँ। यह मैं चाहता नही। इत्यादि दूषित विचारो से आचार्य परम्परा भी छिन्न-भिन्न होकर टूटती जा रही है और यथार्थता सत्यता से हम दूर हटते चले जा रहे हैं और दिग्भ्रमित होते जा रहे हैं, कौन आचार्य हैं कौन नहीं, समझने मे भी कठिनाई होती है। वस्त्रादि त्याग दिया पर पद आदि के प्रति लालसा

लगी हुई है, मान कषाय नहीं छूटा तो आत्म विकास अशक्य है । हम पंडित या गृहस्थ जनों को तो स्वार्थ हो सकता है कि मैं महाराज के अनुकूल बोलूँगा तो बिदाई के समय ये हमारा ध्यान रखेंगे । पर महाराज भी यदि यह सोचते हैं कि पंडितों के जरिये मेरा प्रचार और प्रसार होगा और पंडितों के मतिअनुकूल बोलते हैं तो यह शोभायुक्त नहीं । कल मैं एक पुस्तक देख रहा था उसका नाम है-मरने की कला । वह वास्तव में एक अद्‌भुत पुस्तक है । पढ़कर श्रद्धा से मस्तक नत हो गया । विवाद उठाने वाली सामान्य जनता वस्तुतः नहीं होती । इस विषय पर विवाद उठाने में मात्र २ पंडितों का हाथ है, जिनके बारे मे आप अच्छी तरह जानते हैं । इन्होंने ऐसी खाई खोदी है जिसके कारण जैन समाज विभिन्न धाराओं मे बंटता जा रहा है । हमें विवाद में न पड़कर त्याग की पराकाष्ठा को प्राप्त हुए ऐसे आचार्यों की हर प्रकार से भक्ति करनी चाहिए । त्याग के प्रति नमन होता है, कितना ही बड़ा पंडित हो, शास्त्रो का ज्ञाता हो पर वह पूज्य नहीं हो सकता, आदरणीय हो सकता है । अन्य किसी सज्जन ने भले ही शास्त्रों का अध्ययन न किया हो पर दिगम्बर वेश धारण किया है, महाव्रतों का पालन कर रहे हैं तो बड़े-बड़े पंडितों के द्वारा भी वे पूजे जाते हैं । क्योकि उन्होंने त्याग मार्ग को ग्रहण किया है । हम उक्त विचारधारा को अपनाते हुए प्रत्येक त्यागी को मान्यता दे, पहले कौन और पीछे कौन ? इन विवादों को हृदय मे स्थान न दें । अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी हो गये हैं और उनके काल में बहुत अन्तर है । लेकिन हम सबकी जय बोलते हैं । यथा- अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी की जय, आचार्य परमेष्ठी की जय, पंच परमेष्ठी की जय इत्यादि । यहाँ कोई विवाद को अवसर प्राप्त नहीं होता है । भारत पर अभी प्रजातंत्र लोकतंत्र राज्य है, जैन धर्म सबमे बडा लोकतत्र है क्योंकि प्रत्येक भक्त को भगवान बनने का अवसर देता है ।

गीता मे श्रीकृष्ण कहते हैं हे अर्जुन । तू सबको छोड़कर मेरी शरण में आजा । मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा पर जैन धर्म की उदारता असीम है । तीर्थंकर कहते हैं तू मेरे समान बन सकता है । त्याग की पराकाष्ठा को प्राप्त इस जैन धर्म की प्रशसा यहीं नहीं विदेशों में भी की जाती है ।

दो चचेरे भाई आपस में लड रहे थे । एक कहता तेरा बाप नालायक दूसरा कहता तेरा बाप नालायक । पर उनके वचन क्या पिता के जीवन को दूषण देते हैं ? नहीं उनके कटु वचन उनको ही कलंकित कर रहे हैं । हमारी भी धर्म क्षेत्र में यही दशा हो रही है । एक कहता है तेरा आचार्य खराब, दूसरा कहता है तेरा आचार्य खराब । पर इससे आचार्य परम्परा मलिन नहीं होती है हम परिणामों को ही मलिन करते हुए अपना संसार वर्धन दुःख वर्धन कर रहे हैं ।

कुछ लोग ऐसे हैं जो साधु वृत्ति पर ही प्रहार कर रहे हैं-जड़ की क्रिया जड़ में होती है, आत्मा तो ज्ञान स्वभावी है, वह अपने ज्ञान स्वभाव को कभी छोड़ता नहीं । एक बार जब ये नाव में सैर कर रहे थे तब नाव डूबने लगी तब एक विदुषी महिला ने उन पर व्यंग्य करते हुए कहा कि डूबने दो, नाव ही तो डूब रही है, जड़ की क्रिया जड़ में होती है होने दो । ऐसे वञ्चकों से भी सावधान रहना चाहिए । जहर मिश्रित सुन्दर लड्डू के समान यह एकान्तवादमृत्यु का प्रतीक है । जिस बालक को जहर के प्रभाव का ज्ञान नहीं है वह विष मिश्रित मधुर लड्डू को खा लेता है

हम लोग भी एकान्तवाद के विष का दुष्परिणाम न जानते हुए पञ्चेन्द्रिय विषय भोगों का निःसंकोच सेवन कर रहे हैं । पाप बंध से डरते नहीं ।

परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी अंकलीकरजी के प्रति हमें अपनी कृतज्ञता प्रगट करनी चाहिए । जिन्होंने समाज को एकान्तवाद के दुष्प्रभाव से उन्मुक्त करने वाले उद्‌भट् विद्वान् तपस्वी रत्नो को प्रदान कर अतुल उपकार किया है । प पू आ महावीर कीर्तिजी महाराज, आ विमलसागरजी महाराज, आ सन्मतिसागरजी महाराज, आ कन्थुसागरजी महाराज इत्यादि अनेक सुप्रसिद्ध, तपोनिष्ठ साधु आपकी ही देन हैं । ये त्याग तप में तो बढ़ चढ़ कर हैं ही पर विद्वता मे भी कमी नहीं है । आचार्य शान्तिसागरजी महाराज भी ऐलक दीक्षा की अपेक्षा आचार्य श्री आदिसागरजी अंकलीकरजी के दक्षिण के ही शिष्य थे । ऐसे उत्कृष्ट तपस्वियों की यदि कोई निन्दा करता है, अवर्णवाद करता है तो वह साधुवर्ग को ही नहीं समाज, देश व राष्ट्र की क्षति मे भी कारण पड़ेगा । तपस्वियों का रक्षण, धर्म का रक्षण है, समाज का रक्षण है, देश और राष्ट्र के उत्थान की कुञ्जी है । हम कम से कम समाज के प्रति तो अपने उत्तरदायित्व को निभायें । हठग्राहिता को छोडकर दृष्टि को सापेक्ष रखकर सत्य की खोज करें । धर्म जिसमें मानवता नहीं है, नैतिकता नहीं वह जड़ रहित वृक्ष की तरह है जो धीरे-धीरे सूखता जाता है । धर्म के मर्म का आधार गुरु है, आचार्य परम्परा भी है और आचार्य परम्परा का जहाँ तक प्रश्न है वहाँ टीकमचन्द तो श्री आदिनाथ भगवान् से लेकर सभी तीर्थंकरों के काल में मौजूद सभी आचार्य परमेष्ठी को और भावी आचार्यों को भी स्वीकार करते हैं क्योंकि सभी आचार्य परमेष्ठी को और भावी आचार्यों को भी स्वीकार करते हैं क्योंकि आचार्य परम्परा वस्तुत धर्म परम्परा है । जितने भी आचार्य, उपाध्याय और मुनि हुए हैं वे सभी उस एक परम्परा मे ही गर्भित हैं लेकिन व्यवहार दृष्टि से दीक्षागुरु आदि की अपेक्षा को प्रधान बनाकर व्यवहार दृष्टि से, सामाजिक दृष्टि से, कुछ व्यवस्थाओ की दृष्टि से हम अलग-अलग व्यवस्थित हो गये हैं लेकिन अभेद दृष्टि से निश्चय से अलग-अलग परम्परा नहीं है । श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी की परम्परा जो है वह भी उस अनेकान्त परम्परा में ही गर्भित है । भगवान महावीर की परम्परा से ही जुड़ी हुई है । जिस समय कोई मुनि नहीं था उस समय श्री भूधरजी ने अपने भाव प्रकट किये-वह समय कब आयेगा, जब मैं मुनि रूप के दर्शन कर सकूँ । उस समय शायद मुनि नहीं थे । जिन्होंने ऐसे समय में सर्वप्रथम समस्त परिग्रह का त्याग कर जिन मुद्रा को धारण किया उन्होंने सार्वभौमिक श्रमण संस्कृति का समुत्थान कर हमें वह उत्तम मार्ग दिखाया है, सच्चे रत्नत्रय रूप मोक्ष मार्ग की दिशा बताई है जिस पर चलकर व्यक्ति सदा सदा के लिए दुःख से मुक्ति पा सकता है । उनके शिष्यगण आज भी धर्म का दिग्दर्शन करा रहे हैं, तृतीय पट्टशिष्य आ सन्मतिसागरजी महाराज प्रत्यक्ष हमारे बीच विराजमान हैं । पट्टशिष्य आ महावीर कीर्तिजी की महानता, विशिष्टता तप, त्याग और जीवन चर्या से जयपुर के प्रत्येक प्रौढ़ पुरुष परिचित होंगे । जब आचार्य श्री ब्यावर पधारे तो मैं स्वयं वहाँ उनके दर्शन के लिए गया था और उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ ।

आचार्य शान्तिसागरजी (दक्षिण) ने सम्पूर्ण उत्तर भारत में विहार किया । इसलिए जनता उनसे परिचित रही और आ आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) ने अपना सम्पूर्ण जीवन दक्षिण

भारत में ही बिताया । इसलिए यहाँ के लोग उनसे परिचित न हो सके पर उनके पट्टशिष्य आ महावीर कीर्तिजी महाराज ने पूरे उत्तर भारत में भ्रमण किया और समाधि सम्राट् के रूप में आज विख्यात हैं । कोई भी आचार्य हो सभी धर्म के नेता हैं, पूज्य हैं चाहे वे आचार्य वीर सागरजी हो, आ शिवसागरजी हों, आ धर्मसागरजी हों, आचार्य अजितसागरजी हों या आ महावीर कीर्तिजी हों, आ विमलसागरजी हों, आ सन्मतिसागरजी हों ।

यदि कोई एक की बुराई करे और दूसरे की भलाई करे तो मैं समझता हूँ कि यह हमारे लिये बड़ा भारी कलंक है । जिनकी यह धारणा है कि आ शान्तिसागरजी महाराज के अस्तित्व को समाप्त करने की दृष्टि से इस प्रकार की परम्परा का प्रचलन किया गया है, वह उनकी भयंकर भूल है । महाराज श्री के हृदय में तो जो आ आदिसागरजी महाराज के प्रति भाव और स्नेह है वही आ शान्तिसागरजी के प्रति है । वस्तु स्वरूप को रखना तिरस्कार नहीं होता जो पूर्व दीक्षित हैं वह पूर्व दीक्षित ही कहा जायेगा । कालभेद कोई चीज नहीं ऐसा कथन युक्तिपूर्ण होगा भी नहीं । व्यवहार दृष्टि से भेद पडते हैं निश्चय से कोई भेद नहीं ।

आज हम अर्वाचीन आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी को भी याद करते हैं किन्तु उस स्मृति से हम अन्य आचार्य की परम्पराओं को तोड़ नहीं रहे हैं । तिरस्कार नहीं कर रहे हैं । सब अपनी-अपनी जगह मान्य हैं, पूज्य हैं ।

आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) के मामले को लेकर जिस गति से आरोप प्रत्यारोप किया जा रहा है, जिस प्रकार पोस्टर बाजी कर वातावरण को दूषित किया जा रहा है वह वास्तव में अत्यन्त खेदजनक है । क्योंकि यह उनका तिरस्कार है जिनने समाज की यथेष्ट उन्नति का महान् प्रयत्न किया है । समाज को सर्वाङ्गीण विकास हेतु दिशा बताई है । हम पारस्परिक वैमनस्य को छोड़कर, रागद्वेष को छोडकर जिनशासन व जिनधर्म की प्रभावना में किंवा विश्व के कल्याण के लिए, जनहित के लिए अपने आपको समर्पित कर दें यही एकमात्र उन्नति का साधन है, सुख शान्ति का उपाय हो सकता है अन्यथा पतन अवश्यम्भावी है । यदि भावना सच्ची है तो वह भावना पत्थर को भी इंसान बना देती है और वासना जीव को शैतान बना देती है । प्रत्येक दिगम्बर संत जिन मुद्रा के धारी अर्हन्त की प्रतिछवि स्वरूप हैं, प्रत्येक भव्यात्माओं को उनके प्रति समादर का भाव रखना चाहिए । भौतिकता के अंधकार में चारों ओर इधर-उधर थपेड़े खाते हुए विद्वत् वर्ग भी आध्यात्मिकता की उपेक्षा कर रहे हैं पर आध्यात्म के अभाव में जीवन की स्थिति उस वृक्ष के समान हो जाती है जिसकी जड़ कट गई है । आध्यात्म की नींव को सुदृढ़ करने वाले आचार्य परमेष्ठी होते हैं । हम अपने विचारों को पवित्र करें और मुक्ति की प्राप्ति हेतु आचार्य परम्पराओं में विघटन न पैदा कर उनमें ऐक्य स्थापित करने का समुचित प्रयत्न करें तो आज की सभा का आयोजन हमारे लिये उपयोगी होगा । इतना कहकर मैं सभी आचार्य परमेष्ठी एवं साधुवृन्द के चरणों में नमन करता हुआ विश्राम लेता हूँ ।

वर्तमान आचार्य परम्परा

पण्डित विद्याकुमारजी सेठी

गुरुजनों की छत्रछाया ही जीव को सांसारिक ताप से बचाती है । २०वीं सदी के चारित्र चक्रवर्ती गुरुदेव आचार्य आदिसागरजी (अकलीकर) ने सर्वप्रथम दिगम्बर वेश धारण कर मुनि धर्म रूपी सूर्य जो अस्ताचल को प्राप्त हो रहा था । उसे पुन अभुयदय का अवसर प्रदान किया । निर्दोष मुनि चर्या के आचरण से आपने मुनिधर्म का रक्षण किया और श्रावक जनों को आहार दान आदि षट्कर्मों में प्रवर्तन कराया । आपके तप और ध्यानादि से प्रभावित होकर आचार्य पद भी प्रदान कर समाज ने धर्म रूपी रथ को आगे बढाया । चारित्र चक्रवर्ती पद से अलंकृत होते हुए आपने साधु समुदाय के गौरव को बढाया । अन्त मे उत्कृष्ट समाधि सिद्ध कर श्रेष्ठ गति को प्राप्त किया । अपना पद आपने समाधि से पूर्व योग्य शिष्य श्री १०८ मुनि महावीरकीर्तिजी महाराज को देकर आगम परम्परानुसार कर्त्तव्य की परिपालना और सघ की सुरक्षा की । इसके बाद आचार्य रत्न श्री १०८ महावीर कीर्तिजी महाराज ने भी समाधि से पूर्व अपना पद परम तपस्वी श्री १०८ मुनि सन्मतिसागरजी को देकर निर्विकल्प होकर उत्कृष्ट समाधि सिद्ध की । आचार्य और उपाध्याय दोनो ही पद जिनको अपने गुरु से प्राप्त हुआ है वे तपस्वी सम्राट् सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ सन्मतिसागरजी महाराज अभी हमारे बीच यहाँ विराजमान है । आज पूरे भारत में आपके समान तपस्वी साधु नहीं है । यह आप सब प्रत्यक्ष देख रहे हैं ।

आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज दक्षिण और आचार्य शान्तिसागरजी (छाणी वाले) महाराज भी बड़े तपस्वी हैं । ये दोनो परम्परायें भी मौजूद हैं । इन परम्पराओं को हम सर्वथा भिन्न भी नहीं कह सकते और सर्वथा अभिन्न भी कहना नही होता । अपेक्षा से भेदाभेदात्मक रूप जानते हुए सभी को यथायोग्य हम सम्मान दें । उनकी पूजा भक्ति कर पुण्य लाभ करते रहें । ऐसा करने से धर्म और समाज दोनो की उन्नति होगी । विरोध पतन को ले जाता है । अतः विरोध और विद्रोह से हटे, यथार्थता को समझें और जिससे स्वपर का हित हो ऐसा कार्य करें ।

अन्त मे मै यहाँ उपस्थित सम्पूर्ण आचार्य संघ को नमन करता हूँ और चाहता हूँ कि जन्म जन्मान्तरों में मुझे आप लोगों की छत्र छाया मिलती रहे, मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे । गुरु कृपा ही श्रेष्ठ सम्पत्ति है, उन्नति का सोपान है, वह श्रेष्ठ सम्पत्ति मेरे जीवन का अलंकार है । गुरु चरणों में मुझे समाधि करने का अवसर मिले । बस, इतना ही कहकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ ।

धर्म और राजनीति

श्री १०५ प्र. ग. आ. विजयमती माताजी

मैंने ना तो कभी राजनीति में प्रवेश किया है और ना ही शासन सत्ता में प्रवेश किया। लेकिन जो हमारे धर्माचार्यों ने हमें राज्य सत्ता और धर्म के संबंध में जानकारी प्रदान की है, उसके आधार पर मैं आपको बताऊँगी। वास्तव में राज्य का अधिकारी वही रहा है जिसे हम क्षत्रिय धर्म सम्बोधन करते हैं और क्षत्रियता का अर्थ ही होता है जो अपने साथ सबकी रक्षा करे। तो "यथा राजा तथा प्रजा" राज्य करने वाला यदि सही है तो अवश्य प्रजा भी अपने स्थान पर सही मार्ग पर रहेगी। कोई सन्देह नहीं है। हम राजा रामचंद्र की प्रशंसा करते हैं। वहाँ पर राम राज्य में कोई दुख न पाता था। रामचन्द्र महाराजा थे इसलिए ? इसलिए क्या किसी को "दैविक दैहिक या भौत्रिक ताप" नहीं हुए ? इतने मात्र से नहीं हो सकता। उस समय की प्रजा भी उसी प्रकार की थी कि जिसके लिए ये सारे दुख दैत्य दूर से ही नमस्कार करके चले जाते थे। अर्थात् सभी धर्मनिष्ठ थे। धर्म की शक्ति वह शक्ति है जो सारे संसार पर शासन कर सकती है और शासक वही बनता है, जो धर्म का आश्रय लेता है। राज्य और धर्म एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक के अभाव में दूसरा टिक नहीं सकता है। जब-जब ये राजसत्ता के अन्दर राज्य शासन के अन्दर विकार आया है कूटनीतियों ने जन्म लिया है, शोषण और मायाचारियों ने अपना अड्डा जमाया है। उसी समय में उसके लिये अवसर प्राप्त हुआ। जबकि राज सत्ता धर्म से विमुख हो गई। हम देखते है कि हमको धर्म के नाम पर स्वातंत्र मिला, भारत स्वतंत्र हुआ धर्म के आधार पर, धर्म की तलवार पर, धर्म के अस्तित्व पर, धर्म के आधार पर। अहिंसा परमोधर्मः लड़ाई और झगड़े के स्थान पर युद्ध और नरसंहार के स्थान पर सत्याग्रह के बंधन में आ गये थे, फन्दे में पड़ गये थे वो स्वतंत्रता ले सके, लेकिन अभी देखा जा रहा है कि जिसके बल पर हम स्वतंत्र हुए आज हम उसी का गला घोंट रहे हैं। हमारा एक माज उद्देश्य केवल गद्दी प्राप्त करना रह गया है। कुर्सियों के लिए हम लडते हैं। लाखों करोड़ों रुपये खर्च कर देते हैं फिर हम जानते हैं कि पाँच वर्ष के बाद में यह कुर्सी खींच ली जायेगी इसलिए जितना द्रव्यार्जन हम कर सकते हैं कर लें। घर को भर लें परन्तु धर्म कहता है जो जन्मा है उसको मरना पड़ेगा जो करता है उसको भोगना पड़ेगा उसके बिना छुटकारा मिल नहीं सकता है। यदि हमने धर्म का मार्ग छोड दिया और उन दुखों से भयभीत नहीं हुए तो निश्चित है हमारी दुर्दशा होगी ही जैसी कि हो रही है। एक समय था, हम थोड़ा इतिहास को देखें, थोड़ा पीछे देखें अपनी राजनीति पर विचार करें, सोचें तो हम देखेंगे कि धर्म के बिना राज्य एक कदम भी नहीं चल सकता। राम रावण का युद्ध इतिहास प्रसिद्ध है, सर्वमान्य है। पुराणों में भी प्रसिद्ध है। कितना भयंकर युद्ध था, कितनी भीषण ज्वाला के समान वहाँ पर नरसंहार हुआ लेकिन मैं आपको पूछूँ क्या यह सत्ता की प्राप्ति के लिए हुआ। क्या ? वह युद्ध धर्म का निष्कर्ष निकालने धर्म का रक्षण करने के लिए और विशेषकर नारी के सतीत्व की रक्षा के लिए हुआ था

और नारी धर्म की रक्षा के लिए हुआ था। वहाँ उस समय भी जो युद्ध करते थे, उनके हृदय में भी धर्म की चिनगारी थी। धर्म का अंगी था धर्म की किरणें थी। तभी तो भीषण युद्ध काल में राम रावण ने यह घोषणा की कि हमारा महापर्व अष्टान्हिका आ गया है। आज हम किसी भी परिस्थिति में युद्ध नहीं करेंगे। चाहे भले ही राम हमारी लका को ले और राम कहते हैं हम ऐसे निहत्थे नहीं हैं, हम बुजदिल नहीं हैं, हम धर्मविहीन नहीं हैं कि जो निशस्त्र हो गया उनके सामने जाकर के हम सत्ता जमा लें। दोनों ही विरोधी एक चैत्यालय में एक जिनालय में शान्तिनाथ के मंदिर मे जाकर के आष्टान्हिका पर्व मनाते है, पूजा करते हैं धर्म अनुष्ठान करते हैं। जिस समय रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने के लिए भाषता है हनुमान सुग्रीव और लक्ष्मण वगैरह आकर राम से कहते हैं, अगर रावण को यह विद्या सिद्ध हो गई तो हम किसी भी प्रकार से विजयी नहीं हो सकते हैं। इसलिए हमको आप आज्ञा दीजिए, हम इस कार्य मे विघ्न डालेगे और यह विद्या सिद्ध नहीं होने देंगे। रामचद्र महाराज ने कहा कोई राजनीति नहीं है, यह शासन नहीं है, यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि हम किसी के कार्य मे विघ्न डालें। किसी को सतायें, और रावण को विद्या सिद्ध हो गई। लेकिन वो घबराये नहीं। क्यों नहीं घबराये क्योंकि उनके पास धर्म का शस्त्र था। धर्म के सामने कोई शक्ति टिक नहीं सकती है। वो ही परिणाम हुआ क्या विद्या टिक गई नहीं टिक सकी तो आज हम तलवार के बल पर शासन करना चाहते हैं और उसमे सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, यह हमारी दुर्दशा है और उसका मूल कारण है कि हमारे जीवन मे धार्मिक संस्कार नहीं है पहले राजकुमार राजनीति की शिक्षा लेने के लिए धर्म गुरुओ के पास जाते थे। कुलभूषण, देशभूषण कहा गये। मुनिराज दिगम्बर साधुओं से पढने के लिए गये थे। किसने लवणांकुश विद्या सिखाई, दिगम्बर साधुओ ने ? जिसने अपने पिता और चाचा को परास्त किया था। राजनीति मे ये कार्य होते हैं। राज्य का प्रसार करना यह भी करना रक्षण करना राजा का धर्म होता है। परन्तु यदि वह धर्म के सहारे चलता है तो सारी क्रियायें स्वत: उसकी होती चली जाती हैं। उसे शोषण करने की आवश्यकता नही, अत्याचार, अनाचार, करने की आवश्यकता नहीं, दुराचार, व्यभिचार का फैलाव करना, यह राजसत्ता का काम नहीं है। आज खुलेआम हमारी सरकार के द्वारा नरसहार करने का हर प्रकार के प्रचार और प्रसार किया जा रहा है। शहरों में जाकर के देखिये क्या दुर्दशा हो रही है ? कितनी भ्रूण हत्यायें हो रही हैं ? कितनी निरपराध बालकों और बच्चों का सहार हो रहा है और पशुओं की तो कोई गिनती ही नहीं है। क्या वो राजसत्ता से बाहर है। यह भारतभूमि जहाँ पर कि दूध की नदियाँ बहती थी, जिस समय यहाँ ह्वेनसाग आया था, मेघस्थनीज आये थे तो उन्होने कहा कितने आश्चर्य की बात है यहाँ कोई ताला नहीं लगाता है, यहाँ कोई किसी प्रकार का प्रबन्ध नहीं करता है। सब स्वतत्र हैं, सब आजाद हैं, सब खुशहाल हैं और आज क्या हो रहा है। वही यह देश है वही भारत है वे ही हम लोग हैं, वे ही भारतीय हैं तो कोई भी धर्म यह नहीं कहेगा कि राज्य चलाने के लिए हिंसा करो, चोरी करो, बेईमानी करो और इनको करने की एक सस्था बना लो जिनका टी वी पर, विडियो पर प्रसार

करो, प्रचार करो । कैसे चोरी की जाती है ? कैसे डाका डाला जाता है ? किस प्रकार से किसीकी माँ, बहन, बेटी को सताया जा सकता है ? यह खुलेआम दिखाया जाता है यह किस प्रकार शराब पी जाती है और किस प्रकार अण्डा खाया जाता है । मैं समझती हूँ कि मुस्लिम शासकों के समय में भी इस प्रकार के अत्याचार और व्यभिचार का प्रदर्शन नहीं हुआ होगा । भले ही छाने छुपके हुआ हो मुझको याद आता है चाहे नाम गलत हो जाय, जब अलाउद्दीन खिलजी शासक हुआ उसकी पत्नी भोजन बना रही थी । हाथ जल गया । भोजन बनाने में हाथ जल गया । बादशाह आया भोजन करने, वो कहती है तुम इतनी बड़ी सल्तनत को लेकर के बैठे हुए हो, तुम्हारा इतना बड़ा शासन है । इतना भरा हुआ खजाना पडा है और देखो । एक रसोइयां नहीं रख सकते हो । मेरा हाथ जल गया तब बादशाह सुनता है और कहता है तुम नहीं समझती जिसके ऊपर तुम्हारी दृष्टि है वह सम्पत्ति मेरी नहीं है । आपको याद रखना चाहिए जो कुछ प्रजा के रक्षण, प्रजा के पालन, प्रजा की देखभाल करने के आनन्द पर अवसर प्राप्त करता हूँ और उसमें से कुछ भी मैं अर्जन करता हूँ उसमे क्या अर्थ है उस धन के ही माध्यम से अपना और तुम्हारा जीवन चलाता हूँ, गृहस्थी चलाता हूँ । मैं राज शासन के खजाने से अपना संबध नहीं रखता हूँ । यह प्रजा का धन प्रजा के लिए है और हम किस प्रकार से शोषण में लगे हुए है और जिसको लेते हैं उसके अनुसार नाना प्रकार के अत्याचार करते जा रहे हैं । इसका कारण यही है कि हमने राजनीति के साथ धर्म नीति को नहीं सीखा है, तो बता रही थी तब उसको पढ़ाने वाले धर्म गुरु थे, राजा को शिक्षा देने वाले धर्म गुरु थे और उसके राज्य में किसी प्रकार का भी विवाद नहीं होता था सब अपनी-अपनी सत्ता को लेकर के सब अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार अपने जीवन का निर्वाह करते थे और यही कारण था । सब सुखी थे, सुख क्या है ? सुख कोई वस्तु है या कहीं मिलती है ? क्या बाजार मे दुकान में धर्म में इन धर्म नेताओं के पास में या जिनों के पास में या देवों के पास में कहाँ है ? सुख कहाँ है या सबके सब सुख का मार्ग बताने वाले हैं । आपके अन्दर में सुख पैदा करने वाले नहीं हैं । सुख तो हमारा हमारे अन्दर है और जब हम धर्मनीति पर चलेंगे तो अपने आप ही हमारे पास आ जायेगा हमको लगेगा कि हम सुखी हैं, हम संतुष्ट हैं । एक सेठ जी गर्मी से छटपटा रहे थे । पंखा झलने वाले के ऊपर झल्ला उठे कि अरे मैं पसीना-पसीना हो गया और तू काम नहीं कर रहा है, यह नहीं सोच रहा कि मैं गद्दी के ऊपर पकड़कर भी नींद नहीं ला रहा हूँ और जब पंखा झलते झलते सो गया तो क्या हो गया । पंखा चला जोर से ठंडी लगी हवा और सेठजी को नींद आ गई । पलकें झपकते ही देखते हैं कि वो एक नाव में सवार हो गये । पानी में अठखेलियाँ करती हुई ठण्डी-ठण्डी हवा बह रही है, फुहारें उछल रही हैं । बड़ा आनन्द आ रहा है और थोड़ी देर के बाद तूफान भी आ गया और नौका डांवाडोल होने लगी कहाँ नदी के मध्य में बीच धारा में सेठजी घबरायें । अरे भैया नाव को संभाल ले । मेरे हाथ का काम नहीं है नाव छूट जायेगी मेरे हाथ से, अरे पाँच सौ ले लेना हजार ले लेना, लाख ले लेना, नाव तो पकड़ ले । अरे तुम दस लाख दो तो भी मेरे हाथ में नाव नही है । नाव तो जाने वाली है और वह सोचता है कि मैं मरा

वह दुख से छटपटा रहा है । झटका आया तो नाव डूबने वाली है और नींद खुल गई । कहाँ है सेठ ? जी कहाँ है सुख और दुख वो जहाँ का तहाँ गद्दे पर पड़ा हुआ है । न नाव है न पानी है और न नदी है । यह हमारे परिणामों पर है । हम यदि सुखी रहना चाहते हैं अपने को सुखी देखना चाहते हैं तो हम अपने कुरीतियों को अपने आचरण को अपने शिष्टाचार को अपने शीलाचार को सम्भालना ही होगा । उसके बिना हमें सुख और शान्ति मिल नहीं सकती है और यही बातें जो हमारे संविधान के कर्त्ताओ और विधाता और प्रवर्तकों में आयेगी तो वो भी सुखी रहेंगे स्वयं सुखी होंगे तो सब सुखी होंगे । अभी मैंने बताया कि राजा अगर धर्मज्ञ है तो प्रजा भी धर्मज्ञ है और राजा धर्मज्ञ नहीं है तो प्रजा भी वैसी ही होगी तो एक तरफ से नहीं चलेगा । हमारे शासकों के अन्दर जो है वो लोगों के अन्दर ही जाने । आज ऐसा क्यों हो रहा है । मैं नि:संकोच कहूँगी कि हमारे सत्ताधारियो के अन्दर राजनीति भरी रह गई । वो ऐसे कूटनीतिज्ञ हो गये हैं और उन्हीं के लिये हम सत्ता समर्पण कर देते हैं । केवल पैसे के बल पर और उस पैसे का क्या होता है । "अर्थो मूलम अनार्थानाम" यह अर्थ अनर्थों की जड है । अगर इसका सदुपयोग नहीं किया तो नाश ही है । सर्वथा यह नहीं समझ लेना, न ही तो चक्रवर्तियों के ऊपर भी आफत आ जायेगी । उन्होंने सत खण्ड के राज्यो का उपभोग करके भी उस दल-दल में अपने को फँसाया नहीं । स्वयं तड़पते रहें और दुनिया को दिखाते रहें कि हम कितनी बडी सल्तनत को लेकर के बैठे हुए हैं । सतखण्ड के अधिपति बैठे हुए है । वह उसमे डूबे नहीं, चीज कोई बुरी नहीं होती है । उसका अच्छा और बुरा, उसका प्रयोग ही अच्छा और बुरा होता है । भरतेश्वर मंत्री जा रहे हैं । मंत्रियों के साथ में उनकी अंगूठी का हीरा निकल करके गिर गया-चक्रेश्वर ने उठाया और उसको जहाँ का तहाँ लगा लेता है । मंत्री मुस्कराते हैं । इनको लोग कहते हैं भरत चक्रवर्ती घर में रहकर के वैरागी है। उसको मोह नहीं है और यह है कि एक काँच के टुकड़े को उठाकर के मिट्टी पोंछ करके अपने अंगुली मे लगा लिया । भरतेश्वर सब समझ गया और वो कहते हैं अरे भैया मैं शासक हूँ । सारा राज्य मेरे ऊपर निर्धारित है । हर वस्तु को कहां पर रहना चाहिए, किसको कहाँ स्थान मिलना चाहिए । यह मेरी दृष्टि में है । यह हीरा है, यह हीरा धूल मे फेंकने के लिए नहीं है । यह तो युवराज के हाथ मे ही शोभा पाता है । इसलिए मैंने इसकी इज्जत के लिए इसको उठाया है । मेरे को लोभ है इसलिए नहीं उठाया । तो शासक को ऐसी दृष्टि रखनी होती है कि किसके लिए कौन सा स्थान है । उसके लिए वह स्थान प्रदान करें । तभी वह राजसत्ता रह सकती है, अन्यथा पैशाचिक वासना सृष्टि करने वाली जो हमारी राजसत्ता वो कभी भी स्वयं सुखी नहीं रह सकती और राज्य प्रजा को भी सुखी बना नहीं सकती है । इन कुरीतियों को इन बुरी नीतियों को इन दुर्नीतियों को हमे निकालना ही पडेगा और सदाचार शिष्टाचार की नीतियों को अपनाना ही पडेगा । तभी जाकर के यह हमारी राजनीति सुनीति हो सकती है और हम सुखी हो सकते हैं । एक छोटा-सा उदाहरण है । आपको बताऊँगी लोग कहते हैं । अहिंसा परमोधर्म: और यह अहिसा जैनियों का धर्म होता है और जैन ये क्या होते हैं ? सुबह और शाम सुनते हैं इंदिया वा

वेइंदिया वा उद्यावर्न परिदावणं करना नहीं चाहते हैं । यह अहिंसा परमोधर्म के प्रणेता कैसे राज सत्ता को चला सकते हैं । राज्य का कोई कार्य ऐसा छोटा मोटा है क्या ? जो लड़ना पड़ता है । एक-दूसरे को कष्ट देना पड़ता है । मारकाट करनी पड़ती है । तलवार चलाना पड़ता है । बम उठाना पड़ता है, बंदूकें उठानी पड़ती हैं । ये क्या कर सकते हैं ? लेकिन आप इतिहास उठायेंगे तो उसमें देखेगे कोई हो किसी भी मत का हो ये अवगत होगा कि जैन राजाओ ने जो शासन किया है संसार की कोई भी सत्ता वैसा शासन नहीं कर सकती । आबू नाम का एक श्रावक युद्ध में जाता है और अपने धर्म कार्यों को करते हुए युद्ध करता है । लोग कहते हैं कि ये क्या धर्म का रक्षण करेगा । लेकिन उसके सामने विजय ध्वज आकर के अपने आप खडा हो जाता है । मगर राजा युद्ध करता है । वैराग्य की भावनाओ से भरा हुआ है और जब देखता है कि मेरे जीवन का मैं रक्षण करने मे समर्थ नहीं हूँ तो सर नहीं झुकाता है । हाथी के ऊपर बैठा हुआ वह केशलोंच करता है । दीक्षा ग्रहण करने के लिए, समाधि सिद्ध करने के लिए, मोक्ष की प्राप्ति करने के लिए, सुख की प्राप्ति करने के लिए वह सुख जो सुख एक बार प्राप्त होने के बाद कभी भी मिटेगा नहीं, उसके लिए वो केशलोंच करता है और शत्रु आकर के उसके चरणों में गिर जाता है । आप मेरे शत्रु नहीं हैं । मुनिराज हैं अब मेरे धर्म गुरु हैं । इसका नाम राजनीति है । इसको कहते हैं धर्मराज्य । एक बार महाराज बता रहे थे कि युधिष्ठिर को हम धर्म राज कहते हैं और उसके एक बार अवसर आने पर द्रौपदी को दाँव पर लगा दिया लेकिन मैं कहूंगी कि परिस्थितियाँ इस प्रकार की कभी-कभी हुआ करती हैं । जिसके सामने आदमी को झुकना पडता है । परन्तु धर्म के सामने कोई परिस्थिति ऐसी नहीं आती है जो उसको विचलित कर सके । वो धर्मराज-धर्मराज ही थे । अन्याय उन्होने कभी नहीं किया । न्याय का पक्ष लिया उस समय भीष्म पितामह वाण की शैया पर सोये हुए वह रक्त बह रहा है, द्रोपदी मुस्कराती है कौन द्रोपदी ? वही जो दाव पर लगाई गई थी । भीष्म पितामह कहते हैं मैं जानता हूँ द्रौपदी पुत्री तुम क्यों मुस्कराई हो ? तुम्हारा यही अभिप्राय है कि वो दिन भूल गये पितामह जिस दिन मेरे ऊपर अत्याचार अनाचार हुआ था और आज धर्म नेता बनकर के राजनेता बनकर के और इस प्रकार का दृश्य आपको देखने को मिल रहा है । उन्होंने ही अच्छी बात कहीं भीष्म पितामह कहते हैं, उस समय मैंने कौरवों का अन्न खाया था । कौरवों के अन्न का भक्षण करके मेरी बुद्धि ऐसी हो गई जिसके कारण मैंने अन्याय का पक्ष लिया था । आज अर्जुन के बाणों ने उस रक्त को निकाल दिया और मेरे अन्दर मेरी माँ के दुग्धपान का वो रक्त शुद्ध रक्त रह गया है । अब मैं धर्म का पक्ष लेने के लिए जा रहा हूँ । तो आप बताइये कि हमारी सरकार जो मांसाहार का प्रसार कर रही है । मछलियों को पालने का प्रोत्साहन दे रही है । मुर्गी पालने का प्रोत्साहन दे रही है और इंजेक्शन से हम अण्डे पैदा कर रहे हैं । इसलिए शाकाहार है । मांसाहार नहीं है । ऐसा गंदा झूंठा प्रचार हो रहा है और हमारे जीवन का घातक प्रसार कर रही है और हम सब बैठे-बैठे आराम के साथ में सैर कर रहे हैं और हमीं लोग ऐसे नेताओं को चुन रहे हैं । आज सत्ता किसी व्यक्तिगत नहीं है सामूहिक है, सबकी है । जब सबने

राजसत्ता उसको दी है तो सबका अधिकार है उसको गलत काम करने पर कान पकड़ के निकाल दे । इधर घंटी बज रही है । मैं जानती हूँ समय हो गया है तो मेरा अन्त में इतना कहना है कि हम धर्म और राज को दोनों एक बराबर की सीमा मे लेकर के एक बैलेन्स में हम चलेगे तो हमारा जीवन सुरक्षित रहेगा । हम सुरक्षित रहेगे । हमारा धर्म हमारे साथ रहेगा और हमारी राज सत्ता सहयोगी बन सकेगी । अन्यथा संसार विनाश के कगार के ऊपर खड़ा हुआ है कब ढह जायेगा- कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । हमें सावधान हो जाना है सचेत हो जाना है और अपनी कुरीतियों को हटाना है और हमें धर्म की शरण मे जाना है और अपने धर्म गुरुओं का धर्मनेताओं का आश्रय लना है । हमारे अन्दर जो यह गलत प्रवृत्ति चालू हो गई है कि हम गुरुओ के कार्यों का छिद्रान्वेषण करते है । यह अमान्य है ये मान्य है । इस प्रकार की जो खोटी भावनायें हमारे मन में जाग रही हैं । उनको हमें निकाल कर फेकना हैं । हमे जिन मुद्रा को देखना है । हमें निर्ग्रन्थ मुद्रा को देखना है । हमे जिन लघुनन्दनो की पूजा करना है । अभ्यर्थना करना है और उनके द्वारा अपना मार्ग प्रशस्त करना है जो अपने मार्ग को बना लेगा वो सही अपने स्थान पर पहुँच जायेगा ।

राजनीति और धर्म

श्री १०८ आचार्य सन्मतिसागरजी

अनन्त काल से ससार में धर्म भी चला आ रहा है । शासन भी चला आ रहा है, शासकों की नीतियाँ पलटती रही है और उसके कारण से हमारे विचार भी पलटते रहे और जीवन को कभी सुखी और कभी दुखी बनाते रहे । अधिक समय नहीं है जबकि अपन सभी जानते हैं कि जिसकी सत्ता होती है वह अपनी सत्ता से काम लेता है । हम बहुत करके सभी समझते हैं कि धर्मविहीन राज सत्ता में हिसा का नृत्य भी चलता रहा । जिन्दा पशुओं की, पंचेन्द्रिय पशुओं की हत्याये होती रहीं । अधिकतम बढती रही । ऐसे समय मे प्रयत्न भी किया गया और इतना ही इस दिगम्बर मुद्रा पर भी प्रतिबन्ध रहा । इस दिगम्बर मुद्रा वाले अहिंसा के पुजारी होते हैं । इनको हिंसा पसन्द नही आती है । फिर भी ऐसे भीषण समय में परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य आदिसागरजी महाराज अकलीकर ने इस नग्न दिगम्बर मुद्रा को धारण किया और अहिंसा धर्म को साकार रूप दिया । और उन्होने प्रत्यक्ष मे यह बात बता दी कि धर्म जिन्दाबाद है । अहिंसा परमोधर्म की जय को साकार रूप दे दिया गया, भव्यजीवों ! एक राजकथा आती है । कथाओं में कथा मान झगड़े की कथा भी है । वास्तव में जहाँ हम अपनी बात को रखने लगते हैं और दूसरों की बात को असत्य साबित करने की चेष्टा करते हैं तब झगड़ा होता है । राज शासन जब ही रहा जहाँ हमारी सवेदनायें जहाँ हमारी भावनायें सुखी बनाने की रहीं । साधारण भावना नहीं होती । "सुखी रहे सब जीव जगत के कोई कभी न घबराये" आप कम से कम अपने भाई की भावना को

भाई तो सुखी रहवे । कुटुम्ब की भावना तो गाओ । अपने समाज की भावना तो गाओ । गाओ उसमें भी हम पीछे हट जाते हैं भव्य जीवों । बस इसी को राजनीति कहते हैं, राजनीति को अपनाने में धर्म का सहारा लेवें और अपने जीवन को सुखी बनावें ।

धर्म और राजनीति

प्रोफेसर टीकमचन्दजी

आज से २२ वर्ष पूर्व जब विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बाईसवां गणतंत्र दिवस मनाया जा रहा था तब विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र, अनेक गुणों से युक्त आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज ने इस देह का वीरतापूर्वक त्याग कर स्वर्गारोहण किया ।

मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त किया और हम भव्यजीवों को यह बता दिया कि मरने की कला क्या होती है । सुखपूर्वक जीने का साहित्य तो हमें कई जगह मिलता है लेकिन प्रसन्नता पूर्वक इस देह का त्याग कैसे किया जा सके, यह मात्र भाषण से नहीं स्वयं करके दिखाने वाले हमारे समाधि सम्राट् आचार्य आदिसागरजी महाराज आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज तथा अनेक दिगम्बराचार्य हुए, जो महाराज जी से प्रश्न रखा था कि कषाय का सर्वथा आधार उपदेश द्वारा दिया जाता है और सबसे बड़ा कषाय भी हममे ही व्याप्त है । अपरिग्रह के सिद्धान्त का मूल भी यही है और सबसे ज्यादा परिग्रह हमारे पास ही पाया जाता है, ऐसा समझा जाता है । चार जो पाप हैं उनको तो पीड़ा की दृष्टि से देखकर के तिरस्कृत किया जाता है पात्रों के हिसाब से, लेकिन जिसके पास जितना ज्यादा परिग्रह है उसको पुण्यशाली, धर्मात्मा आदिके नामों से सम्बोधित करके समाज उनका अन्यत्र ही नहीं धार्मिक मचों पर भी सम्मान करती है । ऐसे जहाँ पैसे का बाहुल्य देखा जाता है वहाँ अन्य के मन में यह सन्देह होना स्वाभाविक है और उसे अपने वाक्पटुता के बल पर कोई भी उत्तर दे सकते हैं । उस वक्त शान्त कर दें इसलिए स्वयं आचार्य महाराज भी जानते हैं कि वो कोई समाधान नहीं कर पाये कि क्या कारण है देश जब 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हो गया तो फिर 1950 में 26 जनवरी को संविधान बनाने की क्या आवश्यकता हुई । स्वतंत्र तो हो चुका था । क्योंकि यह मानव एक सामाजिक प्राणी है और उसका इसके व्यवहार को नियमित करने के लिए ताकि ये इस तरह व्यवहार न करें कि दूसरों के लिए दुखद हो इसके लिए अनेक कानून सरकार ने बनाये । हमारे देश की सरकार या संविधान निर्माताओं ने भी संविधान बनाया उनके मूल में देखिये । हिंसा झूठ आदि पापों को रोकने के लिए हजारों कानून भी इसी में हैं, लेकिन फिर भी हम देख रहे हैं हिंसा का ताण्डव नृत्य, झूठ बोली जा रही है । यह एक तरह से सामान्य बात हो गई है । सच बोलना अपमान हो गया । ईमानदारी रखना अपवाद हो गया । इसलिए हम एक अखबार में पढ़ते हैं कि एक कण्डेक्टर को एक पर्स में 100 रुपये पड़े मिले, उसने जाकर के जमा करा दिये । उसे इनाम दिया गया । हम खुश होते हैं लेकिन क्या ये इस बात का प्रमाण नहीं है कि यहाँ अस्सी करोड़ की जनता में एकाध ऐसे होते हैं । जिनकी खबर अखबार में

छापे जाने के योग्य बनती जाती है । इसी तरह से झूंठ हमारे जीवन में घर कर गया । सत्य अहिंसा दया धर्म का अपना पुराना नाता है । दीवारो पर लिख देते हैं दिवाली पर पुत जाता है । जो सत्य अहिंसा दया आदि की बातें करते हैं, बड़े-बड़े नारे लगाते हैं वे मात्र प्रदर्शन के लिए होते हैं । धारण करने के लिए नहीं होते हैं । आज जो वेश्या का धंधा करती है । शरीर बेचकर आजीविका चलाती है । अपने पेट की आग को शान्त करती है तो हम उसको धिक्कारते हैं । धिक्कारना भी चाहिए लेकिन धर्म बड़ा है या शरीर बड़ा । ईमान बड़ा है या शरीर बड़ा । ईमान बेच करके, धर्म बेच करके पेट नहीं पेटी भरने में लगे हैं । वो उस वेश्या से बदतर होंगे ही । यह स्थिति जब हमारी है इसीलिए धर्म संस्थान की जरूरत है । राज्य संस्थाएँ वाले या सरकार वाले कहें कि हिंसा रोकने के लिए हमारे भारतीय दण्ड सहिता में एक लाइन है । झूठ को रोकने के लिए भी चोरी को रोकने के लिए भी हमारे पास प्रावधान है, फिर ये धर्म के ढकोसले के लिए धर्म संस्था की क्या जरूरत है । ऐसा कहा जाता है आज के बुद्धिवादी युग मे लेकिन एक धर्म संस्था राज्य संस्था की पूरक है । जहाँ राज्य के कानून तोड़े जाते हैं वहाँ धर्म संस्था कारगर होती है । राज्य के कानून की तीन सीमायें हैं, पहली राज्य के छिपकरके अपराध किये जाते हैं । प्रूफ के आधार पर जो अपराधी दंडित होने से रह जाते हैं, जिनको सिद्ध नहीं किया जाता । हम आये दिन बलात्कार आदि की घटनायें सुनते हैं, देखते हैं लेकिन प्रूफ नहीं हो पाता तो वो जो महिलाएँ हैं वो न्याय प्राप्त नहीं कर सकती हैं । दूसरी कमी है कि जो ये कानून बनाये गये हैं । जैसा कि महाराज श्री ने संकेत दिया था कि संविधान निर्माता हमारे जैसे ही मानव कई लूज पोल्स रह गई चित्र रह गये उन लूज पोल्स का फायदा उठाकर चतुर व्यक्ति अपराधी को बचाने में कामयाब हो जाते हैं और तीसरी कमी है कानून को जो प्रवर्तन करने वाले हैं वे न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठे हैं । वो भी आप हम जैसे ही हैं जिनको प्रलोभित भी किया जा सकता है, भयभीत भी किया जा सकता है । उस समय वह न्याय नहीं दे सकता लेकिन धर्मसस्था मे यह कमी नही है । स्वर्ग का पुनर्मिलन और नरक का डर मानव मन मे यदि बिठा दिया जाय तो वह अपराध करना तो दूर वह अपराध करने के भाव भी मन में नहीं लायेगा, क्योंकि अगर मेरे भाग्य ही खराब हो गये तो मुझे नरक में जाना पड़ेगा ऐसा जो पहले श्रद्धालुओ में भाव थे इतना हम जानते थे हमारे में अमन चैन रहता था । ताले वगैरह नहीं होते थे । कोई किसी तरह के व्यभिचार की घटनाये नहीं होती थीं । पुलिस नहीं थी । इस कारण से नहीं होती थी कि उनके मन में धार्मिक भावना घर कर गई थी जिसको आज के बुद्धिवादी वैज्ञानिक युग ने निकालने का प्रयास किया है कि यह सब जो है अंध श्रद्धा है कोई नरक स्वर्ग नहीं होता । ये होता है निश्चित रूप से ये धर्म और राजनीति का वैसा ही सम्बन्ध है जैसा पानी और नाव का, पानी मे नाव भले चल सकती है लेकिन यदि नाव में पानी आ जाये तो वो डुबो देती है, यही स्थितियाँ राजनीतिज्ञों में धर्म भावना आ जाये वो धार्मिक भावना के नैतिकता के भाव से कार्य करें तो उससे देवता शासन आ जाय पर ये शासक शासित होते हुए भी शासन के प्रति बड़ा दिली स्थान होता था, आदर होता था । अब उनका स्थान ले लिया शोषक और शोषित ने, कि जब पद पर बैठ जाता है किसी भी प्रकार की कुर्सी आ जाती है तो वह अपने स्वार्थ का पोषण करने के लिए उनकी उपेक्षा करते हैं और ऐसे जब राजा होते थे तो वो प्रजा के सुख का

ज्यादा ध्यान रखते थे । इसलिए धर्मनिष्ठ होकर भी राजा भी प्रजा का ख्याल करें कि जो राजा है वो भी धर्मनिष्ठ हो राजनीतिज्ञों में धर्म की भावना आये । यह तो ठीक है लेकिन धार्मिक जनों में गंदी कूटनीति जैसा आचार्य महोदय ने सुबह बता दिया था और वही सारा सार था राज की बात न रहे । राज कहां आता है । छिपाये जहाँ आता है, वही जो है कूट नीति शब्द उसके साथ नहीं रहता है ।

अगर कोई डिप्लोमैट दें तेरा काम नहीं होगा तो वह राजनीतिज्ञ नहीं है । तो सहज हो जायेगा और नहीं होगा तो और हो जायेगा तो इसका मतलब हो सकता है । ऐसी ऐसी झूठी भावनायें हमारे अन्दर भर गई हैं उसके कारण जो धर्म संस्थाएँ जो धर्मवतन थे । जहाँ सुख शान्ति की खोज में मानव जा करके बैठता था । प्रभु का ध्यान करता था । वो धर्म स्थल आज युद्ध स्थल बन गये हैं वहाँ अपराधी शरण लेते हैं । धर्म संस्थान राज्य संस्था में यही फर्क है कि युद्ध क्षेत्र में शत्रु को जीता जाता है व शत्रु को मारा जाता है और धर्म क्षेत्र में शत्रुता को मारा जाता है । शत्रु को मारा जायेगा तो उसके वारिस लोग या अन्य लोग बदला लेने के लिए खडे हो जायेंगे, लेकिन शत्रुता को ही खत्म कर दिया तो शत्रु फिर कोई होगा ही नहीं यही धर्म संस्था हमें सिखाती है । परमात्मा एक ऐसा मंत्र है कि अगर यह बिठा दिया जाय कहीं भी काम करो उसका फल मिलेगा आध्यात्मिक की खेती बडी विचित्र है । मैंने जयपुर में धान बोया तो मुझे जाने की जरूरत नहीं है । नहीं मुझे पता, छोड़ने की जरूरत फिर भी यह खेती मुझे ढूंढ लेगी कि यह मैं बोकर आया था । उसका फल तो ले लें अच्छा बोया है तो अच्छे का फल मिल जायेगा, बुरा बोया तो बुरा फल मिल जायेगा । यह स्थिति जब जन्मजात विषमता है तो यह बात हमें यह मानने को विवश करती है कि कोई पूछेगा जरूर कि जब हममें समान पुरुषार्थ इस जन्म में आकर के किया और उसके बावजूद भी है एक भाई बड़ा सम्पन्न हो जाता है एक बड़ा दरिद्र हो जाता है । इसका क्या कारण है । समान पुरुषार्थ करते हुए भी इसकी वजह एक अदृस्य शक्ति जरूर है और वो अदृश्य शक्ति है हमारा पिछला कर्म । ये हमारे दिल में बिठा दिया जायेगा तो वो कोई संस्था क्योंकि रोज जो ये विवाद उठते हैं उसका एक कारण यह भी है कि हर व्यक्ति अपनी बात कहना चाहता है दूसरों की सुनने की सहिष्णुता नहीं है । इसीलिए वक्ता भी ज्यादा टाइम ले जाता है । जबकि जैन धर्म परिभाषा ही इस प्रकार की दी है । जहाँ स्वादाद की प्रधानता का कोई स्थान नहीं है । अहिंसा की प्रधानता और ये जितने भी कानून हैं इसमें जैन दर्शन कूट कूट के भरा है । अगर आप बारीकी से देखें तो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 308 ए है और भारतीय दण्ड संहिता की धारा 337 है । उदाहरण के लिए मैं बता रहा हूँ । धारा 307 के अनुसार अगर कोई आपके फांसी का प्रहार करने के उद्देश्य से पकड़ा जाता है, मारने के उद्देश्य से उसने आपके ऊपर प्रहार किया है लेकिन वो सफल नहीं हो पाता । किसी के द्वारा रोक लिया जाता है तो भी यह प्रमाणित हो जाने पर उसे 7 वर्ष कारावास देने का प्रावधान है । धारा 304 ए में ड्राइवर की असावधानी के कारण यदि कोई मर जाता है तो भी अधिकतम दो वर्ष का कारावास ये क्या कारण है कि ट्रक ड्राइवर की उसमें दुश्मनी या कषाय नहीं है और जिसने प्रहार कर दिया चाहे असफल रहा हो उसके मन में गिल्टी इन्टेनशन जिसे कानूनी भाषा में मेनसीरिया कहते हैं पूरे भाव आ जाते हैं । इसलिए अधिक दण्ड

की व्यवस्था है । आज हमारे यहाँ जल ही जीवन है । एक एक बूंद कीमती है । बिजली बचाओ इस तरह के नारो के लिए विज्ञापन के लिए प्रशासन लाखों रुपये करोड़ों रुपये खर्च करता है । हमारे आचार्यों ने कह दिया । आज इधर कर् वंचन की समस्या है । चोरी की समस्या है । राज्य के कानून के विरुद्ध आचरण मत करो । जो जैन दर्शन को हृदयंगम कर लेगा अपने आचरण में अपने जीवन मे धारण कर लेगा तो किसी कानून की गिरफ्त में आ ही नहीं सकता । लेकिन विचारों का दुराग्रह और गुणों का संग्रह यही विग्रह का बीज है जो विग्रह का बीज है वो संसार का दुराग्रह है और गुण का संग्रह है तो त्यागव्रत सीखे । हम संतों के सीखे हालांकि लगता मुश्किल है । ऐसी सर्दी में नंगे रहना और एक समय भोजन के लिए निकलना रूठ के आ जाना जैसे किसी पर अहसान कर रहे हों इस तरह से आ जाना अन्न का हमेशा जीवन भर के लिए त्याग कर देना । ऐसी तपस्या जब हम देखते हैं तो लगता है कि हमारे ये वीतराग की चर्चा उनकी निंदा पाप का धंधा देखे तो सही यह जो चरित्रधारी है उसमें सारे गर्भित हैं जिसने चरित्र ऐसा धारण कर लिया उसको सम्यक दर्शन ज्ञान की उसका सम्यक है तभी उसकी तीसरी सीढ़ी चरित्र व ज्ञान की चढता है । हम जैसे लोग तो भाषण देकर के चले जाते हैं । ये धारण करने की आवश्यकता है जो दुर्व्यवहार आप अपने प्रति भी नहीं चाहते हैं वो दूसरों के प्रति भी न करें । ऐसे परम दिगम्बर गुरुओं, जिनका तो दर्शन ही पुण्य का कारण है । तीर्थ यात्रा करने का पुण्य भी प्राप्त होता है तो फिर ऐसे दिगम्बर साधुओ के दर्शन से तो तुरन्त पुण्य मिल जाता है । ऐसे साधु को भी हम विवाद का विषय बना ले तो और वो भी हमारे पूर्व वक्त बड़ी अच्छी द्वेषना दे रहे थे लेकिन हमको पूर्वाग्रह से मुक्त होकर के । अरे मैं अपने या मेरे पिताजी मुझे परिचय कराये । मेरे दादाजी प्राण तोड़ चुके हैं और वे कहे कि देख बेटे तेरे दादाजी का पोता ये हैं और मैं यह कहूँ कि मैंने तो देखा ही नहीं दादाजी को उसे कैसे दादाजी मान लूँ और मेरे लिए तो उनसे बड़ा और क्या हो सकता है । वो मेरे पिता के लिये पूज्य है अगर मैं पिता को पूज्य मानता हूँ तो वो तो मेरे लिये तो दोनो पूज्य हो गये । पूर्व मे हम कह रहे थे । ये तुम्हारे दादाजी है । ऐसे ही दिगम्बराचार्य को तो उनके तो शिष्य प्रशिष्य जो साधु समुदाय में आते हैं वो भी हमारे लिये पूज्य हैं फिर इनके शिष्या गुरु या दादा गुरु वो तो हमारे लिये और भी ज्यादा पूज्य हैं सीनियरटी और जूनियरटी की तो बात प्रमोशन मे तो आती है । प्रमोशन कोई कर रहा है तो मैं सीनियर था । मैं जूनियर था । अरे तपस्या के नाम में ऐसे तो कोई नाम ही नहीं होते हैं । पहले इस तरह के साधन नहीं होते थे । पहले फोटो नहीं खींची गई तो अपने पिताजी से कहूँ कि फोटो बताओ अपने दादाजी की मैं तो नहीं मानता । पहले न ऐसे खींचते थे न साधन होते थे और आज तू मुझसे प्रमाण पूछ रहा है तो इस तरह की बातें की तो मुझे डर लग रहा था । आचार्य महाराज श्री फरमाये या संकेत करे फिर कभी अवसर मिला तो हम जैसा आपने बताया कि अन्य सब हमारे सब ढाँचे मे एक है और अगर एक दो प्रतिशत हमारे भ्रमव्रत कोई हमारे विरोधाभास दिखे तो उसको मूल न बना ले । प्रसंग ऐसा है कि एक ट्रेन में सफर कर रहे थे हम तथाकथित धर्मात्मा लोग अहिंसक वृत्ति वाले जो अपने को अहिंसा धर्म का अनुयायी कहते थे । उनमे एक पेशगत चोर भी चढ़ा और वह अपने पेशे के अनुसार ट्रेन मे लगा दर्पण उतराने लगा । लेकिन हमें बोध हुआ कि यह राष्ट्रीय सम्पत्ति है । हमारे

होते हुए चोरी कैसे करने देंगे, हम तुरन्त उससे पूछ पड़े और उसको अधमरा करके नीचे उतार दिया । बड़े अपने आपको गौरवान्वित महसूस किया । थोड़ी देर बाद एक अन्य पेशेवर चोर जिसको हमारी परिस्थिति का भान नहीं था वो फिर चढ़ा और फिर उतारने लगा तो उसकी दुर्दशा भी हमने वही कर दी । लेकिन जब हमने अपने गंतव्य स्टेशन पर जब हम उतरने लगे तो हमें विचार आया । यह दर्पण तो यहाँ से कोई भी उतार कर ले जा सकता है । यहाँ सिर्फ इतना ही है हम उतार लाते उतार करके अपने ड्राइग रूम में सजाते और कहते है कि देख तुझे वहाँ से तो कोई चुरा सकता था, तुझे यहाँ से कोई नहीं चुरा सकता है । यही स्थिति हमारी है । हम अहिंसा आदि का उद्बोध करते हैं । लेकिन वो ही हिसक प्रवृत्ति हमारी कितनी है कि हम दूसरों को देखकर दुखी हो तो सकते हैं । सहानुभूति तो व्यक्त कर सकते हैं लेकिन दूसरों को सुख देखकर हम सुखी हो जाय यह मुश्किल है । वह भी हमारा ही भाई है । आज जैनी कितनी कम संख्या में हैं लेकिन अल्पसख्यक होते हुए भी उन्होंने अल्पसंख्यकों का कोई पूर्वाधिकार या विशेषाधिकार नहीं मांगा । यह राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़े रहे । ये राज्य के विकास से जुड़े रहे, इन्होंने राज्य की विभिन्न योजनाओं में भामाशाह बन करके दान दिया । इसी अपनी परम्परा को बनाये रखा । अभी आप बता रहे थे कि मेरा लड़का होटल में बैठा हो और शराब पी रहा हो और फिर किसी से कहे कि मेरे पिताजी तो बड़े धार्मिक हैं, शाकाहार का प्रचार करते फिरते हैं और उनके सम्पर्क में जो आ जाये, वो तो अधार्मिक हो ही नहीं सकता तो ये मेरा उपहास करने वाली बात है तो मन में हसोगे । अरे तू तो उनका ही लड़का है । तेरे से ज्यादा उनके सम्पर्क मे कौन हो सकता है और तेरी ही यह हालत है तो औरों पर क्या प्रभाव होगा । यही स्थिति हमारी है । हमारे आचरण से क्या हम महावीर को हमारे आचरण से हम अपने पूर्वजो को बदनाम नहीं करते हैं ? इसलिए ये जो धर्म की झूँठी प्रतिष्ठा है जिसके कारण हम अन्य चीजों को छोड़े, दामाद भी उनको चुनना चाहो जो एक इन्कम टैक्स ऑफिस में क्लर्क है और एक लेकचरार है, हम कहें हमें दस हजार रुपये की तनख्वाह मिलती है । बडी प्रतिष्ठित पोस्ट है तो कहेगे कि आपको तो सूखी तनख्वाह मिलती है यहाँ तो दो तीन हजार रुपये रोजाना आ जाते हैं । हम हमारे दामाद का चयन करने में इस तरह का दृष्टिकोण रखते हैं । ये जो है आर्थिक संसार है । जहाँ पिता का रिश्ता बदलता रहता है । पिता जो है वो एक होता है । लेकिन वो जवानी में कमाकर देता हुआ महाप्रयाण कर जाय तो हमें भी दारुण व्यथा होगी । पड़ौसी में संवेदना व्यक्त करेंगे कि ये जो हैं कमाकर खिलाने वाले ही मर गया और वो दो चार साल से नर्सिंग होम में हमारे पैसे खर्च कराकर प्रयाण कर जाये तो दुख तो दूर एक तरह से रिलीफ सी मिलती है कि सारे दिन उनकी सेवा करता था, धंधाबाड़ी को देख नहीं पाता था । ऐसे स्वार्थी संसार में अगर कोई उनको सुधार सकता है तो वह धर्म संस्था ही सुधार सकती है । उस धर्म संस्था में अगर कोई जान दे सकता है तो वह साधु संस्था ही दे सकती है । इसलिए साधु संस्था के प्रति पूर्ण समर्पित भाव से हम अपना सब कुछ करें और राजनीति भी धर्म से प्रेरित हो और जो धर्म गुरु के पद पर हैं वो राजनीतिक लोभ की आकांक्षा न रखे तो निश्चित ही ये भारत जो धर्म गुरु कहलाता था ये अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त कर सकता है ।

अहिंसा एवं शाकाहार

भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी कोल्हापुर

आज पाँच छ: दिन से यहाँ जो विद्वत्व सम्मेलन चल रहा है । उसके बारे में एक-एक विषय पर आप सब अच्छे प्रवचन कर्त्ताओं से आचार्य महाराज से आर्यिकाओं से मुनियों से प्रवचन हम सुन रहे हैं । यह सब देन आचार्य सुधर्म सागर महाराज जी का है । हम जब दीक्षित हुये । कोल्हापुर में ही चातुर्मास किया था । वहाँ से महाराज जी उसके बाद जयपुर बाम्बे जहाँ जहाँ उनका विशेष कार्यक्रम होता है और उनका जो कार्य होता है वह विशेष रूप से ही होता है । जहाँ मानव कल्याण हो शाकाहार अहिंसा सम्मेलन विद्वत्त सम्मेलन ऐसे बड़े-बड़े कार्यक्रम रखकर उनको ज्ञान देने का बडा कार्य करते रहते हैं । हमेशा महाराज जी के आशीर्वाद से होता रहता है । इसलिए आते रहते हैं जब जब समय मिलता है आते रहते है हमारे महाराष्ट्र कर्नाटक में विशेषत: और भारत में भी विदेशो में भी सत्संग होता रहता है । अनेक कार्य होते रहते हैं । जिससे वो धर्म प्रचार महाराज जी के आशीर्वाद से आचार्य श्री के आशीर्वाद से होता रहता है । आपके सबके सहयोग से अच्छा कार्य होता रहता है । इसमे अहिंसा एवं शाकाहार का विशेष रूप से और उनके व्यसन से मुक्त होना निर्वसन रहने के लिए उनको प्रेरणा देना इस प्रकार देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धा रखने के लिए लोगों को उपदेश सुनाना महाराज ने सवेरे बताया कि जो दक्षिण भारत में भट्टारक परम्परा है वहाँ उत्तर भारत में भी पहले थी । अब नहीं है मुगल काल में यहाँ पर भट्टारक नहीं थे । इसलिए कोल्हापुर आकर वहाँ से महाराज को बुलाकर दिल्ली में प्रभावना की तब आये थे । विद्यासागर जी महाराज शिष्य थे । उनसे तब कुछ लोग जैन लोग बचे वो आप लोग हैं और कोल्हापुर से महाराज नहीं आते थे । हमें खबर नहीं होती थी आप हमें कदाचित् असुविधा महसूस करते थे । ऐसी स्थित है महाराज जी के आशीर्वाद से अभी तक धर्म का उपदेश प्रवचन सार संदेश सब होता आ रहा है । उसी के फलस्वरूप जगतगुरु इस मठ के इस पद से अलकृत कर रहे हैं । सिर्फ हमारा ही काम नहीं है । इस मठ की गद्दी पर जो जो पूर्व में हुए हैं । उन्होंने स्थापना की है । अभी तक इस पर कार्य किये हैं । उन सब के लिए हम इस प्रकार से हृदय से हम ग्रहण करते हैं । ये तो बहुत बड़ा कार्य है लेकिन महाराज का आशीर्वाद है । आप सबका सानिध्य रहे आप के बीच मे पहली बार आया हूँ अजमेर । बहुत लोगों ने यहाँ आने के लिए आमंत्रित किया । लेकिन कार्यवश नहीं आ सके फिर भी महाराज का आदेश यहाँ खींचकर लाया महाराज ने दवाब दिया आना ही चाहिए । नासिक में प्रोग्राम, पूना में प्रोग्राम, बम्बई में प्रोग्राम इतना होकर के भी किसी भी परिस्थिति में हमें आना चाहिए । ऐसी परिस्थिति में हम आ गये । ये सब महाराज के आशीर्वाद से हुआ है । उनकी जो विशाल दृष्टि है और आपकी भी जो भक्ति है उससे हम प्रभावित हुए हैं । आपने ये जो अभी जगत गुरु की पदवी दी है । ये पूर्व गुरु की दृष्टि देकर को देखकर और परमगुरु को देखकर आपको दिया है । यह सम्भवत: स्वीकार करते हैं और इसी प्रकार ज्यादा से ज्यादा कार्य करने के लिए धर्म प्रचार करने के लिए प्रसार करने के लिए आचार्य महाराज से आशीर्वाद मांगते हैं और आपसे भी सद्भावना रखते हैं ।

धर्म और राजनीति

पंडित गोकुलप्रसादजी

एक बार कक्षा में विद्यार्थियो में वाद विवाद प्रतियोगिता चल रही थी । विषय था धर्म बड़ा है । विज्ञान से । तो एक बच्चा विज्ञान के पक्ष में अकेला धर्म को नम्बर दो पर रखता हुआ जो तर्क दिया वो तर्क आप सुन लीजिए और फिर उत्तर खोजते रहिये । शायद उत्तर जिन्दगी भर खोजते रहें उसने कहा धर्म से विज्ञान बहुत बहुत बहुत बड़ा है बोला वैज्ञानिकों को लडते हुए आज तक किसी ने नहीं देखा होगा और देव परमात्माओं को लड़ते आज गली गली में देख लो और एक दूसरा सवाल आपको खोजना है और खोजते ही रहिये । केवल सुन लीजिए बुंदेल खण्डी है इसकी भाषा मे, लेकिन आसान है । एक ग्वाला था तो वो एक बहुत अजीब काम किया करता था भैंस की आरती किया करता था । सुबह शाम भैंस की आरती करता था तो मेरे पिताजी ने पूछा कि तुम रामजी की आरती करते तो और बात थी तुम भैंस की आरती क्यों करते हो । उसने जो जवाब दिया । वो जवाब था लाजवाब उस जवाब का जवाब आपको ढूढना है । उसने क्या जवाब दिया । सुनिये महाराज साहब बोला भैंस जी की आरती में भागनो जमागनो रामजी की आरती में आगनो जमागनो, भैंसजी की आरती में मुरकी पहने साठ की, राम जी की आरती में माला पहने काठ की । चतुर्विध संघ है यहाँ ये चार मिलकर जैन समाज बनता है । हम उसको दो वर्गों में बाँटते हैं । आर्यिका एक वर्ग एवं श्रावक श्राविका दूसरा वर्ग एक वर्ग और मानते हैं राजवर्ग क्योंकि यह वर्ग की राजनीति है ना इसलिए यानी साधु की पहचान क्या है और साधु और गृहस्थ की पहचान क्या है और राजा की पहचान क्या है । ये शास्त्रों में लिखी है । ये लिखी है या नहीं लिखी है इसे भूल जाइये । यह नहीं मैं कह रहा हूँ और यह व्यर्थ है ये भी मैं नहीं कह रहा ये मैं सबको सीधी पकड़ में आने वाली बात कहने के लिए ऐसा कह रहा हूँ । साधु वो है जब आप सब तरह की चिन्ताओं में घुले हों परेशान हो और किसी साधु के सामने जाकर के बैठ जायें मगर न साधु बोले और न आप बोले कोई नहीं सिर्फ आप उसके सामने जाकर के बैठे हैं और आपको अपनी चिन्ताओं से मुक्ति मिल गई अगर ऐसा हुआ है तो वह साधु है अन्यथा वह साधु नहीं है । आप वृक्ष के नीचे बैठो और छाया न मिले ऐसा हो सकता है कदापि नहीं हो सकता है । मिलेगी छाया यदि वृक्ष है । गृहस्थ यदि सच्चा है तो णमोकार मंत्र पर उसकी आस्था अडिग होगी ।

गुरु निन्दा

पण्डित टीकमचन्दजी

जिन्होंने गुरु निन्दा के वचनों से भरा पम्पलेट निकाला है । अति घिनौना कार्य किया है । हम सब एकमत से उसकी भर्त्सना निन्दा करते हैं । आचार्य श्री ने धन सत्ता राज सत्ता सब ठुकरा दिया, रत्नत्रय से शोभित आपके चरणों में चक्रवर्ती की सम्पदा भी लोटती है आप दूरदर्शी हैं, ज्ञानी हैं, आप उनको पहचानते हैं, दुष्कर्म करते हैं वे और सुनना पड़ता है इस धर्मपरायण जनता को । उपस्थित सभा के सदस्यों से मेरा यह अनुरोध है कि वे सब हाथ ऊँचा करें और कहें कि हमारी तो सच्चे देव शास्त्र गुरु पर पूर्ण श्रद्धा है । जिन मुद्रा धारक के प्रति जिसने कोई विवाद छद्मनाम से, छद्मवेश से किया है उसे हम घृणा की दृष्टि से देखते हैं । सम्यग्दृष्टिये गुरोः वचनं प्रमाणम् ।। जब हमारे सामने विराजमान तपस्वी रत्न आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज कह रहे हैं कि हमारे शिक्षा गुरु आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के दीक्षा गुरु आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) थे तो वह वचन ही हमारे लिये प्रमाणभूत है । इससे बड़ा प्रमाण संसार में हो नहीं सकता । ऐसे महाव्रती संत तो हमें आदेश दें, आपने जिसको कहा कि यह हमारा शिष्य है वह भी जब हमारे लिये पूज्य है तो जिसको आपने अपना गुरु बताया । वह पूज्य क्यों न होगा ? सर्व प्रकार पूज्य उन गुरुओं की भक्ति में लगना ही बुद्धिमता है । समस्त जैन समाज ही नहीं प्राणीमात्र के द्वारा आप पूज्य हो । इसलिए अगर शक्ति दिखानी हो तो उन चन्द लोगों को ही दिखाओ, समाज को नहीं । पर मैं जानता हूँ वे लोग भी यदि आपके पास पहुँच गये तो आप उन्हें बिठा लोगे, गले लगा लोगे । मैं यह कटु शब्द कह रहा हूँ कि आप भी उनको महिमा मण्डित करते हो । यह जानते हुए भी कि इन्होंने मुनि मुद्रा पर कुठाराघात किया है । अभी वे यहाँ उपस्थित नहीं है, गुनाह उनने किया पर संबोधन हमें सुनना पड़ता है । अगर आपमें ताकत है तो इन वचनों को उन्हें ही सुनावें । हमारी तो ताकत है कि मुनि निन्दकवर्ग को हम बिना राजसत्ता धनसत्ता का सहारा लिये उन्हें दण्डित कर सकता हूँ, बहिष्कृत कर सकता हूँ । हमारी देव शास्त्र गुरु की भक्ति में इतनीं ताकत है कि हम उन्हें अलग कर देंगे । यहाँ तो वे बहिष्कृत हैं ही आगे भी समाज उनको स्वीकार नहीं करेगी ।

गुरु निन्दा दुःख का कारण

आचार्य श्री १०८ सन्मतिसागरजी महाराज

धर्म में विवाद नहीं होता है तो धर्मात्माओं में भी विवाद नहीं होता है । जहाँ विवाद खड़ा हुआ है वहाँ धर्म नहीं है जिसमें विवाद हुआ है वह धर्मात्मा भी नहीं है । हम छोटी-छोटी बातों को लेकर कितना गदा वातावरण फैला चुके हैं । यह आपको पूर्व वक्ताओं से ज्ञात हो गया । इनसे यदि आप छूटना चाहते हैं तो निर्ग्रन्थ मुद्रा को पूज्य माने, उनके प्रति अनास्था ही दुःख अशान्ति का मूल है । गुरु निन्दा से पाप बन्ध होता है और दुःखों की वृद्धि होती है ।

जिनमुद्रा जिसकी भी है आप उसकी भक्ति करें, किसी प्रकार से अवहेलना न करें । भव्य जीवों । वस्तुतः जैन सिद्धान्त श्रद्धा को बहुत महत्त्व देता है । जिन जीवों ने जिन मुद्रा को सम्मान दिया है वे जीव पार हुए हैं । आपको ज्ञात होगा द्वारिका में जब आग लगी तब श्रीकृष्ण और बलदेव दो ही सुरक्षित रहे, उन्होंने जिन भक्ति की थी उस भक्ति का यह परिणाम निकला । द्विपायन ने दो अंगुली उठा दी कि ये दो ही बचेंगे । साधु समाज के माध्यम से गृहस्थ धर्म सक्रिय होता है, फलित होता है । गृहस्थ धर्म आधारित है साधु समाज पर । इसलिए साधु समाज की साधना में आप सहयोगी बने । आप साधुओं के प्रति कटु वचनों का प्रयोग कर गलत व्यवहार कर उनको पीड़ित न करें उनकी आत्मा को ठेस न पहुँचायें अर्थात विवाद में न पड़कर अपनी भक्ति निर्ग्रन्थ मुद्रा के प्रति बनाये रखे यही सर्वोपरि बात है ।

उद्बोधन

पण्डितशीतलचन्दजी

इस अखिल भारतीय विद्वत् सम्मेलन में मैं २ ता को आया था और कुन्दकुन्द की देन के विषय में अपने विचार व्यक्त किये थे आज प्रातःकालीन सत्र में आचार्य परम्परा की चर्चा हुई । कुछ परेशानियों के कारण मैं इस चर्चा में सम्मिलित नहीं हो सका । परन्तु जो भी चर्चा हुई, समाज की प्रतिक्रिया मैंने सुनी, वह अच्छी रही और समाज के उज्जवल भविष्य के लिए प्रातःकालीन चर्चा बहुत अच्छी रही । इस सम्मेलन की सफल उपलब्धि इस अन्तिम सत्र से प्राप्त हुई । आचार्य परम्परा के ऊपर विविध विचारों को जानने का अवसर प्राप्त हुआ, जो विचार सामने आये उनसे हम सभी लाभान्वित होंगे, हम समाज के वातावरण को उसके आधार से पवित्र बना सकेंगे । सामाजिक स्थितियों को लक्ष्य कर मैं कुछ अन्य आवश्यक बातें भी कहना चाहता हूँ । आज साधु व जैन समाज को सुशिक्षित करने के लिए धार्मिक शिक्षण के लिए विद्वानों की बहुत आवश्यकता

है । समाज को यह महसूस करना चाहिए कि हम विद्वानों को किस प्रकार तैयार करें । आचार्य श्री से भी हमने चर्चा की थी कि अच्छे-अच्छे विद्वान् उत्तरोत्तर कम होते जा रहे हैं । जो तात्कालिक, सैद्धान्तिक व सारी परिस्थितियो का जानकार हो ऐसे विद्वान नहीं मिल पाते हैं । समाज की यह हालत है कि पंडित की व्यवस्था हो जाने पर भी वे अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षण प्राप्त करने को भेजते नहीं है । विद्वान् समाज में तैयार किये जाते है जब आप उन्हें पढ़ने को नहीं भेजेंगे तो पण्डितों का निर्माण भी कैसे हो सकेगा ? नही हो सकता ? आज करणानुयोग की चर्चा प्राय· समाप्त सी हो गई है क्योकि वैसे विद्वान् समाज मे नहीं रहे । आज अर्थशास्त्र को पढ़ाने वाले विद्वान् भी नही मिल पाते । मुझे बडी प्रसन्नता है कि हमारी माताएँ इस क्षेत्र में द्रुतगति से आगे बढ़ रही हैं । माताओ ने अष्टसहस्री, तत्त्वार्थ राज वार्तिक, क्षपणासार, लब्धिसार आदि की टीकायें लिखकर अतुल पुरुषार्थ का परिचय दिया है । आज भी जिनका विमोचन होने जा रहा है । उसकी रचना माताओ ने की है । पर समाज में भी ज्ञानार्जन की व्यवस्था रहनी चाहिए । संस्कृत के विद्वान् तैयार करने के लिए एक मात्र सस्था रह गई है-दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज, जहाँ मैं प्राचार्य हूँ । मैं ढूंढता हूँ कि जैन बालक हमें मिले, पर कोई भी अपने बालक को देने को तैयार नहीं । सब पब्लिक स्कूलो मे जा रहे हैं उसका एक मात्र कारण है भौतिक सम्पत्ति में रुचि । उन स्कूलों में बच्चे पढ़कर संस्कार विहीन हो रहे हैं-जैन समाज के बच्चे इतर समाज में जाने लगे हैं । आज महाराज कह रहे थे कि वर्तमान में पिण्ड शुद्धि नष्ट प्राय· होती जा रही है । उसका कारण है धार्मिक सस्कार का अभाव । यहाँ उपस्थित लोगों से मैं यही कहूँगा कि वे देहातों में, गाँवों में, शहरों में बालकों को विद्वान् बनाना चाहते हैं तो विद्यालय के चुनाव में सावधानी रखें । हर शहर में ऐसे विद्वानो की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे समाज को सही मार्ग दर्शन मिल सके । आचार्य परमेष्ठी व साधु गण अपनी ज्ञानाराधना तपादि में लीन रहते हैं, वे समाज को उतना अधिक समय तो दे नहीं सकते जितना कि विद्वान दे सकते हैं । इसलिए इस विद्वत् सम्मेलन के माध्यम से मैं आप सभी का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं । यहाँ अपने दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय में सारी व्यवस्थायें हैं, बच्चो के पढने के लिए सभी सुविधायें उन्हें दी गई हैं, पुस्तकालय भी है, अच्छे शिक्षको की भी व्यवस्था है । राजस्थान विश्वविद्यालय से इसे मान्यता प्राप्त है । माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से भी मान्यता प्राप्त है । यदि आप चाहे तो उसमें अपने बच्चों को भेज सकते हैं । पूज्य गणेश प्रसादजी ने लगभग 70 विद्यालय स्थापित किये । एक समय वह था कि गणेश प्रसादजी को पढ़ाने वाला कोई नहीं था । जब बनारस में पढ़ने गये और न्यायदीपिका पढ़ाने को कहा तो जीवनाथ मिस्र ने कह दिया कि न्यायदीपिका नहीं पढ़ाऊँगा । यहाँ तक कि मुख से अरहंत पद सुनकर कमरे से बाहर निकाल दिया । वर्णीजी को बहुत कष्ट हुआ, जिसके फलस्वरूप वहाँ महाविद्यालय की स्थापना हुई । अभिप्राय यह है कि दृढ़ संसल्प से दु:साध्य कार्य भी सम्पन्न हो जाता है ।

उद्‌बोधन

प्र. ग. आ. १०५ विजयमती माताजी

हमारे परम्पराचार्य प पू. चारित्र चक्रवर्ती श्री आ. आदिसागरजी (अंकलीकर) के पीठाधीश समाधि सम्राट् श्री १०८ प पू आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज की २०वीं पुण्यतिथि के उपलक्ष में मनाया जा रहा है । साधक का जीवन साधनामय होता है । हर संसारी जीव सतत् वासना और भोगों के बन्धन में डूबे हुए तन की भूख मिटाने की चिन्ता में लगे रहते हैं परन्तु मन की भूख बढ़ती जा रही है । मन की भूख तभी मिट सकती है जब हम गुरुजनों के सानिध्य में आयेगे । उस भूख को मिटाने का श्रेय यदि किसी को है तो वह दिगम्बर साधुओं को है, दिगम्बर आचार्यों को है, उपाध्याय परमेष्टी को है । उनमें वह अनुपम क्षमता है जो पवित्र संस्कारों से हृदय में वैराग्य भावना उत्पन्न कर मन की भूख को मिटा सकते हैं, हमारी तृष्णाओं की छोर हमारे सामने लाकर रख सकते हैं । हमारे नैतिक आध्यात्मिक स्तर को ये ऊँचा उठाते हैं । वास्तव में ये हमे देवत्व प्रदान करने वाले हैं । ये आत्मा को परमात्मा बनाने का मार्ग बताते हैं । ऐसे महान सन्तों को विषय में यदि हम कोई ऊहापोह करते हैं, तर्क वितर्क कुतर्क पैदा करते हैं और समाज में किसी प्रकार का विषाक्त वातावरण करते हैं तो मैं समझती हूँ कि हमारे लिए इससे अधिक कोई दु ख और सन्ताप का कारण न होगा । आज समाज में, सारे विश्व में एक लहर दौड़ रही है आचार्य परम्परा को लेकर, इस विषय में प्रात: काल बहुत चर्चा हो चुकी है और आपको विदित है कि यह परम्परा कोई नई नहीं है । पहले भारतीय दिगम्बर साधुओं का एक युग प्रतिक्रमण होता था, १२ वर्षों में एक बार होने वाले इस महा प्रतिक्रमण में सारे विश्व के सभी दिगम्बर साधु एक स्थान पर एकत्रित होते थे और १२ वर्ष का प्रायश्चित लेते थे, १२ वर्ष का लेखा जोखा गुरु के सामने प्रस्तुत करते थे । इस अवसर पर आचार्य श्री ने एक बार उपस्थित साधु वर्ग से पूछा कि क्या सभी लोग आ गये ? तब साधु वर्ग ने उत्तर दिया कि हम अपने-अपने संघ के साथ आ गये । उत्तर सुनकर आचार्य श्री ने जान लिया कि यह कलियुग है, अब एकीकरण इनमें अशक्य है, इनमें संघ व्यामोह पनपेगा अत: संघों का निर्माण कर दिया । नन्दी संघ, सेन संघ इस प्रकार विविध संघों की स्थापना आचार्य श्री ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को ध्यान में रखकर किया । इस प्रकार संघ और परम्परायें बनीं, यह कोई नवीन बात नहीं है । प्राचीन चीज है । हम परम्पराओं का नाम सुनते ही विकल हो जाते हैं, हमारे देश में आचार्य आदिसागरजी (अंकलीकर) की परम्परा कहाँ से आकर टूट पड़ी, आचार्य शान्तिसागरजी महाराज छाणी वाले कहाँ से आ गये ? आचार्य शान्तिसागरजी दक्षिण कहाँ से आ गये इत्यादि । ये आचार्य महावीर कीर्तिजी ही हैं, या नहीं हैं इत्यादि । अश्रद्धा को जन्म देने वाली भ्रान्तियाँ हमें भ्रमित कर रही हैं । यह सब हमारे लिये कलंक स्वरूप होगा यदि इससे हमारी दिगम्बर मुद्रा के प्रति आस्था बिगड़ती है । हम मनुष्य हैं, बुद्धिजीवी विवेकशील हैं । हमें अपनी बुद्धि का सदुपयोग करना चाहिए । हम मानवता को धूमिल कलंकित न करें । मानवीय गुणों की सुरक्षा करें । हमें यदि परमात्मा बनना है तो श्रद्धा और भक्तिपूर्वक निर्विघ्न निर्विकल्प होकर दिगम्बर वीतराग साधुओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भेदभाव न कर

सही रूप में सबकी भक्ति करें। जब हम दिगम्बरत्व के प्रति नत मस्तक होंगे, गुरुजनों पर पवित्र श्रद्धा, पूजा का भाव रखेंगे तभी हमारे जीवन में सुख और शान्ति आ सकेगी। अन्यथा आस्थाओं का पिण्ड उत्तरोत्तर गिरता जायेगा। अनास्था का भाव बढ़ता जायेगा और इतना बढ़ेगा कि वह आपके ऊपर सिंह बनकर सवार हो जायेगा। आशायें तो कभी पूरी होती नहीं। प्रत्येक व्यक्ति का आशा रूपी गड्ढा इतना विशाल है कि यदि उसमें तीनों लोक की विभूतियाँ डाल दी जायें तो उसका एक अणु मात्र प्रदेश भी नहीं भरेगा। फिर आप विचार करें, प्रत्येक जीव को कितना प्राप्त हो सकता है ? गुरुजनो ने कहा है कि जिसने आशाओं को जीता है उसने सारे संसार पर विजय किया है।

आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने कुरलकाव्य में लिखा है कि यदि तुम हित चाहते हो तो इस नीति को धारण करो-"वेण्डुम वेण्डाम" छोटा सा वाक्य है पर अर्थ गम्भीर है। वेण्डुम का अर्थ है-"चाहिए ऐसा शब्द" वेण्डाम का अर्थ है नहीं। चाहिए यह पद ही जीवन के पहलुओं से निकाल दो। पर पदार्थ के प्रति आकांक्षा छोड़ दो। चाहिए शब्द का ही जब त्याग हो जायेगा तो तपस्त्याग की भावना जीव मे स्वत. स्थिर हो जायेगी। यह अलग बात है कि आपकी भक्ति शान्तिनाथ के प्रति विशेष है अत: आप शान्तिनाथ भगवान् की पूजा करते हैं। आपकी यदि महावीर भगवान् में विशेष भक्ति है तो आप भगवान् महावीर की पूजा करते हैं। इससे हमारे सम्यक्त्व में कोइ दोष नहीं आता है क्योंकि बाकी तीर्थंकरों के प्रति भी श्रद्धा का अभाव नहीं है। हमारी भावनाओं में कोई गन्दगी नहीं है। यदि हम यह हठाग्रह करें कि शान्तिनाथ ही तीर्थंकर है अन्य कोई तीर्थंकर है ही नहीं तो यह हठग्राहिता होगी, मिथ्यात्व होगा। मिथ्यात्व अंधकार है ऐसा अंधकार जो हमको नरकादि के गहरे गर्त में पटक देगा। इसी प्रकार साधुओं के विषय में यदि हम यह मानते हैं कि यही एक साधु है दूसरा साधु नहीं तो यह हठग्राहिता होगी। मैं मात्र इसी आचार्य को मानता हूँ अन्य को नहीं, यही एक परम्परा सही है, दूसरी नहीं। ऐसी मान्यतायें अज्ञान और मिथ्यात्व रूप हैं, सम्यग्दर्शन गुण की घातक हैं और सम्यक्त्व गया तो सब कुछ गया। जो सम्यक् दृष्टि है उसके मन में इस प्रकार तेरे मेरे की भावना हो ही नहीं सकती और इस प्रकार के भाव यदि बन रहे हैं तो स्पष्ट है कि हम सिद्धान्त के अर्थ को नहीं समझते हैं। हम सम्यग्ज्ञानी नहीं हैं, हमने आगम का अध्ययन नहीं किया। केवल भौतिक तृष्णाओं की पूर्ति के लिए हम इस प्रकार के लाछन साधु वर्ग पर लगाते हैं और इस प्रकार का वातावरण समाज में पैदा कर देते हैं कि दूसरो की श्रद्धा भक्ति भी दिगम्बर मुद्रा के प्रति नष्ट हो जाय पर यह दुर्भावना दुष्कर्म अत्यन्त घातक है, निन्द्य है, इसे छोड़ें। समय हो चुका है मैं आप सबसे मात्र इतना ही कहूँगी कि आप सच्ची श्रद्धा और भक्ति लेकर देव शास्त्र गुरु के प्रति समर्पित हों, भेदभाव छोड़ दें। भक्ति नहीं कर सकते तो निन्दा भी मत करें। नियम करें कि हम किसी भी साधु व आचार्य की निन्दा नहीं करेंगे, अपमान नहीं करेंगे। श्री उमास्वामी आचार्य ने मोक्षशास्त्र में लिखा है कि सच्चे देवशास्त्र गुरु का अवर्णवाद करने से मिथ्यात्व का आस्रव होता है। आप ज्ञानी हैं, अपनी आत्मा को दुर्भावनाओं से मुक्त करें, सच्चे श्रद्धालु बनकर जिन धर्म का प्रकाशन करें। प्रत्येक जीव आत्मा का हित करने में लगें, आत्मिक गुणों की रक्षा ही अहिंसा है। आचार्य आदिसागरजी हों या आ. शान्तिसागरजी

सबकी भक्ति करें । आज आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर के विषय में जो एक विषाक्त वातावरण पैदा किया गया है उसका गुरुजनों के पास बैठकर निराकरण करें । उनकी जन्मभूमि, तपोभूमि में पहुँचे, सत्यता की जानकारी हो जायेगी । व्यर्थ में अवर्णवाद से पाप बन्ध न करें । आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज उनके बारे में कहा करते थे कि वे महान् तपस्वी थे मेरे पास अपने गुरु के द्वारा प्रदत्त आचार्य पद है । लिखित कागज भी मौजूद है जिससे स्पष्ट होता है कि श्री आदिसागरजी अंकलीकर आचार्य थे । मैंने मेरे बाबा आचार्य आदिसागरजी महाराज को नहीं देखा पर गुरु वचन प्रमाणभूत है । परमवीतरागी, ध्यानी, मौनी, निस्पृही, महान् तपस्वी गुरु वचनों पर हम सबको प्रगाढ़ आस्था है । यह हमारा महासौभाग्य है जो सर्वप्रथम दिगम्बर मुद्रा धारण करने वाले उग्र तपस्वी आचार्य आदिसागरजी की परम्परा में मुझे आर्यिका बनने का अवसर प्राप्त हुआ । उनने निर्दोष मुनि मार्ग दिखाया । उसका अनुकरण करते हुए अनेक साधु सन्त हुए और जिस मुद्रा का दर्शन दुर्लभ था वह आज हमारे लिये सुलभ हो गया । परम पूज्य आचार्य आदिसागरजी महाराज, आचार्य शान्तिसागरजी महाराज दक्षिण, आ शान्तिसागरजी महाराज छाणी और उनकी परम्परा में आने वाले आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज, आ देशभूषणजी महाराज की यह देन है जो नगर २ में, गाँव 2 में कदम कदम पर इन वीतरागी निर्ग्रन्थ साधुओं के दर्शन हो रहे हैं । इस महोत्सव में उपस्थित लोगों के उत्साह को देखकर ऐसा लगता है कि वे भी दिगम्बरमुद्रा धारण करने के प्रति उत्सुक हैं । दहेज की कुप्रथा से दु:खित बहनों को तो आत्मबल अवश्य बढ़ाना चाहिए, आर्यिका बन कर अपनी वीरता का परिचय देना चाहिए, आत्महित में लगकर मनुष्य भव को सार्थक करना चाहिये ।

हमारा जीवन ऐसा आदर्शमय होना चाहिए जिसका अवलोकन कर दूसरे भी सुखी हों । सरोवर में कमल खिलता है, उद्यान में पुष्प खिलते हैं क्या वे कहते हैं कि आप हँसे ? नहीं, उनको देखकर स्वयमेव ही प्रसन्नता जागृत होती है । वे एकेन्द्रिय होकर इतनी प्रसन्नता प्रदान करते हैं और हम पञ्चेन्द्रिय होकर यदि ऐसा जीवन जीते हैं जो उसको देखकर दूसरे भी रो पड़ें तो यह अति लज्जा का विषय है । ज्ञान शक्ति का सदुपयोग कर हम अपने जीवन को सुखी बनायें तभी मनुष्य पर्याय की सार्थकता है ।

हमारे अन्तरङ्ग की भावनाओं का दूसरे पर भी प्रभाव पड़ता है । चेहरे के ऊपर हमारा हृदय छन-छन कर निकलता है अत: समाज देश के हित के लिए भी भावनाओं को पवित्र रखना होगा । हम सच्चे साधक बने, सच्चे मानव बने, मानवता हमारे अन्दर जागृत होनी चाहिए । दानवीय प्रवृत्तियों को छोड़ें । हम सच्चे गुरुभक्त बनकर अपने सम्यग्दर्शनादि गुणों की रक्षा करें, उनका विकास करें, हम भारतीय संस्कृति को कलंकित न करते हुए उसको अपने सत्कृत्यों से उज्ज्वल करें । हम पाश्चात्य संस्कृति की ओर दौड़ रहे हैं अत: दु:खी हैं । अपनी चीज को सम्हालें, उसकी कीमत समझें और जीवन को तदनुकूल ढालने की चेष्टा करें । जो जीवन की साधक सामग्रियाँ हैं उन्हें भारतीय संस्कृति के अनुसार अपनाना होगा । सच्चा देव शास्त्र गुरु का भक्त बनकर हम अपने जीवन का कल्याण करें, यही सम्पूर्ण वक्तव्य का सार है ।

ग्रन्थ विमोचन

प. पू. प्र. गणिनी आर्यिका श्री विजयमती माताजी

राजस्थान के राज्यपाल जी के द्वारा प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य परमेष्ठी श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) एवं प पू समाधि सम्राट् श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज के चित्रपट का अनावरण कर माल्यार्पण किया गया और जय ध्वनि के साथ दीपोद्योतन हुआ। पुनः बड़ी श्रद्धा के साथ श्री राज्यपाल जी ने पुस्तकों का विमोचन किया। जिसमें प्रथम पुस्तक है "अन्तिम दिव्य देशना" यह दिव्य देशना किसकी है ? यदि मैं साहित्य और धर्म की सनातनता की ओर दृष्टि डालती हूँ तो यह भगवान् महावीर की दिव्य देशना है और यदि आचार्य परम्परा की ओर दृष्टि डालती हूँ तो यह हमारे प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री आदिसागरजी (अकलीकर) की प्रथम दिव्य देशना है। इसी परम्परा के तृतीय पट्टाधीश सिद्धान्त चक्रवर्ती तपस्वी सम्राट् आचार्य प्रवर श्री सन्मतिसागरजी महाराज आपके सामने उपस्थित हैं उनके आशीर्वाद और प्रेरणा से इसकी व्याख्या व टीका करने का मुझे सौभाग्य व पुण्य प्राप्त हुआ। कहा भी है-"गुरु स्नेहो हि कामसू" गुरु प्रसाद शिष्यो को अभीष्ट की सिद्धि में सर्वाधिक सहायक होता है। गुरुओं की देशना, गुरुओं की वाणी, गुरुओ की शरण पाना संसार मे सबसे ज्यादा दुर्लभ है, मैं तो कहूँगी कि भगवान से भी बढ़कर उपकारी गुरु होते हैं। यदि गुरु न होते तो हमें भगवान् का स्वरूप कौन बताता, मोक्ष मार्ग कौन दिखाता ? गुरु की छत्रछाया सुख शान्ति की प्राप्ति का मूल है। मोक्ष प्राप्ति पर्यन्त हम उनके उपकार से उऋण नहीं हो सकते हैं।

दूसरी पुस्तक है "तीर्थंकर बनने का मंत्र" जिसकी लेखिका हमारे ही संघ में रहने वाली गुरु प्रसाद से कार्य में सफलता पाने वाली आर्यिका श्री विमल प्रभाजी हैं। तीसरी पुस्तक है "दर्शन ज्ञान चारित्र" जिसके संपादक श्री विजयकुमार जी छावड़ा है, वर्तमान के नवयुवक पीढ़ी में नवीन जागृति पैदा करने वाली यह पत्रिका भी उपयोगी है। मेरा उनके लिए यही आदेश व आशीर्वाद है कि उन्होने इस पत्रिका का यहाँ विमोचन कराया है तो इसकी गरिमा को न खोवें। पैसों के प्रलोभन मे आकर आर्ष परम्परा को छोड़कर अन्य किसी प्रकार का ऐसा प्रचार न करें जो जिनधर्म विरुद्ध, समाज विरुद्ध, परम्परा विरुद्ध हो। जिससे धर्म और समाज कलंकित हो ऐसी किसी भी बात को छापने की चेष्टा न करें। अपनी पत्रिका को उज्ज्वल बनाये रखें। अपनी पत्रिका के द्वारा वे बच्चो के अन्दर ऐसी भावना जागृत करें कि वे त्यागी बनें, तपस्वी बनें, सदाचारी शिष्टाचारी बनें और अपने जीवन उत्थान करने में समर्थ हो सकें। इन्हीं शब्दों के साथ मैं आज का वक्तव्य समाप्त करती हूँ और गुरु चरणों में शत् शत् नमोस्तु करती हूँ कि वे मुझे इसी प्रकार की प्रेरणा, शक्ति व आशीर्वाद प्रदान करते रहें कि मैं कुछ अपने जीवन में जिनवाणी की सेवा कर सकूँ, जिनागम की तह में प्रवेश कर सकूँ और अपने जीवन का कल्याण कर सकूँ और ऐसा आत्म बल आप मुझे प्रदान करें कि मैं स्त्री पर्याय को छोडकर शीघ्र मुक्ति प्राप्त के योग्य पुरुष पर्याय प्राप्त कर सकूँ।

मुझे, हमारे गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त होता रहे। इस आशय के साथ मैं उन्हें शत्-शत् नमोस्तु करती हूँ।

श्री आदिसागराचार्यय नम श्रीमहावीरकीर्त्याचार्यय नम· श्री सन्मतिचार्यय नम

(चारित्रचक्रवर्ती आदिसागर महाराज की 50वी पुण्य तिथि)

स्वर्ण जयन्ती मनायें

(2 मार्च 91 सोमवार)

धर्मानुरागी महानुभाव

ससार में भारतवर्ष सदा से धर्म प्रधान देश रहा है । जिसमे भगवान ऋषभदेव से महावीर स्वामी पर्यन्त तीर्थंकर हुए । वृषभ से गौतम आदि गणधर हुए । पश्चात् उत्थान पतन के साथ निर्ग्रंथ साधु समाज से पवित्र रही है । पूज्य कुदकुदाचार्य प्रसिद्ध श्रुतसम्पन्न हुए उसी शृखला मे इस २०वीं सदी मे सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बर जैनाचार्य आदिसागर (अकलीकर) हुए जिन्होंने दक्षिण भारत के अकलीग्राम मे फाल्गुण कृष्णा १३ सन् १८६६ मे जन्म लिया शिवगौडा पाटील नाम था । मोक्षमार्ग के बीजाकुर उत्पन्न हुए । हृदय मे दया थी ससार से उदासीनता थी परमेष्ठियो मे भक्ति थी । अपारगुण छिपे हुए थे । इसलिये १९०६ मे क्षुल्लक दीक्षा ली कुछ समय के बाद ही ऐलक बन गये । तप को उग्ररूप देने के लिये कुथलगिरि महातीर्थ पवित्र भूमि पर कुल भूषण देश भूषण की साक्षी मे मगशिर शुक्ला २ को सम्पूर्ण परिग्रह को त्याग कर निर्ग्रन्थ हो गये नाम मुनि आदिसागर हुए । तीर्थ को प्रवाहित करने के लिए धर्मोपदेश दिया नियम व्रत प्रतिमा तथा महाव्रती बनाए चतुर्विध सघ बन गया । तब उनको श्रुत पचमी सन० १९१५ गुरुवार को आचार्य पद दिया । भगवान आदिनाथ जिनेन्द्र देव के पचकल्याण के समय गणमान्य प्रतिष्ठित महानुभावो ने सन् १९१६ में चारित्र चक्रवर्ती पद से विभूषित किया । भगवान बाहुबली की यात्रा की । विशेष रूप से दक्षिण भारत में धर्म प्रभावना की । धर्म की रक्षा स्वरूप समाज को प्रजा को देश को धर्म मार्ग बताया । अहिसा का प्रचर किया । मिथ्यात्व से बचाया मोक्ष मार्ग मे लगाया अपने शिष्यो मे प्रज्ञा श्रमण महावीर कीर्ति को अपना आचार्य पद देकर सल्लेखना ली १४ दिन हेयरूप शरीर को ४ मार्च महाशिवरात्रि फाल्गुन कृष्णा १३ सन् १९४३ गुरुवार की रात्रि के २ बजे ऊदगाव (कुजवन) में छोड दिया । इस अवसर पर सरकार समाज व नागरिको के द्वारा भव्य धर्म प्रभावना हुई ।

साधर्मी महानुभाव

ऐसे महामना परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बर जैनाचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) की ५०वीं पुण्यतिथि स्वर्ण जयन्ति के रूप मे पूजा विधान प्रतिष्ठा शोभायात्रा सभा आदि धार्मिक आयोजनो पूर्वक मनाइये ।

विनीत

राजकुमार बडजात्या	त्रिलोकचन्द्र कोठारी	राजेन्द्रकुमार बज	माणक चन्द पालीवाल
अध्यक्ष	महामत्री	अध्यक्ष	उपाध्यक्ष
आचार्य सन्मति सागर म	अ भा दिगम्बर जैन	दिगम्बर जैन महासमिति	अ भा दिगम्बर
संघ स्वागत स कोटा	महासभा कोटा	कोटा (सभाग)	जैन महासभा कोटा

श्री अंकलीकराय नमः

आचार्य पद स्मृति दिवस मनाइये

परम पूज्य तीर्थ क्षेत्र वंदना भक्ति शिरोमणि समाधि सम्राट् श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्ती जी महाराज के गुरुदेव परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती महातपस्वी दिगम्बराचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज (अंकलीकर) अंकलीग्राम की पावन धरा पर फाल्गुण कृष्ण १३ सन् १८६६ गुरुवार को जन्म लेकर उस बसुन्धरा को पवित्र किया मगशिर शुक्ल २ मंगलवार सन० १९१३ को मुनि दीक्षा कुंथलगिरि में ली और श्रुत पचमी गुरुवार सन० १९१५ में आचार्य पद प्राप्त हुआ तत्पश्चात बढ़ते हुये चरण में अंकलीग्राम में सन० १९१६ में पचकल्याणक प्रतिष्ठा की पावन मंगल बेला में उनको चारित्र चक्रवर्ती पद प्राप्त हुआ । निर्दोष बोधि का प्रतीक समाधि मरण महाशिवरात्रि ४ मार्च सन् १९४३ को प्राप्त किया जिनका आचार्य पद स्मृति दिवस तारीख १६ जून रविवार श्रुतपंचमी १९९१ को मनावें मोक्ष मार्गोपदेष्ठा की शृखला के शिरोमणि चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) का ७६वां आचार्य पद स्मृति दिवस विभिन्न धार्मिक कार्यक्रम आयोजन उल्लासपूर्वक मनाइये उन आचार्य श्री के द्वारा दक्षिण भारत में महती धर्म प्रभावना हुई है और उनके द्वारा ३२ मुनि ४० आर्यिका १ क्षुल्लक १ क्षुल्लिका की दीक्षायें सम्पन्न हुयी और समाज संस्थाओं को मुनियो आदि त्यागी वृत्तियों को समय-समय पर पावन आदेश भी दिये गये जो कि बडे ही महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

निवेदक

पं. छोटे लाल जी	पं. गुलजारी लाल जी	पं. दयाचन्द्र जी
बैरथा	बैद्य	शास्त्री
उज्जैन (म.प्र.)	उज्जैन (म.प्र.)	उज्जैन (म.प्र.)

आचार्य पद स्मृति दिवस समारोह मनाइये

परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बर जैनाचार्य श्री आदिसागरजी महाराज (अकलीकर) ने महाशिवरात्रि सन० १८६६ गुरुवार को जन्म लेकर मगशिर शुक्ल २ सन० १९१३ मंगलवार को मुनिपद ग्रहण किया। श्रुत पंचमी सन् १९१५ गुरुवार को आचार्य पद तथा सन् १९१६ को जन्म स्थली अंकलीग्राम (महाराष्ट्र) में भगवान आदिनाथ के पचकल्याणक के अवसर पर चारित्र चक्रवर्ती पद प्राप्त हुआ। परम पूज्य आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज ने मुनि दीक्षा लेकर उनको अपना गुरु बनाया था और अपने दीक्षा गुरु से ही उनको आचार्य पद प्राप्त हुआ था तथा परम पूज्य आचार्य शांतिसागरजी (दक्षिण) ने उनसे वि स १९७३ में एलक पद धारण कर अपनी भक्ति का परिचय दिया।

अंकलीकर महाराज देश का, राज्य, राष्ट्र, समाज का हित करते रहे। सत्य, धर्म, अहिंसा का प्रचार किया, मांसाहारियों को शाकाहारी बनाया, भव्य जीवों को दीक्षायें देकर संघ के कुशल सचालक हुये। निर्दोश चारित्र पालन किया उद्भट विद्वान एव श्रद्धावान थे। तपस्या के प्रभाव से रोग शोक आदि व्याधि ताप दूर होते थे। ४मार्च फाल्गुन कृष्णा १३ सन० १९४३ गुरुवार को अतिशय समाधि मरण ऊदगाँव कुंजवन में किया।

उन महापुरुष महात्मा, विश्ववद्य, दक्षिण केशरी इस बीसवीं सदी के सर्वप्रथम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री आदिसागरजी अंकलीकर का ७८ वा आचार्य पद स्मृति दिवस ज्येष्ट शुक्ल (श्रुतपंचमी) ५ जून सन् १९९२ शुक्रवार को प्रभात फेरी, शोभा यात्रा, शास्त्र सभा, पूजामण्डल विधान इत्यादि आयोजनों पूर्वक अवश्य मनाइये।

बालाचार्य मुनि श्री १०८ योगीन्द्र सागरजी महाराज

गणिनी आर्यिका विशुद्धमती,

महान् वीतरागी मुनिपुंगव का ७९वां आचार्य पद दिवस

महानुभावों,

मुनि दो प्रकार के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मिलते हैं वो जो स्वकल्याण के साथ-साथ पर कल्याण एव धर्म प्रभावना का लक्ष्य भी रखते हैं और एक मात्र स्वकल्याण मे ही रत रहते हैं ऐसे ही परम् वीतरागी मुनि प्रंगव प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज अकलीकर दक्षिण भारत मे थे जो स्वकल्याण में ही रत थे और वे भी ऐसे समय में जब प पू आचार्य श्री १०८ शातिसागरजी ने क्षुल्लक दीक्षा लेने के बाद आचार्य श्री अकलीकर के पास ऐलक दीक्षा लेने आये दीक्षा देने के पश्चात् आचार्यश्री ने कहा कि मेरे हृदय में एक भावना है कि तुम सम्पूर्ण भारत मे घूम-घूम कर आत्म कल्याण के साथ-साथ धर्म प्रभावना करो और इसी आज्ञा को अपने अन्तरग मे गुरु दक्षिणा के रूप मे स्वीकार कर निरन्तर धर्म प्रभावना का कार्य करते रहे और भविष्य मे प पू आचार्य श्री १०८ शातिसागरजी महाराज के रूप मे सम्पूर्ण भारत मे धर्म प्रभावना ही नही बल्कि मुनि परिवार को वृद्धिगत किया । प पू चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी महाराज के इस बीज को वटवृक्ष के रूप मे पल्लवित करके प पू आचार्य श्री १०८ शातिसागरजी महाराज ने गुरु दक्षिणा के रूप मे अपने कर्त्तव्य की पूर्णाहुति की ।

इन्ही वीतरागी मुनि पुगव प पू चारित्र चक्रवर्ती, आचार्य श्री १०८ आदिसागरजी अंकलीकर का जन्म सन० १८६६ मुनिदीक्षा मगशिर शुक्ला २ सन् १९१३ चारित्र चक्रवर्ती सन् १९१६ में आचार्य पद श्रुतपचमी सन् १९१५ को प्राप्त हुआ था और उन महाराज की फाल्गुन कृष्णा १३ महाशिवरात्रि ४ मार्च सन् १९४३ गुरुवार को समाधिमरण हुआ । आचार्य श्री के समान हमें भी समाधि की प्राप्ति हो, इसलिये दिनाक २६ मई, सन् १९९३ को उनका ७९वा आचार्य पद समारोह मनाकर सातिशय पुण्य सम्पादन करे ।

आर्यिका श्री नगमतिजी.   उपाध्याय चन्द्रसागर   राष्ट्रसंत आचार्य सुधर्मसागरजी

प. विद्याकुमार सेठी,   प्रतिष्ठाचार्य पं. शिखर चन्द्र जैन शास्त्री